UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182822

UNIVERSAL
LIBRARY

H81.082 .G72S H364-1
G72S
गोयलीय, अयोध्याप्रसाद
बोल-ओ-सुखन · 1988 ·

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.082 G725 Accession No. H 3641

Author गोयलीय, अयोध्याप्रसाद.

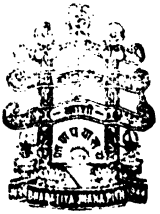
Title शेर-ओ-सुखन 1958.

This book should be returned on or before the date last marked below.



भाग २, ३, ४, ५

अयोध्याप्रसाद गोयलीय



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

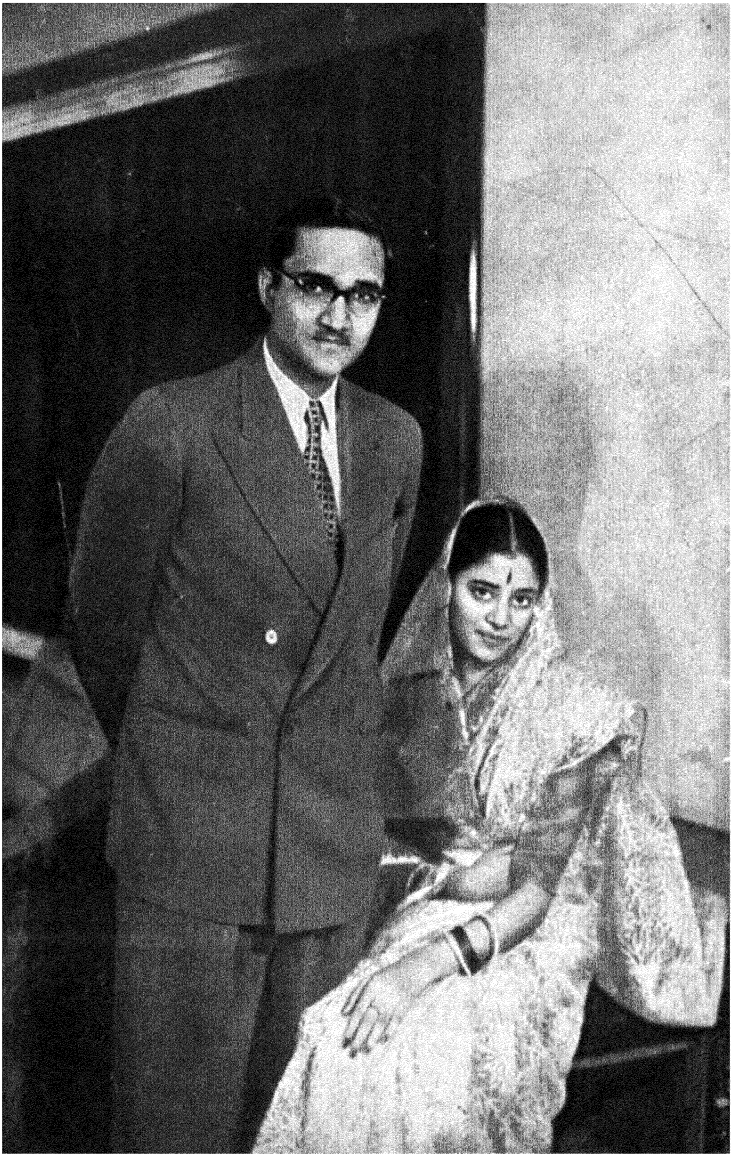
ज्ञानपीठ-लोकोदय ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री० लक्ष्मीचन्द जैन, एम० ए०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

द्वितीय संस्करण
१९५८ ई०
मूल्य ग्यारह रुपये

लेखककी अनुमतिके बिना पुस्तकके अंश उद्धृत न करें
सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक—
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद



चुना हुआ कलाम . . . ७६
३. रियाज खैराबादी . . . १०४
मैखानए-रियाज . . . ११७
जाहिद-ओ-वाइज . . . १२६
सौन्दर्य-वर्णन . . . १३०
शर्मो-हया . . . १३१
नज़ाकत . . . १३२
शोखियाँ . . . १३२
हरजाई माशूक . . . १३३
कामुक प्रेमी . . . १३४
बे-अदबियाँ . . . १३५
पाकीजा कलाम . . . १३८
नीति पूर्ण . . . १४०
गुलो-बुलबुल सम्बन्धी . . . १४०
फुटकर कलाम . . . १४२
४. दिल शाहजहाँपुरी . . १४६
दिलका हबीब . . . १५८
चाहतकी पवित्रता . . . १६१
प्रेमीकी अभिलाषा . . . १६३
प्रेममे तल्लीनता . . . १६५
मजाज़ी इश्क़ . . . १७०
तीरे-नजर . . . १७१
प्रेयसीका व्यक्तित्व . . . १७२
प्रेयसीकी चाल . . . १७२
प्रेयसीयका रूप . . . १७२
शर्मीली प्रेयसी . . . १७३

	विरह . . .	१७३
	यासो-हिरमाँ . . .	१७३
	शिकवा-शिकायत . . .	१७४
	प्रेयसीकी दिलशिकनी न होने पावे .	१७४
	चारासाज . . .	१७५
	परम्परागत . . .	१७६
	शैख, वाइज, नासेह, जाहिद . .	१७६
	मौनका प्रभाव . . .	१८३
	हायरी मजबूरियाँ . ; .	१८४
	सुभाषित . . .	१८४
	स्वराज्य-प्राप्ति . . .	१८५
	सुखमें दुःख छिपा हुआ है . . .	१८५
	अन्य शाइरोके रगमें . . .	१८५
	चुना हुआ कलाम . . .	१८७
५	जलील मानिकपुरी .	२११
६.	हफ़ीज जौनपुरी . . .	२२६
७.	सरशार लखनवी . . .	२३७
८.	पं० जगमोहनाथ रैना . .	२४१
९.	आर्जू लखनवी . . .	२४७
१०.	उम्मीद अमेठवी . . .	२७२
११.	सफ़ी लखनवी . . .	२७९
१२.	अज़ीज लखनवी . . .	२८७
१३.	नज़र लखनवी . . .	३०१
१४.	नातिक़ लखनवी . . .	३१०
१५.	नज्म तबा तबाई . . .	३१७

तीसरे भागकी सूची

१६.	शाद अज़ीमाबादी	१७
	परिचय	१७
	रंजो-ग़म	१८
	उच्चभाव	१६
	पाक इश्क़	२१
	शादकी शराब	२५
	अद्दू	२७
	प्रेरणात्मक	२८
	चन्द नैतिक शेर	२६
	चुना हुआ कलाम	३०
	तुलनात्मक अशआर	५१
	द्वितीय संस्करणके लिए	६१
१७.	हसरत मोहानी	६४
	परिचय	६४
	हसरतकी शाइरी	६८
	हसरतका शाइरीमें मर्त्तबा	७७
	हसरतके चन्द अशआरकी झाँकी	८१
	चुना हुआ कलाम	८६
१८.	फ़ानी बदायूनी	१०१
	ग़ालिब और फ़ानी	१०४

मीरका प्रभाव . . . १०७
परिचय . . . १०९
फानीके चन्द मक्ते . . . ११५
चुना हुआ कलाम . . . ११६

१९. असग़र गोंडवी . . . १२४
परिचय . . . १२४
ईश्वरीय प्रेम . . . १२६
पवित्र प्रेम . . . १३०
असगरकी रिन्दी . . . १३१
मन्दिर-मस्जिद . . . १३१
शाइराना नसीहतें . . . १३२
रोना-विसूरना . . . १३४
चुना हुआ कलाम . . . १३४
द्वितीय सस्करणके लिए . . . १३९
असगरकी शाइरी . . . १४५
असगरके चन्द शेर . . . १४८

२०. जिगर मुरादाबादी . . . १५१
परिचय . . . १५१
पाक-इश्क . . . १५७
गमे-इश्क . . . १५७
रकाबत . . . १५८
जिगरकी रिन्दी . . . १५८
कौमी दर्द . . . १५९
चुना हुआ कलाम . . . १५९
द्वितीय सस्करणके लिए . . . १७३

	ग़ज़लें . . .	१८१
२१.	**यगाना चंगेज़ी** . . .	१८८
	परिचय . . .	१८८
	सर्वधर्म समभाव . . .	१९१
	मज़हबी दीवानगी . . .	१९२
	ईश्वरका भरोसा . . .	१९२
	विलासी युवक . . .	१९२
	सर्वहित सुखाय . . .	१९३
	भीख न माँग . . .	१९३
	ख़ुदाके नाम पर . . .	१९३
	चुना हुआ कलाम . . .	१९५
	द्वितीय संस्करणके लिए . . .	२११
२२.	**आसी ग़ाज़ीपुरी** . . .	२१६
२३.	**अमरनाथ साहिर** . . .	२२५
२४.	**दत्तात्रय कैफ़ी** . . .	२३०
२५.	**आज़ाद अन्सारी** . . .	२४०
२६.	**वहशत कलकतवी** . . .	२५०
२७.	**अमजद हैदराबादी** . . .	२६५

चौथे भागकी सूची

२८.	सीमाब अकबराबादी	३३
२९.	जोश मलसियानी	६५
३०.	नातिक़ गुलावठी	१०५
३१.	साइल देहलवी	१०९
३२.	आग़ा 'शाइर' क़िज़िलबाश	११८
३३.	बेख़ुद देहलवी	१२७
३४.	बेख़ुद बदायूनी	१४६
३५.	नूह नारवी	१६९
३६.	अहसन मारहरवी	१५५
३७.	नसीम भरतपुरी	१६०
३८.	हसन बरेलवी	१६५
३९.	अलम मुज़फ़्फ़रनगरी ['सीमाब' के शिष्य]	१६९
४०.	आसी ल्दनी ['नातिक़' के शिष्य]	१८९
४१.	अलवर हैदरी ['हाली' के शिष्य]	२१४
४२.	ताजवर नजीबाबादी	२२०
४३.	तिलोकचन्द महरूम	२२४
४४.	असर लखनवी	२५३

पाँचवें भागकी सूची

प्रारम्भसे सन् १९५७ ई० तककी इश्क़िया शाइरीपर

सिंहावलोकन

पूर्वार्द्ध

१.	ग़ज़लका मुख्य लक्ष	१९
२.	ग़ज़लका अर्थ	२१
३.	ग़ज़लका उपयुक्त पात्र	२२
४.	ग़ज़लमें मिश्रण	२२
५.	इश्क़के भेद	२३
६.	स्वानुभूत और काल्पनिक शाइरी	२६
७.	पाक इश्क़ (पवित्रप्रेम)	२९
८.	नापाक इश्क़ और बाजारी माशूक़	३१
	शोख़	३२
	बेअदब	३२
	बेवफ़ा	३३
	बेमुरव्वत	३३
	बेरहम	३३
	बदज़बान	३४
	संगदिल	३५
	ज़ालिम	३६
	हरजाई	३६
	क़ातिल	३७
	जल्लाद	३८
	दग़ाबाज़	३८
	जालसाज़	३८
	वादा फ़रामोश	३८
९.	हबीबका तसव्वुर (असली प्रेयसीका उल्लेख)	३८
१०.	देहलवी-लखनवी शाइरी	४६

११.	**प्रेमपात्र पुरुष या स्त्री**	४८
	पर्दानशी, लाजवती	५०
	बाजारी हबीब (वेश्या)	५०
	साज-सज्जा	५४
	जेवरात	५४
	लिबास	५५
	रूप	५५
१२.	**दाखिली-खारिजी शाइरी**	५६
	खारिजी शाइरीके नमूने	५७
१३	**लखनऊकी पुरानी-नई शाइरी**	६४
१४	**ग़ज़लकी मुख़ालिफ़त**	६५
१५	**ग़ज़लमें स्वाभाविकता और विकार**	६६
	दिलकी हालत	६८
	चितवन	७०
	अदा (हावभाव)	७१
	रूप	७२
	प्रेम-रोग	७६
	आशिककी मजबूरी	७७
	आशिकका मशग़ला	७८
	रोना-विसूरना	७८
	तारे गिनना	७८
	आतिशे-इश्क़	७९
	कमज़ोरी	८०
	रोना-बिलखना	८३
१६	**इकतर्फ़ा इश्क**	८५
१७	**ग़ज़लका कायापलट**	८९
१८	**ग़ज़लकी आवश्यक विशेषताएं**	९३
	सादगी	९३

स्वाभाविकता . . . ९४
प्रभाव . . . ९४

उत्तरार्द्ध

१९ शाइरीमें परिवर्त्तनके कारण . . ९९
२० नज़्म और ग़ज़ल . १०२
२१ ग़ज़लकी उन्नतिके कारण १०३
२२ ग़ज़लपर एतराज़ १०४
२३ ग़ज़लका मर्म १०५
२४ ग़ज़लके रूपक . १९०
२५ गुलो-बुलबुल . . . ११०
अकर्मण्यता . ११२
सामर्थ्यके अनुसार . . ११३
सहृदयता . . ११३
सुखमें दु:ख छिपा है . . . ११३
क्षणभगुर वैभव ११३
यह कृपालुता ११३
२६ साक़ी-ओ-मैख़ाना ११४
हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य . ११४
लालची . . . ११४
दानीमें ११४
आलोचकोंमें . . . ११४
शासन-व्यवस्थापकोंमें . . ११५
ये छिद्रान्वेषी . . ११५
कलके ढोंगी, आजके नेता . ११५
चेतावनी . . . ११५
२७. हुस्न-ओ-इश्क़ . . . ११५
२८. रंगे-तग़ज़्ज़ुल . . . ११८

२९	नई राजलगोई	१२५
३०.	पाक इश्क़	१२६
३१	महबूबका मर्त्तबा	१३३
३२	महबूबका जमाल	१३७
३३	रोना-बिसूरना	१४१
३४.	आशिक़-ओ-माशूक़की तसवीर	१४५
३५.	हिज्रे-यार	१४६
३६	यास-ओ-हिरमान	१५१
३७	रक़ाबत	१५४
३८	सामयिक घटनाएं	१५८
	नैतिक	१६१
	खुदापर व्यग्य	१६४
	उपासनाएँ, धनकुबेरोमे	१६५
	निर्धनता, पराई आग	१६६
	मनुष्यकी मजबूरियां	१६६
	अपनी भाषा	१६६
	ये नसीहतकार	१६७
	नागरिकता	१६७
	साम्यवाद	१६७
	भक्त-वत्सलता	१६७
	मज़हबसे बेज़ारी	१६८
	फिरक़ापरस्ती	१६८
	सर्वधर्म-समभाव, अहिंसा	१६६
मुशाअरा		
१	मुशाअरोंका प्रारम्भिक रूप	१७३
२	मुशाअरोंका विकसित रूप	१७५
३	मुराक़ते	१७५
४	मुनाज़मे	१८४
५.	तहरीरी मुशाअरे	१८५
६.	मौजूदा मुशाअरे	२००

द्वितीय संस्करणकी विशेषताएँ

अनेक संशोधनोंके अतिरिक्त २, ३, ४, ५ भागोंमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण, उपयोगी परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन हुए हैं—

१—सोलह सौ नवीन माअ्रने फ़ुटनोटमें अधिक बढ़ाये गये हैं।

२—शाइरोंके कलाममें यथास्थान चार सौ शेर अधिक दिये गये हैं।

३—'दिल' शाहजहाँपुरी, 'वहशत' कलकतवी, अमजद हैदराबादी, 'जोश' मलसियानी, तिलोकचन्द्र 'महरूम'के प्रथम संस्करण वाले परिचय एवं कलाम निकालकर नये सिरेसे लिखे गये हैं जो कि ४४ पृष्ठके बजाय १५६ पृष्ठमें छपे हैं।

५—शाद अज़ीमाबादी, असग़र गोण्डवी, जिगर मुरादाबादी, यगाना चंगेज़ी, क़ैफ़ी, आज़ाद अन्सारी आदिपर पहिले परिचय एवं कलामके अतिरिक्त द्वितीय संस्करणके लिए नवीन संस्मरण और कलामकी ५० पृष्ठकी वृद्धि हुई है।

६—पाँचवें भागके प्रारम्भमें 'द्वितीय संस्करणके लिए' शीर्षकमें १४ पृष्ठका नवीन वक्तव्य लिखा गया है।

७—पाँचवें भागके अन्तमें अक्षरवार सूची बढ़ाई गई है, ताकि पाठक सुगमतासे जान सकें कि किस शाइरका अथवा विषयका उल्लेख किस भागमें मिलेगा।

८—इस संस्करणमे 'नई लहर' परिच्छेद निकाल दिया है। वह बहुत अधिक परिवर्त्तन-परिवर्द्धनके साथ नये रूपमें 'शाइरीके नये मोड़' के पहले मोड़में दिया गया है; क्योंकि उसके लिए वही उपयुक्त स्थान था।

९—वे शाइर-शाइराएँ जिनका परिचय २-४ पंक्तियोंमें था और नाम मात्रको कलाम बतौर नमूना दिया गया था, इस नवीन संस्करणमें रोक लिये गये हैं। उनमें जो बहुत ख्याति प्राप्त हैं और इतिहासकी दृष्टिसे जिनका उल्लेख आवश्यक है, उनका परिचय एवं कलाम उनकी शाइरीके मर्त्तबे और आयुके क्रमसे 'शाइरीके नये दौर' और 'नये मोड़'के अन्तर्गत नये सिरेसे दिया जायगा।

३० जुलाई १९५८ ई०

—गोपालीय

सूचनाएँ

१—**पहिले भागमें**—उर्दूके प्रारम्भकालसे १९वीं सदीके अन्तिमकाल तक ख्याति पानेवाले ग़ज़लोंके माने हुए मुख्य-मुख्य उस्तादोंका परिचय एवं कलाम और उस युगकी शाइरीपर विस्तृत अध्ययन दिया गया है।

२—**दूसरे, तीसरे, चौथे भागमें**—उनके योग्य उत्तराधिकारी वर्त्तमान ग़ज़ल-गो शाइरोंका परिचय एवं कलाम दिया गया है।

३—**पांचवें भागमें**—ग़ज़लका क्रमबद्ध इतिहास, सिंहावलोकन और मुशाइरोंका रूप प्रस्तुत किया गया है।

४—उक्त २, ३, ४ भागोंमें वर्त्तमान युगीन उन वयोवृद्ध शाइरोंका उल्लेख हुआ है, जो १९वीं शताब्दीमें पैदा हुए और बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भिक युग १९१५-२० ई० तक ख्यातिके शिखरपर पहुँच गये और मुसल्लिम-उल-सबूत (प्रामाणिक) उस्ताद समझे गये। जिन्होंने पुराने उस्तादोंकी आँखें देखीं और जिनके हज़ारों शिष्य वर्त्तमान भारत और पाकिस्तानमें मशहूर हैं।

५—इनमें-से कुछ पुरातन परम्पराके अनुयायी हैं, तो कुछ नवीनताके उपासक, और कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने प्राचीनता और नवीनताका अत्यन्त कलापूर्ण ढंगसे सम्मिश्रण किया है। ग़रज़ सभी अपने-अपने रंगके माने हुए उस्ताद हैं। इन भागोंमें हर रंगकी अनुपम गंगा-जमुनी छटा देखनेको मिलेगी।

६—१९१५ ई० तकका काल एक तरहसे पूर्ववर्त्ती शाइरोंका अनुकरण युग रहा है। उस समयतक ग़ज़लोंमें कोई विशेष परिवर्त्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ हाली-ओ-प्राज़ादके नज़्म-आन्दोलनके ज़ोरके कारण ग़ज़ल कुछ जम्हाइयाँ एवं करवट-सी लेती हुई मालूम होती है।

१९१५ ई० के बाद गजलमें स्पष्टतः जागृतिके चिह्न झलकने लगते हैं। दोनो महायुद्धोंकी विभीषिकाओं, असहयोग, खिलाफ़त, किसान-मजदूर आन्दोलनो, साम्प्रदायिक-सघर्षों और स्वराज्य-प्राप्ति एव भारत-विभाजनके फलस्वरूप जो क्रान्तियाँ हुई, उन सबका गजलपर भी प्रभाव पडा और उसमे उत्तरोत्तर परिवर्त्तन एव परिवर्द्धन होते गये। गजल अपने प्रारम्भिक कालसे १९५७ ई० तक किस स्थितिमे गुजरकर कहाँ जा पहुँची है? उसका प्रारम्भमे कैसा रूप था और वर्त्तमानमे कैसा कायाकल्प हुआ है। यह सब २, ३, ४ भागोंमे देखनेको मिलेगा। फिर भी हमने पाठकोंकी सुविधाके लिए पाँचवे भागके सिंहावलोकनमे तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है।

७—१९वी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे विशेष ख्याति पानेवाले उस्ताद—अमीर, जलाल, तसलीम, दाग, हाली आदिके हज़ार-हा शिष्योंमे-से हमने केवल चन्द प्रसिद्ध शाइरोका परिचय एव कलाम दिया है। इससे अधिकका परिचय देना हमारी सामर्थ्य और शक्तिके परे था। बक़ौल मीर—

उम्र थोड़ी है और स्वांग बहुत

८—ध्यान रहे हमने इन २, ३, ४ भागोमे उन्ही गजल-गो शाइरोका परिचय दिया है, जो १९वी शताब्दीमे उत्पन्न हुए और १९२० ई० के पूर्व ही उस्तादीकी ममनदपर आसीन हो गये। इसी युगके अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गजल-गो उस्तादो और १९२० ई० के बाद ख्याति पानेवाले ग़ज़ल और नज्मगो शाइरोका परिचय 'शाइरीके नये दौर' और 'शाइरीके नये मोड़'मे दिया जा रहा है।

९—यद्यपि कई शाइर प्रस्तुत २, ३, ४ भाग लिखनेसे पूर्व और अधिकाश शाइर पुस्तक लिखते-छपते जन्नतनशी हो गये है। फिर भी हमने उनका उल्लेख वर्त्तमान युगीन शाइरोमे किया है, क्योकि वे सब इसी बीसवी सदी—दौरे-जदीदके—शाइर है। इसी युगमे वे परवान चढ़े, उस्तादी हैसियत प्राप्त की और फले-फूले।

१०—प्रस्तुत २, ३, ४ भागोंमें वर्णित शाइरोंमें—साकिब, हसरत, फ़ानी, असग़र, जिगर और सीमाबका परिचय सक्षेपमें शेरो-शाइरीमें दिया जा चुका था। फिर भी ऐतिहासिक क्रमको बनाये रखनेके लिए इनका उल्लेख इन तीन भागोंमें भी किया गया है। इनके बगैर इतिहास लँगडा-लूला रहता। अत. हमने इनका परिचय और कलाम शेरो-शाइरीसे सर्वथा भिन्न और नवीन देनेका प्रयत्न किया है।

११—शाइरोंका कलाम उनकी जिन कृतियोसे चुना गया है, उनका नाम कलामसे पूर्व या बादमें दे दिया गया है। कृतियोंके अतिरिक्त उनका ताज़े-से-ताजा कलाम भी देनेका प्रयास किया गया है, और वह जिन पत्र-पत्रिकाओसे सकलन किया गया है, उनका भी यथास्थान उल्लेख किया गया है। जिन शाइरोंके दीवान मुद्रित नही हुए, अथवा हमे प्राप्त न हो सके, उनका कलाम हमने जिन तजकिरो और पत्रोके अम्बारोमे खोजा है; उनके नाम भी कलामके साथ दे दिये है। उन सबकी तालिका पृथक्से नही दी गई है।

१२—अक्सर हर शाइरके कलामके अन्तमे हमने तारीख दी है, ताकि लेखनकालका पता लग सके। कई जगह बहुत नजदीकी तारीखे अकित है। उतने वक्फ़ेमे वह मजमून लिखा ही नही जा सकता। इसकी वजह यह है कि कई-कई मजमून यथावश्यक और सुविधानुसार लिख लिये गये; परन्तु किसी वजहसे पूर्ण न हो सके और जब पूर्ण हुए तो लगातार होते चले गये और तभी मजमून-समाप्तिकी तारीख डाल दी गई। शाइरोका कलाम पढा कभी गया, उद्धृत कभी किया गया और परिचय आदि सुविधानुसार कभी लिखा गया। कुछ स्थल सुविधानुसार आगे-पीछे लिखे गये है और उन्हे बादमे क्रमबद्ध कर दिया गया है। ये २, ३, ४, ५ भाग १९४९ ई० मे लिखने शुरू किये गये थे

और दिन-रातके लगातार परिश्रमके बाद १९५४ ई० में पूर्ण हो सके हैं।[1]

१३—सभी शाइरोके चित्र हमें प्राप्त नही हो सके। काफ़ी प्रयत्न करनेके बाद कुछ चित्र सकलित हो सके और वह भी ऐसी स्थितिमें कि उनके हाफटोन ब्लाक नही बन सके। अत पहिले उन चित्रोके शीर्षक लाइन चित्र बनाये गये, फिर ब्लाक बने हैं।

१४—अधिकाश शाइरोका परिचय एव कलाम हम अपनी अभिलाषानुसार विस्तारसे नही दे सके हैं, न उनपर विशेष प्रकाश ही डाल सके हैं। इसका कारण यही है कि किन्हीके दीवान प्रकाशित नही हुए तो किन्हीके बाजारमें प्राप्त नही। हमारे अपने भी सीमित साधन हैं। लिखते हुए भी ५ वर्षसे अधिक हो गये थे। स्वास्थ्य जब धोका देने लगता था, तब भय हो उठता था कि जीवनकालमें छपेगे भी या नही। अत. अधिक प्रतीक्षा न करके जहां-जहासे जितना भी कलाम मिल सका, सकलन करनेका भरसक प्रयत्न किया गया है। पूर्ण परिश्रम करने और पूरी सावधानी रखते हुए भी अज्ञानजनित न जाने कितनी त्रुटियां रही होगी? मैं स्वय अपनी कमियो और अल्पज्ञतासे परिचित हूँ। फिर भी पाठक इसे अपनाये तो इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है—

"यह फ़क़त आपकी इनायत है।
वरना मैं क्या, मेरी हक़ीक़त क्या?"

डालमियानगर
७ जनवरी १९५८

गुरुदयाल मल्लीक

---

[1] द्वितीय सस्करणके सशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्द्धनमें १९५७ ई० का पूरा वर्ष और १९५८ के आठ माह व्यतीत हुए हैं।

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—२६

शेर-ओ-सुख़न

[लखनऊ-स्कूलके वर्त्तमान शाइर]

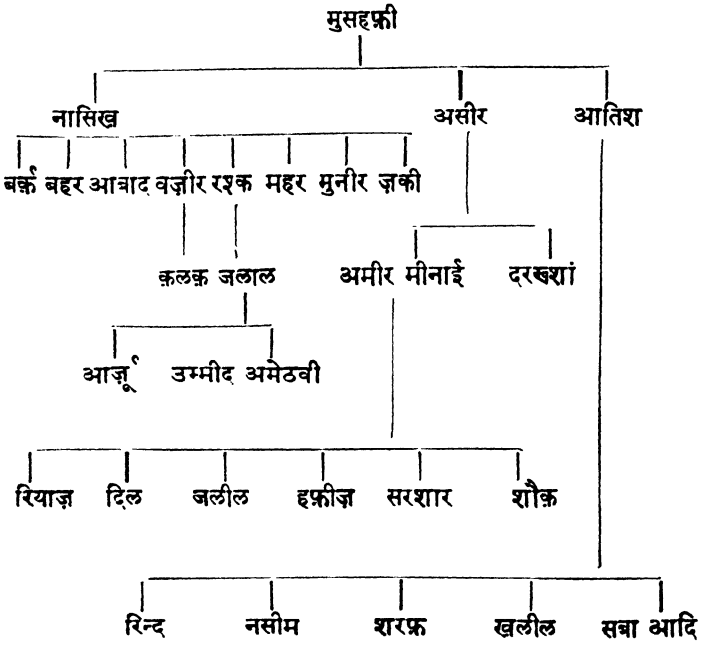
दूसरा भाग

प्राचीन उस्ताद-शाइरोंके वर्त्तमान युगीन
ख्यातिप्राप्त, प्रतिष्ठित, योग्य उत्तराधिकारी
लखनवी शाइरोंका जीवन-परिचय
एवं कलाम

उनपै हँसिए शौक़से जो माइले-फ़रियाद हैं
उनसे डरिए जो सितमपर मुसकराकर रह गये

—असर लखनवी

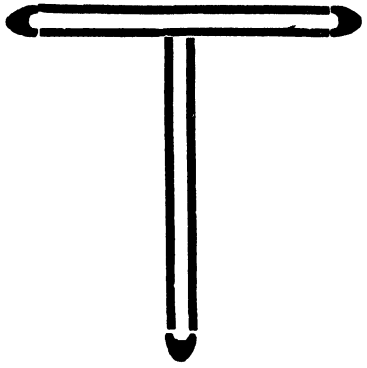
लखनऊ-स्कूलके शाइर



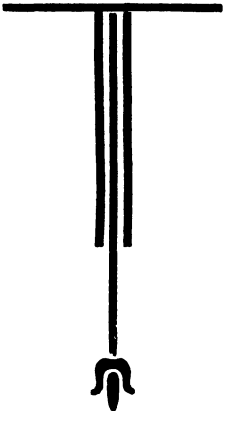
उन्नीसवीं शताब्दीमें हुए जलाल, अमीर मीनाई तकका परिचय शेरो-सुख़न प्रथम भागमें दिया जा चुका है। बीसवीं शताब्दीमें ख्याति पानेवाले इनके मुख्य-मुख्य शिष्योंका परिचय प्रस्तुत भागमें मिलेगा।

इन शाइरोंके अतिरिक्त—नज़्म तबातबाई, सफ़ी, नज़र, नातिक़, अज़ीज़ और असरका परिचय एवं कलाम भी प्रस्तुत भागमें मिलेगा।

लखनऊ स्कूलके



वर्त्तमान युगीन



ख्यातिप्राप्त शाइर

१. साक़िब लखनवी
२. असर लखनवी
३. रियाज़ खैराबादी
४. दिल शाहजहाँपुरी
५. जलील मानिकपुरी
६. हफ़ीज़ जौनपुरी
७. सरशार लखनवी
८. शौक़ रैना
९. आरज़ू लखनवी
१०. उम्मीद उमेठवी
११. सफ़ी लखनवी
१२. अज़ीज़ लखनवी
१३. नज़र लखनवी
१४. नातिक़ लखनवी
१५. नज़्म तबातबाई

साक़िब लखनवी



[१८६९ — १९४६ ई०]

मिर्ज़ा ज़ाकिर हुसेन 'साक़िब' २ जनवरी १८६९ ई० को आगरेमें उत्पन्न हुए। उसी आगरेमें, जहाँ उर्दूके अमर शाइर—मीर, ग़ालिब और नज़ीर पैदा हुए थे। यह प्रकृतिकी अनोखी सूझ ही समझिए कि जो साक़िब, मीर-ओ-ग़ालिबकी शिष्य परम्परासे दूरका वास्ता न रखते हुए भी शाइरीमें उनके उत्तराधिकारी समझे जाते हैं; जिन्हें मीर-जैसी मधुर एवं हृदयस्पर्शी भाषा और ग़ालिब-जैसी उच्च भावनाएँ और अनोखी कल्पनाएँ प्राप्त हुईं; उन्हें उनकी क्रीड़ास्थलीमें जन्म लेनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अभी आप छः माहके थे कि आपके पिता आगरा छोड़कर लखनऊ चले आये और कुछ दिनों नौकरीके सिलसिलेमें इधर-उधर रहकर स्थायी रूपसे लखनऊमें बस गये।

क़ुदरतकी सितमज़रीफ़ी देखिए कि साक़िबको बचपनसे ही जितनी ज़्यादा शाइरीसे रग़बत थी, उतनी ही अधिक आपके पिताको उससे चिढ़ थी। परिणाम इसका यह हुआ कि आपके मनोभाव मन-ही-मनमें घुटने लगे। आखिर यह घुटन कबतक चलती ? वह भापकी तरह उमड़ पड़ी। अभी आप १२ वर्षके थे, और शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। बुज़ुर्गोंके भयसे न तो ग़ज़ल कह सकते थे और न किसी मुशाइरेमें क़दम रख सकते थे।

बेचारे मन मारकर रह जाते थे। आखिर आपने एक उपाय निकाल ही लिया। आप मुशाइरोंके मिसरा-तरहोंपर ग़ज़ल कहते और अपने सह-पाठियोंको मुशाइरोंमें पढ़नेके लिए दे देते। किस शेरपर किस-किस उस्तादने दाद दी, साथियोंसे यही जानकर आत्मसतोष कर लेते थे।

१८८७ से १८९१ तक आप अग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आगरे रहे। खुश क़िस्मतीसे वहाँ आपको मोमिन हुसेनखाँ 'सफ़ी'-जैसे योग्य उस्ताद नसीब हुए। उन्हे उर्दू, फ़ारसी, अरबी तीनों भाषाओंमे शेर कहनेका बहुत अच्छा अभ्यास था। प्रतिभासंपन्न 'साक़िब'को उन्होंने मुक्त हृदयसे शिक्षा दी और आप चन्द ही दिनोंमे इस योग्य हो गये कि अपने गुरु भाइयोंकी ग़ज़लोका संशोधन सफलतापूर्वक करने लगे।

मिर्ज़ा साक़िब जितनी उच्च कोटिकी ग़ज़ल कहते थे, उतनी ही हृदय-स्पर्शी आवाज़में पढ़ते भी थे। श्रोताओंपर जादू-सा होने लगता था, और मुशाइरे-का-मुशाइरा झूम उठता था। मुशाइरोंमे पहले तरन्नुमसे[1] पढ़नेकी प्रथा नही थी, यह इसी बीसवी सदीकी देन है[2]। इस प्रथाके कारण कलाम-पर कम और तरन्नुमपर अधिक दाद मिलती है, और अक्सर देखा जाता है कि तरन्नुमसे न पढ़ सकनेके कारण अच्छे-से-अच्छे उस्ताद नौसिखुए छोकरोंके सामने माँद पड़ जाते है। मिर्ज़ा कभी भी तरन्नुममे ग़ज़ल नही पढ़ते थे, फिर भी उनकी सादा और पुरजोश ग़ज़ल-ख्वानीके सामने खुश गुलू और संगीत पारंगत शाइर भी अपना रंग नही जमा पाते थे। अक्सर दावेके साथ प्रतिद्वंद्वी शाइर मुशाइरोंमें गये, मगर आपके समक्ष मुँहकी खाकर बाहर निकले।

मिर्ज़ाको फ़िलबदीह (तात्कालिक) शेर कहनेका बहुत अच्छा अभ्यास था। एक बार लखनऊके कुछ प्रतिष्ठित साहित्य-प्रेमियोने यह आयोजन

---

[1]गाकर पढ़ना; [2]लोगोंका कहना है कि तरन्नुमसे पढनेका रिवाज नवाब 'साइल' देहलवीने चालू किया। आपका परिचय चौथे भागमे मिलेगा।

किया कि मुशाइरेमें सम्मिलित होनेवाले शाइरोंके आजानेपर मिसरा-तरह देकर वही गजल कहलाई जाय, ताकि मालूम हो सके, कौन कितने पानीमें है। योजनाके अनुसार मिसरा-तरह देनेपर आपने सबसे पहले, सबसे अधिक और सबसे अच्छे शेर कहे, और आप ही विजयी घोषित हुए। आप अक्सर मार्ग-चलते हुए भी शेर कहते थे, परिणामस्वरूप कई बार सवारियोंसे और राहगीरोंसे टकराकर चोट खा गये।

मीर-ओ-ग़ालिबकी तरह आप भी आर्थिक चिंताओंमें ग्रसित रहे। एक हज़रतके साथ अपनी समस्त जमा पूंजी लगाकर व्यापार किया तो उन्होंने सब पूंजी चौपट कर दी।

१९०६ म यानी २७ वर्षकी उम्रमें आप कलकत्ते गये और वहाँ सुफ़ारतखानए-ईरानमें दो वर्ष प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। १९०८ ई० में राजा-महमूदाबादने आपको बुला लिया और ५० रु० मासिक पेंशन नियत कर दी। इस युगमें इस अल्प आयसे क्या होता है, मगर आप इतने सन्तोषी थे कि उसीमें आनन्दपूर्वक जीवन-यापन करते रहे।

मिर्ज़ा पुरानी वजअ-कितअके बुज़ुर्ग थे। सरल स्वभावी, उच्च विचारक और गभीर। बहुत मिलनसार लेकिन स्वाभिमानी व्यक्ति थे। मित्रोंके समक्ष नम्र, किन्तु शत्रु-पक्षके आगे सरबुलन्द। आत्मविज्ञापनसे कोसों दूर, अपने विचारोंमें अक्सर लीन और खोये-से रहते थे। स्वतन्त्र विचारक और बातचीतमें संजीदा। दुबले-पतले। शक्लो-शबाहत भद्रतापूर्ण। चेहरेपर सफेद फ़्रेंच दाढ़ी और आँखोंपर चश्मा निहायत जेब देता था। अक्सर काली शेरवानी और गोल टोपी पहनते थे। २२ नवम्बर १९४६ को आप जन्नतनशी हुए।

मिर्ज़ाकी शाइरी

मिर्ज़ाका समस्त जीवन प्रायः लखनऊमें व्यतीत हुआ। उन्होंने अपनी किशोरावस्थामें १९ वी शताब्दीके अंतिम युगोंके ख्यातिप्राप्त साहिबेकमाल उस्तादोंको अपनी आँखोंसे देखा। असीर, बर्क़, बहर, क़लक, अमीर,

जलाल, शमशाद, इश्क़, उन्स, बका, तश्राश्शुक, रसीद, कामिल आदि सब लखनवी शाइर तब ज़िंदा थे।

उन दिनों लखनऊकी शाइरीपर दो प्रकारका वातावरण छाया हुआ था। एक नासिख्वी दूसरा बाजारी। यद्यपि नासिखको गुजरे हुए ५० वर्षके करीब हो चुके थे, तो भी उनके शिष्य और परशिष्य नासिखी स्कूल खोले हुए बैठे थे। बाजारी शोख तर्जे-अदाने गजलको इस कदर पतितावस्थामें पहुँचा दिया था कि भले आदमी दामन बचाकर निकलने लगे थे। मगर आम जनता इस तर्जे-अदापर टूटी पडती थी। सक्षेपमें यू समझिए कि जिस शहरमें नौटकी हो रही हो, तो वहाँके भद्र पुरुषोकी तो नीद हराम हो जाती है। मगर जनसमूह उमड पडता है। वर्तमानमें सिनेमाओके कुरुचिपूर्ण प्रदर्शनोसे लोग ऊब गये है, मगर जन-साधारणकी भीडका यह आलम रहता है कि एक-पर-एक टूट पडता है।

मिर्जाने भी इसी वातावरणमें शाइरीकी चौखटपर पाँव रखा, और नासिखका जो रग सामने था, उसीमें गोते लगाने लगे। मिर्जाका क्या जिक्र ? नासिखका रग तो किसी वक्तमें इतना मकबूल हुआ कि 'आतिश'-जैसे उस्ताद उसके छीटोसे अपने दामनको बचाये न रख सके। और आतिशको तो खैर नजरअन्दाज किया भी जा सकता है, क्योकि आखिर वह भी लखनवी थे। मगर देहलवी शाइर शाह 'नसीर' और 'जौक़' को क्या हुआ था जो उम्र भर डुबकियाँ मारते रहे। और-तो-और गालिब व मोमिन जैसोके पाँव भी फिसले बगैर नहीं रह सके। वह तो खैर हुई जो फ़ौरन सँभल गये, वर्ना ईश्वर ही जाने आज उर्दू-गजल कहाँ होती ? और होती, या नही यह भी कुछ कहा नही जा सकता।

हाँ तो मिर्जाने अपनी शाइरीका श्रीगणेश नासिखी स्कूलसे ही किया। दो-चार नमूने देखिए—

इश्क़-पेचाँ क़दे-जानाँने बनाया 'साक़िब'!
ऐंड़ना भूल गये, सरो-ओ-सनोबर अपना॥

मेरे लहूसे अगर होके सुर्ख़रू[1] आये।
मलो तो बर्गे-हिनामें[2] वफ़ाकी[3] बू आये॥
देर-पा है किस क़दर 'साक़िब' हसीनोंका शबाब।
उम्रभर अपनी जवानीकी क़सम खाते रहे॥
मैं सस्तजाँ[4] नहीं, ख़ंजर भी तेज़ है लेकिन—
निगाहे-यास[5] है क़ातिलकी तेज़ दस्ती है॥
ज़ख़्मे-जिगरसे अबरुए-क़ातिलने[6] चाल की।
दिलतक शिगाफ़[7] दे गई, छूट उस हिलालकी[8]॥
ग़ैरकी इमदादसे चमके नहीं अहले-कमाल[9]।
नामको रोग़न चिराग़े-तूरे-सीनामें न था॥

इसप्रकारके नासिखी शेर मिर्जाके दीवानमें यत्र-तत्र काफ़ी नज़र आते हैं। आपने अपने सोजो-गुदाजसे कलाममें वोह बात पैदा कर दी है कि नासिखी रंग धुलकर रह गया है। यही मिर्जाकी शाइरीका कमाल है। हाँ, जहाँ नासिखका रंग गहरा हो गया है, वहाँ असर और मजा जाता रहा है।

मिर्जा साहबका तगज्जुलकी दुनियामें जो उच्च और महत्वपूर्ण स्थान है, उसको देखते हुए न जाने क्यों इस तरहके हलके शेर भी दीवानमें दृष्टि-गोचर होते हैं—

ख़फ़ा क्यों हो जो पैग़ामे-क़ज़ा[10] अबतक नहीं आया।
बुरे दिलसे तुम्हें ख़ुद कोसना अबतक नहीं आया॥
ग़ैरोंको दिखाया मेरा दिल खोलके यूँ ही।
मुझसे दमे-पुरसिश[11] यह कहा—"और ही कुछ है"॥
क्यों मेरे सीनेसे उठे फेरकर मुझपर छुरी?
नातवाँ[12] है दिल, मगर यह बार[13] रहने दीजिए॥

---

[1]रक्तमें भीगकर; [2]मेहदीके पत्तेमें; [3]भलाईकी; [4]वज्र शरीर; [5]निराशापूर्ण; [6]प्रेयसीकी भौंवोंने; [7]दरार; [8]दूजका चाँद; [9]कलाविद; [10]मृत्यु-सन्देश; [11]दरियाफ्त करनेके समय; [12]कमजोर; [13]बोझ, एहसान।

साफ़ कह दीजिए वादा ही किया था किसने।
उज़्र क्या चाहिए झूठोंको मुकरनेके लिए॥

इसप्रकारके हलके अशआर निकाल दिये जाते तो बेहतर होता, लेकिन संभव है इन अशआरके दिये जानेका कारण यह भी हो कि मिर्ज़ा जनताको यह बताना चाहते हों कि वातावरणका प्रभाव किसी-न-किसी रूपमें सभीपर पडता है, और मेरे जैसा सुरुचिपूर्ण और उन्नत विचारक भी तत्कालीन दूषित वातावरणसे अपने दामनको अछूता न रख सका। और इसको क्या कहिए कि इस युगमें भी जब कि शाइरी छलाँग मारती हुई कहाँ-से-कहाँ जा पहुँची है, आज भी बहुत-से शाइर इस फीकी बदमजा शाइरीपर सर धुनते हैं।

मिर्ज़ाके यहाँ कुछ कलाम क्लिष्ट और ऐसा भी मिलता है, जिसका अभिप्राय समझना कठिन होता है।

मिर्ज़ा साक़िबने १९वी शताब्दीमें आँखे खोली, और उन्हें उस युगके शाइरोंके रग-ढग देखनेको मिले। बीसवी सदीमें उनकी शाइरी परवान चढी। अतः उनकी शाइरीमें प्राचीन और वर्त्तमान युगका ऐसा खट्टा-मीठा सम्मिश्रण हुआ है कि वह गुड और अमचूर न रहकर शन्तरा बन गई है। यानी उनकी शाइरीमें परम्पराओंका निभाव, छन्द और पिंगलके व्याकरणकी पाबन्दी, साथ ही आधुनिक युगकी सभी समस्याओंकी झलक भी मिलेगी।

प्राचीन परम्पराके अनुसार मिर्ज़ाने भी गुलो-बुलबुल सबंधी अशआर कहे हैं। मगर अपने युगकी स्वतन्त्रताकी माँगको इस खूबीसे व्यक्त किया है कि शेरमें तगज्जुल ज्यों-का-त्यों विद्यमान रहता है, और एक-एक शेरमें भाव ऐसे व्यक्त किये हैं कि गागरमें सागर भर दिया है।

स्वतन्त्रता-आन्दोलनको कुचलनेमें अंग्रेज़ोंने कोई कोर-कसर बाक़ी न रखी। देश-भक्त फाँसी चढ़ाये गये, जेलोंमें सडाये गये, उनके सदेश जनतामें गूंजते ही रहे, उन्हें कोई रोक न सका, इसी भावको मिर्ज़ाने यूँ व्यक्त किया है—

बनके इबरतकी[1] ज़बाँ कहता रहेगा कुछ-न-कुछ।
सहने-गुलशनमें[2] अगर मेरा कोई पर रह गया॥

जेलमे नेता पडे हुए है, अग्रेज सरकार समझती है कि स्वतन्त्रता-आन्दोलन समाप्त कर दिया गया है; परन्तु उसे जनताके हृदयमे दहकती आगका पता नही लगता, वह जनताके अन्तस्थलको छूनेका प्रयत्न ही नहीं करती—

तमाशा सोज़े-दिलका[3] देख जाकर सहने-गुलशनमे।
क़फ़समें हूँ, मगर शोले[4] भड़कते है नशेमनमें॥

ससारमे सुख-दुख, साथ-साथ रहते है। कोई रो रहा है, कोई हँस रहा है। एक उजड रहा है तो दूसरा बन रहा है। इसी भावको मिर्जा यूँ व्यक्त करते है—

रस्मे-दुनिया है, कोई ख़ुश हो कोई नाशाद हो।
जब उजड़ जाये नशेमन तो क़फ़स आबाद हो॥

ज़ाहिर मे हँसोड व्यक्ति अपने जीवनमे कितना अधिक रोता है, यह दुनिया नही जानती। सिनेमा-ससारका प्रसिद्ध हँसोड़ अभिनेता चार्ली चैपलिन, जो दर्शकोंके पेटमे हँसाते-हँसाते बल डाल देता है, कहते है उसे अपने जीवनमे हँसना बहुत कम नसीब हुआ। हास्यरसके लेखकोको अपने हृदयका कितना रस सुखाना पड़ता है, भुक्तभोगी ही जानते है। इन हँसोड व्यक्तियोंका मिर्जाने कितना दयनीय दृश्य उपस्थित किया है—

सुबहको राज़े-गुलो-शबनम[5] खुला। ✓
हँसनेवाले रातभर रोया किये॥

सुभाष बाबू जीवित है या स्वर्गस्थ, यह अभीतक विवादका प्रश्न बना हुआ है। मिर्जाका निम्न शेर देखिए इस जगह कैसा मौजूँ होता है—

ख़ूब था क़िस्सए-क़फ़स[6] सुनते जो मेरे हमनवा[7]।
क़ैदमें हूँ कि मर गया, इसमें भी इख़्तलाफ़[8] है॥

---

[1]नसीहत, आदर्शकी; [2]उपवनके आँगनमे; [3]हृदयकी अग्निका; [4]आगकी लपटे, चिनगारियाँ; [5]फूल और शबनमका रहस्य; [6]बन्दी जीवनकी कहानी; [7]सहयोगी, साथी (सम भाषा-भाषी); [8]मतभेद, विरोध।

भारत-विभाजनके ५-६ माह पूर्व जो देशकी स्थिति थी, उसे देखते हुए स्वतन्त्रताका स्वप्न तो भग हो ही गया था। सप्रदायके मोहमे पड़कर लोग अपने-अपने सप्रदायकी खैर मना रहे थे। देश डूबे या रहे, इसकी सप्रदायवादियोको तनिक भी चिन्ता नही थी। तब मिर्जाका यह शेर हम अक्सर गुनगुनाया करते थे—

हमदम ! चमनकी खैर मना, आशियाँ तो क्या ?
दो-चार दिन अगर यह हवा और चल गई ॥

और बापूकी वह अहिसा, जिसकी साधना वे निरतर ३२ वर्षोंसे करते आ रहे थे, मुस्लिम लीगियोके तनिक-से सकेतपर कितनी बिलखी, यह मिर्जाके ही जबानेमुबारकसे सुनिए—

कल एक जाँ गुदाज़[1] तबस्सुममें[2] बर्क़के[3]।
बरसोंमे जो बसाई थी, बस्ती वोह जल गई ॥

१९४२ ई० मे हजारीबाग जेलसे कुछ सत्याग्रही बन्दियोने श्री जयप्रकाशनारायण आदिको जेलसे भागनेमे सहायता दी, और बाहर निकलनेपर कुछ लोगोने उन्हे अपने यहाँ छिपा लिया। इससे उनपर काफ़ी सख्तियाँ हुई। एक जी हुजूर क़िस्मके सज्जनसे इस बारेमे ज़िक्र आया तो बोले—"नाहक बैठे-बिठाये अपने सरपर आफत बुला ली, क्या जरूरत थी उन्हे यह दर्दे-सर मोल लेनेकी ?" अब मै उन्हे कैसे समझाता कि लुत्फे-असीरी (बन्दी-जीवनका आनन्द) क्या है ? खुद चाहे उम्र भर कफसमे पडा हुआ जान हलाक कर दे, मगर किस तरकीबसे सैयादकी नीदे उचाट हो सकती है, यह हर असीरकी ख्वाहिश होती है। ग़रीबने मिर्जाका यह शेर पढा होता तो जज्बये-असीरी (राजनैतिक कैदियोके मनोभाव) समझ सकता।

कोई छूटा तो असीरीसे,[4] मेरी शुक्रे-खुदा।
मैं क़फ़समें हूँ, मगर नींद उड़ गई सैयादकी ॥

---

[1]हृदयको द्रवी भूत करनेवाली, दिलको पिघलानेवाली; [2]मुसकान, हँसीमे; [3]बिजलीके; [4]कैद रहनेसे।

और सचमुच सुभाष बाबू और जयप्रकाशनारायण आदिके अन्तर्धान हो जानेसे अंग्रेज-शासकोंकी नींदें उड़ गई थीं।

भारत-विभाजनके बाद पंजाब और बंगालसे हिन्दू भारत चले आये। भारतका कुछ हिस्सा कटकर पाकिस्तान कहलाने लगा। मुल्लाओं, नवाबों, किसानों और जमींदारोंमें अस्थायी गठबन्धन हो गया। शिआ-सुन्नी, अहमदी भी घी-खिचड़ी हो गये। यह जाहिरा मिल्लते-इस्लाम परवान चढ़ने लगी। मगर जो दूरअन्देश थे, वे अक्सर मिर्जाका यह शेर गुनगुनाते होंगे—

फूलोंसे तो छुटा मैं, हाँ अब यह देखना है।
कबतक बनी रहेगी, गुलचीं-ओ-बाग़बाँमें?

स्वदेशी-आन्दोलनपर मिर्जाका यह शेर कैसा चस्पाँ होता है? कुछ जी-हुजूर विलायती कपड़ोंमें सजे हुए किसी खद्दरके कपड़े पहने हुए व्यक्तिका मजाक उड़ाते हैं। तो वह गरीब मिर्जाका यह शेर सुनाकर उनकी बोलती बन्द कर देता है—

क़फ़सकी तीलियाँ अच्छी हैं, तिनकोंसे नशेमनके।
यह सब कुछ है मगर, सैयाद! दिलपर क्या इजारा है?

हुस्नो-इश्क़

मिर्जाके यहाँ हुस्नो-इश्कका आसन बहुत ऊँचा है। इश्कके लिए बहुत अधिक साधना और तप करने पड़ते हैं। जो विरहकी आँच बर्दाश्त नहीं कर सकते, ऐसे विषयासक्त इश्क करने योग्य नहीं—

इश्क़में सहल थी फ़रहादकी तक़लीद[1] मगर।
यह मेरी हिम्मते-आलीकी[2] गवारा[3] न हुआ॥

इश्क़ तो वह रंग है कि जिसपर चढ़ा, फिर कभी न उतरा। चाहे

---

[1]अनुकरण, नकल; [2]पवित्र साहसको, उच्च विचारोंको; [3]पसन्द।

मिलनकी बेला हो या विरह-रात्रि, आशिक़ तो दोनों ही हालतोंमें बेचैन रहता है—

विसालो-हिज्रमें छुपता है दिलका हाल कहीं?
बुझे तो प्यास सिवा हो, जले तो बू आये॥

जो अपने मन-मन्दिरमें प्रेम-ज्योति जला लेता है, वह चारों तरफसे किवाड बन्द करके, सुध-बुध खोकर अपने हबीबको निहारता रहता है। मिलनी अपने रामको देखकर बोलनेकी शक्ति बिसार बैठी, और बुद्धि जो थोड़ी-बहुत पास थी, उसे भी खोकर एक टक निहारने लगी। प्रेमके आवेगमें उसे यह भी ध्यान नही रहा कि वह अपने हबीबको जो बेर खानेको दे रही है, वह स्वयं जूठे करके दे रही है। भला जूठी चीज भी किसी मेहमानको खिलाई जाती है? मगर इश्कके तो करिश्मे ही जुदा हैं—

इक लबे-ख़ामोश बनकर इश्क़ गोयाई रहा।
हम्द करता कौन? आलम महवे-यकताई रहा॥

[जिस इश्कमें बोलनेकी शक्ति थी, वह लब सीकर रह गया। प्रेयसीकी प्रशसा करनेकी सामर्थ्य ही कहाँ रही, वह तो उसके यकता हुस्नपर महव होकर रह गया]।

मिर्जा आवारोंकी तरह न तो कूचये-जानाँमें चक्कर लगाते हैं, और न वे दिल फेक तमाशबीनोंकी तरह इश्क़का ढिढोरा पीटते हैं—

उम्र भर जलता रहा दिल और ख़ामोशीके साथ। ५
शमअको इक रातकी सोज़े-दिलीपर नाज़ था॥

जनकपुरीके उद्यानमें घूमते हुए राम-सीता अनजानेमें ही एक-दूसरेको दिल दे बैठे। उनकी समझमें यह नहीं आया कि अचानक यह क्या हो गया। किसीसे पूछ भी नही सकते। भला ऐसा रोग भी कोई किसीपर प्रकट करता है—

दिलने रग-रगसे छुपा रक्खा है, राज़े-इश्क़े-दोस्त!
जिसको कहदे नब्ज़ ऐसी मेरी बीमारी नहीं॥

मिर्जाका हबीब मानवीय न होकर कहीं-कहीं ईश्वरीय नजर आता है—

छुपाओ आपको जिस रंग या जिस भेसमे चाहो।
मगर चश्मे-हक़ीक़तबींसे[1] पर्दा हो नहीं सकता॥
तमाशा चश्मे-दिलसे[2] अहले-इरफां[3] देख ही लेंगे।
किसी पर्देमे हो तसवीरे-जानां[4] देख ही लेंगे॥

मिर्जा इश्कको रुसवाईका बाइस न समझकर उसे जीनत समझते हैं—

'साक़िब'! सियाह ख़ानए-दिलमें[5] यह दागे-इश्क़[6]।
एक चान्द है कि जीनते-काशाना[7] हो गया॥
क्यों मेरे दागे-दिलकी है दुश्मन हवाए-दहर[8]।
ऐसे चिराग़ बुझ नहीं सकते ज़मानेमें॥

मिर्जाका हबीब बाजारी नहीं, अपितु हयापरवर सुशीला नारी है—

उमीदो-बीममें[9] रक्खा तमाम रात मुझे।
कभी नक़ाब उठाई, कभी हिजाब[10] आया॥

मन स्वस्थ होगा तो विचार भी स्वस्थ होंगे। वह अस्वस्थ हुआ तो सब चौपट हुआ। अतः अपने मन-मन्दिरको ऐसा बनाओ कि मन-मूरतको रहनेमे वहाँ असुविधा या सकोच न हो। जब मन-मन्दिरमे ही अँधेरा कर रखा है, तो प्रीतम उसमे कैसे जलवागर होगा?

शामे-ग़म[11] जिसमें रहे बरसों, वहाँ क्या ईद हो? ऽ
वोह तो आजाते मगर, यह दिल ही इस क़ाबिल न था॥

हबीबका तसव्वुर

फैला है हुस्ने-आरिज़े-रोशन[12] नक़ाबमें।
क्या-क्या तड़प रही है, तजल्ली[13] हिजाबमें[14]॥

---

[1]दिव्य दृष्टाओसे; [2]हृदय-नेत्रोसे; [3]ज्ञानी; [4]प्रियतम या प्रियतमा; [5]हृदयके अँधेरे कोनेमे; [6]प्रेम-चिह्न; [7]दिल रूपी मकानकी शोभा, गौरव; [8]ससारकी हवा; [9]आशा-निराशामे; [10]संकोच, लाज; [11]रंज, दुःखरूपी अँधेरा; [12]प्रकाशमान कपोलोंका सौन्दर्य; [13]जलवा, रोशनी, झलक चमक; [14]लाजमे।

शबे - वसलतमें[1] भी इक हिज्रका[2] अन्दाज़ पैदा है।
इधर मैं हूँ, उधर वोह है, हया हाइल[3] है, पर्दा है॥

दीदये-दोस्त[4] तेरी चश्म-नुमाईकी[5] क़सम।
मैं तो समझा था कि दर[6] खुल गया मैख़ानेका[7]॥

वोह उठे अँगड़ाइयाँ लेते हुए।
मैं यह समझा हश्र बरपा[8] हो गया॥

हुस्नके हाथ बँधे तो, वोह ज़रा देर सही।
मुझे पै एहसां तेरी आई हुई अँगड़ाईका॥

अँगडाईमे ही सही, हुस्नके हाथ तनिक-सी देरको बँधे तो ! कितनी अछूती और प्यारी कल्पना है !!

मिर्ज़ाकी भाषा

शाइरीका निर्माण भाषा और भावके सम्मिश्रणसे होता है। केवल एक चीज़से निर्माण नही हो सकता है। शाइरके भाव जब कल्पना-क्षेत्रमे उड़ान भरनेको उद्यत होते है तो भाषा रूपी पख उसकी सहायताको उद्यत होते है। न भावरूपी आत्माके बग़ैर केवल पंख ही उड़ सकते है, न भाषा रूपी पखोंके बिना भाव। दोनोंका आत्मा और शरीर-जैसा सबंध है। जिस शाइरकी भाषा जितनी अधिक अकृत्रिम, रसीली, प्रवाहयुक्त, सरल, सार्थक, लचकदार होगी और भाव मौलिक, उच्च और हृदयस्पर्शी होंगे, वह उतना ही अधिक सफल होगा। आइए पहले मिर्ज़ाकी भाषाकी बहार देखे, मालूम होता है कोई फूल बखेर रहा है।

बहुत-सी उम्र मिटाकर जिसे बनाया था। ७
मकाँ वोह जल गया, थोड़ी-सी रोशनीके लिए॥

---

[1]मिलन-रात्रिमे; [2]विरहका; [3]बीचमे अड़ी हुई है; [4]प्रियतमाकी आँख; [5]धमकीकी; [6]द्वार; [7]मदिरालयका; [8]प्रलय आ गई।

वही रात मेरी, वही रात उनकी।
कहीं बढ़ गई है, कहीं घट गई है॥

लूटनेवाले हमारी नींदके।
किस मज़ेसे रातभर सोया किये॥

ग़मे-ज़िन्दगी जा-बजा हो रहा है।
अरे मरनेवालो! यह क्या हो रहा है?

इश्क़में दिल गँवाके हाल यह है।
कुछ में खोया हुआ-सा रहता हूँ॥

हिचकियोंसे राज़े-उल्फ़त खुल गया।
आगई मुँहपर जो दिलमें बात थी॥

कहाँतक जफ़ा हुस्नवालोंकी सहते।
जवानी जो रहती तो फिर हम न रहते॥

हँसके भी रोके भी कहा लेकिन।
मतलबे-दिल कभी अदा न हुआ॥
हसरते-ज़ब्ह रह गई 'साक़िब'!
यह फ़रीज़ा मेरा अदा न हुआ॥

यास-ओ-उम्मीदके माबैन हुई ख़त्म हयात।
एकने शाद किया, एकने नाशाद किया॥

गुलशनमें कहीं बूए-बमसाज़ नहीं आती।
अल्लाहरे सन्नाटा! आवाज़ नहीं आती॥
बरगश्ता हुई दुनिया रस्मो-रहे-उल्फ़तसे।
इक मेरी तबीअ़त है, जो बाज़ नहीं आती॥

ज़माना बड़े शौक़से सुन रहा था।
हमीं सोगये दास्ताँ कहते-कहते॥

उक्त कलाम पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि ऐसे अशआर तो हम भी कह सकते है। मगर तबअ् आज़माई करनेपर पता चलता है कि यह कितना बडा आर्ट है।

मिर्जाको 'मीर' जैसी जबान अता हुई है, और गालिब-जैसी उच्च भाव-प्रदर्शनकी क्षमता। आपको लोग मीर-ओ-गालिबका जाँनशीन कहते है।

लेकिन मिर्जाने नम्रतापूर्वक इस प्रसिद्धिके सबधमे १९३४ मे फ़र्माया था—"छप्पन साल शाइरीकी खिदमत की, इस तवील मुद्दतमे यह कोशिश रही कि जबान 'मीर' की और तर्ज़ेयुल 'गालिब'का-सा हो। मालूम नही यह सई मशकूर हुई या गैर मशकूर।'''' इतनी उम्रमे सिर्फ इतना-सा खयाल करनेका गुनहगार हूँ कि शायद चन्द शेर उन दोनों बा-कमालोके रगमे नज़्म हो सके है। दुनिया इस जुर्मको माफ़ कर दे तो उसका एहसान है।

जाँ नशीनी मीरो-ग़ालिबकी कहाँ, और मै कहाँ?
वोह ख़ुदाए-फ़न थे, उनसे मुझको निसबत कुछ नहीं[1]॥

मुहावरोंका प्रयोग

मिर्ज़ाकी ज़बान लखनऊकी टकसाली ज़बान है, और वह 'मीर' के व्यथापूर्ण रसमे डूबी हुई। शब्दोंकी सादगी, उपमाओंकी झड़ी, मुहावरोंकी बन्दिश, भाषाका प्रवाह, और भावोंकी बुलन्दी—यह सब मिलकर मिर्ज़ाके कलाममे ऐसे घुल-मिल जाते है कि कुछ न पूछिए। उपरोक्त अशआरमे भाषाका सारल्य और लालित्य तो देखा, आगे दो-चार मुहावरोंका प्रयोग मुलाहिज़ा हो।

मुँहपर हाथ रखना, मुहावरा है, जो चुप करनेके स्थानपर बोला जाता है। निम्न शेरमे यह मुहावरा देखिए किस सलीक़ेसे नज़्म हुआ है—

---

[1] अर्ज़ेहाल दीवाने-साकिब, पृ० ७।

लहदपर चलनेवाले थम कि हम कुछ कह नहीं सकते।
जमीं रखती है मुंहपर हाथ जब फ़रियाद करते हैं॥

किसी वस्तुपर तकिया करना, भरोसा करनेके स्थानपर बोला जाता है—

बाग़बाँने आग दी जब आशियानेको मेरे।
जिनपै तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे॥

जामेसे बाहर हो जाना, यानी आपेसे बाहर हो जाना, अपने ऊपर अख्तियार न रखना, इस मुहावरेने क्या लुत्फ़ पैदा किया है—

वोह उलटकर जो आस्तीं निकले।
जुल्म जामेसे अपने बाहर था॥

दम लेना, यह मुहावरा ठहरनेकी जगह बोला जाता है—

इश्क़के बाद अब हवादिसको[1] जरूरत क्या रही।
आस्माँ दम ले, मेरे मरनेका सामाँ हो गया॥

तुलनात्मक कलाम

अब तक मिर्ज़ाकी भाषाके चटखारे लिये। अब आइए हम आपको मीर, दर्द, ग़ालिब आदिके साथ मिर्ज़ाके भावोद्यानकी सैर कराये। ताकि आप जान सकें कि शाइरीमे मिर्ज़ाका आसन कितना ऊँचा है। वे किस जाँफ़िशानीसे उर्दूके अमर कलाकारोंके शाने-ब-शाने चलनेका प्रयत्न करते रहे और किस हदतक सफल हुए। यहाँ कुछ तुलनात्मक अशआर सैयद अकबरअलीद्वारा सकलित दीवाने-साकिबसे साभार दिये जा रहे हैं—

मीर—
उसके फ़रोग़े-हुस्नसे झमके है सबमें नूर।
शमए-हरम[2] हो या कि दिया सोमनाथका॥

---

[1]मुसीबतोंको; [2]मस्जिदका दीपक।

साक़िब— बताइए, रहेगी शमअ़ किस तरह हिजाबमें?
यह क्या समझके हुस्नको छुपा दिया नक़ाबमें॥

ज़ौक़— तुझे हमने बहुत ढूंडा न पाया।
अगर पाया तो खोज अपना न पाया॥

ग़ालिब— थक-थकके हर मुक़ामपै दो-चार रह गये।
तेरा पता न पायें तो नाचार[1] क्या करें?

अमीर— उसकी हसरत[2] है, जिसे दिलसे भुला भी न सकूं।
ढूंडने उसको चला हूँ, जिसे पा भी न सकूं॥

साक़िब— अपनी क़िस्मतसे बिगड़ जाऊँ कि दौरे-चर्ख़से[3]।
मैं तो वोह ढूंढा किया जो जेबे-दुनियामें[4] न था॥

ग़ालिब— मेरी तअ़मीरमें मुज़मिर है इक सूरत ख़राबीकी।
हयूला बर्क़े-ख़िरमनका है ख़ूने-गर्म दहक़ाँका[5]॥

साक़िब— अपने ही दिलकी आगमें आख़िर पिघल गई।
शमए-हयात[6] मौतके साँचेमें ढल गई॥

दर्द— हो गया मेहमाँ सराए[7]-कसरते-मौहूम[8] आह!
वोह दिले-ख़ाली[9] जो तेरा ख़ास ख़िलवतख़ाना[10] था॥

साक़िब— जो कुछ हुआ आलममें, होता न तो क्या होता?
बहतर था बिगड़नेको यह दिल न बना होता॥

---

[1]बेचारे, असमर्थ; [2]अभिलाषा; [3]आस्मानके चक्रसे; [4]विश्वके पास; [5]मेरे निर्माणमे ही मेरे विनाशके तत्त्व निहित है। किसानके घोर परिश्रममे ही बिजलीके वे तत्त्व समाये हुए है, जो उसके अनाजके ढेरको जला देते है। तात्पर्य यह है कि हमारी समृद्धि और सुखके सामानोंमे हमारे विनाशके तत्त्व छिपे हुए है; [6]जीवन-दीप; [7]अतिथि गृह; [8]वहमकी अधिकतासे; [9]रिक्त हृदय; [10]एकान्तवास। (जिस मन-मंदिरमें केवल एक ईश्वरका रूप समाया था वहाँ अब करोड़ों देवता बास करते हैं)।

दर्द— वाये नादानी कि वक़्ते-मर्ग यह साबित हुआ।
ख़्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफ़साना था॥

साक़िब— अफ़सोस है कि उम्रे-फ़ानीने[1] ख़त्म होकर।
मुझको वही बताया जिसको मैं जानता था॥

क़ायम— क़िस्मत तो देखिए कि कहाँ टूटी है कमन्द।
कुछ दूर अपने हाथसे जब बाम[2] रह गया॥

साकिब— मेरी क़ैदका दिलशिकन[3] माजरा था।
बहार आई थी आशियाँ बन चुका था॥

सौदा— ऐ हमसफ़ीर[4]! फ़ायदा नाहक़के शोरका?
हम तो क़फ़समें आनके ख़ामोश हो गये॥

साक़िब— क़फ़समें चुप न रहूँ तो मैं क्या करूँ कि यह क़ैद।
न दोस्तीके लिए है न दुश्मनीके लिए॥

दर्द— जगमें कोई न टुक हँसा होगा।
कि न हँसते ही रो दिया होगा॥

साकिब— शादीमें भी कुछ ग़मके पहलू निकल आते हैं।
बे-साख़्ता हँसनेमें आँसू निकल आते हैं॥

दर्द— गो नाला ना-रसा[5] हो, न हो आहमें असर।
मैंने तो दर ग़ुज़र न की जो मुझसे हो सका॥

साकिब— शुक्रगुज़ार दर्द हो, दिलकी ख़बर पहुँच गई।
तू जो नहीं, नहीं सही, नाला तो बारयाब[6] है॥

---

[1]मिटनेवाली जिन्दगी, नश्वर शरीरने; [2]प्रेयसीकी छतकी मुँडेर; [3]हृदयको व्यथित करनेवाला; [4]यक्साँ बोली बोलनेवाले, साथी; [5]प्रेयसीतक न पहुँचनेवाला; [6]प्रेयसीतक पहुँचनेमें सफल।

दर्द— आती है दिलमें और ही सूरत नजर मुझे।
शायद यह आइना भी किसीके हुजूर है॥
साक़िब— हटे यह आइना महफ़िलसे और तू आए।
कोई तो हो जो मेरे दिलके रूबरू आए॥

मीर— जो इस शोरसे 'मीर' रोता रहेगा।
तो काहेको हमसाया[1] सोता रहेगा॥
साकिब— हिज्रकी शब नालएदिल[2] वोह सदा देने लगे।
सुनने वाले रात कटनेकी दुआ देने लगे॥

दर्द— हस्तीने तो टुक जगा दिया था।
फिर खुलते ही आँख सो गये हम॥
साक़िब— उम्र भर ग़फ़लत रही हस्तीए-बे-बुनियादसे[3]।
उठ गये इक नींद लेकर आलमे-ईजादसे[4]॥

दर्द— वाइज़! किसे डराये है, यौमुल-हिसाबसे[5]।
गिरया[6] मेरा तो नामए-अअ्माल[7] धो गया॥
साक़िब— इस तरह पाक किया अश्केनदामतने[8] मुझे।
इससे पहले कभी जैसे मैं गुनहगार न था॥

दर्द— बला है नशए-दुनिया[9], कि ता-क़यामत[10] आह।
सब अहले-क़ब्र[11] उसीका खुमार[12] रखते हैं॥
साक़िब— क्या चीज है हयात[13] कि मरनेके बाद भी।
जो चुप हुआ वोह गोश-बर[14] आवाजे-सूर[15] था॥

---

[1]पड़ोसी; [2]दिलकी आहें, हृदयकी चीत्कार; [3]निःसार जीवनसे; [4]संसारसे; [5]कर्मोंका लेखा लेनेके लिए नियत किया हुआ दिन; [6]रुदन; [7]कर्म-लेख; [8]पश्चात्तापके आँसुओंने; [9]संसार आसक्तिका नशा; [10]प्रलयतक; [11]क़ब्रमें पड़े हुए मृतक; [12]नशा, खयाल; [13]जिन्दगी; [14]कर्णमय, सुननेको उत्सुक; [15]नरसिंहा बाजेकी आवाज़पर।

दर्द— जिन्होंके दिलमें जगह की है नक़्शे-इबरतने[1]।
सदा नज़रमें वोह लौहे-मज़ार[2] रखते हैं॥
साकिब— नज़दीक समझ, हश्र हो या पैके-अजल हो।
मिलना जिसे मंज़ूर है वोह दूर नहीं है॥
इबरते-दहर[3] हो गया जबसे छुपा मज़ारमें।
ख़ैर जगह तो मिल गई दीदए-एतबारमें[4]॥

दर्द— कीजिए क्या, आह किधर जाइए।
छूटिए इस दुःखसे जो मर जाइए॥
ज़ौक— अब तो घबराके यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे॥
साकिब— एक दम था जो किसी सूरत निकलता हो न था।
इश्क़के हाथोंसे यह मुश्किल भी आसाँ हो गई॥

दर्द— गर मअ्रिफ़तका[5] चश्मेबसीरतमें[6] नूर है।
तो जिस तरफ़को देखिए उसका ज़हूर[7] है॥
साकिब— छुपाओ आपको जिस रंग या जिस भेसमें चाहो।
मगर चश्मे-हक़ीक़तबींसे[8] पर्दा हो नहीं सकता॥

दर्द— बस है यही मज़ारपै मेरे कि गाह-गाह।
जाए-चिराग़[9] कोई दिले-मेहरबाँ[10] जले॥
साकिब— बहुत-से याद हैं महफ़िलके बैठनेवाले।
कभी तो भूलके कोई सरे-मज़ार आये॥

---

[1]नसीहत या खौफने; [2]मृत्युका ध्यान (क़ब्रके सिरहाने गड़ा हुआ पत्थर, जिसपर मृतकके नामके अतिरिक्त कुछ शिक्षाप्रद शब्द भी अंकित रहते हैं); [3]जिससे दुनिया सबक़ हासिल कर सके; [4]विश्वासभरी आँखोंमें; [5]ईश्वरीय; [6]दिव्य दृष्टिमें; [7]प्रकाश, अस्तित्व; [8]दिव्य दृष्टिसे; [9]दीपकके बजाय; [10]हितैषी-हृदय।

दर्द— हमने तो एक मआ़सियत[1] चाही छुपे न छुप सकी।
अपने गुनाहको तेरा अ़फ़ूही[2] पर्दापोश है॥
साक़िब— पर्दा-पोशीपै तेरे नाज़ है ऐ ज़र्रा-नवाज़!
हश्रमें ढाँप लिया मुँह मेरा रुसवाईने॥
दर्द— मआलकार सुझाया क़ब्रने[3] हमको।
यह नक़्द माल लगा हाथ इस दफ़ीनेसे[4]॥
साक़िब— रोशनी डालके दुनियाका दिखाता था मआल[5]।
यह चिराग़े-सरे-तुरबत मेरा बेकार न था॥

दर्द— मुझे यह डर है दिले-ज़िन्दा तू न मर जाये।
कि ज़िन्दगानी इ़बारत[6] है तेरे जीनेसे॥
साक़िब— दिले-मुर्दा कभी जीनेका तलबगार[7] न था।
होशियारीको समझता था पै हुशियार न था॥
ज़िंदगी अच्छी सही, लेकिन इसे समझे तो कौन?
दिल नहीं तो आ़लमे-ईजादमें[8] क्या रह गया?

मीर— मरता था मैं तो बाज़ रखा मरनेसे मुझे।
यह कहके—"कोई ऐसा करे है, अरे! अरे!!"
गालिब— मैंने चाहा था कि अन्दोहे-वफ़ासे[9] छूटूं।
वोह सितमगर मेरे मरनेपै भी राज़ी न हुआ॥
साक़िब— दर्दसे इक आह भी करने नहीं देते मुझे।
मौत है आसां मगर मरने नहीं देते मुझे॥

---

[1]पाप-गुनाहगारी, भूल; [2]दरगुज़र, क्षमाशीलता; [3]क़ब्रोने; [4]खज़ानेसे; [5]परिणाम; [6]दिल शब्द है और जीवन वाक्य है, यदि शब्द नही तो फिर वाक्यका अस्तित्व नही; [7]इच्छुक; [8]ससारमें; [9]सुशीलताके ग़मसे।

ग़ालिब— कोई वीरानी-सी वीरानी है।
दश्तको[1] देखके घर याद आया॥

साक़िब— वीराना जहाँ देख लिया राहे-सफ़रमें।
बढ़ता हूँ उसी सिम्तको[2] शायद मेरा घर हो॥

ग़ालिब— नाले अदममें चन्द हमारे सुपुर्द थे।
जो वाँ न खिंच सके सो वोह याँ आके दम हुए॥

साक़िब— वोह रूहबख़्शो-जाँ[3] थे, जाँकाह[4] बनके निकले।
कुछ दम[5] थे पास मेरे जो आह बनके निकले॥

मालिब— क़ैदे-हयात, बन्दे-ग़म, अस्लमें दोनों एक हैं।
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाए क्यों?

साक़िब— उक़्दाहाये ग़मसे वाबस्ता है अपनी ज़िन्दगी।
हम कहाँ? यह मुश्किलें जिस वक़्त आसाँ हो गईं॥

ग़ालिब— हमने माना कि तग़ाफ़ुल न करोगे लेकिन—
ख़ाक हो जायेंगे हम तुमको ख़बर होनेतक॥

साक़िब— सद्द हादिसए-दहरकी[6] टूटी न अजलसे[7]।
जाती नहीं उनतक मेरे मरनेकी ख़बर भी॥

मीर— दुनियाकी क़द्र क्या जो तलबगार हो कोई।
कुछ चीज़ माल हो तो ख़रीदार हो कोई॥

साकिब— उरूसे-दहरको[8] दिल देके आज़माऊँ क्या?
सँवारनेमें जो बिगड़े उसे बनाऊँ क्या?

मीर— अबकी जुनूंमें फ़ासिला शायद न कुछ रहे।
दामनके चाक और गरेबाँके चाकमें॥

साक़िब— रास्ता वहशतको आख़िर मिल गया तंगोमें भी।
यह गरेबाँ था कि दो हाथोंमें दामाँ हो गया॥

---

[1]जंगलको; [2]तरफको; [3]जान या आत्माको प्रफुल्ल करनेवाले; [4]जान लेवा; [5]स्वाँस; [6]ससारके कष्टोंकी दीवार; [7]मृत्युसे; [8]ससाररूपी दुलहिनको।

मीर— दीदनी[1] है शिकस्तगी[2] दिलकी।
क्या इमारत ग़मोंने ढाई है॥
साक़िब— हम जभी समझे थे अंजाम कि जब फ़ितरतने।
ख़ाक और ख़ूनसे तैयार किया ख़ूने-दिल॥

मीर— हम कहते थे यूँ कहते, यूँ कहते जो वोह आता।
यह कहनेकी बातें थीं, कुछ भी न कहा जाता॥
साकिब— बयाने-हालका[3] नैरंगे-इश्क़ दुश्मन है।
इधर वोह सामने आये, उधर गिला[4] न रहा॥
उनकी बज़्मे-नाज़में तो सांस भी दिलने न ली।
नालाकश बरसोंका इक तसवीर बनके रह गया॥

मीर— 'मीर' साहबसे ख़ुदा जाने हुई क्या तक़सीर[5]।
जिससे इस ज़ुल्मे-नुमायांके[6] सज़ावार हुए॥
ग़ालिब— हद चाहिए सज़ामें उक़ूबतके[7] वास्ते।
आख़िर गुनाहगार हूँ, काफ़िर[8] नहीं हूँ मैं॥
साकिब— या न था उनके सिवा दहरमें[9] ज़ालिम कोई।
या सिवा मेरे कोई और गुनहगार न था॥

मीर— तेरा है वहम कि मैं अपने पैरहनमें[10] हूँ।
निगाह ग़ौरसे कर मुझमें कुछ रहा भी है?
साक़िब— यह ज़ौक़का आ़लम[11] है कि तक़दीरका लिक्खा।
बिस्तरपे हूँ मैं या कोई तसवीर पड़ी है॥

---

[1]देखने योग्य; [2]दिलकी ख़स्ताहाली; [3]अपनी स्थिति बयान करनेका; [4]शिकायत; [5]अपराध; [6]ज़ाहिरासितमके; [7]सख़्तीके लिए, दुःखके लिए; [8]नास्तिक; [9]संसारमें; [10]लिबासमें; [11]रुचिकी परिस्थित।

मीर— आगे किसूके क्या करें दस्ते-तमअ[1] दराज़[2]।
यह हाथ सो गया है सिरहाने धरे-धरे॥

साक़िब— अपना-सा ज़ोर करके थके मुन्अ़िमाने-दहर[3]।
मुट्ठी न खुल सकी मेरे दस्ते-सवालकी॥

मीर— हाले-बद[4] गुफ़्तनी[5] नहीं अपना।
तुमने पूछा तो मेहर्बानी की॥

साक़िब— किस मुंहसे ज़बां करती इज़हारे-परेशानी[6]।
जब तुमने मेरी हालत सूरतसे न पहचानी॥

मीर— पोशीदा[7] राज़ेइश्क़[8] चला जाये था सो आज।
नातावानीने[9] दिलका वोह, पर्दा उठा दिया॥

साक़िब— गिरने लगी है क़ीमते-दिल आंसुओंके साथ।
किसने उलट दिया वरक़े-एअ़तबारको[10]?

मीर— आह हर ग़ैरसे ताचन्द[11] कहूँ दिलकी बात।
इश्क़का राज़[12] तो कहते नहीं महरमसे[13] भी॥

साक़िब— दिलने रग-रगसे छुपा रक्खा है तेरा राज़े-इश्क़।
जिसको कहदे नब्ज़ ऐसी मेरी बीमारी नहीं॥

मीर— दिलके तईं आतिशे-हिजरांसे[14] बचाया न गया।
घर जला सामने और हमसे बुझाया न गया॥

साक़िब— मुख़्तार है बन्दा कोई मजबूर नहीं है।
फिर क्या है जो दिलपर मेरा मक़दूर[15] नहीं है॥
हवास,[16] सोज़े-ग़मे[17] दिलकी ताब ला न सके।
वोह आग घरमें लगी थी कि हम बुझा न सके॥

---

[1]अभिलाषापूर्ण हाथ; [2]लम्बा, पसारना; [3]ससारके धनिक; [4]बुराहाल; [5]कहने योग्य; [6]परेशानियोंका वर्णन; [7]गुप्त, छिपा हुआ; [8]प्रेमका भेद; [9]निर्बलता, कमज़ोरीने; [10]विश्वासरूपी पृष्ठको; [11]कितनी भी; [12]भेद; [13]अन्तरंग साथीसे; [14]विरहाग्निसे; [15]क़ाबू; [16]औसान; [17]दुःखरूपी अग्निकी।

मीर— दीदनी[1] है शिकस्तगी[2] दिलकी।
क्या इमारत ग़मोंने ढाई है॥
साक़िब— हम जभी समझे थे अंजाम कि जब फ़ितरतने।
ख़ाक और ख़ूनसे तैयार किया ख़ूने-दिल॥

मीर— हम कहते थे यूँ कहते, यूँ कहते जो वोह आता।
यह कहनेकी बातें थीं, कुछ भी न कहा जाता॥
साक़िब— बयाने-हालका[3] नैरंगे-इश्क़ दुश्मन है।
इधर वोह सामने आये, उधर गिला[4] न रहा॥
उनकी बज़्मे-नाज़में तो सांस भी दिलने न ली।
नालाकश बरसोंका इक तसवीर बनके रह गया॥

मीर— 'मीर' साहबसे ख़ुदा जाने हुई क्या तक़सीर[5]।
जिससे इस ज़ुल्मे-नुमायांके[6] सज़ावार हुए॥
ग़ालिब— हद चाहिए सज़ामें उक़ूबतके[7] वास्ते।
आख़िर गुनाहगार हूँ, काफ़िर[8] नहीं हूँ मैं॥
साक़िब— या न था उनके सिवा दहरमें[9] ज़ालिम कोई।
या सिवा मेरे कोई और गुनहगार न था॥

मीर— तेरा है वहम कि मैं अपने पैरहनमें[10] हूँ।
निगाह ग़ौरसे कर मुझमें कुछ रहा भी है?
साक़िब— यह ज़ौक़का आलम[11] है कि तक़दीरका लिक्खा।
बिस्तरपै हूँ मैं या कोई तसवीर पड़ी है॥

---

[1]देखने योग्य; [2]दिलकी खस्ताहाली; [3]अपनी स्थिति बयान करनेका; [4]शिकायत; [5]अपराध; [6]ज़ाहिरासितमके; [7]सख़्तीके लिए, दुःखके लिए; [8]नास्तिक; [9]संसारमे; [10]लिबासमे; [11]रुचिकी परिस्थित।

मीर— आगे किसूके क्या करें दस्ते-तमअ[1] दराज[2]।
यह हाथ सो गया है सिरहाने धरे-धरे॥

साक़िब— अपना-सा ज़ोर करके थके मुन्अ़िमाने-दहर[3]।
मुट्ठी न खुल सकी मेरे दस्ते-सवालकी॥

मीर— हाले-बद[4] गुफ़्तनी[5] नहीं अपना।
तुमने पूछा तो मेहर्बानी की॥

साक़िब— किस मुंहसे ज़बां करती इज़हारे-परेशानी[6]।
जब तुमने मेरी हालत सूरतसे न पहचानी॥

मीर— पोशीदा[7] राज़ेइ़श्क़[8] चला जाये था सो आज।
नातावानीने[9] दिलका वोह, पर्दा उठा दिया॥

साक़िब— गिरने लगी है क़ीमते-दिल आँसुओंके साथ।
किसने उलट दिया वरक़े-एअ़तबारको[10]?

मीर— आह हर ग़ैरसे ताचन्द[11] कहूँ दिलकी बात।
इ़श्क़का राज़[12] तो कहते नहीं महरमसे[13] भी॥

साकिब— दिलने रग-रगसे छुपा रक्खा है तेरा राज़े-इ़श्क़।
जिसको कहदे नब्ज़ ऐसी मेरी बीमारी नहीं॥

मीर— दिलके तईं आतिशे-हिज्रांसे[14] बचाया न गया।
घर जला सामने और हमसे बुझाया न गया॥

साक़िब— मुख़्तार है बन्दा कोई मजबूर नहीं है।
फिर क्या है जो दिलपर मेरा मक़दूर[15] नहीं है॥
हवास,[16] सोज़े-ग़मे[17] दिलकी ताब ला न सके।
वोह आग घरमें लगी थी कि हम बुझा न सके॥

---

[1]अभिलाषापूर्ण हाथ; [2]लम्बा, पसारना; [3]संसारके धनिक; [4]बुराहाल; [5]कहने योग्य; [6]परेशानियोंका वर्णन; [7]गुप्त, छिपा हुआ; [8]प्रेमका भेद; [9]निर्बलता, कमज़ोरीने; [10]विश्वासरूपी पृष्ठको; [11]कितनी भी; [12]भेद; [13]अन्तरग साथीसे; [14]विरहाग्निसे; [15]क़ाबू; [16]औसान; [17]दुःखरूपी अग्निकी।

दर्द— तुझमें कुछ देखा न हमने जुज़जफ़ा[1]।
पर्दा क्या कुछ था कि जीको भा गया॥

साक़िब— जफ़ा उठानेकी आदत पड़ी तो क्योंकर जाय?
सितम सहे, मगर इतने कहाँ कि जी भर जाय॥

दर्द— मेरी-सी नालातराशी न कर सका फ़रहाद।
अगर्चे उसने भी इक उम्र तेशारानी[2] की॥

साक़िब— दिले-ग़मनाक ऐसा है कि दर्द ईजाद[3] करता है।
ज़माना रो रहा है यू कोई फ़रियाद करता है॥

ग़ालिब— है आदमी बजाये ख़ुद इक महशरे-ख़याल।
हम अंजुमन समझते हैं ख़िलवत ही क्यों न हो॥

साक़िब— आओ तो हम दिखाये तुम्हे इक नया जहाँ।
आबाद है ख़यालमें दुनिया विसालकी॥

दर्द— उठती नहीं है ख़ानए-ज़ंजीरसे[4] सदा[5]।
देखो तो क्या सभी यह गिरफ़्तार सो गये॥

साक़िब— क़ाबिले-जुम्बिश था जबतक रो चुकीं कड़ियाँ मुझे।
आज सन्नाटा पड़ा है ख़ानए-ज़ंजीरमें॥

दर्द— हम इतनी उम्रमें दुनियासे हो गये बेज़ार।
अजब है ख़िज्रने क्योंकरके ज़िन्दगानी की?

साक़िब— यहाँ दम भरका जीना भी है दूभर।
कोई ख़ुश होगा उम्रे-जाविदाँसे[6]॥

ग़ालिब— दहरमे[7] नक़्शे-वफ़ा[8] वजहे-तसल्ली न हुआ।
है यह वोह लफ़्ज़ कि शरमिन्दए-मअनी न हुआ॥

साक़िब— उभरा हुआ न देखा नक़्शे-वफ़ा किसीका।
ख़ुद दिल मिला न कोई इस लफ़्ज़े-बे-निशाँसे॥

---

[1]सितमके सिवा; [2]कुदालमे पहाड तोडकर नहर निकाली; [3]आविष्कार; [4]जजीरकी कडियोमे; [5]आवाज; [6]अमर जीवनसे; [7]ससारमे; [8]निभानेका चिह्न।

दर्द— 'दर्द' अपने हालसे तुझे आगाह क्या करे? ऽ
जो साँस भी न ले सके वोह आह क्या करे?
साकिब— ख़मोशीपर मेरे क्यों बदगुमानी है मेरे दिलसे?
वोह क्या नाले करे जो साँस भी लेता हो मुश्किलसे॥

दर्द— कोई भी शख़्स उसका मारा हुआ न पनपा।
दिल मत कहो लगाना उलफ़त बुरी बला है॥
साकिब— तड़पना किसका देखोगे, जो ज़िन्दा हूँ तो सब कुछ हो।
बलाए-इश्क़का मारा कभी बिस्मिल नहीं होता॥

दर्द— दिल भी तेरा ही ढंग सीखा है।
आनमे कुछ है, आनमे कुछ है॥
साकिब— हरदम है अब नई ख़लिशे-ग़म[1] कि दिल मेरा।
सूरतनुमा - ए - जलवए - जानाना[2] हो गया॥

ग़ालिब— हैफ़ उस चार गिरह कपड़ेकी क़िस्मत 'ग़ालिब'!
जिसकी क़िस्मतमे हो आशिक़का गरेबाँ होना॥
साकिब— हाथोंकी ख़ता हो कि मुक़द्दरकी जफ़ा हो।
जो चाक न होता वो गरेबाँ नहीं देखा॥

शहनशाहहुसेन रजवीद्वारा सकलित कुछ तुलनात्मक अशआर—

दर्द— पड़ी है ख़ाकपर यह लाश उस रश्के-शहीदाँकी[3]।
लहूके आँसुओं रोया है जिसको देखकर ख़ूनी॥
साकिब— हमारी दास्तानेग़म रुलाती है ज़माने को।
वोह हम हैं जो ज़बाने-ग़ैरसे फ़रियाद करते हैं॥

---

[1]दुःखकी फाँस; [2]प्रेयसीकी छटा दिखानेवाला; [3]शहीदोंकी ईर्ष्या योग्य।

दर्द— अश्कने मेरे मिलाये कितने ही दरियाके पाट।
दामने-सहरामें[1] वर्ना इस क़दर कब घेर था?

साक़िब— वोह काँटे जिनको चुन लाया हूँ मैं वादीए-वहशतसे[2]।
निकालूंगा अगर वुसअ़त[3] हुई सहराके दामनमें॥

दर्द— बाद मरनेके भी वोह बात नहीं आती नज़र।
जिस तवक़्क़ोअ़[4] पै कि हम अब तई[5] याँ जीते हैं॥

साक़िब— परदए-हश्र उठा फिर भी तमन्ना है बईद[6]।
काम मुश्किल था जो मरनेपै भी आसाँ न हुआ॥

दर्द— कबतक आँसू कोई पिये जाये?
इस मुहब्बतने जी बहुत खाया॥

साक़िब— जब ख़ूनमें है जोश तो पी जाइये क्योंकर?
ज़ख़्मोंका लहू बाद-ए-अंगूर[7] नहीं है॥

दर्द— आगे जो बला आई थी सो दिलपै टली थी।
अबकी तो मेरी जान ही पै आन बनी है॥

साक़िब— या इलाही कौन-सी बिजली गिरी थी बाग़में।
जो नशेमनसे सरककर मेरे दिलपर आगई॥
शबे-फ़िराक़,[8] मैं दिल फूंककर सहर[9] की थी।
शबे-मज़ार[10] तो वह भी नहीं, जलाऊँ क्या?

दर्द— बाद मरनेके मेरे होगी मेरे रोनेकी क़द्र।
तब कहा कीजिएगा लोगोंसे—"वोह बरसातें कहाँ?"

साक़िब— मिट चुके यह दिल तो फिर पूछें मिज़ाजे-हुस्ने-दोस्त।
सैद ही[11] नाबूद[12] हो तो किस लिए सैयाद हो॥

---

[1]जगलके बिस्तारमें; [2]उन्मादकी घाटीसे या उन्मादावस्थामें; [3]विस्तीर्णता; [4]आशापर; [5]अबतक; [6]दूर; [7]अंगूरी शराब; [8]विरह-रात्रिमें [9]सुबह; [10]क़ब्रके अँधेरेमें; [11]जिसका शिकार किया जाय; [12]अस्तित्वहीन

गालिब— बेदरो-दीवार-सा इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया[1] न हो और पासबाँ[2] कोई न हो॥

साकिब— वीराना ही अच्छा है कि वीराँ तो न होगा।
घर हो तो न दीवार हो उस घरमें, न दर हो॥

मीर— बार-हा[3] बादोंकी रातें आइयाँ।
तालओंने[4] सुबह कर दिखलाइयाँ॥

मुसहफी— शाहिद[5] रहियो तू ऐ शबे-हिज्र[6]!
झपकी नहीं आँख 'मुसहफ़ी'की॥

साकिब— उम्रभर जलता रहा दिल, और खामोशीके साथ।
शमअको इक रातकी सोज़े-दिलीपर[7] नाज़[8] था॥
सहरको[9] भी मेरी महफ़िलमें बरहमी[10] न हुई।
तमाम रात हुई, दर्दमें कमी न हुई॥

मूनिस— शब[11] जो ज़िंदाँमें[12] हुई ताज़ा गिरफ़्तारोंको।
सर वोह टकराये कि दर[13] कर दिया दीवारोंको॥

साक़िब— शबको ज़िन्दाँमें मेरा सर फोड़ना अच्छा हुआ।
आज कुछ-कुछ रोशनी आने लगी दीवारसे॥

नफीस— अपने ही अज़ानें[14] की आख़िरको हमसे दुश्मनी।
दोस्तोंकी दोस्तीका हाल हमपर खुल गया॥

साक़िब— बाग़बाँने आग दी जब आशियानेको मेरे।
जिनपे तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे॥

ग़ालिब— समझके करते हैं बाज़ारमें वोह पुरसिशेहाल[15]।
कि यह कहे कि सरे-रहगुज़र[16] है क्या कहिए॥

साक़िब— कब उसने की है पुरसिशेग़महाय-जाँगुसल।
जब हाले-दिल बयानके क़ाबिल नहीं रहा॥

---

[1]पड़ोसी; [2]रक्षक चौकीदार; [3]बार-बार; [4]भाग्यने; [5]साक्षी; [6]विरहरात्रि; [7]दिलजलानेपर, जलनपर; [8]घमण्ड; [9]सुबहको; [10]नाराज़ी; [11]रात्रि; [12]बन्दीगृहमें; [13]दर्वाजा; [14]इन्द्रियोंने; [15]हाल पूछते हैं; [16]रास्ता है।

दर्द— वहदतने[1] हर तरफ़ तेरे जलवे दिखा दिये।
पर्दे तअय्युनातके[2] जो थे उठा दिये॥

साक़िब— शबेग़मकी तनहाइयोंको न पूछो।
जिधर देखता था ख़ुदा ही ख़ुदा था॥
इज़ाफ़ा[3] कुछ न हो अपने यक़ींमें।
अगर उठ जाये पर्दा दरमियाँ से॥

दर्द— पूछ मत काफ़िलए-इश्क़[4] किधर जाता है।
राहरव[5] आपसे उस रहमें गुज़र जाता है॥

साकिब— ऐ किर्दिगारे[6]-इश्क़! किधर जा रहा हूँ मैं।
हर सिम्त यह सदा है कि "दीवाना हो गया"॥

दर्द— हर आह[7] शररबार[8] है जूं सर्द चिराग़ाँ।
क्या आग इलाही मेरे सीनेमें भरी है॥

साक़िब— सीनए-सोज़ाँमें 'साक़िब' घुट रहा है वोह धुआँ।
उफ़ करूँ तो आग दुनियाकी हवा देने लगे॥

१९३४ मे प्रकाशित दीवाने 'साक़िब' ४२४ पृष्ठका हमारे समक्ष है। आगे हम मिर्ज़ाके सभी रगके चुने हुए अशआ़र दे रहे हैं—

एक उनपर क्या ज़मानेपर है मेरा बारे-ख़ूं[9]।
ज़िबह[10] मे होता गया आ़लम तमाशाई रहा॥
फूलको तोड़के देखो, असरे-वस्लो-फ़िराक़[11]।
मौत है चाहनेवालोंसे जुदा हो जाना॥
अहले-बातिल[12] डालते हैं तफ़रक़-ए-चश्मे-हक़[13]।
वरना काबेमें वोह क्या था, जो कलीसामें न था?

---

[1]एक-ईश्वरवादने; [2]सीमाओके बन्धन; [3]वृद्धि, बढ़ौतरी; [4]प्रेमियोंका दल; [5]यात्री; [6]प्रेमरूपी ईश्वर; [7]साँस; [8]चिनगारियाँ बरसानेवाली; [9]क़त्ल करनेका अभियोग; [10]क़त्ल; [11]मिलन और विरहका प्रभाव; [12]मायावी; [13]वास्तविकतामें भेद।

हुस्न और इश्क़के नैरंग ख़ुदा ही जाने।
शमअ़ जलती है कि दिल जलता है परवानेका।।

ज़मानेवालोंको पहचानने दिया न कभी।
बदल-बदलके लिबास अपने इनक़लाब आया।।
सिवाय यास[1] न कुछ गुम्बदे-फ़लकसे[2] मिला।
सदा[3] भी दी तो पलटकर वही जवाब आया।।

मैं नहीं, लेकिन मेरा अफ़साना उनके दिलमें है।
जानता हूँ मैं कि किस रगमें यह नश्तर रह गया।।
आशियानेके तनज्जुलसे[4] बहुत ख़ुश हूँ कि वोह।
इस क़दर उतरा कि फूलोंके बराबर रह गया।।

जीते जी साय-ए-दीवारे-चमन[5] तक न गया।
मरके क्या फूलका शरमिन्दए-एहसाँ होता।।

कुछ सम्भल जाता, अगर करवट बदल जाता मेरी।
यह मुझे दुश्वार था, उसके लिए मुश्किल न था।।

जो अच्छा कर नहीं सकते,तो क्यों तड़पूं मैं बिस्तरपर।
दुआ़ देना नहीं आता तो सीखो बद्दुआ़ देना।।

इज्ज़तसे बज़्मे-गुलमें रहा आशियाँ मेरा।
तिनकोंकी क्या बिसात मगर नाम हो गया।।
इक मेरा आशियाँ है कि जलकर है बेनिशाँ।
इक तूर है कि जबसे जला नाम हो गया।।

मेरे पहलूसे अगर निकला तो मेरा क्या गया?
गुम शुदा दिल आप ही का एक मख़फ़ीराज़[6] था।।

---

[1]निराशा; [2]आकाशसे; [3]आवाज़; [4]पतनसे; [5]उपवनकी दीवारकी छाया; [6]छुपा हुआ भेद।

होश ही मुझको न था जब पहलुओंमें लूट थी।
मुझको क्या मालूम, क्या जाता रहा, क्या रह गया ?

सुबह समझे थे किसे ? 'साक़िब' शबेग़म है तवील[1]।
दिलका कोई दाग़ होगा, जो चमककर रह गया॥

शहीदे-नामकी लाशपर न सर झुकाके रोइए।
वोह आँसुओंको क्या करे, जो मुँह लहूसे धो चुका॥

कोई तो दाद देता इस दर्दे-दिलकी आख़िर।
जब तुम न बोलते थे, तब मैं कराहता था॥

क़ैद करता मुझको लेकिन जब गुज़र जाती बहार।
क्या बिगड़ जाता ज़रा-सी देरमें सैयादका॥

चोट देकर आज़माते हो दिले-आशिक़का सब्र।
काम शीशेसे नहीं लेता कोई फ़ौलादका॥

आये हो वक़्ते-दफ़्न तो शाना[2] हिलाके जाओ।
आँख उसकी लग गई है, जिसे इन्तज़ार था॥

मैयत[3] तो उठ गई वोह न आये नहीं सही।
'साक़िब' किसीके दिलपै, कोई इख़्तियार था ?

खोया इस इख़्तलाफ़ने[4] लुत्फ़े-विसाल[5] भी।
उनमें न इन्किसार[6] न मुझमें ग़ुरूर[7] था॥

बताइए मुझे कामयाब इश्क़ है कि जमाल[8]।
चमनमें फूल मिले मेरा एक पर न मिला॥

---

[1]बहुत लम्बी; [2]कन्धा; [3]अर्थी; [4]मतभेदने; [5]मिलन-आनन्द; [6]विनय; [7]घमण्ड; [8]रूप।

मेरी ज़बान उनके दहनमें[1] हो ऐ करीम[2]!
होना है फ़ैसला जो उन्हींके बयानपर॥
'साक़िब'! जहाँमें इश्क़की राहें हैं बेशुमार।
हैरान अक़्ल है कि चलूं किस निशानपर?

महशरमें कोई पूछनेवाला तो मिल गया।
रहमत बढ़ी है मुझको गुनहगार देखकर॥
उन दोस्तोंमें वोह न हों या रब! जो वक़्ते-दीद[3]।
बीमार हो गये रुख़े-बीमार[4] देखकर॥

ज़रा देख परवाने करवट बदलकर।
सती हो गई शमअ़ महफ़िलमें जलकर॥

क़द्रदाँ पाके बदल जाते हैं आवारा-वतन।
जब तो निकले हुए मोतीको अ़दन याद नहीं॥

असीर[5] मैं तो हो चुका, ख़बर लो अपने पाँवकी।
कमरसे आगे बढ़ चली है, ज़ुल्फ़ पेचोताबमें॥

नाम मालूम है क़ातिलका मगर हश्रके दिन।
जाननेवालोंसे कहता हूँ मुझे याद नहीं॥

अब और इसके सिवा, क्या असर हो नालोंका।
कि फ़र्क़ आ गया, ज़ालिमके ख़्वाबे-राहतमें[6]॥

अ़दू,[7] सैयादो-गुलचीं क्यों हुए मेरे नशेमनके?
यह तिनके भी हैं इस क़ाबिल? जिन्हें बरबाद करते हैं॥

---

[1]मुँहमें; [2]ईश्वर; [3]देखनेके समय; [4]बीमारका चेहरा; [5]बन्दी; [6]सुखकी नींदमें; [7]शत्रु।

चमनवालो ! यह तिनके आशियाँके चुभ नहीं सकते।
निशानी कुछ तो बहरे-ख़ानुमाँ-बरबाद[1] रहने दो॥

सैकड़ों नाले करूँ लेकिन नतीजा भी तो हो।
याद दिलवाऊँ किसे जब कोई भूला भी तो हो॥
उनपै दावा क़त्लका महशरमें आसाँ है मगर।
बावफ़ाका ख़ून है, ख़ंजरपै ज़ाहिर भी तो हो॥

रोनेसे हया शमअ़की ज़ाहिर हो तो क्योंकर?
उ़रियाँ[2] है मगर बीचमें महफ़िलके खड़ी है॥*

दौरे-फ़लक था जिसके बुझानेकी फ़िक्रमें।
वोह शमअ़ रात सुबहसे पहले ही जल गई॥

काटना पत्थरका भी अच्छा नहीं क्या ज़िक्रे-दिल?
धार उलटी हो गई थी तेशए-फ़रहादकी॥

बातें अहले-फ़क्रसे[3] क्यों हो कि है ख़ौफ़े-सवाल।
मुनअ़मो[4]! यह होशियारी नशए-दौलतपै[5] भी है!!

जलवए-हुस्न[6] इक इशारेमें बहुत कुछ कह गया।
मैं नहीं समझा मगर हाँ दिल तड़पकर रह गया॥

---

*घूरते है सैकड़ों परवाने उ़रियाँ देखकर।
मारे ग़ैरतके गड़ी जाती है महफ़िलमें शमअ़॥ —अज्ञात

[1]घरबार लुटनेकी; [2]नग्न; [3]भिक्षुकोंसे; [4]धनिको; [5]दौलतका नशा होने पर भी इतनी होशियारी कि ग़रीबोंसे इस भयसे बात नहीं करते कि कुछ सवाल न कर बैठें; [6]रूपका चमत्कार।

हादिसोंके[1] ज़लज़लेसे[2] जामेदिल[3] छलका किया।
एक चुल्लू ख़ून ही क्या ? बहते-बहते बह गया ॥*

मुझको यक़ीने-वादए-फ़रदा[4] ज़रूर था।
मुश्किल यह आ पड़ी थी कि दिल नासबूर[5] था ॥

मेरी दास्तानेग़मको, वोह ग़लत समझ रहे हैं।
कुछ उन्हींकी बात बनती अगर एतबार होता ॥
दिले पारा-पारा तुझको कोई यूँ तो दफ़्न करता।
वोह जिधर निगाह करते उधर इक मज़ार होता ॥

ख़ुश हैं सैयाद नशेमन मेरा जल जानेसे।
मुझको बतलाये वोह आबाद जो वीरां न हुआ ॥

शरीके क़ैद थे जज़बाते-दिल,[6] मगर बेकार।
क़फ़स था ऐसा कि नालोंको रास्ता न मिला ॥

दिलसे मैं कह रहा हूँ—"तुझपर हुआ फ़िदा[7] मैं"
दिल मुझसे कह रहा है—"ओ बेख़बर ! जला मैं"
फिर और किस तरहसे उजड़े मकाँको सजता।
क़सरे-लहदमें[8] जाकर तसवीर हो गया हूँ ॥
क़ूवते-ग़म देख, ज़ोरे-नातवानीपर[9] न जा।
ज़लज़ले[10] आलममें थे, जब दिल मेरा बेताब था ॥

---

*दिलकी बिसात क्या थी निगाहे-जमालमें।
यह आईना था टूट गया देख-भालमें ॥

—सीमाब अकबराबादी

[1]दुर्घटनाओंके; [2]कम्पनसे; [3]हृदय-पात्र; [4]आगामी वादेका यक़ीन; [5]बेसब्र; [6]हृदय-भाव; [7]आसक्त, अनुरक्त; [8]क़ब्ररूपी महलमें; [9]निर्बलताकी अधिकतापर; [10]भूकम्प ।

यह एक वादिये-पुरख़ारे-इश्क़[1] थी 'साक़िब'!
उलझके रह गई हर दिलमें गुफ़्तगू मेरी॥

जो आँख हो तो देखिए, न पूछिए कि क्या किया।
चिराग़े-बज़्म[2] हो गया, जला किया, हँसा किया॥

उसकी रहमतपै[3] गिरे पड़ते हैं इंसियाँवाले[4]।
हश्र काहेको है इक जलस-ए-रिन्दाना[5] है॥

रोज़े-महशरके उजालेमें खिला मेरा लहू।
तुम तो तुम, धब्बा है दामाने-शबे-फ़ुरक़तपै भी॥

ख़ुद उनका हुस्न[6] मेरी दादख़्वाही[7] उनसे करता है।
वोह आइना लिये हैं और मुझको याद करते हैं॥

सदायें[8] देके हमने एक दुनिया आज़मा देखी।
यही सुनते चले आये—"बढ़ो आगे, यहाँ क्या है"॥

किसको शौक़े-दीदे[9]-बेताबी[10] नहीं?
दिल न ठहरा इक तमाशा हो गया॥

यह है बहते हुए दरियाकी आवाज़।
"वहीं जाना है आये थे जहाँसे"॥

मैं रो रहा हूँ जो दिलको तो बेकसीके लिए।
वगर्ना मौत तो दुनियामें है सभीके लिए॥

---

[1]प्रेमकी कण्टकाकीर्ण घाटी; [2]महफ़िलका दीपक; [3]दयापर; [4]अपराधी; [5]मद्यपोंका मेला; [6]हुस्न अपने सौंदर्यकी प्रशंसा आशिक़से सुननेका अभिलाषी है; [7]आवाज़ें; [8]देखनेकी लालसा; [9]उत्सुकता।

चिरागे-अक़्ल भी गुल है शबेग़मकी सियाहीसे।
न मैं मालूम होता हूँ, न तू मालूम होता है॥

ईक नया दिल ज़ुल्म सहनेको बनाना चाहिए।
हो तो सकता है मगर उसको ज़माना चाहिए॥

हँसनेवाला रो रहा है, आफ़रीं[1] ऐ वक़्ते-नज़अ[2]!
कुछ कहा शायद मेरी डूबी हुई आवाज़ने॥

गुलशनकी तरफ़ मुँह किये बैठा हूँ क़फ़समें।
शायद कोई दमसाज़[3] निकल आये इधर भी॥

इबरतसे[4] देख पंजएक़ातिल[5] रँगा हुआ।
रहगीरोंसे न पूछ कि दिल मेरा क्या हुआ॥

नहीं मालूम पाये-सईमें[6] काँटे कहाँसे है?
मुरादें[7] हटके चलती है निकलता हूँ जिधर होकर॥

क्या देखता आसारे-सहर[8] मैं शबे-फ़ुरक़त[9]।
वोह जोशपर आँसू थे कि दिल डूब रहा था॥

सिज्देका[10] काम आज न लेगे जबींसे[11] हम।
नक़्शे-क़दम[12] उठायेगे उनके ज़मींसे हम॥

लहदपर[13] तास्सुफ़के[14] मअनी न समझा।
यह काहेका रोना है जब मैं बुरा था?

नादाँ भी हो गये मेरे नालोंसे होशियार।
अब आपके सिवा कोई ग़ाफ़िल नहीं रहा॥

---

[1]शाबास; [2]मृत्यु-समय; [3]मित्र, साथी; [4]नसीहत हासिल करनेकी नजरसे; [5]ख़ूनीके हाथको; [6]सफलताके पाँवमें; [7]अभिलाषायें; [8]सुबह होनेकी रूपरेखा; [9]विरह रात्रिमें; [10]मस्तक झुकानेका; [11]मस्तकसे; [12]चरण चिह्न; [13]क़ब्रपर; [14]पश्चात्तापके।

सहने-ज़िंदाँ-ओ-चमन[1] मेरी नज़रमे एक है।
क़ैदसे घबराये वोह जो रंजसे आज़ाद था॥

कम-से-कमपर आज राजी हूं शहीदोंके मज़ार।
आप हँस देंगे तो समझेंगे चिराग़ां[2] हो गया॥
ख़्वाहिशे - दुनिया - ए - हुस्नो - इश्क़[3] है।
वर्ना फिर मैं किसलिए, तू किसलिए?

दिलके होते भी कहीं दर्द जुदा होता है।
इक फ़क़त मौतके आजानेसे क्या होता है?

पेशे-अरबाबे-करम[4] हाथ वोह क्या फैलाता?
जिसको तिनकेका भी एहसान गवारा[5] न हुआ॥

जवाब ज़ख़्मे-जिगर दे रहा हूं हँस-हँसकर—
"वही तो दिल है कि जो ख़ुश रहे मुसीबतमें"॥

बढ़ाई जिसने तेरी नींद मुझको तड़पाकर।
वोह मेरी उम्रे-गुज़िश्ता[6] न थी, कहानी थी॥

न जागते न सही, सुनके नींद तो आती।
यूँ ही सही मेरा किस्सा कभी बयाँ होता॥

मेरी तरह है हाल मेरा, उनका ख़ैर-ख़्वाह।
आशिक़ है उनकी नींद मेरी दास्तान पर॥

---

[1]कारागारका आंगन और उपवन; [2]दीपावलि; [3]रूप और प्रेमका संसार चाहता हूं; [4]दानवीरोंके सामने; [5]पसन्द; [6]आप बीती घटना।

दिलने अपनी हसरतोंके क़ाफ़िले ठहरा दिये।
इस क़दर आबाद पहले कूचए-क़ातिल न था॥

ख़िलवत-पसन्द[1] हश्रसे[2] ख़ुश होके क्या करे?
वादेका रोज़ जलवागहे-आम[3] हो गया॥

उसके सुननेके लिए जमा हुआ है महशर।
रह गया था जो फ़साना मेरी रुसवाईका॥

नज़अ[4] इक ईद है, वोह रोते हुए आये हैं।
ऐ दिलेज़ार यही वक़्त है मर जानेका॥

नशेमन आगसे बचता तो ख़ौफ़ बर्क़का था।
जो बाग़बाँ भी न होता तो आस्माँ होता॥

मकाँ मुनअ़िमका[5] सोनेसे, यह ख़ूने-दिलसे बनता है।
ख़सो-ख़ाशाकका घर[6] भी बड़ी मुश्किलसे बनता है॥

किसीका रंज देखूं यह नहीं होगा मेरे दिलसे।
नज़र सैयादकी झपके तो कुछ कह दूं अ़नादिलसे[7]॥
बर्क़के गिरनेसे मातम एक ही होता तो ख़ैर।
आशियाँके साथ आँच आई मेरी हसरतपै भी॥

हो गये बरसों कि आँखोंकी खटक जाती नहीं।
जब कोई तिनका उड़ा घर अपना याद आया मुझे॥

ग़नीमत है क़फ़स, फ़िक्रे रिहाई क्या करें हमदम!
नहीं मालूम अब कैसी हवा चलती है गुलशनमें॥

---

[1]एकान्तके इच्छुक; [2]प्रलयके बादकी स्थितिसे; [3]जनसमूह एकत्र होनेका स्थान; (एकान्त प्रिय अपनी प्रेयसीको जन समूहमे देखकर कैसे प्रसन्न हो) [4]मृत्युका वक़्त; [5]धनिकका महल; [6]गरीबका झोंपड़ा; [7]बुलबुलोसे।

देखा किये वोह चान्दको अपने गुमानपर।
मैं ख़ुश हुआ कि तीर चले आस्मानपर॥

ग़ुस्सेके बाद तेग़ज़नीका[1] महल[2] नहीं।
पहले ही ज़िबह[3] होगये चीने-जबींसे[4] हम॥

कुछ वफ़ा कुछ ज़ुल्मके आसार रहने दीजिए।
ख़ूनमें डूबी हुई तलवार रहने दीजिए॥

शिकायत ज़ुल्मे-ख़ंजरकी नहीं, ग़म है तो इतना है।
ज़बाने-ग़ैरसे क्यों मौतका पैग़ाम आता है॥

दाग़ेदिल क़ब्रकी ज़ुल्मतमें है बेनूर ऐसा।
जैसे देखा हो चिराग़ आपने वीरानेका॥ *

क्या कहे बेज़बाँ असीरे-क़फ़स[5]।
क्यों हुआ क़ैद, क्यों रिहा न हुआ॥

बदल-बदलके जहाँ एतबार खो बैठा।
ख़ुशीमें भी मेरे दिलको मलाल होता है॥

हिज्र के दर्दको बढ़ने दे कि है मुज़दए-वस्ल[6]।
वही घटता है जहाँमें जो सिवा होता है॥

---

*रोशन है इस तरह दिले-वीरानेमें एक दाग़।
उजड़े नगरमें जैसे जले है चिराग़ एक॥

—मीर

[1]तलवार चलानेका; [2]समय, मौका-महल; [3]घायल, क़त्ल; [4]त्योरी पड़े मस्तकसे; [5]पिंजरेका बेज़बान पक्षी; [6]मिलनका शुभ संदेश।

इस [1]दर्दे-मुहब्बतके[1] अन्दाज़ निराले हैं।
घटता तो मरज़ होता, बढ़ता तो दवा होता॥

क़हक़हे हमने सुने दुनियामें और फ़रियाद भी।
एक ही रस्तेसे गुज़रे शाद[2] भी नाशाद[3] भी॥

नब्ज़ हो या दिल हो इसका क्या इलाज?
डूबनेवाला उभर सकता नहीं॥

न आँख बन्द करूँ मैं तो क्या करूँ या रब!
वोह आ रहे हैं तमाशाए-जाँ-कनीके[4] लिए॥

मुट्ठियोंमें ख़ाक लेकर दोस्त आये वक़्ते-दफ़न।
ज़िन्दगी भरकी मुहब्बतका सिला देने लगे॥

लहद[5] सियाह है 'साक़िब' कोई चिराग़ नहीं।
और इसपै शाम हुई है दयारे-ग़ुरबतमें[6]॥

न समझा मअ़निए-गोरो-कफ़न समझा तो यह समझा।
थका था मैं लिपटकर सो रहा दामाने-मंज़िलसे॥

कहनेको मुश्ते-परकी[7] असीरी[8] तो थी मगर।
ख़ामोश हो गया है, चमन बोलता हुआ॥

यूँ तो मुश्ते-ख़ाक था दिल, ख़ून होकर बह गया।
लेकिन इस क़तरेमें वोह कुछ था, जो दरियामें न था॥

---

[1]प्रेम-टीसके; [2]प्रसन्न; [3]अप्रसन्न; [4]मृत्युकी छटपटाहट देखनेको; [5]क़ब्र; [6]परदेशमे, सफ़रमे; [7]मुट्ठीभर परोंकी; [8]क़ैद।

तीरगी[1] नाम है दिलवालोंके उठ जानेका।
जिसको शब[2] कहते हैं मक़तल[3] है वोह परवानोंका॥

बला है अ़हदे-जवानीसे ख़ुश न हो ऐ दिल!
सँभल कि उ़म्रको दुनियामें इनक़लाब आया॥

यह किसने ग़मकदा[4] दुनियाका नाम रक्खा है?
हमें तो कोई यहाँ दर्द-आश्ना[5] न मिला॥

नहीं मालूम, वोह मैं हूँ कि कोई और असीर[6]।
सुन रहा हूँ कि गिरफ़्तारको आज़ाद किया॥

मेरे ज़ुल्मतकदेमें रोज़े-रोशनका[7] गुज़र कैसा?
सलामत है शबे-ग़म तो, उजाला हो नहीं सकता॥

नाज़ो-अदाकी[8] चोटें, सहना तो और शै है।
ज़ख़्मोंको देख लेता कोई, तो देखता मैं॥
बर्क़े-जमाले-वहदत[9]! तू ही मुझे बता दे!
शोला[10] तो दूर भड़का, फिर किसलिए जला मैं?

ज़िन्दगीमें क्या मुझे मिलती बलाओंसे निजात[11]।
जो दुआएँ कीं, वोह सब तेरी निगहबाँ[12] हो गईं॥
कम न समझो दहरमें[13] सरमाय-ए-अरबाबे-ग़म[14]।
चार बूँदें आँसुओंकी, बढ़के तूफ़ाँ हो गईं॥

ज़ुज़-ज़मीने-कूए-जानाँ[15] कुछ नहीं पेशे-निगाह[16]।
जिसका दर्वाज़ा नज़र आया सदा[17] देने लगे॥

---

[1]अँधेरा; [2]रात्रि; [3]वधस्थल; [4]दुखोंका स्थान; [5]दुःखोंसे परिचित; [6]क़ैदी; [7]प्रकाशका; [8]हाव-भावों, नखरोंकी; [9]एकेश्वरवादरूपी सौन्दर्यकी बिजली; [10]चिन्गारी; [11]छुटकारा; [12]रक्षक; [13]संसारमें; [14]मित्रोंका सहृदयता-रूपीधन; [15]प्रेयसीके कूचेके अतिरिक्त; [16]दृष्टिमें; [17]आवाज़।

दिलके क़िस्से कहाँ नहीं होते ?
हाँ, वोह सबसे बयाँ नहीं होते ॥

कहूँ क्योंकर कि मैं कुछ भूल आया हूँ नशेमनमें।
मेरा सैयाद कहता है कि "क्या रक्खा है गुलशनमें ?"

जिसमें भरा हुआ है मेरी ज़िंदगीका हाल।
दुनियाको नींद आती है अब उस फ़सानेमें ॥

दुआएँ दें मेरे बाद आनेवाले मेरी वहशतको।
बहुत काँटे निकल आये, मेरे हमराह मंज़िलसे ॥

नाले करता जा कि ज़ोरे-नातवानी है बहुत।
झुक चला है चर्ख़ गिर जायेगा दो-इक तीरमें ॥

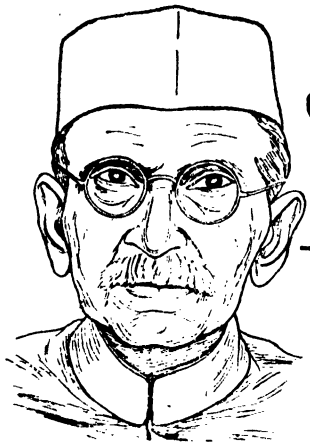
तड़पा दिया है दिलको, शाबाश हम सफ़ीरो !
यूँ ही फिर इक सदा दो, टूटा क़फ़स, चला मैं ॥



आशियाँ

गुलचीं बुरा किया जो यह तिनके जला दिये।
था आशियाँ मगर तेरे फूलोंसे दूर था ॥

१० मई १९५३ ई०]



असर लखनवी

[१८८५ ई०—]

ख़ानबहादुर मिर्ज़ा जाफ़रअ़लीखाँ 'असर', लखनऊके एक प्रतिष्ठित और शिक्षित वंशमें १२ जुलाई १८८५ ई० में उत्पन्न हुए। जिनकी गोदियोंमें आपका लालन-पालन हुआ, वे उर्दू ज़बानके मालिक थे। यही कारण है कि आप उर्दूके, विशेषकर लखनवी उर्दूके अधिकारी एवं प्रामाणिक विद्वान् समझे जाते हैं। ख्याति प्राप्त शाइ़र होनेके अतिरिक्त आप उच्चकोटिके आलोचक एवं गद्य-लेखक भी हैं। आपके अनेक महत्त्व-पूर्ण लेखों और आलोचनाओंका संकलन 'छानबीन' हमारी नज़रसे गुज़रा है। उसमें आपने देहलवी-लखनवी शब्दोंके ठीकरूप बताने और उनके वास्तविक अन्तरको समझानेका सफल प्रयत्न किया है। आप 'मीर'के बहुत बड़े भक्त हैं। उनके कलामको अपनी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावनाके साथ 'मज़ामीर' शीर्षकसे दो भागोंमें प्रकाशित कराया है। आपका 'मीर' और 'ग़ालिब' पर एक महत्त्वपूर्ण और विस्तृत लेख जो 'आजकल' उर्दूमें

कई अंकोंमे क्रमशः प्रकाशित हुआ था, उससे ही आपके गंभीर अध्ययन और विशाल सुरुचिका आभास मिल जाता है।

१९०६ ई० मे आप बी० ए० हुए। १९०९ मे डिप्टी कलेक्टर हुए और १९४० ई० मे कलेक्टरी-पदसे पेंशन प्राप्त की, किंतु उसीके बाद इलाहाबादके एडीशनल कमिश्नरके पदपर अस्थाई तौरपर नियुक्त किये गये। चन्द साल काश्मीरमे गृह मन्त्री भी रहे। इतने उच्च राजकीय पदोंपर रहते हुए भी बातचीत या पत्र-व्यवहारमें उर्दू भाषाका ही प्रयोग करते रहे है। बहुत ही आवश्यकता पड़नेपर अंग्रेजी भाषाका व्यवहार करते है। आप 'अजीज़'के शिष्य है, किन्तु कलाम उनसे जुदागाना रगमे उनसे बेहतर कहते है।

भाषाकी सादगी

'असर'का अन्दाज़े-बयान सरल, स्वच्छ और प्रवाह-युक्त है। उनके दीवानको पढते हुए ऐसा प्रतीत होने लगता है कि किसी ऐसे चश्मेके किनारे बैठे हुए है, जो कल-कल करता हुआ अविराम गतिसे बहता हुआ जा रहा है। उनके सीधे-सादे शब्दों और छोटी-छोटी बहरोमे गागरमें सागर भरा होता है—

जैसे वह सुन रहे है, बैठे हुए मुक़ाबिल।
और दर्दे-दिल हम अपना उनको सुना रहे है॥
फिर हम कहाँ, कहाँ तुम, जी भरके देखने दो।
अल्लाह! कितनी मुद्दत तुमसे जुदा रहे है॥

यूँ उनकी याद है दिले-हैराँ[1] लिये हुए।
जैसे नसीम[2] गुंच-ओ-गुलके कनारमें[3]॥

जिन्दगी और जिंदगीकी यादगार।
पर्दा और पर्देपै कुछ [परछाइयाँ॥

---

[1]आश्चर्य-चकित हृदय; [2]प्रातःकालीन पवन; [3]गोदमें, अर्थात् फूलोंमे बसी हुई।

जब कहा उसने—"मुद्दआ[1] कहिए"।
सोचते रह गये कि क्या कहिए॥

फिर तुम्हें फ़ुरसत न हो या मैं ही आपेमें न हूं।
यह बताते जाओ मेरे हक़में क्या मंज़ूर है?

अपनी बिसातभर तो हमने कमी नहीं की।
अब तुम बताओ क्योंकर रस्मे-वफ़ा निभाएँ?

दिल दुखाया है जिसने, शाद रहे।
और अब क्या दुआ करे कोई॥

करवटें क्यों बदल रहे हैं हुज़ूर?
अभी आग़ाज़[2] है कहानीका॥

मरनेका भी न सलीक़ा आया।
यह तो दुश्वार कोई काम न था॥
ख़ुद लिपटती रही दुनिया उससे।
जिसको दुनियासे कोई काम न था॥

रंगे-मीर

'असर' 'मीर'के प्रशंसक ही नही, उनके अनुयायी भी है। आपके कलाममे वही 'मीर'-जैसा सोजोगुदाज और अन्दाजे-बयान है। 'मीर' और 'असर'के अशआर अगर खल्त-मल्त कर दिये जाये तो फिर उनको अलग-अलग करना आसान काम नही। बानगी देखिए—

नाम अलबत्ता सुनते आये हैं।
हम नहीं जानते ख़ुशी क्या है?
ज़रा देर दम लेने दे ऐ फ़लक!
मुसीबतका एहसास[3] कम हो गया॥

---

[1]अभिप्राय; [2]प्रारम्भ; [3]ज्ञान, अनुभूति।

हर-इक रहगुजरमें[1] है सरगोशिया[2]।
ख़ुदा जाने किसपर सितम हो गया?

आ! मेरे काटे अब नहीं कटतीं।
बेवफ़ा तेरे हिज्र की[3] घड़ियाँ॥

हमने रो-रोके रात काटी है।
आँसुओंपर यह रंग तब आया॥

साँस भी ले सँभलके ऐ नादाँ!
सख़्त मुश्किल है रिश्ता उलफ़तका॥

ख़ूगरे-दर्द[4] हो अगर इन्साँ।
रंजमें भी मजा है राहतका[5]॥

हम समझते थे कि उलफ़त खेल है।
यह ख़बर क्या थी लहू रुलवाएगी॥

मौतमें ज़ीस्त[6] देखनेवालो!
देखलो ज़ीस्तमें फ़ना[7] है हम॥

मैं अगर उससे कहूँ भी तो बताओ क्या कहूँ?
जब उसे मालूम है जो कुछ कि मेरे दिल में है॥

मेरा हँसना है जख़्मकी सूरत।
जो मुझे देखता है रोता है॥

डब-डबा आईं ख़ुद-ब-ख़ुद आँखें।
बार-हा ऐसा इत्तिफ़ाक़ हुआ॥

आँखमें अश्के-नदामत[8] डब-डबाकर रह गये।
हम युँ ही अक्सर दुआको हाथ उठाकर रह गये॥

---

[1]मार्गमे; [2]कानाफूसी; [3]वियोगकी; [4]दुःखोंका अभ्यस्त; [5]सुख-चैनका; [6]ज़िन्दगी; [7]मृतक; [8]गुनाहगारीकी शर्मसे आये हुए आँसू।

घुट-घुटके मर न जाये तो बतलाओ क्या करे?
वह बदनसीब जिसका कोई आसरा न हो।।

सौन्दर्य-वर्णन

जमालियाती (सौन्दर्य-विषयक) कलाम उर्दूशाइरीमे काफ़ी मिलता है। खासकर पुराने लखनवी शाइरोके यहाँ तो जमालियाती रंगकी भरमार है। मगर उनके यहाँ स्वाभाविक और दिलनशीं शेर आटेमें नमक जितने मिलते है। अधिकांश अस्वाभाविक और अश्लीलतासे ओत-प्रोत है। कघी-चोटी, सुर्मा-मिस्सी, चोली-दामन, जेवर-लिबास आदिका कुरुचिपूर्ण वर्णन और रान-काँख, बाल-खाल (तिल) आदिका अश्लील और घिनौना चित्रण पाया जाता है। ऐसे ही शाइरोंको लक्ष करके मौलाना 'हाली'ने कुछ इस तरहके उद्गार प्रकट किये थे कि संसारमें ऐसा कोई मूर्ख नही जो अपनी प्रियतमाके गुप्तागोंका वर्णन किसीके सामने करे। मगर आश्चर्य है कि हमारे शाइर दिन-रात इसी कार्यमे लीन है। उन्हें जग-हँसाईकी कोई चिन्ता नही।

'असर'ने भी इस नाजुक आर्टपर तूलिका चलाई है। मगर इस कौशलसे कि जो भी देखेगा, देखता रह जायगा और दिलमें कहेगा कि ऐसी बहन, बेटी, पत्नी, मुझे भी नसीब हो।

एक उछालछक्को और चर्बजबान औरतके नक़्श न उभारकर आपने एक ऐसी पवित्र, लजीली और कोमलांगीको चित्रित किया है कि हर व्यक्तिको ऐसी पुत्री, बहन और पत्नीपर अभिमान होगा। उसके क़दमोसे जन्नत लगी चलेगी—

अब मैं समझा मुराद जन्नतसे।
आप जिस राहसे गुज़र जायें।।

प्रेयसीकी चालको पुराने शाइरोने क़यामतबरपा होना कहा है। यानी उसकी चालसे प्रलयंकारी तूफान उठ खड़े होते है। गोया प्रेयसी न हुई चुड़ैल या जिन हुई कि जिधरसे भी गुज़र जाये हड़बोंग मच जाये।

उसी कयामतबरपा चालको 'असर'ने उक्त शेरमे इतने पवित्र और मोहक ढँगसे व्यक्त किया है कि दाद देनेको उपयुक्त शब्द नही मिल पा रहे है। सचमुच प्रेयसीकी 'राहगुजर' ही जन्नत है। पवित्र आत्मायें जहाँसे भी निकल जाये, वही मार्ग स्वर्ग बन जाता है।

प्रियतमा लाजके मारे पसीने-पसीने हुई जा रही है। इस नारी सुलभ लज्जाका देखिए क्या हू-ब-हू चित्र खीचा है—

फूल डूबा हुआ गुलाबमें था।
उफ़! वोह चेहरा हिजाब आलूदा[1] !!

किशोरावस्था जब जवानीकी सरहदोंको छूने लगती है तो कुछ इस तरहका आलम होता है–

गुलोंकी गोदमे जैसे नसीम[2] आकर मचल जाये।
उसी अन्दाज़से उन पुरखुमार आँखोंमें ख़्वाब[3] आया॥

नीदभरे नयनोमे क्या भरा होता है, यह कोई कैसे बताये ? यह तो देखने और समझनेसे सम्बन्ध रखता है—

उस घड़ी देखो उनका आलम।
नींदसे हों जब भारी आँखें॥

मोमिनका एक शेर है—

मेरे तग़ैयुरे-रंगको मत देख।
तुझको अपनी नज़र न हो जाये[4]॥

---

[1]शर्मसे भीगा हुआ; [2]प्रातःकालीन वायु; [3]मदभरे नयनोमे स्वप्न; [4]मेरी यह दयनीय स्थिति तेरे सौन्दर्यके कारण हुई है। न मै तुझे देखता न बीमार पडता। अतः मेरे उस तगैयुरे-रग (अवस्था परिवर्तन)को न देख, अन्यथा स्वय तुझे अपनी नजर लग जायगी। क्योकि अभीतक तो तू अपने सौन्दर्य-प्रभावसे अपरिचित है। मुझे देखनेसे तुझे अपनी करिश्मा-साजियोंका पता लग जायगा और स्वय तुझे अपनी नज़र लग जायगी।

इसी भावको देखिए 'असर' कितने दिलकश और सीधे-सादे शब्दोंमें व्यक्त करते हैं—

देखो न आँख भरके किसीकी तरफ़ कभी।
तुमको ख़बर नहीं जो तुम्हारी नज़रमें है॥

प्रेयसीकी चादरे-गुलकी कितनी अछूती उपमा दी है ?

झिलमिलाते हुए तारे क्या है ?
मलगजे फूल तेरे बिस्तरके॥

चन्द जमालियाती शेर और मुलाहिजा हो—

दमे-ख़्वाब[1] है दस्तेनाज़ुक़[2] जबींपर[3]।
किरन चाँदकी गोदमें सो रही है॥

वोह तेरा शबाब कि अल्हज़र,[4] वोह तेरा ख़िराम[5] कि अलअमाँ।
न यह रंग झलके बहारमें न यह कैफ़ टपके शराबसे॥

बसा फूलोंकी नकहतमें,[6] लिये मस्ती शराबोंकी।
महकता, लहलहाता, एक काफ़िरका शबाब आया॥

चाल वोह दिलकश जैसे आये—
ठण्डी हवामें नींदका झोंका॥

उस वक़्त कोई देखे वोह नींदसे जब उट्ठें।
हर नज़्मे-सहर[7] आँखें मलता नज़र आता है॥

---

[1]सोते समय; [2]कोमल हाथ; [3]मस्तकपर; [4]ख़ुदाकी पनाह, ईश्वर बचाये; [5]चाल; [6]सुवासमें; [7]प्रातःकालीन व्यवस्था।

मस्त आँखोंमे घनी पलकोंका साया यूँ था।
कि हो मैख़ानेपै घनघोर घटा छाई हुई॥
जैसे नाग़मेमे[1] नया फ़न कोई ईजाद करे।
उफ़! वोह आवाज, जो थी नींदमे भर्राई हुई॥

उन लबोंपर झलक तबस्सुमकी[2]।
जैसे निकहतमें[3] जान पड़ जाये॥

ख़ुमख़ान-ए-निशात[4] है वोह सुर्ख़ अँखड़ियाँ।
अँगड़ाइयोंमे इत्र खिंचा है ख़ुमारका॥
पुरकैफ़[5] किस क़दर है सितमगरकी गुफ़्तगू?
साग़र छलक रहा है मएख़ुशगवारका[6]॥

फूल सिज्देमे गिरे शाख़े झुकीं।
देखके गुलशनमे तुझको बेनक़ाब॥

वोह लचक ऐसी कहांसे लायेगी।
शाख़ेगुल क़दसे तेरे शरमायेगी॥

ख़न्दएगुलपर[7] बहुत सुबहेचमनको नाज़ है।
हाँ, ज़रा फिर मुसकरा कर मुझसे पर्दा कीजिए॥
इधर आ कलेजेमे तुझको छुपा लूँ।
ख़ुद अपनी अदाओंसे शर्मानेवाले॥

इश्क़का हमला

इश्क़का पहला वार बहुत दिलचस्प और मासूमाना होता है। यह हजरत इस अन्दाज और सलीकेसे हमला करते हैं कि ऐसे वार खाते रहने-

---

[1]सगीतमे; [2]मुसकानकी; [3]सुगंधमे; आनन्द-मधुशाला; [4]आनन्दबर्द्धक, नशीली; [5]दिलपसन्द शराबका; [6]फूलकी मुसकानपर।

को दिल बेकरार हो उठता है। यहाँतक कि किसीके समझानेसे भी बाज नही आता। मगर जहाँ दिलपर एक बार इश्कका क़ब्ज़ा हुआ कि फिर ता-उम्र टलनेका हजरत नाम नही लेते।

हजरते-दाग़ जहाँ बैठ गये, बैठ गये।

इश्ककी इसी मासूमाना कैफ़ियतको 'असर' यूँ बयान करते है—

सहमी हुई थी सुबहकी पहली किरनकी तरह।
उनकी तरफ़ निगाह जो पहले-पहल गई॥

जैसा कि हमने ऊपर अभी कहा है कि इश्कके यह दिलबस्प और मासूमाना वार खाते रहनेको दिल बेकरार हो उठता है, और समझानेसे भी बाज नही आता। बाज न आने की वजह एव मजबूरी 'असर' यूँ बयान करते है—

इश्क़से लोग मनअ करते है।
जैसे कुछ इख़्तियार है अपना॥

अदब लाख था, फिर भी उसकी तरफ़।
नजर मेरी अक्सर बहकती रही॥

इश्क जब दिलमे दाग बनकर बैठ जाता है तो जिस्मको धीरे-धीरे सुलगाकर खाक करता ही है, उसके अलावा और भी करिश्मा-साजियाँ करता रहता है। कभी रोना, कभी हंसना, कभी आहो-फुगाँ करना, कभी दीवानावार जगलोंमे घूमना, यह अलामते भी मरीजे-इश्कमे पाई जाती है। मगर कब रोना चाहिए और कब आंसू पी जाना चाहिए, यह नया मरीजे-इश्क नही जान पाता। यह तजर्बा तो देरीना मरीज़को ही नसीब होता है—

जो इश्क़के फ़नके माहिर है, उनसे पूछो, तुम क्या जानो?
कब अश्क बहाना मुश्किल है, और कब पी जाना मुश्किल है॥

इश्क़का मर्तबा

असरके यहाँ इश्कका मर्त्तबा बहुत बुलन्द और पाकीजा है। उनका तजर्बा है कि—

इन्सानको बेइश्क़ सलीक़ा नहीं आता।
जीना तो बड़ी चीज है, मरना नहीं आता॥

दिलमें है दर्द, दर्दमे इक लज्जते-खलिश।
आजारे-इश्क़ने मुझे इन्साँ बना दिया॥

और जब इश्ककी बदौलत इन्सानियत-जैसी बेशबहा निधि नसीब हो गई तो उससे किसीकी दिलआजारी नामुमकिन। जिसका रोम-रोम प्रेमसे भीगा हुआ हो, उसे हर वस्तुमें अपने प्यारेका जलवा नजर आता है—

न जाने बात यह क्या है? तुम्हे जिस दिनसे देखा है।
मेरी नजरोंमें दुनिया भर हसीं मालूम होती है॥

और जिसे हर वस्तुमें अपने प्यारेका जलवा नजर आयेगा, वह विनष्ट करनेके बजाय हर वस्तुको प्यार करेगा। यहाँतक कि वह फूलकी पत्तीको भी सदमा नहीं पहुँचाना चाहेगा—

पाकबाजाने-मुहब्बत हैं यहाँतक मुहतात[1]।
गुलपै भी दीदा-ए-शबनमसे[2] नजर करते है॥

---

[1]इहतियात रखनेवाले, सावधानी बरतनेवाले; [2]अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे (भाव यह है कि जैसे ओसके पड़नेसे फूलका अनिष्ट नहीं होता, अतः हम फूलोंकी तरफ भी इस सावधानीसे देखते हैं कि उनका कहीं अनिष्ट न हो जाय! किसीका भी दिल न दुःखे, इस तरहका हम सदैव प्रयत्न करते हैं)।

अक्सर लोगोंका खाम-ख़याल है कि इश्क़ इन्सानको जलीलो-ख्वार कर देता है। इश्क तो इन्सानको इन्सानका मर्त्तबा बख़्शता है। जलीलोख्वार तो बुलहविसी (भौरा-जैसी लोलुप कामुकता) करती है, जो इश्कका छद्म-वेष बनाये घूमती है। गोमुखी व्याघ्रसे भयभीत वास्तविक गायसे भी डरने लगे तो इसमें गायका क्या दोष ? इश्क़ अगर बेग़रज़ और बेआर्ज़ू हो तो उसके मर्त्तबेका क्या कहना ?

इश्क़ है इक निशाते-बेपायाँ[1]।
शर्त यह है कि आर्ज़ू न रहे॥

सीमाओंका बन्धन और तू-मैंका भेद प्रेम-मार्गके कण्टक हैं। प्रेमी इनको दूर किये बगैर अपने चरम लक्षतक नहीं पहुँच सकता। इसी भावको रगे-तगज्जुलमें देखिए 'अमर' किस खूबीसे व्यक्त करते हैं—

उठा दे क़ैद सुबू-ओ-शराब-ओ-साग़रकी।
बुलन्द और ज़रा कर मज़ाक़े-रिन्दाना॥

विरहपर शेर सुनिए—

हर साँस एक ताज़ा जिराहतका[2] है पयाम[3]।
नश्तर बनी हुई है, रगेजाँ तेरे बगैर॥

फिर न आये जो वादा करके गये।
आजका दिन है और वोह दिन है॥

कुछ रोज़ यह भी रंग रहा इन्तज़ारका।
आँख उठ गई जिधर बस उधर देखते रहे॥

---

[1]गहरी खुशी, स्थायी सुख; [2]घावका बेचैनी, कष्टका; [3]सन्देश।

उक्त तीनों शेअरोंमे कितनी वेदना और कितनी व्यथा भरी हुई है, यह भुक्तभोगी ही महसूस कर सकता है। जिस स्त्रीका पति या पुत्र परदेशमे रोज़ी कमाने चला जाय और जानेके बाद न पातियाँ भेजे, न कोई सँदेसा, और न फिर कभी लौटे, उस नारीके दिलसे कोई पूछे कि उसने किस तरह एडियाँ रगड-रगडकर उम्र काटी है। वह किस बेकरारीसे गाँवके रास्तेपर पलक-पाँवड़े बिछाये बैठी रही है, और रात-बिरातको जब भी दर्वाजा खट-खटानेका बहम हुआ है, लपक-लपककर द्वार खोला है।

जिन सौभाग्यशालियोको यह प्रतिक्षाजन्य कष्ट उठानेका कभी अवसर नही मिला, वे श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदीद्वारा लिखित और भारतीय ज्ञानपीठद्वारा प्रकाशित 'रेखाचित्र'मे 'लल्लू कब लौटेगो' और "बाइस वर्ष बाद" पढकर इस विरह-वेदनाका किंचित आभास पा सकते है।[1]

उस कुँवारी लडकीकी मनोव्यथाका अनुमान लगाइए जो अपने प्रियतमकी प्रतीक्षामे बूढ़ी हो गई। घरवालोंके लाख सर पटकनेपर भी न किसी दूसरेसे शादी की, न किसी गैरको आँख भरकर देखा। उम्रभर उसीकी माला जपती रही। उम्रभरकी तपस्याके फलस्वरूप वह

---

[1]इस विरह-वेदनाकी टीस और बेचैनी इन दोहोंमे देखिए कैसी बिलख रही है—

सोना लेने पिउ गये सूना कर गये देस।
सोना मिला न पिऊ फिरे रूपा हो गये केस॥

—अज्ञात

मेरा हाथ देख बरहमना! मेरे पिउ मुझसे मिलेंगे कब?
तेरे मुंहसे निकले खुदा करे, "इसी सालमें, इसी माहमें"॥

—अज्ञात

वापिस आया भी तो हायरे भाग्य वह अपने साथ किसी और स्त्रीको ले आया[1] और उसकी तरफ आँख उठाकर भी न देखा। सूखी खेतीपर बादल आये भी मगर बेसूद, एक बूंद गैरे वग़ैर उमड़-घुमडकर किनारा काट गये।

तमाम उम्र 'असर' ! जिसकी राह देखी थी।
इधरसे आज वोह गुजरे तो मिस्ले-बेगाना॥

हबीबका रुत्बा

तुम्हीं हो रौनक़े-गुलशन, तुम्हीं हो रंगे-बहार।
मगर किसीको तुम्हारा गुमाँ नहीं होता॥

उक्त शेर रंगे-तसव्वुफमे कहा गया है। यानी इस शेअरमे 'असर'का महबूब खुदा नजर आता है, और उनका यह कामिल यकीन है कि सारी दुनियामे खुदाका जलवा है। इस यकीनको एक और शेअरमे आप यूँ उजागर करते है—

जिंदगी वक़्फ़ा है तेरे हिज्रका।
मर्ग तेरे वस्लका पैग़ाम है॥

खुदाकी पहचान

खुदाकी तलाशमे लोग वनो-पर्वतोंकी खाक छानते है। मन्दिरों-मस्जिदोंमे भटकते है। मगर खुदा नहीं मिलता। अगर किसीको

---

[1]इस तरहकी घटनाये अक्सर होती रहती है। आजाद हिन्द फ़ौजके एक ख्यातिप्राप्त कर्नल साहबकी मँगेतर उनकी प्रतीक्षा करती रही। उसके भाग्यमे वे लडाईसे और फांसीके तख्तेसे बचे और ख्यातिके उच्च शिखरपर पहुँचे तो उन्होंने शादी उस प्रतीक्षकासे करनेके बजाय एक परित्यक्तासे कर ली। इसीतरह पजाबके एक प्रसिद्ध क्रातिकारी जब १० वर्ष बाद जेलसे मुक्त हुए तो उन्होंने वियोगिनीके आँसू पूछनेके बजाय दूसरी शादी करके उसे उम्रभर जलने-सिसकनेके लिए मजबूर कर दिया।

मिलता भी है तो वह उसे पहचानता नहीं और इस तरह उसके दर्शनेच्छु दुनियामें भटकते हुए अपनी जिन्दगी बरबाद कर रहे हैं। ऐसे ही भटके हुए लोगोंके लिए देखिए 'असर' खुदाकी कितनी आसान पहचान बताते हैं—

हम उसीको ख़ुदा समझते हैं।
जो मुसीबतमें याद आ जाये॥

खबरदार, उक्त शेअ्रके 'याद'को 'काम' न बना लीजिए। वर्ना शेअ्रकी लताफत तो जाती ही रहेगी, आप भी ऐसे बदजौक और खुदगरज तसव्वुर कर लिये जायेंगे, जो हर जगह और हर शख्समें अपने 'काम' निकालनेकी फिक्रमें लगे रहते हैं।

मैंने यह शेअ्र अपने परमस्नेही मित्र सुमत साहबको लिखकर भेजा तो उन्होंने अपने यहाँ दिये गये एक 'डिनर'पर एक मुहज्जब उर्दू-अदीबको उक्त शेअ्र सुनाया तो वे सुनते ही बोले "याद आ जाये" क्या, "काम आ जाये" कहिए साहब! सुमत साहब सुनकर चुप हो गये। उनकी नजरोंमें डिनरका सारा मजा फिर-फिरा हो गया और वे उस व्यक्तिके बारेमें सोचते रहे कि यह भी कैसा बदजोक है, जो 'याद' जैसी लतीफ चीजसे ज्यादा 'काम'को अहमियत देता है।

मज़हबी दूकानें

बहकके नशेमें मस्जिदको समझा मैख़ाना।
ग़ज़ब हुआ था मेरा सर ही झुक गया होता॥
मस्जिदों और ख़ानक़ाहोंका तमाशा देखकर।
मैं फिरा दिलकी तरफ़ शुक्रे-ख़ुदा करता हुआ[1]॥

---

[1]इसी मजमूनपर 'असग़र' गोण्डवीने क्या बलाका शेअ्र कहा है—

दैरो-हरम भी कूचे-जानाँमें आये थे।
पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचाके हम॥

ज़ाहिद

उर्दू-शाइरोंने जाहिदो-नासेहकी पगडी उछालनेमे कोई कोर-कसर नही रखी है। कोई उनकी पगडी गिरवी रखवाता है, कोई उनके मुँडे हुए सरपर चपत जडनेसे बाज नही आता। कोई उनसे शराबसे भीगे हुए कपड़े धुलवाना चाहता है तो कोई उनके मुँहपर शराबके कुल्ले करनेसे नही हिचकता। गोया शेखो-जाहिद होलीके भडवे है कि हर शख्स उन्हें बनाना जरूरी समझता है। 'असर' भी परम्पराके अनुसार उन्हे छेडते है। मगर इस सलीकेसे कि न तो उनकी दिलआजारी हो और न अदबका दामन हाथसे छूटने पाये।

जाहिदको एअ्तबार है फ़िरदौसो-हूरका।
दुनिया-ए-रंगोबूका तमाशा किये बग़ैर॥
हविस[1] बिहिश्तकी[2] और इश्तियाक़[3] हूरोंका।
जनाबे जाहिदे-इस्मतपनाह[4] क्या कहना॥

हुस्ने-बयान

'असर'का यह हुस्ने-बयान और जिद्दत देखिए कि रूठी हुई प्रियतमासे ही उसके मनानेका उपाय पूछ रहे है—

इक बात भला पूछें "किस तरह मनाओगे?
जैसे कोई रूठा हो और तुमको मनाना है॥"

मालूम नही 'असर' साहबकी प्रियतमाने उन्हें मनानेका उपाय बताया या नही और बताया तो वे उसे अमलमे लाकर कामयाब हुए या नही। मगर मैने इसे ऐसा कारगर पाया कि इसकी करिश्मा-साजियोके क्या कहने?

---

[1]तृष्णा; [2]स्वर्गकी, जन्नतकी; [3]आकाक्षा; [4]शील-चारित्रका ढोंग करनेवाले।

मैंने इसका तजर्बा एक वयोवृद्ध आदरणीय साहित्यिक तपस्वीपर किया। बात यह थी कि उनकी पुस्तक ज्ञानपीठसे प्रकाशित होनी थी। समूची पुस्तकके प्रूफ उनके पास करीब दो वर्षसे पड़े हुए थे। व्यस्तताके कारण न स्वय प्रूफ़ देखते थे और न प्रकाशकको वापिस ही भेजते थे। रजिस्टर्ड पत्रोंका उत्तर तक न देते थे। प्रेसके तक़ाजोसे नाकमे दम था। एक रोज़ बैठे-बिठाये उक्त शेअ्र ज़ेहनमे आया तो तजर्बा कर ही डाला। उनको निम्न पत्र लिखा गया—

आदरणीय·····जी,

'अमर' लखनवीका एक शेअ्र सुनिए—

इक बात भला पूछें किस तरह मनाओगे?
जैसे कोई रूठा है और तुमको मनाना है॥

इसी शेअ्रके अनुसार आपसे एक सलाह लेनी है, और वह यह कि—हिन्दीके एक बहुत ख्यातिप्राप्त लेखकके पास ज्ञानपीठके करीब १॥ वर्षसे ७००-८०० पृष्ठके प्रूफ पडे हुए है। वह न स्वय पढ़ते है और न प्रकाशकको ही पढनेकी इजाजत देते है। वह सम्पादक-लेखक-शोषित-सघ आदि सस्थाओके सचालक है। उनके सम्बन्धमे कहीं भी शिकायत करना अपनी फज़ीहत कराना है। किसी पत्रमे भी उनके सम्बन्धमें नही लिखा जा सकता, क्योकि प्रायः सभी पत्रोमे उनके लेख निकलते है। शासक-वर्ग भी हमारी पुकार नही सुन सकता, क्योकि वह राज्य-परिषदके भी सदस्य है। ऐसी स्थितिमे आप हमें एक हिन्दी-हितैषीके नाते सलाह दीजिए कि क्या करना चाहिए। यदि आप उन्हें जानते भी हों तो हमे आपसे पक्षपातकी उम्मीद नही।

सुना है बनारसके एक न्यायी मजिस्ट्रेटकी पत्नीने अपनी मेहतरानीको गाली दी तो उन्होंने मेहतरानीकी ओरसे गवाही दी थी, और उनकी पत्नी-पर अदालतसे जुर्माना हुआ था। सैकड़ों पत्र उनके पास अनुनय-विनयके

पहुँचाये गये, किन्तु अब उन्होने पत्रोत्तर देनेकी भी कसम खा ली है। कृपया नेक सलाह दीजिए।

आपका

. . . . . .

शेअरने जादूका काम किया। १५ रोजके अन्दर समूचे प्रूफ सशोधित होकर लोट आये और उन सहृदय तपस्वीने मुक्त हृदयसे दाद भी दी।

'असर'का एक शेअर और सुनाना चाहता हूं। मगर एक गुजरे हुए वाकेअेके साथ, ताकि शेअरका पूरा लुत्फ उठाया जा सके।

मेरे एक परिचित युवककी शादी थी। युवक महाशय एम० ए० थे और अच्छे-खासे खुशपोश थे। बारातकी रवानगीपर इत्तिफाक देखिए कि उनके मुँहपर ततैयेने काट लिया। ससुराल पहुँचते-पहुँचते मुँह कुप्पा हो गया। मुँह, नाक, आँख सब यकसाँ नजर आते थे। ससुरालमे अच्छे खासे टेमू बनाये गये। दो रोज वहाँ उसी धजामे रहे। शादीका सारा मजा किर-किरा हो गया। तीसरे रोज घर पहुच तो फिर पहली हालतमे आ गये, क्योंकि ततैयेके काटनेका वरम तीन रोज बाद उतर जाता है। मिलनेपर मैंने इस घटनापर अफसोस जाहिर किया तो 'असर'-का यह शेअर सुनाकर हजरत हँसने लगे—

यह इत्तिफ़ाक तो देखो बहार जब आई।
हमारे जोशे-जुनूंका वही जमाना था॥

नैतिक कलाम

'असर'की गजलोमे इस तरहके नैतिक अशआर काफ़ी मिलते है—

तुमको है फ़िक्रे-तन-आसानी[1] 'असर'।
जिंदगी क़ुर्बानियोंका नाम है॥

---

[1]शारीरिक सुविधाओंकी चिन्ता।

टुक तूफ़ानकी मौजोंसे उलझ।
नाख़ुदा[1] कौन ? सफ़ीना[2] कैसा ?
किसीके काम न आये तो आदमी क्या है ?
जो अपनी फ़िक्रमें गुजरे वोह ज़िंदगी क्या है ?
हुई ख़िदमते-ख़ल्क़[3] जिन-जिनका मजहब।
ख़ुदाके वही बन्दे मक़बूल[4] निकले॥
जो दर्दसे वाक़िफ़ है, वोह ख़ूब समझते है।
राहतमे तुझे खोया, तकलीफ़में पाया है॥

'असर' कुछ काम कर जाओ, जहाँमे नाम कर जाओ।
रगड़कर ऐड़ियाँ मरनेमें इज़्ज़त हो नहीं सकती॥
शमए-ख़मोशकी तरह ज़िन्दा रहा कोई तो क्या ?
राजे-हयात है निहाँ सोजके साथ साजमें॥

प्रेरणात्मक

अकर्मण्य और कापुरुषोको इस शाइराना अन्दाजमे प्रेरणा की है कि बात दिलमे भी उतर जाय और कहनेवाला मौलवियाना एवं नसीहताना ऐबसे भी बच जाय—

न हौसला, न तमन्ना, न वलवला, न उमंग।
यह बेहिसी[5] नहीं ऐ दिल ! तो बेहिसी क्या है ?
जज़बए-मंसूर[6] कैसा ! बेहिसी यह है 'असर'।
दअ़वते-दारोरसनपर[7] अंजुमन ख़ामोश है॥
अहले हिम्मतने हुसूले-मुद्आमें[8] जान दी।
और हम बैठे हुए रोया किये तक़दीरको॥

---

[1]मल्लाह; [2]नाव; [3]जनताकी सेवा; [4]प्रिय; [5]अकर्मण्यता; [6]फाँसीपर झूलनेकी उमग; [7]बलिदान-निमत्रणपर; [8]लक्ष-प्राप्तिमें।

यह सोचते ही रहे और बहार ख़त्म हुई।
कहाँ चमनमें नशेमन बने कहाँ न बने॥

(देश विजित भी हो गया और हम मोर्चेके उपयुक्त स्थानकी तलाश ही करते रहे।)

ये नेता

जिन नेताओंकी बदौलत भारत-विभाजनके वक़्त साम्प्रदायिक नरमेध-यज्ञ हुआ, उनपर 'असर'का यह शेअर कितना सही चस्पाँ होता है—

अपने वोह रहनुमा[1] हैं कि मंज़िल तो दरकिनार।
काँटे रहेतलबमें[2] बिछाते चले गये॥

काश यह सम्प्रदायवादी 'असर'के इस शेअरपर अमल करते—

क़ाफ़िलेवालो! जरसके शोरमें क्या इम्तियाज़[3]।
गूँजने दो जयके नअ़रे और तकबीरे कहीं॥

(मन्दिरोंमें भी अजान हो और मस्जिदोंमें भी शख बजने लगे तो फिर इन मजहबी दीवानोंको कौन पूछे?)

भारत-विभाजनके बाद एक मुसलमान साहित्यिकको शरणार्थी कैम्पसे पाकिस्तान भेजा जाने लगा तो उसने जानेसे क़तई इन्कार कर दिया और जब न जानेका सबब पूछा तो बोला—"मुझे मेरे वतनमें अब रहनेको स्थान न मिले तो न सही, क़ब्रके लिए तो गजभर जमीन मिलेगी! अपने वतनमें मैं इतने दिन जिया हूँ, तो मरने अब मैं कहाँ जाऊँगा?" अब असरका एक शेअ़र सुनिए—

यहीं पै उ़म्र गुज़ारी, यहीं पै मरने दो।
तुम्हारे दरके सिवा और दर मैं क्या जानूं?

---

[1]नेता; [2]लक्षके मार्गमें; [3]भेद-भाव।

और जब विश्वस्त और परखे हुए साथियोंसे भी आये दिन वफ़ादारीके हलफ़ उठवाये जानेकी बात चलती रहती है तो 'असर' झल्लाकर कहते हैं—

ठुकराये जा रहे हैं ख़ुद अपने दयारमें।
और इसलिए कि भटकें न राहे-वफ़ासे हम॥

स्वतन्त्र भारतमें रहे हुए मुसलमान एक घुटन-सी महसूस करते हैं। उसका आभास अगस्त १९५१ में कहे गये 'असर'के इन दो शेअरोंमें मिलेगा।

गुलशनमें जब कहीं कोई जाए-अमाँ न हो।
फिर क्यों बहार अपनी नज़रमें ख़िज़ाँ न हो?
वोह ताएरे-असीर कहाँ जाय क्या करे।
आज़ाद होके जिसको नसीब आशियाँ न हो॥

१९३९ में प्रकाशित 'असर'की ग़ज़लोंके ४८० पृष्ठके संकलन 'बहारों और इन्तिख़ाबे असरिस्तानसे' और 'निगार', 'शाइर', 'माहेनौ' आदि पत्रोंमें प्रकाशित अगस्त १९५१ तक कही गई गजलोंके चन्द अशआर चुनकर दिये जा रहे हैं—

इस तरह शोर मचाती हुई आई है बहार।
बेड़ियाँ आप पहन लीं तेरे सौदाईने[1]॥

है इश्क़ जिन्हें, दिलका वोह कहना नहीं करते।
मर जाएँ मगर अर्ज़ेतमन्ना[2] नहीं करते॥

यूँ तड़प ऐ क़ल्बे-मुज़तर[3] यूँ निकल ऐ जाने-ज़ार[4]।
ख़ंजरे-क़ातिल सदा-ए-मरहबा[5] देने लगे॥

---

[1]प्रेमोन्मत्तने; [2]अभिलाषाप्रकट; [3]बेचैन दिल; [4]निर्बल आत्मा; [5]साधुवाद।

इक फूल है अन्देशा नहीं जिसको ख़िज़ाँका।
वोह ज़ख़्म जिसे आपने दामनसे हवा दी॥ ९

अपनी ही जुस्तजूमें[1] आवारा चारसू[2] हूँ।
जो मिट गया उभर कर, वोह नक़्शे-आरज़ू[3] हूँ॥

हुए जो शिकस्ता[4] ओ-मुन्तशिर[5] यह उन्हींसे जीनते-दहर[6] है।
जो है आइने, वोह सजे हुए है दुकाने-आइना-साज़में॥

कभी इस तरह भी हो जलवागर कि गुमाँ हो तुझपे है तू बशर।
तुझे यूँ तो देखा हज़ार बार, इसी बज़्मगाहे-मजाज़में॥

है हरेक साँस रुकी हुई, है हरेक नब्ज़ थमी हुई।
यह कहाँका दर्द भरा हुआ था दिले-शिकस्ताके साज़में॥

जज़्ब करले जो तजल्लीको[7] वोह दिल पैदाकर।
सहल है सीनेको दाग़ोंसे चिराग़ाँ[8] करना॥

मेरे निथाज़ेइश्क़की[9] मजबूरियाँ न पूछ।
रोना है जिसको मनअ़ वोह चश्मे-पुरआब[10] हूँ॥

मेरी ज़बान और है मेरा बयान और।
है शरह[11] जिसकी दर्द, वोह ग़मकी किताब हूँ॥

बरबाद कर चुके वोह, मैं बरबाद हो चुका।
अब क्या रहा है ? रोऊँ और उनको रुलाऊँ मैं॥
लाचुक नसीमे-सुबह[12] पयामे-विसाले-दोस्त[13]।
कबतक मिसाले-शमअ़ रगे-जाँ जलाऊँ मैं ?

---

[1]तलाशमें; [2]चारों तरफ, हर समय; [3]इच्छाओंका चिह्न; [4]-[5]टूटे और बिखरे हुए; [6]समारकी शोभा; [7]प्रकाशको; [8]दीपावली; [9]विनयपूर्ण प्रेमकी; [10]अश्रुपूर्ण नेत्र; [11]भाष्य, टीका; [12]प्रातःकालीन वायु; [13]प्रेयसी-मिलनका सदेश।

ख़ुद मेरे ज़ौक़े-असीरीने[1] मुझे रक्खा असीर।
उसने तो क़ैदे-मुहब्बतसे किया आज़ाद भी॥
किस तरह तड़पे जिसे यह डर लगा हो हमनशीं[2]!
दर्दमें शामिल न हो जाये किसीकी याद भी॥

शौक़ बढ़ता गया गुनाहोंका।
लज्जते-इन्फ़िआलने[3] मारा॥

ऐ दिलके आईनेमें छुपकर सँवरने वाले।
आँखे भी काश देखें, हुस्ने-तमाम तेरा॥

तरसी हुई निगाहें किस तरह तुझको देखे।
माना रगे-गुलू भी है इक मुक़ाम तेरा॥

जहाँ पलकोंके सायेमे हज़ारों फ़ितने सोते थे।
वहीं फ़ितरतने चुपके-से निगाहे-शरमगी[4] रख दी॥

बिनाए-मस्जिदेनों[5] इसलिए हुई वाइज़[6]!
वहाँसे फेरका रस्ता शराबख़ाना था॥

दिलका है रोना खेल नहीं है मुँहको कलेजा आने दो।
थमते ही थमते अश्क थमेगे, नासेहको समझाने दो*॥

जहाँ हो दुरंगी बहारो-ख़िज़ांकी।
चमन वोह नहीं आशियानेके क़ाबिल॥

नामाबरको मै क्या पता बतलाऊँ?
ख़ैरसे घर नहीं उनका कोई॥

---

[1]बन्दी होनेके चावने, [2]गडौसी; [3]पापोंकी शर्मके लस्केने; [4]शरमीली आँखे; [5]नवीन मस्जिदका निर्माण; [6]उपदेशक।

*थमते-थमते थमेगे आँसू।
रोना है कुछ हंसी नहीं है॥
---सम्भवतः मीरका शेअर है

पूछनेवाले दर्दे-पिनहाँके।
अपने चेहरेका रंग भी देखा?

यादे-चमनकी जाये क्या? चैन क़फ़समें आये क्या?
हमसे छुटा जब आशियाँ दिन थे वही बहारके॥

बहरे-हस्तीसे सुबकबार गुज़रना सीखो।
तुमको जीना नहीं आता है तो मरना सीखो॥

माजराए-शबेग़म दिलको सँभालूँ तो कहूँ।
ठहरो-ठहरो मैं ज़रा होशमे आलूँ तो कहूँ॥

तासीर दर्देदिलमें या रब! कहाँकी भर दी।
उसने भी आज आख़िर चुपके-से आह कर दी॥

आन-की-आन उनको देखा था।
जबसे थर्रा रही है नब्ज़े-निगाह॥

वोह कामकर, बुलन्द हो जिससे मज़ाके-ज़ीस्त।
दिन ज़िंदगीके गिनते नहीं माहो-सालसे॥

(बहारोंसे)

उभर न बहरे-जहाँमे[1] हुबाबके[2] मानिन्द।
जो तहनशीं[3] हुआ क़तरा दुरेयगाना[4] हुआ॥

भूलता ही नहीं वह नाज़से कहना तेरा—
"ख़ैरसे इन दिनों कुछ कम तो है सौदा तेरा"॥

बेहोशियोंमें अहदेजवानी बसर हुआ।
पीरी[5] चली है उम्रे-रवाँके[6] सुराग़में॥

ग़म नहीं तो लज़्ज़ते-शादी नहीं।
बे-असीरी लुत्फ़े-आज़ादी नहीं॥

---

[1]संसार-सागरमे; [2]बुलबुलेकी; [3]दरियाके नीचे; [4]अनमोल मोती; [5]बुढ़ापा; [6]गई हुई ज़िन्दगीके, बीते दिनोंके; [7]खोजमें।

महशरसे यूँ चले हैं गुनहगारे जुर्मे-इश्क़।
गोया उन्हींमें बँट गया जितना ग़ुरूर था॥

दिलमें है दर्द, दर्दमें इक लज़्ज़ते-ख़लिश[1]।
आज़ारे-इश्क़ने[2] मुझे इन्साँ बना दिया॥

हायरे तेरी जुस्तजूका[3] फ़रेब।
हर क़दम पर गुमाने-मंज़िल[4] था॥

उसकी बेदादका[5] नहीं शिकवा।
मेरा ही शौक़ मेरा क़ातिल था॥

नज़अमें[6] जब हम सुनेंगे तेरी बातें प्यारकी।
दिल ठहरता जायगा और दम निकलता जायगा॥

शाहिदे-सुबहने[7] हँसकर जो ज़रा देख लिया।
कोहो-सेहरापें[8] फटा पड़ता है जोबन कैसा?

मिटे हैं किसपें किसीको गुमाँ[9] नहीं होता।
मज़ाक़े-इश्क़ हमारा अयाँ[10] नहीं होता॥

तुम्हीं हो रौनक़े-गुलशन, तुम्हीं हो रंगे-बहार।
मगर किसीको तुम्हारा गुमाँ नहीं होता॥

तुम आईनेकी तरफ़ ग़ौरसे कभी देखो।
हमें जो मद्दे-नज़र[11] है बयाँ नहीं होता॥

बेताबियोंने आह गुनहगार कर दिया।
दिलकी लगीसे उनको ख़बरदार कर दिया॥

मेरी इस आर्ज़ूने कि हो तर्के-आर्ज़ू।
जो काम सहल था उसे दुश्वार कर दिया॥

---

[1]चुभनका आनन्द; [2]प्रेम-रोगने; [3]खोजकी उत्सुकता; [4]लक्षपर पहुँचनेका विश्वास; [5]जुल्मका; [6]मृत्यु-समयमे; [7]प्रातःकालरूपी सुन्दरी-ने; [8]पर्वतों-जंगलोपर; [9]शक; [10]प्रकट; [11]पसन्द है, इष्ट।

तुझसे कहते थे कि ऐ दिल! हिज्रमें[1] आँसू न पी।
क़तरा-क़तरा जमा होकर मौजज़न दरिया हुआ॥

मुझे हर ख़ाकके ज़र्रेपे यह लिक्खा नज़र आया—
"मुसाफ़िर हूँ अदमका और फ़ना है कारवाँ मेरा"॥

वफ़ा कैसी, नहीं मजबूर था वोह वअ़दा करने पर।
यही एहसान क्या कम है कि दिल तो रख लिया मेरा॥

नहाकर निखरना तेरा याद है।
पसीनेमें डूबा गुलाब आगया॥

उठे बादाकश झूमकर नअ़राज़न।
दमे-वअ़ज़[2] नामे-शराब आगया॥

मरनेका भी न सलीक़ा आया।
यह तो दुश्वार कोई काम न था॥

ख़ुद लिपटती रही दुनिया उससे।
जिसको दुनियासे कोई काम न था॥

पूछते क्या हो कि रातें हिज्रकी क्योंकर कटीं?
ख़ुद मुझे एहसास अपने हालका मुश्किल हुआ॥

साँस भी ले सँभलके ऐ नादाँ!
सख़्त नाज़ुक है रिश्ता उल्फ़तका॥

ख़ूगरे-दर्द[3] हो अगर इन्साँ।
रंजमें भी मज़ा है राहतका[4]॥

शोख़ीसे उसने बातका लहज़ा बदल दिया।
इक़रार लबतक आते ही इनकार हो गया॥

---

[1]वियोगमें; [2]व्याख्यानके प्रसगमें; [3]दुःखोंका आदी; [4]सुख-चैनका।

है उनका शौक़ बर्क़के[1] परदेमें मुज़तरिब[2]।
मूसा समझ रहे हैं कि दीदार[3] हो गया॥

वअ़देके दिन गुज़र गये फिर भी है मुन्तज़िर[4]।
कुछ हमको इन्तज़ारका आज़ार[5] हो गया॥

हाय वोह दिल जिसके अरमां सर्फ़ेमातम[6] हो गये।
हाय वोह महफ़िल ग़मोंने जिसको बरहम[7] कर दिया॥

करवटें क्यों बदल रहे हैं हुज़ूर!
अभी आग़ाज़[8] है कहानीका॥

वफ़ाका सीखले तुमसे कोई सिला देना।
बजाय फ़ातिहा नक़्शे-लहद[9] मिटा देना॥

हर एक हसरते-मुर्दामे फिरसे जान आई।
ग़ज़ब था नज़अ़में काफ़िरका मुसकरा देना॥

किसीका हाय यह कहना 'असर'से वक़्ते-विदाअ़—
"जो हो सके तो हमें दिलसे तुम भुला देना"॥

ख़ुम ख़ाना-ए-निशात[10] है वोह सुर्ख़ अँखड़ियाँ।
अँगड़ाइयोंमे इत्र खिचा है ख़ुमारका॥

पुरकैफ़ किस क़दर है सितमगरकी गुफ़्तगू।
साग़र छलक रहा है मए-ख़ुश गवारमें॥

चन्द क़िस्मे जुनूँकी[11] हैं नासेह!
तुमको सौदाए-वअ़ज़ो-पन्द[12] हुआ॥

---

[1]बिजलीके; [2]बेचैन; [3]दर्शन; [4]प्रतीक्षा करते हुए; [5]रोग; [6]शोक करनेमें नष्ट; [7]छिन्न-भिन्न; [8]प्रारम्भ; [9]क़ब्रका निशान; [10]आनन्दरूपी मदिरालय, [11]पागलपनकी, [12]भाषण-देने, नसीहत करनेकी सनक।

बेख़ुदी[1] परदादारे-ग़फ़लत[2] है।
ग़म उठानेका हौसला न रहा॥

आबले दिलके बहे यूँ फूटकर।
जिस तरह दरियामें उठ-उठकर हुबाब[3]॥

तुम जब उसे सुनोगे सर देरतक धुनोगे।
पुरदर्द इस क़दर है, अफ़सानए-मुहब्बत॥

आह किससे कहे कि हम क्या थे?
सब यही देखते हैं कि क्या है हम॥

मौतमें ज़ीस्त[4] देखने वालो।
देख लो ज़ीस्तमें फ़ना[5] है हम॥

दमे-आख़िर भी आप क्यों आये?
जाइए-जाइए ख़फ़ा है हम॥

अब करमकी[6] भी दिलको ताब[7] नहीं।
किस तरह कुश्तए-जफ़ा[8] है हम॥

सख़्तियाँ झेलके तकमीले-मुहब्बत क्या ख़ूब?
इश्क़बाज़ी है 'असर' पेशएमज़दूर नहीं॥

ताएरे-जाँको[9] परे परवाज़ है यह क़ैदे-तन।
हम लिये फिरते हैं अपने साथ ज़िंदाँ,[10] क्या करें?

उसकी रहमतको[11] हया आने लगी।
किस क़दर आलूदए-तक़सीर[12] हूँ॥

---

[1]तन्मयता, आत्म-विस्मृति; [2]गफलतोका पर्दा; [3]बुलबुले; [4]ज़िन्दगी; [5]मृत्यु; [6]कृपाओंके; [7]सहनेकी शक्ति; [8]अत्याचारोंसे मिटे हुए; [9]जीवनरूपी परिन्देको; [10]शरीररूपी पिंजरा; [11]ईश्वरीय दयाको; [12]पापोंसे लथ-पथ।

बिजली बनेंगे ख़ानए-सैयादके लिए।
तिनके बचे हुए जो मेरे आशियाँके हैं॥

बेरब्त होगई थी इबारत कहीं-कहीं।
काफ़िरने नक़्ल की वही ख़तके जवाबमें॥

पज़मुर्दा[1] होके फूल गिरा शाख़से तो क्या?
वोह मौत है हसीन जो आये शबाबमें[2]॥

हंगामए-फ़िराक़मे[3] थी दिलकी क्या बिसात।
इक आबला था फूट गया, इज़्तराबमें[4]*॥

कभी मौत कहती है अलहज़र[5], कभी दर्द कहता है रहम कर।
मैं वोह राह चलता हूँ पुरख़तर[6] कि जहाँ फ़नाका[7] गुज़र नहीं॥

ख़बर अपनी नहीं इबरतके[8] क़ाबिल रंगे-गुलशन है।
हँसी आती है फूलोंको जो गुंचे मुसकराते हैं॥

रहा है साबिक़ा[9] ग़मसे यहाँतक हमनशीं[10]! मुझको।
ख़ुशीके नामसे भी अश्क आँखोंमें भर आते हैं॥

मैं अब सिज्दे[11] करूँ, दिलको सँभालूँ या बढ़ूँ आगे।
नज़र आता है कोसोंसे किसीकी आस्ताँ[12] मुझको॥

गुज़ारी उम्र सारी राज़े-हस्तीके[13] समझनेमें।
परस्तिश[14] तेरी करता, इतनी फ़ुरसत थी कहाँ मुझको?

---

*दिलकी बिसात क्या थी निगाहे-जमालमें।
इक आईना था टूट गया देख-भालमें॥

—'सीमाब' अकबराबादी

[1]मुर्झाकर; [2]जवानीमे; [3]विरहके तूफानमे; [4]बेचैनीमे; [5]ख़ुदाकी पनाह, बचाओ; [6]सकटोंसे भरी हुई; [7]मृत्यु भी जहाँ चलते भयभीत हो; [8]नसीहत लेने योग्य; [9]वास्ता; [10]पड़ौसी, मित्र; [11]सासटाँग प्रणाम; [12]डचोढ़ी; [13]जीवन-भरके भेद; [14]उपासना।

वोह तड़पता नहीं कभी ज़ालिम !
जिसने भरपूर चोट खाई हो ॥

इस सादगीपै जान मेरी क्यों फ़िदा न हो।
जब दिल दुखाके तू कहे—"अच्छा ख़फ़ा न हो" ॥

घुट-घुटके मर न जाये तो बतलाओ क्या करे।
वह बदनसीब जिसका कोई आसरा न हो ॥

जिस दरपै मैं गया यह सदा आई—"दूर-दूर"।
ऐसा भी कोई तेरी नज़रसे गिरा न हो ॥

क्या-क्या दुआएँ माँगते हैं सब मगर 'असर' !
अपनी यही दुआ है, कोई मुद्दआ[1] न हो ॥

ऐ महवेशौक़[2] आये भी वोह और चले गये।
क्यों तूल दे रहा है अ़बस[3] इन्तज़ारको ॥

अहले वतनपै यह भी गिराँ[4] हो न ऐ सबा[5] !
बर्बाद रहने दे मेरे मुश्ते-ग़ुबारको[6] ॥

बूए-वफ़ा न फूटे कहीं, उनको ख़ौफ़ है।
फूलोंसे ढक रहे हैं, हमारे मज़ारको ॥

रोइए यासपर[7] उस कुश्तएग़मकी[8] कि जिसे।
जौक़े-फ़रियाद[9] न हो, हसरते-बेदाद[10] न हो ॥

क़ैसके नज़दीक लैला पर्दे-ए-महमिलमें है।
कौन दीवानेको समझाये कि तेरे दिलमें है ॥

---

[1]इच्छा; [2]दर्शनोकी उत्सुकतामे लीन; [3]व्यर्थ; [4]बोझ, भारी; [5]हवा; [6]मुट्ठीभर धूलको; [7]निराशापर; [8]दुःखोमे मिटे हुएपर; [9]न्याय पानेके लिए, पुकार करनेकी उत्कण्ठा; [10]जुल्म-सहनकी पश्चात्ताप।

मैं अगर उससे कहूँ भी तो बताओ क्या कहूँ।
जब उसे मालूम है जो कुछ कि मेरे दिलमें है॥

उसकी रहमतने कहा—"जो माँगना हो माँगले"।
मेरी ग़ैरत बोल उठी "तू ही दिले-साइलमें[1] है"॥

मेरा हँसना है जख़्मकी सूरत।
जो मुझे देखता है रोता है॥

दीदएगुल[2] थे सुबहको नमनाक[3]।
जो भी हँसता है बहुत रोता है॥

वोह लचक ऐसी कहाँसे लायेगी।
शाख़े-गुल क़दसे तेरे शर्मायेगी॥

हम समझते थे कि उल्फ़त खेल है।
यह ख़बर क्या थी लहू रुलवायेगी॥

झोलियाँ भरती हैं क्यों बादे-सहर?
फूल किसकी क़ब्रपर बरसायेगी?

छोड़ दीजे मुझको मेरे हालपर।
जो गुज़रती है गुज़र हो जायेगी॥

उनसे बेताबीमे हम कहनेको सब कुछ कह गये।
दिलके टुकड़े होके लेकिन आँसुओंमे बह गये॥

ऐ हसीं! हम वाक़िफ़े-आदाबे-मजलिस हैं मगर—
इस क़दर प्यार आ गया मुँह तेरा तकते रह गये॥

माना ख़िरामेनाज़[4] भी दिलकश है इक अदा।
हम तुमको देखते कि क़यामतको देखते॥

---

[1]भिक्षुकके हृदयमें; [2]फूलोंके नेत्र; [3]अश्रुपूर्ण; [4]प्रेयसीकी चाल।

उकता न जाते बादे-सहरकी जो छेड़से।
फूलोंमें छुपके तेरी नज़ाकतको देखते॥

मैं इधर चुप हूँ, वोह उधर चुप है।
इक तमाशा हुआ हया न हुई॥

उसकी रहमतको नाज़ हो जिसपर।
तुझसे ऐसी 'असर' ख़ता न हुई॥

क़ैसके[1] जज्ब-ए-उल्फ़तकी[2] लताफ़तके निसार[3]।
पर्दा महमिलका[4] न उट्ठा कभी दीवानेसे॥

नौहाख़्वाँ[5] रहते हैं रातोंको मेरी तुरबतपर।
नींद आ जाती थी जिनको मेरे अफ़सानेसे॥

क्या मुबारक है यह आलम नज़अका[6], आये हैं वोह।
फिर मुरत्तब हो निज़ामे-ज़िन्दगी मेरे लिए॥

फिर क़त्लगहमें आये हैं कुछ मुजरिमाने-इश्क़।
सरको बुलन्द सीनेको उरियाँ किये हुए॥

इतना तो सोच ज़ालिम! जौरोजफ़ासे पहले।
यह रस्म दोस्तीकी दुनियासे उठ न जाये॥

ज़ाहिद इधर खड़े हैं, गुनहगार उस तरफ़।
देखें तेरे करमका सज़ावार कौन है॥

फिर तुम्हें फ़ुर्सत न हो या मैं ही आपेमें न हूँ।
यह बताते जाओ मेरे हक़में क्या मंज़ूर है॥

ख़न्द-ए-गुलपर[7] बहुत सुबहे-चमनको नाज़ है।
हाँ ज़रा फिर मुसकरा कर मुझसे पर्दा कीजिए॥

---

[1]मजनूके; [2]प्रेम-भावकी सुरुचिपर; [3]न्योछावर, कुर्बान; [4]लैलीके महमिलका पर्दा; [5]शोक, सन्ताप, रोते हुए; [6]मृत्युका समय; [7]फूलकी मुसकानपर।

कोई इस गुलशने-हस्तीमें क्या महवेतमाशा हो।
चटकनेमें कलीके नज़अका आलम निकलता है॥

होश मेरे उड़ गये जब यह सुना—
"हश्र है, दीदार उनका आम है"॥

हिज्रमें राहत-सी राहत है नसीब।
दर्द दिलमें लबपै तेरा नाम है॥

अदमसे मंज़िले-हस्तीमें यूँ हम नातवाँ आये।
सबाके साथ जैसे बूएगुलका कारवाँ आये॥
इमामे-मस्जिदेजामअ शबे-आदीना[1] मैखाना।
कोई पूछे तो हजरत आप रिन्दोंमे कहाँ आये॥
मैं अपना दर्दे-दिल कहता हूँ, वोह मुँह फेरे हँसते है।
ख़ुदा बन्दा यह कैसे दर्दे-दिलके क़द्रदाँ आये॥
वतन अफ़साना था जब हम असीराने-कुहन छूटे।
चमन वीराना था जब ढूँढ़ते हम आशियाँ आये॥
ज़बाँ खुलते ही उस क़ाफिरने यह कहकर ज़बाँ सीदी।
'असर' अच्छा न होगा, अब जो शिकवे दरमियाँ आये॥

यह महवियतका आलम है किसीसे भी मुखातिब हूँ।
ज़बाँपर बेतहाशा आप ही का नाम आता है॥

तुम्हारी यादमें जीना, तुम्हींपर जान दे देना।
हमें कुछ काम आता है तो इतना काम आता है॥

अजलने गोरे-ग़रीबाँकी[2] सिम्त[3] इशारा किया।
ज़मीन ढूँढ़ता फिरता था मैं मकाँके लिए।

---

[1]जुमेअरात; [2]कब्रिस्तानकी; [3]तरफ।

ख़ुद-ब-ख़ुद दिलका दाग़ जलता है।
बे जलाये चिराग़ जलता है॥
दाग़े-दिल आज लौ नहीं देता।
कुछ बुझा-सा चिराग़ जलता है।
आहे भड़का रही है शोल-ए-इश्क।
आँधियोंमें चिराग़ जलता है॥
ज़ुल्फ़े बिखरी हुई है आरिज़पर।
बदलियोंमे चिराग़ जलता है।

बुतको अल्लाह बनाकर छोड़ा।
काम कुछ कर गये, करने वाले॥

तेरी मर्ज़ी हो जहाँ भेज दे ऐ दावरे-हश्र[1]!
मुझसे दुहराई न जायेगी ख़ताये अपनी*॥
कोहो-सहरामें[2] जहाँ बैठके मैं रोया था।
उन मुक़ामोंसे सुना जाता है दरिया निकले॥
अदा है याद तेरे मुसकराके आनेकी।
और उसके बाद वोह दामन छुड़ाके जानेकी॥
जहाँपे रास्ता भूला है बार-हा ज़ाहिद।
वहींसे राह मुड़ी है शराबख़ानेकी॥
सिसकते रहे जाँ-ब-लब[3] कैसे-कैसे?
अयादतको[4] आते रहे आनेवाले॥

---

*मेरी रुसवाईका आलम दावरे-महशर न पूछ।
मैं भरी महफ़िलमें यह क़िस्सा सुना सकता नहीं॥
—'जोश' मलसियानी

[1]ईश्वर; [2]पर्वतो-जगलोंमे; [3]मृत्यु-आसन्न; [4]मिजाजपुर्सीको, रोगीकी ख़बर लेनेवाले।

इधर आ कलेजेमें तुझको छुपालूं।
ख़ुद अपनी अदाओंसे शर्माने वाले॥

यह कहके उसने फिर आँसू न पूँछे।
"तुझे रोनेकी आदत पड़ गई है"॥

फ़नापै[1] जिसकी बिना[2] है वह है बक़ा[3] मेरी।
यह इब्तदा[4] है तो क्या होगी इन्तहा[5] मेरी?

फिर उसके बाद वोह शर्माये और बहुत शर्माये।
गदा[6] समझके सुना तो किये सदा[7] मेरी॥

बुतोंने-संग दिलसे दिल लगाके।
मिला क्या तुझको ओ बन्दे ख़ुदाके?
ख़याले-ज़ब्त नाला, पासे-उल्फ़त।
मुसीबतमें पड़ा हूँ दिल लगाके॥

तुम्हारा हुस्ने आराइश[8] तुम्हारी सादगी ज़ेवर।
तुम्हे कोई ज़रूरत ही नहीं बनने-सँवरनेकी॥

यूं गुज़रते हो कभी गोया शनासाई[9] न थी।
दिल-नवाज़ीके[10] वोह सब अगले तरीक़े क्या हुए॥

मुझको अपनी ख़बर नहीं ऐ दोस्त!
हाय! किस वक़्तमें तू आया है॥

है तसव्वुरकी भी निराली शान।
जो है नादीदा[11] उसको पाया है॥

---

[1]मृत्यु ही जिसकी नींव है; [2]ज़िन्दगी; [3]प्रारम्भ, शुरुआत; [4]अन्त; [5]फ़कीर; [6]बोली, बात; [7]शृंगार; [8]जान-पहिचान; [9]सहृदयताके; [10]जो दिखाई न दे सके।

इसलिए देखता हूँ तेरी निगहकी गर्विश।
देखना है मुझे दुनियाकी हक़ीक़त क्या है॥

अबस[1] दैरो-हरमका[2] अज़्म[3] है क्या तुमको सौदा[4] है।
'असर' जिसकी तमन्ना है वह तेरे दिलमें रहता है॥

हसरतें दिलकी मुझे रो भी चुकीं देर हुई।
आप अब पूछते हैं "तेरी तमन्ना क्या है"?

किसकी निगाहें-लुत्फ़ने रोशन किया दिमाग़।
तफ़सीर[5] लिख रहा हूँ मैं अपने गुनाहकी॥

झोलियाँ भरती है क्यों बादेसहर।
फूल किसकी क़ब्रपर बरसायगी?
—इन्तेखाबे असरिस्तानसे

वोह गुज़रा इधरसे जो बेगानावार[6]।
चिराग़ेलहद[7] झिलमलाने लगा॥

क्या हसरते-दीदार[8] है? हरबार यह समझा।
गोया कभी दीदार मयस्सर न हुआ था॥

जिन ख़यालातसे हो जाती है वहशत दूनी।
कुछ उन्हींसे दिले-दीवाना बहलते देखा॥
नज़रें उठीं और उठके झुकीं तमकनतके साथ।
गोया यही जवाब था मेरे सवालका॥

ऐसी तौबासे तो मैख़्वार ही रहना था 'असर'!
दिलपै इक हाथ है, इक हाथमें साग़र टूटा॥

---

[1]व्यर्थ; [2]मन्दिर-मस्जिदका; [3]इरादा; [4]उन्माद; [5]भाष्य, टीका; [6]अपरिचितोकी तरह; [7]क़ब्रका दीपक; [8]देखनेकी लालसा।

तुमने पूछा इस तरह हाले-दिले ख़ाना-ख़राब।
याद अब कुछ भी नहीं, अब तक बहुत कुछ याद था॥

यह कौन मुग़न्नी[1] था, यह किसका था फ़साना।
कहते हैं धुआँ जुम्बिशे-मिज़राबसे[2] निकला॥

सैयादने छेड़ा वहीं अफ़सानए-गुलशन।
जब क़स्द असीरोंने[3] किया तर्के-फ़ुग़ाँका[4]॥

मुक़द्दरने जो पहुँचाया भी उनके आस्तानेतक[5]।
यही दिल है तो हमको होश सिज्देका कहाँ होगा?

हमवारियेवफ़ासे[6] उलटने लगा था दम।
ख़ुश हूँ कि तुमने क़स्द किया इम्तहानका॥

वोह ग़ौर बात-बातपै, वोह शकभरी नज़र।
या रब! न मुझसे साफ़ हो दिल बदगुमानका॥

चमन है, शाख़ेगुल है, आशियाँ है, फिर नहीं कुछ भी।
ग़ज़ब है ताएरे-आज़ादका[7] बे बालोपर होना॥

वह मेरा न कहनेमें कह जाना सब कुछ।
वह उनका अचानक इधर देख लेना॥

समझ तो अर्ज़े-तमन्नाकी मसलहत हमदम[8]!
ख़ामोश रहनेसे वोह और बदगुमाँ होता॥

जहाँकी हर इक शै है, फ़ानी[9] मगर—
बनानेमें क्या-क्या तकल्लुफ़ किया॥

---

[1]गायक; [2]सितार बजानेका वह तार जो वादक उँगलीमे लगाये रहते है; [3]बन्दियोंने; [4]आह न करनेका; [5]चौखटतक; [6]निरन्तरकी भलाईसे; [7]स्वतन्त्र पक्षीका; [8]मित्र; [9]नष्ट होनेवाली।

हरइक रहगुज़रमें है सरगोशियाँ।
ख़ुदा जाने किसपर सितम हो गया?

निगाहे-शौक़ लगातार न यूँ देखे जा।
हो गये सुर्ख़ वोह लबहाये-मै आलूद[1] बहुत॥

रहे दाग़ होकर, बहे ख़ून होकर।
'असर' है वह दिल कामयाबे-मुहब्बत॥

कोई दिलपर हाथ रखकर उठ गया।
हाथ अब दिलसे उठाऊँ किस तरह॥

भूलने वालेसे कोई पूछता।
मैं तुझे दिलसे भुलाऊँ किस तरह?

आज कुछ मेहर्बान है सैयाद।
क्या नशेमन भी हो गया बर्बाद?

हर साँस एक ताज़ा जराहतका है पयाम।
नश्तर बनी हुई है रगे-जाँ तेरे बग़ैर॥

सूरते-मौज हो सरगर्मे-सफ़र।
साहिल आ जाये तो कतराके गुज़र॥

थे जो ख़फ़ा, हैं वोह ख़फ़ा आजतक।
क्यों हैं ख़फ़ा? यह न खुला आजतक॥

उसने किस लुत्फ़से पूछा कि 'असर' कैसे हो?
बेख़ुदीका हो बुरा, कह दिया "कुछ याद नहीं"॥

---

[1]मदिरासे तर ओठ।

पूछनेवाले तूने पूछा, लुत्फ़ेकरम, एहसान किया।
लबपर आये हर्फ़े-तमन्ना, इश्क़के यह आदाब नहीं॥

अहले दिलसे पूछो 'असर' क्या लज्जत है नाकामीमें।
हाथ उठा बैठे मतलबसे, मतलब गो नायाब नहीं॥

तासीर[1] पेशे-रू थी बाबे-क़ुबूल[2]वा[3] था।
माँगी गई न मुझसे माँगी हुई दुआएँ॥

अश्क़ मिज़गाँपै रह गया होगा।
मेरे ग़म-ख़ानेमें चिराग़ कहाँ?

रास्ते बन्द हैं, किधर जायें?
तुम हो पेशे-नज़र, किधर जायें॥
'असर' तेरे कूचेसे बच-बचके निकला।
अभी होश इतना है दीवानगीमें॥
कौन 'असर' की नज़रमें समाये।
देखी है उसने तुम्हारी आँखें॥

हवामें कुछ धुआँ-सा उठके फ़ौरन फैल जाता है।
क़फ़समें याद जब आता है मेरा आशियाँ मुझको॥
ख़ूबिएनाज़[4] तो देखो कि उसीने न सुना।
जिसने अफ़साना बनाया मेरे अफ़सानेको॥
इसी उलझनमें उन्हें लिखा न अब तक नामा[5]।
कोई मज़मून शिकायतका रक़म[6] हो कि न हो॥

---

[1]हमारे इश्क़का प्रभाव उनके समक्ष था; [2-3]स्वीकृतिका पृष्ठ खुला हुआ था; [4]उनके गर्वकी ख़ूबी; [5]पत्र; [6]लिखना।

हाल पूछा था तो इस तरह न पूछा होता।
रहगई अर्ज़े-तमन्नाकी तमन्ना मुझको॥

खोये हुए-से रहना दिनको, रोते फिरना रातोंको।
जो है आक़िल वोह क्या समझे, इश्क़-ओ-जुनूंकी बातोंको॥

फ़ानूसके पर्देमें लौ शमअ़की थर्राई।
अल्लाहरे अन्दाज़े-जाँ-सोज़िये-परवाना[1]॥

जुनूंके जोशमें अपनी बलाएँ लेता है।
कहा जो नाज़से तुमने 'असर' को 'दीवाना'॥

तकिया कलाम ही सही, इश्क़से मर रहा हूँ मैं।
क्यों कहो बात-बातपर "देखभला-सा नाम है"॥

क़ासिद! पयाम उनका न कुछ देर अभी सुना।
रहने दे महवे-लज़्ज़ते-जौक़े-ख़बर[2] मुझे॥

जानता हूँ कि नशेमन नहीं बाक़ी सैयाद!
फिर भी इक लुत्फे-ख़लिश[3] हसरतेपरवाज़में[4] है॥

इक रोज़ दिलमें तेरी मुहब्बत थी जागुज़ीं[5]।
अब-तू-ही तू है तेरी मुहब्बत नहीं रही॥

मैं क्या सुनाऊँ दर्दे-मुहब्बतका माजरा।
हद हो गई कि तुमसे शिकायत नहीं रही॥

---

[1]पतंगेके जल-मरनेका अन्दाज़; [2]प्रेयसीके सदेश आनेके आनन्दमें लीन; [3]चुभनका आनद; [4]उड़नेकी अभिलाषामें; [5]आसीन।

हुआ तो हश्रके दिन उनका सामना लेकिन।
हुजूमे-आममें क्या अर्ज़े-मुद्दआ करते॥
वोह बेवफ़ा हैं कि हम बेवफ़ा, ख़ुदा जाने।
हयात ख़त्म है और उनकी आमद-आमद है॥

दूरसे गाह-गाह एक निगाह।
उसको भी मुद्दते मदीद हुई॥
दिले-नामदीदा काँप-काँप उठा।
यासके[1] बाद जब उमीद हुई॥

कौन कहता है कि मौत अंजाम होना चाहिए।
ज़िंदगीका-ज़िंदगी पैग़ाम होना चाहिए॥

आग़ाज़े-मुहब्बतकी लज्जत, अंजाममें पाना मुश्किल है।
जब दिलको मसोसे रहते थे, अब हाथ लगाना मुश्किल है॥

तेरी नज़र नहीं होती हरीफ़[2] शोख़ीकी।
नज़रसे आज यह किसको गिरा दिया तूने?

ख़ता मुआफ़ मेरी बेकसीपै करके नज़र।
कुछ और हौसलएग़म बढ़ा दिया तूने॥

हाय उनकी शोख़ियाँ और शौक़की रुसवाइयाँ।
देखते थे वोह हमें हम उनको क्योंकर देखते॥
उनके आनेकी बँधी थी आस जबतक हमनशीं[3]?
सुबह हो जाती थी अक्सर जानिबेदर[4] देखते॥

ईमाँ ग़लत, उसूल ग़लत, इद्दिआ[5] ग़लत।
इन्साँकी दिलदेही[6] अगर इन्साँ न कर सके॥

---

[1]निराशाके; [2]प्रतिद्वंद्वी; [3]एक ही जगह बैठने वाले पड़ोसी; [4]दरवाज़ेकी तरफ़; [5]दावा; [6]हृदयको सांत्वना।

मिज़गाँसे[1] यूँ टपक पड़ा इक अश्के-ख़ूं 'असर' !
पटका हो जैसे जाम किसी बादाख़्वारने[2] ॥

कुछ देर फ़िक्र आलमे-बालाकी छोड़ दे।
इस अंजुमनका[3] राज़[4] इसी अंजुमनमें है ॥

नज़र उस हुस्नेताबाँतक[5] ब-आसानी नहीं जाती।
मगर जाकर पलटती है तो पहचानी नहीं जाती ॥
हुई मुद्दत कि उसने नाज़से दामनको झटका था।
अभीतक मौजअेगुलकी[6] परेशानी नहीं जाती ॥

कुछ और बढ़ गई है परीशाँ निगाहियाँ।
दमभर जो तेरे ग़मसे तबीअ़त बहल गई ॥

अल्लाहरी बदगुमानी[7] देता हूँ जब दुआएँ।
कहता है चुपके-चुपके "इसमें भी कुछ दग़ा है" ॥
यह भीगी रात और यह बरसातकी हवाएँ।
जितना भुला रहा हूँ, वह याद आ रहा है ॥

न पूछ सादगिये-शौक़, मान जाता हूँ—
यह जानते हुए दअ़वा फ़क़त बहाना है ॥
चल गया उस निगाहका जादू।
कह गये दिलकी बात क्या कहिए ॥
जबतक उसकी बातका मैं दूँ जवाब।
इतने अ़र्सेमें क़यामत हो गई ॥
याद करले भूलनेवाले मेरे।
अब तो बिछुड़े एक मुद्दत हो गई ॥

---

[1]पलकोंके बालोंसे; [2]शराबीने; [3]महफ़िलका; [4]भेद; [5]चन्द्रमुखीतक; [6]दुखी फूलोंकी; [7]अविश्वसनीयता ।

न जाने बात यह क्या है, तुम्हें जिस दिनसे देखा है।
मेरी नज़रोंमें दुनियाभर हसीं मालूम होती है॥

अपनी लज्जतमें गुम हुए नग़मे[1]।
अब ख़मोशी सुख़नसे[2] बेहतर है॥

—निगार जनवरी १९४१ ई०

यह भी नसीब! माइले-पुरसिश[3] वोह जब हुए।
जो मेरा मुद्दआ था, मुझीपर अयाँ[4] न था॥
हंगामए-हस्तीकी[5] बस इतनी हक़ीक़त थी।
इक मौज थी जो उठकर फिर मिल गई दरियासे॥

हज़ार हुस्न थे काफ़िरकी सादगीमें निहाँ।
न इश्वा[6] था, न करिश्मा, फ़क़त जवानी थी॥
न देखनेकी तरह हमने ज़िंदगी देखी।
चिराग़ बुझने लगा जब तो रोशनी देखी॥
मुद्दआ पूछनेवाले! तेरी बातोंके निसार।
अब वोह आलम है कि हसरत है न अरमाँ कोई॥

ऐसे भी लमहे गुज़रे हैं, हैरते-जमालपर।
जलवा नज़रके सामने दिलको मगर यक़ीं नहीं॥

रहमपर ग़ैरके जीना कैसा?
ज़िंदगीका यह क़रीना कैसा?

नाख़ुदाका[7] कभी एहसान उठाया न गया।
मैं हरइक मौजे-बलाख़ेज़को[8] साहिल[9] समझा॥

---

[1]सगीत; [2]वार्तालापसे; [3]दिलका हाल जाननेको उत्सुक; [4]प्रकट; [5]ज़िन्दगीके ज़ोर-शोरकी; [6]फ़रेब, रूपका अभिमान; [7]मल्लाहका; [8]भयकर लहरको; [9]किनारा।

मजलिसे-वअ़ज़से[1] इक रिन्द[2] यह कहता उट्ठा—
"क़ाफ़िर अच्छे हैं दिलआज़ार मुसलमानोंसे ।।"

मज़ाक़े-इश्क़ हो कामिल तो सूरते-शबनम ।
कनारे-गुलमें रहे और पाकबाज़ रहे ।।
'असर' तेरे क़ुर्बान, दिल लेनेवाले ।
फिर एक बार कह दे—"किसीका इजारा" ।।

अब आये बहार या न आये ।
आँखोंसे लहू टपक रहा है ।।

बहम[3] सर-गोशियाँ[4] होने लगीं तीमारदारोंमें[5] ।
तुम अपने घर सिधारो अब यहाँ कुछ और सामाँ है ।।
—शाइर जनवरी १९५० ई०

हम अपने हाले-परेशाँपे मुसकराये थे ।
ज़माना हो गया ऐसे भी मुसकराये हुए ।।

ज़बाँपे हर्फ़े-तमन्ना 'असर' न आया था ।
कि वोह निगाह फिरी, क्यों फिरी ? नहीं मालूम ।।
चमनवालो ! चमनका तुमको नज़्ज़ारा मुबारक हो ।
घुटा है मेरी आंखोंमें नशेमनका धुआँ अबतक ।।
पलकतक अश्क आता था, मगर जबसे नहीं आया ।
नज़रमें एक बिजली कौंदती मालूम देती है ।।

वोह मग़रूर अफ़सोस इतना न समझा ।
तमन्ना है इक शै अलग इल्तेजासे[6] ।।

---

[1]मौलवीका व्याख्यान सुनकर; [2]शराबी; [3]परस्पर; [4]कानाफूंसी; [5]परिचर्या करनेवालोंमें; [6]प्रार्थनासे ।

वोह आये हैं पुरसिशको ऐ नामुरादी!
बहरहाल अब मुसकराना पड़ेगा॥

इधरसे आज वह गुज़रे तो मुंह फेरे हुए गुज़रे।
अब उनसे भी हमारी बेकसी देखी नहीं जाती॥
काश! न कहते मुद्दआ खाके निगाहका फ़रेब।
आस थी इक बँधी हुई वह भी रही-सही गई॥
बहाना मिल न जाये बिजलियोंको टूट पड़नेका।
कलेजा काँपता है आशियाँको आशियाँ कहते॥
किससे कहिए और क्या कहिए सुननेवाला कोई नहीं।
कुछ घुट-घुटकर देख लिया कुछ शोर मचाकर देखेंगे॥
हरचन्द उसको मुन्फ़इले-जौर कर दिया।
दिलपर जो गुज़री बाद अज़ां कुछ न पूछिए॥

—माहे-नौ फ़रवरी १९५१ ई०



ला चुक नसीमे-सुबह पयामे-विसाले-दोस्त।
कबतक मिसाले-शमअ रगे-जाँ जलाऊँ मैं?

२७ फ़रवरी १९५२ ई०



रियाज़ ख़ैराबादी

[१८५३–१९३४ ई०]

सैयद रियाज़अहमद 'रियाज़' लखनऊके समीप ख़ैराबाद ज़िला सीतापुरमें १८५३ ई० में उत्पन्न हुए। आपके पिता सैयद तुफ़ैलअहमद पहले गोरखपुरमें कोर्ट इन्सपेक्टर, बादमें आगरेके शहर कोतवाल रहे।

रियाज़ भी पहले-पहल पुलिस-विभागमें ही गये, किन्तु आपकी साहित्यिक रुचिने वहाँ अधिक नहीं रहने दिया और १८७२ ई० में त्यागपत्र देकर साहित्यिक क्षेत्रमें उतर पड़े। १९ वर्षकी पूरी तरह उम्र हो भी नहीं पाई थी कि गोरखपुरसे 'रियाज़ुल' अख़बारका संपादन एवं प्रकाशन करने लगे। थोड़े ही अर्सके बाद 'तारबर्क़ी' दैनिक पत्र भी निकालने लगे। १८७९ ई० में शाइरी संबंधी 'गुलक़दए-रियाज़' का प्रकाशन प्रारंभ कर दिया। लोग आपके गद्यके कम, पद्यके अधिक प्रशंसक थे। बहुत-से तो केवल आपका संपादकीय पढ़नेको ही अख़बार लेते थे।

रियाज़को कमसिनीसे ही शाइरीका शौक़ हो गया था। पहले आप 'असीर'से मशविरये-सुख़न लेते थे, किन्तु 'असीर' वृद्ध हो जानेके कारण शिष्योंकी ग़ज़लोंका संशोधन पूरी तवज्जुहसे नहीं कर पाते थे। अतः उन्होंने अपने सभी शिष्य, अपने प्रधान शिष्य 'अमीर' मीनाईके सुपुर्द कर दिये थे। 'अमीर' मीनाई उन दिनों ख्यातिके शिखरको छू रहे थे। तभीसे 'रियाज़' 'अमीर' मीनाईके शिष्य होकर उनका हृदयसे कलमा पढ़ने लगे।

१९ वी शताब्दीके इन अंतिम दिनोंमें जब कि चमने-उर्दूमें मिर्ज़ा 'दाग़', मुंशी 'अमीर' मीनाई, और 'जलालकी' शाइरीका तूती बोल रहा था, 'रियाज' भी अपने उस्तादके जीवनकालमें ही ख्यातिकी सीढियोंपर पाँव रखने लगे थे।

१८५७ के विप्लवके बाद दिल्ली-लखनऊकी सल्तनतें नष्ट हो चुकी थी। प्रायः सभी उच्चकोटिके राज्याश्रित कलाकारोंको रामपुरके तत्कालीन गुणज्ञ नवाबने अपने यहाँ बुला लिया था। मुनीर, उरूज, बहर, आग़ा, क़लक, अमीर मीनाई, जलाल, दाग़—जैसे ख्यातिप्राप्त शाइर रामपुरकी रौनक़ बढा रहे थे। कलापारखी नवाबने 'रियाज़' को भी रामपुर बुलाकर पुरस्कृत किया, और स्थायी रूपसे रामपुरमें ही रखनेकी अभिलाषा प्रकट की, किन्तु रियाज़की स्वतन्त्र और स्वाभिमानी प्रकृतिने वहाँ रहना उचित नही समझा। यहाँतक कि नवाब रामपुरने दो बार अपने साहबजादेको रियाजको लखनऊसे लिवा लानेको भेजा और तीसरी बार राजा नौशादअलीद्वारा प्रेरणा की, किन्तु 'रियाज' फिर भी रामपुर नही जा सके। रामपुर-नवाबके अतिरिक्त नवाब-हैदराबाद और उनके प्रधान मन्त्री राजा किशनप्रसाद 'शाद' ने भी रियाजको हैदराबाद बसनेके लिए काफी जोर दिया, परन्तु आप वहाँ भी नही गये।

बचपनसे १९०८ तक आप अधिकतर गोरखपुरमें रहे। ख़ैराबाद बहुत कम रहे। मरते दमतक गोरखपुर नही छोड़ना चाहते थे, परन्तु भवितव्यको कौन टाल सकता है? महाराजा महमूदाबादके प्रेमाग्रहको आप नही टाल सके, और १९०८ ई० में आपको लखनऊ चला आना पड़ा। गोरखपुरसे आपको कितना प्रेम था, उसको छोड़ते समय जो व्यथा पहुँची, उसे यूं व्यक्त किया है—

जबानी जिनमें खोई है वोह गलियाँ याद आती है।
बड़ी हसरतसे लबपर जिक्रे-गोरखपूर आता है॥

'रियाज़' थी जो मुक़द्दरमें बाज़गश्तेशबाब।
जवान होनेको पीरीमें लखनऊ आये॥

'रियाज़' अपने उस्ताद 'अमीर' मीनाईको अत्यंत आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। अपने दीवानमे कई स्थलोपर मुक्त कठसे उस्तादका गुणगान किया है—

मस्ते-मीना हूँ, पिया है मैंने,
जाम 'अमीर' अहमद मीनाईका॥

जब कि वे आसमाने-शाइरीपै चमक रहे थे, और शाइरीका बहुत अच्छा अभ्यास हो गया था, तब भी उस्तादको बिना दिखाये न कही कलाम पढ़ते थे और न छपने भेजते थे। उस्तादके होते हुए कलाम न दिखाये, यह बे-अदबी रियाजसे मुमकिन ही नही थी। और यही कारण था कि उस्ताद भी उनका कलाम बहुत ध्यानपूर्वक मनसे सशोधन करते थे; और उन्हें बहुत अधिक स्नेह करते थे[1]।

उस्तादकी मृत्युसे रियाज़को इतना सदमा पहुँचा कि आपने आम मुशाइरोंमे ग़ज़ल पढ़नेकी कसम खा ली, और मृत्यु पर्यत इस कसमको निभाया।

महाराजा महमूदाबादने एक मर्तबा कहा—"रियाज़! इस वक़्त 'अमीर' अगर जिन्दा होते तो तुम पर फ़ख्र (अभिमान) करते।"

रियाजने अर्ज़ की—"ऐसा न फर्माइये, वे उस्ताद थे।"

महाराजा यह सुनकर भी अपनी रायपर क़ायम रहे तो रियाज़ने अपना यह शेअर—

---

[1]रियाजका अमीर मीनाई कितना खयाल रखते थे, उनकी कैसी-कैसी जिदोंको पूरा करते थे, यह शेरो-सुखन प्रथम भागमे अमीर मीनाईके परिचयमे दिया जा चुका है।

नसीम आई है शमअ़े-मज़ार गुल करने।
वोह उसके आनेसे पहले ही जल बुझी होगी॥

सुनाकर कहा—"उस्तादने सिर्फ़ एक लफ़्ज बढाकर ज़मीनको आस्मान कर दिया"—

नसीम अब आई है, शमअ़े-मज़ार गुल करने।
वोह उसके आनेसे पहले ही जल बुझी होगी[1]॥

'रियाज' केवल अपने उस्तादके ही भक्त न थे, उनके परिवारसे भी आत्मीयताका सबंध रखते थे। 'अमीर' मीनाईके पुत्र 'अख्तर' मीनाई लिखते है—"हम लोगोंसे उनका जो तअल्लुक था, वोह अ़जीजोंसे बढकर हकीकी भाइयोका-सा था और अब तो हकीकी भाइयोमे भी ऐसी मुहब्बत कम होती है। उनकी रिहलत (मृत्यु) से मुहब्बत और खुलूसका एक मुजस्सिम पैकर (स्नेह-सभ्यताका मूर्तमान रूप) उठ गया"।[2]

'रियाज' नम्र, मिलनसार खुशमिजाज शाइर थे। तबीअत रंगीन पाई थी। फर्माया है—

वाह क्या रंग है क्या खूब तबीअत है 'रियाज़'!
हो जमीं कोई तुम्हे फूलते-फलते देखा॥

मुश्किल-से-मुश्किल जमीनमे कई-कई ग़ज़ल कहते थे। 'अख्तर' मीनाई आखों देखी घटना बयान करते हुए लिखते है—"अक्सर ऐसा हुआ है कि उनको एक ही तरहमे कई-कई गज़ले कहनी पडी। एक ग़जल कही, जिसने उसकी तारीफ की उसको देदी। अपने लिए दूसरी कही, वह भी किसीने मांग ली। लेकिन क्या मजाल कि उनके तेवरपर जरा भी मैल आया हो। हमेशा यही कहकर टाल दिया कि "ऊँह, क्या है? और कह लेंगे।[3]"

---

[1]मयखानाए-रियाज पृ० ४१; [2]रियाजे-रिज़वाँ पेशे-लफ़्ज़ पृ० ५; [3]रियाजे-रिजवाँ, पेशे-लफ़्ज पृ० ५।

'रियाज' पर शबाबका रग हमेशा छाया रहा। बुढापा भी शबाबकी बाते करते गुज़रा और ८१ वर्ष की आयुमे मरते समयतक वे रौनक़े-महफ़िल बने रहे।

वही शबाबकी बातें, वही शबाबका रंग।
तुझे 'रियाज़' बुढ़ापेमें भी जवाँ देखा॥

अल्लामा नियाज़ फतहपुरी फर्माते है—"रियाजको मैंने उस जमानेमे देखा, जब वोह जोअफ-ओ-कुहूलत (वृद्धावस्था और दुर्बलता) के दौरसे गुज़र रहे थे। बावजूद इसके कि जमाना म्वाफिक़ न था, हालातने सख्त दिलगीर बना रखा था, हुजूमे अफकार (चिन्ताओके समूह) ने चारों तरफ़से घेर लिया था, लेकिन 'रियाज' बावजूद—सरापा गमोअलम (दुःख-व्यथासे ओत-प्रोत) होनेके दूसरोके लिए यक्सर बहारे-शगुफ्तगी (खिले हुए उद्यान) थे। आप ख्वाह कितने ही मगमूम-ओ-मलूल (चिंतित-दुःखी) क्यों न हो, लेकिन यह मुम्किन नही कि 'रियाज़' आपको मिल जाये, और थोडी देरके लिए आप किसी और आलम (दुनिया) मे न पहुँच जाये। उनकी दिलकश-ओ-दिलनशी (मनोरंजक एव हृदयस्पर्शी) गुफ़्तगू, उनका अन्दाजे-बयान, लतीफ बजला सजी (कोमल हास्य) और सबसे बढ़कर उनका खुलूस (सभ्य-स्नेह-व्यवहार)—यह मालूम होता था कि इन्सान किसी ऐसी फ़जा (वातारवण) मे पहुँच गया है, जहाँ फ़िरदौस (स्वर्ग) की हवा है, कौसर-ओ-सबीलकी रवानी (जन्नतमे बहनेवाली नहरोंका प्रवाह) है। बच्चोके लिए उनका वजूद गहवारा-ए-इस्तराहत (सुख-चैनका पालना) जवानोंके लिए उनकी हस्ती दास्ताने-हुस्नो-इश्क़ और ज़ईफों (वृद्धों) के लिए उनकी जात एक बिरादराना आग़ोश थी। यह मुम्किन नही कि कोई शख्स रियाजमे मिले, और अपने ज़ौक़ (शौक़) को उनके पाससे ना-आसूदा वापिस लाये।"[1]

---

[1]रियाजे-रिज़वाँ, ऐतराफ़ात पृ० ४२।

अपनी इस ज़िन्दादिलीके बारेमें स्वयं भी कहा है—

जिस अंजुमनमें बैठ गया रौनक़ आ गई।
कुछ आदमी 'रियाज़' अजब दिल्लगीका था॥

आपकी ज़िंदादिलीके दो नमूने मुलाहिज़ा हो—

१—दिल्ली दरबारके अवसरपर अपने एक दोस्त निज़ामके साथ घूमते-फिरते रियाज एक रईससे भी मिलने चले गये। अब आगेकी कहानी स्वय रियाज साहबकी ज़बानी सुनिए—"दिनमे सिवा नाश्तेके कुछ खानेका इत्तिफाक नही हुआ था। मिलकर जल्द वापिस होनेका कस्द था। ८ बजे शब (रात्रि) को वापिसीकी इजाज़त चाही, मगर फ़र्शपर दस्तरख्वान बिछ चुका था। पहले मुझसे भी खानेका इसरार किया गया, मगर मैंने मआज़िरत की (नम्रतापूर्वक इन्कार कर दिया)। जब निज़ामसे कहा गया तो वे बेतकल्लुफ दस्तरख़्वानपर नजर आये (भोजनपर डट गये)। मेरी तरफ मुड़कर भी न देखा कि मै इशारेसे कुछ काम लेता। मेरे लिए सब्रके सिवा चारा क्या था। खानेके साथ सुर्ख़-सब्ज़ मुख़्तलिफ़ (भिन्न-भिन्न) रगकी मदरासी शीरीनी (मिठाइयाँ) भी थी। निजामने इसके लिए भी इशारा न किया। दस्तरख़्वान खत्म हुआ तो ख़्वाबगाह (शयनागार) के अन्दर मेज़ोंकी तरफ तश्तरियाँ जाती नज़र पड़ी। कुछ देरके बाद मैंने इजाज़त चाही। मेजवानने फ़र्माया—"शहर बहुत दूर है, रात ज़्यादा हो गई है, वापिस नही जा सकते।" मै कुछ कहने भी न पाया था कि निज़ामने मंजबूर कर दिया। ख़्वाबगाहमे सामाने-इस्तराहत (शयनागारमे आरामदेह बिछौना) हो गया। सब हज़रात आराम फ़र्माने लगे, मैं करवटे बदलने लगा। रोशनी कम करदी गई थी। मुझे कुछ सहारा था तो रगीन शीरनीकी तश्तरियोंका। जब हर तरफ़से नफीरेख़्वाब (खर्राटे) बुलन्द हुई, मैं उठा और दबे पाँव मेजके करीब पहुँचकर हाथ बढ़ाया। डलीका महसूस होना था कि वह मुँहके अन्दर पहुँच गई। मै चाहता यह था कि ज़बानपर पहुँचने-से पहले हलकमे उतर जाय। मगर वोह कम्बख़्त साँपके मुँहकी छछून्दर

बन गई। न उगलनेकी न निगलनेकी। यह रगीन शीरनीकी डली न थी, साबुनकी बट्टी थी। मेरी मुसीबतका पूरा लुत्फ़ उठाना हो तो कुछ देरके लिए साबुनकी टिकिया मुँहमें रखकर मुझे ममनून (आभारी) कीजिए। रूमालसे साफ़ होकर वह चीज वहीं गई, जहाँसे उठाई गई थी। पानीकी तलाशमें किसीकी आँख खुल जानेका अन्देशा था। रूमालकी कारफरमाई मुँहके अन्दर भी रही। हम इस आसानीसे पलगतक न पहुँच सके, जिस तरह वह चीज मुँहतक पहुँची थी। अब साबुन अपनी जगहपर था, मगर उसकी लज्जत ज़बानपर। सुबह चाय और बिस्कुट सामने आये। मैंने दो-चार घूट पीकर बिस्कुट उठाकर इतने ज्यादा पियालीमें डाले कि मेज़बानकी मेरी तरफ तवज्जह हो गई। उन्होंने दूसरी पियाली बढ़ाकर कहा—"अब बिस्कुट इसमें डाले जाएँ।" निजामको हँसी आगई, जो मअनीखेज थी। ब-इस्तफसार उन्होंने कहा—"आप तमाम दिन भूखे रहे थे, फिर भी शबको खानेमें तकल्लुफ़ किया, वापिसीका भी सहारा टूटा। अब चायमें तकल्लुफ रुख्सत हो गया।" मैं दिलमें खुश था कि खुदाने साबुनके वाक़ेअेका पर्दा रख लिया।'"

२—ख्वाजा फरीदुद्दीन उर्फ़ फ़द्दन साहब 'रियाज' के बचपनके दोस्त थे। १०-१५ वर्षके बाद रियाज लखनऊ आये तो उनसे मिलने गये। इतनी मुद्दतके बाद सूरतमें फ़र्क हो ही जाता है। कुछ इस वजहसे और कुछ काममें मसरूफ होनेकी वजहसे ख्वाजा साहबने 'रियाज़' को नही पहचाना तो फ़ौरन उन्हे एक शरारत सूझी। अदबसे सलाम करके दूर एक मूढ़ेपर बैठ गये। मग़रिबका वक़्त था। काम ज़ियादा था, इसलिए ख्वाजा साहब परेशान थे। उनकी तरफ़ मुख़ातिब न हो सके। इतना वक़्त रियाज़को मिला तो हजरतने पूरी स्कीम तैयार कर ली। अब जो ख्वाजा साहब मुख़ातिब हुए और पूछा आप कहाँसे तशरीफ़ लाये है तो हज़रत रियाज़ने कहा—

---

[1]मयख़ानये-रियाज़ पृ० १२१-१२३।

"हुजूर ! मैं शैख असग़रअलीके कारखानेसे आया हूँ, आपके यहाँ कुछ इत्र और तेल आया था उसके १४।।।) बाक़ी है।"

ख्वाजा साहब हिसाब-किताब और लेन-देनके साफ आदमी थे। सुनकर बरहम (कुपित) हो गये। 'रियाज' उनकी इस आदतको अच्छी तरह जानते थे।

ख्वाजा बोले—"कैसा रुपया ? मैंने आजतक किसी जगहसे कोई चीज़ कर्ज़ नहीं मँगाई है।"

रियाज—"मैं क्या जानूँ शैख़ साहब झूठ कहते होंगे।" शैख असग़र-अली भी ख्वाजाके गहरे दोस्त थे। उनकी शानमें यह कलमा न सुन सके। पूछा—"यह तो बताइए आप हैं कौन ?"

रियाज—"एक दफ़ा तो अर्ज़ कर चुका हूँ, कहिए तो काबेकी तरफ़ हाथ उठाकर कहूँ। क़ुरान पाकपर हाथ रखके कहूँ।"

यह जवाब सुनकर ख्वाजा साहब आग हो गये। कहा—"तुम बड़े गुस्ताख़ आदमी मालूम होते हो।"

रियाज़—"बजा है, चीज लेके रुपया न दे और जब तक़ाज़ा करने आदमी आये, तो उसको गुस्ताख़ बताये।"

यह तू-तू मैं-मैं हो ही रही थी कि हादीअलीखाँ आ गये। यह भी इन दोनोंके बचपनके दोस्त थे। उन्होंने रियाज़को पहचान लिया और बोल उठे—

"अरे फ़द्दन ! तूने नहीं पहचाना।" अब जो ख्वाजाने ग़ौरसे देखा तो दौड़कर लिपट गये।[1]"

रियाज़की क़लमी तसवीर तस्नीम मीनाई यूँ खीचते हैं—खूब घनी लंबी दाढ़ी, दराज़ क़ामत (ऊँचा शरीर) बड़ी-बड़ी कटीली आँखे, होंटोंपर मुस्तक़िल तबस्सुम (स्थाई मुसकराहट) लबोलहजेमें चाशनी, लफ़्ज़ोंमें

---

[1]मयख़ानये रियाज़ पृ० १३३-१३४।

दिलकशी और शगुफ़्तगी, ख़यालात पाकीज़ा और सुथरे, बयानमे हलका-हलका-सा लतीफ़ मिज़ाह (मज़ाक) और तंज़का (मीठी चुटकियाँ लेनेका) पहलू।"

नमाज़ पाँचो वक़्त पढते थे, रमजानमे तीसो रोज़े रखते थे। मृत्यु पर्यत ८१ वर्षकी आयुतक वगैर चश्मेके लिख लेते थे और चाँदकी रोशनीमें पढ़ लेते थे।

२० जुलाई १९३४ ई० मे ८१ वर्षकी आयुमे खैराबादमे समाधि पाई।

ऐसे चुलबुले, जिन्दादिल, खुश-मजाक़ और रंगीन मिज़ाजकी शाइरीका रग क़ुदरती तौर पर लखनवी होना था। एक तो वे स्वभावतः रगीन मिज़ाज थे, दूसरे जब उन्होने शाइरीकी चौखटपर पाँव रखा, तब लखनवी शाइरी पूरे शबावपर थी। तीसरे उनके उस्ताद 'अमीर' मीनाई तत्कालीन लखनवी रगके[1] एकमात्र प्रतिनिधि समझे जाते थे। अतः 'रियाज़' का इस रगमे शराबोर होना लाज़िमी था। उन्ही दिनो मिर्जा 'दाग़'की शाइरीका आफ़ताब पूरी आब-ओ-ताबके साथ चमक रहा था। भारतके इस सिरेसे उस सिरेतक उनके नामकी धूम थी। हर तवायफ़की ज़बानपर,

---

[1]लखनवी शाइरी क्या है, यह 'शेर-ओ-सुखन' प्रथम भागमे पृ० २४८ से २७२ तक विस्तारके साथ लिखा जा चुका है। इसके अतिरिक्त भी नासिख, आतिश, जुरअत, इन्शा, मुसहफी, रगीन आदि शाइरोंके परिचय-कलाममे प्रथम भागमे यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। शेरोसुखनके पाँचवे भागके सिंहावलोकनमे भी संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। अत्युक्ति, ज़नानापन, कृत्रिमता, तकल्लुफ, उपमाओं, उदाहरणोंकी भरमार, शब्दाडबर, जाहिरा चमक-दमक, स्त्रियोके लिबास, जेवर, शृगार आदि-का अश्लील वर्णन, ऐसे भाव जिनसे मनमे विकार उत्पन्न हों, शब्दोंका रख-रखाव, यही उस युगकी लखनवी शाइरी थी।

हर महफ़िलमें और हर गली-कूचेमें 'दाग़'की ग़ज़लें थिरक रही थीं। कहनेको मिर्ज़ा दाग़ देहलवी शाइ़र थे, मगर अपनी शोख़ बयानी, चुटीले अन्दाज और रंगीन मिज़ाजीकी वजहसे आम लोगोंके महबूब बने हुए थे। क्या देहलवी, क्या लखनवी, क्या हैदराबादी—सभी उनके शोखियाना रंगको अपना रहे थे।

जिस तरह दीपक बुझनेसे पूर्व एक बारगी प्रज्वलित हो उठता है, उसी तरह मिटनेसे पूर्व लखनवी शाइ़री भी, १९ वी शताब्दीके अंतिम वर्षोंमें खूब चमक रही थी। लेकिन देहलवी शाइ़रीकी आबोताबके समक्ष इसकी चमक माँद पड़ने लगी थी। उस युगके सभी लखनवी शाइ़रोंने यह महसूस किया कि अब लखनवी शाइ़रीका बाज़ार तेज़ीसे मन्दा होता जा रहा है, अतः उन्होंने धीरे-धीरे अपने लबो-लहजेको बदलना प्रारंभ कर दिया और 'जलाल'ने तो यकबारगी ही अपने दामनसे लखनवी रंग पोंछ दिया। लखनऊके उस्ताद शाइ़र लखनवी रंगसे तो बेज़ार होने लगे, मगर वे मीर, ग़ालिब, मोमिनके वास्तविक देहलवी रंगको न अपनाकर मिर्ज़ा दाग़के शोखियाना धारेमें पड़ गये। मिर्ज़ा दागकी शाइ़रीमें यूँ तो देहलवी शाइ़रीके कितने ही गुण विद्यमान थे। मगर उनका इ़श्क़ वही लखनवी-जैसा बाजारी इश्क था, और इशा-जुरअत-जैसी मुआमले बन्दी। लेकिन यह रंग उन दिनों इतना मक़बूल हुआ कि 'अमीर' मीनाई-जैसा सजीदा और बा-इ़खलाक उस्ताद दाग़के रंगीन हौजमें कूद पड़ा। फिर 'रियाज'का तो कहना ही क्या ? वे तो क़ुदरतकी तरफ़से चुलबुली और रिन्दाना तबिअ़त ही लेकर आये थे।

उर्दू-शाइ़रीमें फ़ारसी-शाइ़रीका अनुकरण हुआ है। अतः उर्दूमें भी फ़ारसीके समान शराबका रंग घुला-मिला है। कोई भी शाइ़र ऐसा नहीं गुज़रा, जिसने शराबपर न कहा हो। चाहे उसने उम्र भर शराब छूई भी न हो, और समस्त जीवन सयमी एवं धार्मिक रहा हो। मगर कूचए-शाइ़रीमें पाँव रखनेके बाद मैखानेकी जियारतको न जाय और

पाए-साक़ीपर सिज्दा न करे यह कैसे हो सकता है ? क्योंकि उर्दू-फ़ारसी-शाइरीका निर्माण ही उन तन्तुओंसे हुआ है, जिससे कि साक़ी-ओ-मैख़ाना बनाये गये है। यहाँतक कि पवित्र-से-पवित्र विचार, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक बाते भी शराबके रगमे ही कही जायेगी। बकौल ग़ालिब—

हर चन्द हो मुशाहिद-ए-हक़की गुफ़्तगू।
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर॥

यूँ तो हर उर्दू-शाइरने शराबपर लिखा है, मगर उर्दू शाइरीके इस ४०० वर्षके इतिहासमे और सैकड़ों ख्यातिप्राप्त शाइरोंमे—१ ग़ालिब, २ दाग़, ३ रियाज़, ४ जिगर, और ५ जोशने जितने अधिक और जिस ख़ूबीसे शराबके मजमून नज़्म किये है, शेष समस्त शाइरोके दीवान मिलाकर भी उतना कलाम पेश नही कर सकते।

उक्त पाँचों शाइरोंमे 'गालिब' खुले-आम पीते थे। 'दाग़'ने इस काफ़िर-को कभी मुँह न लगाया। 'जिगर' कभी पीते थे, मगर तौबा किये उन्हे अरसा हो गया है। 'जोश' अलबत्ता शौक फ़र्माते है। रियाज़ने कभी एक बूंदतक ज़बानपर नही रखी। फ़र्माते है—

गुनाह कोई न करते शराब ही पीते।
यह क्या किया कि गुनह तो किये, शराब न पी॥

लेकिन आगरेके एक शाइरका कहना है कि— "रियाज'ने मेरे सामने पी है और मेरे साथ पी है।"[1] केवल इस शहादतके अतिरिक्त और जितने भी रियाज़के इष्ट-मित्र और साथी है, वे सब एकमत होकर कहते है कि रियाज़ने ता-उम्र शराब नही पी। नियाज फ़तहपुरी लिखते है—

"इसका इल्म बहुत कम लोगोंको होगा कि सारी उम्र ख़ुमरियात

---

[1] नक़्दो-नजर पृ २१५।

(शराब) की शाइरीमें मुब्तिला रहकर जौके-बादा (शराबके शौक) से ना-आशना (अनभिज्ञ) रहनेवाला शाइर जिन्दगीकी तमाम शगुफ्ता सामानियो (भोगविलासके समस्त साधनो) के साथ हुस्नो-शबाबके हुजूममे बेहतरीन ऐयाम गुज़ारते हुए जादा-ए-इख़लाक (चारित्रके मार्ग) से कभी एक लमहाके लिए न हटनेवाला शख्स जिस तरह एक इन्सान पैदा हुआ था, बदस्तूर उसी तरह इन्सान रहा। उस जमानेमें भी जबकि गुनाहसे पहले उज्रे-गुनाह पैदा कर लिया जाता है।"[1] नवाब फ़साहत जग 'जलील' दीवाने—रियाजकी तारीख कहते हुए फ़र्माते हैं—

मस्तेमै कर दिया जहाँ भरको।
ख़ुद लगाया न मुंहसे साग़रको॥

'अमीर' मीनाईके सुपुत्र मुशी लतीफ़ अहमद 'अख्तर' मीनाई लिखते हैं—

"हक़ीक़त यह है कि वह बड़े पाकनफ़्स और सच्चे मुसलमान थे। उनका रिन्दाना रग उनकी शाइरी ही की हद तक था। जो रग काल (बयाने-कलाम) मे देखा, वह उनका हाल (वास्तविक) न था।"[2]

मौ० सैयद मुभान अल्लाह साहब प्रस्तावना लिखते हुए फ़र्माते हैं—

"हर जाननेवाला और पूरा गोरखपुर और खैराबाद कुरान लेकर दिन और रातकी सुहबतोकी बाबत क़सम खानेको तैयार है कि रियाज़ने कभी एक बूंद भी शराब लबतक न आने दी।"[3]

एक बूंद कभी लबतक न आने दी, मगर तमाम उम्र शराबका गुण-गान करते रहे। किसीको यह आभास भी नही होने दिया कि रियाज़ परहेजगार है। आभास हो जाने दे तो फिर रिन्दाना मस्ती ही कहाँ रही। जीवन भर बेपिये झूमते रहे। बकौल चकबस्त—

---

[1]रियाज़े-रिज़वाँ एअतराफ़ात पृ० ४१; [2]रियाज़े-रिज़वाँ पेशे-लफ़्ज़ पृ० ५-६; [3]रियाज़े-रिजवाँ मुक़दमा पृ० ३।

बेपिये नशा रहे जिसमें, जवानी वोह है

लेकिन रियाज़ तो बुढ़ापेमें भी सरशार रहे। मुसीबतों, चिन्ताओं और बुढापेकी निर्बलताओंका बोझ ढोते रहे। मगर फूलोंकी तरह मुसकराते रहे, ता-उम्र मादक बने रहे। शराबपर इस ख़ूबीसे लिखा कि कोई अनुमान ही नही कर सकता कि बेगैर पिये भी इस तरहके अशआर निकल सकते है, और स्वयं कभी बताकर नही दिया कि शराब नही पीते है। यहाँ-तक कि उनके अतरग मित्र तक उनकी परहेजगारीकी गध नही पा सके।

पण्डित रतननाथ 'सरशार' और 'रियाज़' गुरु-भाई होनेके अतिरिक्त परस्पर घनिष्ट मित्र थे। लेकिन 'सरशार' जैसे ख्यातिप्राप्त सुरासेवी मित्रको भी यह मालूम नही था कि रियाज केवल दुनियाए-शाइरीमे ही रिन्द महशूर है, पीते-वीते नही हैं। एक रोज 'सरशार' ने रियाज़को दावत-पर बुलाया, और उनके सामने शराब भी रखी गई। शराबको देखकर रियाज़के होश उड गये। मगर ज़ाहिरमे झूमने लगे और यकायक 'सरशार' से 'दो मिनट' कहकर कुछ इस अन्दाजसे उठे, गोया अभी वापिस आये जाते है, और कोई बहुत जरूरी कामके लिए जाना पड़ रहा है। मगर रियाज आनेको तो गये नही थे।

संयोगकी बात उक्त घटनाके बीस वर्ष बाद हैदराबादमे 'सरशार' और रियाजकी मुलाक़ात हुई। खानेपर वहाँ भी शराब मौजूद थी। रियाज़ने यह कहते हुए सहर्ष हाथ बढाया—"जिगरकी खराबीकी वजहसे डाक्टरोंने एक साल्के लिए कतई मुमानिअत कर दी है। मगर देखकर रहा नही जाता।" जिगर-खराबीकी बात सुनी तो लोगोंने हाथसे प्याला छीन लिया। खूब—

रिन्द-के-रिन्द रहे हाथसे जन्नत न गई

किसीने पूछा भी कि—"हजरत! आप पीते भी है या लिखते ही लिखते है"। तो देखिए क्या जूमअनी शेअ्र कहकर उलझनमे डाला है—

शेअ़रे-तर मेरे छलकते हुए साग़र हैं 'रियाज़' !
फिर भी सब पूछते हैं—"आपने पी है कि नहीं" ॥

उक्त शेअ़रसे इक़रार और इनकारकी दोनो ध्वनि निकलती है। एक तो यह कि जब मेरे शेअ़रोंमे भी शराब भरी हुई है तो फिर पी क्यो न होंगी ? दूसरी यह कि मेरे छलकते हुए साग़र तो बस मेरे शेअ़रे-तर है, और किसी साग़रको मैंने हाथ नही लगाया।

रियाजका दीवान १९३७ मे प्रकाशित 'रियाज़े-रिज़वाँ' हमारे सामने है। इसमे ८२८ पृष्ठ है। जिनमे १०४ मे विषय-सूची और प्रस्तावनाएं है। ४८० पृष्ठोंमे ६०० ग़जले है, जिनमे ८१६० अशआ़र है। शेष २४४ पृष्ठोंमे कितेअ़, सेहरे, कसीदे, मसनवी, नअ़त, नौहा वग़ैरह है। रियाजकी इन छः सौ ग़जलोमे एक भी ऐसी ग़जल नही, जिसमे सागरो-मीना न छलकते हो। ८१६० अशआ़रमे १३६६ अशआ़र इसी विषयके है। आइए सबसे पहले मैख़ानए-रियाजकी ज़ियारत कर ले।

मैख़ाना-ए-रियाज़

शरमाओ 'रियाज़' मैकशीसे।
लम्बी दाढ़ी है हाथ भरकी ॥

क्या-क्या ख़ुशामदें है कि पी लूं बहारमें।
बादलके टुकड़े सरपे मेरे छाए जाते है ॥

जोशे-मै और सब्ज़ाज़ारोंमें घटा छाई हुई।
बात ऐसी है कि तोबा भी है ललचाई हुई ॥

इक हमीं है कि बहक जाते है तौबाकी तरफ़।
वर्ना रिन्दोंमें बुरा चाल-चलन किसका है ?

मुझको भी इन्तज़ार था, अब्र आए तो पिऊँ।
साक़ी ! अगर यह सच है कि 'बादल उठा' तो ला ॥

मस्जिदमे मरनेकी अपेक्षा तो मैखानेमे मरना कही अच्छा—

रहने देगा न दमे-नज़अ[1] कोई हल्क़को ख़ुश्क।
मैकदेमें हमें इतना तो सहारा होगा॥

आबे-ज़मज़मके सिवा कुछ नहीं कअ़बेमें 'रियाज़'!
मैकदा तुम जिसे समझे हो मदीना होगा॥

बज़्मे-महशर गर बने साक़ीकी बज़्म।
मैं न उट्ठूँगा अगर पीकर गिरा॥

बनाई क्या बुरी गत मैकदेमें बादानोशोंने?
'रियाज़' आए थे कल जामा पहनकर पारसाईका॥

[कर्तव्यशील और अपने धुनके मस्त व्यक्तियोके समूहमे जब कोई ढोंगी पहुँच जाता है, तब उसकी दुर्गति होना स्वाभाविक है]

दस्ते-शफ़क़त इस तरह इक रिन्दने फेरा 'रियाज़'!
बैठकर यादे-ख़ुदामें झूमना जाता रहा॥

[जब किसी पहुँचे हुए महापुरुषका वरदहस्त सरपर हो जाता है, तब यही स्थिति हो जाती है]

जब लोगोंमें दोनोंकी बुज़ुर्गी है मुसल्लम[2]।
क्या शैख़े-हरम[3] पीरेमुग़ां[4] हो नहीं सकता?

नमाज़े-ईद हुई मैकदेमें धूमसे आज।
'रियाज़'! बादाकशोंने हमें इमाम किया॥

जाते थे सूएमैकदा[5] निकले हरममें[6] हम।
क्या जाने आज राहमें क्या फेर हो गया॥

---

[1]मृत्युके समय; [2]मानी हुई, निश्चित; [3]मस्जिद का शैख; [4]मधुशाला-मालिक; [5]मदिरालयकी तरफ; [6]मस्जिदमे।

सस्ते छूटे जो सरेराह अमामा[1] उतरा।
सरसे उन बादाफ़रोशोंका[2] तक़ाज़ा उतरा॥

दुनियासे अलग हमने मैख़ानेका दर देखा।
मैख़ानेका दर देखा, अल्लाहका घर देखा॥

दोनोंके मज़े लूटे, दोनोंका असर देखा।
अल्लाहका घर देखा, मैख़ानेका दर देखा॥

कअ़बेमें नज़र आए जो सुबह अज़ाँ देते।
मैख़ानेमें रातोंको उनका भी गुज़र देखा॥

कुछ काम नहीं मैसे गो इश्क़ है इस शैसे।
है रिन्द 'रियाज़' ऐसे दामन भी न तर देखा॥

क़यामतमें भी ऐ साक़ी उड़ाये काग बोतलके।
तेरे रिन्दोंने क्या मैदान मारा है, क़यामतका॥

यह अपनी वज़अ़ और यह दुश्नामे-मैफ़रोश।
सुनकर जो पी गये यह मज़ा मुफ़लिसीका था॥

जा-जाके बज़्मेवअ़ज़में सौ बार हमने पी।
चोरी किसीकी थी न हमें डर किसीका था॥

अहले-हरम[3] भी आके हुए थे शरीके-दौर।
कुछ और रंग आज मेरी मैकशीका था॥

हम हैं गदाए-मैकदा[4] हमको कमी नहीं।
सब कुछ हमारे घर है ख़ुदाका दिया हुआ॥

तौबाकी जान ख़ुश्क है बिजलीके ख़ौफ़से।
क़िबलेसे[5] आज अब्रेकरम[6] है उठा हुआ॥

---

[1]पगड़ी; [2]शराब बेचनेवालोंका; [3]मस्जिदवाले; [4]मधुशाला-भिक्षुक; [5]कअ़बेकी तरफ़से; [6]कृपाका बादल (कृपा-वृष्टि हो रही है)।

तौबासे डराया मुझे साक़ीने यह कहकर—
"तौबा-शिकनीके लिए इसरार न होगा" ॥

हम गिरे जब लड़खड़ाकर बज़्ममें।
सर सुबूपर हाथ साग़रपर पड़ा॥

हश्रमें मैकदेवालो! जो ख़ुदाने चाहा।
यही जलसा, यही साग़र, यही मीना होगा॥

उम्मीद है कि शबको[1] भी हो शग़ले-मै[2] 'रियाज़'।
मुँह सुबह होते देख लिया रोज़ादारका[3]॥

वोह हवा जन्नतकी, वोह अब्रेकरम छाया हुआ।
मैकदा जन्नत है, जन्नतमें जो पी तो क्या हुआ?

रहमतको यह अदा मेरी शायद पसन्द आए—
डर-डरके काँप-काँपके पीना शराबका॥

चले न काम, मएख़ाम[4] अगर न साथ चलें।
हरमकी[5] राहमें कोसों कुआँ नहीं मिलता॥
'रियाज़' को हरम-ओ-मैकदा बराबर है।
पिये शराब वोह शबको कहाँ नहीं मिलता?

राहसे कअ़बेके हमने रेज़ए-मीना[6] चुने।
क्या अ़जब इसके सबब हमको मिले हजका सवाब[7]॥
ईदके दिन मैकदेमें है कोई ऐसा 'रियाज़'!
एक चुल्लू देके जो ले तीस रोज़ोंका सवाब॥

---

[1]रात्रिको; [2]सुरापान; [3]रोज़ा रखनेवालेका; [4]ख़ालिस शराबका; [5]कअ़बेके मार्गमे; [6]सुरापात्रके टुकड़े; [7]पुण्य।

आबाद करें बादाकश अल्लाहका घर आज।
दिन जुमेअ़का है बन्द हैं मैख़ानेके दर आज॥
मैख़ाना हमारा कोई मस्जिद तो नहीं है।
तसबीह[1] लिये कौन बुज़ुर्ग आए इधर आज?

जब पी लगाके मुंह दमेइफ़्तार[2] रिन्दने।
बोतलके मुंहकी आई फ़रिश्तोंको बू पसन्द॥

दिनमें चर्चे ख़ुल्दके[3] शबमें मए-कौसरके ख़्वाब[4]।
हम हरममें[5] आ रहे मैख़ाना वीराँ देखकर॥

जायें-हरममें तौबा करें होके पाक-साफ़।
लत-पत है पहले तो सरे-ज़मज़म[6] नहायें हम॥

मेरा यही ख़याल है, गो मैंने पी नहीं।
कोई हसीं पिलाये तो यह शै बुरी नहीं॥

किसीसे हाय साक़ीका यह कहना—
"लहू मेरा पिये जो बेपिये जाय"॥

जिन्हें लोग कहते हैं दुज़्दे-मै[7] वह ख़ुदा परस्त 'रियाज' है।
यह सुना है कल कि जनाब ही पसे-ख़ुम[8] थे मह्व नमाज़में॥

बड़े मौक़ेसे थी हर चन्द वोह जन्नतके बाहर थी।
हरमसे हटके रस्तेमें मिली मैकी दुकाँ मुझको॥

---

[1]सुमरनी, माला; [2]रोजा खोलते समय; [3]जन्नतके; [4]स्वर्गस्थ सुरानदीका स्वप्न; [5]मस्जिदमें; [6]कअ़बेके पवित्र कुएँपर; [7]शराबका चोर; [8]शराबके घड़ेकी ओटमें।

यह साक़ीने सागरमें क्या चीज़ देदी ?
कि तौबा हुई पानी-पानी हमारी ॥

यह क्या मज़ाक़ फ़रिश्तोंको आज सूझा है ?
हुज़ूमे-हश्रमें ले आए हैं पिलाके मुझे ! !

नुस्ख़ा बयाज़े-साक़िये-कौसरसे[1] मिल गया।
घर बैठे हम तो अब मए-कौसर[2] बनायेंगे ॥

सदसाला[3] दौरे-चर्ख़ था सागरका एक दौर।
निकले जो मैकदेसे तो दुनिया बदल गई ॥

ख़ुदाके हाथ है बिकना न बिकना मैका ऐ साक़ी !
बराबर मस्जिदे-जामअ़के हमने अब दुकां रखदी ॥
बिना है एक ही दोनोंकी कअ़बा हो कि बुतख़ाना।
उठाकर ख़िश्ते-ख़ुम[4] हमने यहां रख दी वहां रख दी ॥

बारे-इसियांके[5] लिए यारब ! फ़रिश्ते भेज दे।
हम लदे आए हैं अपने शीशा-ओ-सागरसे आप ॥
कातिबे-अअ़माल[6] ! यह है आपके हाथोंका खेल।
बोझ उतरवा लीजिए महशरमें मेरे सरसे आप ॥

नीची दाढ़ीने आबरू रख ली।
क़र्ज़ पी आए इक दुकानसे आज ॥

टपकादे बूंद भर कोई मुंहमें 'रियाज़' के।
दम मैकदेमें तोड़ रहा है पड़ा हुआ ॥

---

[1]जन्नतमे शराब पिलानेवालेकी पुस्तिकासे; [2]जन्नतवाली शराब; [3]सैकड़ों वर्षका; [4]शराब-पात्ररूपी ईंट; [5]पापोंका बोझ ले चलनेके; [6]भाग्य-रेख-लेखक।

होगा जिन्हे तौबाका भरोसा मेरे मालिक !
वोह और ही होंगे यह गुनहगार न होगा ॥

ख़ुम दोशपर,[1] बग़लमें सुराही, बरोज़े-हश्र ।
उठना मज़ारसे वोह किसी मै-गुसारका[2] ॥

मक़सूद है कोई न पिये वोह हरीस हूँ ।
वाइज़ हुआ मैं, रिन्द-क़दह-ख़्वार क्या हुआ ?

[मैं ऐसा हरीस (लालची-ईर्ष्यालु) हूँ कि मेरी यह इच्छा है कि मेरे सिवा कोई न पिये। यदि मेरे भी ऐसे अनुदार विचार हैं तो फिर मैं रिन्द क्या हुआ वाइज़ हो गया। क्योंकि इस तरहके ओछे विचार तो इन्ही लोगों-के होते हैं]

हमें पीने-पिलानेका मज़ा जबतक नहीं आता ।
कि बज़्मे मैंमें कोई पारसा जबतक नहीं आता ॥

आफ़ताबे-हश्र कब चमका 'रियाज़' !
दाग़े-मै दामनसे जब मै धो चुका ॥

पीकर भी झलक नूरकी मुंहपर नहीं आती ।
हम रिन्दोंमें जो साहबे-ईमाँ नहीं होते ॥

[केवल रिन्द (ईश्वरमे लीन) होनेसे ही चेहरेपर तेज नही झलक सकता, उसके लिए हृदयका स्वच्छ होना भी आवश्यक है]

अछूते जाम हैं मिन्नतके कुछ अलग रखिए ।
किसे पिलायें कोई पारसा नहीं मिलता ॥

---

[1]कन्धेपर; [2]मद्यपका ।

'रियाज़' ! तौबा करो दिन ख़िज़ाँके आए हैं।
तुम आए पीनेको जाती हुई बहारमें क्या।।

दिल लाख पाक-साफ़ है दामनको क्या करूँ।
जा-जाके मैकदेमें यह धब्बा लगा दिया।।

[जीवनमें एक बार भी धब्बा लगा कि फिर छुड़ाएसे नहीं छूटता, इसीलिए काजरकी कोठरीमें जानेको पूर्वज मना कर गये हैं]

क्या तुझसे मेरे मस्तने माँगा मेरे अल्लाह!
हर मौजे-शराब उठके बनी हाद[1] दुआका।।

'रियाज़' ख़ाके-दरे मैकदा था जीते जी।
फ़नाके बाद उसे ख़ुल्द-आशियाँ[2] देखा।।

जबतक मिलेगी क़र्ज़ पिए जायेंगे ज़रूर।
हम जानते हैं मुफ़्त है सौदा उधारका।।

[ऋणकृत्वा सुरापिवेत वालोपर कितना मीठा व्यंग्य है]

ख़ुमसे न हो वोह सेर, मैं चुल्लूमें मस्त हूँ।
वह ज़र्फ़ शैख़का है, यह मुझ ख़ाकसारका।।

[सतोषी और लालचीकी तुलना क्या खूब की है]

मुझको है लबे-जामे-शिकस्ता भी महे-ईद[3]।
साक़ी! यह हिलाले-रमज़ाँ हो नहीं सकता।।

मिलती है दरे-साक़ीए-कौसरसे[4] यह ख़िदमत।
इस तरह कोई पीरे-मुग़ाँ[5] हो नहीं सकता।।

---

[1]नदीके बहनेका शोर; [2]जन्नतनशी; [3]ईदका चाँद; [4]जन्नतकी शराबके साक़ीसे यह चाकरी मिलती है; [5]मदिरालय-स्वामी।

हरमवालो[1] ! 'रियाज़' आकर हरममें पड़ रहें क्योंकर।
गुज़र उनका कहीं बेजामो-मीना[2] हो नहीं सकता॥

जवानीमें पीकर नशा हुआ तो फिर जवानी क्या ?

भरे साग़रमें है भरपूर रंग उनकी जवानीका।
ग़ज़ब है बे पिए नशेमें मेरा चूर हो जाना॥

बुरी क्या थी फ़ाक़ामस्ती, बड़े लुत्फ़से गुज़रती।
लिये कुछ जो मैंकी तल्ख़ी ग़मे-रोज़गार होता॥
मेरे हल्क़से उतरकर मए-साफ़ अश्क बनती।
कभी मैं गुनाह करता, कभी अश्कबार होता॥
तेरे आगे सर उठाता कोई पारसा[3] न साक़ी !
जो 'रियाज़'-पारसा भी कहीं बादाख़्वार[4] होता॥

हम रिन्द समझते हैं उसे अंजुमने-वअ़ज़।
जिस बज़्ममें ज़िक्रे-मै-ओ-मीना नहीं होता॥

कोई मस्ते-मैकदा आगया, मए-बे-ख़ुदी वोह पिला गया।
न सदाए-नासए-दैर उठी न हरमसे शोरे-अज़ाँ उठा॥
तुझे मै-फ़रोश ख़बर भी है, कि मुक़ाम कौन है क्या है शै ?
यह रहे-हरममें दुकाने-मै, तू यहाँसे अपनी दुकाँ उठा॥*

---

*बाद दिखावत खोल इत तुपक, तीर, तरवार।
सुरमा, मीसीके खड़े जहाँ बिसावनहार॥
—वियोगी हरि

[1]मस्जिदवालो; [2]मदिरा-पात्रोंके; [3]नेक चलन; [4]शराबी।

जहाँ हम ख़िश्ते-ख़ुम[1] रखदें बिनाए-कअ़बा पड़ती है।
जहाँ साग़र पटक दें चश्मए-ज़म-ज़म निकलते हैं॥

जिस दिनसे हराम हो गई है।
मै-ख़ुल्दे मुक़ाम हो गई है॥
मर गया हूँ पै तअ़ल्लुक़ है जो मैख़ानेसे।
मेरे हिस्सेकी छलक जाती है पैमानेसे॥
हरम-ओ-दैरमे होती है परिस्तिश किसकी?
मै परस्तो यह कोई नाम है मैख़ानेके॥

जाहिदो-वाइज

उर्दूकी परम्पराके अनुसार 'रियाज़'ने भी शेख़ और वाइज़, ज़ाहिद और नासेहकी पगड़ी उछालनेमे कोई कमी नही की है। कही-कही तो मुँह चिढ़ाते-से नज़र आते हैं—

क्या तड़ाकेकी सदा थी सरे-नासेहकी[2] क़सम।
किसी मैकशने सुबू कोई उछाला होगा॥
मए-कौसरमें यह बू-बास कहाँ थी ज़ाहिद!
कुछ नहीं, यह किसी मैकशका पसीना होगा॥

कैसे ये बादाख़्वार हैं सुन-सुनके पी गए।
वाइज़को कुछ मज़ा न किसीने चखा दिया॥

पी-पीके उसने सिज्दे किये हैं तमाम रात।
अल्लाहरे शग़ल ज़ाहिदे-शब-ज़िन्दादारका॥

इस शैख़े-कुहन-सालकी, अल्लाहरे बुज़ुर्गी।
जन्नतमें भी जाकर यह जवाँ हो नहीं सकता॥

---

[1]मदिरा-पात्ररूपी ईंट; [2]उपदेशकके सिरकी।

हलकी शराब पी जो किसी नाज़नींके साथ।
वाइज़ में इस गुनहसे गिराँबार क्या हुआ?

किया जो मैकदे जानेसे मनअ वाइजने।
तो रोज़ उठके यही काम सुबह-ओ-शाम किया॥

संजीदगीसे महफ़िले-साक़ीमें बात की।
नासेह-सा बेवक़ूफ़ भी आक़िल निकल गया॥

हमतो ख़ुदापरस्त भी थे, बुतपरस्त भी।
हमको 'रियाज़'! शैख़ो-बरहमनने क्या कहा?

आया जुनूंमें देने वोह नश्तर मुझे 'रियाज़'!
नासेहको देखिए कि मेरा चारागर बना॥

महफ़िले-वाअ़ज़में वाइज़ न मेरे सर होता।
एवज़े-शीशा अगर हाथमें पत्थर होता॥

लगाके धोकेसे मुंह शैख़ फिर न छोड़ सका।
पुकारता ही रहा मैं "अरे शराब-शराब"॥

अ़म्मामा[1]-ओ-अ़बा[2]-ओ-क़बा[3] सब हैं रेहने-मै।
अब दे कोई उधार तो किस एतबारपर?

दामने-तरने[4] दिया काम कुछ ऐ गर्मिये-हश्र[5]!
ज़ाहिदे-ख़ुश्क भी बैठे हैं गुनहगारके पास॥

मस्जिदमें आज हम भी गये थे पए-नमाज़[6]।
देखा सलाम फेरके तो शैख़जी नहीं॥

---

[1]पगड़ी; [2-3]चोग़ा; [4](शराबसे) भीगे वस्त्रोंने; [5]क़यामतकी गर्मी; [6]नमाज़ पढ़नेके लिए।

पहले मैसे भिगोले रीशे-सफ़ेद[1]।
देख ऐ शैख़! फिर ख़िज़ाबका रंग॥

देखकर शोख़हसीनोंको बता ऐ नासेह!
गुद-गुदी दिलमें कभी तेरे उठी है कि नहीं?

फ़रिश्तोंमें थी शैख़ साहबकी गिन्ती॥
यह रिन्दोंकी सुहबतमें इन्सां हुए हैं॥

करते हैं वज्द अब तो सुन-सुनके कअ़बेवाले।
मैंने वोह रूह फूंकी नाक़ूसे-बरहमनमें[2]॥

शैख़ यह कहता गया पीता गया—
"है बहुत ही बदमज़ा, अच्छी नहीं"।

वाइज़ा! हम गुनह नहीं करते।
हम गुनहगार नाज़ करते हैं॥

जी न माना हज़रते-नासेहको आते देखकर।
कुछ युंही थोड़ी-सी पीली दिललगीके वास्ते॥

क्यों पड़े हो गोशए-मस्जिदमें उट्ठो ज़ाहिदो!
फूटी आंखोंसे ज़रा देखो घटा छाई हुई॥

जिस कामको तू मना करेगा हमें नासेह!
हम छोड़के सौ काम वही काम करेंगे॥

आज तो पी दिखाके वाइज़को।
मैं कभी इस क़दर न था गुस्ताख़॥

वोह आ रहा है अ़सा[3] टेकता हुआ वाइज़।
बहा दे इतनी कि साक़ी! कहीं न थाह मिले॥

---

[1]सफ़ेद दाढ़ी; [2]पुजारीके शंखमें; [3]लकड़ी, छड़ी।

यह सुनके निस्फ़ शबको[1] दरे-मैकदा[2] खुला।
माँगी है इक बुज़ुर्गे-तहज्जुद गुज़ारने[3]॥

ऐ शैख़ तू चुराके पिये जब कभी पिये।
तेरी तरह किसीकी न नीयत ख़राब हो॥

शबको मैख़ानेमें क्यों पहुँचे थे ऐ हज़रते शैख़!
कहिए अच्छी तो कटी क़िबलए-हाजातकी रात?

अपने सर मेरे गुनहका बार रहने दीजिए।
शैखकी अच्छी है यह दस्तार रहने दीजिए॥

जनाबे शैखने जब पी तो मुँह बनाके कहा—
"मजा भी तल्ख है, कुछ बू भी ख़ुशगवार नहीं"॥

उठवाओ मेजसे मै-ओ-साग़र 'रियाज़' जल्द।
आते हैं इक बुज़ुर्ग पुराने ख़यालके॥

जलजला-सा आगया आया जो मै।
हज़रते-वाइज़[4] गिरे, मिम्बर[5] गिरा॥

पाक-ओ-साफ़ इतनी है जिसने पी फ़रिश्ता हो गया।
ज़ाहिदो यह हूरके दामनमें है छानी हुई॥

ताक़े-हरममें शैख़! गुलाबी है फूल-सी।
इस कामका मिलेगा तुझे फल, उठा तो ला॥

---

[1]आधी रातको; [2]मधुशाला-द्वार, [3]आधीरातको नमाज पढ़नेवालेने; [4]उपदेशक; [5]वह सीढियाँ जिसपर खडे होकर मस्जिदमे उपदेश दिया जाता है।

तोड़े टकराके सुबू हमने भी उसके सरसे।
चुप है वाइज़ कि यही हासिले-तक़रीर भी था॥

कौसरका हौज़ हश्रमें सरपै लिये फिरूँ।
चिल्लाये शैख़ "यह भी तुम्हारा सुबू हुआ"॥

क़र्ज़ लाया है कोई भेस बदलकर शायद।
मै-फ़रोशोंका है जाहिदसे तक़ाज़ा कैसा?

सौन्दर्य-वर्णन

'मैख़ानए-रियाज' के साथ-साथ आइए लगे हाथ उनके मश्रशूक़को भी दबे पाँव देख ले—

ले वोह दामनमें क्या गुलाबके फूल।
बारे-दामन[1] जिन्हें गुलाबका रंग॥
रंगका उसके पूछना क्या है?
जिसका साया भी दे गुलाबका रंग॥

नाज़ुक कलाइयोंमें हिनाबस्ता मुट्ठियाँ[2]।
शाख़ोंपै जैसे मुँह बँधी कलियाँ गुलाबकी॥
रुख़े-पुरनूरमें[3] जगह थी कहाँ?
रखनेवालेको देखिए तिलके॥

तेरा यह रंग-रूप, यह जोबन शबाबका।
जैसे चमन बहारमें फूला-फला हुआ॥
थी दिलमें गुदगुदी कि यह पूछूँ दमे-विसाल[4]।
"यह तू हँसा कि फूल खिला तेरे हारका?"

उफ़-रे उभार, उफ़-रे जमाना उठानका।
कल बामपर[5] थे आज है क़स्द[6] आस्मानका॥

---

[1]दामनका बोझ; [2]मेहदी लगी मुट्ठियाँ; [3]चमकते हुए मुखड़ेपर; [4]मिलनके समय; [5]कोठेपर; [6]इरादा।

क्या क़यामत है शबेवस्ल ख़मोशी उसकी।
जिसकी तसवीरको भी नाज़ है गोयाईका[1]॥
शाख़ेगुल तनती है, क्या बाग़में ऐ जोशेबहार!
इसमें अन्दाज़ कहाँ यारकी अँगड़ाईका॥

वोह तसवीर आजतक महफ़ूज़[2] है चश्मे-तसव्वुरमें[3]।
तेरे बचपनसे जब अठखेलियाँ करता शबाब[4] आया॥
हुए हंगामाहाए-हश्र[5] कितने गोशए-दिलमें[6]।
वोह मेरे सामने कुछ इस अदासे बेनक़ाब आया॥
वोह आये सैरे-दरियाके लिए तो बिछ गई मौजें[7]।
क़दमसे उनकी अपनी आँख मलते हर हुबाब[8] आया॥

उसके आग़ाज़े-जवानीका[9] कहूँ क्या आ़लम।
कुछ उसे नशा-सा था, नशेमें वोह चूर न था॥

शर्मो-हया

ऐ साहब इस तरह घूरकर न देखिए, कुछ उसकी हया-शर्मका भी ख़्याल कीजिए—

नशेसे झुकी पड़ती थीं यूँ ही तेरी आँखें।
छेड़ोंसे मेरी और बढ़ा बोझ हयाका॥
मैं ख़्वाबमें हूँ और खुली है मेरी आँखें।
अब दिलमें उतर आये जो पुतला हो हयाका॥
दिल छीनती है और झुकी जाती है आँखें।
शोख़ीमें भी जाता नहीं अन्दाज़ हयाका॥
कह उठे—"चुप हो क्यों विसालके[10] बाद?"
ख़ुद ही शरमाये इस सवालके बाद॥

---

[1]बोलनेका; [2]सुरक्षित; [3]कल्पनाके आँखोंमें; [4]यौवन; [5]क़यामतजैसाशोर-गुल; [6]दिलके कोनेमें; [7]लहरें; [8]बुलबुला; [9]यौवनके प्रारंभका; [10]मिलनके।

बने है शर्मके पुतले शबेवस्ल।
हया आँखोंमें है नीची नज़र है॥
हश्रमें शरमाके उसने हाथ मुँहपर रख दिया।
बात दिलकी होंटपर बे-अख़्तियार आनेको थी॥

नज़ाक़त

और इस हयाके साथ यह नजाक़त भी मुलाहिजा फर्माइए—

मैं तो समझा पंखड़ी है फूलकी।
किस क़दर हलका तेरा ख़ंजर पड़ा॥
ऐसी ज़िद है तो उन्हे कौन मनाये या रब!
वोह यह मचले है कि कोई मुझे क्यों याद आया॥

वोह सिन ही क्या है समझ हो जो ऐसी बातोंकी।
वोह पूछते हैं कि—"रोजे-विसाल क्या होगा?"

शोखियाँ

हुजूरेवाला! अब यहाँसे खिसक चलिए। देखिए शर्मो-हयाके पर्दमें शोखियाँ शुरू हो गई है। अब ठहरना मुनासिब नही—

यहाँ भी है वही इतराके चलना।
क़यामत है कि उनकी रह गुज़र है॥
वक़्त ही ऐसा था रुख़सत हो गई उनकी हया।
बात ही ऐसी थी खुल-खेले वोह शर्मानेके बाद॥

हँगामे-नज़अ[1] गिरया[2] यहाँ बेकसीका था।
तुम हँस पड़े, यह कौन-सा मौक़ा हँसीका था?
जो गूँज उलझी बालीकी झूँझलाके बोले—
"लगे प्यारको आग! अभी कान जाता!!"

---

[1]मृत्युके समय; [2]रोने-धोनेका शोर।

बचपन यह है तो कौन बचेगा शबाबतक[1] ?
सदक़े[2] तेरे उमंग अभी इम्तहाँकी है॥

ख़ुदा जाने क्यों उनके दिलमें यह आई।
जफ़ाओंकी[3] ठहरी करम[4] करते-करते॥

उड़ाये फिरती है उनकी जवानी।
क़दम पड़ता नहीं उनका ज़मींपर॥

हम दिलमें ख़ुश कि सब्जए-तुरबत[5] हरा हुआ।
वोह इस अदासे रोये कि पलकें भी नम नहीं॥

कुछ और ही होती है बिगड़नेकी अदाएँ।
बननेमें-सँवरनेमें यह आलम[6] नहीं होता॥

हरजाई मअशूक़

यह गुनगुनानेकी आवाज कहाँसे आ रही है ? आवाज तो जानी-पहचानी मालूम होती है। अरे भई यह तो हजरते 'रियाज' है, मालूम होता है अपने मअशूकसे कुछ गिला-शिकवा कर रहे हैं—

निकले थे मुँह छुपाये हुए घरसे ग़ैरके।
तसवीर बन गये जो मेरा सामना हुआ॥

ग़ैरके घरसे झिझकते हुए तुम निकले थे।
रुकते देखा तुम्हे, फिर छुपके निकलते देखा॥

कभी कुछ रात गये या कभी कुछ रात रहे।
हमने इन पर्दानशीनोंको निकलते देखा॥

छुपके रातोंको कहीं आप न आये न गये।
बे-सबब नाम हुआ आपका रोशन कैसा ?

---

[1]जवानी आनेतक; [2]न्योछावर, कुर्बान जाऊँ; [3]जुल्मोंकी; [4]कृपा; [5]समाधिपर उगी घास; [6]दशा, हाल।

है अभी मेरे बुढ़ापेमे जवानी कैसी ?
है अभी उनकी जवानीमें लड़कपन कैसा ?

यह भी एहसां[1] ? सुबह होते आये तुरबतपर[2] मेरी।
कुछ गुले-पज़मुर्दा[3] लेकर ग़ैरके बिस्तरसे आप॥

पारसाईका[4] यक़ीं[5] ग़ैरको दिलवाते हो।
और भूलेसे जो आजाय तबस्सुम[6] मुझको !

गये थे आप उठाने जनाज़ा दुश्मनका।
कहां गई थी बड़े धूमसे सवारी रात ?

हजरते 'रियाज' अपने हबीबसे यह किस अन्दाजकी गुफ्तगू कर रहे है ? मालूम होता है हबीबसे नही, किसी बाजारी औरतसे जबान लडाई जा रही है।

कामुकप्रेमी

क्या आप 'रियाज' को बेदाग और उनके हबीबको पाकदामन समझे बैठे थे ? तौबा कीजिए साहब, जैसी गन्दी देवी वैसे ऊत पुजारी। वेह खुद भी भौरे है और उनकी चहेती भी तितलियाँ है। यहाँसे खिसकिए तो उनके हस्बहाल कुछ शेअर सुनाऊँ—

ऐ 'रियाज' ! आँख लड़ाते हुए जी डरता है।
जुल्म पहुँचे है हसीनोंकी नज़रसे क्या-क्या॥

बाजारमें भी चलते है कोठोंको देखते।
सौदा खरीदते है तो ऊँची दूकानका॥

लूटी है बहुत हमने हसीनोंकी जवानी।
पीरीमें भी अबतक है जवानीकी वही बात॥

सताते है हम भी हसीनोंको क्या-क्या।
सताती है हमको जवानी हमारी॥

---

[1]एहसान; [2]कब्र, समाधिपर; [3]कुम्हलाये फूल; [4]नेक चलनीका; [5]विश्वास; [6]मुस्कराहट।

हमको मिल जायें तो आ जाये मज़ा।
अच्छे मअ़शूक़ और सस्ते दामके॥
जितने हैं मअ़शूक़ मिल जायें हमें।
हैं यह सब काफ़िर हमारे कामके॥

कहते हैं "जान पड़ गई आफ़तमें वक़्तेवस्ल।
मलदलके रख दिया मुझे, अच्छा यह प्यार है"॥

तुम एक रह गये हो हमारी निगाहमें।
सब नाज़नीं हमारी नज़रसे उतर गये॥

किसने देखा हमें कूचेमे हसीनोंके 'रियाज़'।
मुफ़्त बदनाम हुए हम कहीं आये-न-गये॥

कहना किसीका सुबहे-शबे-वस्ल नाज़से—
"हसरत तुम्हारी, जान हमारी निकल गई॥"

देखते ही किसी काफ़िरको बिगड़ जाती है।
मैं जो चाहूँ भी तो रहती नहीं नीयत अच्छी॥

किसीपर दमे-हश्र क्या आँख डालूँ?
हसीं सब मेरे देखे-भाले हुए हैं॥

बेअदबियाँ

'रियाज़' उर्दू-शाइरीकी परम्पराके अनुसार अपने मअ़शूकका सम्मान और इज़्ज़त नही करते, बल्कि बेअ़दबीपर उतर आते हैं—

चूम लेते हैं मुँह कभी हम भी।
जब हसीं कहके कुछ मुकरते हैं॥

कहना किसीका हाय वोह झुँझलाके नाज़से—
"कम्बख़्त हाथ छोड़, कोई देखता न हो"॥

हमने भी इन हसीनोंको छेड़ा है किस क़दर।
ऐसा भी कोई है जो हमें कोसता न हो॥

मैंने लिया जो हश्रमें दामन बढ़ाके हाथ।
बोले वोह "आबरू है मेरी अब ख़ुदाके हाथ॥"

बढ़ने लगे थे दस्ते-अदब बनके दस्ते-शौक़।
ज़ालिमने आज थाम लिये मुसकराके हाथ॥

हाथ गुस्ताख़ हैं उठ जायें न यह दामनपर।
बचके निकलें मेरी मरक़दसे ग़ुज़रनेवाले॥

दौड़कर गोदमें उठा लाऊँ।
घरमें छमसे जो कोई आजाये॥

पायें तो ऐ हसीनो! तुमको रुलाके छोड़ें।
है यह 'रियाज़' ऐसे इनको तरस न आये॥

डर गये, चीख़ उठे, बात थी क्या, कहिए तो?
क्या शबेवस्ल किसीका कोई अरमाँ निकला॥

दीवाना मैंने हश्रमें ख़ुदको बना लिया॥
जो मिल गया हसीन गलेसे लगा लिया॥

कोई मुँह चूम लेगा इस 'नहीं' पर।
शिकन रह जायगी यूँ ही जबींपर॥

चूमकर मुँह गालियाँ खाते हैं हम।
इस सज़ामें फिर मज़ा पाते हैं हम॥

अरे ओ हश्रमें इतरानेवाले यूँ न चल तनकर।
यहाँ भी लूटनेवाले तेरे जोबनके बैठे हैं॥

ख़ुदा करे कहीं मौक़ेसे मुझको मिल जायें।
यही हसीं जो मुझे पारसा समझते हैं॥

जबतक वोह मेरे हाथोंसे मजबूर न होंगे।
वअ़देका उन्हें हश्रमें इक़रार न होगा॥

खुलके लूटी हुस्नकी दौलत 'रियाज़'!
आज तो डाका सरे-महशर पड़ा॥
कहते हैं "ख़ूब कहो, हम न सतायें तुमको,
तुम जो पा जाओ सताओ हमें कैसा-कैसा?"

छुपता नहीं छुपायेसे आ़लम उभारका।
आँचलकी तहसे देखो नमूदार क्या हुआ?

बता दें आ गया क्या तुमको इस उठती जवानीमें।
बता दें कानमें चुपकेसे क्या तुमको नहीं आया?

हम ग़रीबोंका अँधेरेमें निकल जायेगा काम।
आयें तो वह शमए-तुरबतको बुझानेके लिए॥
लेके उट्ठे सुबहको दर्दे-कमर।
शामसे बैठे थे जो सर थामके॥
छेड़ना काफ़िर बुतोंका है सवाब।
जब मिलें उनको सताना चाहिए॥
गुद-गुदाता हो जिन्हें जिनका शबाब।
ऐसे मअ़शूक़ोंको छेड़ा चाहिए॥

निगाहसे बढ़के है गुस्ताख़ दस्ते-शौक़ मेरे।
न कोसियेगा ज़रा हाथ उठा-उठाके मुझे॥
निकाल दूंगा शबेवस्ल बल नज़ाकतके।
डरा लिया है बहुत त्योरियाँ चढ़ाके मुझे॥

इतनी बेअदबीके बाद भी 'रियाज़' को सब्र नहीं होता, वे कुछ और आगे बढ़ते हैं। अब तक उर्दू-शाइरीके जितने भी अनगिनत आशिक़ हुए हैं, वे अपने मअशूक़को ख़ुदा या ख़ुदासे बढ़कर समझते रहे हैं—

दावरके[1] सामने बुते-क़ाफ़िरको क्या कहूँ?
दोनोंकी शक्ल एक है किसको ख़ुदा कहूँ?
मारो भी तुम जिलाओ भी तुम, तुमको क्या कहूँ?
तुमको ख़ुदा कहूँ या ख़ुदाको ख़ुदा कहूँ॥

—अज्ञात

और उनकी एक जुम्बिशपर जान-न्योछावर करनेको प्रस्तुत रहे हैं। जीवन भर उनको प्रसन्न करने और मनानेमें व्यस्त रहे, परन्तु सफलता शायद ही किसीको प्राप्त हुई हो। लेकिन 'रियाज़' दूसरे ही ख़मीरसे बने हैं। उनके समक्ष मअशूक़ रूठनेकी हिम्मत तो तब करे, जब 'रियाज़' मनानेके आदी हों। वे तो बात-बेबात स्वयं ही रूठे रहते हैं—

छेड़ कैसी? बात करते रूठ जाते हैं 'रियाज़'।
एक हसीं हर वक़्त हो उनको मनानेके लिए॥

इन हसीनोंने कहा क्या, कि ख़फ़ा हो बैठे।
बात क्या थी कि 'रियाज़' आप बुरा मान गये॥

रूठनेका सबब और क्या होता? सृष्टिके आदिसे प्रेयसियाँ, प्रेमियोंको सताती, तरसाती आ रही हैं। उन्हींका बदला 'रियाज़' गिन-गिनकर ले रहे हैं।

पाकीज़ा कलाम

"अमाँ दफ़ान भी करो इस बयानको। इस फ़वाहिशातके अलावा कुछ पाकीज़ा भी है 'रियाज़'के यहाँ?"

---

[1]ख़ुदाके।

"है क्यो नही, मगर वही आटेमे नमककी तरह।"

"वह भी क्या कम है, जरा सुनें तो सही क्या फर्माया है 'रियाज' साहबने ?"

फर्माया है—

मुफ़लिसोंकी ज़िन्दगीका ज़िक्र क्या ?
मुफ़लिसोंकी मौत भी अच्छी नहीं॥

"वाह, क्या बात है ! मुफ़लिसीकी वह दरावनी तसवीर खीची है कि दाद देनेको शब्द नही। मालूम होता है कोई दीन-दुखियोंको देखकर अगारोपर लोट रहा है।"

"अरे साहब, यह शेअर सुनिए, मालूम होता है 'रियाज' विश्व-वेदनाको सीनेसे लगाये घूम रहे है। जिसका दिल दीन-दुखियोके लिए ओत-प्रोत न हो, क्या खाकर ऐसा शेअर कहेगा ?

मेरे सिवा नज़र आये न कोई दोज़खमें।
किसीका जुर्म हो मालिक ! मुझे सज़ा देना॥

"आप क्या फर्मा रहे है ? रियाज-जैसा रगीन मिजाज ऐसा दर्दीला कलाम भला कैसे कह सकता है ?"

और सुनिए—

असर बढ़ जाय यारब ! इस क़दर सोज़े-मुहब्बतका।
जहन्नुममें हर अंगारेको समझू फूल जन्नतका॥

उनका पाकीज़ा इश्क देखिए—

ताअ़तका इन बुतोंने सलीक़ा सिखा दिया।
ख़ुद क्या मिले कि मुझको ख़ुदासे मिला दिया॥

जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब, ऐसी सुहबत क्या?*

कुछ नीतिपूर्ण—

जिनके दिलमें है दर्द दुनियाका।
वही दुनियामें ज़िंदा रहते हैं॥
जो मिटाते हैं ख़ुदको जीते जी।
वही मरकर भी ज़िंदा रहते हैं॥

मौतसे बदतर बुढ़ापा आयेगा।
जानसे अच्छी जवानी जायगी॥

क्या सुरभा भरी आँखोंसे आँसू नहीं गिरते?
क्या मेंहदी लगे हाथोंसे मातम नहीं होता?

जब अभिलाषाएँ त्यक्त कर दीं तो—

हमें ख़ुदाके सिवा कुछ नज़र नहीं आता।
निकल गये हैं बहुत दूर जुस्तजूसे हम॥
हुए पस्त ऐसे उनकी ख़ाक भी उड़ते नहीं देखी।
रहे रहनेको कितने इस ज़मींपर आस्माँ होकर॥

गुल-ओ-बुलबुलको लक्ष्य करके—

हाय क्या झटपट क़फ़समें बालोपर पैदा किये।
जब सुना हमने कि जाती है बहार आई हुई॥

---

*हसरत मोहानीने भी क्या ख़ूब कहा है—

शब वही शब है, दिन वही दिन है।
जो तेरी यादमें गुज़र जाये॥

नशेमनमें गुज़रे कई मौसमे-गुल।
क़फ़समें जो टूटे थे वोह पर न निकले॥
चमनमे हम आये जो छुटकर क़फ़ससे।
महीनों नशेमनसे बाहर न निकले॥

उजाड़ते हुए सौ बार आशियाँ देखा।
चमनमे रहके तुझे ख़ूब बाग़बाँ देखा॥
सूए-चमन जो चले लूटने बहारका लुत्फ़।
तो हमने दो क़दम आगे तुझे ख़िज़ाँ देखा॥
यह फूल लेके अनादिल[1] चले चमनसे कहाँ।
ज़रूर मेरी लहदका[2] कहीं निशाँ देखा॥

गोशेसे[3] नशेमनके आहोंका असर देखा।
सैयादका घर जलते बे-बर्क़ो-शरर[4] देखा॥
यूँ हश्रमें सैरेंकी फिर्दौसो-जहन्नुमकी[5]।
कुछ देर इधर देखा कुछ देर उधर देखा॥

ख़ुश किया यूँ बाग़में लाकर मुझे सैयादने।
शाख़के नीचे क़फ़स है आशियाँ बालाए-सर[6]॥
कोई सौ बार उड़े, सौ बार बैठे।
क़फ़ससे यूँ हम आये आशियाँ तक॥

मुँह बँधी कलियोंके जोबनका यह कहता है उभार—
"अपने सीनेसे हमें कोई लगाले बुलबुल॥"

क़फ़स दस्ते-सैयादमें, हम क़फ़समें।
यह काम आई है ख़ुश बयानी हमारी॥*

---

*इसी मजमूनको असगर गोण्डवीने क्या ख़ूब बाँधा है—

नग़मए-पुरदर्द छेड़ा हमने इस अन्दाज़से।
ख़ुद-ब-ख़ुद पड़ने लगी हमपर नज़र सैयादकी॥

[1]बुलबुलोंका समूह; [2]क़ब्रका; [3]कोनेसे; [4]बिजली-आगके बिना; [5]स्वर्ग-नरककी; [6]सिरके ऊपर।

हमने अपने आशियाँके वास्ते।
जो चुभे दिलमें वही तिनके लिये॥

साया भी शाख़े-गुलका न हमको हुआ नसीब।
ऐसे कई बहारके मौसम गुज़र गये॥

वाए-क़िस्मत जब क़फ़सका दर खुला।
उड़गई ताक़त परे-परवाज़की[1]॥

अन्य फुटकर कलाम—

जुल्फ़ोंमें आप बैठके मोती पिरोइए।
आँसू न पोंछिए किसी आशुफ़्ता[2]-हालके॥

जो खिला फूल, बना ज़ख्म मेरे दिलका 'रियाज़'!
जो कली रह गई खिलनेसे बना दिल मेरा॥

बच जाय जवानीमें जो दुनियाकी हवासे।
होता है फ़रिश्ता कोई इन्साँ नहीं होता॥

यह मेरे दोशसे[3] होते नहीं जुदा दमे-नज़अ[4]।
गड़ेंगे मेरे फ़रिश्ते मेरे मज़ारमें क्या[5]॥

उम्रभर कातिबे-अअ़माल[6] फ़रिश्ते ही रहे।
पाके सुहबत भी न आया इन्हे इन्साँ होना॥

लिये नाक़ूस[7] कोई दैरवाला[8] आज आया है।
अगर सच है तो कअ़बेमें मज़ा वक़्ते-अज़ाँ होगा॥

रहमकर मालिक कि है दो-दो फ़रिश्ते भी लदे।
और फिर इसियाँका[9] भी बारे-गिराँ[10] बालाए-सर[11]॥

---

[1]उड़नेवाले परकी; [2]दुःखियाके; [3]कन्धेसे; [4]मृत्युके समय भी; [5]इस्लाम धर्मके अनुसार हर इन्सानके कन्धोंपर किसमत कातिबीन नामक फ़रिश्ते सवार रहते है और यही दोनो उसकी नेकी-बदीका व्योरा लिखते रहते है; [6]पुण्य-पाप-लेखक; [7]शख; [8]पुजारी; [9]पापका; [10]भारी बोझ; [11]सिरके ऊपर।

हाँ वही फिर कअ़बा बन जायेगा ऐ शैख़-हरम !
बुतकदेका पहले नक़्शा खींच, फिर नक़्शा बिगाड़ ॥

हमे ठुकराते जाये जो वहाँ जाये।
पहुँच जायें यूँही हम आस्ताँतक[1] ॥
'रियाज़' ! आनेमे है उनके अभी देर।
चलो हो आयें मर्गे-नागहाँ[2] तक ॥

आँखों में अश्क आये तो हँसनेका लुत्फ़ क्या ?
इतना न गुदगुदाओ कि हम रो दिया करें ॥

मै जो पहुँचा तो लिये उठके बगोलोंने क़दम।
नज्दमें[3] धूम मची "क़ैसका उस्ताद आया" ॥
कलीम ! जाके जहाँ होश अपना खो आये।
वहाँ तो रोज हम आँखे लड़ाने जाते है ॥*
कभी आजाती है कअ़बेमें हमे दैरकी[4] याद।
बैठे-बैठे कभी नाक़ूस[5] बजा देते है ॥

लगादो ज़रा हाथ अपनी गलीमें।
जनाज़ा लिये दिलका हम जा रहे है ॥
बाहम[6] शबे-विसाल उठाये है क्या मज़े।
वोह भी यह कह रहे है--"इलाही सहर[7] न हो" ॥
वोह जुर्म ढूंड-ढूंड कर करता हूँ रात-दिन।
लिक्खें तो कातिबाने-अ़मल[8] पर अ़ताब[9] हो ॥

---

*इसी मजमूनसे लड़ता हुआ बिस्मिल शाहजहाँपुरीका शेर भी खूब है—

नहीं मालूम मूसा तूरसे क्यों बेक़रार आये ?
मेरी मंज़िलमें ऐसे मरहले तो बे-शुमार आये ॥

[1]प्रेयसीके द्वार तक; [2]नागहानी मौत; [3]अरबमें एक जंगल है; [4]मन्दिरकी; [5]शंख; [6]परस्पर; [7]सुबह; [8]-[9]करनी-लेखकों पर ईश्वर कोप करे।

शुक्रे-बेदाद[1] तो हो, शिकवए-बेदाद[2] न हो।
मेरे लबपर[3] हो तबस्सुम[4] कभी फ़रियाद न हो॥
हो वफ़ा[5] जिसमें वोह मअ़शूक कहांसे लाऊं?
है यह मुश्किल कि हसीं[6] हो, सितमईजाद[7] न हो॥

रखदूं हरममें[8] दैरसे[9] लाकर अगर उसे।
नाक़ूस[10] भी ख़ुदाको पुकारे अज़ांके साथ॥*

बज़्मे-महशरमें[11] न रखती उसकी रहमत[12] इम्तियाज़[13]।
लुत्फ़ होता रिन्द-ओ-ज़ाहिद सब बराबर बैठते॥

कलीम आये तो खुलके जलवा दिखाया।
हम आये तो पर्देसे बाहर न निकले॥

जीमें आता है अभी जाके ख़ुद उससे पूछूं—
"बात क़ासिदकी तेरे मुंहकी कही है कि नहीं॥"

जो फिर रहा है ख़िज़्रका साया बना हुआ?
भटका हुआ यह मेरा कोई नामाबर न हो॥

क़ुर्बान अपने कसरते-इसयांके[14] बार-बार।
महशरमें सबसे पहले हमारी पुकार है॥
मज़े लूटो कलीम! अब बन पड़ी है।
बड़ी ऊँची जगह क़िसमत लड़ी है॥

---

*बरहमन नालए-नाक़ूस मस्जिदतक जो पहुँचादे।
बुरा क्या है मुअज्ज़िन भी अगर बेदार हो जाये॥
—जालंधरी

[1]अत्याचारके लिए धन्यवाद; [2]अत्याचारकी शिकायत; [3]ओठोंपर; [4]हँसी; [5]नेकी, भलाई; [6]सुन्दर, ; [7]अत्याचार-आविष्कारी; [8]मस्जिदमें; [9]मन्दिरसे; [10]शख; [11]प्रलयके बाद ख़ुदाके दर्बारमें; [12]ख़ुदाका रहम; [13]भेद-भाव; [14]पापोंकी अधिकताके।

बड़ी कोई नट-खट है या रब! क़ज़ा भी।
चुने बाँके-तिरछे जवाँ कैसे-कैसे॥
सँरको निकलें वोह अपनी रहगुज़रसे[1] बे-हिजाब[2]।
और रक्खी हो हमारी लाश कफ़नाई हुई॥

जब चले सूए-लहद[3] मुड़के न देखा घरको।
ऐसे रूठे कि किसीसे भी मनाये न गये॥

जब चली आस्माँसे कोई बला।
सीधी मेरे मकानपर आई॥

चली जाती है उनके घर मेरी नींद।
जाके फिर रात भर नहीं आती॥

उतरनेवाले अभीतक न बामसे[4] उतरे।
तड़पनेवाले तड़पकर फ़लकको[5] छू आये॥

जब चला मैं दो क़दम तो जोअ़फ़से[6]।
खाके अपने सायेकी[7] ठोकर गिरा॥
दिल गिरा अन्धे कुएँमें इश्क़के।
साथ अपने मुझको भी लेकर गिरा॥

आगे तो रक़ीबोंकी[8] उठा लेते थे सल्ती।
यह जोअ़फ़ है उठता नहीं अब नाज़[9] किसीका॥

होके बेताब बदल लेते थे अक्सर करवट।
अब यह है जोअफ़ कि क़ाबू से है बाहर करवट॥

नज़अ़में[10] यारसे पैमाने-वफ़ा[11] करते हैं।
इस दग़ाबाजसे हम आज दग़ा करते हैं॥

---

[1]कूचेसे, रास्तेसे; [2]बेपर्दा; [3]क़ब्रिस्तानकी तरफ़; [4]कोठेसे; [5]आस्मान-को; [6]निर्बलतासे; [7]परछाँईकी; [8]प्रतिपक्षिओंकी; [9]नखरा; [10]मृत्यु-समय; [11]नेकी करनेका वअ्दा।

जाना था कि आना था जवानीका इलाही!
सैलाबकी[1] थी मौज[2] या झोंका था हवाका?

राह चलते हुई है दौलते-दीदार[3] नसीब!
इसमें एहसान नहीं आपके दरबानोंका॥
बुत खुदा हों कि न हों, है मगर इतनी तौक़ीर[4]।
बुतकदा आज भी कअबा है मुसलमानोंका॥

मुझको दरबाँने निकाला इस तरह।
उनके दरपर रह गया बिस्तर पड़ा॥*

उनकी गलीमें रात मैं इस बजअसे गया।
घबराके पासबान[5] गिरे पासबानपर॥

गालियाँ भी नहीं तक़दीरमें उनके मुँहकी।
उनके दरबाँ कभी दो-चार सुना देते हैं॥

ज़रूर क़स्द[6] किया उसने बामे-लैलाका[7]।
बुलन्द[8] आज बहुत क़ैसका ग़ुबार[9] गया॥

दामनमें फूल लेके चले थे उदूके[10] घर।
हसरत पुकार उठी कि "हमारे मजारपर"॥

जवाँ होने न पाये थे कि दिल आया हसीनोंपर।
अजल[11] यह कहती आई—"क्या करोगे तुम जवाँ होकर?"

---

*दरपै पड़नेको कहा और कहके कैसा फिर गया।
जितने अरसेमें मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला॥
—ग़ालिब

[1]बाढ़, बहाव; [2]लहर; [3]झलकरूपी दौलत; [4]गौरव; [5]दरबान; [6]इरादा; [7]लैलाके कोठे तक पहुँचनेकी; [8]ऊँचा; [9]वह बगोला जो रेगिस्तान मे धूलका उठता है; [10]प्रतिद्वन्द्वीके; [11]मृत्यु।

घटती नहीं तुरबतमें[1] भी फ़ुरक़तको[2] अज़ीयत[3]।
यह दर्द वोह है मरके भी जो कम नहीं होता॥

किस लुत्फ़से खुली हुई आँखें हैं बादे-मर्ग[4]।
हम मिट गये मज़ा न मिटा इन्तज़ारका॥

मुँहको आया है कलेजा सौ बार।
हाय आ़लम[5] शबे-तनहाईका[6]॥
यह कोहकनके[7] भी काटे तो कट नहीं सकती।
पहाड़ हो गई फ़ुरक़तकी हमको भारी रात॥

मजबोर हुए अश्कोंसे घरके दरो-दीवार।
ानेके लिए लेगे किरायेका मकाँ और॥

यह टूट-टूटके तारे नहीं गिरे शबे-हिज्र[8]।
फ़लकने[9] साथ मेरे की है अश्कबारी[10] रात॥

यही दिन थे सौ-सौ तरह तुम सँवरते।
जवानी तो आई सँवरना न आया॥
सुनाकर वोह कहते हैं किस भोलेपनसे—
"हमें वअ़दा करके मुकरना न आया॥"

हश्रके रोज़ भी क्या ख़ूने-तमन्ना[11] होगा।
सामने आयेंगे या आज भी पर्दा होगा॥
शर्मे-इसयाँसे[12] नहीं उठती है पलकें ऊपर।
हम गुनहगारोंसे क्या हश्रमें पर्दा होगा?

---

[1]क़ब्रमें; [2]जुदाईकी; [3]तकलीफ़; [4]मरनेके बाद; [5]हाल; [6]विरह-रात्रिका; [7]फ़रहादके; [8]विरहकी रातमें; [9]आस्माननें; [10]आँसु गिराये हैं; [11]इच्छाओंका खून; [12]अपराधोंकी शर्मसे।

यह आधी रातको उनका पयाम[1] आया है।
"हम आज आ नहीं सकते, अब इन्तज़ार न हो"॥

तरीक़े-इश्क़के रहरौ[2] कभी-कभी अब भी।
जनाबे ख़िज़्रको रस्ता बताने जाते हैं॥

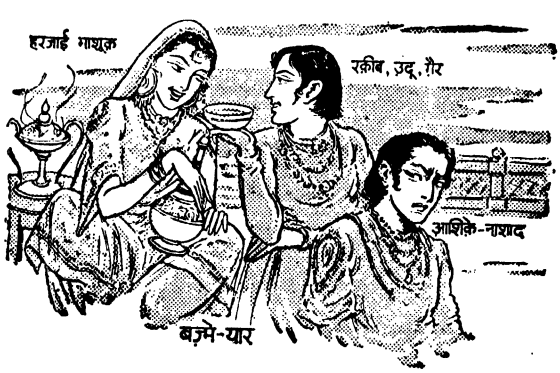
अब क्या मिलेगा आँसुओंमें दिल निकल गया।
वह क़ाफ़िला भी तो कई मंज़िल निकल गया॥

लूटे मज़े हयाके उठाये अदाके लुत्फ़।
पहरोंसे आज मुझको तसव्वुर[3] किसीका है॥

इश्क़में ख़ूब दिन गुज़रते हैं।
रोज जीते हैं, रोज मरते हैं॥

ख़ुदाके हाथ है, बिकना न बिकना मैका ऐ साक़ी।
बराबर मस्जिदे-जामअ़के हमने अब दुकाँ रखदी॥

२० अप्रैल १९५२]



[1]सन्देश; [2]प्रीति-रीति पर चलनेवाले; [3]ध्यान, ख़्याल।



दिल शाहजहाँपुरी

[१८७८ ई० —]

....जी, बन्दानवाज़ ! आप ही हज़रते-'दिल' हैं, जो मअ़शूक़ोंकी मुट्ठीमें रहते हैं। कानपुरके एक मुशाइरे में जब दिल साहबका नम्बर आया तो संयोजकने परिचय दिया—"आप हज़रते-दिल हैं, जो आशिक़ोंके पहलूमें रहते हैं।"

दिलने तुरन्त जवाब दिया—"अब तो मअ़शूक़ोंकी मुट्ठीमें रहता हूँ।"

एक बार शाहजहाँपुरके आल इण्डिया क़िस्मके मुशाइरेमें—'दिल' 'नूह' नारवी, और 'सीमाब' अकबराबादी पास-ही-पास बैठे हुए थे। 'फ़ैयाज़' शाहाबादीने अपनी गज़लका यह मिसरअ़ पढ़ा—

'उनके दिलकी धड़कनें सुनते हैं अपने दिलसे हम'

सुनते ही 'सीमाब' साहबने एअ़तराज़ किया—"क्या दिलकी धड़कनें सुनी भी जाती हैं ?"

दिलने बरजस्ता जवाब दिया—"जी हाँ, मगर कानोंसे नहीं, दिलसे।"

एक बार आप मुरादाबादके मुशाइरेमें गये तो जिस सज्जनके यहाँ आप ठहराये गये, उन्होंने दिनके दो बजे तक न नाश्तेको पूछा, न खाना मँगवाया। सफ़रके हारे-थके, भूखसे परेशान। दिलसे जब भूख बर्दाश्त न हो सकी तो दौराने-गुफ्तगू अपने साथ गये शागिर्दको दो रुपये देकर फ़र्माया—"जरा बाजार जाकर एक बोरिया और एक सिगरेटकी डिब्बी ले आओ।"

मेजबानने हैरान होकर बोरिया मँगवानेकी वजह पूछी तो आपने कहा—"मेरी आँतें उसपर क़ुल-होवल्लाह पढ़ेंगी।"

मेज़बान बहुत झेंपा, और अपनी गफलतके लिए नादिम-सा होकर दस्तरख्वान चुनवानेके लिए लपका।

हजरते-दिलका पूरा नाम हकीम जमीरहसनखाँ है। 'एअ्रतबारुल मुल्क'की उपाधिसे आप विभूषित हैं। शाइरीमें लखनवी स्कूलके स्नातक हैं। 'जलील' मानिकपुरीकी मृत्युके बाद अपने उस्ताद 'अमीर' मीनाईके आप पट्टशिष्य निर्वाचित हुए हैं।

'दिल' कौमके पठान हैं। आपके खान्दानमें ब-कसरत-औलिया और दुर्वेश (साधु-फ़कीर) गुज़रे हैं। आपके बुजुर्गोंमें दो महानुभाव ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने करबलाकी मशहूर जगमें हजरत हुसेनके हमराह शरबते-शहादत नोश फ़र्माया था। आपके पूर्वज जहाँगीरके शासन-कालमें भारत आये थे, किन्तु उनके भक्तों-मुरीदोंकी बहुत बड़ी सख्या देखकर हुकूमतको उनमें राजनैतिक गन्ध आने लगी। अतः उन्हें चुनारके क़िलेमें क़ैद कर दिया गया और वहीं उनकी बन्दी अवस्थामें ही १५९७ ई० में मृत्यु हुई। उन्हींकी सन्तान १६३८ ई० के करीब शाहजहाँपुरमें आकर आबाद हो गई।

शाहजहाँपुरमें ही १८७५ ई० में दिल पैदा हुए। वहीं आपने अरबी-

फारसीकी शिक्षा प्राप्त की और वहीं आप रहते हैं। आपके पूर्वजोंमें दुर्वेशों, मौलवियों, धार्मिक विचारके व्यक्तियोंकी बहुतायत रही है। कई पुश्तोंसे यूनानी चिकित्सक भी होते आ रहे हैं। अतः आपने यूनानी चिकित्साका भी बाकायदा अध्ययन किया। आप शाहजहाँपुरके ख्याति प्राप्त हकीम हैं। लेकिन आपने इसे आजीविकाका साधन न बनाकर धर्मार्थ ही रखा। आपकी निःस्वार्थ चिकित्सासे ग़रीब-अमीर सभी क़ौमके लोग लाभ उठाते हैं।

आजीविकाकी चिन्तासे आप स्वराज्य होनेसे पूर्व निश्चिन्त थे। अच्छी-खासी ज़मीदारी थी। ठेकेदारी आदिका भी अच्छा व्यवसाय था। और आज भी निश्चिन्त से-ही हैं। आपके बड़े साहबजादे वकालत करते हैं, और छोटे साहबज़ादे घरका कारोबार देखते हैं। आप इस ८२ वर्षकी वृद्धावस्थामें भी सुबहको मतब करते हैं, फिर शागिर्दोंके कलाम पर इस्लाह फ़र्माते हैं, और आने-जानेवालोंसे मुलाक़ात करते-रहते हैं।

शाइरीका चस्का आपको १५-१६ सालकी उम्रसे ही लग गया था। लेकिन कामिल उस्ताद न मिलनेकी वजहसे शुरू-शुरूमें आप किसीसे मशविरा लिये बगैर ही शेअर कहते रहे। मगर योग्य उस्तादकी खोजमें पूर्ण प्रयत्नशील रहे। आखिर आपकी नज़रे-इन्तिख़ाब 'अमीर' मीनाईपर पड़ी जो कि उन दिनों लखनवी स्कूलके ख्यातिप्राप्त उस्ताद थे।

प्रारम्भमें आप पत्र-व्यवहार-द्वारा उनसे संशोधन लेते रहे। फिर १८९८ ई० में रामपुर जाकर उस्तादके दर्शनोंका भी सौभाग्य प्राप्त किया। आप किन्हीं अनिवार्य कारणोंसे उस्तादके यहाँ न ठहरकर अन्यत्र ठहरे। प्रातःकाल उपस्थित हुए तो उस्तादने बहुत स्नेह-पूर्वक गले लगाया और अपने यहाँ न ठहरनेका कारण पूछा। दिलके यथोचित समाधान करने-पर उस्तादको फिर कुछ गिला न रहा और अपने पास बैठाकर शेअरो-अदब और इल्मो-फ़नपर वार्त्तालाप करते रहे। दिलकी विद्या-बुद्धि और शाइरीकी लगन और समझसे प्रसन्न होकर उस्तादने फर्माया—"तुम्हारी

शोख़िए-तबअ़से ज़ाहिर होता है, कि दुनिया-ए-शाइरीमें तुम्हारा मुस्तक़बिल (भविष्य) बहुत नुमायाँ (शानदार) होगा।"[१]

उस्तादकी भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई। उर्दू-संसारके ख्याति प्राप्त—अल्लामा 'इक़बाल', 'नियाज' फ़तहपुरी, सर सुलेमान, 'रियाज़' ख़ैराबादी, 'जलील' मानिकपुरी, 'सफ़ी' लखनवी, 'आर्ज़ू' लखनवी, 'फ़ानी' बदायूनी, 'जोश' मलीहाबादी, 'सीमाब' अकबराबादी, आल अहमद-सुरूर, 'मजनूँ' गोरखपुरी, 'यगाना' चगेज़ी, आदि शाइरों, समालोचकोंने आपकी शाइरीकी मुक्त कण्ठसे सराहना की है।[२]

वार्त्तालापके प्रसगमें हज़रत 'दाग़'का जिक्र आ गया तो उस्ताद (अमीर मीनाई) ने फ़र्माया—"जो लोग मुझे ख़ुश करनेके लिए मेरे सामने 'दाग़'को बुरा-भला कहते हैं। मेरा जी चाहता है कि उनका मुँह नोच लूँ। भला 'दाग़'की कोई हमसरी (बराबरी) कर सकता है? हाय, कोई इस शानका शेअ़र कहकर तो सुनाये—

ख़ारे-हसरत बयानसे निकला।
दिलका काँटा ज़बानसे निकला[३]॥

'दिल' साहब उस्तादके यहाँसे बिदा लेकर अपने ठहरनेकी जगह पहुँच ही पाये थे कि 'जलील' मानिकपुरी अपने साथ एक मुलाज़िमको लिये हुए वहाँ मौजूद मिले। मिठाईका थाल मुलाज़िमके सरपर था। 'दिल'ने आश्चर्य चकित होकर देखा तो 'जलील'ने फ़र्माया—"क़िबला-ओ-कअ़बाने यह शीरीनी और दस रुपये आपके लिए भेजे हैं।"

'दिल' साहबने उच्च पेश किया—"यह तो मेरा फ़र्ज़ था कि उस्तादकी ख़िदमतमें नज़्र पेश करता न कि उस्ताद का।" 'जलील' साहबने

---

[१]तरानए-दिल पृ० ३; [२]इन सबकी सम्मतियोके लिए देखें—'तरानए दिल' पृ० ३-१०; [३]'नक़ूश' शख़्सियात नम्बर २, पृ० १४५०।

कहा—"उस्तादका इरशाद है कि मैं दिलको मिस्ल अपनी औलादके अपना बच्चा समझता हूँ। बच्चोको शीरीनी खिलाना बडोंका फ़र्ज है।" आखिर बहुत हील-हुज्जतके बाद रुपये वापिस करके मिठाई ले ली।[1]

'अमीर-मीनाई'-जैसा योग्य, अनुभवी, गुण-ग्राहक, मेहमाँ-नवाज, कृपालु उस्ताद पाकर 'दिल' निहाल हो गये। उस्तादके उपर्युक्त गुण 'दिलको' भी वरासतमे मिले। 'दिल' स्वभावतः शाइर है। शाइराना दिलो-दिमाग लेकर जन्मे है। अन्यथा आपका पारिवारिक वातावरण शाइरीके लिए कतई विपरीत था। फ़क़ीरो-मौलवियोके खान्दानमे पैदाइश, पठान-जैसी जगजू कौमका नसलन खून, रोते-झीकते रोगियो-का समूह, जमीदारीकी अकड फूं, ठेकेदारी करते हुए दिन-रात मज़दूरो-से दिमाग़ पिच्ची। मौलवीयाना मज़हबी तालीम।

फिर भी शाइर, और शाइर भी कैसे? प्रथम श्रेणीके ग़जलगो शाइरोमे जिनका आसन हो। और अपने बुलन्द मर्त्तबेके लिहाजसे सम-कालीन शाइरोमे इज्जतो-एहतरामसे देखे जाते हों।

'दिल'ने उस शाइराना माहौलमे शाइरीका दामन पकड़ा, जो कि शोखी-ओ-रगीनीकी चरमसीमा छू रहा था और जिसके डाँडे 'इशा' और 'जुरअत'की सरहदोसे मिले हुए थे। 'अमीर मीनाई' ज़ैसा उस्ताद पाकर भी जो कि 'दाग'के रगमे शराबोर हो रहा था। 'दिल' अपना दामन बचाकर साफ़ बेदाग़ निकल गये और उन्होने अपना जुदागाना रग इख्ति-यार किया। 'दिल' सजीदा और गम्भीर है, परन्तु उनका कलाम शुष्क और नीरस नही। अल्लामा नियाज फ़तहपुरीके शब्दोंमे—

"यूँ तो उनके यहाँ शोखी भी है लेकिन तहजीबके साथ। छेड़-छाड़ भी है, मगर हुदूदे मतानत (सजीदगीकी सीमा) के अन्दर। तजनिगारी (व्यग्य) भी है, मगर दिल-शिकन नही। बेबाकी भी है, लेकिन खुल-

---

[1]नक़ूश शख्सियात नम्बर २, पृ० १४५०।

खेलनेवाली नही। वे हँसते भी है, लेकिन तबस्सुमकी हदतक। वे ज़ब्त भी हाथसे खो देते है, लेकिन जामादरी (नग्नता)से इसी तरफ़। यक़ीनन उनके यहाँ आपको वह जोशो-खुरोश नजर न आयेगा, जो इश्के-बेताब (प्रेमकी तड़प) की खुसूसियात (विशेषताओं)मे दाखिल है। न उनके कलाममे वह सोजो-गुदाज (जलन, तड़प, बेचैनी) मिलेगा जो शाइरीको यकसर बैन और मर्सिया (शोक-सन्तप्त कविता) बना देता है। लेकिन इस बाब (विषय)मे वे मअजूर (लाचार) थे। क्योकि जो आजादीसे हँस नही सकता, वह दिल खोलकर रोता भी नही है। क़ुदरत इस क़दर ज़ालिम नही कि जिसे वह हँसने न दे, उसे रुला-रुलाकर हलाक कर डाले[1]।"

हजरते 'दिल'ने अबसे ४८-५० वर्ष पूर्व ही दुनियाए-शाइरीमे अपना जो स्थान बना लिया था; उसकी एक झलक अल्लामा नियाज़ फ़तह-पुरीकी प्रस्तावनारूपी दर्पणमे देखिए—

"सन् १९०९ का वाक़ेआ है। सैयद इल्तेफ़ात रसूल (मरहूम) तअल्लुकेदार सॅडीलाके यहाँ सालाना मुशाइरेकी तकरीबमे (बे मुबालिगा) हजारो शुअराका हुजूम है। और मैं भी एक तमाशाई या तमाशा बननेवाले शाइरकी हैसियतसे बगैर किसी क़ाबिले-इल्तेफात जगहको घेरे हुए इस महफ़िलमे एक फ़र्दे-हक़ीर (साधारण व्यक्ति) की हैसियतसे शरीक हूँ। 'इन्शा' की मशहूर ग़जलका मशहूर मिसरअ—

"तुझे अठखेलियाँ सूझी है, हम बेज़ार बैठे है"

मिसरअ तरह था। महफिले-शेअर गर्म है, और दादो-तहसीन (प्रशसात्मक वाह-वाह)के नअरोसे बज़्मे-मुशाइरा गूंज रहा है। लेकिन मै कि उस वक़्त भी मुश्किल ही से कोई शेअर किसीका मुझे पसन्द आता था। खामोश बैठा सिर्फ़ सुन रहा हूँ और देख रहा हूँ।

---

[1]तरानए-दिल पृ० २८।

जनाब 'फ़साहत' लखनवी मरहूम (अमानत लखनवीके पुत्र) ग़ैरतरहमे अपनी एक निहायत ही मअ़रकतुलआरा (अत्यन्त सफल) गजलका मतलअ़ सुनाते है—

ख़ुदा जहाँमें मुझे सूरते-असा[1] न करे।
ठहर-ठहरके उठाऊँ क़दम ख़ुदा न करे॥

सारी महफ़िल दफ़अतन चीख़ पड़ती है। मै भी बेइख्तियार हो जाता हूँ। लेकिन शेअ़रसे नही, उसके मफहूम (भाव)से नही, बल्कि-जनाब फसाहतके तरीके-अदासे, उनके अन्दाजे-शेअ़र-ख्वानीसे।

इसी तरह जनाब अफजल (असीरके[2] बेटे) जो उस वक़्त सरामद शुअराए-लखनऊ (ख्याति प्राप्त शाइरोमे) शुमार होते थे। और दीगर अकाबिरे-फन (बहुत-से तत्कालीन श्रेष्ठ शाइर) तरह और ग़ैर तरहमे गजले सुनाते है और स्टेज (मच) पर अपने-अपने फ़राइज अदा करके बैठ जाते है। मगर यहाँ न दिलको जुम्बिश होती है, न रूहमे कोई इह-तजाज (हृदय कमल खिलता था)।

दूसरा दिन तुलूअ़ होता है, और दोपहरसे दूसरी सुहबति-शेअ़र बरपा होती है। जो ज्यादा मखमूम, ज्यादा अहम (विशेष और महत्त्वपूर्ण) है। क्योकि इसमे सिर्फ उस्तादे-फन (उस्तादाना मर्त्तबेके शाइरों) ही को अपना-अपना तरही कलाम सुनाना है। कामिल दो घण्टोंके शोरो-शगबके बाद एक शाइरने जो वजअ़-कितअ़ (वेष-भूषा)शक्लो- शमाइलके लिहाजसे मुझे बहुत मतीन (गम्भीर) और सजीदा नज़र आया। बग़ैर किसी खास एहतेमाम या तेवरके तरहकी ग़जल शुरूअ़ की जिस वक़्त उसने यह शेअ़र पढ़ा—

---

[1]हाथकी लाठीके समान; [2]'असीर' हज़रत दिल शाहजहाँपुरीके उस्ताद अमीर मीनाईके उस्ताद थे। आपका परिचय एव कलाम शेरो-सुखनके प्रथम भागमे दिया जा चुका है।

न वोह आरामे-जाँ आया, न मौत आई शबे-वअ़दा।
इसी धुनमें हम उठ-उठकर हज़ारों बार बैठे हैं॥

तो मैं कुछ सोचनेपर मजबूर हुआ। बअ्ज अगले-पिछले वाकेआ़त सामने आ गये और दिमाग़ बार-बार यही दुहराने लगा कि—

"न वोह आरामे-जाँ आया, न मौत आई शबे-वअ़दा"

बे इख़्तियार जी चाहा कि पूछूँ यह कौन साहब हैं। लेकिन ख़ामोश रहा। यहाँ तक कि जब वे इस मक्तेपर पहुँचे—

वोह मशग़ूले-सितम हैं और हम मसरूफ़े-ज़ब्त ऐ 'दिल'!
न वोह बेकार बैठे हैं, न हम बेकार बैठे हैं॥

तो मैंने आख़िरकार अपने क़रीब किसी साहबसे पूछ ही लिया कि यह 'दिल' कौन साहब हैं?·····

यह था मेरा और हज़रते-'दिल' शाहजहाँपुरीका अव्वलीन तआ़रुफ़ (प्रथम परिचय)।·····जमाना गुजरता गया, मुतालअ़ वसीअ़ (अध्ययन गहन) होता रहा। तजरुबात (अनुभवों) में इजाफे (विस्तार) होते रहे। मुश्किल-पसन्द तबिअ़तका मेअ़यारे-तन्क़ीद (आलोचनात्मक स्तर) बुलन्द होता रहा। लेकिन—"न वोह आरामे-जाँ आया न मौत आई शबे-वअ़्दा" का लुत्फ़ उसीतरह क़ायम था और हज़रते 'दिल'की शाइरीने जो जगह दिमाग़में पैदा करली थी, वह बदस्तूर क़ायम रही"।[1]

हजरते-'दिल'की जिस ग़जलका उल्लेख 'नियाज़' साहबने किया है, वह यहाँ दी जा रही है—

सरापा यास वोह क्यों बनके मातमदार बैठे हैं।
कि चेहरा ज़र्द है, लब ख़ुश्क हैं, रुख़सार बैठे हैं॥

---

[1] तरानए-दिल पृ० १४-१६।

सुरूरे-कैफ़ बे पायाँ-से हम सरशार बैठे हैं।
दिमाग़ अब अर्शे-आलापर है, पेशे-यार बैठे हैं॥

शबाब आया कि उन नीची निगाहोंने ग़ज़ब ढाया।
यह फ़ितने सर उठानेके लिए तैयार बैठे हैं॥

हमींको यह तमन्ना है कोई पामाल कर डाले।
हमीं हसरतज़दा ऐ शोखिये-रफ़्तार बैठे हैं॥

निकल आई है कलियां फ़स्ले-गुलकी आमद-आमद है।
जो बेपर थे, वह उड़नेके लिए तैयार बैठे हैं॥

न वोह आरामे-जाँ आया, न मौत आई, शबे-वअ़दा।
इसी धुनमें हम उठ-उठ कर हज़ारों बार बैठे हैं॥

उधर अन्दाज़े-बेमेहरी जो पहले था वह अब भी है।
इधर यह हाल जब देखो पसे-दीवार बैठे हैं॥

वह मश्गूले-सितम हैं और हम मसरुफ़े-ज़ब्त ऐ 'दिल'!
न वोह बेकार बैठे हैं, न हम बेकार बैठे हैं॥

इसी तरहमें दूसरी ग़ज़ल—

अ़जब तर्ज़े-अदा है, यूँ पए इज़हार बैठे हैं।
कि हम ख़ामोश मिस्ले-नक़्शे-पाए-यार बैठे हैं॥

कोई ऐ नातवानी फिर अ़बस हमको उठाता है।
ब-हालेज़ार आये हैं पसे-दीवार बैठे हैं॥

तेरा कूचा है गो दारुश्शिफ़ा अहले-मुहब्बतका।
मगर हम हैं, कि अपनी जानसे बेज़ार बैठे हैं॥

यही ना गर्मिये-बर्क़े-तजल्ली ख़ाक कर देगी।
यह परदा भी उठाकर ता-लबे-दीदार बैठे हैं॥

चले दौरे-मए रंगीं, खुले बोतल, ढले सागर।
हवा सनकी घटा उट्ठी है, क्यों मैख़्वार बैठे हैं॥

मिटानेसे कभी दागे-मुहब्बत मिट नहीं सकते।
यह वोह सिक्के हैं जो दिलपर हज़ारों बार बैठे हैं॥

हम उट्ठे हैं, तो उट्ठे हैं, ग़ुबारे-राहकी सूरत।
जो बैठे हैं तो महवे-शोख़िये-रफ़्तार बैठे हैं॥

ज़रा समझे, ज़रा सँभले हुए ऐ हज़रते-वाइज़!
यह मैख़्वारोंकी महफ़िल है, यहाँ मैख़्वार बैठे हैं॥

मुझे दर पर जो देखा बोल उठे ऐ 'दिल' वह दरबाँसे—
"यह क्या कहते हैं, क्या मतलब है, क्यों बेकार बैठे हैं?"

हज़रते-'दिल'से जब परिचय हुआ है, तो लगे-हाथ उनके कलामपर भी एक नजर डाल ली जाए। आपके कलामका सम्पूर्ण सकलन २०—३०, १६ पेजी साइज पृ० २८८ का १९५५ ई० मे प्रकाशित द्वितीय सस्करण हमारे सामने है। इसमे प्रथम अध्यायमे १९३२ से १९५५ तक, द्वितीय अध्यायमे १९०५ से १९३२ तक और तृतीय अध्यायमे १९०५ ई० पूर्वका कहा हुआ कलाम है। संकलनमे गजले, रुबाइयाँ, नज्मे, मुखम्मस, सलाम दिये गये है। रुबाइयों, नज्मों वगैरहमे भी आपका उस्तादाना कमाल जाहिर होता है। मगर आपका वह खास फ़न नहीं। मुँहका जायक़ा बदलनेको कभी-कभार तफ़रीहन कह लेते है। आप ग़जलगो उस्ताद है अतः हम आपकी केवल ग़ज़लोंका उल्लेख कर रहे है—

दिलका हबीब,

प्रायः ग़जलगो-शाइर अपने दीवान या कुल्लियातका प्रारम्भ ईश्वरीय स्तुति (हम्द) से प्रारम्भ करते है। 'दिल'ने भी अपने दीवान 'नग्मए-

दिल'में हम्दिया कलाम कहा है। मगर इस कौशलसे कि यह बंजर और ऊसर ज़मीन भी लहलहा उठी—

नज़रोंसे निहाँ[1] क्यों रहते हो, जब जान लिया पहचान लिया।
मंशा-ए-हिजाब[2] आख़िर क्या है, तुमको तो ख़ुदा भी मान लिया॥

'दिल'का हबीब खुदा है। खुदाकी हम्दमे ही कही गई ग़ज़लका पहिला मतलअ़ है। मगर 'नजरोंसे निहाँ' और 'मंशाए-हिजाब'के नगीने जड़ देनेसे शेअ़र पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है, कि कोई नई-नवेली घूंघट निकाले, सिमटी-सी पर्देमे जा छिपी है, और सारे प्रयत्नोके बावजूद मुख-चन्द्रकी-झलक दिखा नही रही है।

मगर नज़रोसे ओझल या छिपकर कबतक रहा जा सकता है? निरन्तरकी साधना और चिन्तनसे प्रेमी अपने प्यारेको बिन देखे भी देख लेता है। उसकी आँखोंमे अपने प्यारेकी ऐसी छबि उतर आती है कि हटाये नही हटती। वह छबि चाहे प्रत्यक्ष उजागर न हो, परन्तु प्रेमीका रोम-रोम अपने प्यारेके दिव्य रूपसे आलोकित हो उठता है—

सीनेमे है दिल, दिलमें तुम हो, मस्तूर[3] हो गो इन पर्दोंमें।
है याद मुझे पैमाने-अज़ल[4] बे-दीद[5] तुम्हें पहिचान लिया॥

'नग़्म-ए-दिल' इन्तेखाबके दो हम्दिया शेअ़र और पढ़िए और तग़ज़्ज़ुल-का लुत्फ़ उठाइए —

असरे-इश्क़से हूँ सूरते-शमअ़ ख़ामोश।
यह मुरक़्क़अ़ है, मेरी हसरते-गोयाईका॥

[शेअ़रका आशय तो केवल इतना है, कि प्रेमकी प्रबलताके परिणाम-स्वरूप शमअ़ (जलती हुई मोमबत्ती)की तरह चुप हूँ। अपने

---

[1]छिपे हुए; [2]शर्मकी वजह, पर्देका कारण; [3]छिपे हुए, पोशीदा; [4]सृष्टिके प्रारम्भका वचन; [5]बिन देखे।

भावोंको व्यक्त करनेकी अभिलाषाका केवल-मात्र चित्र बनकर रह गया हूँ]

प्रेम-रसमे जब रोम-रोम भीग जाता है और प्रेमी अपने प्यारेकी चाहतमे विभोर होकर सुध-बुध खो बैठता है, तब उसकी सब वासनाये, कामनाये, यहाँ तक कि वाक्य-शक्ति भी विलीन हो जाती है। इश्क, प्रेम-ज्वालासे दग्ध है तो शमअ भी ज्वलित है। लेकिन कहाँ इश्क कहाँ शमअ ? सूर्यकी कणसे क्या तुलना ?

शमअ सबके सामने जलती है, इश्कका सुलगना कोई नही देख पाता। शमअ भाव प्रकट करनेकी क्षमता न रखते हुए भी सब कुछ कह देती है, इश्क वाणीका वरदान पाकर भी चुप्पी साध लेता है। शमअ सरे-महफ़िल काँपती है, लरजती है, आँसू बहाती है। इश्क़ सब कुछ विसारकर अपने प्यारेमे लीन हो जाता है। शमअ बुझते-बुझते भी धुआँ देकर बदनामीका दाग छोड़ जाती है, इश्क़ उपलेकी आगकी तरह दहकता रहता है। इश्क़ और शमअमे कोई तुलना नही। फिर भी असरे-इश्क़का बयान सूरते-शमअसे करना पड़ा। सोजे-इश्क़के लिए शम-ए-महफ़िलसे मौज़ूं और कोई मिसाल हो नही सकती।

शेअरके दूसरे मिसरेमें 'हसरते-गोयाई'के लिए—'मुरक़्क़अ' शब्द भी बहुत खूब जड़ा गया है। 'हसरते-गोयाई'का अर्थ है बोलनेकी इच्छा और 'मुरक़्क़े'का आशय है—बिखरी हुई या टुकडे-टुकड़े हुई तसवीरोंका सकलन। भाव यह है कि जैसे बिखरे या टुकडे-टुकड़े हुए चित्रोंका सकलन मौन रहता है, उसी तरह मेरी बोलनेकी कामनाएँ भी मूक है।

हुस्ने-ख़ुदबींको हुआ और सिवा नाज़े-हिजाब।
शौक़ जब हदसे बढ़ा, चश्मे-तमाशाईका॥

[प्रेमीका जितना उत्साह देखने (चश्मे-तमाशाई)का बढ़ता गया, उतना ही अधिक अभिमानी सौन्दर्य (हुस्ने-ख़ुदबी)को अपने छिपनेपर घमण्ड (हिजाबे-नाज) होता गया।]

भाव यह है, कि खुदाको जितना अधिक देखने-जाननेका प्रयास किया जाता है, वह उतना ही अगम, अगोचर होता जाता है।

कहनेको चारों शेअर दिलने अपने महबूब खुदाकी शानमे कहे हैं। मगर दिलके तग़ज्जुलका कमाल देखिए कि पढने-सुननेवालेको अपनी दुनिया-के परी-पैकरका तसव्वुर होने लगता है।

दिलका हबीब खुदा है। इस रगके सात शेअ्र और मुलाहिजा हों—

मुझको यह देखना था जो होते वोह बे-हिजाब।
किस वहममें है काफ़िरो-दींदार, देखकर॥

वह खिलवत नशीं है, हक़ीक़त यही है।
तआर्रुफ़ क़दीमी, मगर ग़ाएबाना॥

पर्दा उठाके आयें, जिस शानसे भी आयें।
झगड़ा मगर मिटादें वह शेख़ो-बरहमनका॥

जानिबे-दैरो-हरम कान लगे रहते हैं।
काश, पर्दे ही-से सुनते तेरी आवाज़ कहीं॥

उठ गया पर्द-ए-हाइल फ़क़त इतना है ख़याल।
क्या कहें जलवागहे-नाज़में फिर क्या देखा?
अल्लाह-अल्लाह यह अ़जब शाने-ख़ुदआराई है।
हमने जिस गुलपै नज़र की तेरा जलवा देखा॥

वह कौन? जलवानुमा जो हिजाबे-नाज़में था।
तड़प रही है मेरी हर नज़र उसीके लिए॥

चाहतकी पवित्रता

उधरसे आने वालो, मैं भी मुश्ताक़े-ज़ियारत हूँ।
ज़रा तुम पाए-ख़ाकआलूद आँखोंसे लगा देना॥

[प्यारेके निवास स्थानकी तरफ़से आनेवाले सौभाग्य-शीलो ! अपनी चरण-धूल मेरी आँखोंमे आँज दो, ताकि मेरी आँखे भी वह मार्ग देख सके। मै भी अपने प्यारेके दर्शनोंको जाना चाहता (मुश्ताक़े-ज़ियारत) हूँ।]

इस शेअ्रके कई आशय निकलते है। एक तो यह कि प्यारेके धामसे आनेवालोंके चरणोंमे आँखे बिछाकर अपनी श्रद्धा और चाहतकी साध पूरी की जाय। दूसरे यह कि उस ओरसे आनेवाले यात्रियोंके पाँव-की धूल भी इतनी अक्सीर हो जाती है कि आँखोमे अजनकी तरह आँजनेसे घर बैठे प्यारेकी झलक दिखाई देने लगती है। तीसरे यह कि वहाँकी केवल धूल आँखोसे लगा लेना वहाँकी यात्राके समान ही महत्त्व रखती है।

इस तीसरे आशयका आनन्द उठानेके लिए 'नूह' नारवी साहबका यह सस्मरण पढ़िए—

"नवाब हामिदअलीखाँ साहबके मुशाइरए-रामपुरमे मुझे एक बार शरीक होनेका इत्तिफ़ाक हुआ। उस वक्त मुंशी अमीर-उल्ला साहब 'तस्लीम' जिन्दा थे। खत्मे-मुशाइरेके बाद चूँकि वे पीराना सालीके सबब (वृद्धावस्थाके कारण) शरीके-मुशाइरा न हुए थे। मै उनकी खिदमतमे पहुँचा। वे चारपाईपर आँखे बन्द किये हुए लेटे थे। मै जाकर पाँव दबाने लगा। उन्होंने आँखे खोल दी और मेरे हालात पूछने लगे। जब उन्हे यह मालूम हुआ कि मै 'दाग' साहबका शागिंद हूं तो फर्माया—"तुमने उन्हे देखा भी है या खतो-किताबतके जरिए शागिर्द हुए हो ?"

मैने कहा—"मै बहुत दिनोतक उनकी खिदमतमे रहा हूँ।"

यह सुनकर इर्शाद फ़र्माया कि—"मुझे सहारा देकर बिठा दो।"

मैने सहारा दिया और वह उठकर बैठ गये और कहने लगे—"मेरी उँगलियोंको अपनी आँखोंपर रखो।"

मैने उनकी उँगलियाँ अपनी आँखोंपर रखी, दो-तीन मिनटके बाद वे अपनी उँगलियोंको मेरी आँखोसे हटाकर चूमने लगे। और फ़र्माया—

"तुम्हारी इन आँखोंने मेरे दोस्तको देखा है। इस बाइससे मैंने बोसा लिया। और यह कह कर आँखोमे आँसू भर लाये।"

चाहतकी पवित्रता और लगन देखिए कि उठते हुए गुबारमे भी अपने प्यारेका तसव्वुर रखते है।

जब कोई-गर्दो-बाद उठा दश्ते-नज्दसे।
उसको निगाहे-क़ैसने महमिल बना दिया॥

[मजनू (कैस)की तल्लीनता और महवियतका यह आलम है कि जगल (दश्ते-नज्द)से कोई बगोला (गर्दो-बाद) भी उठता है तो वह समझता है कि लैली अपनी ऊँटनीपर महमिलमे बैठी हुई आ रही है।]

उक्त शेअरका आनन्द वही भुक्त-भोगी उठा सकते है जो अपने प्यारेकी राहमे पलक-पाँवड़े बिछाये रहते है। वर्षोसे न कोई पाती मिली है, न सन्देश। फिर भी मन और कान द्वारकी ओर लगे रहते है। और तनिक-सी आहटपर चौक उठते है आनेकी कोई आशा नही रह गई है, फिर भी मेले-तमाशे यहाँ तक कि दुर्घटनाओमे उसीकी सम्भावना बनी रहती है।

इश्के-सादिक और पुख्ता हो तो कनरेमे भी दरिया नजर आता है। इसी भावको 'दिल' इस तरह व्यक्त करते है--

ऐ क़ैस! अपने जज्ब-ए-दिलपर[2] निगाह कर।
सहराका हर गुबार है, महमिल लिये हुए[3]॥

प्रेमीकी अभिलाषा

सच्चे प्रेमीकी केवल यही साध होती है--

---

[1]निगार जनवरी-फ़रवरी १९५३ई० पृ०३४।
[2]हृदय प्रेमसे कितना ओत-प्रोत है, यह देख!
[3]जगलका प्रत्येक कण लैलीकी झलक लिये हुए है।

जो दलीले-मंज़िले-इश्क़ हो, उसी रहनुमाकी तलाश है।
मुझे और कोई तलब नहीं, तेरे नक़्शे-पा की तलाश है॥

[जो प्रेम-मार्गसे भिज्ञ (दलीले-मजिले-इश्क) हो, ऐसे पथ-प्रदर्शक-की खोज है। तेरे चरण-चिह्न (नक़्शे-पा)के अतिरिक्त मुझे और कोई अभिलाषा (तलब) नही है।]

'दिल'के इश्ककी पाकीजगी देखिए कि वे न अपने हबीबका वस्ल चाहते है, न उससे बोसेकी तलब रखते है। वे सिर्फ़ तलब हबीबके 'नक़्शे-पा' की रखते है।

जहाँ अन्य शाइरोंने वस्लो-बोसेकी तमन्ना और कोशिशोंमें दीवान-के-दीवान रँग डाले है। वहाँ 'दिल'के यहाँ समूचे दीवानमे 'वस्ल' और 'रकीब' शब्द खोजनेपर भी न मिलेगे। उन्होंने अपने कलाम-को इन शब्दोंसे अछूता रखा है। इस सम्बन्धमे आप स्वयं लिखते है—

"बअज अहले नजरने ब-जरिए-तहरीर मुझसे सवाल किया कि 'लफ़्ज वस्ल' जो तमन्नाए-इश्क और तक़ाजाए-दिले-पुर-आर्जू है। इस पुर कैफ़ और जज्बाती लफ्जको क्यों तर्क कर दिया गया? जवाबन अर्ज़ कर चुका हूँ कि मै हमेशा महजूर रहा। बई वजह मैने इस लफ़्जको इस्तेअमाल करना मुबनी बर तसन्नोअ समझा। मेरे लब आरिजे-महबूब तक कभी नही पहुँचे। जज्बात आस्ताँ-बोसी तक महदूद है। मेरे मजमूअए-कलाममें लफ़्ज़ 'रकीब' भी नज़र न आयेगा। मेरा महबूब सिर्फ मेरा महबूब है। हुस्ने-मअसूम खिलवत पसन्द है। जलवा सरेबाम नही।"[1]

[भावार्थ—कुछ महानुभावोके यह मालूम करनेपर कि—मैने 'वस्ल'-जैसे शब्दका प्रयोग क्यों नही किया? क्योंकि शाइरीमे इश्क़का दारोमदार ही वस्ल है। इश्कका मंशा ही वस्ल होता है। शाइरीमे वस्ल ही तो प्राण फूंकनेवाला आनन्द दायक और महत्त्वपूर्ण शब्द है। उत्तरमे

---

[1] तरानये-दिल पृ० १२।

मैंने निवेदन किया कि मै सदैव वियोगी रहा हूँ। फिर भी वस्ल शब्दका प्रयोग करता तो कलाममे कृत्रिमता आ जाती जो शाइरीके लिए उचित नही। मेरे ओठ प्यारेके कपोलों तक कभी नही पहुँचे। मेरे प्रेमकी उमगे प्यारेकी चौखटपर चुम्बन देनेतक सीमित रही। मेरे यहाँ 'रक़ीब' शब्द भी नही है, क्योकि मेरी प्रियतमा केवल मेरी प्रियतमा है। अतः मेरा कोई रक़ीब और उदू नही।]

प्रेममें तल्लीनता—

नज़र आते है वोह हर वक़्त आग़ोशे-तसव्वुरमें[1]।
हमारे दिलमे रहकर हमसे पर्दा हो नहीं सकता॥

उन्हींका जलवए-रअना[2] है मंज़ूरे-नज़र[3] ऐ 'दिल'!
कोई उनके सिवा दिलकी तमन्ना हो नहीं सकता॥

दरियाए-मुहब्बतमे पहुँचाये ख़ुदा तह तक।
डूबेगी जहाँ किश्ती अपना वही साहिल है॥

किसीकी जुस्तुजूमे[4] इक मुक़ाम ऐसा भी आता है।
जहाँ मंज़िल तो क्या अपना निशाँ ऐ 'दिल' नहीं मिलता॥

तलाशे-दोस्त कुजा, आर्ज़ूए-दीद कुजा।
हमे तो उम्र हुई अपनी आर्ज़ू करते॥

गुम हूँ इस बेख़ुदीकी[5] मंज़िलमे।
रहनुमा[6] है न कोई महरमे-राज़[7]॥

इन हदोंसे गुज़र चुका है दिल।
अब नहीं शिकवए-नशेबो-फ़राज़[8]॥

---

[1]चिन्तन, ध्यानमे; [2]कमनीयरूप; [3]आँखोकी स्वीकृति; [4]खोजमे; [5]आत्म-लीनताकी स्थितिमे; [6]मार्ग-दर्शक; [7]भेदोमे परिचित; [8]पतन और उत्थानकी शिकायत।

जिन्दाँकी[1] क़ैद झेली, सहराकी[2] ख़ाक छानी।
गुजरा हूँ उन हदोंसे, क्या जाने अब कहाँ हूँ?

खुदी मिटे तो खुदा मिले—

मुद्दआ बर आयेगा, जब खाक हो जायेंगे हम।
इसका यह मतलब कि गुम होकर उन्हे पायेंगे हम॥

इन्तहाये-जुस्तजूमें खो गये होशो-हवास।
पूछते है राह हर गुम करदए-मंज़िलसे[3] हम॥

और अन्तमे प्रेमीकी वह स्थिति हो जाती है कि वह अपने प्यारेकी राहमे भटकता फिरे, स्वय उसका प्यारा उसके समीप आ जाता है। भिलनीकी झोपडीमे जब 'राम' पहुँच सकते है, तब आस्तानए यारके खिंच आनेकी आशा 'दिल' क्यों न करे?

मुहब्बतके जज्बात समझूँ मुकम्मिल।
खिंच आये जबीं तक तेरा आस्ताना॥

और जब जज्बए-इश्ककी बदौलत आस्ताना नसीब हुआ तो फ़र्ते-मसर्रतसे—

सर अपना है, किसीके आस्ताँ पर।
जबीने-इज्ज़ पहुँची आस्माँ पर॥

[प्यारेके आस्ताँपर नत मस्तक होते हुए प्रतीत हो रहा था कि हमारा मस्तक आस्मानकी सरहदोंको छू रहा है। जर्र-ए-नाचीज आफ़ताब बन रहा है।]

जब प्रेमीके द्वारे तक प्यारा चला आया, तब दुईभाव और पर्देका काम क्या?

---

[1]जेलखानेकी; [2]जगलकी; [3]मार्ग भटके हुए से।

उठ गया पर्दए-हाइल फ़क़त इतना है ख़याल।
क्या कहें जलवा-गहे-नाज़मे फिर क्या देखा॥

[पर्दा उठा, फ़कत इतना ख़याल (होश) है। उसके जलवेमे क्या देखा ? कैसे कहे, क्योंकर कहे ?]

हम क्या बताये क्या थी, तेरी निगहकी गर्दिश।
इक वज्दकी-सी हालत पहरों रही हमारी॥

हजरते-'दिल' बताये भी तो नही बता सकते। गुड़का स्वाद गूँगा कैसे बताये ? जल्वेके अनुरूप वाणी कहाँसे लाये ? और वाणी हो भी तो वह मुखरित कैसे हो ? उसने तो कुछ देखा नही और जिन नेत्रोंने देखा वे वाक्-शक्ति कहाँसे लाये ?

एक बार जलवा देखनेपर प्रेमीकी यही इच्छा रहती है, कि जलवा बार-बार देखे। उसका प्यारा उसके सम्मुख सदैव रहे, उसे वह एक टक निहारा करे--

हर दम है उसी महवे-तग़ाफ़ुलका तसव्वुर।
इश्क़ और किसी कामके क़ाबिल नहीं रखता॥

इश्क खुद बहुत बड़ा काम है। हर वक़्त उसीमे महव रहना होता है।[1] प्यारेके चिन्तनके अतिरिक्त और भी कुछ करने योग्य है, यह प्रेमीको सुध ही कब आती है और यही सुध-बुध अन्तमे वह स्थिति ला देती है कि प्यारा पासमे न होते हुए भी यही आभास होता ह कि वह समीप बैठा हुआ है--

वहम बातिल था, मगर वह मंज़रे-ऐशो-निशात।
पहलु-ए-आशिक़में हँगामे-सहर कोई न था॥

---

[1] "आठ पहर भीनो रहे प्रेम कहावे सोय" —कबीर

किन्तु यह तल्लीनता स्थायी नहीं होती, टूटती है, तो प्रतीत होता है कि यह सब स्वप्न था। काश यह तल्लीनता कभी भग न होती और अपने प्यारेको यूं ही अपलक निहारते रहते।

कृष्ण द्वारिका चले गये है। राधा उनके वियोगमे सुध-बुध बिसार बैठी है। बुधजनोंकी सम्मति है कि वह बावरी हो गई है। वही बावरी जब पानी भरने कालिन्दी-किनारे जाती है, तो प्रतीत होता है कि छोटा-सा छौना गेन्दबल्ला खेल रहा है। पकड़नेको दौड़ती है, तो पेड़से टकरा-कर गिर जाती है। सुप्तावस्थामे आभास होता है कि वही छौना गोदमें लिटाये माथा सहला रहा है, परन्तु हायरे दुर्भाग्य वह इस आनन्दको तनिक भी सहेजकर नही रख पाती। चेतना आते ही इस भावनासे उठ बैठती है कि पूछूं "निर्मोही कहाँ चला गया था?"

आँखे फाडकर देखती है और फिर बन्दकर लेती है कि अच्छा छलिया बन्द आँखोंमे ही रह। तुझ नटखटको अब भागने न दूंगी।

परन्तु राधाकी यह साध पूरी नही हो पाती। कभी माखन-मिसरी खाते देखती है, कभी गौ-चराते देखती है, कभी बाँसरी बजाते देखती है, कभी अपने शरीरमे लीला गोदते देखती है, कभी रासलीला करते देखती है! देखती है और क्षण भरमे ठगी-सी रह जाती है।

द्वारिकामे सत्यभामाको अनुभव होता है कि कृष्ण उस रातको उसीके महलमे रहे, किन्तु रुक्मणीका दावा है कि कृष्ण उस रातको उसके महलमे रहे। लेकिन कृष्ण न यहाँ रहे, न वहाँ रहे। यह सब प्रेम-विभोर होनेकी अनुभूतियाँ है।

इश्कके ऐसे ही शदीद आलममे हजरते-'दिल'को यूं महसूस होता है, कि उनका माशूक रातको उनके साथ है, और किसी वजहसे उठकर जाना चाहता है। तभी वे बेचैन होकर कह उठते है—

यह भीगी रात, यह ठंडा समाँ, यह कैफ़े-बहार!
यह कोई वक़्त है, पहलूसे उठके जानेका?

हज़रते-'दिल'का शाइराना कमाल देखिए कि उक्त शेरमें न तो वस्ल और बोसो-कनारके अल्फ़ाज़ आये हैं, न कही छेड-छाड़ है, न कोई पोशीदा-राज़की तरफ़ इशारा किया है। फिर भी शेर मुँह बोलती तसवीर बन गया है। पढ़ते हुए महसूस होता है, मसूरीमे शान्दार कोठीमे ठहरे हुए हैं। और माशूक पहलूमे है। धीमी-धीमी फुहारे गिर रही है, चाँन्दनी खिली हुई है और रेशमी रज़ाईमे लिपटे पडे है। अचानक माशूक उठकर जानेका खयाल ज़ाहिर करता है तो उसके इस भोलेपनपर अनायास मुँहसे निकल पड़ता है—

'यह कोई वक़्त है, पहलूसे उठके जानेका'?

बक़ौल नियाज फ़तहपुरी—"महबूबसे जिस अन्दाजमे खिताब करके महाकातो-मौसीक़ियत (हृदयके भाव और सगीत)को मिला दिया गया है। वह किसी मामूली शाइरके बसकी बात नही''''मै तो इसे पढ़नेके बाद आजकल (मई)की दोपहरकी गर्मीमे भी खास क़िस्मकी खुन्की महसूस करने लगता हूँ।"[1]

'नियाज' फ़तहपुरी-जैसे ७० वर्षीय वयोवृद्ध, जिनकी सुरुचिपूर्ण परख इतनी नपी तुली कि ब-मुश्किल जिन्हें कोई शेअर पसन्द आता है। वे भी ज्येष्ठकी आग उगलती दोपहरीमे शेअर पढ़ते हुए खुन्की महसूस करे। इससे बढ़कर 'दिल'की मुसव्विरीकी सफलता और क्या हो सकती है?

मै तो उक्त शेअर पढ़कर आश्चर्य चकित रह गया कि 'दिल' जैसा गम्भीर, सकोची, शील स्वभावी व्यक्ति ऐसा रगीन एव रोमाँचकारी शेअर कैसे कह सका। ऐसे शेअर तो बगैर ससारी और वास्तविक अनुभवके कहना सम्भव नहीं। इतना गहरा और पूर्ण चिन्तन कि ध्यानावस्थामें

---

[1] तरानए-दिल पृष्ठ ४२।

प्यारेसे इस तरह महवे-गुफ़्तगू हो जाये कि वास्तविक स्थितिका ज्ञान तक न रहे, सरल नहीं।

२-३ माहके बाद सहसा प्रतीत हुआ कि ऐसा शेअ़र 'दिल' जैसा शर्मीला और रिजर्व क़िस्मका व्यक्ति ही कह सकता था। मेरा तो विश्वास है, कि उक्त शेअ़र चिन्तनसे नहीं स्वानुभवसे कहा गया है।

उक्त शेअ़र दिलने १९०५ ई० पूर्व आलमे-शबाबमें कहा है। १९ वीं सदीका, अबसे ६५-७० वर्ष पूर्व उस युगका तसव्वुर कीजिए। पत्नी बुढापेकी तरफ कदम बढ़ाये जा रही है। मगर अपनेसे बड़े जन—(सास-ससुर, जेठ-जिठानी, ननद-फूफस)के सामने न पतिसे बोल सकती थी, न मुँह खोल सकती थी, न अपने बच्चोंको दुलार सकती थी। बच्चोंके लिए भूलसे बेटा-बेटी सम्बोधन निकल जाता तो बडे-बूढे व्यंग्य कसने लगते थे। न आजकी तरह पृथक-पृथक शयनागार थे, न यह आजकी दीदा-दिलेरी थी कि सबके सामने अपने बेड रूममें घुस गये। न जाने किन-किन उपायोंसे पति-पत्नी क्षणिक समयके लिए रातके आधे-पिछले पहर एकान्त-मिलन पाते थे।

सास-ननदके उठनेसे पूर्व ही बहूको उठकर चक्की पीसना, दूध बिलोना पड़ता था। अब इस स्थितिमें पत्नीका भोर होनेसे पूर्व उठकर जाना भी ज़रूरी और अनेक प्रयासोंके बाद मिले सुनहरे अवसरको इतने शीघ्र विलीन होते देख 'दिल'का झुँझलाकर यह कहना भी लाजिमी—

'यह कोई वक़्त है, पहलूसे उठके जानेका'?

मजाज़ी इश्क़

दिलके कलाममें मजाज़ी और हक़ीकी दोनों इश्कोंकी झलकियाँ मिलेंगी। इन्सानी परी-पैकरसे इश्क़ हुए बग़ैर हक़ीक़ी इश्कका वास्तविक अनुभव हो नहीं सकता। बामे-इश्क़े-हक़ीक़ी तक पहुँचनेके लिए इश्क़े-

मजाजीके जीनेसे चढ़ना लाजिमी है। चन्द इश्क़े-मजाज़ीके शेअ़र मुलाहिजा हों—

जिस जगह आँखें लड़ी थीं, है वोह मंज़र सामने।
जिस जगह होश उड़ गये थे, वह ठिकाना याद है॥

जिस जगह दिल हो गया था, बिस्मिले-तीरे-नज़र।
वोह जगह, वोह वक़्त, अब तक वोह ज़माना याद है॥

वह तलत्तुफ़ और वह उसका तलव्वुन हाय-हाय।
वोह निगाहे मिलते ही आँखे चुराना याद है॥

तीरे-नज़र—

कोई समझे तो क्या समझे ख़दंगे-नाज़का ईमाँ[1]।
यह चुभ जाता है जब दिलमे खटकता है, रगे-जाँमें॥

क्या पूछते हो शोख़ निगाहोंका माजरा।
दो तीर थे जो मेरे जिगरमे उतर गये॥

याद है, हाँ याद है, तर्जे निगाहे-मस्ते-यार।
एक ताज़ा पंखड़ीसे पारा-पारा दिल हुआ॥

अन्दाज़ चश्मे-ताब शिकन था कि अल्अमाँ।
इक पंखड़ीकी चोटसे दिल चूर हो गया॥

निगाहे-मस्तसे ओ मुड़के देखने वाले।
तुझे तो है, मुझे अपनी ख़बर नहीं, न सही॥

कुछ ख़बर हमको नहीं, कौन था वोह हज़रते-'दिल'!
चल दिया दिल अभी सीनेमें मसल कर कोई॥

---

[1]माशूक़के छोटे तीरका कमाल।

प्रेयसीका व्यक्तित्व—

इक जलमे-ख़ूं चिकाँपे छिड़कना है, मुद्दआ।
हमको तो ख़ाके-कूचए-दिलदार चाहिए॥
शायाने-संगे-दर नहीं, मेरा सरे-नियाज़।
आशुफ़्ता दिलको सायए-दीवार चाहिए॥

आँसूकी क्या बिसात ? परन्तु वही प्रियतमाके दामनसे छू जाने पर—

पहुँचकर उनके दामन तक यह है, हर अश्कका आलम।
जिसे क़तरा समझते थे, उसे दरिया समझते हैं॥

प्रेयसीकी चाल—

'दिल'की प्रेयसी चलती है, तो लोगोके कलेजे मसोसती हुई नहीं चलती, अपितु—

तुम तो सकूने-ख़ातिरे-नाशाद बन गये।
समझा था मैं कुछ और यह रफ़्तार देखकर॥

प्रेयसीका रूप—

महवे-बेख़ुद हूँ बहारे-रुए-ज़ेबा देखकर।
बाग़े-आलममे कहाँ पैदा है, उस गुलका जवाब॥

अल्लाह उनको अबरुए-ख़मदारपर यह नाज़।
तअने हिलालपर है, तो फ़िक्करे कमानपर॥

कब तक छुपाओगे रुख़े-ज़ेबा नक़ाबमें ?
बर्क़े-जमाल रह नहीं सकता हिजाबमें॥

ऐ दिल! यह शाने-जल्वा-नुमाई तो देखना।
वोह बर्क़की तरह इधर आये उधर गये॥

सरे तूर एक बर्क़े-हुस्न लहराती नज़र आई।
ज़रा शोख़ीसे झटका था किसीने अपने दामनको॥

शर्मीली प्रेयसी—

क्या क़यामत था सवाले-दीदपर उनका जवाब—
"हश्रमें हमसे वहाँ कहना जहाँ कोई न हो"॥

विरह—

किसीकी याद थी आँखोंसे अश्क ढलते थे।
इसी ख़यालमें हम करवटें बदलते थे॥

वक़्ते-रुख़सत तसल्लियाँ देकर।
और भी तुमने बेक़रार किया॥

रोज़ आ-आकर तसल्ली दिलको दे जाता है कौन?
कुछ समझ ही में नहीं आता कि समझाता है कौन?

यासो-हिरास —

दिल निराशामें अधीर न होकर निराकुलता अनुभव करते हैं—

हक़ीक़तमें वही साअ़त[1] सकूने-दिलकी[2] साअ़त थी।
मेरी बालींपै[3] जब मायूसे-कोशिश[4] चारागर[5] होता॥

---

[1]घड़ी, वक़्त; [2]दिलके चैनकी; [3]सिराहने; [4]असफल; [5]वैद्य, हकीम;

शिकवा-शिकायत—

'दिल' आहो-नाले, शिकवा, शिकायतके क़ायल नहीं—

ता-ब-लब[1] शिकवे न आये थे कि ख़ुद हूँ मुनफ़अिल[2]।
हुस्नकी मअसूम फ़ितरतको[3] पशेमाँ[4] देखकर॥

लरज़ उठता हूँ अब तक, जब वोह शिकवे याद आते हैं।
असर था किस क़यामतका तेरी चश्मे-पशेमाँमें[5]॥

ज़ब्तसे काम लीजिए, आहो-फ़ुग़ां न कीजिए।
नश्तरे-इश्ककी ख़लिश दिलमें रहे तो राज़ है॥

इख़फ़ाए-ख़लिश[6] दुश्वार बहुत, इज़हारे-ख़लिश[7] मुम्किन ही नहीं।
चुप रहनेमें दम घुटता है, कहता हूँ तो जी घबराता है॥

प्रेयसीकी दिलशिकनी न होने पावे—

उसे क़लक़ है, मेरा हाले-ज़ार सुन-सुन कर।
यह वक़्त था कोई तद्बीर चाराज़ू करते॥

जौरो-जफ़ाए-दोस्तका शिकवा न कीजिए।
इश्क़े-वफ़ा सरिश्तको रुसवा न कीजिए॥
मिट जाइए मगर कोई शिकवा न कीजिए।
घबराके राज़े-इश्क़को रुसवा न कीजिए॥

आह सीनेमें घुटे उफ़ न ज़बांसे निकले।
दर्द इस हदसे गुज़र जाय तो रुसवाई[8] है॥

---

[1]ओठोंतक; [2]लज्जित; [3]प्रेयसीके भोले स्वभावको; [4]शर्मसार; [5]शर्मसे झुकी हुई नजरोंमें; [6]प्रेमकी फाँसको छिपाये रखना; [7]चुभनको प्रकट करना; [8]बदनामी।

हयाते-इश्क़[1] है, ऐ हमनशीं[2] ख़ामोश जल जाना।
मिसाले-शमअ़ बज़्मे-दहरमें[3] तू हमको जलने दे॥

हुज़ूरे-दोस्त[4] शिकवाका तो क्या ज़िक्र।
गिराँ[5] है मुद्दआए-दिल[6] ज़बाँपर॥

निगाहे-शौक़ रही हम ज़बाने-दिल लेकिन—
किसी तरह न बना शरहे-आर्ज़ू करते॥

दिया था इश्क तो हिम्मत भी यह ख़ुदा देता।
कि एक वक़्तमे हम तर्के-आर्ज़ू करते॥

चारासाज़—

क्या जाने क्या ख़यालसे छोड़ा ब-हाले-ज़ार।
मुझपर बड़ा करम है, मेरे चारासाज़का॥

दर हक़ीक़त जो अमानत है, निगाहे-नाज़की।
चाराफ़र्मा ! वोह ख़लिश क्योंकर निकालें दिलसे हम ?

दिल सोज़ अगर बनो तो दिखायें जिगरके दाग़।
तुम चारासाज़ हो तो, कहे माजराए-दिल॥

अल्लाह-अल्लाह ज़ेरेसर है बालशे-ज़ानूए-दोस्त।
होशमें आ चारागर ! अब होशमें आयेंगे हम ?

इस मर्ज़से कोई बचा भी है ?
चारागर इश्क़की दवा भी है ?

---

[1]प्रेम-जीवन; [2]साथी; [3]ससार रूपी महफ़िलमें; [4]प्यारेके समक्ष; [5]कठिन; [6]दिली इच्छा।

परम्परागत—

परम्पराके अनुसार 'दिल'के यहाँ कहीं-कहीं ऐसे शेअ़र भी नज़र आ जाते हैं—

हमने वह सब सुना जो सुना था न आज तक।
तुमने वह सब कहा जो कुछ आया ज़बान पर॥

क्या लुत्फ़ आगया तेरे अन्दाज़े-जौरमें।
मुझपर उसी तरह सरे-महफ़िल अ़ताब हो॥

ईमाँ है, यह उस शोख़की शमशीरे-अदाका।
जो सामने आजाय वोह सर अपना झुकाले॥

तेरी निगाह न थी शोखियोंसे जब आगाह।
यह जाँ निसार है, बिस्मिल है, उसी ज़मानेका॥

काश, हो वक़्ते-नज़र दोनोंको हैरत एक-सी।
हम उन्हे देखें वोह जब देखे सँवरकर आईना॥

हुस्नमें कुछ शोखियाँ आनेको है।
अब हयाकी पासबानी जायगी॥

पर्दा उठा दिया यह अजब उसने चाल की।
देखा तो हममे ताब न थी अ़र्ज़े-हालकी॥

शैख़, वाइ़ज़, नासेह़, ज़ाहिद—

परम्परानुसार 'दिल' ने भी शेख, वाइज, नासेह और जाहिदका ज़िक्रे-ख़ैर किया है। लेकिन न आप उनकी पगडी उछालते हैं, न चुंदियापर धौल जड़ते हैं, न मुंहपर शराबकी कुल्ली करते हैं, न मुंह चिढ़ाते हैं, न उनकी शक्लो-शबाहतको हैवान-जैसी बनाते हैं, न उन्हें पाखण्डी-ढोंगी कहते हैं,

न उन्हे रूए-स्याह समझते है, और न उन्हे मनहूस समझकर नाक-भौं सिकोड़ते है, अपितु उन्हे रिन्दोमे बैठे देखकर खिल उठते है और उनकी उपस्थितिके कारण मदिरालयको खुल्द (जन्नत) समझते है--

तसवीरे-खुल्द खिच गई साक़ीकी बज्ममे।
जाहिद-से पाकबाजको सरशार देखकर॥

नासेहको सबसे बडा रोग नसीहत करनेका होता है। हजरत न मौका-महल देखते है, न किसीके व्यक्तित्वका ध्यान रखते है। मौके-बमौके नसीहत झाडने लगते है। उन्हे यह भी खयाल नही रहता कि जिनको हम नसीहत फर्मा रहे है, वह इज्जत, मर्तबे, अक्लो-शऊरमे अपनेसे कितने बुलन्द है? अगर यह लिहाज़ रहे तो फिर उन्हे नासेह कौन कहे?

हमारे देशमे नासेहो और सलाह देनेवालोकी कमी नही। चप्पे-चप्पेपर इनका अस्तित्व मिलता है। जनमके रोगी अनुभूत लटके नामी डाक्टरो-वैद्योको बताते हुए, मजनूँ शक्लो-शबाहतके हजरात ताकतके गुरू पहलवानोको समझाते हुए, अनाडी खिलाडियोको दाँव-पेच बताते हुए और फटेहाल ज्योतिषी धनिकोको धनोपार्जनके गुर बताते हुए सर्वत्र दृष्टिगोचर होते है। दूसरोमे अखबार पढवाकर सुननेवाले भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिपर अपना मत ही व्यक्त नही करते, सार्वजनिक स्थानोपर देशके नेताओकी आलोचनाये भी करते है। ऐसे ही अनाधिकारी नासेहोसे तग आकर ख्वाजा 'दर्द'ने सम्भवत. यह शेअर कहा होगा--

तरदामनीपै शेख़ हमारी न जाइयो।
दामन निचोड़ दें तो फ़रिश्ते वज़ू करें॥

इस मजमूनपर अबतक इनसे बेहतर शेअर मेरे देखनेमे नही आया था। मगर देखिए, 'दिल'ने इसी भावको कितने नम्र शब्दोमे अछूते ढगसे व्यक्त किया है--

कभी तो ग़ौरकर आशुफ़्तगी-ए-दिलपै ऐ नासेह !
नज़र आती है, इक दुनिया मेरे चाके-गरेबाँमें ॥

[हजरते-नासेह ! आप जो मुझे वक्त-बेवक्त नसीहत फ़र्माते रहते हैं । मैं चुपचाप सुनता रहता हूँ । मैंने कभी आपकी दिलशिकनी नहीं की । लेकिन आपने मेरी कभी वास्तविक स्थिति जाननेका प्रयास नहीं किया । यदि आपने मेरे द्रवित हृदयकी ओर ध्यान दिया होता तो मेरे फटे हुए वस्त्रों (चाके-गरेबाँ)में एक आलम नजर आता ।]

फटे हुए वस्त्रोंमें कैसे-कैसे लाल छिपे होते हैं, इसे नासेहकी नजर नहीं देख पाती । स्वर्गीय योगि-राज अरविन्द घोषको अलीपुर षडयन्त्र केसके सम्बन्धमें (सम्भवत. इ० स० १९११-१२ के लगभग) जब पुलिस तलाशी लेने आई, तो उनके कमरेमें चटाई बिछी देखकर पुलिस अधिकारी-को यह विश्वास ही नहीं हुआ कि पलगके होते हुए कोई चटाईपर भी सो सकता है । चारों ओर वैभवसे घिरा होनेपर भी कोई अपरिग्रह-वृत्त पालन कर सकता है? ऐसे ही फटेहाल चाक गरेबानोंके लिए, सर इकबालने कितनी श्रद्धा पूर्ण बात कही है—

न पूछ इन खिरक़ा पोशोंकी इरादत हो तो देख इनको ।
यदे-बैज़ा लिये बैठे हैं, अपनी आस्तीनोंमें ॥

[इन भिक्षुकसे दीखनेवाले फटे हाल व्यक्तियोंकी कुछ न पूछिए । बहुत पहुंचे हुए लोग हैं । यदि जाननेकी अभिलाषा है तो इन्हें श्रद्धापूर्वक समीपसे देखिए । तब कहीं मालूम होगा कि इनमें कैसे-कैसे चमत्कार छिपे हुए हैं ।]

दूसरोंकी वास्तविक स्थिति न देख सके तो न सही, परन्तु नासेहको कुछ तो बुद्धि और शऊरसे काम लेना चाहिए । मगर यह दोनों चीज उसके पास है कहाँ ? उसकी इसी कोताहीसे खीजकर किसीने क्या खूब कहा है—

मस्जिदमे बुलाता है, मुझे नासेहे-नाफ़हम।
होता अगर कुछ होश तो मैखाने न जाते॥

अज्ञानताकी हद हो गई न ? नासेहको इतनी भी समझ नही कि बेहोश आदमी चल-फिर नही सकता। तभी तो मस्जिदमे बुला रहा है। ऐसे मूर्ख (नाफहम)से क्या कहा जाय ?

इसी भावको 'दिल' कितने सुथुक अन्दाजमे पेश करते है—

गुजरा है, इश्क़ अपना इदराककी हदोंसे।
अब भी जनाब नासेह समझा-बुझा रहे है॥

अपने प्यारेकी चाहतमे प्रेमी सुध-बुध बिसार बैठा है, प्यारेकी ध्वनि-के अतिरिक्त उसे कुछ सुनाई नही दे रहा है। फिर भी हजरते-नासेह समझा-बुझा रहे है। इसी रगका एक शेअर और देखिए—

नहीं इम्तियाज नासेह! तेरी पन्दे-बरमहलका।
यह मुकामे-बेखुदी है मुझे छोड़दे यहांसे॥

[हजरते नासेह ! मै इस स्थितिमे नही कि आपके समयोचित उप-देशको समझ सकूं। मै इस समय बेखुदीके आलममे (आत्म-लीन) हूँ, मुझे एकान्तकी आवश्यकता है।]

और नासेहकी बाते सुनी भी क्या जाये ? कुछ समझमे आये तो यह मुसीबत भी झेली जाय।

न समझे आजतक हम पन्दे-नासेह।
यह आखिर किस जबाँकी दास्ताँ है ?

इस शेअरका पूरा लुत्फ उठाना है, तो उर्दूके प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और शाइर प० हरिश्चन्द 'अख्तर'का वह लतीफ़ा सुनिए जो आपने ३० दिसम्बर १९५६ को हजरत जगन्नाथ साहब आजादके दरे-दौलत-

पर सुनाया था और मेरे निवेदनपर अपने दस्ते-गुबारकसे मुझे लिख भी दिया था—

"एक छोटे-से गाँवमें दूसरे गाँवसे भगिन आई तो मौलवी साहबने पूछा—"अरी ओ हलालखोरी ! अरी ओ हलालखोरी !! तुम्हारे कुरयहमें भी तकातुरे-बारानें-रहमत हुआ है ?"

भगिन सुनकर बोली—"मौलवी साहब हम कुछ नहीं समझे, इन्सानोंकी तरह बात कीजिए।"

मौलवी—'तू तफहीम करे या न करे, तुझ जईए बेसिकदारकी खातिर हम अपना शिआरे-तकल्लुम तो मुनकलिब करनेसे रहे।"

भला बताइए कोई समझे तो क्या समझे। दिल-जैसे सजीदा शाइरका भी जी चाहता है कि इन्सानी लबो-लहजेमें बात न करनेवाले नासेहको तफरीहन थोडी देरके लिए बनाया जाय। मगर बनाये भी तो किस बिरते पर ? जिन इश्कके नतीजोंकी तरफ़ नासेह इशारे कर रहा है, हकीकतमें उनका अन्देशा खुद दिलको भी न होता और अपने प्यारेकी तरफसे भी इश्ककी पुख्तगीका सबूत मिला होता तो निःसकोच नासेहको झुटलाया और बनाया जा सकता था, मगर हायरी इश्ककी मजबूरियाँ—

मआले-इश्क पै 'दिल' मुतमइन अगर होता।
तो छेड़के नासेहसे गुफ्तगू करते॥

इश्ककी मजबूरियों और पासे-अदबकी वजहसे दिल भले ही नासेहके मुँहपर कुछ न कहे, मगर दिलमें यह जरूर महसूस करते हैं—

यह झक, यह बड़, कहीं जीहोश इंसानोंमें होती है ?
वही है बात नासेहमें, जो दीवानोंमें होती है॥

स्वानुभव किये बिना ही जो मनमें आये, भाषणोंमें अनर्गल प्रलाप करना, व्याख्यान-दाताओं (वाइजों)का अदना करिश्मा है। यदि उन्हें

तनिक भी अनुभूति हुई होती तो जन-साधारणका कितना अधिक मंगल हुआ होता--

पये-जोशे-बयाँ दो घूंट पी लेते तो लुत्फ़ आता।
वह शै ऐ हजरते-वाइज जो मैखानोंमे होती है॥

रिन्दोंकी जिन्दादिली और मौज-मस्ती देखकर वाइज अपना अपमान (तहकीर) समझ रहे हैं। उनके नाकिस खयालमे रिन्द उन्हींको चिढ़ानेके लिए सरमस्ती कर रहे हैं। इस गलत फहमीको दूर करनेके लिए 'दिल' फर्माते हैं--

नहीं मक़सूद रिन्दोंको तेरी तहक़ीर ऐ वाइज!
यही तक़रीह बाहम रोज मैखानेमे होती है॥

जो अपनी आँखका फूला न देखकर दूसरोंकी आँखोंमें लगे काजल और सुर्मेके दोष निकालते रहते हैं। घरोंमे छिपी हुई सती नारियोंके चरण-दर्शनकी अपेक्षा बाहर बहती हुई नालियोंको निहारते-फिरते हैं, उन महानुभावोंके समक्ष 'दिल' अपने मनोभाव इन मधुर शब्दोंमे व्यक्त करते हैं--

तेरी फ़र्दे-अमल हो पाक इस इसियाँसे ऐ वाइज!
कोई पीता है, पीने दे, कहीं ढलती है ढलने दे॥

[अपने आचरणकी चादर पापोंसे मैली न करके उसे स्वच्छ और पवित्र रख। स्वयको स्वच्छ और पवित्र रख। परकी ओर मत देख।]

मजहबी दीवाने संकीर्ण-हृदय, अनुदार और अन्ध विश्वासी होते हैं। वे आस्तिक जो ईश्वरको घट-घटवासी और सर्वव्यापक मानते हैं। अपने -पराये, भले-बुरे, ऊँच-नीच सभीमे उसका दिव्य स्वरूप क्यों नहीं देख पाते ? अपनी दृष्टि इतनी व्यापक और पवित्र क्यों नहीं बना पाते

कि जिसमें उसी (ईश्वर)का दिव्यस्वरूप दिखाई दे। वे क्यों अपनी ऐसी बदनजर रखते हैं, कि जन्नतपर पड़े तो वह भी दोजख हो जाये। इसी खयालको रंगे-तगज्जुलमें किस सादगीसे पेश किया है—

तेरी इस जेहनियतसे[1], मैकदा[2] बेकैफ़[3] है, जाहिद!
समझता मिशरबे-साक़ी[4] तो फ़िर्दौसे-नजर[5] होता॥

यदि दृष्टि व्यापक हो जाय तो फिर मनुष्य उस स्थितिमें पहुँच जाता है, जिसे समदृष्टि या सर्वधर्म समभाव कहा जाता है—

तअय्युनात्की हदसे गुजर चुकी है नजर।
सरे-नियाज भी मुहताजे-आस्ता न रहा॥

[मेरी दृष्टि धार्मिक सीमाओंको लाँघकर इतनी व्यापक और उदार हो गई है कि अब मैं किसी विशेष स्थानपर ही सजदासरंजक होने (सजदा करने)की नीति छोड़कर सर्वत्र उसका दिव्य रूप देखता हूं, और सर्वत्र उसे प्रणाम करता हूं।]

इसी ग़जलका दूसरा शेअर है—

जो तहनशीं कोई उभरा तो आने-वाहिदमें।
उठी वह मौज कि साहिल ही का निशाँ न रहा॥

[जो सम दृष्टि बनकर अपनेमें डूब जाता है, वह कभी उभरता है, तो उसके आत्म-सागरमें ज्ञानकी वह लहरें उठती हैं, कि थोड़ा-बहुत पर-द्रव्य जो आत्मासे लगा हुआ था, वह भी विलीन हो जाता है।]

उदार भावनाके दो शेअर और—

---

[1]विचारधारासे; [2]मदिरालय; [3]आनन्द रहित, नीरस; [4]मधुबालाका अन्तरंग, साकीकी नजर; [5]जन्नतकी नजरवाला।

दैरो-कअ़बा, दश्ते-ईमन, हर तअ़य्युन इक हिजाब।
इन हदोंसे जब गुज़रिए, जलवागाहे-आ़म है॥

[मन्दिर, कअ़बा, दश्ते-ईमन कोई भी धार्मिक स्थान हों, यह सब बन्धन और सीमाये ईश्वरीय रूपके देखनेमें बाधक (हिजाब) हैं। इस सम्प्रदायवादके पर्देसे बाहर निकलिये तो उसका जलवा सुलभ है।]

तअ़य्युन बन्दगी-ए-इश्क़में ऐ दिल नहीं होता।
जिबीं अपनी जिधर झुकती, अदा सज्दा वहीं होता॥

मौनका प्रभाव—

इस व्याख्यानी युगमें जब कि भाषणोंकी महामारी चरम सीमाको पहुँची हुई है, और जनता त्राहि-त्राहि कर रही है। व्याख्यान-दाता नहीं समझते कि हजारों बकवाससे एक चुप कितनी प्रभावशाली होती है। हिटलरकी सैकड़ों जोशीली स्पीचोंसे स्टालिनकी चुप कितनी कारगर होती थी? इसी चुपपर दिलके शेअ़र सुनें—

जो हो ना-आश्नाए-राज़[1] ख़ामोशी वह क्या समझे?
कि है नाक़ाबिले-तशरीह[2] ऐ दिल! दास्ताँ मेरी॥

रूदादे-शबे हिज्र[3] हूँ, गो कुछ नहीं कहता।
इस मंज़िले-ख़ामोशका आ़लम ही जुदा है॥

पेशे-दिलदार रहे, मुहर-ब-लब[4] हज़रते-'दिल'।
कि ख़ामोशीमें भी इक क़ूवते-गोयाई[5] है॥

अंजाम पूछना था, हमें सोज़ो-साज़का।
ऐ अहले-बज़्म शमए-सहर तो ख़मोश है॥

---

[1]चुपके भेदसे अनभिज्ञ; [2]खुलासा करनेकी हालतमें नहीं; [3]वियोग-रात्रिकी कथा; [4]ओठ सिले हुए; [5]वाणीकी शक्ति।

हमारी किश्तिए-उम्र आह डोलती थी इधर।
उधर नजूमे-फ़लक़ डूबते-उछलते थे॥

अब तो हर-हर नफ़्से-सर्द है अफ़सानए-दिल।
शिद्दते-ग़ममें कोई जोशे-तमन्ना देखे॥

हायरी मजबूरियाँ——

खींचती मौजे-हवादिस[1] जब सफ़ीना[2] ले चलीं।
दूर तक देखा किये साहिलको[3] मअ़सूमाना हम॥*

सियह-बख़्ती[4] तो पैवस्ते-जबीं[5] है।
मिटाऊँ दाग़े-नाकामी कहाँ तक?

सुभाषित——

जेबाइशो-ज़ीनतकी[6] हाजत क्या[7], मुल्के-अदमके राही[8] को।
शायाने-लहद[9] जो था ऐ 'दिल'! हमराह[10] वही सामान लिया॥

ऐ जौरो-तशद्दुदके ख़ूगर[11]! मज़लूमकी[12] आहोंपर भी नज़र।
इक रोज़ भड़ककर यह शोअ़ले[13], पहुँचेंगे, तेरे काशाने[14] तक॥

तलाशे-मंज़िले-मक़सूदमें[15] न हो मायूस[16]।
बहुत वसीअ़[17] है, दुनिया तेरी नज़रके लिए॥

---

[1]तूफानोंकी लहरें; [2]नौका; [3]घाटको, किनारेको; [4]दुर्भाग्य की कालिमा; [5]माथेमें समाई हुई है, [6]गौरव प्रदर्शनके सामानकी, शृंगारिक वस्तुओंकी; [7]आवश्यकता; [8]मृत्युमार्गीको; [9]कब्रके योग्य; [10]अपने साथ; [11]जुल्म और हिंसाके अभ्यस्त; [12]अत्याचार पीडितकी; [13]अंगारे; [14]निवासस्थानतक; [15]निश्चित स्थानकी खोज; [16]निराश; [17]विस्तृत।

*जोर ही क्या था जफाए-बाग़बाँ देखा किये।
आशियाँ हम क्या बचाते, नातवाँ देखा किये॥

——सफ़ी लखनवी

उदास शम-ए-सहर डूबते हुए तारे।
ख़मोश दर्स[1] है, दुनिया-ए-बेख़बरके लिए॥

हुए महवे-नैरंगिये-बज़्मे-हस्ती।
घड़ी भरको आये थे मेहमान बनकर॥

स्वराज्य-प्राप्ति—

अज़ाबे-जाँ है, ख़ुदा जाने क्यों यह आज़ादी।
सकून था जो क़फ़समे वोह आशियाँमे नहीं॥

मुक़द्दरने तो दुनिया ही बदल दी हम असीरोंकी।
कोई यह कह रहा है, अब क़फ़सको आशियाँ कहिए॥

सुखमें दुःख छिपा हुआ है—

पहलूए-गुलमे ख़ार भी है, कुछ छिपे हुए।
हुस्ने-बहार देख तो, दामन बचाके देख॥

वही चार तिनके पयामे-क़फ़स थे।
जिन्हे हम समझते रहे आशियाना॥*

अन्य शाइरोंके रंगमें—

ग़ालिब— क़ैदे-हयात बन्दे-ग़म अस्लमें दोनों एक है।
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाये क्यों?

दिल— देखिये दिलको तसल्ली ज़ेरे तुर्बत हो तो हो।
जान खोकर, ख़ाक होकर, ग़मसे, फ़ुर्सत हो तो हो॥

---

[1]पाठ, सबक़।

*क़फ़स दूर ही से नज़र आ रहा है।
क़यामत है, अपनी बुलन्द आशियानी॥
—ख़ुर्शीद फ़रीदाबादी

ग़ालिब— हमने माना कि तग़ाफ़ुल न करोगे, लेकिन—
ख़ाक हो जाएँगे हम, तुमको ख़बर होने तक॥

दिल— हज़रते-'दिल' ! उनकी ज़ीनत रंग लायेगी कुछ और।
वह सँवरते ही रहेंगे, ख़ाक हो जायेंगे हम॥

फ़ानी— या रब ! तेरी रहमतसे मायूस नहीं 'फ़ानी'।
लेकिन तेरी रहमत की तासीरको क्या कहिए॥

इक़बाल— तेरे शीशेमें मै बाक़ी नहीं है ?
बता क्या तू मेरा साक़ी नहीं है ?
समन्दरसे मिले प्यासेको शबनम !
बख़ीली है, यह रज़्ज़ाक़ी नहीं है !!

जफ़रअ़ली— यह है पहचान ख़ासाने-ख़ुदाकी इस ज़मानेमें।
कि ख़ुश होकर ख़ुदा उनको गिरफ़्तारे-बला करदे॥

बहारकोटी—वहीं हज़ारों बहिश्तें भी हैं, ख़ुदा बन्दा !
सिसक-सिसकके कटी ज़िन्दगी जहाँ मेरी॥

दिल— क्या जाने किस ख़यालसे छोड़ा ब-हाले ज़ार।
मुझपर बड़ा करम है मेरे चारासाज़का॥

असग़र गोण्डवी—
दैरो-हरम भी कूचए-जानामें आये थे।
पर शुक्र है, कि बढ़ गये दामन बचाके हम॥

दिल— जानिबे-दैरो-हरम कान लगे रहते हैं।
काश, पर्दे ही-से सुनते तेरी आवाज़ कहीं॥
गोशे-दिलके लिए कुछ तूरकी तख़सीस नहीं।
हर जगह हम तेरी आवाज़ सुना करते हैं॥

अब हम अपने पसन्दीदा शेअर तरानए-दिलसे सभी रगके चुनकर क्रमवद्ध दे रहे है।

कलाम दौरे-हाज़िर [१९३२ से १९५५ तक]

एहसासे-खुदी[1] बाक़ी न रहे, तकमीले-जुनूँ[2] है उस हदमें।
ऐ वहशते-दिल[3] आगे ले चल, हरदश्त[4] तो हमने छान लिया॥

फिर खौफ़े-तलातुम[5] क्या मअनी जब क़िस्मतमें बर्बादी है।
जो मौज बढ़ी अपनी जानिब, आग़ोशमें इक तूफ़ान लिया॥

मरजूदे-नज़र[6] मेरा है यही, कूचेको तेरे क्योंकर छोड़ूँ?
मरना है यहीं, मिटना है यहीं, यह जान लिया यह मान लिया॥

फिर एअतबारे-इश्क़के क़ाबिल नहीं रहा।
जो दिल तिरी नज़रसे गिरा दिल नहीं रहा॥

आई निदा[7] कि अब तेरी मंजिल क़रीब है।
जब इम्तियाजे-दूरिये-मंजिल[8] नहीं रहा॥

मौजे उभारकर मुझे जिस सिम्त ले चलीं।
हद्दे-निगाह तक कहीं साहिल[9] नहीं रहा॥

खेलती थीं यूँ चमनमे शोखिये-मौजे-नसीम[10]।
बेतकल्लुफ़ हर कलीको मुसकराना ही पड़ा॥

---

[1]स्वयका ज्ञान; [2]उन्मादकी पूर्ति; [3]हृदयकी घबराहट, पागलपन; [4]जगल; [5]बहावका भय; [6]मेरा उपास्य; [7]आवाज; [8]मंजिलकी दूरीकी विशेषता; [9]दरियाका किनारा; [10]चचल हवा।

दश्तसे[1] एक ग़ुबार[2] उठा, कोहसे[3] कुछ शरर[4] उड़े।
इश्क़ने रूह फूँक दी, फिर उन्हें दिल बना दिया॥

बर्क़[5] है या जमाल[6] है, सेहर[7] है या कमाल है।
हुस्ने-करिश्मासाजने[8] महवे-नज़र[9] बना दिया॥

शौक़े-जमाल[10] इस तरफ़, तअ़नएतूर[11] उस तरफ़।
हमने सवाल क्या किया, तुमने जवाब क्या दिया॥

हदियए[12]-आशिक़ी यह है, हासिले-ज़िन्दगी यह है।
दाग़ भी दिलनशीं[13] मिला, दर्द भी ला दवा दिया॥

कोई तुलूए-सुबहका[14] हिज्रमें मुन्तज़िर[15] रहे॥
हमने चिराग़े-ज़िन्दगी शाम ही से बुझा दिया॥

दिल हुआ मुहब्बतमे सर्फ़े-इम्तेहाँ अपना।
छा गये ज़मानेपर, जब मिटा निशाँ अपना॥

हम इसे मुहब्बतका मोअ़जिज़ा[16] समझते है।
बन गया है, नासेह भी अब मिज़ाजदाँ अपना॥

अब हर आस्तानेसे बेनियाज़[17] है सिज्दे[18]।
जोशे-ज़िन्दगीमे सर झुक गया कहाँ अपना॥

---

[1]जगलमे; [2]धूलका गुबार; [3]पर्वतसे; [4]चिनगारियाँ; [5]बिजली; [6]रूप; [7]जादू; [8]रूपके जादूने; [9]देखनेमे लीन; [10]रूप-देखनेकी लालसा; [11]तूरपर सौन्दर्य दिखानेपर मूसाकी जो हालत हुई, उसका उलाहना; [12]प्रेमकी भेट; [13]दिलमे रहनेवाला; [14]प्रातः-काल होनेका; [15]विरह-रात्रिमे प्रतीक्षा करे; [16]चमत्कार; [17]बेपरवा, निस्पृह; [18]नमाजमे झुकना (उपासनाये)।

ख़ूने-नाहक़[1] रंग लाया दामने-बेदाद[2] पर।
आज मज़लूमोंको[3] जोशे-इन्तेक़ाम[4] आ ही गया॥

ता-ब-लब[5] शिकवे न आये थे कि ख़ुद हूँ मुनफ़इल[6]।
हुस्नकी मअ़सूम फ़ितरतको[7] पशेमाँ देखकर॥

हश्र आफ़रीं है कूए-मुहब्बतमें हर क़दम।
हम तो बढ़े थे राहको हमवार देखकर॥

ऐ शौक़े-दीद[8]! क्या यही हद्दे-निगाह[9] है॥
हैरतजदा हूँ संगे-दरे-यार[10] देखकर॥

ऐ हुस्न! जो सज़ाए-तमन्ना हो वह क़ुबूल।
लेकिन मेरी नज़रको फिर इकबार देखकर॥

तक़वा[11] भी आज हो गया क़ुर्बाने-मैकदा।
हर जाममें बहारके आसार देखकर॥

वक़्फ़े-उम्मीदो-यासे-मुहब्बतमें[12] हम रहे।
आसान जानकर कभी, दुश्वार देखकर॥

तौबाके एहतरामसे[13] थर्रा रहे थे हाथ।
दिल काँपता था जामको हर बार देखकर॥

अब क्यों शिकस्ते-अ़हदकी[14] हिम्मत है दफ़अ़तन[15]।
क्या हो गया मुझे निगहे-यार देखकर॥

---

[1]व्यर्थका रक्त-पात; [2]अत्याचारीके वस्त्रपर; [3]अत्याचार-पीड़ितोंको; [4]बदलेका भाव; [5]ओठों तक; [6]शर्मिन्दा; [7]सौन्दर्यके भले स्वभावको पछताते देखकर; [8]देखनेका चाव; [9]दृष्टिका केन्द्र; [10]मअशूककी चौखटका पत्थर; [11]संयम; [12]प्रेमकी आशा-निराशाके चक्करमें; [13]गुनाह न करनेकी प्रतिज्ञाके गौरवसे; [14]प्रतिज्ञा तोड़नेकी; [15]एकाएक।

और तड़पाता है, उनका यह सवाल—
"क्या तुम्हीं हो मुब्तलाए-दर्दे-दिल[1]?"

मुझे यह देखना था वक़्ते-गिरियाँ[2]।
कि दामनमें है, गुंजाइश कहाँ तक॥

कही इक आख़िरी हिचकी ने ऐ 'दिल'।
मेरी रुदादे-हस्ती[3] थी जहाँ तक॥

आशुफ़्ता-नज़र,[4] आग़ाज़े-जुनूँ[5], अंजामे-जुनूँ[6] क्या कहिए।
ख़ुद उसने गरीबाँ चाक किया आया जो तेरे दीवानेतक॥

इस नतीजे तक तो पहुँचे सई-ए-लाहासिलसे[7] हम।
छा गये मंजिलपै हम गुजरे है जिस मंजिलसे हम॥

अब जिधरका हौसला हो, ले चल ऐ बारुफ़्तगी!
हो चुके आज़ाद हर अंदेशए-मंजिलसे हम॥

हर नज़र रूदादे-हसरत[8] हर-नफ़स तमहीदे-यास[9]॥
बा-ख़बर है ज़िन्दगीये-हालो-मुस्तक़ाबिलसे[10] हम॥

चश्मे-गिरियाँ[11] जोशे-तूफ़ाँ[12] हश्र-सामाँ[13] आहे-सर्द[14]।
छा गये महफ़िलपै हम जब उठ गये महफ़िलसे हम॥

मिरा हर अश्के-ख़ूं इक दास्ताँ है, काविशे-ग़मकी।
फ़राहम[15] कर रहा हूँ दिलके टुकड़े अपने दामाँमें॥

---

[1]दिलके दर्दमें पीड़ित; [2]रोते समय; [3]जीवन-कहानी; [4]परेशान नजर; [5]उन्मादका प्रारंभ; [6]पागलपनके परिणामको; [7]असफलताओंके प्रयाससे; [8]अभिलाषाओंकी कहानी; [9]निराशाकी भूमिका; [10]जीवनके वर्तमान और भविष्यसे परिचित; [11]अश्रु-पूर्ण नेत्र; [12]तूफ़ानी जोश; [13]क़यामत ढानेवाली दयनीय स्थिति; [14]सर्द आहे लिये हुए; [15]एकत्र, इकट्ठे।

इस इज़्तराबपै[1] क़ुर्बान इक जहाने-सकून[2]।
कोई सँभाल रहा है तड़प रहा हूँ मैं॥

मेरी ख़ामोशिये-मजबूर पर भी एक नज़र।
ज़बाँसे जो न अदा हो वोह माजरा हूँ मैं॥

यह कूए-इश्क़की दुश्वारियाँ मआज़ अल्ला।
क़दम-क़दम पै हैं काँटे, बरहना-पा[3] हूँ मैं॥

रफ़ीक़ मंज़िले-अव्वल ही से पलट आये।
समझ लिये कि बहुत दूर जा रहा हूँ मैं॥

सँभाल अपने दिले-मुत्मनइको[4] नासेह।
कि सरगुज़िश्ते-मुहब्बत[5] सुना रहा हूँ मैं॥

इसीसे कीजिए रफ़्तारका कुछ अन्दाज़ा।
निज़ामे-देहर[6] बदलता हुआ उठा हूँ मैं॥

एहसास दर्दे-इश्क़का ऐ 'दिल' गुहाल[7] है।
रक्खेगा आज हाथ मेरा चारागर कहाँ?

कोई चारासाज़ समझा न यह राज़े-इश्क़ अब तक।
कभी ज़ब्त मेरी फ़ितरत कभी बेक़रार हूँ मैं॥

तर हो न सका अब तक गोशा किसी दामनका।
हर अश्क सरे-मिज़गाँ समझा था कि दरिया हूँ॥

वह तुम कि ज़ब्ते-सोज़े-मुहब्बतपै[8] ख़न्दाज़न[9]।
वह हम कि आँसुओंसे भी दामन न तर करे॥

---

[1]तड़पनेपर; [2]चैनका ससार; [3]नगे पाँव; [4]शान्त हृदयको; [5]मुहब्बतकी बीती घटना; [6]ससार-व्यवस्था; [7]कठिन; [8]प्रेम आगको छिपानेमे; [9]हँसते हुए।

जो देखते हैं चाके-गरीबाँको बार-बार।
वह सरगुज़िश्ते-इश्क़पै[1] भी इक नज़र करें॥

दिले-नालाकश[2] यह ख़बर भी है, कि निज़ामे-देहर[3] बदल गया
हुआ हुस्न अब नज़र-आश्ना[4], रहे-इश्क़ पर्द-ए-राज़में[5]॥

अश्कोंको आज तक न हुई आबरू नसीब।
शर्माके तूए-दामने-तर देखता हूं मैं॥

गुबारे-राहे-पसे-कारवाँ[6] समझ लेते।
मेरा शुमार यहाँ तक भी कारवाँमें नहीं॥

सोज़ो-गुदाज़-इश्क़को[7] दिलकश[8] बनाके देख।
तू जिस नज़रसे देख मुझे मुसकराके देख॥

गिरती है, बर्क़े-हुस्न[9] निगाहोंपै किस तरह।
तुझको यह देखना है, तो पर्दा उठाके देख॥

यह है, दौरे-हाज़िरमें रंगे-ज़माना।
फ़िसाना हक़ीक़त[10]- हक़ीक़त[11] फ़साना॥

उठी जब नज़र हुस्ने-दिलकशकी[12] बरहम[13]।
सरे-बन्दगी झुक गया मुजरिमाना[14]॥

असीरोंके हक़में यही फ़ैसला है।
क़फ़सको समझते रहे आशियाना॥

---

[1]इश्ककी बीती हुई घटनाओंपर; [2]नाला खींचनेवाले दिल; [3]दुनियाका इन्तिजाम; [4]दृष्टिसे परिचित; [5]इश्कका राह अब अप्रकट है; [6]काबाके यात्रियोंके पीछे उड़ी हुई धूल; [7]प्रेमकी व्यथा और तड़पको; [8]चित्ता-कर्षक; [9]रूपकी बिजली, [10]कल्पना वास्तविकता समझी जाती है; [11]सचको झूठा समझा जाता है, [12]लुभावने रूपकी; [13]क्रुद्ध; [14]अपराधियोंके समान नत मस्तक।

मायूसअज़ल[1] से हूँ भाना, नाकामे-तमन्ना[2] रहना है।
जाते हो कहाँ रुख़ फेरके तुम, मुझको तो अभी कुछ कहना है॥

क़ुदरतकी चमन आराईका गो एक असर है दोनों पर।
गुंचे है कि हँसते रहते है शबनम है कि रोती रहती है॥

जानिबे-खानक़ाह भी एक नज़र जनाबे 'दिल'!
शर्क़मए-तहूरमे जाहिदे-पाकबाज है॥

कभी जब्तेसोज़े-दिलसे[3], कभी गर्मिये-फ़ुग़ाँसे[4]।
जो शरर[5] उड़े चमनमें, वह मेरे ही आशियाँसे॥

मेरा हाल था जहाँ तक वह अदा हुआ ज़बाँसे।
जो कहेंगे अश्के-रंगीं वोह अलग है दास्ताँसे॥

दिले-ज़ारो-नालाकशको[6] कोई लाये अब कहाँसे?
जो दलीले-कारवाँ[7] था, वही गुम है कारवाँसे॥

न समझ सके हम अब तक वही फ़साना था दिलका।
जो कहा तेरी नज़रने जो सुना तेरी ज़बाँसे॥

मेरा हरनफ़स[8] ज़बाँ है, मेरी ख़ामुशी बयाँ[9] है।
यही शरहे-दास्ताँ[10] है, वोह सुने जहाँ-जहाँसे॥

तेरी बेनियाज़ियोंने न किये क़ुबूल सिज्दे।
यही दाग़ था जबींपर जब उठे हम आस्ताँसे॥

कभी कैफ़े-आफ़रीं थे, मेरे सोज़े-दिलके नग़मे।
यही साज़ अब है मातम, इसे छेड़िए जहाँसे॥

---

[1]सृष्टिके प्रारम्भसे निराशावादी; [2]अतृप्त अभिलाषी; [3]प्रेमाग्निके दबानेसे; [4]आहोकी गर्मीसे; [5]चिनगारियाँ; [6]सन्तप्त हृदयको; [7]यात्री-दलका चिन्ह, मार्ग-दर्शक; [8]हर साँस; [9]वाणी; [10]कहानीका आशय।

तेरे नाज़ो-तमकनतकी यूँ ही ठोकरें गवारा।
यह जबीं मेरी जबीं है, न उठेगी आस्ताँसे॥

यह ख़लिश वही ख़लिश है जो न मिट सकेगी ऐ 'दिल'!
कोई खींचता है, नावक मेरे ज़ख़्मे-ख़ूंचुकाँसे॥

समझिए ख़ाके-दिलको रायगाँ[1] दुनियाकी नज़रोंमें।
यही पामाल होकर इक जहाँ मअ़लूम होती है॥

अब उस कूचेमें बहरे-इम्तिहाँ मर मिटके पहुँचा हूँ।
जहाँ जिन्से-वफ़ा तक रायगाँ मअ़लूम होती है॥

मुहब्बतकी ख़लिशको[2] पूछिये दर्द-आश्ना दिलसे[3]।
कहाँ मस्तूर[4] रहती है, कहाँ मअ़लूम[5] होती है॥

लबे-ख़ामोशसे इक उफ़ निकल जाना ब-मजबूरी।
कोई समझे तो यह इक दास्ताँ मअ़लूम होती है॥

मेरे मिटते ही रुख़ बदला हवाये-कूये-जानाँने।
यह सइये-आख़िरी[6] भी रायगाँ[7] मअ़लूम होती है॥

उठें जो बहरे-करम[8] वोह निगाहे-बेपरवा[9]।
सकूने[10]-अहले-मुहब्बत है उम्र भरके लिए॥

तेरी कोशिशे है, तबाहकुन, न उभर सका कभी डूबकर।
कि तेरी ख़ुदापै नज़र नहीं, तुझे नाख़ुदाकी तलाश है।
इसी सिलसिलेमें गुज़र गये, कई दौर मंज़िले-इश्क़के।
कभी रहनुमाकी ख़बर नहीं, कभी रहनुमाकी तलाश है॥

---

[1]व्यर्थ; [2]प्रेम-व्यथाको; [3]दुःखी हृदयसे; [4]छिपी; [5]प्रकट; [6]अन्तिम प्रयास; [7]नष्ट; [8]करुणा दिखाने को; [9]लापरवाह चितवन; [10]चैन।

वह कौनसे मुक़ाम थे ऐ जब्ते-राज़े-इश्क़!
हम जिन हदोंमें चाक गरेबाँ न कर सके॥

करेंगे इश्क़की रुसवाइयोंपर ग़ौर ऐ नासेह!
कभी फ़ुर्सत अगर हो जायगी चाके-गरीबाँसे[1]॥

वअ़देपै एअ़तबार मगर शाम ही से हम।
वोह मुन्तज़िर कि सुबहे-क़यामत नज़रमें है॥

अब तो जुनूंने-इश्क़की तकमील[2] हो गई।
दीवाना आज आपने भी कह दिया मुझे॥
वह कौन-सी कशिश थी कि बे इख़्तियार आज।
सर तेरे आस्तांपै झुकाना पड़ा मुझे॥

निगाहे-शौक़को[3] शाखे-निहाले-गुलकी तलाश[4]।
हवाए-तुन्दकी[5] यह ज़िद कि आशियाँ न बने॥*
किये निगाहने सिज्दे रहे-मुहब्बतमें।
वफ़ाका फ़र्ज़ यही था कहीं निशाँ न बने॥

हक़ीक़त कुछ नहीं वहमो-गुमाँ है॥
यह आ़लम दास्ताँ ही दास्ताँ है॥

---

[1]कुरतेका गला फाड़नेसे; [2]उन्मादकी चरम सीमा; [3]सुरुचिपूर्ण नेत्रोंको; [4]फूलोंकी हरी-भरी टहनीकी खोज; [5]तेज़ हवाको।

*इसी काफ़िये-रदीफ़मे 'असर' लखनवीने अकर्मण्योंपर देखिए कितना तीखा व्यंग्य किया है—

यह सोचते ही रहे और बहार ख़त्म हुई।
कहाँ चमनमें नशेमन बने, कहाँ न बने?

तसल्ली नामाबरकी है, नज़रमें।
समझता हूँ जो अन्दाज़े-बयाँ है॥
बढ़ी यह मंज़िलत बर्बाद होकर।
हवाओं पर हमारा आशियाँ है॥

ग़ुबारे-कारवाँका ज़र्रा-ज़र्रा।
मेरी बर्बादियोंकी दास्ताँ है॥

कलाम दौरे-मुतवस्सित [१९०५ से १९३२ तक]

हम और संगे-दर[1] है किसी मस्ते-नाज़का[2]।
अल्लाहरे उरूज[3] जिबीने-नियाज़का[4]॥

यह मुज़्दा[5] था अजब मुज़्दा कि "आते है वोह बालीं पर"।
निकलकर दिलसे ऐ दिल ! रुक गया आँखोंमे दम मेरा॥

बार-हा डूबके उभरा मेरे दिलका नश्तर।
राज़ फिर भी न खुला इश्क़की गहराईका॥

नज़र आती है, मुझे हुस्नकी दुनिया बेहिस[6]।
किसको अफ़्साना सुनाऊँ शबे-तनहाईका[7]?

मिटगया जब मिटनेवाला फिर सलाम आया तो क्या।
दिलकी बरबादीके बाद उनका पयाम आया तो क्या॥
छुट गई नब्ज़ उम्मीदें देने वाली है जवाब।
अब उधरसे नामाबर लेके पयाम आया तो क्या?
आज ही मिटना था ऐ दिल हसरते-दीदारमें[8]।
तू मेरी नाकामियोंके बाद काम आया तो क्या॥

---

[1]चौखटका पत्थर; [2]मग्नशूकका; [3]उन्नति, गौरव; [4]श्रद्धापूर्ण मस्तकका; [5]शुभ सन्देश; [6]अकर्मण्य; [7]विरह-रात्रिका; [8]दर्शनोकी लालसामे।

काश अपनी जिन्दगीमें हम यह मंजर[1] देखते।
अब सरे-तुर्बत कोई महशर-खिराम आया तो क्या॥
साँस उखड़ी, आस टूटी, छा गया जब रंगे-यास।
नामाबर लाया तो क्या, खत मेरे नाम आया तो क्या॥
मिल गया वह खाकमें, जिस दिलमें था अरमाने-दीद[2]।
अब कोई खुर्शीदवश[3] बालाए-बाम आया तो क्या॥
रोते-रोते जो हमेशाके लिए चुप हो गया।
उसके मदफ़न पर कोई शीरीं-कलाम[4] आया तो क्या॥

बहला रहे हैं अपनी तबीअत खिजाँ नसीब।
दामनपै खींच-खींचके नक़्शा बहारका॥

जब दिलमें दर्दे-इश्क़ उठा हम उछल पड़े।
समझे कि यह करम[5] है, किसी दिल-नवाजका[6]॥

नारसाईका[7] सबब क्या है, यही जौक़े-तलब[8]।
बढ़ गये हम इस क़दर आगे, कि रहबर[9] रह गया॥

क्या कहूँ किस आर्जूका खून होकर रह गया।
दिलकी दिलही मे रही जब खिचके खंजर रह गया॥

यह गोया वाक़ेआते-बज्मे-हस्तीका[10] खुलासा है।
तेरा यूं दफ़अतन[11] खामोश ऐ शमए-सहर[12] होना॥
उधर घबराके ग़म ख्वारोंकी मायूसाना[13] सरगोशी[14]।
इधर बीमारका कुछ कहके सबसे बेखबर होना॥

---

[1]दृश्य; [2]देखनेकी इच्छा; [3]सूर्यमुखी; [4]मधुरभाषी; [5]मेहरबानी; [6]सहृदयका; [7]उनतक पहुँच नहीं होनेका; [8]चाह की अभिरुचि; [9]मार्ग-दर्शक; [10]जिन्दगीकी महफ़िलके वाकेआतका; [11]अकस्मात; [12]प्रातःकालीन दीपक; [13]निराशा भरी; [14]कानाफूसी।

आग़ाज़े - मुहब्बतसे अंजामे - मुहब्बततक।
गुज़री है जो कुछ हम पर तुमने भी सुना होगा॥

क्या सुनायें सरगुज़िश्ते-ज़िन्दगीए-पुरअलम[1]।
आशियाँ अब तो क़फ़स है, इससे पहले दाम[2] था॥

हर हक़ीक़त मुज़्तरिब दिलके लिए वह मौत थी।
इस्तलाहे-आ़ममे तसकीन जिसका नाम था॥
अब वोह आग़ोशे-लहदमें सो रहा है, चैनसे।
जो सितमकश ना-शिनासे-राहतो-आराम था॥

मुहब्बत क्या है ? दिलका बेकसो-मजबूर हो जाना।
सुकूनो-ज़ब्तकी मंज़िलसे कोसों दूर हो जाना॥

मआ़ल[3] उस मुन्तज़िरका क्या हुआ जिसकी यह हालत थी॥
कभी घबराके सर धुनना, कभी मसरूर हो जाना॥

सुन ऐ मजरूह-दिलको[4] मुस्कराकर देखने वाले।
इसीका नाम है, नासूर-दर-नासूर हो जाना॥

नतीजे तक खिंचे क्या-क्या उमीदो-यासके[5] नक़्शे।
तलातुममें[6] थी किश्ती, सामने नज़रोंके साहिल[7] था॥

रहनुमाकी[8] क्या ज़रूरत इश्क़ कामिल चाहिए।
दिल जहाँ तड़पे समझ लेना यही है कूए-दोस्त[9]॥

किधर है, बर्क़े-सोज़ाँ काश यह हसरत भी मिट जाती।
बनायें तिनके चुन-चुनकर हम अपना आशियाँ कब तक ?

---

[1]व्यथासे ओतप्रोत जीवनकी कहानी; [2]जाल; [3]परिणाम, नतीजा; [4]घायल दिलको; [5]आशा-निराशाके; [6]तूफ़ानमें; [7]किनारा; [8]पथ-प्रदर्शक; [9]प्रेयसीका कूचा।

वही शोरिश, वही शोरिश है, दिलके ख़ाक होने पर।
शरर तो बुझ गया उमडेगा आख़िर यह धुआँ कब तक ?

अजल ही काश आ जाती सुकूने-मुस्तक़िल[1] बनकर।
शबे-ग़म करवटें बदले मरीज़े-नातवाँ[2] कब तक ?

गोशे-इबरत हो तो सुन लो मरमिटोंकी सर गुज़िश्त।
यह ज़बाने हालसे क्या जाने क्या कहनेको है॥

जुनूँका मक़सदे-अव्वल है ऐ दिल! ख़ाना-बर्बादी।
जब इस हदसे गुज़रता है तो, पहुँचाता है, ज़िन्दाँमें[3]॥

नीची नज़रें है, तबस्सुम लबपर।
ख़ूब चर्के वोह दिये जाते है॥

हक़ तो यह है, कि ख़ता तुमसे हुई ऐ मन्सूर!
थीं छुपानेकी जो बातें वोह बा-आवाज़ कहीं॥

बैठे तो गर्दकी तरह, उट्ठे तो दर्दकी तरह।
उम्र यूं ही गुज़ार दी दश्ते-जुनूं-नवाज़में॥

मिटे वोह दिल जो मुहब्बतमें बेक़रार न हो।
वफ़ा-शिआ़र न हो, महवे-इन्तज़ार न हो॥
रवाँ है, अश्क़े-मुसलसल इधर भी एक नज़र।
मेरी ज़बान पै मुम्किन है, एअ़तबार न हो॥

वह इक पयामे-अजल था मरीज़े-ग़मके लिए।
किसीका हँसके यह कहना "ख़ुदाको याद करो"॥

---

[1]स्थायी चैन; [2]निर्बल रोगी; [3]क़ैदमें।

शामे-फ़िराक़का ज़ाहिर असर नहीं न सही।
जिगर तो ख़ून हुआ, आँख तर नहीं न सही॥

यही है, सोज़े-दिले-अन्दलीबके मअ़नी।
क़फ़स तो फूंक दिया चन्द पर नहीं न सही॥

निगाहे-मस्तसे ओ मुड़के देखने वाले!
तुझे तो है मुझे अपनी ख़बर नहीं न सही॥

यह सोचता हूँ कि ख़ुद जाके अर्ज़े-हाल कहूँ।
हवाए-शौक़ सही, नामाबर नहीं न सही॥

हया तो हज़रते-'दिल' और दिल लुभाती है।
किसीकी आँखमें शोख़ी अगर नहीं न सही॥

उड़ चला हर ज़र्रा सूये-कूये-दोस्त।
हो चुकी जब ख़ाना वीरानी मेरी॥
पीछे-पीछे हसरतोंका क़ाफ़िला।
आगे-आगे है परेशानी मेरी॥

कहिए तो कह दूं अर्शेबरींको[1] मुक़ामे-दोस्त।
हिम्मत मगर कुछ और है अपने ख़यालकी॥

है-है यह बेकसिये-मुहब्बत कि ख़ाके-दिल।
अपनी नज़रके सामने बरबाद हो गई॥

हुज़ूरे-दोस्त यही इल्तजाए[2]-आख़िर है।
निगाहे-याससे[3] हम शरहे-आर्ज़ू[4] करते॥

---

[1]ईश्वरीय स्थानको; [2]अन्तिम निवेदन; [3]निराशा भरे नेत्रोंसे; [4]अभिलाषाओंका अर्थ समझाते।

यह मुद्दआ है कि दिन-रात अश्क बार रहूँ।
तगरना वह मेरे अश्कोंकी आबरू करते॥
कुजा[1] मरीजे-मुहब्बत, कुजा उमीदे-शिफ़ा[2]।
यह सब बजा मगर अपनी-सी चाराजू[3] करते॥

तलाशे-दोस्तमें ख़ुद खो गये मगर ऐ दोस्त!
यह हौसला है, अभी और जुस्तजू करते॥
तलाशे-दोस्त कुजा, आरजूए-दीद कुजा।
हमें तो उम्र हुई अपनी जुस्तजू करते॥

शौक़े-दिल जितना बढ़ा, गर्द और भी बढ़ती गई।
आगे-आगे क़ैसके धोका-सा कुछ महमिलका है॥
पास रहकर यह तकल्लुफ़, साथ रहकर यह हिजाब।
मेरा उनका फ़ासिला गोया कई मंज़िलका है॥
हुस्न क्या है? एक इशवा[4] जिसकी फ़ितरत[5] दिल फ़रेब[6]।
इश्क़ क्या है? एक नक़्शा इज्तरावे-दिलका[7] है॥

कूचए-दिलबरमें अपना बैठना-उठना यह है।
नक़्शे-हसरत बनके बैठे, गर्द बन-बनकर उठे॥
हम सरे-मंज़िल गिरे, ग़श खाके यह तो याद है।
क्या ख़बर किसने उठाया, कब उठे, क्योंकर उठे॥
हमको राहे-इश्क़में हर मरहला दुश्वार था।
ठोकरें खाकर कभी सँभले, कभी गिरकर उठे॥
है नमाजे-इश्क़का ऐ 'दिल'! यह रुक्ने-आख़िरी।
आस्ताने-दोस्तसे क्योंकर हमारा सर उठे॥

---

[1]कहाँ-कैसी; [2]निरोग होनेकी आशा; [3]हकीम लोग; [4]जादू; [5]स्वभाव; [6]दिल लुभाना; [7]बेचैन दिल का।

पैरहन फाड़ लें ग़ुंचे तो वह जीनत ठहरे।
हम गरीबाँ ही करें चाक तो रुसवाई है॥

मंज़िलका ख़्वाब देख रहे थे, ख़िज़ाँ नसीब।
चौंके तो कारवांसे बहुत दूर हो गये॥

यह नतीजे हैं, हमारे नाल-ए-शबगीरके[1]।
बढ़ गये कुछ और हल्क़े आहिनी-ज़ंजीरके[2]॥

फिर गई दफ़्अतन किसी की नज़र।
यह भी इक गर्दिशे-ज़माना है॥

यूं मिटायेंगे दाग़े-नाकामी।
सर है और उनका आस्ताना है॥

हमदम! ग़मे-फ़ुर्क़तकी, तशरीह[3] नहीं मुम्किन।
इक नश्तरे-सद-ईजा[4] हर-हर नफ़्से-दिल[5] है॥

ऐ दिले-मुद्दआ तलब[6]! महवे-फ़रेबे-आरज़ू[7]!
हुस्न हो माइले-करम[8] यह तो ख़याले-ख़ाम[9] है॥

बहार जाम बकफ़ झूमती हुई आई।
शिकस्ते-अ़हद न करते तो और क्या करते?

नज़रमें हिम्मते-जलवा अगर नहीं न सही।
कभी-कभी तेरी आवाज़ ही सुना करते॥

---

[1]रात भरकी आहोफ़ुग़ाँके; [2]लोहेकी ज़ंजीरके; [3]खुलासा, भाष्य; [4]-[5] शरीरका रोम-रोम नश्तरकी सैकड़ों चुभन जैसा अनुभव कर रहा है; [6]अभिलाषी हृदय; [7]इच्छाओंके धोकोंमें लीन; [8]कृपा करे; [9]व्यर्थ आशा।

कलाम दौरे-क़दीम [१९०५ ई० से पूर्वका]

हम नफ़स[1] मसरूफ़े-दरमाँ[2] ना-शिनासे-राज़[3] थे।
इश्क़की मजबूरियोंसे बा-ख़बर कोई न था॥

एक यह दिन है कि अपनी दुआ है राएगाँ।
एक वह दिन था कि नाला बे असर कोई न था॥

हुस्न ख़ूगर[4] है दिलरुबाईका[5]।
खुल गया राज़[6] ख़ुदनुमाईका[7]॥

हमें क़फ़समें क़लक़ क्या हो आशियानेका।
समझ लिये कि यही रंग है ज़मानेका॥

फ़क़त है वअ़दा ही वअ़दा नहीं वह आनेका।
पुकारता है यह अन्दाज़ मुसकरानेका।

हँसे जो ज़ख़्मे-जिगर और चोट खायेंगे।
लहू रुलायेगा, अन्दाज़ मुस्करानेका॥

चले वह नाज़से मुँह फेरकर तो हम यह समझे।
यह चाल हश्रकी है, वह चलन ज़मानेका॥

मुदाम दाग़े[8]-मुहब्बतसे[9] दिल रहे रोशन।
कभी चिराग़ न गुल हो ग़रीबख़ानेका॥

वह हम कि जादए-तसलीमसे क़दम न हटे।
वह तुम कि रंग उड़ाते रहे ज़मानेका॥

---

[1]इष्ट-मित्र; [2]इलाजमे व्यस्त; [3]वास्तविकतासे अनभिज्ञ; [4]आदी; [5]दिलकी चाहतका; [6]भेद; [7]बनने-सँवरनेका; [8]-[9]प्रेमाग्निसे सदैव।

ग़ुबार बनके उठे छा गये ज़मानेपर।
मआल देख लिया ऐ फ़लक मिटानेका।

यह किसने सिज्दे किये हैं, कि फ़र्ते-नख़्वतसे।
दिमाग़ अर्शपै है, तेरे आस्तानेका॥

इधर तो ख़ुल्द नहीं फिर इधर कहाँ ऐ शेख़!
हुज़ूर! यह तो है रस्ता शराबख़ानेका॥

वह मेरी अर्ज़ कि दिल दाद-ए-वफ़ा हूँ मैं।
वह उनका क़ौल कि "क़िस्सा है किस ज़मानेका"?

रहेगा नक़्श मेरी तुरबते-शिकस्तापर।
करिश्मा वह तेरे दामन बचाके जानेका॥

शमअ गिरियाँ[1] रही परवानोंकी जाँ-बाज़ीपर।
हमने ऐ 'दिल'! यही महफ़िलमें तमाशा देखा॥

आशिक़े-सब्र-आज़मा[2] आलममें रुसवा हो गया।
ऐ ख़याले-पर्दादारी[3] राज़ अफ़शाँ[4] हो गया॥

हाथ दिलपर रखके यह कहना किसीका याद है—
"अब उसे अपना न कहना, यह हमारा हो गया"॥

सर अपना है, किसीके आस्ताँ पर।
जिबीने-इज्ज़ पहुँची आस्माँ पर॥

बहारे-गुल है, कितनी क़ैफ़-अंगेज़[5]?
झुकी पड़ती है, शाख़ें आशियाँ पर॥

---

[1]रोती; [2]सन्तोषी प्रेमी; [3]बातको छिपानेका ख़याल; [4]भेद खुल गया; [5]मतवाली।

हवा रहबर, ग़ुबारे-दश्त वहशत।
चला हूँ मिटने वालोंके निशाँ पर॥
ज़रीफ़ाना है मुझपर लुत्फ़े-सैयाद।
क़फ़स लटका दिया है आशियाँ पर॥
हवा ख़्वाहे-चमन चन्द और भी थे।
गिरी बिजली मेरे ही आशियांपर॥

न बेगाना बनकर, न मेहमान बनकर।
रहे दिलमे पैकां तेरी जान होकर॥
असर है यह कूए-मुहब्बतका ऐ 'दिल'!
मिली तुझको राहत परीशान होकर॥
शबे-ग़म निकल जायगी हर तमन्ना।
कोई आह बनकर, कोई जान होकर॥

बअ़दे-फ़ना ग़ुबारने पाया अ़जब उरूज।
हम ख़ाक भी हुए तो रहे आस्मान पर॥
हम ख़ाकसार हैं, हमे जेबा है, फ़र्शे-ख़ाक।
वोह रश्के-माह है, वोह रहें आरमानपर॥

अफ़सानए-मुहब्बत कुछ मस्लेहत समझकर।
हम कह सके वहीं तक, वह सुन सके जहाँ तक॥
नाक़ाबिले-बयाँ है, रुदादे-सोज़े-पिन्हाँ[1]।
शोअ़ले तो क्या भड़कते, उठता नहीं धुआँतक॥

किस क़दर दिलचस्प होगा मंजरे-नाजो-नियाज।
तीर बरसायेगा कोई फूल बरसायेगे हम॥

---

[1]पोशीदा प्रेमाग्निकी कहानी।

क्या है इस इक़रारका मतलब, दिले-हसरत-नसीब!
मुसकराकर वह यह कहते हैं "ज़रूर आयेंगे हम"॥

ज़बाने-हालसे कहती है, शमए-बज़्म घुल-घुलकर।
"न समझो ग़ैर मुझको मैं शरीके-सोज़े-महफ़िल हूँ"॥

ख़याले-चारासाज़ीसे किसीका हाथ है दिलपर।
पड़ा हूँ किस सलीक़ेसे अजब हुशियार ग़ाफ़िल हूँ॥

अल्लाहरे इक आईनए-पैकरका तसव्वुर।
हैरतसे मुझे अहले-नज़र देख रहे हैं॥
बाक़ी न रहे हज़रते 'दिल' दीदकी हसरत।
वह चश्मे-मुहब्बतसे इधर देख रहे हैं॥

पर्दा उठ जाये तो इज़हारे-हक़ीक़त हो जाय।
मुज़्तरिब मैं तो इधर हूँ, वह उधर है कि नहीं॥

तुम पहिले चारासाज़ो! उनकी नज़रको देखो।
फिर मेरे दिलको देखो, मेरे जिगरको देखो॥

हमसे गुदाज़े-दिलकी रूदाद पूछना क्या?
तुम अश्क़े-ख़ूँ को देखो, दामाने-तरको देखो॥

है इज़्तिराबे-दिलपर क्यों इस क़दर तअज्जुब?
अपनी अदाको देखो, अपनी नज़रको देखो॥

क्या देखते हो मेरे दम तोड़नेका आलम।
तुम मुड़के वक़्ते-रुख़सत शम-ए-सहरको देखो॥

ख़ूगरे-ना-मेहर्बानी हैं किसीके इश्क़में।
अब तमन्ना है, कि हमपर मेहर्बां कोई न हो॥

लड़खड़ाते है क़दम मंज़िल जब आ पहुँची क़रीब।
आलमे-ग़ुर्बतमें[1] मुझ-सा नातवाँ[2] कोई न हो॥
हमको उनसे है ग़रज, दुनिया हुई अपनी तो क्या।
वह अगर ना-मेहर्बां हों, मेहर्बां कोई न हो॥

शबे-हिज्र फ़र्ते-ग़ममें मुझे आगया तबस्सुम।
जिसे रो रही हो क़िस्मत वह ख़ुद अश्क़बार क्यों हो॥
हुई शामिले-मुक़द्दर जब अजलसे तल्ख़कामी।
कोई ज़हर भी अगर दे, मुझे नागवार क्यों हो॥

ऐसी प्यारी-प्यारी सूरत आईना पाता कहाँ?
शादमाँ[3] है हुस्नका ख़ाका उड़ाकर आईना॥

बे असर कूए-मुहब्बतमें[4] शकेबाई[5] हुई।
इन्तहाए-पर्दादारी[6] वजहे-रुसवाई[7] हुई॥

अजब तशबीह है इक शाहिदे-यकताके दामनकी।
मेरी तख़्यीलने तसवीर खींची बर्क़े-ऐमनकी॥

कुजा[8] लुत्फ़े-चमन, अब फिर रहा है दाम[9] नजरोंमें।
बहार आई तो शाख़े झुक गई मेरे नशेमनकी॥

हज़रते-'दिल'! जब बुढ़ापा आयेगा।
ख़ैर मक़दमको जवानी जायेगी॥

नहीं आता जो कोई वअ़दा ख़िलाफ़।
नींद भी ता-सहर[10] नहीं आती॥

---

[1]सफ़रमे; [2]असहाय-कमज़ोर; [3]प्रसन्न; [4]प्रेम-मार्गमें; [5]धैर्य रखना निष्फल हुआ; [6-7] भेदको छिपानेकी अधिक-से-अधिक कोशिश ही बदनामीका कारण हुई; [8]कहाँ, कैसा; [9]जाल; [10]सुबह तक।

आ़लमे-ख़्वाबमें भी वह सूरत।
नज़र आती नज़र नहीं आती॥
क्यों न हों बे नियाज़े-कश़्बाओं दैर।
जब वह सूरत नज़र नहीं आती॥

इससे पहिले ही क़फ़स अपना नशेमन हो चुका।
जब चमनमें झूमती बादे-बहार आनेको थी॥

मुझे अपने मुक़द्दरपर हँसी बे-इख़्तियार आई।
सबा जब फूल दामनमें लिये सूए-मज़ार आई॥

अ़नादिलके लिए क्या कम थे शोअ़ले आतिशे-गुलके।
चमककर बर्क़ क्यों सूए-नशेमन बार-बार आई॥

निगाहे-बाग़बाँमें यह भी थी इक शर्ते-आराइश।
किसीका आशियाँ उजड़ा चमनमें जब बहार आई॥

अ़नादिलको हो मुज़्दा[1] हम तो हैं अफ़सुर्दा[2] दिल ऐ 'दिल'!
हमें क्या, कब ख़िज़ाँ रुख़सत हुई, किस दिन बहार आई?

तुझको रुख़े-पुरनूर छुपाना है, छुपाले।
देखेंगे बहरहाल तुझे देखने वाले॥

"ग़ुबार बनके उठो, फिर फ़लकपै छा जाओ"।
यह कह रहा है, कोई ख़ाकमें मिलाके मुझे॥

यह और ज़ख़्मे-जिगर पर नमक छिड़कना है।
वह देखते हैं, दमे-नज़अ़[3] मुस्कराके मुझे॥

---

[1]शुभ सन्देश; [2]मुर्झाये हुए; [3]मृत्यु-समय।

वह ग़मनसीब हूँ ऐ दिल कि बज़्मे-हस्तीमें।
कभी किसीने न देखा नज़र उठाके मुझे॥

हमपर एहसाँ है इक सितमगरका।
उम्रभर सर नहीं उठानेका॥

दम है घुटनेके लिए, अश्क़ है ढलनेके लिए।
सूरते-शमअ़ बहरहाल हूँ जलनेके लिए॥

दारे-फ़नासे[1] चश्मे-ज़दनमें[2] गुज़र गये।
हम मिस्ले-बर्क़[3] आये थे, शक्ले-शरर[4] गये॥
कतरे गये तो क़ूवते-परवाज़ बढ़ गई।
उड़ते हुए चमनको मेरे बालो-पर गये॥
वह चश्मे-मुनाफ़िलसे[5] मुझे देखते न काश।
तस्कीन[6] देने आये थे बेचैन कर गये॥

ना-आश्नाए-साग़रे-मै हो चुका हूँ मैं।
लेकिन वह जाम दे तो कुछ इन्कार भी नहीं॥

मुदाम क़ैसके आगे रही परेशानी।
हमींको राहे-मुहब्बतमें रहनुमा न मिला॥

इधर बज़्ममें वह रहे जलवागर।
उधर ता-सहर शमअ़ जलती रही॥
कोई वअदे-पै-वअदे करता रहा।
क़ज़ा रोज़ आ-आके टलती रही॥

---

[1]असार संसारसे; [2]पलक मारते; [3]बिजलीके समान; [4]चिनगारी-की तरह; [5]शर्मीली नजरोंसे; [6]तसल्ली, सान्त्वना।

जज़्बए-जाँ-सोज़ हो हासिल, उस अफ़सानेसे क्या।
वजहे-ख़ामोशी कहे फिर शमअ़ परवानेसे क्या॥

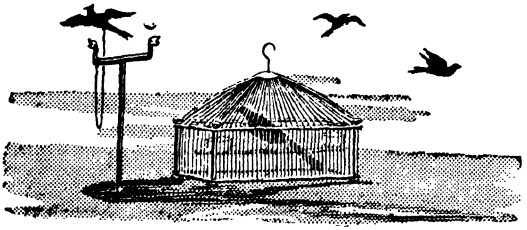
हँगामे-नज़अ़ है, यही तद्बीर आख़िरी।
हर चारा साज़ अब मेरे हक़में दुआ़ करे॥

रात-दिन बेख़ुदी-सी तारी है।
कुछ अ़जब ज़िन्दगी हमारी है॥

हो गई रुख़सत गुलिस्ताँसे बहार।
क्या उदासी है, दरो-दीवार पर॥

हज़रते-'दिल'! हर निशाते-ज़िन्दगी।
कर चुके क़ुर्बां निगाहे-यारपर॥

मिली राहत हुजूमें-यासो-ग़ममें ख़ून रो-रोकर।
लगी दिलकी बुझाई है तो कुछ-कुछ दीदए-तरने॥



हम सफ़ीरो! फ़स्ले-गुल आने तो दो।
ख़ुद-ब-ख़ुद हो जायेंगे तैयार पर॥

१५ अगस्त १९५७ ई०

जलील मानिकपुरी



[१८६४–१९४६ ई०]

जलीलहसन 'जलील' १८६४ ई० में मानिकपुर (अवध) में उत्पन्न हुए। १०-११ वर्षकी उम्रमें समूचा क़ुरआन कंठस्थ कर लिया। शिक्षाका ज़माना बहुधा लखनऊमें व्यतीत हुआ। वहाँ आपने अरबी-फ़ारसीकी उच्च शिक्षा प्राप्त की। सुख़नगोईका शौक़ विद्यार्थी अवस्थासे ही था। २० वर्षकी उम्रमें अमीर मीनाईके शिष्य हुए, और उस्तादके जीवन-कालमें सदैव उनके साथ रहे। आपकी भक्ति और योग्यतासे उस्ताद इतने प्रभावित हुए कि अपनी उस्तादीकी गद्दी आपको ही सुपुर्द कर गये।

अमीर मीनाई रामपुरमें रहकर जब 'अमीरुललुग़ात' जैसे वृहत्कोशका निर्माण कर रहे थे, और उसके लिए एक विस्तृत कार्यालय खोला गया था, तब 'जलील'पर ही उसके संपादनका भार डाला गया था। बनारस, भोपाल आदिकी यात्राओंमें भी आप उस्तादके क़दम-ब-क़दम साथ रहे। १९०० ई० में जब हज़रत अमीर मीनाई हैदराबाद स्थायी रूपसे रहनेको चले गये तो भी आप उनके साथ ही रहे। वहाँ दो उर्दू-पत्रोंके संपादनका कार्य आपके सुपुर्द हुआ। मिर्ज़ा दाग़की मृत्युके बाद १९०८ ई० में तत्कालीन नवाब हैदराबादने अपना कविता-गुरु आपको स्वीकृत किया और मिर्ज़ा दाग़के रिक्त स्थानपर प्रतिष्ठित किया। 'जलीलुलक़द्र' ख़िताबसे विभूषित किया। फिर वर्त्तमान नवाबने जब शासनकी बागडोर सँभाली तो उन्होंने भी उस्तादीका गौरव आपको ही प्रदान किया, और आपके जीते जी

आपसे ही मशविरए-सुखन लेते रहे। पहले आपको "नवाब फ़साहत जंग बहादुर" खिताब अता किया गया। दुबारा "इमामुल मुल्क" की पदवीसे विभूषित किया। नवाब साहबके अतिरिक्त युवराज, शहजादे भी आप ही से इस्लाह लेते थे। पहला दीवान 'ताजे-सुखन' १९१० मे प्रकाशित हुआ। दूसरा दीवान 'जाने-सुखन' १९१६ मे छपा। तीसरा दीवान रूहे-सुखन मुद्रणकी प्रतीक्षामे है। इनके अतिरिक्त बीसो महत्त्वपूर्ण पुस्तकोके आप रचयिता है। ६ जनवरी १९४६ ई० मे आपने हैदराबादमे समाधि पाई।

आपके खुद पसन्दीदा अशआरमे से चन्द शेअर निगार जनवरी १९४१ से यहाँ साभार दिये जा रहे है।

इन्तिख़ाब अज़ ताजे-सुख़न

मेरी वहशत[1] भी तमाशा हो गई।
जो इधर गुज़रा, खड़ा देखा किया॥

आज ही आ जो तुझको आना है।
कल ख़ुदा जाने मैं हुआ-न-हुआ॥

मजा लेगे हम देखकर तेरी आँखें।
उन्हें ख़ूब तू नामाबर[2]! देख लेना॥

यह रंग गुलाबकी कलीका।
नक़्शा है किसीकी कमसिनीका॥
मुँह फेरके यूँ चली जवानी।
याद आ गया रूठना किसीका॥

ऐ 'जलील'! आँसू बहाये तुमने क्यों?
उनको हँसनेका बहाना मिल गया॥

---

[1]उन्माद, दीवानगी; [2]पत्र-वाहक।

मैंने जो तुम्हें चाहा, क्या इसमें ख़ता मेरी।
यह तुम हो, यह आईना, इंसाफ़ ज़रा करना॥

जाते हो, ख़ुदा हाफ़िज़, हाँ इतनी गुज़ारिश[1] है।
जब याद हम आजायें, मिलनेकी दुआ करना॥

थी इश्क़ो-आशिक़ीके लिए शर्ते-ज़िंदगी।
मरनेके वास्ते मुझे जीना ज़रूर था॥
वोह बेख़ुदीकी आड़में लिपटे 'जलील' से।
क्योंकर कहूँ कि होश न था, था, ज़रूर था॥

दिन जो दुश्मनके फिरे मेरे भी फिरने चाहिएँ।
क्या ज़माना एक ही करवट बदलकर रह गया॥

चले हाय दमभरको मेहमान होकर।
मुझे मार डाला मेरी जान होकर॥

हम भूले हुए राह हैं ऐ कअबा-नशीनों!
जाते थे कहीं और, निकल आये कहीं और॥

यह जो सर नीचे किये बैठे हैं।
जान कितनोंकी लिये बैठे हैं॥

झूठे वअदे भी नहीं करते आप।
कोई जीनेका सहारा ही नहीं॥

वअदा करके वोह हाय जाते हैं।
रोग दिलको लगाये जाते हैं॥

---

[1]प्रार्थना।

निगाह[1] बर्क़[2] नहीं, चेहरा आफ़ताब[3] नहीं।
वोह आदमी है, मगर देखनेकी ताब नहीं॥

अच्छा नहीं कि हो रुख़े-महबूब[4] बेनक़ाब।
पर्दा उठे तो डाल दूँ अपनी नज़रको मैं॥

इक शमअ़ है मज़ारपै वोह भी बुझी हुई!
क्या देखकर बुलाऊँ नसीमे-सहरको[5] मैं॥

ओ आँख चुराकर जानेवाले।
हम भी थे कभी तेरी नज़रमे॥

जिगर थामे हुए बैठे है जितने सीने वाले है।
मेरे पुरदर्द नाले भी बड़े बेदर्द नाले है॥

नसीबसे कहीं मरना किसीपै होता है।
मज़ा जो इसमे है, वोह उम्रे-जाविदाँमे[6] नहीं॥

आपने तसवीर भेजी मैंने देखी ग़ौरसे।
हर अदा अच्छी, ख़मोशीकी अदा अच्छी नहीं॥

हमारी बेख़ुदीका हाल वोह पूछे तो ऐ क़ासिद!
यह कहना होश इतना है कि तुमको याद करते है॥
'जलील' अच्छा नहीं आबाद करना घर मुहब्बतका।
यह उनका काम है जो ज़िंदगी बरबाद करते है॥

मज़े बेताबियोंके आ रहे है।
वोह हमको, हम उन्हे समझा रहे है॥

---

[1]आँखे; [2]बिजली; [3]सूरज; [4]प्रेयसीका मुख; [5]प्रातः-कालीन वायुको; [6]अमर जीवनमे।

चाल है मस्त, नज़र मस्त, अदामें मस्ती।
जैसे वोह आते हैं लूटे हुए मैख़ानेको॥

बात साक़ीकी न टाली जायगी।
करके तौबा तोड़ डाली जायगी॥

आते-आते आयगा उनको ख़याल।
जाते-जाते बेख़याली जायगी॥

देखते हैं ग़ौरसे मेरी शबीह[1]।
शायद इसमें जान डाली जायगी॥
ऐ तमन्ना! तुझको रो लूँ शामे-वस्ल।
आज तू दिलसे निकाली जायगी॥
क़ब्रमें भी होगा रोशन दाग़े-दिल।
चाँदपर क्या ख़ाक डाली जायगी॥

मेरी हर बातको उलटा वोह समझ लेते हैं।
अबकी पूछा तो यह कह दूंगा कि हाल अच्छा है॥

नक़ाब कहती है—"मैं परदए-क़यामत हूं।
अगर यक़ीन न हो देख लो उठाके मुझे"॥
मैं डर रहा हूँ तुम्हारी नशीली आँखोंसे।
कि लूट लें न किसी रोज कुछ पिलाके मुझे॥

आप और सोग[2] मेरा क्या कहना।
देखिए लबपै हँसी आई है॥

थकके बैठूं तो यह कहता है जुनूं[3]—
"दो क़दम कूचए-रुसवाई[4] है"॥

---

[1]तस्वीर; [2]शोक, रज; [3]उन्माद; [4]बदनाम होनेका स्थान, प्रेयसीका कूचा।

भला तौबाका मैख़ानेमें क्या ज़िक्र ?
जो है भी तो कहीं टूटी पड़ी है ॥

हाय ! क्या हसरतकदा[1] था दिल हमारा ऐ 'जलील' !
हो गया दो रोज़में आबाद भी बरबाद भी ॥

आँखोंमे आके कौन, इलाही निकल गया ?
किसकी तलाशमे मेरे अश्के-रवाँ[2] चले ?

जब मैं चलूँ तो साया भी अपना न साथ दे।
जब तुम चलो, ज़मीन चले आस्माँ चले ॥

इज़हारे-हालपै मुझे क़ुदरत नहीं रही।
उनको यह वहम है कि मुहब्बत नहीं रही ॥

आज आँसू तुमने पूछे भी तो क्या ?
यह तो अपना उम्र भरका काम है ॥

कह दो यह कोहकनसे[3] कि "मरना नहीं कमाल,
मर-मरके हिज्रेयारमे[4] जीना कमाल है" ॥
इस महवियतपै[5] आपकी क़ुर्बान मैं 'जलील' !
इतना नहीं ख़याल कि किसका ख़याल है ॥

मार डाला मुस्करा कर नाज़से।
हाँ मेरी जाँ फिर इसी अन्दाज़से ॥

किसने कह दी उनसे मेरी दास्ताँ ?
चौंक-चौंक उठते हैं ख़्वाबे-नाज़से ॥

---

[1]अभिलाषाओंका घर; [2]बहते हुए आँसू; [3]फ़रहादसे; [4]विरहमे; [5]तन्मयतापै ।

दर्दे-दिल पहले तो वोह सुनते न थे।
अब यह कहते हैं—"ज़रा आवाज़से"॥

ज़िन्दगी क्या जो बसर हो चैनसे।
दिलमे थोड़ी-सी तमन्ना चाहिए॥

बनी है जानपै, जानेकी तुमने ख़ूब कही।
मेरा यह हाल, फिर आनेकी तुमने ख़ूब कही॥
मुझे ज़माना बुरा कह रहा है, कहने दो।
ग़रज़ है तुमसे, ज़मानेकी तुमने ख़ूब कही॥

मुहब्बत रंग दे जाती है जब दिल, दिलसे मिलता है।
मगर मुश्किल तो यह है दिल बड़ी मुश्किलसे मिलता है॥

उनसे इज़हारे-मुहब्बत[1] जो कोई करता है।
दूरसे उसको दिखा देते हैं तुरबत[2] मेरी॥

यह कौन ज़ेरे-ज़मीं उसको गुदगुदाता है?
कि मुस्कराती हुई हर कली निकलती है॥

दिलचस्प हो गई तेरे चलनेसे रहगुज़र[3]।
उठ-उठके गर्देराह लिपटती है राहसे॥

सब अपना हाल कहते रहे चारासाज़से[4]।
मैं था कि महवे-लज़्ज़ते-दर्दे-जिगर[5] रहा॥

इन्तिख़ाबअज़ जाने-सुख़न

ज़रा-ज़रा-सी शिकायत पै रूठ जाते हैं।
नया-नया है अभी शौक़ दिल रूबाई[6] का॥

---

[1]प्रेम-प्रदर्शन; [2]क़ब्र; [3]मार्ग; [4]चिकित्सकसे; [5]जिगरके दर्दकी लज़्ज़तमे लीन, तन्मय; [6]दिल लेनेका।

रहे असीर[1] तो शिकवे[2] रहे असीरीके।
रिहा हुआ तो मुझे ग़म हुआ रिहाईका॥

कुछ इस अदासे यारने पूछा मेरा मिज़ाज।
कहना पड़ा कि शुक्र है परिवर्दिगारका॥

ख़ूब इन्साफ़ तेरी अंजुमने-नाज़में[3] है।
शमअ़का रंग जमे ख़ून हो परवानेका॥

वअ़दा करके और भी आफ़तमे डाला आपने।
ज़िन्दगी मुश्किल थी, अब मरना भी मुश्किल हो गया॥

मुन्तज़िर मौसिमे-गुलके हैं तेरे दीवाने।
हाथ रक्खे हुए बैठे हैं गरेबानोंपर॥

या ख़ुदा दर्दे-मुहब्बतमे असर है कि नहीं।
जिसपै मरता हूँ उसे मेरी ख़बर है कि नहीं॥
आपसे आँख मिलाऊँ यह मेरी ताक़त है?
देखता यह हूँ कि अगली-सी नज़र है कि नहीं॥

मस्त करदे मुझे साक़ी! मगर इस शर्तके साथ।
होश इतना रहे बाक़ी कि तुझे याद करूँ॥

उन शोख़ हसीनोंपै जो आती है जवानी।
तलवार बना देती है एक-एक अदाको॥

दैरो-कअ़बेकी ज़ियारत[4] तो फ़क़त हीला[5] है।
जुस्तुजू तेरी लिये फिरती है घर-घर मुझको॥

यहाँ उड़ गई ख़ाक अहले-वफ़ाकी।
वहाँ इम्तहाने-वफ़ा हो रहा है॥

---

[1]क़ैद; [2]शिकायत; [3]नाजकी महफिलमें; [4]दर्शन; [5]बहाना।

सच पूछिए तो नाल-ए-बुलबुल है बेख़ता।
फूलोंमें सारी आग लगाई सबाकी है॥

मुझे तमाम ज़मानेकी आर्ज़ू क्यों हो?
बहुत है मेरे लिए एक आर्ज़ू तेरी॥

चमनके फूल भी तेरे ही ख़ोशाचीं[1] निकले।
किसीपै रंग है तेरा किसीपै बू तेरी॥

ग़रज़के आइना[2] है साक़िया! सब बज़्मे-आ़लममें[3]।
जहाँ शीशा हुआ ख़ाली जुदा पैमाना होता है॥

हुस्न देखा जो बुतोंका तो ख़ुदा याद आया।
राह कअ़बेकी मिली है मुझे बुतख़ानेसे॥

हम-तुम मिले न थे तो जुदाईका था मलाल।
अब यह मलाल है कि तमन्ना निकल गई॥

आप पहलूमे जो बैठें तो सँभल कर बैठें।
दिले-बेताबको आ़दत है मचल जानेकी॥

मैं न समझा था कि मै इतनी गिराँ क़ीमत है।
पारसाई[4] हुई सदक़े[5] तो मिला जाम[6] मुझे॥

नसीमे[7]-सुबहसे कह दो कि गुल शम-ए-लहद[8] करदे।
कोई छुप-छुपके रोता है लिपटकर मेरे मदफ़नसे॥

शमअ़को तुम उठा दो ख़िलवतसे[9]।
यह हमेशाकी जलनेवाली है॥

---

[1]ख़ुशामदी; [2]मित्र, साथी; [3]संसारमे; [4]सदाचारता; [5]निछावर; [6]मदिरापात्र; [7]हवासे; [8]क़ब्रका दीपक बुझादे; [9]एकान्तसे।

मुझे जिस दम ख़याले-नरगिसे मस्ताना आता है।
बड़ी मुश्किलसे क़ाबूमें दिले-दीवाना आता है॥

हवास[1] आये हुए फिर खो दिये लैलाने मजनूंके।
यह कहना ताज़ियाना[2] था "मेरा दीवाना आता है"॥

कोई साग़र ब-कफ़ है कोई महवे-चश्मे-साक़ी है।
हमारे हाथ देखें कौन-सा पैमाना आता है॥

मशीयत[3] जब युँही ठहरी तो मेरी क्या ख़ता नासेह!
हरम[4] को ढूँडता हूँ, सामने बुतख़ाना आता है॥

दर्दसे वाक़िफ़ न थे, ग़मसे शिनासाई न थी।
हाय क्या दिन थे तबीअ़त जब कहीं आई न थी॥

सच कहा जाहिद यह तूने ज़हरे-क़ातिल है शराब।
हम भी कहते थे यही जब तक बहार आई न थी॥

अ़जब अदासे चमनमें बहार आती है।
कली-कलीसे मुझे बू-ए-यार आती है॥

कुछ इख़्तियार किसीका नहीं तबीअ़तपर।
यह जिसपै आती है बेइख़्तियार आती है॥

बयाबाँसे निकलना अब तेरे मजनूंका मुश्किल है।
यह काँटा भी उलझकर रह गया सेहराके[5] दामनसे॥

इन्तिख़ाब अज़ रूहे-सुख़न-(अप्रकाशित)

आराम गया, सब्र गया, दिलसे निकलकर।
कम्बख़्त तमन्ना भी निकल जाये तो अच्छा॥

---

[1]होश; [2]हण्टर; [3]ईश्वरीय इच्छा; [4]मस्जिदको; [5]जंगलके।

इस इत्तिफ़ाक़को फ़ज़्लेख़ुदा समझ वाइज़ !
कि हिजो-ए-मै[1] तेरे लबपर थी मुझको होश न था ॥
दुकाने-मैंपै पहुँचकर खुली हक़ीक़ते-हाल।
हयात[2] बेच रहा था वोह मै-फ़रोश न था ॥

मुनहसिर मौसिमे-गुलपै नहीं सौदा मेरा।
आगया ज़िक्र तेरा और मै दीवाना हुआ ॥

क़ासिद चला यहाँसे जो लेकर पयामे-शौक़।
कुछ कहते-कहते मै कई मंज़िल निकल गया ॥

हक़ीक़तमे पता देता है दरपरदा मुहब्बतका।
'जलील' ! उनका तुम्हारे नामपर ख़ामोश हो जाना ॥

मिलती-जुलती है क़यामतसे शबाहत[3] लेकिन।
इक ज़रा रंग है गहरा शबे-तनहाईका[4] ॥

पाए-साक़ीपै तौबा लोट गई।
हाथमें इस अदासे जाम लिया ॥

मेरे आनेकी तो बन्दिश है मगर।
क्या करेंगे, मै अगर याद आया ॥

ऐ चर्ख़ ! कितने ख़ाकसे पैदा हुए हसीन ?
तू एक आफ़ताबको चमकाके रह गया ॥

लाया गुले-मुराद न झोंका नसीमका।
दामन मै हर बहारमें फैलाके रह गया ॥

---

[1]शराबकी बुराई; [2]जिन्दगी; [3]उपमा; [4]विरह-रात्रिका।

किसीका हुस्न अगर बेनक़ाब हो जाता।
निज़ामे-आ़लमे-हस्ती[1] ख़राब हो जाता॥

कौन बेकस ग़रीक़े-बहर[2] हुआ?
सर पटकती है मौजें साहिलपर[3]॥

आँखोंको छोड़ जाऊँ, इलाही मैं क्या करूँ?
हटती नहीं नज़र रुख़े-जानाना[4] छोड़कर॥

हाय! वोह दर्द-आश्ना[5] था किस क़दर?
जिसने डाली है बिनाए-दर्दे-दिल[6]॥

आप आयें पूछने मेरा मिज़ाज।
मैं तसद्दुक़,[7] मैं फ़िदाए[8]-दर्दे-दिल॥

मुहतसिबसे[9] मैकशीका[10] ढंग सीखा चाहिए।
मस्त है लेकिन ज़रा उसपर गुमाँ[11] होता नहीं॥

निकहते-गुलकी[12] परेशानी न पूछो बाग़में।
इस तरह ताइर[13] कोई बे आशियाँ होता नहीं॥

अगर यह सच है तो मरनेपै नाज़ है मुझको—
"तर आँसुओंसे रही उनकी आस्तीं बरसों"॥

क़ासिद-पयामे-शौक़को देना न बहुत तूल।
कहना फ़क़त यह उनसे कि "आँखें तरस गईं"॥

---

[1]जीवन-व्यवस्था; [2]नदीमे डूबा; [3]किनारेपर; [4]प्रेयसीके मुखसे; [5]दर्दसे परिचित; [6]दर्देदिलकी नीव; [7]क़ुर्बान; [8]न्योछावर; [9]ख़ुदाके यहाँ हिसाब लेनेवाला; [10]मदिरा-पानका; [11]शक; [12]फूलकी सुगन्धकी; [13]परिन्दा।

गुज़रीं जो इस तरफ़से हसीनोंकी टुकड़ियाँ।
कुछ रो गईं तो कुछ मेरे रोनेपै हँस गईं॥

आके दो दिनको फ़स्ले-गुल साक़ी!
मुब्तिला[1] कर गई गुनाहोंमे॥
ख़िज्रको ढूंढ़ने मै निकला था।
मिल गये मैकदेकी राहोंमे॥

तबस्सुम[2] था इस रंगसे उनके लबपर।
मै समझा कोई जाम छलका रहे है॥

बहार एकदमकी है खुलता नहीं कुछ।
कि गुल खिल रहे है कि मुर्झा रहे है॥

सब बाँध चुके कबके सरे-शाख़ नशेमन।
हम है कि गुलिस्ताँकी हवा देख रहे है॥*

न इशारा, न कनाया, न तबस्सुम, न कलाम।
पास बैठे है मगर दूर नज़र आते है॥

उस गिरफ़्तारकी पूछो न तड़प, जिसके लिए।
दर क़फ़सका हो खुला ताक़ते-परवाज़[3] न हो॥

क्या! कहूँ मर-मरके जीनेका मजा।
ऐ ख़िज्र! यह जिन्दगानी और है॥

---

[1]फँसा गई; [2]मुस्कान; [3]उडनेकी शक्ति।

*असर लखनवीने इसी रगमे क्या खूब कहा है, मानों अकर्मण्यों और बहमियोको चाबुक मारा है।

यह सोचते ही रहे और बहार खत्म हुई।
कहाँ चमनमें नशेमन बने, कहाँ न बने॥

हवा गुलिस्ताँकी खाके दिलको क़रार कुछ आ चला था लेकिन--
किसीकी फिर याद ताज़ा करदी गुलोंका मुँह चूमकर सबाने[1] ।।

ग़ज़ब होता तेरी सूरत जो बेपर्दा कहीं होती।
कि तुझपर जो निगह पड़ती निगाहे-वापिसीं होती ।।

सुजूदे-आस्ताने-यारसे[2] सैरी[3] नहीं होती।
किये जाते जिबींसाई[4] अगर बाक़ी जिबीं[5] होती ।।

नज़र पड़ती है तुमपर सबकी मुझको रश्क[6] आता है।
चलो ख़िलवतमें[7] चल बैठे निकलकर बज़्मे-महशरसे ।।

हवाए-ख़ुल्द[8] कहाँ मैकदा[9] कहाँ साक़ी !
यह आहेसर्द किसी मस्तने भरी होगी ।।

बिछड़कर कारवाँसे[10] मैं कभी तनहा नहीं रहता।
रफ़ीके-राह[11] बन जाती है गर्दे-कारवां[12] मेरी ।।

तुम याँसे गये क्या, मेरी दुनिया ही बदल दी।
वोह लुत्फ़ नहीं, वोह सहर-ओ-शाम नहीं है ।।

किसीमें ताब कहाँ थी कि देखता उनको।
उठी नक़ाब तो हैरत नक़ाब होके रही ।।

तुमने आकर मिज़ाज पूछ लिया।
अब तबीअ़त कहाँ सुलझती है ।।

---

[1]हवाने; [2]यारके द्वारपर मस्तक झुकानेसे; [3]मन नही भरता; [4]माथा रगड़ते-रहते; [5]माथा; [6]ईर्ष्या; [7]एकान्तमें; [8]जन्नतकी हवा; [9]मदिरालय; [10]यात्रीदलसे; [11]मार्ग-मित्र; [12]यात्रीदलकी धूल ।

बहारें लुटा दीं, जवानी लुटा दी।
तुम्हारे लिए जिन्दगानी लुटादी॥

अजल हौसला हमने गुंचेका[1] देखा।
तबस्सुमपै[2] सारी जवानी लुटा दी॥

दे रहे हैं मैं वोह अपने हाथसे।
अब यह शे इकारके क़ाबिल नहीं॥

जमाना है कि गुजरा जा रहा है।
यह दरिया है कि बहता जा रहा है॥

जमानेपै हँसे कोई कि रोवे।
जो होना है, वोह होता जा रहा है॥

रवाँ है उम्र और इन्सान ग़ाफिल।
मुसाफिर है कि सोता जा रहा है॥

हाय फिर छेड़ दिया जिक्रे-गुलिस्ताँ तूने।
सूख आँसू न हुए थे मेरे बेयाद अभी॥

बिजलीकी तांक-झाँकसे तंग आ गई है जान।
ऐसा न हो कि फूँक दूँ खुद आशियाँको मैं॥

आपने हमसे अपने पसन्दीदा अशआरमेंसे चन्द शेअर उद्धृत किये हैं। अब हम अपनी डायरीसे चुनकर चन्द अशआर और दे रहे हैं—

किधर चले मेरे अश्के-रवाँ[3] नहीं मअलूम।
भटक रहा है कहाँ कारवाँ, नहीं मअलूम॥ ५

---

[1]कलीका; [2]मुस्कराहट, [3]बहते हुए आँसू।

उठा दिया तो है लंगर हवाके झोंकोंमें।
किधर सफ़ीना[1] है, साहिल[2] कहाँ, नहीं मअ़लूम॥
तरानाकश भी हज़ारों हैं, नालाकश भी हज़ार।
मुझीसे क्यों है चमन बदगुमाँ, नहीं मअ़लूम[3]॥

बहार फूलोंकी नापायदार[3] कितनी है।
अभी तो आई, अभी उड़ गई, हँसीकी तरह॥

नाज़ुक गुलोंपै रंगे-मसर्रत[4] भी बार[5] है।
आई हँसी कि चाक गरेबान हो गये॥

कहाँ फिर लज़्ज़ते यह जुस्तुजू-ए-नामुकम्मलकी[6]।
ग़नीमत है निशाने-जादए-मंज़िल[7] नहीं मिलता॥

क्या पूछता है तू मेरी बरबादियोंका हाल।
थोड़ी-सी ख़ाक लेके हवामें उड़ाके देख॥

लगी थी उनके क़दमोंसे क़यामत।
मैं समझा साथ साया जा रहा है॥

निगाहे-लुत्फ़ नहीं उनकी ख़ैर है वर्ना।
कुछ और हाल हमारा ख़राब हो जाता॥

अब क्या करूँ तलाश किसी कारवाँको मैं।
गुम हो गया हूँ पाके तेरे आस्ताँको मैं॥
तेरे ख़यालमें आये जो उनसे कह देना।
मेरी समझमें तो कुछ नामाबर! नहीं आता॥

---

[1]नौका; [2]दरियाका किनारा; [3]अस्थायी, क्षणिक; [4]ख़ुशी; [5]बोझ; [6]असम्पूर्ण खोजकी; [7]निर्दिष्ट स्थानकी राह का चिह्न।

*यह स्वर्गस्थ होनेसे पूर्व ग़जल कही थी, यही उनका अंतिम कलाम है।

ख़ुदा मअ़लूम क़ासिद क्या सुनाये, दिल धड़कता है।
यह कहता है कि पैग़ामे-ज़बानी लेके आया हूँ।।

मरनेपै भी न बन्द हुई चश्मे-मुन्तज़िर।
अब इन्तज़ारकी कोई मुद्दत नहीं रही।।

तुम देखलो ख़ुद हाथ मेरे सीनेपै रखकर।
हाले-दिले-बेताब बयाँ हो नहीं सकता।।

जुदा होनेपै दोनोंका यही मअ़मूल ठहरा है।
वोह हमको भूल जाते हैं, हम उनको याद करते हैं।।

नहीं मअ़लूम किसकी जुस्तुजू थी मैं न कुछ समझा।
तुम्हारी याद आई रातको और बार-बार आई।।

साथ चलने दो मुझे भी रहरवाने-कूए-दोस्त।
कारवाँमे क्या ग़ुबारे-कारवाँ होता नहीं?

हसरतोंका सिलसिला कब ख़त्म होता है 'जलील'!
खिल गये जब गुल तो पैदा और कलियाँ हो गई।।

शाम होते ही कभी जान-सी आ जाती थी।
अब वही शब है कि मर-मरके जिये जाते हैं।।

यारतक पहुँचा दिया बेताबिये-दिलने मेरे।
इक तड़पमे मंज़िलोंका फ़ासला जाता रहा।।

हर वक़्त है मौतकी दुआएँ।
अल्लाह-रे लुत्फ़ ज़िंदगीका।।

माहो-अंजुमपर नज़र पड़ने लगी।
आपको देखे ज़माना हो गया।।

तुम जो याद आये तो सारी काएनात।
एक भूली-सी कहानी हो गई॥



वअ़दे का नाम लबपर न आये पयाम्बर!
कहना फ़क़त यही कि बहुत दिन गुज़र गये॥

२८ अप्रैल १९५२ ई०

हफ़ीज़ जौनपूरी

[१८६५ – १९१२ ई०]

हाफ़िज़ मुहम्मदअली 'हफ़ीज़' जौनपुरके रहनेवाले थे। आपको स्कूली जीवनमें ही शाइरीका चस्का लग गया था। १८८३ ई० में आप व्यवसायके लिए पटना चले गये, उन दिनों वहाँ मुशाइरोंकी धूम रहती थी। आपकी भी प्रवृत्ति जाग उठी और मुशाइरोंमें शिरकत फ़र्माने लगे। १८८६ ई० में आप बाक़ाएदा 'वसीम' अज़ीमाबादीके शिष्य हो गये और कुछ अर्सेके बाद 'वसीम' साहबकी अनुमतिसे अमीरमीनाईकी शिष्य मण्डलीमें सम्मिलित हो गये। मृत्यु सन् मअ़लूम न हो सका। १९११ ई० तक आप जीवित थे।

कलीम ग़शमें घड़ी-दो-घड़ी रहे होंगे।
यहां तो जाके न फिर होश उम्र भर आया॥
किया है दस्ते-तसल्लीने[1] काम मरहमका।
धरा जो हाथ, मिटा दर्द, ज़ख्म भर आया॥

काम छोटोंसे निकलता है बड़ा।
यह सबक़ भी आँखके तिलसे मिला॥

इसियांके[2] दाग़ मिट गये दिल पाक[3] हो गया।
टपके जो अश्क नामए-अअ़माल[4] धो गया॥

---

[1]सहानुभूतिपूर्ण करकमलोंने; [2]पापोंके; [3]पवित्र; [4]कर्म-लेखा।

दुश्मन न था शबाब[1] तो नादान दोस्त था।
बदनाम कर गया मुझे, बदनाम हो गया॥
मसरूफ़[2] कब हुए हैं वोह फ़िक्रे-इलाजमे।
जब दागे-दिल कलेजेका नासूर हो गया॥

दमे-रुख़सत तो मिल लेते गले आप।
तड़पता छोड़कर मुझको चले आप॥

दिल साफ़ न हो तो क्या सफ़ाई।
इस मेलसे ख़ूब थी लड़ाई॥
हैं किसीके ख़यालसे बाते।
यूँ पसन्द आ गई है तनहाई॥

आदमीसे जो मोहब्बतमे न हो थोड़ा है।
इतनी-सी जानये हिम्मत है यह परवानेकी॥
शमअ सर धुनती है, रोती है खड़ी बालींपर।
जिंदगीसे कहीं मौत अच्छी है परवानेकी॥

जो आबरू रही तरदामनोंकी[3] हश्रमे शेख़!
तो पानी-पानी तेरी पाकदामनी होगी॥

अदा परियोंकी, जोबन हूरका, शोख़ी ग़िज़ालोंकी[4]।
ग़रज़ माँगेकी हर इक चीज़ है इन हुस्नवालोंकी॥

मजा है जोशे-जवानीमें पारसाईका।
वोह नाख़ुदा है जो किश्ती बचाये तूफ़ांसे॥

—ख़ुमख़ानए जावेद भाग २

---

[1]यौवन; [2]दत्तचित्त, व्यस्त; [3]मदिरासे भीगे वस्त्रवालोंकी; [4]हरिनोंकी।

'हफ़ीज' जौनपुरी भी अपने कई उस्ताद-भाइयोंकी तरह 'दाग़' की रीस करनेवाले थे। उन्होंने लखनवी रंगको तर्क करके, मीर, आतिश, जलाल, दाग़-जैसे ख्यातिप्राप्त उस्तादोंके रंगका अनुसरण किया है और किसी हदतक सफल भी हुए हैं, चुनाचे फ़र्माते हैं—

शेअ़र हर रंगमें कहना है तेरा काम 'हफ़ीज़'।
आज हम मान गये, मान गये, मान गये॥
छोड़िए तर्ज़े-कुहन[1] अब ऐ 'हफ़ीज़'!
शाइरीका है मज़ा ईजादमें[2]॥

'मीर'के अन्दाज़पर किसने ग़ज़ल लिक्खी 'हफ़ीज़'!
मुझको ज़ेबा[3] है अगर इस बातका दअ़वा करूँ॥

आपके यहाँ आतिशकी फकीराना शानकी झलक भी मिलती है—

अ़जब नहीं है कि हों छोटी ताअ़तें[4] मक़बूल[5]।
कनीज़े[6] होती है शाहोंको[7] ख़ुर्दसाल[8] पसन्द॥
किसीमें है यह सिफ़त? जाऊँ किसके दरपर मैं।
करीम! तेरे सिवा है कोई सवाल पसन्द॥
'हफ़ीज़'! जाहो-हशमसे[9] किसीके क्या मतलब?
फ़क़ीरे-मस्त हूँ, अपना है मुझको माल पसन्द॥

ऐ क़नाअ़त[10] तेरी मुट्ठीमें है उनकी आबरू।
शर्मसे बहरे-दुआ[11] जो हाथ उठ सकते नहीं॥

---

[1]पुराना ढग; [2]आविष्कारमें; [3]उचित, शोभा देता है; [4]इबादतें, उपासनायें; [5]स्वीकृत, पसन्द; [6]बाँदियाँ; [7]बादशाहोंको; [8]छोटी आयुकी; [9]प्रतिष्ठा, रोअ़ब, जाहो-जलालसे; [10]सब्र; [11]प्रार्थनाके लिए।

जिहादे-नफ़्सकी[1] सर[2] हो मुहिम[3] तो क्या कहना?
जहे नसीब मिले मर्तबा जो ग़ाज़ीका॥
रहके दुनियामें कोई काम न उक़बाका[4] किया।
यूँ सफ़रमें है कि कुछ ज़ादे-सफ़र[5] पास नहीं॥

देखिये तो हर इक जगह है वोह।
ढूँडिये तो कहीं नहीं मिलता॥

इबादत हुई, कुछ न ताअ़त हुई।
फ़क़त अब करमका[6] सहारा रहा॥

अनलहक़ जो मंसूरने कह दिया।
उधर ही का तो यह इशारा रहा॥

दुनियाका कारख़ाना है इक तिलस्मे-इबरत[7]।
दौलत जहाँ गड़ी थी मुर्दे वहाँ गड़े हैं॥

कहीं-कहीं जलालका रंग झलकता है—

कौनकर क्या जता गये एहले।
यह दुआ सबको दी नहीं जाती॥
काश इक दिन वोह भूलकर आता।
याद जिसकी कभी नहीं जाती॥

और 'ज़ौक़' की रवानी, तीखापन, शोख़ी और शरारत तो उनके कलामकी सुगन्धित है—

"मेरा दिल आ गया है इक हसींपर।"
यह सुनना था कि वोह बोले "हसींपर"॥

---

[1]इंद्रिय-दमनका संघर्ष; [2]विजय; [3]लड़ाई; [4]परलोकका; [5]मार्ग-व्यय; [6]ईश्वरीय-दयाका; [7]नसीहत पानेकी जगह भय की माया।

यह फ़िक़रे, यह चाले, यह बातें, यह घातें।
तुझे ओ दग़ाबाज़! हम जानते हैं॥

मिली है हिम्मतेआली[1] वोह बादानोशोंको[2]।
मिले बिहिश्त तो दे दें यह मैफ़रोशोंको[3]॥

या वोह बिगड़े हुए तेवर मेरे पहचान गये।
या कुछ बात ही ऐसी थी कि झट मान गये॥

कभी था वस्लका इक़रार हमसे।
करें तो आप आँखें चार हमसे॥

तेरा रास्ता शामसे तकते-तकते।
मेरी आस टूटी सहर[4] होते-होते॥

लगाओ दिल किसीसे हज़रते नासेह तो खुल जाये।
मुहब्बत इसको कहते हैं, मुहब्बत ऐसी होती है॥

यह आज आते ही जानेकी तुमने खूब कही।
हँसे न थे कि रुलानेकी तुमने खूब कही॥

दिलके आनेकी यह लिख रखिए शिनाख़्त।
पहले चेहरेकी बहाली देखिए॥

अभीसे सोच-समझ लो, नहीं तो हश्रके दिन।
मेरे सवालका तुमसे जवाब हो कि न हो॥

तुम अपना शबाब, अपनी सूरतको देखो।
मेरी आरज़ू, मुद्दआ कुछ न पूछो॥

---

[1]उदारता; [2]मद्यपोंको; [3]मदिरा-विक्रेताओंको; [4]सुबह।

ख़ैर मुझमें वफ़ा नहीं, न सही।
यह तो फ़र्माइए कि है किसमें?

ज़बाने-ग़ैरमें की गुफ़्तगू हमीं चूके।
वोह कह उठे—"यह शरीफ़ोंकी बोल-चाल नहीं॥"

शेख़ बरसातमें जाकर लबे-जू[1] पीते हैं।
क़िब्ला-रू[2] बैठते हैं, करके वज़ू[3] पीते हैं॥

मेरे शबाबकी[4] तौबापै जा न ऐ वाइज़!
नशेकी बात नहीं एअ़तबारके क़ाबिल॥

अभी जीना पड़ा कुछ दिन हमें और।
टला फिर वअ़दए-बातिल[5]-किसीका॥

मीरका रंग—

क़फ़स क्या नशेमनसे कुछ दूर था।
मगर रह गये बालो-पर देखकर॥

बैठे-बैठे रास्ता क़ासिदका दिनभर देखना।
तारे गिनना शामसे या जानिबे-दर देखना॥

जिस रोज़ रुका नामा-ओ-पैग़ाम तुम्हारा।
मर जायगा ले-लेके कोई नाम तुम्हारा॥

हम कबके मर चुके थे जुदाईमें ऐ अजल!
जीना पड़ा कुछ और तेरे इन्तज़ारमें॥

बावजूद इसके उस्तादकी बोली भी बोलते रहे हैं—

---

[1]नहर किनारे; [2]क़ाबेकी तरफ़ मुँह करके; [3]नमाज पढ़नेके लिए मुँह हाथ धोना; [4]जवानीकी; [5]झूठा वअ़दा।

अल्लाहरे उनके फूलों-से गालोंकी ताज़गी।
धूप आईनेको देखके कुम्हलाये जाते हैं॥

शोख़-चश्मोंको[1] वही ख़ाक हुए पर भी है ज़िद।
घास आहू[2] मेरी तुरबतकी[3] चरे जाते हैं॥

फ़स्ले-गुल आते ही पर लग गये वहशतको मेरी।
तख़्तपर ले उड़ीं परियाँ तेरे दीवानेको॥

कहाँ किसके मातममें यह रात गुज़री।
कलाईके गजरे जो मुरझा रहे हैं॥

चन्द तुलनात्मक——

आतिश—— सफ़र है शर्त मुसाफ़िर-नवाज़ बहुतेरे।
हज़ार-हा-शज्र सायादार राहमें है॥

हफ़ीज़—— साया बहुत मिलेगा दरख़्तोंका राहमें।
घरसे निकलके धूपमें कुछ दूर जलके चल॥

जलाल—— पीनेसे काम रखते हैं, रिन्दे-सियाह मस्त।
कम्बल ही तान लेंगे जो अब्रे-करम नहीं॥

हफ़ीज़—— फ़क़ीरेमस्त किसी फ़स्लके नहीं पाबन्द।
पिएँगे तानके कम्बल सहाब हो कि न हो॥

दाग़—— बात करनी तक न आती थी तुम्हें।
यह हमारे सामनेकी बात है॥

---

[1]चंचलनेत्रवालोंको; [2]हिरन; [3]क़ब्रकी।

हफ़ीज़— मेरे सामने आज बातें बनाना।
ज़बांको थी लुकनत यह है बात कलकी॥



दुखीब व महबूब

दाग़— अपनी तसवीरपै नाज़ाँ हो तुम्हारा क्या है?
आँख नरगिसकी, देहन ग़ुंचेका, हैरत मेरी॥

हफ़ीज़— अदा परियोंकी, सूरत हूरकी, आँखें ग़ज़ालोंकी।
ग़रज़ माँगेकी हर इक चीज़ है इन हुस्नवालोंकी॥

—शेरउलहिन्द पहला भाग

१२ अप्रैल १९५३

सरशार लखनवी

[१८४०—१९०३ ई०]



पण्डित रतननाथ दर 'सरशार' काश्मीरी ब्राह्मण थे, और १८४० ई० के लगभग लखनऊमें पैदा हुए थे। अभी आप पूरे चार वर्षके भी न हो पाये थे कि आपके पिता पं० बैजनाथ दरका साया आपके सरसे उठ गया। रिवाजके अनुसार अरबी-फ़ारसीकी तअलीम पाई। बादमें अंग्रेज़ी शिक्षा भी प्राप्त की। प्रथम खेरी स्कूलमें शिक्षक नियत हुए।

उन्हीं दिनों लखनऊसे 'अवधपंच' हास्यरसका पत्र प्रकाशित होने लगा था। 'सरशार' बचपनसे ही शोख़ और चंचल थे। अपनी तबिअ़तके अनुकूल प्रत्रका प्रकाशन देख आपका दिल भी लिखनेको मचल पड़ा। फिर क्या था, एक-से-एक निराले मज़मून क़लमसे निकलने लगे। चन्द माहमें ही आपकी ख्याति इतनी फैली कि मुंशी नवलकिशोरने १८७८ ई० में हास्यरसका 'अवध' पत्र प्रकाशित किया तो उसके संपादकपद पर आपको ही प्रतिष्ठित किया गया।

प्रतिद्वन्द्वी पत्रके प्रकाशित होनेपर 'अवधपंच'का धैर्य छूट गया और उसने 'अवध' पर छींटा-कशी शुरू कर दी। सरशार कब दबनेवाले थे वोह दन्दाँ-शिकन जवाबी हमले किये कि कुछ न पूछिए। पढ़नेवाले लहालोट हो गये।

उन्हीं दिनों आपने अपनी अमर कृति 'फ़सानए-आज़ाद' धारावाही

रूपसे 'अवध' मे प्रारंभ कर दी। 'फसानए-आज़ाद' से पूर्व उर्दूमे परियो, जिनों आदिकी कहानियाँ प्रचलित थी। स्वप्नमे भी ऐसे कथा-साहित्यका किसीको आभास न था। एक दो अक निकलते ही धूम मच गई और समस्त उर्दू-संसार वाह-वाह कर उठा। लोगोंकी उत्सुकता यहाँतक बढ़ी कि यह क्रम कई वर्षतक 'अवध' मे 'सरशार' को चलाना पडा। फिर भी लोगोकी यही इच्छा रही कि 'फसानए-आजाद' का सिलसिला बराबर जारी रहे। बादमें यह वृहदाकार उपन्यास बडे साइजके ५ भागोंमे पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया गया।

'फ़सानए-आजाद' उर्दू-गद्यकी अमूल्य निधि है। 'सरशार'से पहले इस तरहकी रगीन गुलाबी उर्दू लिखना कब किसीको नसीब हुआ ? तत्कालीन रीति-रिवाज, वेष-भूषा, बोल-चाल, रहन-सहन, खान-पान, हुस्नो-इश्क़, वस्लो-हिज्रका ऐसा दिलकश और हू-ब-हू चित्रण किया कि मिसाल नही मिलती। उस समयके विलासी, अकर्मण्य और अक़्लसे खारिज नवाबों-रईसोकी पतनोन्मुख दशाके, मुसाहबोकी खुशामद-परस्तीके, बेगमातके तौर-तरीकोके, आवारा और शोहदोके लुचपनके, बिगड़े दिलोकी तीतर-बटेर-पतगबाज़ीके मुँह बोलते ऐसे रेखाचित्र खीचे है कि दाद देनेको उपयुक्त शब्द नही मिल पा रहे है।

लफ़्जोकी तराश, मुहाविरोकी सफाई, उदाहरणों-उपमाओंकी छटा, थिरकते शब्द, फ़ड़कती हुई भाषा, बयानकी शोखी, अछूते मजामीन, हाजिर जवाबीके कमाल, सब पढ़नेसे ही संबंध रखते है।

गद्यके साथ-साथ आपको शाइरीका भी शौक़ था, शाइरीमे आप अमीर मीनाईके शिष्य थे, किन्तु जो कमाल आपको गद्य लिखनेमे था, वह शाइरीमे हासिल नही हुआ। कभी-कभी मनबहलावको शाइरी भी कर लिया करते थे। आप गद्य-लेखकके नाते ही प्रसिद्ध भी है। यहाँ अमीर मीनाईके शिष्योंके प्रसगमे आपका उल्लेख आवश्यक हुआ, इसीसे बतौर नमूना चन्द अशआर 'खुमखानए-जावेद'से दिये जा रहे हैं।

जीवनके अंतिम दिनोंमें आप लखनऊ छोड़कर हैदराबाद दकन चले गये थे। जहाँपर महाराजा किशनप्रसाद 'शाद' प्रधान मन्त्री हैदराबादने आपकी खूब आव-भगत की और सम्मानपूर्वक अपने यहाँ रखा। लेकिन सुरापानकी अधिकताके कारण आप अस्वस्थ होते चले गये और ५५-५६ वर्षकी आयुमें ही १९०३ ई० में स्वर्गवासी हो गये। आपके निधनपर किसीने यह तारीख कही थी—

'सरशार' फ़सीह-ओ-नुक्तापरवर न रहा।
सरमाय-ए-नाज़ अहले जौहर न रहा॥
एअ़जाज़े-क़लमके जिसके सब क़ाएल थे।
वोह नस्रका उर्दूकी पयम्बर न रहा॥

चन्द शेअ़र—

सियहबख़्त[1]-सियह-रोज़गार हम भी हैं।
जवाबे-ज़ुल्फ़े-परेशाने-यार[2] हम भी हैं॥

क्या क़हर[3] है कि मुफ़्तमें बुलबुल तो क़ैद हो।
गुलचीं जो फूल तोड़े, उसे कुछ सज़ा न हो॥
उस बुलबुले-असीरकी[4] हालतपै रोइए।
जो फ़स्ले-गुलमें[5] बन्दे-क़फ़ससे[6] रिहा न हो॥

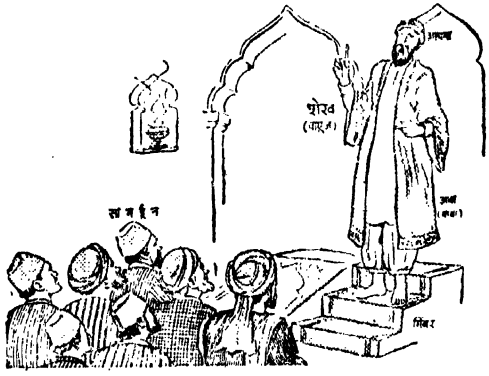
बुतोंके दरपै सबकी जबिहसाई[7] होती जाती है।
इन्हींके क़ब्ज़ेमें अब तो ख़ुदाई होती जाती है॥

---

[1]अभागे (काले कुदिनवाले); [2]प्रेयसीकी ज़ुल्फ़े स्याह है तो क्या हुआ, हम भी तो स्याह बख़्त और स्याह रोज़गार हैं, उससे कम किस बातमें हैं ? [3]ज़ुल्म, अन्धेर; [4]क़ैदी बुलबुलकी; [5]बहारके दिनोंमें; [6]पिंजरेसे; [7]माथा घिसना।

सुना है आज गर दरबाँने तो कल वोह भी सुन लेंगे।
मेरी बातोंकी अब उनतक रिसाई[1] होती जाती है॥
शिकायतपर कुदूरतकी[2] दिखाते हैं वोह आईना।
इशारा है कि अब दिलमें सफ़ाई होती जाती है॥

दिल लोट गया सुनते ही गुफ़्तार[3] किसीकी।
सुनता ही नहीं अब वोह मेरा यार किसीकी॥



ऐ शेख़! तुझे ख़ुदाकी सौगन्द।
रिन्दोंकी गर्दमें बाँधले बन्द॥
ले मुंहसे लगाले जामे-बादा।
इक बून्द ही पी, न पी ज़ियादा॥

१६ अप्रैल १९५३

---

[1]पहुँच; [2]द्वेष-भावकी; बातचीत।



पं० जगमोहन नाथ रैना 'शौक़'

[१८६३ ई० ....]

पण्डित जगमोहननाथ रैना साहब 'शौक़' काश्मीरी ब्राह्मण हैं। आप इन्दौरमें जुलाई १८६३ में उत्पन्न हुए और १८९० ई० से १९२० ई० तक उत्तरी भारतमें डिप्टी कलेक्टर रहे। १९२० के बाद पेन्शन ली और आजकल अपने सुपुत्र चन्द्रमोहन रैना तहसीलदारके साथ शाहजहाँपुरमें रहते हैं।

आपको शाइरीका शौक़ १८८४ ई० में हुआ, और तत्कालीन लखनवी रंगके ख्याति प्राप्त उस्ताद 'अमीर मीनाई' से मशविरए-सुख़न लेते रहे। लेकिन वह कलाम आपका नष्ट हो गया। १९०१ से १९१५ तक आप कार्याधिक्यके कारण इस ओर ध्यान ही न दे सके। १९१६ से इस ओर पुनः प्रवृत्ति हुई। आपका 'पयामे-शौक़' ग़ज़लोंका संकलन हमारे समक्ष है। इसमें १९१६ से १९४० तक कही गई २६९ ग़ज़लें दी गई हैं।

आपका कलाम लखनवी रंगके कंघी, चोटी, अँगिया-मिस्सीसे अछूता है फिर भी अमीर मीनाईके स्कूलकी छाप यत्र-तत्र नज़र आती है। आपकी भाषा सरल और प्रवाहयुक्त है। इश्क़िया कलामके साथ तसव्वुफ़की चाश्नी भी खूब है। डिप्टी कलेक्टरीकी पेन्शन लेते हुए और तहसीलदारके पिता होते हुए भी १९३० के असहयोग आन्दोलनके समय आपका देश-भक्त हृदय यह कलाम कहनेसे बाज़ न आया—

जाँगुज़ीं[1] कबसे है दिलमें जज़्बए-हुब्बेवतन[2]।
दोस्तो रोज़े-अज़लसे[3] मैं वफ़ादारोंमे हूँ॥
बादए-हुब्बेवतन[4] मुझको पिलादे साक़िया।
बिन पिये मुद्दत हुई मैं तेरे मैख़्वारोंमें हूँ॥

यद्यपि आपका १९१६ से १९४० तक कहा हुआ यह कलाम हमे शाइरीके नये दौरमे देना चाहिये था, किन्तु शौक़ साहब अमीर मीनाईके शिष्य है और कलाम भी उसी युगका है, अतः इसी खण्डमे देना उपयुक्त समझा गया।

पड़े है मस्त मतवाले न कहते है न सुनते है।
नई बस्ती नया आलम है यह शहरे-ख़मोशाँका[5]॥

ख़ुदाईका है दअ्वा इन बुतोंको देखिये क्या हो?
इधर भी एक सिज्दा आओ बहरे-इम्तिहाँ[6] कर लें॥

कुजा बुतख़ाना[7]-ओ-कअ्बा, कुजा ख़ुम ख़ाना[8]-ओ-साक़ी?
कहाँसे 'शौक़' शौक़े-दीद लाया है कहाँ मुझको?
रफ़्ता-रफ़्ता ता-दरेजानाँ[9] बैठते-उठते यूँ पहुँचे।
ठोकरें खाते गिरते-पड़ते सुबह-से-ता-शाम चले॥

ख़ूँ-शुदा दिलको जलाते है, जलानेवाले।
आग पानीमें लगाते है, लगानेवाले॥

किस क़दर दिलचस्प थी रूदादे[10]-शौक़।
सारे आलममें कहावत हो गई॥

---

[1]प्राणोंको रुचिकर, हृदयमे छिपी हुई; [2]देश-प्रेमकी भावना; [3]सृष्टिके प्रारम्भसे; [4]देश-प्रेमकी मदिरा; [5]क़ब्रिस्तानका; [6]परीक्षा-स्वरूप; [7]कहाँ मन्दिर-कअ्बा; [8]मदिरालय; [9]प्रेयसीके कूचेका; [10]कहानी।

दैरको[1] आओ चलें इक ठिकाना है वही।
मिल ही जायेगा वहीं कोई तो रहबर[2] अपना॥

शोअ़लए-शमअ़ने[3] उठ-उठके जलाया आख़िर।
'शौक़' यह हश्र हुआ बज़्ममें परवानेका॥

बुतकदा छोड़ते तो छोड़ दिया।
अब ठिकाना नज़र नहीं आता॥

हम ढूंढने गये तो सनमख़ाना मिल गया।
तुझको तलाशसे भी न वाइज़! ख़ुदा मिला॥

कैसा बुतख़ाना, कहाँका दैर, कैसी ख़ानक़ाह[4]।
जिस जगह सिज्दा किया हमने वोह कअ़बा हो गया॥

ज़रा जी भरके उसको देख लेता मैं दमे-आख़िर।
नज़र आता क़फ़ससे काश मुझको आशियाँ अपना॥

बनाया सिज्दागाहे-हुस्न हमने दैरो-कअ़बेको।
वही जलवा है दोनों जा, इधर आ देखनेवाले॥

किसीका जलवागहेनाज़[5] जब नज़र आया।
सरे-नियाज़[6] वहींपर झुका दिया हमने॥

रह-रहके पूछते हैं वही बाग़बाँसे हम।
ले जायें चार तिनके कहाँ आशियाँसे हम॥

जाते कअ़बेमें बुतपरस्तीको।
यह भी इक फ़र्ज़ था, अदा करते॥

---

[1]मन्दिरको; [2]पथप्रदर्शक; [3]दीपककी लौ ने; [4]दरगाह; [5]सौन्दर्य्य स्थल; [6]नम्रमस्तक।

बुतकदा छोड़नेवाले तो न थे।
ख़ैर मिलती है तो जन्नत ही सही ।।

न पूछो हम-सफ़ीराने-चमन[1]! मैं कौन हूँ क्या हूँ।
ग़रज़ जो कुछ हूँ इक साज़े-शिकस्ताकी[2] सदा[3] मैं हूँ।।

सब पूछते हैं, शहरे-ख़मोशाँमें[4] कौन हो?
हैराँ हैं क्या बतायें मुसाफ़िर कहाँके हैं।।

मुल्के-अ़दमको[5] क़ाफ़िले जाते हैं रात दिन।
ज़ाहिर मगर किसीके निशाने-क़दम नहीं।।

रास्ता तो उधरका पूछ लेते।
ऐ मुल्के-अ़दमके जानेवालो।।

इसीको इन्तहाए-इश्क़[6] क्या ऐ 'शौक़'! कहते हैं।
कि मुझको ख़ुद नहीं मअ़लूम क्या है आर्ज़ू[7] मेरी।।

अपनी ही ख़बर नहीं है हमको।
बेकार किसीकी जुस्तुजू[8] है।।

इलाजे-दर्दे-जिगर चारासाज़[9] रहने दे।
मज़ा इसीमें है सोज़ो-गुदाज़[10] रहने दे।।

पता किससे पूछें कि मंज़िल कहाँ है।
कहाँतक मुसाफ़िर भटकता रहेगा।।

कुछ बताते ही नहीं शहरे-ख़मोशाँवाले।
क्यों पसन्द उनको यह उजड़ा अ़दम-आबाद आया।।

अब उसकी जुस्तुजू क्या है न जाने वोह कहाँ पहुँचा?
निशाने-कारवाँ[11] मंज़िल-ब-मंज़िल देखनेवाले।।

---

[1]चमनके साथियो; [2]टूटे हुए वाद्यकी; [3]आवाज़; [4]क़ब्रिस्तानमें; [5]परलोकको; [6]प्रेमकी अन्तिम सीमा; [7]इच्छा; [8]खोज, तलाश; [9]हकीम; [10]दिलमे व्यथा; [11]यात्री दलका पता।

आँखों-आँखोंमें वह क्या कुछ कह गये।
लबपै आते ही गिला जाता रहा॥

इक 'नहीं' ने बात सारी काट दी।
लुत्फ़े-अर्ज़े-मुद्दआ[1] जाता रहा॥

जामे-दिल[2] बादए-उल्फ़तसे[3] भरा रहता है।
वाह क्या ज़र्फ़[4] है टूटे हुए पैमानेका॥

नातवानी[5] तुझे अब कोई कहाँतक रोये।
जोअ़फ़से[6] नालए-बेताब[7] भी लरज़ाँ[8] निकला॥

अज़लसे पहले गर हुस्ने-अज़ल मिलता तो मैं कहता।
ज़रा-सी वहशते-दिल और दीवानेमें रख देना॥

दिलसे पूछो क्या हुआ था, और क्यों ख़ामोश था।
आँख महवेदीद[9] थी इतना मुझे भी होश था॥

दिखाके जलवए-बातिलकी इक झलक ऐ हुस्न!
ख़ुदाके बन्देको नाहक़ गुनाहगार किया॥

न जाने क्या समझकर मैं दरे-मस्जिदतक आया था।
यह किस धोकेमें मैंने भी जिबीं आकर यहाँ रख दी॥

हर शैमें तेरा नक़्शा हर गुलमें तेरा जलवा।
इन आँखोंके खुलते ही क्या-क्या नज़र आता है॥

रहा जब मुद्दतों दैरो-हरममें।
समझमें आई बहकाया गया हूँ॥

---

[1]अभिलाषा कहनेका आनन्द; [2]हृदय-पात्र; [3]प्रेम मदिरासे; [4]हौसला; [5]निर्बलता; [6]कमजोरीसे; [7]तड़पती आहें; [8]काँपती; [9]देखनेमें लीन।

आये थे रोते हुए हम आ़लमे-ईजादमें[1]।
वाक़िफ़े-राज़े-निहाँ[2] थे सिर्फ़ गोयाई[3] न थी॥
नसीमे-सुबहको[4] शिकवा[5] है मेरे नालोंसे।
ख़मोश ग़ुंचोंको क्यों गुदगुदा दिया मैंने॥
दिल अगर हो मुतमइन[6] तो फिर कोई मुश्किल नहीं।
दूर हो जाती है उलझन ख़ुद सुलझ जानेके बअ़द॥
इज़्तिराबे-दिलकी[7] हालत, हमनशीं[8] मुझसे न पूछ।
इक नया अफ़साना छिड़ जाता है अफ़सानेके बअ़द॥

प्रूफ़ देखते-देखते विदित हुआ कि आपका स्वर्गवास हो चुका है। खेद है कि पत्र लिखनेपर भी आपकी मृत्यु-तारीख़ हमें आपके सुपुत्रसे मालूम न हो सकी।



दिनको तारे दिखा दिये तूने।
ऐ शबे-इन्तिज़ार[9] क्या कहना॥

१८ जुलाई १९५२

---

[1]संसारमें; [2]वास्तविकतासे परिचित; [3]बोलनेकी शक्ति; [4]प्रातःकालीन बयार; [5]शिकायत; [6]आश्वस्त; [7]हृदयकी तड़प, बेचैनीकी; [8]साथी, पड़ोसी; [9]प्रतीक्षाकी रुचि।



आर्ज़ू लखनवी

[१८७२ — १९५१ ई०]

सैयद अनवर हुसेन 'आर्ज़ू' के पूर्वज औरंगज़ेबके शासनकालमें हिरातसे भारत आये और अजमेरमें रहने लगे। १८५७के विप्लवसे पूर्व वे लखनऊ चले गये और वहीं स्थायी रूपसे बस गये।

१८ फ़रवरी १८७२ ई० में 'आर्ज़ू' लखनऊमें उत्पन्न हुए। ५ वर्षकी आयुमें मदर्से भेजे गये। अरबी-फ़ारसीकी आपने शिक्षा प्राप्त की।

आपके पिता मीर ज़ाकिरहुसेन 'यास' और बड़े भाई यूसुफ़हुसेन 'क़यास' अच्छे शाइरोंमें शुमार किये जाते थे। घरेलू वातावरणका प्रभाव आपपर भी पड़ा, और आप भी चुपके-चुपके शेअ़र कहने लगे। एक रोज़ अपने एक शिष्यकी ग़ज़ल आपके पिता 'यास' साहबने आपके बड़े भाई 'क़यास'को संशोधनके लिए दी। संशोधनके समय आप भी बड़े भाईके समीप बैठे हुए थे। आप नहीं चाहते थे कि आपके इस शौक़का पता किसीको लगे। मगर आपके मुँहसे यकायक निकल गया "भाईसाहब यह शेअ़र इस तरह कहा जाय तो कैसा रहे?"

भाईसाहबने आश्चर्यके साथ आपकी ओर देखा और संशोधन इतना पसन्द आया कि शेअ़र उसी तरह बना दिया। शेष अशआ़र भी आपकी सम्मतिपूर्वक संशोधित किये गये। यह संशोधित ग़ज़ल जब आपके पिता 'यास' साहबकी नज़रोंसे गुज़री और उन्हें वास्तविक बात बतलाई गई

तो वे उसी रोज आपको 'जलाल'[1]के पास ले गये, और उन्हींके चरणोंमें छोड़ आये। आर्जू तब १३ वर्षके थे।

उन दिनो शेअ्रो-सुख़नके चर्चे आम थे। मुहल्ले-मुहल्ले और गली-कूचोंमें मासिक मुशाइरे होते रहते थे। नवीन अभ्यासियोंके लिए तो यह शिक्षण-शिविरका काम देते थे। सबसे पहले एक मुशाइरेमें जो गजल 'आर्जू' ने पढी उसके दो शेअ्र ये हैं—

हमारा ज़िक्र जो ज़ालिमकी अंजुमनमें[2] नहीं।
जभी तो दर्दका पहलू किसी सुख़नमें[3] नहीं॥
शहीदे-नाज़की[4] महशरमें[5] दे गवाही कौन?
कोई लहूका भी धब्बा मेरे क़फ़नमें नहीं॥

उन दिनों उत्साह बढानेवाले भी सर्वत्र मिलते थे। मुशाइरोंमें तो किशोर 'आर्जू'को उचित दाद मिली ही। बाहर भी लोग उन्हे प्रोत्साहन देने लगे। एक रोज़ एक साहबने यह मिसरअ देकर—

"उड़ गई सोनेकी चिड़िया रह गये पर हाथमें।"

फ़र्माया कि "अगर दस बरसमें भी तुम इसपर मिसरअ लगा दोगे तो मै तुमको शाइर मान लूगा।" 'आर्जू'ने अ़र्ज की—"दस बरसतक जिन्दा रहनेकी उम्मीद यहाँ किसे? यही नही मअ़लूम कि एक साँसके बअ़द दूसरी आयेगी भी या नही। मै अभी कोशिश करता हूँ, मुम्किन है कि मिसरअ़ लग जाये।"

---

[1]'जलाल' उन दिनों ख्यातिप्राप्त प्रामाणिक उस्तादोंमें थे और उनका सर्वत्र तूती बोल रहा था। 'जलाल'का परिचय शेर-ओ-सुख़न भाग १, पृ० ५९३-६०५ मे दिया जा चुका है।

[2]महफ़िलमे; [3]वार्त्तालापमे; [4]प्रेयसीपर बलिदान हुए प्रेमीकी; [5]ईश्वरके न्यायालयमें।

थोडी देरमे ही दूसरा मिसरअ ऐसा चस्पाँ [illegible] किपहला-बे-मअ़नी-सा मिसरअ भी चमक उठा—

दामन उस युसूफ़का[1] आया पुरज़े होकर हाथमें।
उड़ गई सोनेकी चिड़िया रह गये पर हाथमें॥

'आर्ज़ू'की किशोरावस्थामे ऐसी प्रतिभा देखकर विद्वानोने भविष्य-वाणी की कि 'आर्ज़ू' अपने समयके शाइरोंमे श्रेष्ठ होगा। अभी ब-मुश्किल १८ वर्षके हुए थे कि उस्तादने अपने सभी शिष्योंकी ग़ज़लोंके सशोधनका भार आपपर डाल दिया, और उस्तादकी मृत्यु (१९०९ ई०) के बअ़द आप ही को लोगोंने उनका जाँनशीन (उत्तराधिकारी) मान लिया।

'आर्ज़ू'के तीन सकलन—१ 'फ़ुग़ाने आर्ज़ू' २ 'जहाने आर्ज़ू' ३ 'सुरीली-बाँसुरी'—प्रकाशित हो चुके है। 'फुग़ाने आर्ज़ू'मे उनकी प्रारम्भिक १५ वर्षकी अवस्थासे लेकर ३५ वर्षकी अवस्थातककी २६४ ग़ज़लोंका सकलन है। १९४५ मे प्रकाशित इसकी द्वितीयावृत्ति हमारे सामने है। 'जहाने आर्ज़ू'मे ३५ वर्षकी अवस्थाके बाद कही हुई १८४ ग़ज़ले है। १९४६ में प्रकाशित इसकी द्वितीयावृत्ति हमारे सामने है। 'सुरीली बाँसुरी' खेद है कि हमे प्राप्त न हो सकी। उसमे आपकी ऐसी सरल ग़ज़लों और गीतोका सकलन है, जिनके निर्माणमे एक भी अरबी-फ़ारसी शब्दका प्रयोग नही हुआ है। आपने नाटक कम्पनियोंके लिए ड्रामे भी काफ़ी लिखे है। भारत-विभाजनके बाद आप पाकिस्तान चले गये थे। वहाँ १९५१ ई० को आपने समाधि पाई।

---

[1]सौन्दर्यसे ओत-प्रोत एक पैगम्बर थे।

कब दस्तेनिगर[1] ग़ैरका है जौहरे-ज़ाती[2]।
ममनून[3] नहीं पंजए-गुल[4] बर्गे-हिनाका[5]॥

दर्यूज़ागरे-हिर्स[6] न बन राहेतलबमें[7]।
दिल इश्क़से ख़ाली है तो कासा[8] है गदाका[9]॥

सदमा न सही मेरा, नादिम[10] तो हुए होंगे।
आँखोंमें न हों आँसू, माथेपै अ़रक़[11] होगा॥

आके क़ासिदने[12] कहा जो, वही अक्सर निकला।
नामाबर[13] समझे थे हम, वह तो पयम्बर[14] निकला॥
वाए-ग़ुरबत[15] कि हुए जिसके लिए ख़ाना-ख़राब।
सुनके आवाज़ भी घरसे न वह बाहर निकला॥

नादाँकी दोस्तीमें जीका ज़रर[16] न जाना।
इक काम कर तो बैठे, और हाय कर न जाना॥
नादानियाँ हज़ारों, दानाई इक यही है।
दुनियाको कुछ न जाना और उम्रभर न जाना॥
नादानियोंसे अपनी आफ़तमें फँस गया हूँ।
बेदादगरको[17] मैंने बेदादगर न जाना॥

दिलका जिस शख़्सके पता पाया।
उसको आफ़तमें मुब्तिला[18] पाया॥
नफ़अ़ अपना हो कुछ तो दो नुक़साँ।
मुझको दुनियासे खोके क्या पाया?

---

[1]आश्रित, दूसरोंका मुहताज; [2]निज-गुण; [3]आभारी; [4]फूलोंकी पंखड़ी; [5]मेंहदीके पत्तोका; [6]तृष्णाके कारण दर-दरका भिखारी; [7]अभिलाषाके मार्गमे; [8]पात्र; [9]भिक्षुकका; [10]शर्मिन्दा; [11]पसीना; [12]पत्रवाहकने; [13]पत्र ले जानेवाला; [14]ईश्वरीय-सन्देश लानेवाला; [15]हायरी मुसाफ़िरी; [16]नुक़सान; [17]अत्याचारीको; [18]फँसा हुआ।

बेकसीमें[1] भी गुज़र ही जायगी।
दिलको मैं और दिल मुझे समझा गया॥

ऐ निगहे-दिलफ़रेब[2]! क्या यह सितम कर दिया?
हौसले जब बढ़ चले रक्तको कम कर दिया॥

आज़ारे-जुदाईसे[3] वाक़िफ़ न था दिल पहले।
जब तल्ख़ हुआ जीना उल्फ़तका मज़ा जाना॥

ऐ 'आर्ज़ू'! इस बाग़मे फूलोंके क़फ़ससे[4]।
बेहतर हमे अपना वोह नशेमन[5] कि है ख़सका॥

ख़मोशी मेरी मअ़नीख़ेज़ थी ऐ 'आर्ज़ू'! कितनी?
कि जिसने जैसा चाहा, वैसा अफ़साना बना डाला॥

होके महवेदीद[6] खोये 'आर्ज़ूने होश भी।
कोई पूछे तो यह ओ दीवाने! तूने क्या किया॥

बर्क़ने[7] की हर तरफ़ मेरे नशेमनकी तलाश।
चार तिनकोंकी बिनापर बाग़ सारा जल गया॥

कामयाबी ख़ुदग़रज़की 'आर्ज़ू' बेफ़ैज़[8] है।
वोह हवा क्या जो सुराग़े-कुश्तए-मंज़िल[9] हुआ॥

यह मेरी तौबा नतीजा है बुख़्ल साक़ीका[10]।
ज़रा-सी पीके कोई मुंह ख़राब क्या करता?
यही थी ज़ीस्तकी[11] लज़्ज़त यही थी इश्क़की शान।
शिकायते-तपिशो-इज़्तिराब[12] क्या करता॥

---

[1]असहायावस्थामे; [2]हृदयको लुभालेनेवाली निगाह; [3]विरह-रोगसे; [4]पिंजरेसे; [5]घोंसला; [6]देखनेमें लीन; [7]बिजलीने; [8]व्यर्थ, बेफ़ायदा; [9]वह पवन किस कामकी, जो मार्गके दीपकको बुझाकर रख दे; [10]साक़ीकी कंजूसीका परिणाम; [11]जीवनकी; [12]विरहज्वर, दाह और बेचैनीकी शिकायत।

मुझे मिटा तो दिया क़ब्ल अह्दे पीरीके[1]।
सुलूक और दो रोज़ा शबाब[2] क्या करता॥

यह बहरे-इश्क़का[3] तूफ़ान और ज़रा-सा दिल।
जहाज़ उलट गये लाखों हुबाब[4] क्या करता॥

पड़े न होते जो ग़फ़लतके 'आर्ज़ू'! पर्दे।
ख़ुदा ही जाने यह जोशेशबाब क्या करता!

एक शौक़े-दिल इधर है, लाख अन्देशे उधर।
सोचकर कुछ ख़तमें लिखना फिर मिटाना ख़ुद-ब-ख़ुद॥

हौसले फिर बढ़ गये टूटा हुआ दिल जुड़ गया।
उफ़ यह ज़ालिम मुस्करा देना ख़फ़ा होनेके बअ्द॥

अपना जो बनाना है तो ओ दुश्मने-ईमाँ!
इतना भी न कर ज़ुल्म कि आजाये ख़ुदा यअ्द॥

ऐसी हसरत ही से बाज़ आना है ख़ूब।
जो मुझे मरग़ूब[5] उनको नापसन्द॥

ऐसी अँधेरी रातके सद्क़े हज़ार चाँद।
शर्मानेवाला जिसमें सरक आये डरके पास॥

उफ़रे बेदीद पढ़के सारा ख़त।
कह दिया यह नहीं हमारा ख़त॥

हिम्मते-कोताहसे[6] दिल तंग ज़िन्दाँ[7] बन गया।
वर्ना था घरसे सिवा इस घरका हर गोशा[8] वसीअ़[9]॥

---

[1]वृद्ध होनेसे पूर्व; [2]यौवन; [3]प्रेम-नदीका; [4]बुलबुला; [5]प्रिय; [6]हिम्मतोंकी कमीके कारण; [7]तंग कारागृह, सकीर्ण हृदय; [8]कोना; [9]विशाल।

छोड़ दे दो गज़ ज़मीं, है दफ़्न जिसमें इक ग़रीब।
है तेरी मश्क़े-ख़िरामेनाज़को[1] दुनिया वसीअ[2]॥
है यह सब क़िस्मतकी कोताही[3] वगर्ना 'आर्ज़ू'।
बढ़के दामाने-तलबसे[4] हाथ है उसका वसीअ॥

जादह[5]-ओ-मंज़िल[6] जहाँ दोनों है एक।
उस जगहसे है मेरा सहरा[7] शुरुअ॥
वक़्त थोड़ा और यह भी तै नहीं।
किस जगहसे कीजिए क़िस्सा शुरुअ॥
देखा ललचाई निगाहोंका मआल[8]।
'आर्ज़ू' लो हो गया पर्दा शुरुअ॥

जो मेरी सरगुज़िश्त[9] सुनते हैं।
सरको दो-दो पहर वह धुनते हैं॥
क़ैदमें माजराए-तनहाई[10]।
आप कहते हैं, आप सुनते हैं॥
आशियाँ कबतक और ख़ुद कबतक।
वोह सिड़ी है जो तिनके चुनते हैं॥

झूठे वअ़देका भी यक़ीन आ जाये।
कुछ वोह इन तेवरोंसे कहते हैं॥

मुझ ग़मज़दाके पाससे सब रोके उठे हैं।
हाँ आप इक ऐसे हैं कि ख़ुश होके उठे हैं॥

---

[1]अठखेलियोंके अभ्यासके लिए; [2]विस्तीर्ण; [3]कमी, हीनता; [4]अभिलाषीके आँचलसे; [5]-[6]मार्ग और पड़ाव; [7]जंगल; [8]परिणाम; [9]आत्म-कहानी; [10]एकाकी जीवनकी बात।

मुँह उठके तो सब धोते हैं ऐ दीदए-ख़ूंबार[1] !
बिस्तरसे हम उठे हैं तो मुँह धोके उठे हैं ॥

आरामके थे साथी क्या-क्या जब वक़्त पड़ा तो कोई नहीं ।
सब दोस्त हैं अपने मतलबके दुनियामें किसीका कोई नहीं ॥

न तौबा[2] की है बज़ाहिर न छुपके पी है शराब ।
बरी हूँ दाग़ेरियासे[3] वह पाकदामाँ[4] हूँ ॥

तुम हो कि एक तर्ज़े-सितमपर नहीं क़रार ।
हम हैं कि पाबन्द हरेक इम्तेहांके हैं ॥
हों सर्फ़[5] तीलियोंमे क़फ़सके[6] तो ख़ौफ़ है ।
तिनके जो मेरे उजड़े हुए आशियांके हैं ॥

ख़ुदावन्दा ! एवज़ मिन्नतपज़ीरीके[7] वोह जौहर दे ।
ख़ुद अपने दर्दका इस दुःखभरी दुनियामे दरमाँ[8] हूँ ॥

इस आ़लमे-इम्काँमें[9] क्या है जो है नामुम्किन ।
ढूंड़ो तो मिले उनक़ा,[10] चाहो तो ख़ुदा मुम्किन ॥

पर्दा जो दुईका उठ जाये फिर दो न रहे अफ़साने यह[11] ।
धोका है यह नामे-दैरोहरम, बुत एक ही है बुतख़ाने दो ॥

लाता नहीं पैग़ाम कोई इसपै यह है हाल ।
क़ासिदको दिया करता हूँ इनआ़म हमेशा ॥

---

[1]रक्त रोनेवाले नेत्र; [2]प्रतिज्ञा; [3]दिखावटी धार्मिकतासे; [4]पवित्र; [5]-[6]पिंजरा बनानेके तीलियों केलिएकाम आये; [7]प्रार्थना एव स्तुति की स्वीकृति के बजाय; [8]इलाज; [9]संसारमें; [10]एक पक्षी जिसका अस्तित्व नही; [11]दीवानमें शब्द यहाँ 'दो' है । मालूम होता है किताबत ग़लतीसे दो जगह 'दो' हो गया है । हमने दूसरे 'दो'को 'यह' बना देनेकी बेअदबी की है ।

सितमसे शमअ सरापा बयानेराज[1] हुई।
कटी जबान तो कुछ और भी दराज[2] हुई॥

फैल गई बालोंमें सफ़ेदी चौंक ज़रा करवट तो बदल।
शामसे ग़ाफ़िल सोनेवाले देख तो कितनी रात रही॥

ख़ुद चले आओ या बुला भेजो।
रात अकेले बसर नहीं होती॥
हम ख़ुदाईमे हो गये रुसवा।
मगर उनको खबर नहीं होती॥
किसी नादाँसे जो कही जाये।
बात वह मुख़्तसर नहीं होती॥
जबसे अश्कोंने राज़[3] खोल दिया।
चार अपनी नज़र नहीं होती॥
आग दिलमे लगी न हो जबतक।
आँख अश्कोंसे तर नहीं होती॥

क़फ़ससे ठोकरे खाती नज़र जिस नख़्लतक[4] पहुँची।
उसीपर लेके इक तिनका बिनाए-आशियाँ रख दी॥
सुकूनेदिल[5] नहीं जिस वक़्तसे इस बज़्ममे[6] आये।
ज़रा-सी चीज़ घबराहटमे क्या जाने कहाँ रख दी॥
बुरा हो इस मुहब्बतका हुए बरबाद घर लाखों।
वहींसे आग लग उट्ठी यह चिन्गारी जहाँ रख दी॥
किया फिर तुमने रोता देखकर दीदारका[7] वअ़दा।
फिर एक बहते हुए पानीमें बुनियादे-मकाँ[8] रख दी॥

---

[1]प्रेम-भेद बतानेको उद्यत; [2]बड़ी लम्बी; [3]प्रेम-भेद; [4]वृक्षतक; [5]हृदयको चैन; [6]महफिलमे; [7]सूरत दिखानेका; [8]मकानकी नींव।

दरेदिल[1] 'आर्जू' दरवाज़ए-कअ़बेसे बेहतर था।
यह ओ ग़फ़लतके मारे ! तूने पेशानी कहाँ रख दी ?

शरअ़में अपनी वाइज़ो ! हुक्म है मैकशीके दो।
"दे जो कोई हलाल है, ख़ुद जो पिये हराम है" ॥

अब मुझको फ़ाएदा हो दवा-ओ-दुआ़से क्या ?
वोह मुंहपै कह गये—"यह मरज़ ला-इलाज है" ॥

इज़्ज़त कुछ और शै है, नुमाइश कुछ और चीज़।
यूं तो यहाँ ख़रोसके[2] सरपर भी ताज है॥

मेरे ग़मने होश उनके भी खो दिये।
वोह समझाते-समझाते ख़ुद रो दिये॥

इक जाम-ए-बोसीदा हस्ती[3] और रूह[4] अज़लसे[5] सौदाई[6]।
यह तंग लिबास न यूं चढ़ता ख़ुद फाड़के हमने पहना है॥

हिचकीमें जो उखड़ी साँस अपनी घबराके पुकारी याद उसकी—
"फिर जोड़ ले यह टूटा रिश्ता इक झटका और भी सहना है" ॥

नतीजा एक ही निकला कि थी क़िस्मतमे नाकामी।
कभी कुछ कहके पछताये कभी चुप रहके पछताये॥

रहने दो तसल्ली तुम अपनी, दुख झेल चुके दिल टूट गया।
अब हाथ मलेसे होता क्या, जब हायसे नावक[7] छूट गया॥

दो तुन्द[8] हवाओंपर बुनियाद है तूफ़ाँकी।
या तुम न हसीं होते या मै न जवाँ होता॥

लुत्फ़े-बहार कुछ नहीं, गो है वही बहार।
दिल क्या उजड़ गया कि ज़माना उजड़ गया॥

---

[1]हृदय-द्वार; [2]मुर्ग़के; [3]शरीररूपी गली-सडी पोशाक; [4]आत्मा; [5]प्रारम्भमे; [6]दीवानी; [7]तीर; [8]तेज़।

दफ़अतन[1] तर्के-मुहब्बतमें[2] भी रुसवाई[3] है।
उलझे दामनको छुड़ाते नहीं झटका देकर॥

दिलकी कशिशको[4] अब भी, गुलशनसे है तअल्लुक़[5]।
कुछ पत्तियाँ क़फ़स तक उड़-उड़के आ रही हैं॥

इम्तेहाँ इश्क़में मंजूर है, ग़मख़्वारोंका।
इक ज़रा होशमें आजाऊँ तो दीवाना बनूँ॥

रोनेपै मेरे हँसते क्या हो? बेसमझे न दीवाना जानो?
दिल किससे लगाया है तुमने? तुम दर्द किसीका क्या जानो?

बातोंसे तसल्ली थी दिलको, वअ़देपै भरोसा हो न सका।
फिर हो गई वैसी ही हालत, जब पाससे वोह समझाके उठे॥

शबनमके[6] आँसुओंपर क्या हँस रहे हैं ग़ुंचे[7]!
उनसे तो कोई पूछे कबतक हँसा करेंगे?

क्या सोज़े-मुहब्बतने[8] जफ़ा[9] जब्तमें[10] की है।
दर[11] बन्द हैं और चारों तरफ़ आग लगी है॥

ताज़े वोह फिरसे हो गये, ग़म जो फ़लकने थे दिये।
जिसने कि हँसके बात की, हम भी पलटके रो दिये॥

कहके यह और कुछ कहा न गया—
कि "हमे आपसे शिकायत है"॥

खींच लाया था यह किस आ़लमसे किस आ़लममें होश?
अपना हाल अपने लिए जैसे कोई अफ़साना था॥

---

[1]यकायक, एकदम; [2]प्रेम-त्यागमें; [3]बदनामी; [4]आकर्षणको; [5]सम्बन्ध; [6]ओसके; [7]कलियाँ; [8]प्रेम-अग्निने; [9]आफ़त, बदी; [10]सन्तोष, सब्रमे; [11]द्वार।

वस्लका[1] ख़्वाहिशमन्द बने क्यों, हुस्नका सच्चा परवाना।
दिलसे लगी है लाग तो इकदिन, ख़ुद शोअ़ला[2] बन जायेगा॥

इश्क़पर भी छा गई रअ़नाइयाँ[3]।
उफ़ तेरी तोड़ी हुई अँगड़ाइयाँ॥

वोह तो कुछ मुसकराके हो गये चुप।
एक उलझनमें पड़ गया हूँ मैं॥

उलफ़त भी अ़जब शै है, जो दर्द वही दरमाँ[4]।
पानीपै नहीं गिरता, जलता हुआ परवाना[5]॥

कुछ सहारा चाहती है आ़शिक़ीकी ज़िन्दगी।
बेनियाजी[6] तेरे सदक़े[7] नाज़[8] बेजा ही सही॥

मुझे रहनेको वोह मिला है घर कि जो आफ़तोंकी है रहगुज़र[9]।
तुम्हें ख़ाकसारोंकी[10] क्या ख़बर, कभी नीचे उतरे हो बामसे[11]?

जो तेरे अमलका चराग़[12] है, वही बेमहल[13] है तो दाग़ है।
न जलाके सुब्हसे बैठ उसे, न बुझाके सो उसे शामसे॥

जमा हुए हैं कुछ हसीं, गिर्द मेरे मज़ारके।
फूल कहाँसे खिल गये दिन तो न थे बहारके॥

छीना था छलकता हुआ जाम, उसने झटककर।
क्या मुफ़्तका धब्बा मेरे दामनमें लगा है॥

तजरुबे सब हेच हैं, क़ानून सब बेकार हैं।
हर ज़माना इक नया पैग़ाम लेकर आये हैं॥

---

[1]मिलनका; [2]अंगारा; [3]मोहिनी; [4]इलाज; [5]पतगा; [6]बेपरवाही, उपेक्षा; [7]न्योछावर; [8]सौन्दर्य-अभिमान; [9]मार्ग; [10]धूलमें मिले हुओंकी, सेवकोंकी; [11]ऊपरसे, कोठेसे; [12]सदाचार-दीप; [13]अव्यवस्थित।

धूप सह लेना है अच्छा, बारे-एहसाँ कौन उठाये ?
छाँव इक गिरती हुई दीवार है मेरे लिए ।।

जो देखेगा रोते मुझे, तुमको हँसते।
मेरी बात छोड़ो तुम्हें क्या कहेगा ?
आँख उसने फिराके रुत पलट दी।
हँसते हुए फूल रो रहे हैं ।।

बैठे तकते तो हैं, कन्अँखियोंसे।
यह नहीं पूछते, खड़े क्यों हो ?

चुभते हुए देखा है न काँटा, न कोई फाँस।
ऐ साँस बता दे, यह है काहेकी खटक-सी ।।

यह है तेरे घायलका अब साँस लेना।
छुरी इक कलेजेमें जैसे चुभो ली ।।

किसने भीगे हुए बालोंसे यह झटका पानी।
झूमकर आई घटा टूटके बरसा पानी ।।

आये दिन अच्छा नहीं एक बावलेको छेड़ना।
मर मिटेगा 'आर्जू' जिस दिन उसे झक आगई ।।

अपने लिए मतवाली है कैसी, यह न पूछो।
वोह आँख कि जो दूसरोंकी नींद उड़ा दे ।।

रहते न तुम अलग-थलग हम न गुज़रते आपसे।
चुपके-से कहनेवाली बात कहनी पड़ी पुकारके ।।

पूछी थी छेड़कर जो बात, कहने न दी वोह बात भी।
तुमने खटकती फाँसको छोड़ दिया उभारके ।।

तारा टूटते देखा सबने, यह नहीं देखा एकने भी।
किसकी आँखसे आँसू टपका, किसका सहारा टूटा है॥

चुप एक पहेली है, सोचोगे तो बूझोगे।
तुमसे वही कहना है, जो सबसे छुपाना है॥

बता देगी भेद 'आर्ज़ू'! नींद उड़कर।
कि जो रात छोटी थी, अब क्यों बड़ी है॥

दो घड़ीको दे-दे कोई अपनी आँखोंकी जो नींद।
पाँव फैला दूँ गलीमें तेरी सोनेके लिए॥

मिट भी सकती थी कहीं, बे रोये छातीकी जलन।
आगको पिघला लिया फाहा भिगोनेके लिए॥

—फ़ुग़ाने-आर्ज़ूसे

आगई मंज़िले-मुराद[1], बांगेदराको[2] भूल जा।
जाते-ख़ुदामें यूँ हो महव[3], नामे-ख़ुदाको भूल जा॥*

सबकी पसन्द अलग-अलग, सबके जुदा-जुदा मजाक़।
जिसपै कि मर मिटा कोई, अब उस अदाको भूल जा॥

ज़ख़्मसे कम नहीं है, उसकी हँसी।
जिसको रोना भी अब नहीं आता॥

---

[1]अभिलिपित यात्रा-स्थान; [2]घण्टीकी आवाज; [3]लीन।

*होश किसीका भी न रख जलवागहे-नियाजमें[1]।
बल्कि ख़ुदाको भूल जा सिज्द-ए-बेनियाजमें[2]॥
—'असग़र' गोंडवी

---

[1]ईश्वरके प्रासादमें, प्रेम-मन्दिरमें; [2]भक्तिकी तल्लीनतामें।

क्यों किसी रहबरसे[1] पूछूँ अपनी मंज़िलका पता।
मौजे-दरिया[2] ख़ुद लगा लेती है साहिलका[3] पता।।
राहबर रहज़न[4] न बन जाये कहीं, इस सोचमें।
चुप खड़ा हूँ भूलकर रस्तेमें मंज़िलका पता।।*

मैं चुप आसरा लगाये, और उन्हें यही बहाना—
"कि यह मुँहसे कुछ तो कहता, जो उमीदवार होता"।।†

इश्क़में सौ बार नाला आके लबतक रह गया।
बात अकेलेकी नहीं थी दो दिलोंका राज़ था।।
वोह कहते हैं "मैं तेरे घर मेहमाँ था"।
यह सच है तो ऐ बेख़ुदी[5] मैं कहाँ था?
नैरंगियाँ चमनकी तिलिस्मे-फ़रेब है।
उस जा भटक रहा हूँ जहाँ आशियाँ न था।।
पाबन्दियोंने खोल दी आँखें तो समझे हम।
आकर क़फ़समें बस गये थे आशियाँ न था।।
जो दर्द मिटते-मिटते भी मुझको मिटा गया।
क्या उसका पूछना कि कहाँ था कहाँ न था।।
अबतक वह चारासाज़िए[6] चश्मेकरम[7] है याद।
फाहा वहाँ लगाते थे, चरका[8] जहाँ न था।।

---

[1]पथ-प्रदर्शकसे; [2]दरियाकी लहरें; [3]दरियाके किनारेका; [4]लुटेरा; [5]आत्म-लीनता; [6]-[7]चिकित्सककी कृपा; [8]चोट, घाव।

*छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ।
हरइकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं।।—ग़ालिब

†कहते हैं जब रही न मुझे ताक़ते-सुख़न—
"जानूँ किसीके दिलकी मैं क्योंकर कहे बग़ैर?"—ग़ालिब

हमको इतना भी रिहाईकी ख़ुशीमें नहीं होश।
टूटी जंजीर कि ख़ुद पाँव हमारा टूटा॥

पहले बाला-ए-ज़मीं[1] थे आ बसे[2] अब ज़ेरेख़ाक[3]।
तूलने मीआ़दके बदला है, ज़िन्दाँ[4] दूसरा॥

उढ़ा दी बादियए-ग़ुरबतमें[5] चादर गर्द ने आकर।
मिला आख़िर वही लिखवाके लाये थे कफ़न जैसा॥

जो कोई हद हो मुअ़य्यन[6] तो शौक़, शौक़ नहीं।
वोह कामयाब है जो कामयाब हो न सका॥

बुरी सरिश्त[7] न बदली जगह बदलनेसे।
चमनमें आके भी काँटा गुलाब हो न सका॥

अ़दू[8] न थी मगर अन्धी ज़रूर थी बिजली।
कि देखे फूल न पत्ते न आशियाँ देखा॥

तमानेसे नाज़ अपने उठवानेवाले।
मुहब्बतका बोझ आप उठाना पड़ेगा॥
सज़ा तो बजा है, यह अन्धेर कैसा?
ख़ताको भी जो ख़ुद बताना पड़ेगा॥
मुहब्बत नहीं, आगसे खेलना है।
लगाना पड़ेगा, बुझाना पड़ेगा॥

ख़ुदारा! न दो बदगुमानीका मौक़अ़।
कहलवाके औरोंसे पैग़ाम अपना॥
हविसकार[9] आ़शिक़ भी ऐसा है जैसे—
वह बन्दा कि रखले ख़ुदा नाम अपना॥

---

[1]ज़मीनके ऊपर; [2]बस गये; [3]ज़मीनके नीचे; [4]क़ैदखाना; [5]विदेशकी काननमें; [6]निश्चित; [7]आदत, चलन; [8]शत्रु; [9]कामलोलुप।

पलक झपकी कि मंज़र[1] ख़त्म था बर्क़े-तजल्लीका[2]।
ज़रा-सी नेअ़मते-दीद[3], उसका भी यूँ रायगाँ[4] जाना।।
समझ ले शमअ़से ऐ हमनशीं[5]! आदाबे-ग़मख़्वारी[6]।
ज़बाँ कटवानेवालेका है मन्सब,[7] राज़दाँ[8] होना।।

अल्लाह, अल्लाह हुस्नकी यह पर्दादारी देखिए।
भेद जिसने खोलना चाहा, वोह दीवाना हुआ।।

मेहमाँ-नवाज़[9], बादियए-ग़ुरबतकी[10] ख़ाक थी।
लाशा[11] किसी ग़रीबका उरियाँ[12] नहीं रहा।।
आँसू बना जिबींका अ़रक़[13] जब्ते-अश्कसे।
बदला भी ग़मने भेस तो पिन्हाँ[14] नहीं रहा।।

ज़बाँका फ़र्क़ हक़ीक़त बदल नहीं सकता।
यह कोई बात नहीं, बुत कहा ख़ुदा न कहा।।

क़रीबे-सुब्ह यह कहकर अजलने[15] आँख झपका दी—
"अरे-ओ हिज्रके मारे तुझे अबतक न ख़्वाब आया"।।
दिल उस आवाज़के सदक़े, यह मुश्किलमें कहा किसने—
"न घबराना, न घबराना, मैं आया और शिताब[16] आया"।।
कोई क़त्ताल[17]-सूरत देख ली मरने लगे उसपर।
यह मौत इक ख़ुशनुमा पर्देमें आई या शबाब[18] आया।।*

---

[1]दृश्य; [2]सौन्दर्यरूपी बिजलीका; [3]देखनेकी अनुकम्पा; [4]व्यर्थ; [5]पड़ौसी, साथी; [6]सहानुभूतिकी रीति; [7]ओहदा; [8]भेदी; [9]अतिथिका सत्कार करनेवाली; [10]विदेशके अरण्यकी, यात्रा-मार्गकी; [11]शव; [12]नग्न, बेकफन; [13]मस्तकका पसीना; [14]छिपा हुआ; [15]मृत्युने; [16]शीघ्र; [17]घायलकरनेवाली; [18]यौवन।

*सँभाला होश तो मरने लगे हसीनोंपर।
हमें तो मौत ही आई शबाबके बदले।।—अज्ञात

मुअम्मा[1] बन गया राज़े-मुहब्बत[2] 'आर्ज़ू' यूँ ही।
वोह मुझसे पूछते झिझके, मुझे कहते हिजाब आया॥*

जिसमें कैफ़े-ग़म[3] नहीं, बाज़ आये ऐसे दिलसे हम।
यह भी देना है कोई? मैं तो न दी, साग़र दिया!
'आर्ज़ू' इकरोज़ ढा देता मुझे मेरा ही ज़ोर।
यह भी उसकी कारसाज़ी दिलमें जिसने डर दिया॥†

एक दिलमें ग़म जमाने भरका, क्योंकर भर दिया।
ख़ूए-हमदर्दीने[4] कूज़ेमें समुन्दर भर दिया॥
आँख थी साक़ीकी जानिब, हाथमे जामे-तेहीं[5]।
मैं तो क़िस्मतमें कहाँ? अश्कोंने साग़र भर दिया॥

साथ हर हिचकीके लबपर उनका नाम आया तो क्या?
जो समझ ही में न आये वह पयाम[6] आया तो क्या?
मैसे हूँ महरूम अब भी, गो शरीके-दौर हूँ।
पाए-साक़ी-से जो ठोकर खाके जाम आया तो क्या?

आशिक़ीने मत पलट दी हुस्नने खोये हवास।
उसने जितनी दुश्मनी की और प्यारा हो गया॥

---

[1]पहेली; [2]प्रेम-भेद; [3]ग़मका मतवालापन; [4]हमदर्दीकी आदतने, [5]ख़ाली गिलास; [6]सन्देश।

*ग़लत फ़हमियोंमें जवानी गुज़ारी।
कभी वोह न समझे, कभी हम न समझे॥
—राजा अकबराबादी

†मेरी हविसको ऐशे-दो आलम ही था क़ुबूल।
तेरा करम कि तूने दिया दिल दुखा हुआ॥
—फ़ानी बदायनी

जवाब देनेके बदले वोह शक्ल देखते हैं।
यह क्या हुआ मेरे चेहरेको, अर्ज़े-हालके बअ़द ॥*

अदाशिनास निगाहोंने ऐसा कुछ देखा।
जवाबको न तमन्ना रही सवालके बअ़द ॥

नातवाँ[1] बीमारेग़म[2], उसपर थपेड़े मौतके।
बुझ गया आख़िर चिराग़े-सुब्ह, लहरानेके बअ़द ॥†

आफ़तमें पड़े दर्दके इज़हारसे हम और।
याद आ गये भूले हुए कुछ उसको सितम और ॥
हम 'आर्ज़ू' इस शानसे पहुंचे सरे-मंज़िल।
ख़ुद लग़ज़िशे-पा[3] ले गई दो-चार क़दम और ॥

माँग जो खोके आन-बान न माँग।
क़त्ल हो जा मगर अमान[4] न माँग ॥

आलूदगीये-गर्देतमअ़से[5] ख़ुदा बचाये।
जाते हैं झाड़ते हुए दामन चमनसे हम ॥

---

[1]कमज़ोर; [2]प्रेम रोगी; [3]पाँवोंकी लड़खड़ाहट; [4]जीवन-रक्षा; [5]अभिलाषारूपी धूलकी लिप्ततासे।

*तेरे सवालपर चुप हूँ इसे ग़नीमत जान।
कहीं जवाब न दे-दे कि मैं नहीं सुनता ॥
—शाद अ़ज़ीमाबादी

†जब उखड़ी साँस तो बीमारेग़म सँभल न सका।
हवा थी तेज़ चिराग़े-हयात जल न सका ॥
चिराग़े-हुस्न तेरा और मेरा चिराग़े-दिल।
वह जलके बुझ न सका और यह बुझके जल न सका ॥
—नानक लखनवी

मिली है इसलिए दो-चार दिनकी आज़ादी।
कि सर्फ़[1] करता है देखें यह इख़्तियार कहाँ?

'आर्ज़ू'! हो चुकी सौ मर्तबा दुनिया बेदार[2]।
और मैं सोई हुई तक़दीर लिये बैठा हूँ॥

मेरी नाकामियाँ रोती है ख़ुद मेरी जवानीपर।
हूँ एक जामे-तमन्ना[3] और मए-इशरतसे[4] ख़ाली हूँ॥

उनकी बेजा भी सुनूँ, आप बजा भी न कहूँ।
आख़िर इन्सान हूँ मैं भी, कोई दीवार नहीं॥

सुरूरे-शबका[5] नहीं, सुब्हका ख़ुमार[6] हूँ मैं।
निकल चुकी है जो गुलशनसे वोह बहार हूँ मैं॥
करमपै[7] तेरे नज़र की तो ढह गया वह ग़ुरूर।
बढ़ा था नाज़[8] कि हदका गुनाहगार[9] हूँ मैं॥

कौन दीवाना कहे इश्क़के दीवानेको।
गिरते देखा न बुझी शमअपै परवानेको॥*

---

[1]ख़र्च; [2]जाग्रत्; [3]अभिलाषारूपी गिलास; [4]ऐश्वर्यरूपी मदिरासे; [5]रात्रिकालीन नशा; [6]नशेका उतार; [7]कृपाओंपर; [8]घमंड; [9]पापी।

*बुझी हुई शमअपर परवाना तो नही जलता, परन्तु भारत-ललनाएँ अपने मृतक पतियोके साथ जलती रही है। शेख सअ़दीने भारतकी सैर करते हुए लिखा था—

चूँ ज़ने-हिन्दी कसे दर आशिक़ी मर्दाना नेस्त।
सोख़्तन बर शमअे मुर्दन कारे हर परवाना नेस्त॥

प्रेममे हिन्दकी स्त्रियोसे बढकर कोई नही। परवाना तो जलती हुई शमअपर ही जलता है, परन्तु भारतकी नारियाँ बुझे हुए चिराग़ (मृतक पति) पर जल मरती है।

उनको तो हर इक बातपर हँस देनेकी आदत।
क्या निकला ज़बाँसे हम इस उलझनमे पड़े है॥

न यह कहो "तेरी तक़दीरका हूँ मै मालिक"।
बनो जो चाहो ख़ुदाके लिए, ख़ुदा न बनो॥
अगर है जुर्मेमुहब्बत तो ख़ैर यूँ ही सही।
मगर तुम्हीं कहीं इस जुर्मकी सज़ा न बनो॥
मिले भी कुछ तो है बेहतर तलबसे इस्तग़ना[1]।
बनो तो शाह[2] बनो, 'आर्जू'! गदा[3] न बनो॥

दैरो-हरम[4] हुए तो क्या, है ये मकान बेमकीं[5]।
सर तो वहाँ झुकेगा जो तेरा हरीमे-नाज़[6] हो॥

क़ैद मज़बूत नहीं, दामो-क़फ़सकी[7] सैयाद!
रख वोह बर्ताव कि दिल माइले-परवाज़[8] न हो॥

रुकके लिया जो दम तो फिर, ख़ाम[9] है शौक़े-जुस्तुजू[10]।
जिसकी मददका हो यक़ीं, उसका भी आसरा न देख॥

हर दानेपै इक क़तरा, हर क़तरेपै इक दाना।
इस हाथमे सुमरन है, उस हाथमे पैमाना॥
कुछ तंगिये-ज़िन्दाँसे[11] दिलतंग नहीं वहशी[12]।
फिरता है निगाहोंमें, वीराना-ही-वीराना॥

फ़स्ले-गुल बाग़में दिलकश नहीं सैयाद! अभी।
पर है बेज़ोर न कर क़ैदसे आज़ाद अभी॥

---

[1]निस्पृहता; [2]बादशाह; [3]भिक्षुक; [4]मन्दिर-मस्जिद; [5]रिक्त (ईश्वरसे शून्य); [6]स्थान (प्रेयसीका मकान); [7]जाल और पिंजरेका बंधन; [8]उड़नेको उद्यत; [9]व्यर्थ; [10]तलाशका शौक; [11]कारा-गृहकी संकीर्णतामे; [12]पागल।

हुस्ने-सीरतपर[1] नजरकर, हुस्ने-सूरतको[2] न देख।
आदमी है नामका गर खू[3] नहीं इन्सानकी॥
ध्यान आता है कि टूटा था, गलतफ़हमीमें अहद[4]।
यादगार इक है तो धुंधली-सी मगर किस शानकी॥

उठ खड़ा हो तो बगोला है, जो बैठे तो गुबार[5]।
खाक होकर भी वही शान है, दीवानेकी॥
'आर्जू' ! खत्म हक़ीक़तपै हुआ दौरे-मजाज़।
डाली कअबेकी बिना, आड़से बुतखानेकी॥

क्यों शौक़े-तलबसे बाज रहें, अंजामेमुहब्बत क्यों सोचें ?
इक दिलका बहलावा तो है, सब दर्द-सरी बेकार सही॥

सबब बग़ैर था हर जब्र क़ाबिले-इलजाम।
बहाना ढूँढ लिया, देके इख़्तियार मुझे॥
किया है आग लगानेको बन्द दरवाजा।
कि होंठ सीके बनाया है राजदार मुझे॥

जाहिद ! वोह उन आँखोंकी टपकती हुई मस्ती।
पत्थरमें गढ़ा डालके पैमाना बना दे॥

यह तो बात उनके समझनेकी है ऐ ग़ैरते-इश्क़ !
हम कहें क्यों ? न उठेगा ग़मे-हिज्राँ हमसे॥

नालाँ खुद अपने दिलसे हूँ दरबाँका[6] क्या कहूँ !
जैसे बिठा गया है, कोई पाँव तोड़के॥
क्या जाने टपके आँखसे किस वक़्त खूने-दिल।
आँसू गिरा रहा हूँ जगह छोड़-छोड़के॥

---

[1]सुन्दर स्वभावपर; [2]सुन्दर मुखको; [3]स्वभाव, आदत; [4]प्रतिज्ञा; [5]धूल; [6]पहरेदारको।

भले दिन आये तो आज़ार[1] बन गया आराम।
क़फ़सके तिनके भी काम आ गये नशेमनके॥
मिटाके फिर तो बनानेपर अब नहीं क़ाबू।
वोह सर झुकाये खड़े हैं, क़रीब मदफ़नके[2]॥*

हमें इक रोज़ यह भी देखना है 'आर्ज़ू' मरकर।
कि ख़ुश होता है कौन और कौन मातमदार होता है॥

क्यों उसकी यह दिलजोई[3], दिल जिसका दुखाना है।
ठहराके निशानेको क्या तीर लगाना है?
अन्दाज़े-तग़ाफुलपर[4] दिल चोट तो खा बैठा।
अब उनकी निशानीको, उनसे भी छुपाना है॥
कम-ताक़तिये-नाला अश्क़ोंसे मदद ले-ले।
बेरब्त कहानीमें, पैवन्द लगाना है॥

किसी जा गर्दमें मोती, कहीं है गर्द मोतीमें।
तेरी राहोंको ऐ तक़दीर! हमने खूब छाना है॥

ग़ुबार उठता है यह कहता हुआ गोरेग़रीबाँसे[5]—
"जहाँमें एक दिन सबका यही अंजाम होना है"॥

फिर 'आर्ज़ू'को दरसे[6] उठा, पहले यह बता।
आख़िर ग़रीब जाये कहाँ और कहाँ रहे?

---

[1]सकट; [2]कब्रके; [3]दिलकी बात पूछना, दिलको ख़ुश करनेवाली बाते; [4]उपेक्षाके अन्दाजपर; [5]कब्रिस्तानसे; [6]दरवाजेसे।

*मिलाकर ख़ाकमें भी हाय! शर्म उनकी नहीं जाती।
निगह नीची किये वोह सामने मदफ़नके बैठे हैं॥
—असीर लखनवी

था शौक़े-दीद[1] ताबे-अे-आदाबे-बज्मेनाज़[2]।
यअ़नी बचा-बचाके नज़र देखते रहे॥
अहले-क़फ़सका[3] ख़ौफ़-ज़दा[4] शौक़ क्या कहूँ?
सूए-चमन[5] समेटके पर देखते रहे॥

पाँवको लग़ज़िश[6] है, लबपर शोरे-नोशा-नोश[7] है।
जितनी पैमानेमें अब बाक़ी है, उतना होश है॥

इश्क़ दिलमें शोअ़लाफ़गन[8], चश्मे-तरहै[9] अश्क-रेज़[10]।
एक ही शै[11] और कहीं पानी किसी जा आग है॥

आँख जिस दिनसे लगी है, आँख लगना जुर्म है।
उसकी वैसी ही सज़ा भी होगी जैसा जुर्म है॥

बे राहनुमा डाला है, जिस राहपै दिलने।
इतनी है ख़तरनाक कि रहजन[12] भी नहीं है॥

ग़म दिया है कि मसर्रत[13] दी है, सब्रमें इक तरहकी लज़्ज़त दी है।
हँस न इतना कि ख़ुशी ग़म हो जाये, शै हरइक हस्ब ज़रूरत दी है॥ 5

अलअमाँ मेरे ग़मकदेकी शाम।
सुर्ख़ शोअ़ला सियाह हो जाये॥*
पाक निकले वहाँसे कौन जहाँ।
उज़्रख़्वाही गुनाह हो जाये॥

---

[1]देखनेका चाव; [2]महफिलके अदब-कायदेका खयाल रखते हुए; [3]क़ैदियोंका; [4]भयमिश्रित; [5]उपवनकी ओर; [6]थिरकन, कम्पन; [7]शोरो-गुल; [8]दहकता हुआ; [9]भीगे नेत्र हैं; [10]आँसू बहानेवाली; [11]वस्तु; [12]लुटेरा; [13]खुशी।

*मेरे ग़मख़ानए-मुसीबतकी।
चाँदनी भी सियाह होती है॥—'जिगर' मुरादाबादी

इन्तहाए-करम[1] वोह है कि जहाँ।
बेगुनाही गुनाह हो जाये॥

जाँचकर ताबे-नज़रको[2] रूएजानाँ[3] देखिए।
देख सकिए कौंदती बिजली तो हाँ-हाँ देखिए॥

—जहाने आर्ज़ूसे

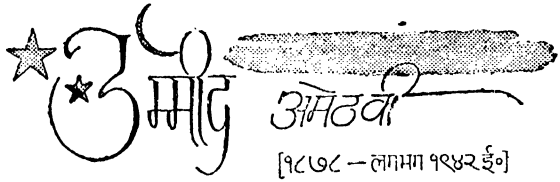


साक़िया! चश्मेकरमका[4] वक़्त होगा कौन-सा?
ज़ामे-दिल[5] ख़ाली है, जामे-ज़िन्दगी[6] लबरेज़[7] है॥

१५ जुलाई १९४९

---

[1]कृपाकी हद; [2]देखनेकी शक्तिको; [3]प्रेयसीकी सूरत; [4]कृपा दृष्टिका; [5]हृदय-पात्र; [6]जीवन-पात्र; [7]पूर्ण, भरा हुआ।



[१८७८—लगभग १९४२ ई०]

मुहम्मदअ़ली 'उम्मीद' सुलतानपुर ज़िलेके उमेठगढ़ क़स्बेमें ३ फ़रवरी १८७८ ई० में पैदा हुए। आप १८९३ में लखनऊ चले गये। फ़ारसी-उर्दू दोनोंमें शेअ़र कहते हैं। आप उर्दू शाइरीमें 'जलालके' शिष्य थे। मगर आप फ़ारसीके क्लिष्ट और अव्यवहारिक शब्दोंको उर्दूमें ठूँसनेका प्रयत्न करते थे। जो कि उस्तादको नागवार गुज़रता था। एक दिन उस्तादने फ़र्माया—"हज़रत ! आप वही मिर्ज़ा नौशा (ग़ालिब) की तरह झाड़-झंकाड़में चले जा रहे हैं। मुझे आपका यह असलूबे-बयान पसन्द नहीं।"

परिणामस्वरूप आप उर्दूका कलाम भी अपने फ़ारसी उस्तादको दिखाने लगे।

आपके स्वयं पसन्दीदा अशआ़र 'निगार' जनवरी-फ़रवरी १९४१ में प्रकाशित हुए थे, उनमें-से चन्द हम यहाँ साभार उद्धृत कर रहे हैं—

अब तो ऐसा भी नहीं कोई जो उनसे पूछे—
"आपने खोके मुझे, ग़ैरको पाया कैसा"?

आपसे रूठके 'उम्मीद' कहाँ जायेंगे?
वे बुलाये अभी आते हैं मनाना कैसा?

मजबूरियाँ भरी हैं मेरे इख़्तियारमें।
और इख़्तियार कहते हैं किस इख़्तियारको?

कोई हमसे न हम किसीसे ख़ुश।
कौन हो ऐसी ज़िन्दगीसे ख़ुश॥

क्या हम अपनी ख़ुशीसे नाख़ुश हैं।
तुम हो क्यों मेरी नाख़ुशीसे ख़ुश?

ख़ुशनसीबीका उसकी क्या कहना।
तुम हो दुनियामें जिस किसीसे ख़ुश॥

वअ़दा कलका है, लेकिन ऐ 'उम्मीद'!
तुम नज़र आते हो अभीसे ख़ुश॥

'उम्मीद'! रो दिये तो क्या लुत्फ़ दिल्लगीका?
इतना ही गुदगुदाओ आये हँसी जहाँ तक॥

रोई शबनम, गुल हँसा, ग़ुंचा खिला, मेरे लिए।
जिससे जो कुछ हो सका उसने किया मेरे लिए॥
आ़म है यूँ तो मेरी बरबादियोंका वाक़ेआ़।
वह भी तो कह दें कि कोई मर मिटा मेरे लिए॥
हँसनेवाले रो दिये और रोनेवाले हँस पड़े।
दिलके हाथों जो न होना था हुआ मेरे लिए॥

उस निगाहे-लुत्फ़ ही से क्यों न चलकर पूछिए।
कौन-सी है वोह ख़ता जो अ़फ़ूके[1] क़ाबिल नहीं?

मुहब्बतमें हर चन्द जीका ज़ियाँ[2] है।
मगर मैं यह बातें कहाँ देखता हूँ॥

---

[1]क्षमा योग्य; [2]घाटा, नुकसान।

यही तेरी जन्नत है ? ऐ तेरी क़ुदरत !
कहाँकी बहारें कहाँ देखता हूँ ?

नाम सुनकर ख़ुशीका ऐ 'उम्मीद' !
रंज होता है अब ख़ुशी कैसी ?

फ़र्ते-सुजूदे-ग़ैरसे[1] ख़स्ता है जब वोह संगेदर।
अपनी जिबीने-शौक़को दाग़ कोई लगाये क्यों ?

वफ़ा[2]ओ-महरो[3]-मुरव्वत,[4] सदाक़तो[5]-इन्साफ़[6]।
ख़बर नहीं कि यह बातें हैं किस ज़मानेकी ॥
वोह ज़ूद[7]-रंज है और ज़ूद-रंज भी कैसा ?
जो रूठ जाये तो ज़ुरअत न हो मनाने की ॥

ख़ुशी तो उनकी ख़ुशी है कि जिससे सब ख़ुश हैं।
हमारे दिलकी ख़ुशी क्या ? हुई-हुई न हुई ॥
यह और बात है रंजीदा हो गये 'उम्मीद'।
तेरी तरफ़से तो ख़ातिरमें कुछ कमी न हुई ॥

कलतक जो पूछता तो इक बात भी थी ज़ालिम !
अब किसको पूछता है ? 'उम्मीद' अब कहाँ है ?

वोह आख़िर रो दिये क्यों ? मैंने तो इतना ही पूछा था—
"कभी 'उम्मीद' को हँसते हुए भी तुमने देखा है ?"

अरे सूदो ज़ियाँ[8] देखा नहीं जाता मुहब्बतमें।
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है ॥

---

[1]दूसरोंके अधिक सिज्दा करनेसे; [2]नेकी, भलाई; [3]रहम, दया; [4]लिहाज; [5]सचाई; [6]न्याय; [7]शीघ्र नाराज़ होनेवाला; [8]लाभ-हानि।

अजीब बात है 'उम्मीद' दिलकी बातोंका।
न एअ़तबार उन्हें है, न एअ़तबार मुझे॥

फलतक तो उनके वअ़दए-फ़रदाका[1] उज्र था।
अब आज क्या अजलसे[2] बहाना करेंगे हम॥
समझे न थे कि एक दिन ऐसा भी आयगा।
हँसनेपर अपने आप ही रोया करेंगे हम॥

यह लुत्फ़े-जौक़े-असीरी[3] नहीं कि ऐ सैयाद!
क़फ़समें आग लगा दें हम आशियाँके लिए॥

जिंदगी है अपने क़ब्ज़ेमें न अपने बसमें मौत।
आदमी मजबूर है और किस क़दर मजबूर है॥

नाज़[4] है यह कि मुहब्बतमें बड़ा सब्र किया।
पूछिए, सब्र न करते तो भला करते क्या?

दिलकी उलझन न पूछिए 'उम्मीद'।
हम न ख़िल्वतके[5] हैं न महफ़िलके॥

अफ़साने मैं भी रहमते-हक़के[6] सुना किया।
इक गोशेमें[7] अलग मै-ओ-साग़र लिये हुए॥

आप कल गुज़रे हैं जिस राहगुज़रसे[8] पहले।
वहीं बैठा है कोई जाके सहरसे[9] पहले॥

---

[1]भविष्यका वअ़दा; [2]मृत्युसे; [3]क़ैद होनेके शौकका आनन्द; [4]घमण्ड; [5]एकान्तके; [6]ईश्वरीय कृपाके; [7]कोनेमें; [8]मार्गसे; [9]सुबहसे।

फिर इन्तिज़ारकी लज़्ज़त नसीब हो कि न हो।
ख़ुदा करे कोई ख़तका जवाब रहने दे॥

तसव्वुरातकी दुनिया है अपने मतलबकी।
कुछ और दिन अभी रुख़पर[१] नक़ाब[२] रहने दे॥

ख़याल और किसीका अगर नहीं, न सही।
तुझे तो चैनसे तेरा शबाब[३] रहने दे॥

कहनेके लिए ख़िज़्रो-मसीहाकी भी सुनलो।
लेकिन ग़मे-हस्तीकी दवा और ही कुछ है॥

हर हविसनाकको[४] सौदा[५] है नज़रबाज़ीका[६]।
आपका जलवा अब ऐसा भी न अरज़ाँ[७] हो जाय॥

जो देखें तो तड़पें न देखें तो तरसें।
यह सूरत है देखें जो सूरत किसीकी॥

जो बस हो तो ख़ुदको भी ख़ुदसे छुपायें।
हैं ऐसे भी शर्मो-हया करनेवाले॥

टूटा तो तिलस्म 'उम्मीद'! उन शर्मगीं आँखोंका।
आप अपने ही को देखा ज़ालिमने मगर देखा॥

हँसते हैं यूँ ख़ूबिये-तक़दीरपर अपनी।
तू और कुछ ऐ रहबरे-कामिल न समझना॥

तूर हो या कलीम हो मुझको तो है यह देखना।
इश्क़ो-हविसका[८] फ़ैसला तेरी नज़रने क्या किया?

---

[१]मुखपर; [२]पर्दा; [३]यौवन; [४]कामुकको; [५]पागलपन, लालसा; [६]घूरनेका; [७]सस्ता, आमफ़हम; [८]प्रेम और कामुकताका।

पहले तो मुझको ग़म यह था, आहमें कुछ असर नहीं।
अब तो मुझे यह रंज है, हाय असरने क्या किया।।

हुबाबो-मौजको[1] भी देखकर आँखे नहीं खुलतीं।
ग़ज़बकी नींदमे डूबा हुआ है नाख़ुदा[2] मेरा।।

क़ैसके[3] हुस्ने-तसव्वुरकी[4] करे तसदीक़[5] कौन?
वर्ना अब महमिलमें[6] कोई है, न जब महमिलमे था।।

कहाँका हश्र किसकी दाद इक ख़्वाबे-परीशाँ था।
खुली जब आँख तो अपना ही हाथ अपना गरेबाँ था।।
मुझे मेरे तसव्वुरने[7] बड़ा धोका दिया वर्ना।
किसीका मेज़बाँ[8] था मैं न कोई मेरा मेहमाँ था।।
खुदा मअ़लूम क्या वअ़दा है उस जाने-तग़ाफ़ुलसे[9]।
कि अब जीना बड़ा मुश्किल है मर जाना तो आसाँ था।।

अल्लाहरे फ़रेबे-तमन्ना[10] कि बार-हा[11]।
अपने ही ख़तको लेके पढ़ा नामाबरसे[12] आप।।

'उम्मीद'! पासे-चश्मे-मुरव्वतका[13] हो बुरा।
दिल ले गये वोह कह न सके कुछ जबाँसे हम।।

परस्तिशके[14] क़ाबिल है ज़र्रा ज़र्रा मेरी हस्तीका।
मगर यह बात कहनेकी नहीं शेख़ो-बरहमनमें।।
बतायें क्यों निकलवाये गये 'उम्मीद' कअ़बेसे!
वहाँ भी कोई शै पोशीदा थी हज़रतके दामनमें।।

---

[1]बुलबुले और लहरोंको; [2]मल्लाह; [3]मजनूंके; [4]सुरुचिपूर्ण चिन्तनकी; [5]प्रमाणित; [6]पर्देमें; [7]खयालने; [8]आतिथ्य सत्कार करनेवाला; [9]उपेक्षा भावी प्रेयसीसे; [10]अभिलाषाओंका फ़रेब; [11]बार-बार; [12]डाकियेसे; [13]आँखोंकी लिहाजके खयालका; [14]पूजने योग्य।

मरहूने-इल्तिफ़ाते-मसीहा[1] नहीं हूँ मैं।
आखिर बुरा ही क्या है जो अच्छा नहीं हूँ मैं॥

बिगड़ बैठे अगर 'उम्मीद' उस जाने-तमन्नासे।
तअ़ज्जुब क्या कभी ऐसा भी होता है मुहब्बतमें॥

हिसाब क्या करमे-बेहिसाबका[2] तेरे।
हमारी हसरते-दिलका[3] अगर शुमार नहीं॥

कहीं वोह शोख न सुनता हो चुप रहो 'उम्मीद'!
जफ़ाशेआ़र[4] तो है गो वफ़ाशेआ़र[5] नहीं॥

न साफ़ इक़रारका पहलू न साफ़ इंकारकी सूरत।
बड़े धोके दिये तेरे हिजाबे-नीम हाइलने[6]॥



आबिद

२८ फरवरी १९५२

गुनाहसे[7] हूँ ख़िजिल[8] लेकिन, कभी तेरी तरह जाहिद!
ख़ुदा बनकर नहीं की है ख़ुदाकी बंदगी मैंने॥

---

[1]ईसाके एहसानका आभारी; [2]अनगिनत कृपाओं-उपकारोंका; [3]दिलकी इच्छायें असंख्य हैं; [4]ज़ालिम, जुल्म जुल्म करना तो जानता है; [5]नेकी, भलाई करना नहीं जानता; [6]अर्द्ध लज्जाके आजानेने; [7]भूलोंसे, पापोंसे; [8]शर्मिन्दा।

सफ़ी लखनवी

[१८६२ – १९५०ई०]



सैयद अलीनक़ी 'सफ़ी' ३ जनवरी १८६२ ई० को लखनऊमें उत्पन्न हुए। आपके पिता सैयद फ़ज़लहुसेन अवधके अंतिम बादशाहके विश्वास-पात्रोंमें थे। आपके पूर्वज शम्सउद्दीन अल्तमश बादशाहके शासन-कालमें ग़ज़नीसे आकर दिल्लीमें आबाद हुए, फिर वहाँसे फ़ैज़ाबाद चले गये। ५ वर्षकी अवस्थासे अरबी-फ़ारसीका अभ्यास आरंभ हुआ। मैट्रिकतक अंग्रेज़ी पढ़ी। हकीमीकी ओर भी रुचि थी, अतः उसका भी अध्ययन किया। कुछ दिनों अंग्रेज़ीके अध्यापक रहे। जून १८८३ में दीवानी अदालतमें नौकरी की और १९२२ ई० में पेंशन लेकर साहित्य-सेवामें लीन रहे। १९५० ई० में आपका निधन हो गया।

जामेआ मिल्लियाके वार्षिकोत्सवोंपर हुए मुशाइरोंमें दो बार आपके मुखारविन्दसे कलाम सुननेका सौभाग्य हमें भी प्राप्त हुआ है। यह संभवतः १९३५ और १९३६ की बात है। आपकी शरीफ़ाना वज़अ-क़तअ और बोलने-चालने, उठने-बैठनेका ढंग इतना आकर्षक था कि आज भी वह दृश्य ज्यों-का-त्यों आँखोंके सामने फिर रहा है। आपके हमराह आपके छोटे भाई 'ज़रीफ़' लखनवी भी थे। जिनकी मिज़ाहिया ग़ज़लोंने दर्शकोंको हँसाते-हँसाते लोट-पोट कर दिया था।

सैयद 'सफ़ी'का शाइरीमें तो उस्तादाना मर्तबा है ही, वे मानवताके नाते भी बहुत ऊँचे थे। १८७५ ई० से उन्होंने शाइरी प्रारंभ की थी।

वे किसीके शिष्य नही थे। स्वय अभ्यासद्वारा ही वे इतने बढ़े थे। 'अज़ीज़'-जैसे ख्याति प्राप्त उस्ताद आपके ही शिष्य थे।

आपका एक ग़ज़लोंका, दो नज्मोके दीवान छप चुके है। आपकी क़ौमी नज़्मोने बहुत ख्याति पाई, और उसके एवजमे मुस्लिम-समाजने आपको 'लिसान-उल-क़ौम' (कौमकी जबान) की उपाधि भेट की। आप लखनऊकी साहित्यिक सभा 'बहारे-अदब' के एक अर्सेतक प्रधान रहे। आपने फ़ारसीमे भी कलाम कहा है। लखनऊके उस्तादोंमे आपका मर्तबा बहुत ऊँचा था। आपके कितने ही शिष्योके दीवान प्रकाशित हो चुके है।

आपने लखनवी रगको नया आबो-रंग दिया और उसे कृत्रिमतासे हटाकर वास्तविकताके समीप लाये। आपके कलाममे रगीनी, भाषामे लोच और भावोमे प्रफुल्लता पाई जाती है। आपके कलामसे यह अनुमान लगाना कि यह किसी लखनवीका कलाम है, मुश्किल है।

आपने पहले-पहल यह शेअर कहा—

निकले है तीन नाम मिरे तिफ़्ले-अश्कके[1]।
नूरे-निगाह[2], लख्ते-जिगर[3], यादगारे-दिल[4]॥

यहाँ चन्द ग़जलोंके अशआर दिये जा रहे है—

कैसी-कैसी सूरतें ख्वाबे-परीशाँ[5] हो गईं?
सामने आँखोंके आईं और पिन्हाँ[6] हो गईं॥

जोर ही क्या था जफ़ाए-बाग़बाँ[7] देखा किये।
आशियाँ[8] उजड़ा किया, हम नातवाँ[9] देखा किये॥

---

[1]आँसूरूपी पुत्रके; [2]नेत्र प्रकाश; [3]कलेजेका टुकड़ा (पुत्र); [4]हृदयकी स्मृति; [5]बुरे स्वप्न; [6]ओझल; [7]मालीके अत्याचार; [8]घोंसला, नीड़; [9]दुर्बल, अशक्त ।

कुछ रेज़ाहाए-शीशए-दिल[1] भी है फ़र्शे-राह[2]।
रखिए क़दम ज़रा दमे-रफ़्तार[3] देखकर॥

फ़लकतक[4] हमने माना आहमें क़ूवत[5] है जानेकी।
मगर फ़ुर्सत कहाँ इस ग़मकदेमें[6] सर उठानेकी॥

ज़िंदगी मुझ पर-शिकस्ताकी[7], असीरे-दामकी[8]?
यूँ तो मेरी चीज़ है, लेकिन मेरे किस कामकी?

ज़िन्दगीका माहसल[9] क्या है बतादूँ मैं 'सफ़ी'!
इन्तिज़ार उसका अभी तक जो बला आई नहीं॥

कस्-मपुरसीका[10] वोह आ़लम कि इलाही तौबा!
दम भी निकले तो नहीं पूछनेवाला कोई॥

मआले-ज़िंदगी[11] यह थी कि सुनकर वाक़ेआ़ मेरा।
रहा कुछ देर सन्नाटा-सा ऐवाने-सितमगरमें[12]॥

मैकदेसे चला गया मस्जिद।
अरे तौबा! यह क्या किया मैंने?

जो क़िस्मतमें जलना ही था, शमअ़ होते।
कि पूछे तो जाते किसी अंजुमनमें॥

बज़्मे-साक़ीमे ज़रा हुश्यार बैठे आज मस्त।
कल यहीं पहलूसे मेरा शीशए-दिल उठ गया॥

न ख़ामोश रहना मेरे हम-सफ़ीरो[13]!
जब आवाज़ दूँ तुम भी आवाज़ देना॥

---

[1]दिल-रूपी शीशेके कण; [2]मार्गमे; [3]चलते समय; [4]आस्मानतक; [5]बल, शक्ति; [6]दुःखी स्थानमे; [7]पर टूटे हुए की; [8]जालमे फँसे हुएकी; [9]उद्देश्य; [10]अपेक्षाका; असहायावस्थाका; [11]जीवन-परिणाम; [12]अत्याचारीके महलमे; [13]एकही प्रकारकी बोली वालो, साथियो।

ग़ज़ल उसने छेड़ी मुझे साज़ देना।
ज़रा उम्रे-रफ़्ताको[1] आवाज़ देना॥
—आजकल फ़रवरी १९४६

तू भी मायूसे-तमन्ना[2] मेरे अन्दाज़में है।
जब तो यह दर्द पपीहे तेरी आवाजमे है॥
ताबिंदे-दीदपर आँच आये यह मंजूर नहीं।
दिलमें है वर्ना वोह बिजली जो सरे-तूर नहीं॥
दिलसे नजदीक है, आँखोंसे भी कुछ दूर नहीं।
मगर इसपर भी मुलाक़ात उन्हे मंजूर नहीं॥
छेड़दे साज़े-अनल्हक[3] जो दुबारा सरे-दार।
बज़्मे-रिन्दांमें[4] अब ऐसा कोई मन्सूर[5] नहीं॥

हमको परवाना-ओ-बुलबुलकी रक़ाबतसे[6] ग़रज़ ?
गुलमें वह रंग नहीं, शमअमें वोह नूर नहीं॥

कभी "कैसे हो सफी ?" पूछ तो लेता कोई।
दिल-देहीका[7] मगर इस शहरमे दस्तूर नहीं॥

दर्दे-आग़ाज़े-मुहब्बतका[8] अब अंजाम नहीं।
ज़िन्दगी क्या है, अगर मौतका पैग़ाम नहीं॥

नज़र हुस्न-आइना[9] ठहरी वोह ख़िलवत[10] हो कि जलवत[11] हो।
जब आँखें बन्द कीं तसवीरे-जानां[12] देख लेते हैं॥

वोह ख़ुद सरसे क़दमतक डूब जाते हैं पसीनेमें।
मेरी महफ़िलमें जो उनको, पशेमाँ[13] देख लेते हैं॥

---

[1]बीती उम्रको; [2]निराश; [3]मैं ही सत्य (ईश्वर) हूँ का तान; [4]मद्यपोंमें; [5]सूफ़ी (देखें हमारा शब्दकोष); [6]प्रतिस्पर्द्धासे; [7]अर्थात् हृदयकी बात पूछनेका; [8]प्रारम्भिक प्रेमके दर्दका; [9]सौन्दर्य्य पारखी; [10]एकान्त; [11]मजमअ, महफिल; [12]प्रियतमाका चित्र; [13]शर्मिन्दा।

'सफ़ी' रहते हैं जानो-दिल फ़िदा[1] करनेपै आमादा[2]।
मगर उस वक़्त, जब इन्साँको इन्साँ देख लेते हैं॥

सुनेगा कौन ? सुनी जायेगी 'सफ़ी' किससे।
तुम्हारी राम-कहानी यह ज़िंदगी भरकी॥

इन्सानको उसने ख़ाकसे पाक[3] किया।
जी-हौसला-ओ-साहेबे-इद्राक[4] किया॥
पहले तो बनाया उसे गंजीनए-इल्म[5]।
फिर गंजको[6] पोशीदा-तहे-ख़ाक[7] किया॥

—शाइर मई-जून १९४५ ई०

क्योंकर यहाँ तुम्हारी तबीअ़त बहल गई।
इतनी ही ज़िंदगी हमें ऐ ख़िज़्र[8]! खल गई॥
जब एक रोज़ जानका जाना ज़रूर है।
फिर फ़र्क़ क्या वह आज गई, ख़्वाह कल गई॥

जब दम निकल गया ख़लिशे-ग़म[9] भी मिट गई।
दिलमें चुभी थी फाँस जो दिलसे निकल गई॥

फूल ऐ दश्ते-जुनूँ[10] ! कौन चुने दामनमें।
तेरे काँटे ही बहुत हैं मेरे बिस्तरके लिए॥

इन्सान मुसीबतमें हिम्मत न अगर हारे।
आसाँसे वह आसाँ है, मुश्किलसे जो मुश्किल है॥
दुनियाकी तरक़्क़ी है, इस राजसे[11] वाबस्ता[12]।
"इन्सानके क़ब्ज़ेमें सब कुछ है अगर दिल है॥"

---

[1]न्योछावर, प्रदान; [2]प्रस्तुत, हाजिर; [3]पवित्र, उच्च; [4]साहसी एवं विवेकी; [5]ज्ञान-भंडार; [6]भंडारको; [7]क़ब्रमे गाड़ दिया; [8]एक पैगाम्बर; [9]दुःखोकी फाँस; [10]उन्माद्का वन; [11]भेदसे; [12]सबधित।

कुछ भी न हैफ़ कर सके हस्तीए-मुस्तआ़रमें[1]।
हो गई ख़त्म ज़िन्दगी मौतके इन्तिज़ारमें॥

खुलते ही आँख इश्क़ने हुस्ने-अदापै[2] जान दी।
आई क़ज़ा[3] शबाबमें[4], देखी ख़िज़ाँ बहारमें!
भूले हुए ज़हे-नसीब[5] अब भी जो याद आ गये।
फ़ातिहाको[6] आये कब, जब ख़ाक नहीं मज़ारमें॥

हमारी आँखसे जब देखिए आँसू निकलते हैं।
जिबींकी[7] हर शिकनसे[8] दर्दके पहलू निकलते हैं॥

ख़मोश रहने दो ग़मज़दोंको, कुरेदकर हाले-दिल न पूछो।
तुम्हारी ही सब इनायतें हैं, मगर तुम्हें कुछ ख़बर नहीं है॥
उन्हींकी चौखट सही, यह माना, रवा[9] नहीं बेबुलाये जाना।
फ़क़ीर उज़लतगुज़ीं[10] 'सफ़ी' है, गदाए-दरयोज़ागर[11] नहीं है॥

उफ़-री नासाज़िए-दिल[12], एक ज़माना गुज़रा।
जोअ़फ़[13] अब तक वही डूबी हुई आवाज़में है॥

बेक़रारी दिले-बीमारकी अल्ला-अल्ला।
फ़र्शे-गुलपर[14] भी न आना था, न आराम आया॥

जौरे-दरबाँकी[15] तो कुछ भी न हुई तहक़ीक़ात।
मेरे ही सर मेरी फ़रियादका इलज़ाम आया॥

आईने-मुहब्बत[16] है बहुत बाइसे-तकलीफ़[17]।
ऐ काश जहाँसे कोई यह रस्म उठा दे॥

---

[1]माँगी हुई ज़िन्दगीमें; [2]सौन्दर्य्यके हाव-भावोंपर; [3]मौत; [4]जवानी-में; [5]अहोभाग्य; [6]मृत्यु शोककी प्रार्थनाको; [7]माथेकी; [8]सिकुड़नमें; [9]उचित, मुनासिब; [10]एकान्तवासी; [11]दर-दरका भिखारी; [12]दिलकी बीमारी; [13]कमज़ोरी; [14]फूल-शैय्यापर; [15]पहरेदारके ज़ुल्मकी; [16]प्रेमके नियम; [17]कष्टके कारण।

शबे-निशातका[1] पिछला पहर था ऐ ग़ाफ़िल!
जिसे शबाब[2] समझता था, वह शबाब न था॥

वोह आहे-सर्द[3] हूँ निकले जो एक टूटे हुए दिलसे।
सरापा[4] दर्द हूँ और दर्दका ख़ुद अपने दरमाँ[5] हूँ॥

जो चीज नहीं बसकी फिर उसकी शिकायत क्या?
जो कुछ नजर आता है, अच्छा नजर आता है॥

क़फ़स ले उड़ूँ मैं हवा अब जो सनके।
मदद इतनी ऐ बाले-परवाज[6] देना॥

—केसरकी क्यारी

१५ नवम्बर १९५१

द्वितीय संस्करणके लिए

वोह आ़लम[7] है कि मुँह फेरे हुए आ़लम[8] निकलता है।
शबे-फ़ुर्कतके ग़म झेले हुओंका दम निकलता है॥

इलाही ख़ैर हो उलझनपै-उलझन बढ़ती जाती है।
न मेरा दम, न उनके गेसुओंका ख़म निकलता है॥

क़यामत ही न हो जाये, जो पर्देसे निकल आओ।
तुम्हारे मुँह छुपानेमें तो यह आलम[9] निकलता है॥

शिकस्ते-रंगे-रुख़[10], आईनये-बेताबिए-दिल[11] है।
ज़रा देखो तो क्योंकर ग़मज़दोंका दम निकलता है॥

---

[1]आनन्दमयी रात्रिका; [2]युवकोचित सौन्दर्य; [3]ठंडी साँस; [4]पूर्णरूपेण [5]इलाज; [6]उडनेकी क्षमता रखनेवाले पर; [7]दशा, हालत; [8]संसार-दुनिया; [9]भेद-स्थिति; [10]मुँहकी उदासी; [11]बेचैन दिलका दर्पण है।

निगाहे-इल्तिफ़ाते-मेहर[1] और अन्दाज़े-दिल[2]-जोई।
मगर इक पहलुए-बेताबिये-शबनम निकलता है॥

'सफ़ी' कुश्ता[3] हूँ नापुरसिशोंका[4] अहले-आ़लम[5] की।
यह देखो कौन मेरा साहिबे-मातम[6] निकलता है॥

—नक़ूश फरवरी १९५६ ई०



ज़ोर ही क्या था जफ़ाए-बाग़बाँ देखा किये।
आशियाँ उजड़ा किया, हम नातवाँ देखा किये॥

---

[1]कृपादृष्टि; [2]हृदयको सान्त्वना देनेका ढंग; [3]मिटा हुआ; [4]उपेक्षाओंका, अनादरका; [5]दुनियावालों द्वारा; [6]संवेदक।

अज़ीज़ लखनवी

[१८८२ – १९३५ ई०]



मिर्ज़ा मुहम्मदहादी 'अज़ीज़'का जन्म लखनऊमें १८८२ ई० में हुआ। आपके पूर्वज शीराज़के रहनेवाले थे। वे वहाँसे आकर पहले कश्मीरमें रहे, फिर स्थायी रूपसे लखनऊमें बस गये। आपके वंशमें कई पीढ़ियोंसे योग्यतम विद्वान् होते आये हैं। आपके पिता अ़ल्लामा मिर्ज़ा मुहम्मदअ़ली आपको सात वर्षका छोड़कर जन्नतनशीन हो गये थे। ५ वर्षकी आयुमें आपका विद्यारम्भ हुआ और अ़रबी-फ़ारसीकी पूर्ण योग्यता प्राप्त की।

अ़ज़ीज़ सादगी-पसन्द, बेतकल्लुफ़ और मिलनसार थे। विनयी, सहृदय और हास्यप्रिय थे। आपकी शाइरीके सम्बन्धमें हज़रत साक़िब लखनवी फ़र्माते हैं—"अ़ज़ीज़की तबिअ़त निहायत पुरदर्द वाक़अ़ हुई है। हर शेअ़रसे हसरतका इज़हार होता है। कमाल यह है कि आपने मीरो-ग़ालिबकी तक़लीद (अनुसरण) करते हुए अपने खास रंगको हाथसे नहीं जाने दिया है। ज़बानकी सफ़ाई, मज़ामीनकी रफ़अ़त (उड़ान) और बयानकी सलासत (प्रवाह) मअ़नी आफ़रीनी और नुक्तारसी (सार-गर्भितता)से दस्तोगरेबाँ है।"[१]

अ़ज़ीज़के बहुत-से शिष्योंमें-से कुछ ख्यातिप्राप्त शाइर ये हैं—'असर' लखनवी, 'जोश' मलीहाबादी, 'आशुफ़्ता' लखनवी, 'जिगर' बरेलवी,

---

[१] गुलकदा : दीबाचा पृ० १६।

'रशीद' लखनवी, जगमोहनलाल 'रवाँ', 'शेफ़्ता' लखनवी, 'कैफ़ी' लखनवी।

इनके ख्यातिप्राप्त शिष्योमे-से 'असर' लखनवीका परिचय तो इसी भागमे दिया गया है। शेष जो इनमे-से बहुत ख्यातिप्राप्त है, उनका उल्लेख शाइरीके नये दौरमे क्रमानुसार किया जायगा।

'अ़जीज' हजरत 'सफी' लखनवीके शिष्य थे, परन्तु गुरु-शिष्यमें किसी बातको लेकर नाचाकी हो गई थी। आपकी कविताओंका दीवान 'गुलकदा' १९३६मे प्रकाशित द्वितीय सस्करण हमारे समक्ष है। इसमे आपकी १९०५से १९१८ तककी ग़जलोंका संकलन १४४ पृष्ठोमे किया गया है। उनमे-से १२१ अशआ़र चुनकर पेश किये जा रहे है। २ अगस्त १९३५ को आपका निधन होगया।

अपने मरकज़की[1] तरफ़ माइलेपरवाज़[2] था हुस्न[3]।
भूलता ही नहीं आ़लम[4] तेरी अँगड़ाईका॥

जो यहाँ महवेमासिवा[5] न हुआ।
दूर उससे कभी ख़ुदा न हुआ॥
अ़हदमे[6] तेरे जुल्म क्या न हुआ।
ख़ैर गुज़री कि तू ख़ुदा न हुआ॥
यूँ-ही घुट-घुटके मिट गया आख़िर।
उक़्दए-दिल[7] किसीको वा[8] न हुआ॥
न मिली दादे-जब्तेइश्क़ 'अ़ज़ीज़'!
वोह कभी सब्रआज़मा न हुआ॥

---

[1]केन्द्रकी, लक्षकी; [2]उड़नेमे दत्तचित्त; [3]रूप; [4]मत्तता, शोभा, अन्दाज; [5]ईश्वरसे अतिरिक्तमें लीन; [6]जमानेमे, अधिकारके दिनोंमे; [7]दिलका भेद; [8]प्रकट।

ख़याल तक भी उधर ऐ ख़ुदा नहीं जाता।
मरीजेग़मका तसव्वुर[1] किया नहीं जाता॥
बयाने-हुरमते-सहबा[2] सही, मगर ऐ शेख़!
तेरी जबानसे उसका मज़ा नहीं जाता॥

हर इक क़दम तेरे कूचेमें एक आ़लम है।
कहाँतक अब मैं चलूँगा? चला नहीं जाता॥
हुजूमे-शौक़का[3] बस मुख़्तसर यह क़िस्सा है।
कि जो मैं चाहता हूँ, वह कहा नहीं जाता॥

जबाँ बयान करे मुद्दआ़-ए-दिल[4] क्योंकर?
किसीका हाल किसीसे कहा नहीं जाता॥
वोह सरज़मीन जहाँपर मज़ार है मेरा।
उधरसे अब कोई दर्द-आश्ना नहीं जाता॥

कुछ इन्तहा[5] भी है? लो, बन्द हो गई आँखें।
निगहने काम किया जबतक इन्तिज़ार किया॥
सितम है लाशपर उस बेवफ़ाका यह कहना—
"कि आनेका भी किसीके न इन्तिज़ार किया॥"
किसीने नज़अ़की[6] इस तरह गुत्थियाँ सुलझाईं।
सिरहाने बैठके हर साँसका शुमार किया॥
कुछ इसमें मसलहते-ज़ौक़े-ज़िन्दगी[7] भी थी।
'अ़ज़ीज़' वअ़देका उसके जो एअ़तबार किया॥

दिलको जहाँ सुकून[8] हुआ जिस्म सर्द था।
वोह मुद्दते-हयात[9] थी जब तक कि दर्द था॥

---

[1]ध्यान; [2]अंगूरी शराबकी प्रशंसा; [3]अभिलाषाओंकी भीड़का; [4]हृदयाभिलाषा; [5]हद, सीमा, अन्त; [6]मृत्युकी अन्तिम घड़ियोंकी; [7]जीवनाभिरुचिका हित्; [8]सन्तोष, चैन; [9]जीवन-काल।

हर आह खींचती है तनाबें फ़लककी अब।
वोह दिन गये कि हौसिलए-ज़ब्ते-दर्द[1] था॥
मुड़-मुड़के देखता था मैं वहशतमे बार-बार।
कोई तो मेरे साथ बयाबाँ-नवर्द[2] था॥

गिला[3] किससे? जब उसको इज़्तिराबे-दिल[4] पसन्द आया।
ख़ुदा ही को अज़लसे[5] शेवए-बिस्मिल[6] पसन्द आया॥
रगे-जाँने[7] वहीं की बढ़के हिम्मतकी क़दमबोसी[8]।
जहाँ हमको खय।ले-दूरिये-मंज़िल[9] पसन्द आया॥
ज़रा यह इन्तिख़ाब[10] उसकी निगाहेनाज़का[11] देखो।
कि आँसू बन रहा था जो वह ख़ूने-दिल पसन्द आया॥

आगे ख़ुदाको इल्म है क्या जाने क्या हुआ।
बस उनके मुंहसे याद है उठना नक़ाबका॥
मिन्नतकशे-असर[12] न हुई शुक्र है दुआ।
बढ़ता वगर्ना शौक़ दिले-बे-हिजाबका[13]॥

ऐ सकूनेमौत[14]! कोई जागनेकी हद भी थी?
सुबहे-हिज्र[15] आख़िर मेरी आँखोंमे ख़्वाब[16] आ ही गया॥
है मुहब्बतकी नज़रमें क्या मज़ा ख़ुद देख लो।
चार आँखें जब हुईं तुमको हिजाब[17] आ ही गाया॥

---

[1]दर्दको छिपानेका साहस; [2]अरण्यारोही; [3]शिकायत; [4]दिल का तड़पना; [5]अनादि कालसे, मनुष्य-सृष्टिके प्रारम्भसे; [6]अर्द्धमृतकपन; घायलपन; [7]जीवनकी नसोंने; [8]पाँव चूमे; [9]लक्ष्यकी दूरीका विचार; [10]चुनाव; [11]गर्वीले नेत्रोका, मश्रशूक़ाना नज़रका कमाल; [12]प्रभावका आभारी, असरवाली; [13]निर्लज्ज हृदयका; [14]मृत्युकी शान्ति; [15]विरहके प्रभातमे; [16]नीद; [17]हया, शर्म ।

किया है किसने याद अल्लाहो अकबर ! अब असीरोंको[1] !
कि तोड़ा जा रहा है क़ुफ़्ल[2] जंगआलूदा[3] जिन्दाँका[4] ॥

उनसे करता है दमे-नज़अ[5] वसीयत यह 'अज़ीज़'—
"ख़ल्क़[6] रोयेगी मगर तुम न परीशाँ होना ॥"

विसाले-दाएमी[7] क्या है ? शबे-फ़ुरक़तमें[8] मर जाना।
क़ज़ा क्या है ? दिलीजज़्बातका[9] हदसे गुज़र जाना[10] ॥
निसार[11] इस बचपनेके और इस नाज़ुक दिमाग़ीके।
सियह-बालोंसे अपने नींदमें ख़ुद आप डर जाना ॥
इन्हीं टूटी हुई क़ब्रोंमें है एक तुरबते-बेकस[12]।
ज़रा मुँह फेर लेना जानेवाले जब उधर जाना ॥

झेपते क्यों हो, जो सर-ता-ब-क़दम[13] देखते हैं।
यह कोई और नहीं है, तुम्हें हम देखते हैं ॥

उसकी शामे-गमपै सदक़े हो मेरी सुबहे-हयात।
जिसके मातममें तेरी ज़ुल्फ़ें परीशाँ हो गईं ॥

वाइज़ ! तेरी ज़बानसे सुनता तो ज़िक्रे-हूर[14]।
इतना ख़याल है कि कोई बदगुमाँ न हो ॥

ख़ुदा दुश्मनको दिखलाये न यूं बीमारकी हालत।
मगर अब आ गये हो तुम तो दमभर देखते जाओ ॥

---

[1]बन्दियोंको; [2]ताला; [3]जग लगा हुआ; [4]कारागृहका; [5]मृत्युके समय; [6]जनता; [7]स्थायी (अमर) मिलन; [8]विरह-रात्रिमें; [9]मृत्यु; [10]हृदयाभिलाषाओंका; [11]सीमा लाँघना; [12]न्योछावर; [13]असहायकी समाधि; [14]सरसे पाँवतक; [15]स्वर्गस्थ अप्सराओंका वर्णन।

फहते हैं चारागरोंसे[1] दमे-नज़अ[2] —
"है यह जागा हुआ सो लेने दो॥"
ज़ब्ते-गिरयाका[3] न दो हुक्म मुझे।
दिलमें कुछ दाग़ है धो लेने दो॥

ख़ुदा जाने दिले-नाकाम, क्या हो?
हमारा देखिए अंजाम क्या हो?

कहके बीमारसे यह बुझ गई शमअ़–
"रात होती है यूँ बसर देखो॥"

दैरोकअ़बेमें[4] फ़र्क़ क्या है 'अज़ीज़'!
सिर्फ़ पाबन्दियाँ हैं मज़हबकी॥

सारी ख़िलक़त[5] हश्रमें[6] अपनी तमाशाई हुई।
दादख़्वाहीको[7] गये थे उल्टी रुसवाई हुई॥

वाँ नामाबरकी[8] ख़ाकका भी अब पता नहीं।
बैठे हैं इन्तिज़ारमें हम याँ जवाबको॥

मुझे बे इख़्तियार आता है रोना।
न पूछो ज़िन्दगी क्योंकर बसर की॥

मेरे रोनेपै यह हँसी कैसी?
ऐ सितमगर! यह दिल्लगी कैसी?

इक ख़ुदाई जान देनेके लिए तैयार है।
क्या क़यामत है कमरसे बाँधना शमशीरका॥

---

[1]चिकित्सकोंसे; [2]मृत्युके समय; [3]विलाप रोकनेका, आँसू पीनेका; [4]मन्दिर-मस्जिदमें; [5]जनता; [6]ईश्वरीय न्यायालयमें; [7]न्याय चाहनेको; [8]सन्देशवाहककी।

हम तो दिल ही पर समझते थे बुतोंका[1] इख्तियार।
नसबे-कअ़बेमें[2] भी अबतक एक पत्थर रह गया॥
दिलकी बेचैनी कोई देखे ज़रा इस बज़्ममें[3]।
जब कोई आया तो मैं जानू[4] बदलकर रह गया॥
जा चुके अहबाब[5] रोकर उठ चुकी मातमकी सफ़[6]।
आप कब आये कि जब ख़ाली मेरा घर रह गया॥
देख ली दुनिया चलो शहरे-ख़मोशां[7] अब 'अ़ज़ीज़'!
क़ाबिले-दीद[8] इक यही दिलचस्प मंज़र[9] रह गया॥

रब्ते-देरीनासे बाक़ी है तअ़ल्लुक़ फिर भी।
लाख कअ़बेसे बनाये कोई बुतख़ाना जुदा॥

कब पूछते हैं आके मिज़ाजे-मरीज़े-इश्क़।
जब बदनसीब बातके क़ाबिल नहीं रहा॥*

मेरा मातम फ़क़त था रौनक़े-ग़मख़ानए-हस्ती।
रही आबाद दुनिया भी रहा जबतक कि ग़म मेरा॥
'अ़ज़ीज़' अब कौन-सा वक़्त आ गया? क्या होनेवाला है?
कि वोह ख़ुद पूछते हैं हाल-आकर दम-ब-दम मेरा॥

ख़ुदाका काम है यूँ तो मरीज़ोंको शिफ़ा[10] देना।
मुनासिब हो तो इकदिन हाथसे अपने दवा देना॥
शिगाफ़[11] इक हो चला तुरबतमें[12] जाँ आने लगी मुझमें।
ज़रा ऐ जानेवाले! क़ब्रपर फिर मुस्करा देना॥

---

[1]मश्रुओंका; [2]काबेकी नीवमें; [3]महफिलमें; [4]घुटने; [5]इष्ट-मित्र; [6]रुदन करनेवालोंकी पंक्ति; [7]मरघटकी ओर; [8]दर्शनीय; [9]दृश्य; [10]आरोग्यता; [11]सूराख; [12]कब्रमें।

*कहते हैं जब रही न मुझे ताक़ते-सुख़न।
"जानूं किसीके दिलकी मैं क्योंकर कहे बग़ैर॥" —ग़ालिब

मेरी मैयतपै किस दअ़वेसे वोह कहते हुए आये—
"हटा देना ज़रा इन रोनेवालोंको हटा देना।।"

पैदा वह बात कर कि तुझे रोएँ दूसरे।
रोना ख़ुद अपने हालपै यह ज़ार-ज़ार क्या?
रुक जाये बात-बातपर जिस नातवाँकी साँस।
ऐसे मरीज़े-ग़मका भला एअ़तबार क्या।।

यह कहके लगाई है किसी शोख़ने ठोकर—
"देखूँ तो कोई क़ब्रसे क्योंकर न उठेगा।।"

बढ़ गये कुछ और उनके हौसले।
रोनेवालोंको हँसाना ही न था।।
कल ज़माना ख़ुद मिटा देता जिन्हें।
ऐसे नक़्शोंको मिटाना ही न था।।
बेपिये वाइज़को मेरी रायमें।
मस्जिदे-जामअ़में जाना ही न था।।

नया-नया जो किसी शोख़का शबाब[1] आया।
उठाके आईना देखा तो ख़ुद हिजाब[2] आया।।
तमाम अंजुमने-वअ़ज़[3] हो गईं बरहम[4]।
लिये हुए कोई यूँ सागरे-शराब आया।।
मरीज़े-हिज्रकी[5] ऐसोंको क़द्र[6] क्या होगी?
उठे हैं नींदसे जब सरपै आफ़ताब[7] आया।।

ग़श खाते-खाते दर्दे-दिल उसको सुना दिया।
फिर कुछ ख़बर नहीं कि जवाब उसने क्या दिया।

---

[1]यौवन, रूप; [2]लाज; [3]उपदेश-सभाएँ; [4]तितर-बितर, जनशून्य; बरह-रोगीकी; [6]चिन्ता; [7]सूर्य।

बेताब होके ज़ोअ़फ़में[1] भी आँख खोल दी।
जब गोशए-नक़ाब[2] किसीने हटा दिया॥

वोह दिले-बेख़ुद ख़ुदा बख़्शे मुझे याद आ गया।
जब कोई अँगड़ाइयाँ लेता हुआ सोकर उठा॥
हँस रहा है देखकर यह कौन तुझको देरसे।
सर उठा ऐ दिलसे बातें करनेवाले सर उठा॥

क्या बताऊँ उसकी चश्मे-नाज़का आ़लम 'अ़ज़ीज़'!
मैकदेमें हुस्नके छलका हुआ पैमाना था॥

जो मैं ज़िन्दा भी हो जाता तो फिर फ़ुरक़तमें[3] मर जाता।
वोह आते थे तो उनको लाशपर आने दिया होता॥
लहू रोती है चश्मे-इबरत[4] इस बेदादे-गुलचींपर[5]।
अभी फूलोंको अपने रंगपर आने दिया होता॥

ख़ाक क्यों छान रहा है बतला।
था भी दिल पास तेरे याद तो कर॥
वोह तसल्ली ही सही ऐ सैयाद!
कुछ मुअ़य्यन[6] मेरी मीआ़द तो कर॥

ग़ाफ़िल फ़रेफ़्ता[7] है चमनकी बहारपर।
गुल हँस रहे हैं हस्तिए-बे-एअ़तबारपर[8]॥
वअ़दा किया था "ख़्वाबमें सूरत दिखाएँगे"।
सोया किया हमेशा इसी एअ़तबारपर॥
उठनेको तेरे दरसे उठा तो मगर न पूछ।
जो कुछ गुज़र गई दिले-बेइख़्तियारपर॥

---

[1]कमजोरीमें; [2]नकाबका कोना; [3]विरहमें; [4]नसीहत लेनेवाली आँख; [5]फूल तोडनेवालेके जुल्मपर; [6]निर्धारित; [7]अनुरक्त; [8]क्षणभगुर जीवनपर।

यह अपना-अपना मुक़द्दर यह अपना-अपना नसीब।
ज़मानेभरको हँसाये, हमें रुलाये बहार॥
कलीसे फूल बना, फूलसे बनी मिट्टी।
वोह इब्तिदाए-बहार[1] और यह इन्तिहाए-बहार[2]॥

काश! सुनते वोह पुर असर बातें।
दिलसे जो की थीं उम्रभर बातें॥

क़फ़समें[3] जी नहीं लगता है आह फिर भी मेरा।
यह जानता हूँ कि तिनका भी आशियाँमें[4] नहीं॥

भला जब्तकी भी कोई इन्तिहा है?
कहाँतक तबिअ़तको अपनी सम्भालें?

मर गया बीमारे-उल्फ़त उनसे इतना कहके बस—
"जाइए अब आपसे कोई गिला बाक़ी नहीं॥"

लो वह भी सर झुकाये हुए साथ-साथ है।
यूं भी किसीकी लाश उठी है ज़मानेमें॥
वोह दिन गये 'अ़ज़ीज़' कि हँसते थे रात-दिन।
मिलता है चैन दिलको अब आँसू बहानेमें॥

रूहको जिस्ममें ग़नीमत जान।
एअ़तबार इसका क्या? रही न रही॥

यक़ीन है मुझे मुलाक़ात उससे हो जाये।
तेरी तलाशमें पहले जो आप खो जाये॥

---

[1]बहारका प्रारम्भ; [2]बहारका अन्त; [3]पिंजरेमें; [4]घोंसलेमें।

करते 'अज़ीज़' नाजिश[1] रहमतपर उसकी फिर क्यों?
तअ़ज़ीर[2] भी वोह देता जब हम गुनाह करते॥

शर्मके उसने मुझको गलेसे लगा लिया।
मायूसिये-निगाह[3] अ़जब काम कर गई॥

याद आ ही जाता है कभी नासेहका[4] क़ौल भी—
"सब कीजिए जहाँमें मुहब्बत न कीजिए॥"

कहती है रूह[5] "आई है जितनी कि हिचकियाँ—
उतनी ही मैंने ठोकरें खाई हैं राहकी॥"

महशरमें[6] उनको देखके अल्लाहरी खुशी।
तरदीद[7] कर रहा हूँ ख़ुद अपने गवाहकी॥
उड़ती हुई यह ख़ाक, परेशान यह हवा।
तशरीह[8] है 'अ़ज़ीज़'के हाले-तबाहकी॥

देखकर जानिबे-बिस्मिल[9] वह किसीका कहना—
"ख़ुद-ब-ख़ुद उसके तड़पनेपै हँसी आती है॥"

लाख आबादियाँ निसार[10] इसपर।
अल्लाह-अल्लाह यह किसकी तुरबत[11] है?
जिस तरह चाहो दरसे[12] उठवा दो।
एक बेकसकी[13] क्या हक़ीक़त है॥

उनको सोते हुए देखा था दमे-सुबह कभी।
क्या बताऊँ जो इन आँखोंने समाँ देखा है॥

---

[1]गर्व; [2]दण्ड; [3]निराश दृष्टि; [4]नसीहत देनेवालेका; [5]आत्मा; [6]ईश्वरीय न्यायालयमें; [7]विरोध, असत्य सिद्ध; [8]भाष्य; [9]घायलकी ओर; [10]न्योछावर; [11]समाधि; [12]दरवाज़ेसे; [13]असमर्थकी।

कोई इस बेकसीसे रोता है?
इश्क़के दिलमें दर्द होता है॥
जिसके मरनेकी हो ख़ुशी तुमको।
ऐसी मय्यतमे[1] कौन रोता है?

ताबूतको[2] अज़ीज़के आहिस्ता ले चलो।
टुकड़े सब उस शहीदे-मुहब्बतकी लाश है॥

मुहब्बतके जरीदेसे[3] हमारा नाम कट जाता।
तो इतनी सब्रकी क़ूवत[4] भी रुख़सत हो गई होती॥
अभी तहतक हक़ीक़तकी नज़र पहुँची नहीं ज़ाहिद[5]!
नज़र बुनियादमे कअ़बेकी इक बुतख़ाना आता है॥
ख़ुदा जाने वोह क्यों शर्मके उठ जाते हैं महफ़िलसे?
क़रीबे-शमअ़ जब परवानेपर परवाना आता है॥

बालींपै[6] मेरी कहके किसीने यह खोले बाल—
"देखें तो इम्तियाज़[7] उसे शामो-सहरमें[8] है॥"

मंज़रे-जज़्बात[9] है ख़िलवतसराए-दैर[10] भी।
कअ़बेवालो! फ़र्ज़ है तुमपर वहाँकी सैर भी॥

हम उसी ज़िंदगीपै मरते हैं।
जो यहाँ चैनसे बसर न हुई॥

दिलने दुनिया नई बना डाली।
और हमें आजतक ख़बर न हुई॥

---

[1]अर्थीपर; [2]अर्थीको; [3]प्रेमकार्यालयसे; [4]शक्ति; [5]विरक्त, परहेजगार; [6]सिरहाने; [7]पहचान, होश; [8]सुबह-शाममे; [9]भावुक दृश्य; [10]मन्दिर का एकान्त स्थान।

दमे-आख़िर लिखे थे जिसमें अपने तजरुबे तुमको।
वोह ख़त्ते-शौक़ देखूँ किसके-किसके काम आता है?

यह कहके बज़्मे-नाज़मे इक जाम पी लिया।
"कबतक रखें उमीद शराबे-तहूरकी[1]॥"
होता नहीं है कोई ज़मानेमें क्या जवाँ।
अल्लाह कोई हद है तुम्हारे ग़ुरूरकी॥

हिफ़ाज़त करनेवाले ख़िरमनोंके[2] मुतमइन[3] बैठे।
तजल्ली बर्क़की[4] महदूद[5] मेरे आशियां[6] तक है॥

यह कहके ख़त्म शमअ़ने की मुद्दते-हयात—
"कबतक अकेला क़ब्रपर रोया करे कोई॥"

अँगड़ाई लेके किसने यह चटकाई उँगलियाँ?
दो हिचकियोंमें ख़त्म जो बीमार हो गया!

हूँ आ़लमे-हैरतमें जीता हूँ न मरता हूँ।
अब दिलकी यह हालत है हँसते हुए डरता हूँ॥

चुटकियाँ लेकर न पूछो दर्दे-दिल कुछ कम हुआ?
जब हटाया हाथ तुमने फिर वही आ़लम हुआ॥
मर गया था मैं नज़ाकत देखकर जिनकी 'अ़ज़ीज़'।
हैफ़ उन्हीं हाथोंसे महफ़िलमें मेरा मातम हुआ॥

'अ़ज़ीज़' इस क़दर हमने सिज्दे किये।
ख़ुदा उनको आख़िर बना ही दिया॥

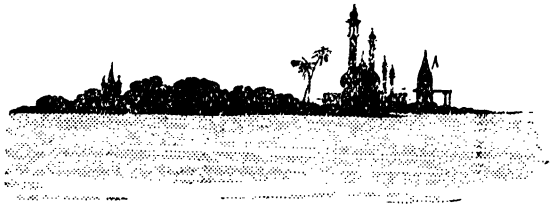
---

[1]पवित्र शराबकी; [2]खेतोंमे पडे हुए अन्नके ढेरके; [3]शान्तिसे, इत्मीनानसे; [4]बिजलीकी कौन्द; [5]सीमित; [6]घोसला।

इशरतकदेको[1] ख़ानए-वीरां[2] बनाएँगे।
छोटा-सा अपने घरमें बयाबां बनाएँगे॥

माना दलीलेसौदा[3], गर है फ़िज़ूल बकना।
दीवाना था अगर मैं नासेहको क्या हुआ था?

बैठे हैं बालींपै वोह शिकवोंके दफ्तर हैं खुले।
ऐ अजल! फिर जा कि मरनेकी हमें फ़ुर्सत नहीं॥



जेहनमें आया न फ़र्क़े-इम्तियाज़ी[4] आजतक।
मुद्दतों देखा है हमने कअ़बा भी और दैर भी॥

१३ दिसम्बर १९५० ई०

---

[1]सुखनिवासको; [2]वीराना, उजड़ा घर; [3]पागलपनकी पहचान; [4]मुख्य भेद, खास फ़र्क़।



नज़र लखनवी

[१८६६ – १९२३ ई०]

मुंशी नौबतराय 'नज़र' लखनऊके कायस्थ परिवारमें १८६६ ई० में उत्पन्न हुए और १९२३ ई० में स्वर्गस्थ। मध्यवर्ती युगके प्रसिद्ध महाकवि 'मुस्हफ़ी'[1] की शिष्य परम्परामें उत्पन्न आग़ा 'मज़हर' के १८८४ ई० में शिष्य बने। आपका समस्त जीवन भरण-पोषणकी चिन्ताओं और इष्ट-वियोगमें विलखते हुए व्यतीत हुआ। क़लमके मज़दूर थे। १८९७ ई० में आपने 'ख़दंगे-नज़र' मासिक पत्र प्रकाशित किया, जो कि अर्थाभावके कारण सात वर्ष बाद बन्द कर देना पड़ा। १९०५ ई० में आप कानपुरके 'ज़माना' मासिक पत्रके संपादकीय विभागमें चले गये। वहाँसे १९१० में प्रयाग जाकर इण्डियन प्रेससे 'अदीब' प्रकाशित किया। प्रयागमें एक वर्ष रहे, फिर कुछ दिन बाद 'ज़माना' आफ़िसमें रहे। कुछ दिनों बाद 'अवध' लखनऊ की संपादकी मिल गई थी।

उदर-पोषणके लिए इधर-उधर मारे-मारे फिरने और घोर परिश्रमके कारण स्वास्थ्य चौपट हो गया। स्वासके भी पुराने रोगी थे।

'नज़र' आर्थिक चिन्ताओंके साथ-साथ सन्तानवियोगसे भी पीड़ित रहे। लड़का कोई हुआ नहीं। एक लड़की, एक नवासा, एक बूढ़ी माँ

---

[1] मुस्हफ़ीका परिचय और कलाम शेर-ओ-सुख़न प्रथम भागमें दिया जा चुका है।

घरकी जीनत थे। नवासेको प्यार-दुलार करके समस्त ग़मोको भुलाये रहते थे। भाग्यको यह सुख भी सह्य न हुआ। नवासा भी उनकी गोदसे छीन लिया।

थमो-थमो कि इस उजड़े मकाँका था यह चिराग़।
बहारपर था इसी नौनिहालसे[1] यह बाग़॥
न होगा अब मुझे हासिल कभी जहाँमे फ़राग़[2]।
तमाम उम्र दिले-नातवाँ[3] है और यह दाग़॥
फ़ुग़ाने-बुलबुले-जाँ[4] दिलके पार होती है।
'नज़र'के बाग़से रुख़सत बहार होती है॥

और सचमुच उनके घरसे बहार रुखसत हो गई। थोड़े दिन बाद बूढ़ी माँ भी चल बसी। पड़ोसमे एक बच्चा था, उसको लाड-प्यार करके साथ मुलाके नवासेके ग़मको भुलानेका प्रयत्न करने लगे तो एक रोज़ वह भी छतसे गिर कर मर गया। 'नजर' इस सदमेको बर्दाश्त न कर सके और स्वय भी यह शेअर कहकर इस व्यथा भरी जिन्दगीसे किनारा कर गये—

ऐ इनक़लाबे-आलम! तू भी गवाह रहना।
काटी है उम्र हमने पहलू बदल-बदलकर॥

'नजर' का कलाम व्यथासे ओत-प्रोत है। आप शाइर ही नही, अच्छे आलोचक और पत्रकार भी थे। आपकी कलमी तसवीर रशीदहसन साहब यूं खीचते है—

"नज़र" मियाना कद थे। दुबले-पतले, गन्दुमीरग—लिबासमे सादगी, मिज़ाजमे नफ़ासत, नमूदो-नुमाइशसे हद दर्जे मुज्तनिब[5]। गुरूरो-

---

[1]नवविकसित पौधेसे; [2]चैन; [3]निर्बल हृदय; [4]दिलरूपी बुल-बुलकी आह, चीत्कार; [5]आत्म-विज्ञापनसे दूर।

तकब्बुर छूतक न गया था। 'नजर' जितने अच्छे शाइर थे, उससे ज्यादा अच्छे इन्सान थे। जितने उम्दा शेअर कहते थे, वैसे ही खुशनवीस-ओ-मुसव्विर भी थे। शतरंजका भी शौक़ था।"

'नजर' लखनऊके उस युगमें उत्पन्न हुए थे, जब कि वहाँ खारिजी[1] शाइरीका बोलबाला था। जिसकी वजहसे लखनऊ आजतक बदनाम है। गो वहाँ वर्त्तमान युगमें एक भी शाइर खारिजी रंगका अनुयायी नहीं है, और एक-से-एक बेहतर शाइर उत्पन्न करनेका लखनऊको सौभाग्य प्राप्त है। फिर भी पुराना दाग मिटाये नहीं मिटता। यह माना कि नजरके युगमें खारिजी शाइरीके विरोधमें चारों तरफ आवाजें उठने लगी थीं। लेकिन लखनऊके शाइरोंपर इस विरोधका बहुत कम असर हुआ था। प्रचलित परम्पराके विरुद्ध कहना हर-एकके बसकी बात नहीं। इसी विरोधके कारण 'यगाना' चंगेजी-जैसा जबर्दस्त और निर्भीक शाइर तिरस्कृत और उपेक्षित करके बर्बाद कर दिया गया, तब सर्व-साधारणकी तो बिसात ही क्या थी ?

'नजर'की विशेषता यही है कि उन्होंने उस वातावरणमें भी शुद्ध शाइरीके दामनको हाथसे नहीं छोड़ा। हजरत रशीद हसन खाँ लिखते हैं—

"नज़र अपने मआसिर (समकालीन) से इसलिए मुमताज (श्रेष्ठ) हैं कि उन्होंने माहौल-ओ-पसन्दे-ज़माना (वातावरण और जनताकी रुचि) को बिलकुल नहीं देखा। मजाके-आमियाना (आम जनताकी रुचि) की पैरवी करके फ़तवाए-उस्तादी-ओ-सुखनवरी (उस्तादी और शाइरीकी धर्माज्ञा) लेना गवारा नहीं किया, बल्कि रूहे-शाइरी (शाइरीकी आत्मा) को अपनाया। सस्ती शुहरतसे रू-कश होकर लताफ़ते

---

[1] खारिजी अथवा लखनवी शाइरी क्या है, यह विस्तारपूर्वक 'शेरो-सुखन' प्रथम भागमें उल्लिखित हुआ है। पाँचवें भागमें भी सिंहावलोकनमें ज़िक्र आया है।

ख़याल-ओ-सदाकते-बयानकी अकलीमपर तसर्रुफ़ (वास्तविक कलापर ध्यान केन्द्रित) किया। यह जरूर है कि 'नजर'को इसकी कीमत बहुत गिराँ देनी पडी। यअनी लखनऊने अपना रवायती सुलूक (परम्परा-का व्यवहार) दुहराया। उनकी शाइरीकी तरफसे ऐसी आँखे फेर ली, जैसे कि वे शाइर ही नही थे। सदहा मुशाइरोंको नुमायाँ किया, लेकिन 'नजर' का नाम लेना भी तौहीने-अदब (साहित्यका अपमान) समझा। आज आपको वहाँकी महफिलोंमे सबका तजकिरा (इतिहास) मिलेगा। उनका भी जो किसी एअतबारसे इसके मुस्तहक (अधिकारी) नही। लेकिन 'नजर' का नाम किसी उनवानके तहत भी (शाइर, आलोचक, पत्रकार, चित्रकार, आदिमे) न आयेगा। जैसे कि इस नामका कोई शाइर वहाँ गुजरा ही नही। हद यह है कि आज कोई शख़्स उनका मजमूअए-कलाम (शाइरीका सकलन) देखना चाहे तो नही देख सकता। कितना बडा अलमीया (दुःख) है कि उस शख़्सका दीवानतक मुरत्तब न हो सके, जो सही मअनोंमे लखनऊके लिए निशानेराह (मीलका पत्थर) था, और इसलाहकी इब्तिदा करनेवाला। ऐसे शाइरका जिमनी तौरपर भी तजकिरा न आ सके जो मजाके-आममे गुरेजाँ (सस्ती जनरुचिसे परे) था और 'मीर' का मोअतकिद (अनुयायी)।···'नजर' की ना-क़दरी लखनऊकी जिबींपर यादगारे-दाग़ रहेगी।

'नजर'के कलाममे वोह सादगी और दर्द जरूर है जो मीर-ओ-दर्दका सरमाया है। 'नजर'की जबानमे बेहद लोच है और तर्जे-अदामे बलाका सोजोगुदाज। हर शेअर असरमे डूबा हुआ होता है। 'नजर'के कलामकी एक वोह खुमूमियत, जो उन्हें अपने मआसिरीन (समकालीनों) मे बुलन्दतर कर देती है, यह है कि तमाम कलाममे इब्तजाल-ओ-रकीक (जलील, हकीर, आम कमीनापन) की एक मिसाल भी नही मिल सकती। एक शेअर भी ऐसा नही मिलेगा, जिसमे मज़ाक़े-आमियानाका शाइबा भी हो। हद यह है कि कोई गजल ऐसी नही मिलेगी, जिसमे एक भी शेअर भर्तीका हो और

अपने मअ्यारसे गिरा हुआ। एक पैराय-ए-बयान भी ऐसा नहीं मिलेगा, जो कि उस ज़मानेके रंगसे मिलता जुलता हो। कही भी वस्लो-हिज्रका सोक़ियाना (बाजारी स्त्रियों संबंधी) बयान नही मिलेगा, और एक जगह भी मुहमिल इस्तिआरात (न समझमे आनेवाली उपमाएँ) और फ़रसूदा तखैयुलात (घटिया कल्पनाओं) का परतव नज़र नही आयेगा। यह वोह खूबी है जो हरेकको नसीब नही होती।"[1]

फ़ना[2] होनेमें सोज़े-शमअ़की[3] मिन्नतकशी[4] कैसी ?
जले जो आगमें अपनी उसे परवाना कहते है॥

अभी मरना बहुत दुश्वार है ग़मकी कशाकशसे[5]।
अदा हो जायगा यह फ़र्ज़ भी फ़ुर्सत अगर होगी॥

मुआफ़ ऐ हमनशीं[6] ! गर आह कोई लबपै आ जाये।
तबीअ़त रफ़्ता-रफ़्ता खूगरे-दर्दे-जिगर[7] होगी॥

मुजस्सिम[8] दाग़े-हसरत[9] हूँ, सरापा नक़्शे-इबरतका[10]।
मुझे देखो ! यही अंजाम है, आखिरको उलफ़तका॥

सुन लो कि रंगे-महफ़िल कुछ मोअ़तबर[11] नहीं है।
है इक जबान गोया, शमअ़े-सहर[12] नहीं है॥

मुद्दतसे ढूँढ़ता हूँ मिलता मगर नहीं है।
वोह इक सकूने-खातिर[13] जो बेशतर[14] नहीं है॥

---

[1]'निगार' सितम्बर १९४९, पृ० ३९-४४; [2]मरनेमें; [3]दीप-शिखाकी जलन; [4]खुशामद; [5]खीचातानीसे; [6]पड़ौसी, मित्र; [7]जिगरके दर्दकी अभ्यस्त; [8]पूर्ण-रूपेण; [9]अभिलाषाओंका दाग़; [10]नसीहतका सरसे पाँवतक आकार हूँ; [11]विश्वस्त; [12]सुबहका दीपक; [13]पूर्ण शान्ति; [14]अक्सर, अधिकांश।

यूं तो दिलको कभी क़रार न था।
अब बहुत बेक़रार रहता है॥

दिलकी हालत नहीं बदलनेकी।
अब यह दुनिया नहीं सम्भलनेकी॥

बस एक नज़र और कि अब ख़त्म है क़िस्सा।
फिर होगी न तुमको मेरे मरनेकी ख़बर भी॥

हुई है क्या जाने क्या बुराई, क़फ़ससे पाते नहीं रिहाई।
गुलोंकी बूतक न उड़के आई, इधरकी शायद हवा नहीं है॥

इतनी ही रह गई है अब काएनात[1] दिलकी।
देखोगे जब तुम आकर कुछ इज़्तिराब[2] होगा॥

न हुई जल्वा-गहे-नाज़की[3] वुसअ़त[4] मअ़लूम।
गो मैं हर ज़र्रेको एक दीदए-हैरां[5] समझा॥

तबाही दिलकी देखी है जो हमने अपनी आँखोंसे।
हो अब कैसी ही बस्ती हम उसे वीराना कहते हैं॥

कोई मुझ-सा मुस्तहक़े-रहमो-ग़मख़्वारी[6] नहीं।
सौ मरज़ है और बज़ाहिर कोई बीमारी नहीं॥

इश्क़की नाकामियोंने इस क़दर खींचा है तूल।
मेरे ग़मख़्वारोंको अब चारा-ग़मख़्वारी नहीं॥

क़फ़ससे छुटके हुआ बाग़-बाग़ दिल कैसा?
बहार दे गया उजड़ा हुआ नशेमन भी॥

---

[1]पूंजी; [2]बेचैनी; [3]माशूक़के सौन्दर्य्य-सदनकी; [4]विशालता; [5]चकित दृष्टि; [6]दया-पात्र।

ख़िज़ाँ अंजाम है सबकी, बहारे चन्द रोज़ाकी।
बहुत रोता हूँ सूरत देखकर गुलहाए-ख़न्दाँकी[1]॥

पर्दा उठा दे इक दिन तू ऐ हिजाबे-हस्ती[2]!
पाता हूँ उसको दिलमें देखा मगर नहीं है॥

आते-आते रुक गया है, दम जो मुझ दिलगीरका।
आह भरकर मुन्तज़िर हूँ आहकी तासीरका॥

वोह एक तुम कि सरापा बहारो-नाज़िशे-गुल[3]।
वोह एक मैं कि नहीं सूरत-आशनाये-बहार[4]॥

ज़मींपै लाल-ओ-गुल बनके आशिकार[5] हुआ।
छुपा न ख़ाकमें जब हुस्ने-ख़ुदनुमाए-बहार॥

तअ़ल्लुक़[6] -गुलो-शबनम है राज़े-उलफ़त[7] भी।
उन्हे हँसाये, जहाँतक हमे रुलाये बहार॥

दिल था तो हो रहा था, एहसासे-ज़िन्दगी[8] भी।
ज़िंदा हूँ अब कि मुर्दा, मुझको ख़बर नहीं है॥
मरनेपै जिस्मे-ख़ाकी[9] क्या साथ रूहका[10] दे।
राहे-अदममें[11] ग़ाफ़िल! गर्दे-सफ़र[12] नहीं है॥
बेसाख़्तगीये-जोशेजुनूँ[13] दाद-तलब[14] है।
चल निकले हैं, गो हमने बयाबाँ[15] नहीं देखा॥
सोज़ाँ[16] ग़मे-जावेदसे[17] दिल भी है जिगर भी।
इक आहका शोअ़ला[18] कि इधर भी है उधर भी॥

---

[1]विकसित फूलकी; [2]जीवनकी शर्म; [3]बहारकी सम्पूर्ण शोभा लिये हुए; [4]बहारसे परिचित; [5]प्रकट; [6]सम्बन्ध; [7]प्रेमका भेद; [8]जीनेका आभास; [9]मट्टीका बना शरीर; [10]आत्माका; [11]परलोक-मार्गमे; [12]धूल-मिट्टी; [13]उन्मादका निःसंकोच जोश; [14]शाबासीके योग्य; [15]जंगल; [16]जलता हुआ; [17]स्थाई व्यथासे; [18]चिनगारी,।

वोह अंजुमने-नाज़[1] है और रंगे-तग़ाफ़ुल[2]।
याँ मरहलए-आह[3] भी, अन्दोहे-असर[4] भी॥
वोह शमअ़ नहीं है, कि हों इक रातके मेहमाँ।
जलते हैं तो बुझते नहीं हम वक़्ते-सहर[5] भी॥
जीनेके मज़े देख लिये तेरी बदौलत।
अब-ओ दिले-नाकामे-तमन्ना[6] कहीं मर भी॥

अपनी शबे-हिजराँमें[7] नहीं दख़्ले-तग़य्युर[8]।
बातिल[9] है यहाँ फ़ल्सफ़ए-शामो-सहर[10] भी॥
सुनता हूँ कि ख़िरमनसे[11] है बिजलीको बहुत लाग।
हाँ एक निगाहे-ग़लत-अन्दाज़ इधर भी॥

मेरी सूरत देखकर क्यों तुमने ठंडी साँस ली?
बेकसोंपर रहम आईने-सितमगारी[12] नहीं॥

हर तरफ़से यह सदा आती है मुल्के-हुस्नमें—
"यह वोह दुनिया है जहाँ रस्मे-वफ़ादारी नहीं।"

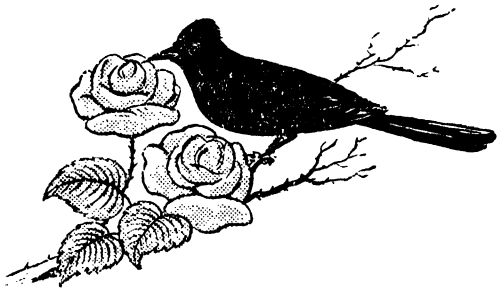
सवादे-शामे-ग़मसे[13] रूह थर्राती है क़ालिबमें[14]।
नहीं मअ़लूम क्या होगा, जो इस शबकी[15] सहर[16] होगी॥
क़फ़ससे छूटकर पहुँचे न हम, दीवारे-गुलशनतक।
रसाई आशियाँतक किस तरह बेबालो-पर होगी॥

---

[1]प्रेयसीकी महफ़िल; [2]उपेक्षा-भाव; [3]आहकी समस्या; [4]आहके असर न होनेका दुःख; [5]प्रातःकाल; [6]अभिलाषामें असफल हृदय; [7]वियोगरात्रिमें; [8]परिवर्त्तनका इख़्तियार; [9]निरर्थक; [10]सन्ध्या-प्रातःकालकी दार्शनिक चर्चा; [11]खलिहानसे; [12]अत्याचारका नियम; [13]ग़मरूपी सन्ध्याकी कालिमासे [14]शरीरमें; [15]रात्रिकी; [16]सुबह।

फ़क़त इक साँस बाक़ी है, मरीज़े-हिज्रके तनमें।
यह काँटा भी निकल जाये तो राहतसे बसर होगी॥

हर क़दमपर बाग़े-आ़लममें बिछा है दामे-हुस्न[1]।
कौन ऐसा है जिसे ज़ौक़े-गिरफ़्तारी[2] नहीं॥



जहाँमें चार दिन रहकर फ़क़त बूए-वफ़ा देना।
गुलोंसे मैं सबक़ लेता हूँ आईने-मुहब्बतका[3]॥

२५ फ़रवरी १९५२

---

[1]सौन्दर्य-जाल; [2]बन्दी होनेका चाव; [3]प्रेमधर्मका।



सैयद अहमद 'नातिक़' मुहम्मद अब्दुल वशीर 'वास्ती' बिल्गरामीके पुत्र थे। आपके पूर्वज बग़दादसे भारत आये थे। नातिक़ १८७८ ई० में लखनऊमें जन्मे और वहीं शिक्षा प्राप्त की। यूनानी हिकमतका पेशा करते थे। खेद है कि पूर्वी पाकिस्तानके चटगाँवमें १९५१ ई० में आपकी मृत्यु हो गई। आप ग़ज़लके माने हुए उस्ताद थे।

आपके स्वयं के पसन्दीदा अशआर निगार जनवरी १९४१ में छपे थे, उनमें-से चन्द यहाँ साभार दिये जा रहे हैं—

अपना-अपना हाल कह लेने दो 'नातिक़' सबको तुम।
जानता है वह कि किसके दिलमें कितना दर्द है॥

जो न सँभला इब्तिदाए-इश्क़में[1]।
फिर वह आख़िरतक सँभल सकता नहीं॥

गुज़ारी देखने में उसको सारी ज़िन्दगी मैंने।
मगर यह शौक़ है देखा नहीं गोया कभी मैंने॥
मुहब्बत एक मुद्दतसे है, यह मअ़लूम होता है।
तुम्हें हर चन्द पहिली बार देखा है अभी मैंने॥

मैकशो मैकी कमी-बेशीपै इतना जोश है।
यह तो साक़ी जानता है किसको कितना होश है॥

---

[1]प्रेमके प्रारम्भमें।

कह रहा है शोरे-दरियासे समन्दरका सुकूत[1] —
"जिसका जितना ज़र्फ़[2] है उतना ही वोह ख़ामोश है ।।"

इब्तिदासे[3] आजतक 'नातिक़' यही है सरगुज़िश्त[4]।
पहिले चुप था, फिर हुआ दीवाना, अब बेहोश है ।।

किये जा याद सारी उम्र उस हल्लाले-मुश्किलको[5]।
किसी दिन एक हिचकीमें गिरह खुल जायगी दिलकी ।।

मुबारक तुमको जलवा, और चश्मे-ख़ूँफ़िशाँ[6] मुझको।
तेरा नज़्ज़ारा करलूँ, इस क़दर फ़ुर्सत कहाँ मुझको ।।

वोह बेनक़ाब कहीं बेनक़ाब होता है ।
कि आफ़ताब ख़ुद अपना हिजाब[7] होता है ।।

मजाल किसकी जो दे साथ उसकी मंज़िलतक।
कहीं वही न हो, सूरत बदलके रहबरकी[8] ।।

सबसे बेहतर मैं, कि मेरा ज़िक्र उस महफ़िलमे है।
मुझसे बेहतर वोह कि जिसकी याद उसके दिलमे है ।।
मुझसे छुप सकती नहीं है आपकी कोई अदा ।
दिल मेरा आईना है और आपकी महफ़िलमें है ।।

राज़[9] अगर कौनैनके[10] ज़ाहिर हुए 'नातिक़' तो क्या ।
काश वोह मअ़लूम हो जाये जो उसके दिलमें है ।।

---

[1]शान्त वातावरण, [2]पात्रता, गौरव; [3]प्रारम्भसे, शुरूआसे; [4]स्थिति; [5]मुश्किल हल करनेवालेको; [6]रक्त बरसानेवाली आँखे; [7]पर्दा; [8]पथ-प्रदर्शककी; [9]भेद; [10]दोनों संसारके ।

या जुदाईके हैं दिन नज़दीक या मरनेके दिन।
कह रहे हैं वोह कि अब कोई जफ़ा बाक़ी नहीं॥
डूबता हूँ मैं मदद मेरी करे जो कोई हो।
मुझको एहसासे-ख़ुदा[1]-ओ-नाख़ुदा[2] बाक़ी नहीं॥

ऐ शमअ़! तुझपै रात यह भारी है जिस तरह।
मैंने तमाम उम्र गुज़ारी है इस तरह॥

उन जफ़ाओं पर भी दिल क्या जाने क्यों गिरवीदा[3] है?
इश्क़ है इक राज़[4] जो आ़शिक़से भी पोशीदा[5] है॥

जौक़े-फ़नाका[6] भी कोई हासिल[7] नहीं रहा।
मरता हूँ मैं कि मरनेके क़ाबिल नहीं रहा॥

छुपकर हवाके झोंकोंमें आती है बिजलियाँ।
'नातिक़'! चमन यह रहनेके क़ाबिल नहीं रहा॥

सर आँखोंपर ग़मे-दुनिया-ओ-उक़बा[8]।
मगर अब दिलमें गुंजाइश कहाँ है॥

वोह नाज़ुक वक़्त आया आख़िरकार।
कि हर रंग अब तबिअ़तपर गिराँ है॥

दिल-शिकन[9] साबित हुआ हर आसरा मेरे लिए।
कोई दुनियामें नहीं मेरे सिवा मेरे लिए॥
शाहराहे-आ़मसे[10] रुसवाइये-मंज़िल[11] न कर॥
कुछ नई राहें निकाल ऐ रहनुमा,[12] मेरे लिए॥

[1-2]ईश्वरका और मल्लाहका ज्ञान; [3]अनुरक्त; [4]भेद; [5]छिपा हुआ; [6]मृत्युके शौक़का; [7]लाभ; [8]लोक-परलोककी चिन्ता; [9]दिलको चोट पहुँचानेवाला; [10]आम रास्तेसे; [11]मंजिलकी बदनामी; [12]मार्ग-दर्शक।

दैरो-हरममें[1] बहस थी यह दिल कहाँ रहे?
आख़िरको तय हुआ कि यह बेख़ानुमाँ[2] रहे॥

सौ तीर ज़मानेके एक तीरे-नज़र तेरा।
अब क्या कोई समझेगा दिल किसका निशाना है॥

यह असर आया कहाँसे इक शिकस्ता[3] साज़में।
तेरी ही आवाज़ है मज़लूमकी[4] आवाज़में॥

तबस्सुम[5] उनके लबपर एक दिन वक़्ते-अ़ताब[6] आया।
उसी दिनसे हमारी ज़िंदगीमें इन्क़लाब आया॥
चलो देखें तो 'नातिक़' अपनी हदसे बढ़ न आया हो?
उठा है शोर कअ़बेमें कि इक ख़ाना-ख़राब आया॥

'नातिक़'से चलो पूछ ले असरारे-मुहब्बत[7]।
फ़िल्ज़ुमला ग़नीमत है कि दीवाना नहीं है॥

निगाहें बाग़बाँकी बार-बार उठती है उस जानिब[8]।
गिरे जाते हैं एक-एक करके सब तिनके नशेमनके[9]॥

कभी दामाने-दिलपर दाग़े-मायूसी नहीं आया।
इधर वअ़दा किया उसने, उधर दिलको यक़ीं आया॥
मुहब्बत-आश्ना दिल मज़हबो-मिल्लतको क्या जाने?
हुई रोशन जहाँ भी शमअ़ परवाना वहीं आया॥

मेरी जानिबसे उनके दिलमें किस शिकवेपै[10] कीना[11] है।
वोह शिकवा जो ज़बाँ पर क्या अभी दिलमें नहीं आया॥

---

[1]मन्दिर-मस्जिदमें; [2]बग़ैर घरबारके; [3]टूटे हुए; [4]पीड़ितकी; [5]मुसकान; [6]क्रोधके समय; [7]प्रेम-भेद; [8]तरफ; [9]नीड़के, घोंसलेके; [10]शिकायतपर; [11]मैल, रंजिश।

हयाते-बेख़ुदी[1] कुछ ऐसी ना महसूस[2] थी 'नातिक़'।
अजल[3] आई तो मुझको हस्तीका यक़ीं आया॥

मज़ेपै क़िस्सा आया था कि नज़्मे-ज़िंदगी[4] बिगड़ा।
कहाँपर ख़त्म कर दी बेवफ़ाने दास्ताँ मेरी॥

दिलमे है सरमायए-कौनैन[5] राहतके[6] सिवा।
दोनों आ़लम है मेरे क़ब्ज़ेमे क़िस्मतके सिवा॥

आवाज़े-दिलकश उसकी दिलमे खुपी है ऐसी।
धीमे सुरोंका नग़मा हर साँसकी सदा है॥
ज़ब्त करना चाहिए जो ज़ब्त हो सकता नहीं।
आँखमें आँसू भरे बैठा हूँ रो सकता नहीं॥

जोशे-गिरिया[7] और अँधेरी रात है।
क्या घटा है क्या भरी बरसात है॥

देखकर उनको, नज़रमे यह असर होता है।
जिस तरफ़ देखिए इक हुस्न नज़र आता है॥

सकून[8] जबसे है ख़तरा यह दिलको हरदम है।
कहीं वोह पूछ न बैठें कि दर्द क्यों कम है?

इक क़यामत है इबारत[9] आपके वअ़दोंकी भी।
दिन गुज़रते जायेंगे मअ़नी बदलते जायेंगे॥

हम सुख़न[10] उससे रहूँ 'नातिक़' मेरा मतलब यह है।
वर्ना कुछ मअ़नी नहीं होते मेरी तक़रीरके॥

---

[1]तल्लीन जिन्दगी; [2]अनजानी-सी, [3]मौत; [4]जीवन-व्यवस्था [5]लोक-परलोककी निधि; [6]चैनके; [7]रोनेका जोश; [8]चैन, आराम; [9]भाष्य अर्थ, मतलब; [10]बात करता रहूँ।

जवाबे-साफ़ सुनकर पागया सब कुछ फ़क़ीर उनका।
सदा देनेसे मतलब था फ़क़त आवाज़ सुन लेना॥

उनके तेवर भी न बिगड़े बात भी अपनी बनी।
हाल हम कहते रहे वह दास्ताँ समझा किये॥

बर्क़ से क्या हमको चश्मक, बाग़बाँसे क्या ख़लिश।
बात यह है आशियाँको आशियाँ समझा किये॥

गिरता है कोई आगमे क्या कीजिए? मगर—
शबनमको[1] आफ़ताबकी[2] क़ुरबत[3] पसन्द है॥

अपने ही पैरवोंसे[4] हुआ हो जो पाएमाल।
मैं राहमे वोह नक़्शे-क़दम[5] हूँ मिटा हुआ॥

ख़ुशो-नाख़ुश मुझे जन्नतमे बसर करना है।
इक ज़रा रंग तबीअ़तका बदलना होगा॥

इक सुनहरी सतर थी जिसकी शुआए-बर्क़तूर[6]।
आज वोह ख़त साहेबे-मेअ़राजके नाम आ गया॥

शायद क़ुबूल होनेका वक़्त आ गया क़रीब।
ताक़त जवाब देने लगी हर सवालमें॥

ग़ुरबतकी[7] बेकसीपर[8] कर लूंगा सब्र यारब!
वापिस मगर न करना इस हालसे वतनमे॥

ग़र्क़ कर देती है किश्ती, नाख़ुदाकी[9] बेख़ुदी[10]।
छोड़ दे वह मैकदा साक़ी जहाँ मदहोश है॥

---

[1]ओसको; [2]सूरजकी; [3]नजदीकी; [4]अनुयाययोसे; [5]चरण चिह्न; [6]तूर पर्वतपरकी बिजलीकी किरण; [7]परदेशकी; [8]असहाय स्थितिपर; [9]मल्लाहकी; [10]अज्ञानता, बेहोशी।

सफ़रमें सईए-कामिल[1] हो तो निकले राह मंज़िलकी।
कि दरियाकी रवानीसे बिना[2] पड़ती है साहिलकी॥

बढ़ी न क़तरेकी वुसअ़त[3] हुबाबसे[4] आगे।
मगर दिखा तो गया इक झलक समन्दरकी॥

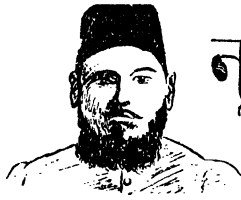


गदाए-मैकदा[5] था अब हूँ मैं शेख़े-हरम[6] 'नातिक़'।
कहीं ऐसा न हो पहचान ले कोई यहाँ मुझको॥

१६ फरवरी १९५२ ई०

---

[1]पूर्णरूपेण प्रयत्न; [2]नींव; [3]विस्तार; [4]पानीके बुलबुलोंसे; [5]मदिरालयका भिक्षुक; [6]मस्जिदका शेख।



नज़्म तबा तबाई

[१८५० – १९३३ ई०]

मौलाना अ़ली हैदर तबातबाई 'नज़्म' लखनऊमें १८५० ई० के क़रीब उत्पन्न हुए। आप अपने युगके अ़रबी-फ़ारसीके ख्यातिप्राप्त विद्वान थे। जब वाजिदअ़लीशाह कलकत्तेके मटियाबुर्जमें नज़रबन्द थे, तब आप ही उनके साहबज़ादोंके शिक्षक थे। नवाबकी मृत्युके बाद हैदराबाद कॉलेजके प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए और उस पदपर ३० वर्षतक आसीन रहे। वहाँसे आपको पेंशन मिली और नवाब हैदराबादने आपको युवराजका शिक्षक बनाकर गौरव प्रदान किया। साथ ही नवाब हैदरजंगका ख़िताब भी अ़ता फ़र्माया। उस्मानिया यूनिवर्सिटी स्थापित होनेपर आपकी सेवायें वहाँ भी ली गईं और वहाँसे विदेशी भाषाके अनुदित ग्रन्थ जितने भी प्रकाशित होते थे, उन्हें प्रेसमें जानेसे पूर्व आप निरीक्षण करते थे। 'शरर', 'साहा' और महाराज किशनप्रसाद 'शाद'-जैसे ख्यातिप्राप्त साहित्यिक आपके ही शिष्य थे। आपने अंग्रेज़ी कविताओंको उर्दूमें इतने लालित्यपूर्ण और स्वाभाविक ढंगसे नज़्म किया है कि वे अनुवाद न मालूम होकर उर्दूकी ही निधि बन गई हैं। उनका उल्लेख नज़्मोंके इतिहास (शाइरीके नये दौर) में किया जायगा। यहाँ तो केवल आपके चन्द ग़ज़लोंके अश-आ़र इतिहासका क्रम बनाये रखनेके लिए दिये जा रहे हैं। आप दाग़के रंगमें बेहतरीन कहनेवालोंमें-से एक थे। आपका २३ मई १९३३ ई० को निधन हो गया।

न शोख़ीकर[1] हयाकी वज़अमें[2] अब फ़र्क़ आता है।
ग़ुबार ऊँचा न हो जाये कहीं हम ख़ाकसारोंका[3]॥

कहाँतक रास्ता देखा करे हम बर्क़े-ख़िरमनका[4]।
लगाकर आग देखेंगे तमाशा अब नशेमनका॥

अदाए-सादगीमे कंघी-चोटीने ख़लल डाला।
शिकन[5] माथेपै,गेसूमे[6] गिरह, अबरूमे[7] बल डाला॥

आगया फिर रमज़ाँ क्या होगा?
हाय ऐ पीरेमुग़ाँ! क्या होगा?

कहने सुननेसे ज़रा पास आके बैठ गये।
निगाह फेरके त्योरी चढ़ाके बैठ गये॥
निगाहे-यास[8] मेरी काम कर गई अपना।
रुलाके उट्ठे थे वोह मुस्कराके बैठ गये॥

लिहाज़ इतना अभीतक हज़रते-नासेहका बाक़ी है।
वोह जो कुछ-हुक्म फ़र्माते हैं, कह देते हैं हम 'अच्छा'॥

बन्दा तो इस इक़रारपै बिकता है तेरे हाथ।
लेना है अगर मोल तो आज़ाद न करना॥

इस छेड़मे कोई जो न मरता हो तो मर जाये।
वअ़दा है कहीं और, इरादा है कहीं और॥

क़ाबूसे नफ़सेे-बदको[9] निकलने कभी न दे।
फिर शेअ़र है, जो यह सगे-दीवाना[10] छुट गया॥

---

[1]चुलबुली अदाएँ न दिखा; [2]लाजमे निर्लज्जताका आभास होने लगा है; [3]सेवकोंके हृदय कही आपे-से बाहर न हो जाये; [4]खलिहान जलाने-वाली बिजली का; [5]बल; [6]भवोंमे; [7]जुल्फ़ोमे; [8]निराश नज़र; [9]इन्द्रिय-विकारोको; [10]पागलकुत्ता।

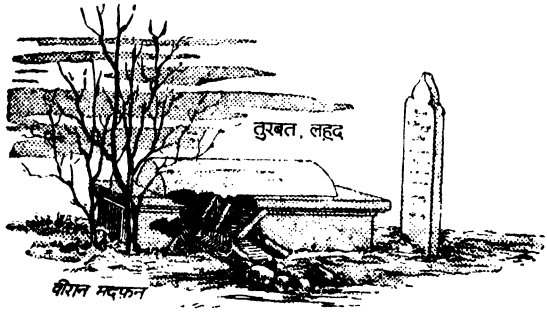
लाया है कोई साथ, न ले जायगा कोई।
दौलत हो और आदते-एहसाँ[1] न हो, तो क्या?

एहसान ले न हिम्मते-मर्दाना छोड़कर।
रस्ता भी चल तो सब्ज़ए-बेगाना[2] छोड़कर॥

आँखोंमें पड़के कहती है यह ख़ाके-रफ़्तगाँ[3]।
"सुर्मा ज़रूर दीदए-इबरतमें[4] चाहिए॥"

न देख अन्दाज़ आईनेमें अपना, पूछले हमसे।
ज़माने भरसे अच्छा और तेरे सरकी क़सम अच्छा॥

—शेअ़रुल्-हिन्द पहला भाग



जवाब नामेका[5] क़ासिद[6] मज़ारपर[7] लाया।
कि जानता था उसे ताबे-इन्तज़ार[8] नहीं॥

७ नवम्बर १९५१

---

[1]परोपकारी भावना; [2]हरी भरी घासको; [3]मार्गकी धूल; [4]नसीहतकी आँखोंमें; [5]पत्रका; [6]पत्रवाहक; [7]क़ब्रपर; [8]प्रतिक्षा सहनकी शक्ति।

शेर-ओ-सुख़न

भाग ३-४

[मौजूदा दौरके ग़ज़ल-गो-शाइरे-आज़म]

पुरातन शाइरीका कायाकल्प और लोकोपयोगी भावोंका समावेश,
पवित्र प्रेमकी आराधना, नारीका सम्मान और १९०१ से
१९५७ ई० तककी घटनाओंका ग़जलपर प्रभाव

तीसरा भाग

[देहलवी रंगके सर्वश्रेष्ठ शाइर]

१. 'शाद' अजीमाबादी
२. अमरनाथ 'साहिर'
३. दत्तात्रिय 'कैफ़ी'
४. 'आज़ाद' अन्सारी
५. 'हसरत' मोहानी
६. 'फ़ानी' बदायूनी
७. 'वहशत' कलकतवी
८. 'यगाना' चगेज़ी
९. 'अमजद' हैदराबादी
१०. 'आसी' ग़ाज़ीपुरी
११. 'असग़र' गोण्डवी
१२. 'जिगर' मुरादाबादी

चौथा भाग

[दाग़ स्कूलके उस्ताद शाइर]

१. 'सीमाब' अकबराबादी
२. लम्भूराम 'जोश'
३. 'नातिक़' गुलाठवी
४. नवाब 'साइल'
५. 'आग़ाशाइर' क़िज़लबाश
६. 'बेखुद' देहलवी
७. 'नूह' नारवी
८. 'अहसन' माहरहरवी
९. 'नसीम' भरतपुरी
१०. 'बेखुद' बदायूनी
११. 'आसी' उदनी
१२. 'शाग़ल' देहलवी
१३. 'अहसान' रामपुरी आदि ३१ शाइर

इनके अतिरिक्त महरूम, ताजवर नजीबाबादी, अकबर हैदरी आदिका कलाम

मूल्य प्रत्येक भागका तीन रुपया

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—२७

शेर-ओ-सुख़न

[मौजूदा दौरेके ग़ज़ल-गो शाइरे-आज़म]

तीसरा भाग

पुरातन शाइरीका कायाकल्प, लोकोपयोगी भावोंका समावेश, पवित्र प्रेमकी आराधना, नारीका सम्मान और १९०१ से १९५८ तककी घटनाओंका ग़ज़लपर प्रभाव



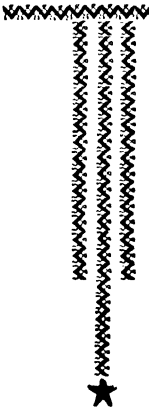
इन्सानकी बदबख़्ती अन्दाज़से बाहर है।
कम्बख़्त ख़ुदा होकर, बन्दा नज़र आता है॥

—आज़ाद अन्सारी

ग़ज़ल-गो शाइरे-आज़म



वर्त्तमान युगीन

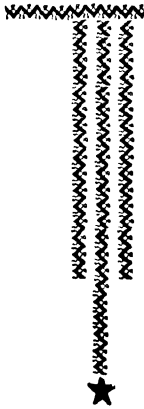


देहलवी रंगके सर्वश्रेष्ठ शाइर

ग़ज़ल-गो शाइरे-आज़म



वर्त्तमान युगीन



देहलवी रंगके सर्वश्रेष्ठ शाइर

१. शाद अज़ीमाबादी [ख्वाजा मीर 'दर्द' की शिष्य परम्परामें]
२. हसरत मोहानी ['मोमिन' की शिष्य परम्परामें]
३. फ़ानी बदायूनी
४. असग़र गोण्डवी
५. जिगर मुरादाबादी ['असग़र' गोण्डवीके शिष्य]
६. यगाना चंगेज़ी ['शाद' अज़ीमाबादीके शिष्य]
७. आसी ग़ाज़ीपुरी ['नासिख़' की शिष्य परम्परामें]
८. अमरनाथ साहिर
९. दत्तात्रय कैफ़ी
१०. आज़ाद अनूसारी ['ग़ालिब' की शिष्य परम्परामें]
११. वहशत कलकतवी
१२. अमजद हैदराबादी



'शाद' अज़ीमाबादी

[१८४६–१९२७ ई०]

ख़ान बहादुर नवाब सैयद अ़लीमुहम्मद 'शाद' १८४६ ई०में उत्पन्न हुए और १९२७ ई०में समाधि पाई। नियाज़ फ़तेहपुरीके शब्दोंमें—"शाद ब-लिहाज़ तग़ज़्ज़ुल बड़े मर्तबेके शाइ़र थे। उनके यहाँ मीर-ओ-दर्दका गुदाज़, मोमिनकी नुक्तासंजी, ग़ालिबकी बुलन्द परवाज़ी और अमीर-ओ-दाग़की सलासत सब एक ही वक़्तमें ऐसी मिली-जुली नज़र आती हैं कि अब ज़माना मुश्किलसे ही कोई दूसरी नज़ीर पेश कर सकेगा?"[1]

'शाद' अज़ीमाबाद (पटना सिटी)के रहनेवाले थे। आप ख़्वाजा मीर 'दर्द'की शिष्य परम्परामें हुए हैं। अतः आपके कलाममें भी वही असर नज़र आता है। कहीं-कहीं तत्कालीन लखनवी रंगकी भी झलक मारती है। आप मीर 'अनीस'से भी काफ़ी प्रभावित नज़र आते हैं।

शाद देहलवी-लखनऊ ज़बानके क़ायल नहीं थे। यही कारण है कि उनके कलाममें यत्र-तत्र मुहावरों और शब्दोंका प्रयोग उक्त स्थानोंकी परम्परासे भिन्न हुआ है।

'शाद' ख़्वाजा 'दर्द' स्कूलके स्नातक थे। इसीलिए हमने आपको

---

[1]इन्तक़ादियात, भाग २, पृ० १५६।

मजलिसे-देहलीमें उच्चासन दिया है। आपका कलाम भी ईश्वरीय-प्रेम, आध्यात्मिकता और दार्शनिकतासे ओत-प्रोत है। आपका रंगे-शाइरी ख्वाजा 'आतिश'[1] से बहुत कुछ सगानता रखता है।

'आतिश' और 'शाद' दोनों ही अपने-अपने युगमें बहुत बुलन्द मर्तबेके शाइर हुए हैं। दोनोंके विचार, भाव और अन्दाजे-बयान मिलते-जुलते हैं। दोनोंकी अक्सर ग़जलें हमतरही ऐसी हैं कि अगर उनमें-से उपनाम निकाल दिये जायें तो कौन ग़जल किसकी है, निश्चयपूर्वक कहना आसान नहीं। जाहिरमें दोनों लखनवी, किन्तु भावों और विचारोंकी दृष्टिसे अंतरंगमें देहलवी हैं। दोनों ही सूफ़ियाना विचारके हैं।

इतनी समानता होते हुए भी दोनोंका रंग भिन्न-भिन्न है। 'आतिश'के यहाँ व्यंग्य और तीखापन इस गजबका है कि कुछ न पूछिए। उनके कलाममें गर्मी, और अन्दाजेबयानमें तड़प इस बलाकी है कि कोई भी शाइर उनका हमसर नज़र नहीं आता। 'आतिश'के यहाँ दुःख-दर्द, पीड़ा-व्यथामें भी मुसकान भरी होती है। उनके ग़ममें भी एक लहक और चहक होती है—

क़फ़समें भी है वही चहचहा गुलिस्ताँका

रंजो-ग़म

शादके यहाँ रंजो-ग़म, दर्दो-अलम, व्यथापूर्ण है। 'आतिश' इस विषयमें 'ग़ालिब'के अधिक समीप है और 'शाद' 'मीर'के नजदीक है। 'आतिश' रंजो-ग़ममें विलखते नहीं, यहाँ तक कि वे हृदयकी पीड़ाको व्यक्त करना भी अपनी शानके खिलाफ़ समझते हैं—

जौरो-जफ़ाये-यारसे[2] रंजो-महन[3] न हो।
दिलपर हुजूमे-ग़म हो, जबींपर शिकन न हो॥

---

[1]'आतिश' का परिचय एवं कलाम 'शेरो-सुखन' प्रथम भागमें दिया जा चुका है; [2]प्रेयसीके अत्याचार करनेपर ; [3]दुखी और व्यथित न हो।

'शाद' व्यथा-पीड़ाके आँसुओंको पीनेके बजाय, उन्हे प्रकट करना आवश्यक समझते हैं—

खमोशीसे मुसीबत और भी संगीन होती है।
तड़प ऐ दिल तड़पनेसे ज़रा तसकीन होती है॥

यूँ ही रातोंको तड़पेंगे, यूँ ही जाँ अपनी खोयेंगे।
तेरी मर्ज़ी नहीं ऐ दर्देदिल ! अच्छा ! न सोयेंगे॥

मगर वे अन्य शाइरोंकी तरह सरे आम हाय-हाय करनेके पक्षपाती नही—

तड़पना है तो जाओ जाके तड़पो 'शाद' खिलवतमें।
बहुत दिनपर हम इतनी बात गुस्ताखाना कहते हैं॥

उच्च भाव

इन दोनोके कलाममे उल्लेखनीय विशेष अन्तर यह है कि 'आतिश'के यहाँ पतित भाव, हक़ीर विचार और बाज़ारी इश्क़ अधिकांश रूपमे पाया जाता है। लेकिन 'शाद'के कलाममे इतनी सजीदगी, बड़प्पन और सुथरापन पाया जाता है कि वे उर्दू-शाइरोमे सर्वश्रेष्ठ नजर आते है।

उर्दूके सर्वश्रेष्ठ शाइर 'मीर' भी अपना दामन इब्तिज़ाल (कमीने-ज़लील विचारों) से न बचाये रख सके। बक़ौल किसीके "उनके दीवानमे लौंडे भरे पड़े हैं" 'ग़ालिब' भी धौल-धप्पेपर उतारू हो जाते है—

धौल-धप्पा उस सरापा नाज़का शेवा नहीं।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती एक दिन॥

और 'मोमिन'का तो माशूक ही हरजाई नही, स्वय भी हरजाई थे हमेशा मृगनयनियों (गिज़ालचश्मों) को फाँसते रहे—

आये ग़िज़ालचश्म सदा मेरे दाममें।
सैयाद ही रहा मैं, गिरफ़्तार कम हुआ ॥

तात्पर्य यह कि प्राचीन और अर्वाचीन प्रायः सभी शाइरोंके कलाममें अधिकाश यह दोष पाये जाते हैं। लेकिन 'शाद'का कलाम इन दोषोंसे मुक्त है। उनके यहाँ 'बोसा' (चुम्बन) जैसा बदनाम और हक़ीर शब्द भी इतनी बुलन्दीसे नज्म हुआ है कि अन्यत्र मिसाल नहीं मिलती।

बोसए-संगे-आस्ताँ[1] मिल न सका हज़ार हैफ़।
आगे क़दम न बढ़ सका हिम्मते-सरफ़राज़का[2] ॥

उक्त शेरकी पवित्रता और मर्तबेको वही अनुभव कर सकता है, जिसने कभी सगे-आस्ताँके बोसा लेनेका प्रयत्न किया हो, परन्तु किसी कारण सफलता न मिली हो। राष्ट्रपिता बापूके शहीद किये जानेपर उनकी चिताकी राख लेनेके लिए लाखों नर-नारी लालायित थे। एक-दूसरेको धकेलकर बापूकी राखको मस्तकसे लगानेको कई लाख नर-नारी बढ़ रहे थे, परन्तु कितनोंको सफलता मिली? जो भी राख न पा सके, अपने भाग्यको कोस रहे थे। जब किसीकी ऐसी स्थिति हो, तभी 'शाद'के उक्त शेरकी महत्ता प्रकट हो सकती है। आस्तानए-यार या शहीदोंकी समाधियोंको बोसा देना 'शाद'की अछूती और उच्च भावना है—

शहीदाने-वफ़ाकी ख़ाक, क्या अक्सीरसे कम है ?
न हाथ आये क़दम, बोसा तो ले जाकर मज़ारोंका ॥

यह बात 'ग़ालिब' और 'आतिश'को कहाँ नसीब ? 'ग़ालिब' तो स्वयं ही अपने इस हक़ीर खयालसे भयभीत नजर आते हैं—

---

[1]माशूककी चौखटके पत्थरका चुम्बन ; [2]अभिमानीके साहसका।

ले तो लूँ सोतेमे उसके पाँवका बोसा मगर—
ऐसी बातोंसे वह काफ़िर बदगुमाँ हो जायगा ॥

यारके पाँवका बोसा लेना या जहाँ उसने पाँव रखे हो, उस आस्ताँका बोसा लेना जाहिरमे यकसाँ नजर आते हैं। मगर 'शाद'के शेरमे श्रद्धा, भक्ति और पवित्र-प्रेमकी झलक है, तो गालिबके यहाँ वासनाकी गन्ध; और 'आतिश' तो अपने इस शेरके प्रतिबिम्बमे मरीहन अय्याश मालूम होते है—

बोसेबाज़ीसे मेरी होती है ईज़ा उनको।
मुँह छिपाते है जो होते है मुहासे पैदा ॥

और एक 'शाद' है कि उनकी अभिलाषा अधिक-से-अधिक इतनी बढ़ती है कि उनकी ख़ाक यारके परिधानका बोसा ले सके तो अपनेको कृतकृत्य समझे—

बोसा लेनेका मेरी ख़ाकको भी अरमाँ—ताब उठनेकी कहाँ ?
जामे-जेबीका भला ! ऐ सनमे-तंग-क़बा—कुछ तो दामनको झुका ॥

पाक इश्क़

यही पवित्र और उच्च इश्ककी झाँकियाँ 'शाद'के कलाममें दृष्टिगोचर होती है। स्वय भी फ़रमाते है—

मेरा दीवाँ तो यसरिब है जहाने-पाकबाज़ीका।
पढ़े कलमा ज़बाने-फ़ारिस इस बाँगे-हिजाज़ीका ॥

गज़ल इतनी नाज़ुक और कोमल कला है कि तनिक-सी चूकसे वह आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ती है। शब्दोंके हेर-फेर और भावोंके उतार-चढावसे इसमे पवित्र-से-पवित्र और पतित-से-पतित विचारोंका प्रतिबिम्ब झलकता है। 'आतिश' जैसा बुलन्द मर्तबेका शाइर जब ऐसा घटिया शेर कह सकता है—

शबे-विसालमे खोले क़बाए-यारके बन्द।
कमरसे खींचके पटकेको हमने दे मारा॥

हाथ मलता हूँ जो मैं देखके सीनेका उभार।
कहते हैं "तोड़िए जिनको यह वोह नारंज नहीं"॥

जब 'आतिश' जैसे दरवेशका यह आलम हो, तब 'दाग'का तो जिक्र ही क्या–

यह लुत्फ़ है कि दुपट्टा उड़ा रही है हवा।
छुपा रहे हैं जो सीना कमर नहीं छुपती[1]॥

ऐसे ही दूषित और विषाक्त भावोंके कारण ग़जल बदनाम हो गई। इसकी अश्लीलतासे भले आदमी दामन बचाकर निकलने लगे। इसमे दुराचार और कामुकताके ऐसे घिनौने कीड़े बिलबिलाने लगे कि लोग इसकी परछाईसे भी दूर भागने लगे। इस छुतहा रोगसे बचानेके लिए 'हाली' और 'आज़ाद'ने भरसक प्रयत्न किये। लोगोंका अनुमान था कि ग़ज़ल अब जीवित नही रहेगी, परन्तु उसकी खुशक़िस्मती देखिए कि कुछ ऐसे लोग पैदा हो गये, जिन्होंने ग़जलको पुनर्जीवन ही प्रदान नही किया, अपितु उसे अमर कर दिया। उन्ही सपूतोंमे एक 'शाद' अज़ीमाबादी है।

'शाद'का इश्क बाजारी इश्क न होकर पवित्र और उच्च है। जो शमअ सरेबाजार जलती है, ऐसी बेहयापर 'शाद' जल मरनेके कायल नही–

जो शमअ हुआ करती है रोशन सरे-बाज़ार।
उस शमअपै गिरता नहीं परवाना हमारा॥

'शाद' इश्कको जीका रोग नहीं समझते, बल्कि उनका विश्वास है कि इश्क़से इन्सानमे इन्सानियत आती है––

---

[1]उक्त अशके लिखनेमे अप्रैल १९५१के 'निगार'मे प्रकाशित सैयद शाह अताउर्रहमानके लेखसे हमे पर्याप्त सहायता मिली है।–गोयलीय

नहीं रहते रिया[1]-ओ-क़ुब्ह[2] फिर भूलेसे भी दिलमें ।
मुहब्बत यारकी इन्साँ बना देती है इन्साँको ।।

'शाद' भौंरे या तितलीके इश्कको इश्क नही समझते । वे तो जिसके हो गये, जीवनभर उसे निभाना ही सच्ची आशिकी समझते है ! मानवी प्रेमके साथ-साथ कोई ईश्वरीय प्रेमका भी दम भरे तो वह उसे कुफ्र समझते है—

मशरबे-इश्कमे[3] दिला[4] ! कुफ्र है यारसे रिया[5] ।
दिलको है गर बुतोंसे इश्क, जिक्रे-खुदाकी वजह क्या ?

'शाद' इश्कमे तग आकर मरना नही चाहते, बल्कि वह तो उम्रे-दराज चाहते है—

मुझ-सा फ़क़ीर आपसे राजो-नियाज[6] हो ।
या रब ! हयाते-इश्क़े-मुहब्बत दराज[7] हो ।।

और वे अपने महबूबको इधर-उधर खोजना नादानी समझते है । उनका विश्वास है कि उनका प्रियतम सर्वत्र व्याप्त है—

ग़ुबार आईनए-दिलका साफ़ हो तो फिर ।
उन्हींकी शक्ल नुमायाँ रहे जिधर देखो ।।

और जब ध्यानमे प्रियतम आगया, तब वह ध्यान कैसे तोड़ा जाय ?

है जिसमे ध्यान काबए-अबरू-ए-यारका[8] ।
ऐसी नमाज जल्द इलाही अदा न हो ।।

---

[1]ज़ाहिरदारी, दिखावटीपन; [2]बुराई; [3]प्रेमधर्ममे; [4]ऐ दिल; [5]दिखावटी प्रेम; [6]अन्तरग वार्तालापमे सम्मिलित; [7]प्रेमका जीवन लम्बा हो; [8]यारकी भवे रूपी काबेकी महराबका ।

और फिर एक दिन ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि प्रेमी सुध-बुध बिसारकर अपनेमें खो जाता है। नमाज-रोज़े सब तर्क हो जाते हैं–

दिल है किधर खिंचा हुआ, महब है किसकी यादमें ?
क्या कहें इसकी वजह हम, तर्क हुई नमाज क्यों ?

आशिक़ कितना बावला है कि अपने प्रियतमकी खोजमें मारा-मारा फिरता है। सर्वत्र ढूंढता है, परन्तु अपना अन्तस्थल नहीं खोजता, हायरे भोलापन–

इसी चूकने हमें खो दिया, कहे 'शाद' किससे यह माजरा ?
कटी उम्र जिनकी तलाशमें, वह हमीं थे हमसे जुदा न थे ॥

जैन-पुराणोके अनुसार जब तीर्थंकर संसारमें जन्म लेते हैं, तो इन्द्र उनके अतुल रूपको निहारनेके लिए एक हजार नेत्र बना लेता है, फिर भी तृप्ति नहीं हो पाती। 'शाद' भी अपने हबीबको यूँ ही देखना चाहते हैं–

यही है धुन कि तेरी जलवागाहमें जाकर।
हज़ार आँखें हों, और सबसे यारको देखें ॥

'लिपटने' शब्दकी उर्दू-शाइरोंने जो मिट्टी खराब की है, वह किसीसे पोशीदा नहीं। औरोंको तो जाने दीजिए, 'अकबर' इलाहाबादी-जैसा मुहज़्ज़ब आदमी यह कहनेसे नहीं चूका–

लिपट भी जा अरे 'अकबर' ! ग़ज़बकी ब्यूटी है।
नहीं-नहीं पे न जा, यह हयाकी ड्यूटी है ॥

अब इसी ज़लील शब्दको 'शाद'की ज़बाने-मुबारकसे सुनिए–

लिपटकर काकुले-जानाँसे[1] नाज़कर शाने[2]।
ख़ुदाने अ़र्शसे[3] रुत्बा तेरा बुलन्द किया॥

जिस जगह सती-सतवन्ती पाँव रख दे, वह स्थान तीर्थ बन जाते हैं। जिन्हे वे छू ले, वे अमर और कृतकृत्य हो जाते हैं। फिर उस कंघेके भाग्यका क्या कहना, जिसे उनके बालोंको सँवारनेकी इनायत अ़ता हुई हो। बेशक उसका मर्तबा आस्मानसे बदर्जहा बेहतर है। हर घड़ी और हर जगह अपने प्रियतमकी यादमे लीन रहना ही तो वास्तविक नमाज़ है—

जबाँपै ज़िक्र तेरा उ़ज्र-ख़्वाह दीदएतर।
यही वज़ू है, इसीको नमाज़ कहते हैं॥

जब इ़श्कमे यह तल्लीनता आजाती है तो वह बा-असर हो जाता है—

हज़ार शुक्र कि मुद्दतमे यह असर आया।
लिया जो नाम तेरा, दिलमे तू उतर आया॥

शादकी शराब

'शाद'की शराब वह शराब नही है, जिसे पीकर आदमी, आदमी न रह कर जानवर बन जाता है। 'शाद'की शराब वह आध्यात्मिक सुरा है कि उससे बेसुध होनेपर स्वर्गके देवता भी सार-सँभाल करनेको दौड़ पड़ते हैं—

असर देखो जरा लग़्ज़िशमें 'या साक़ी'के कहनेका।
फ़रिश्ते दौड़कर बाज़ू हमारा थाम लेते हैं॥

---

[1]प्रेयसीकी जुल्फ़ोसे; [2]कधे; [3]आकाशसे।

लेके ख़ुद पीरेमुग़ाँ हाथमें मीना आया।
मैकशो ! शर्म कि इसपर भी न पीना आया ॥

मुग़बचे[1] हैं मुतहैय्यर[2] मुतबस्सिम साक़ी।
पीनेवाले तुझे पीनेका न अन्दाज आया ॥

इसी उम्मीदमें बाँधे हुए हैं टकटकी मैकश !
कफ़ेनाज़ुकपै साक़ी रखके एक दिन जाम आयेगा ॥

साग़र हमारा, मीना हमारा।
जन्नत हमारी, तौबा हमारा ॥
दाताके दरसे लेकर फिरेंगे।
भर देगा इक दिन कासा हमारा ॥
मैपर किसीको, ख़ुमपर किसीको।
साक़ीपै अपने, दावा हमारा ॥

बचाके हाथ अलग-से-अलग सुबू लेते।
यह क्या मजाल कि साक़ीकाहाथ छू लेते ॥

साक़ीकी चश्मे-मस्तपै, मुश्किल नहीं निगाह।
मुश्किल सँभालना है दिले-बेक़रारका ॥

कहाँसे लाऊँ सब्रे-हज़रते-ऐयूब[3] ऐ साक़ी !
ख़ुम आयेगा, सुराही आयगी, तब जाम आयेगा ॥

न दे इलज़ाम बदमस्तीका इक उफ़्ताद थी साक़ी !
मेरा गिरना, भरे साग़रका चकनाचूर हो जाना ॥

ग़ज़ब निगाहने साक़ीकी बन्दोबस्त किया।
शराब बादको दी पहले सबको मस्त किया ॥

---

[1]शराब पिलानेवाले; [2]हैरान; [3]एक प्रसिद्ध सन्तोषी पैगम्बर।

देके तहीसुबू[1] मुझे सबका हौसला दिया।
जिसकी तलब थी साक़िया ! उससे कहीं सिवा दिया ॥

देखा किये वोह मस्त निगाहोंसे बार-बार।
जब तक शराब आये, कई दौर हो गये ॥

बुरा इस बज्ममें था या भला मैं।
ख़ुदा हाफ़िज है, ले साक़ी ! चला मैं ॥

बग़ैर आत्मलीन हुए जीवनभर ईश्वर-ईश्वर पुकारनेसे क्या होता है ? जहाँ उसमे अपनेको खोया नही कि एक सकेतपर फ़रिश्ते तो क्या ब्रह्माण्ड उलट सकता है। और जब मनुष्य आत्मलीन हो जाता है, तब उसके नेत्रोंके आगेसे तू, मैं, पर का पर्दा हट जाता है—

इस्लामो-कुफ़्र, कुछ नहीं आता ख़यालमें।
मुद्दतसे मुब्तिला हूँ, मैं आप अपने हालमें ॥

अदू

'अदू'को लेकर उर्दू-शाइरोंने कितनी गन्द उछाली है ? कोई उसके मरनेकी दुआ माँगता है, कोई उसे अन्धा देखना चाहता है, कोई उसे हज़ारों गालियाँ देकर दिलकी भड़ास निकालता है। ग़रज़ उसे हर तरह बदनाम और बरबाद करनेके उपाय निरन्तर सोचे जाते है। 'शाद' अदूके बारेमें माशूक़से केवल इतना कहते है—

दोनोंमें तू ही फ़र्क़कर लायक़े-महर[2] कौन है ?
ग़ैर तेरा गिला करे, नाम न ले अदबसे हम ॥

'कस्तूरबा'का निधन बन्दीगृहमें हुआ, उनकी समाधि भी वही बनाई गई ! जीतेजी तो बन्दी रही ही, मृत्युके बाद भी शासकोंने बन्दी बनाकर रखना चाहा। शादका यह शेर उक्त घटनापर कितना मौजूं होता है—

---

[1]खाली सुरापात्र; [2]कृपा-योग्य।

क़यामतका सितम है यह भी दुनियामें कि मरनेपर ।
असीरोंकी[1] बनाई क़ब्र भी सैयादने घरमें ।।

ये मजहबी दीवाने धार्मिक उन्मादमें कैसे-कैसे अनर्थ कर बैठते हैं ? बरसोंकी राहो-रस्म और चोली-दामनके साथको एक क्षणमें नष्ट कर देते हैं, इसका सबब 'शाद' साहब यह बतलाते हैं–

ज़बानें सख़्तबयानीपै वाइज़ोंकी खुलीं ।
मुरव्वतोंको लपेट आये जानमाज़ोंमें[2] ।।

हम देशसे निष्कासित कितना ही कष्ट क्यों न उठा ले, परन्तु हमारे देशपर आँच न आये–

हम बेनवा[3] बलासे क़फ़समे असीर[4] हैं ।
या रब ! मगर चमनमें ख़िज़ाँका[5] गुज़र न हो ।।

प्रेरणात्मक

जो स्वय आप नही उठता, उसे कोई भी सहारा नही देता । नेपोलियनने एक बार अपने सैनिकोंको सम्बोधित करते हुए कहा था–"तुम ईश्वरपर भरोसा करो या न करो यह तुम्हारी इच्छापर निर्भर है, परन्तु मैं इतना जताये देता हूँ कि तुम्हारी बारूद गीली है, तो उसे सुखाने ईश्वर नही आयेगा; वह तुम्हीको सुखानी होगी ।" इसी भावके द्योतक 'शाद'के चार शेर सुनिए–

यह बज़्मे-मै[6] है याँ कोताह दस्तीमें[7] है महरूमी[8] ।
जो बढ़कर ख़ुद उठा ले हाथमें मीना[9] उसीका है ।।

---

[1]बन्दियोंकी; [2]जिस चटाईपर नमाज़ पढ़ी जाती है; [3]अनबोल, बेजबान; [4]बन्दी; [5]पतझड़का; [6]मधुशाला; [7]हाथ न उठानेमें; [8]वंचित रहना; [9]मद्य-पात्र ।

समझता है इस दौरमें कौन किसको ?
करे 'रिन्द' ख़ुद एहतराम[1] अपना-अपना ॥

क्या ग़ज़ब ज़ोम है ! बाद अपने किसे ग़म अपना ?
हाथ क़ाबूमें है, करलें अभी मातम अपना ॥

'शाद' आख़िर है शब और पाँवमें ताक़त है अभी ।
इस सरासे है यही वक़्त निकल जानेका ॥

चन्द नैतिक शेर

हसरत आमेज़[2] सदा आती है यूँ क़ब्रोंसे—
"आज आता जो मेरे काम, न वोह काम किया" ॥

अगर किसीकी बुराई भी दिलमें आई 'शाद' !
हमें तो अपनी ही नीयतसे ख़ुद हिजाब आया ॥

किसीके हम न काम आये, न कोई अपने काम आया ।
तअ़ज्जुब है कि तो भी ज़ुमरए-इन्सांमें नाम आया ॥

यह मुमकिन है कि लिक्खी हो, क़लमने फ़त्ह आख़िरमें ।
जो है अहबाबे-हिम्मत ग़म नहीं करते शिकस्तोंमें ॥

बशरके दिलमें न पड़ता जो आर्ज़ूका दाग़ ।
ख़ुदा गवाह कि अनमोल यह नगीं होता ॥

भलाई इसलिए चाही कि हों भले मशहूर ।
ग़रज़ कि अपने ही मतलबके आश्ना थे हम ॥

बार जिन कलियोंपै थीं परछाइयां ।
ऐ ख़िज़ाँ ! पहले वही मुरझाइयां ॥

---

[1]आदर-सत्कार; [2]निराशाभरी आवाज ।

अभी नौखेज़ है रगत ज़मानेकी नहीं देखी।
विकसती है जो कलियाँ, बाज़ गुंचे मुसकराते है॥

'शाद' अपने विरोधियो और आलोचकोसे चिढ़ते नही। न तुर्की-ब-तुर्की जवाब देते है। बल्कि यह कहकर चुप हो जाते है—

आख़िर तो समझ लेगा कोई नुक्ता-रस इक दिन।
हासिदसे कहो 'शाद'को बदनाम किये जा॥

चुना हुआ कलाम

१९३८मे प्रकाशित 'शाद'का दीवान 'मैखानए-इल्हाम' हमारे समक्ष है। अनुमानतः ४,००० अशआर होगे। उनमे-से चुनकर कुछ अशआर पेशे-नजर है—

बारे-सुबू[1] वही उठाये जिसपै हो फ़ज्ले-मैफ़रोश[2]।
जाहिदेखुश्क! यह भी क्या बोझ है जानमाजका[3]?
जलवए-हुस्नकी तरफ़ देख तो कुछ पता चले।
जाने दे, वलवला न पूछ आशिक़े-पाकबाजका॥

कहाँ है उसका कूचा, कौन है वह? क्या ख़बर क़ासिद!
पर इतना जानते है, नाम है आशिक़-नवाज़ उसका॥
न छोड़े जुस्तजूए-यार ख़िज्रे-शौक़से कह दो।
किसी दिन ख़ुद लगा लेगी, पता उस्रे-दराज़ उसका॥

अबस[4] शिकवा है मै-सी चीजका वाइज़ है क्यों दुश्मन।
बसीरत[5] जब नहीं, बेशक बजा है एहतराज़ उसका॥
अब इसका ज़िक्र क्या क़ासिदपै जो गुज़री गुज़रने दो।
न कहना इस ख़बरको 'शाद'से दिल है गुदाज़[6] उसका॥

---

[1]मद्यके घड़ेका बोझ; [2]शराब-विक्रेताकी कृपा; [3]नमाज पढ़ने-की चटाईका; [4]व्यर्थ; [5]दृष्टि, बुद्धि; [6]द्रवित।

किसीको आबोहवा मुआफ़िक़ हुई न अफ़सोस इस चमनकी।
हमेशा थे नालाकश अ़नादिल,[1] गुलोंने ता उ़म्र ख़ून थूका॥
पुकारकर वहशियोंसे कह दो "ख़िज़ाँका भी दौर है ग़नीमत।
क़बाके दामनको टाँक तो लें, अगर न मौक़ा मिले रफ़ूका॥"

गुलोंपर क्या है, काँटों तकका मैं दिलसे दुआ-गो हूँ।
ख़ुदावन्दा न टूटे दिल किसी दुश्मन-से-दुश्मनका॥

मौजे-फ़ना[2] मिटा न दे नामोनिशाँ वजूदका[3]।
देख हुबाबकी[4] तरह शौक़ न कर नमूदका[5]॥
ऐ शबेवस्ल! जा तो जा, ऐ शबेहिज्र! आ तो आ।
दिलने ख़याल उठा दिया, अपने ज़ियाँ-ओ-सूदका[6]॥

बोरिया था, कुछ शबीना-में[7] थी, या टूटे सुबू।
और क्या इसके सिवा, मस्तोंके वीरानेमें था॥

बड़ा एहसाँ शबेग़मने किया ऐ जागनेवाले!
यही तेरी खुली आँखें मिटा छोड़ेगी शक तेरा॥
बहुत तूने जब अपने पाँव फैलाये तो क्या चारा?
अदब करती रही ऐ अश्क! मुद्दत तक पलक तेरा॥

गलीमे यारकी हो क़ब्र, या ख़राबेमें[8]।
हमें तो हश्रके दिन तक कहींपे सो रहना॥

अगर मरते हुए लबपर न तेरा नाम आयेगा।
तो मैं मरनेसे दरगुज़रा, मेरे किस काम आयेगा॥
शबे-हिजराँकी[9] सख़्ती हो तो हो लेकिन यह क्या कम है?
कि लबपर रातभर रह-रहके तेरा नाम आयेगा॥

---

[1]बुलबुले; [2]मृत्यु-लहर; [3]अस्तित्वका; [4]पानीके बुलबुलेकी; [5]नामका; [6]हानि-लाभका; [7]रातकी बची शराब; [8]मदिरालय, उजड़ा स्थान, खडहर; [9]विरहरात्रिकी।

यही कहकर अजलको[1] क़र्ज़ख़्वाहोंकी तरह टाला।
कि "लेकर आज क़ासिद यारका पैग़ाम आयेगा॥"
गलीमे यारकी ऐ 'शाद' ! सब मुश्ताक़[2] बैठे हैं।
ख़ुदा जाने ववहाँ से हुक्म किसके नाम आयेगा ?

जब अहले-होश कहते हैं अफ़साना आपका।
सुनता हैं और हँसता है दीवाना आपका॥

सरापा सोज़[3] हैं ऐ दिल ! सरापा नूर[4] हो जाना।
अगर जलना तो जलकर, जलवागाहे-तूर हो जाना॥

हमारे ज़ख्मे-दिलने दिल्लगी अच्छी निकाली है।
छुपायेसे तो छुप जाना मगर नासूर हो जाना॥
ख़याले-वस्लको अब आर्ज़ू भूला झुलाती है।
क़रीब आना दिले-मायूसके[5] फिर दूर हो जाना॥
शबे-वस्ल अपनी आँखोंने अजब अन्धेर देखा है।
नक़ाब उनका उलटना रातका काफ़ूर हो जाना॥

वोह जिब्ह करके यह कहते हैं मेरे लाशेसे—
"तड़प रहा है कि मुँह देखता है तू मेरा ?"
कराहनेमें मुझे उज्र क्या मगर ऐ दर्द !
गला दबाती है रह-रहके आबरू मेरा॥
कहाँ किसीमें यह क़ुदरत सिवाय तेरे-निगाह।
कि हो नियाममें[6] और काट ले गुलू मेरा॥

इसे कहते हैं ख़ूबी हम तो इस ख़ूबीके क़ायल हैं।
हुआ जब ज़िक्र यकताईका,[7] नाम आया वहीं तेरा॥

---

[1]मृत्युको; [2]अभिलाषी; [3]पूर्णरूपेण जलना; [4]प्रकाशमान; [5]निराश हृदयके; [6]मियानमें; [7]अद्वितीयताका।

बहुत सरगोशियाँ[1] करने लगे रस्तेमे अब रहबर[2] !
बहुत चर्चा है बाजारोंमे ऐ खिलवत-नशीं[3] ! तेरा ।।

दिलकी यकसूईने[4] बेपर्दा दिखाया था तुझे ।
बीचमें मुफ्त क़दम आ गया बीनाईका[5] ।।

मुँहपै आशिक़के मुहब्बतकी शिकायत, नासेह !
बात करनेका भी नादाँ न क़रीना आया ।।
आ गया था जो खराबातमे[6] पी लेनी थी ।
तुझको मुहबतका भी जाहिद न क़रीना आया ।।

तेरी गलीमें रक़ीब आये और मैं देखूँ ।
क़सम है तेरे क़दमकी तेरा ख़याल किया ।।
तलबके पहले ही जब हुक्म दे चुका था तू ।
तेरे फ़क़ीरने क्या सोचकर सवाल किया ।।

चाक करनेका है इलज़ाम मेरे सर नाहक़ ।
हाथ उनका है, मैं उनका हूँ, गरीबाँ उनका ।।

अब अश्कमे तेरे आता नहीं लहू ऐ चश्म !
तुझीपै क्या है ? जमानेका खूँ सफ़ेद हुआ ।।

समझ-समझके बड़ा दस्ते-आर्ज़ू[7] ऐ मस्त !
न मैकदा न सबूही न ख़ुम न जाम तेरा ।।

न मरनेवालोंकी आँखे न दिल है काबूमे ।
यह कौन वक़्त था आया है कब पयाम तेरा ?

---

[1]कानाफूसी; [2]मार्ग-प्रदर्शक; [3]एकान्तमे रहनेवाले; [4]तल्लीनतासे; [5]दृष्टिका; [6]मधुशालामे; [7]अभिलाषाका हाथ ।

यह इख़्तियार तुझे है कि दे न दे साक़ी !
गिला समझते हैं हम बादाकश हराम तेरा ॥

जहाँ चाहे लगे, जिस दिलको चाहे चूर कर डाले ।
जबाँसे फेंक मारा, बात थी नासेह कि ढेला था ॥

जबाँपै आह जो आई तो हँसके टाल दिया ।
किसीके इश्क़का अफ़साना मैंने राज़ किया ॥

हर निवाला अब तो उसका तल्ख़ है ।
उम्र नेमत थी मगर जी भर गया ॥
जिस गलीमें था वहाँ थी क्या कमी ?
ऐ गदा[1] ! क्यों माँगने दर-दर गया ?

ताबूतपै[2] मेरे आये जो वोह, मिट्टीमें मिलाया यूँ कहकर—
"फैला दिये दस्तो-पा[3] तूने इतने ही मे बस जी छूट गया ॥"

उन्हें जो मंज़ूर देखना है तो आके ऐसेमें देख जायें !
लिया सहारा मरीज़े-शामने, चिराग़ कुछ बुझके झिलमिलाया ॥

निकहते-गुल[4] बहुत इतराई हुई फिरती है ।
वोह कहीं खोल भी दें तुर्रए-गेसू[5] अपना ॥
निकहते-ख़ुल्दे-बरीं[6] फैल गई कोसोंतक ।
वोह नहाकर जो सुखाने लगे गेसू[7] अपना ॥
लिल्लहे-हम्द ! कुदूरत[8] नहीं रहने पाती ।
मुँह धुला देता है हर सुबहको आँसू अपना ॥

---

[1]भिक्षुक; [2]अर्थीपै; [3]हाथ-पाँव; [4]फूलकी गन्ध; [5]चोटी [6]जन्नत-जैसी सुगन्ध; [7]बाल; [8]द्वेष-भावना ।

ग़ममें परवानए-मरहूमके[1] थमते नहीं अश्क।
शमअ ! ऐ शमअ ! ज़रा देख तो मुँह तू अपना ॥

सबू अपना-अपना है जाम अपना-अपना।
किये जाओ मैख़्वार काम अपना-अपना ॥
न फिर हम न अफ़सानागो ऐ शबे-ग़म[2] !
सहरतक[3] है क़िस्सा तमाम अपना-अपना ॥
जिनाँमें[4] है ज़ाहिद, तेरे दरपै हम है।
महल अपना-अपना, मुक़ाम अपना-अपना ॥
हुबाबो[5] ! हम अपनी कहे या तुम्हारी।
बस एक दम-के-दम है क़याम अपना-अपना ॥
कहाँ निकहते-गुल,[6] कहाँ बूए-गेसू[7] !
दिमाग़ अपना-अपना मशाम[8] अपना-अपना ॥
ख़राबातमे मैकशो ! आके चुन लो !
नबी अपना-अपना इमाम अपना-अपना ॥

हम वह मैकश है कि साग़रकी तरह ऐ साक़ी !
सर हमेशा तेरी ख़िदमतमें रहा ख़म अपना ॥
ऐ असीराने-क़फ़स ! कुछ तो शगुन अच्छा है।
हाथ जाता है गरीबोंको जो पैहम[9] अपना ॥

मेरा सब हाल कह लेना तो क़ासिद ! यह भी कह देना—
"ख़बर करदी तुम्हें, है इख़्तयार आने-न-आनेका ॥"

हश्रमें जो है, वोह लेता है क़दम झुक-झुककर।
आज देखे कोई रुत्बा तेरे दीवानेका ॥

---

[1]मृतक पतंगेके; [2]दुखकी रात्रि; [3]प्रातःकालतक; [4]जन्नतमें; [5]पानीके बुलबुलो; [6]फूलकी सुगन्ध; [7]बालोंकी खुशबू; [8]सूंघनेकी वह जगह जो नाक और मस्तकके बीचमें है; [9]बार-बार।

चला जाऊँगा मैं जो महफ़िलसे तेरी।
कोई और मेरी जगह आ रहेगा॥
यह दुनिया है ऐ 'शाद'! नाहक़ न उलझो।
हर इक कुछ तो अपनी-सी आख़िर कहेगा॥

जब किसीने हाल पूछा रो दिया!
चश्मे-तर! तूने तो मुझको खो दिया॥
दाग़ हो या सोज़ हो, या दर्दे-ग़म।
ले लिये ख़ुश होके जिसने जो दिया॥

दैरो-हरममें[1] गर नहीं, ख़ैर न हों नहीं सही।
मेरे ही पास जब नहीं, आप कहीं हुए तो क्या?
हम थे मिटे हुए यूँ ही, रोज़े-अज़लसे[2] ऐ अजल[3]!
रूए-ज़मींपे है तो क्या, ज़ेरे-ज़मीं हुए तो क्या?
जोशे-शबाबमें दिला! कुफ़्रमें भी था इक मज़ा।
मिट गई जीकी जब उमंग, तालिबे-दीं हुए तो क्या?

हम-से सहरागर्दको[4] छोड़ ऐ ग़ुबार[5]!
तू कहाँ तक पीछे-पीछे आयगा?
खो गये हैं दोनों जानिबके सिरे।
कौन दिलकी गुत्थियाँ सुलझायगा?
मैं कहाँ, वाइज़ कहाँ, तौबा करो!
जो न समझा ख़ुद वोह क्या समझायगा?
बाग़में क्या जाऊँ, सरपर है ख़िज़ाँ।
गुलका उतरा मुँह न देखा जायगा॥

---

[1]मन्दिर-मस्जिदमें; [2]सृष्टिके आदिसे; [3]मृत्यु; [4]जंगलोंमें विचरने-वालेको; [5]गर्द, धूल।

सबक़ तो मकतबे-उल्फ़तमें सबका था यकसाँ।
किसीको शुक्र, किसीको फ़क़त गिला आया॥
शराब दे कि न दे तुझपे मैं फ़िदा साक़ी!
मुझे तो बातमें तेरी बड़ा मज़ा आया॥
सबूके आते ही अल्लाहरे ख़ुशी ऐ मस्त!
इमाम आये, रसूल आ गये, ख़ुदा आया॥

ज़ाहिदसे जब सुनो तो ज़बाँपर है ज़िक्रे-हूर।
नीयत हुई ख़राब तो ईमान कब रहा?

हज़रते 'शाद'से करनी है फ़रिश्तो! क्या अर्ज़?
चुप रहो, ग़ुल न करो, आपने आराम किया॥

तेरे कमालकी हद कब कोई बशर समझा।
उसी क़दर उसे हैरत है, जिस क़दर समझा॥
कभी न बन्दे-क़बा खोलकर किया आराम।
ग़रीबख़ानेको तुमने न अपना घर समझा॥
पयामे-वस्लका मज़मूँ बहुत है पेचीदा।
कई तरह इसी मतलबको नामाबर समझा॥
न खुल सका तेरी बातोंका एकसे मतलब।
मगर समझनेको अपनी-सी हर बशर समझा॥

शबेग़म सूंघ गया साँप मोअज़्ज़िनको[1] भी।
आज जल्दीसे न काफ़िरको ख़ुदा याद आया॥
हक़परस्तीके यह माने है तो ज़ाहिद मैं बाज़।
जब बुतोंपर न चला ज़ोर ख़ुदा याद आया॥

---

[1]अज़ान देनेवालेको।

सबमा तेरे फ़िराक़का मैं क्या करूँ बयाँ ?
बस इन्तहा तो यह है कि मरनेका डर न था ॥

हुजूमे-यासने सिखानेकी लाख की कोशिश ।
हमें तो आह भी करना न उभर आया ॥
लहदमें शाना हिलाकर यह मौत कहती है—
"ले अब तो चौंक मुसाफ़िर कि अपने घर आया ॥"

हज़ार शुक्र ! हुआ आफ़ताबे-हश्र तुलूअ[1] ।
बड़ी तो बात रही यह कि तू नज़र आया ॥

चली जो रूह तो यूँ जिस्मसे कहा मुड़कर—
"कि हस्बख़्वाह न मेहमाँका एहतराम[2] हुआ ॥"
मिली न 'शाद'को अफ़सोस कोई नेमते-ख़ास ।
बस इन्तहा है कि मरना तलक भी आम हुआ ॥

जवाब है कहीं इस हदकी बदगुमानीका ।
कि मिटनेवाले मिटे और मिटा न शक तेरा ॥

ख़मोश हूँ तेरे नालोंपै यह ग़नीमत जान ।
अगर जवाबमें कह दे कि "मैं नहीं सुनता ॥"

जो कली सूख गई वोह तो खिलेगी न कभी ।
बागमें फ़स्ले-बहार आये तो क्या, जाये तो क्या ?

फिर आज शामसे नासेह ! है ग़ैर हाल अपना ।
तुझे है अपना ख़याल, है मुझे ख़याल अपना ॥
शराबख़ानेसे टलना मुहाल है वाइज़ !
बिका हुआ है इसी घरमें बाल-बाल अपना ॥

---

[1]प्रलयका सूर्य निकला; [2]आदर-सत्कार ।

ख़बर मिली थी कि आयेंगे आज शामको वोह।
हमीं समझते हैं, जिस तरह दिन तमाम किया॥

जगह दामनमें हम क्योंकर न देते।
कि तिफ़्ले-अश्क[1] अपना ही लहू था॥

मेरी तरफ़से हरममें[2] न कुछ सबा[3]! कहना।
सलाम ज़ुहदको[4] और इश्क़को दुआ कहना॥

फ़िराक़े-यारमें रोनेकी हद क्या?
समन्दर है किनारा आस्तींका॥
मेरी मायूसियोंको कुछ न पूछो।
न दुनियाका भरोसा है न दींका॥

किसीको हुस्न दिया और किसीको माल दिया।
ग़रीब जानके उसने मुझीको टाल दिया॥

ज़र्रे-ज़र्रेको तेरे कूचेमें था मुझसे ग़ुबार।
मैं जो करता भी तो किस-किससे सफ़ाई करता॥

ख़ुशी बहारकी धड़का ख़िज़ाँके आनेका।
ग़ुलो! फ़क़त यह उलट-फेर है ज़मानेका॥

चुस्त कमरका क्या सबब तंग क़बाकी वजह क्या?
हम तो किये हैं दिल निसार, हमसे अदाकी वजह क्या?
ख़ाकमें जो मिला हो ख़ुद, उसपै सितमसे फ़ायदा?
हुस्नकी यह सरिश्त है, वर्ना जफ़ाकी वजह क्या?

---

[1]पुत्ररूपी आँसू; [2]काबेमें; [3]वायु; [4]दिखावटी उपासनाको दूरसे ही प्रणाम करना।

वस्ल आख़िर लफ़्ज़े-बेमानी बने।
तूल इतना ऐ फ़िराक़े-यार! खींच॥

ख़ते-शौक़ अपना लिफ़ाफ़ेमें रखो।
आर्ज़ूओंको कफ़न पहनाओ 'शाद'!

मेरी ख़ताकी नहीं हद, मगर सज़ा महदूद।
वफ़ूरे-शौक़[1] यहाँ, और तेरी जफ़ा महदूद॥

फिर गये रास्तेसे वोह गर्दो-ग़ुबार देखकर।
रह गई मेरी बेकसी सूए-मज़ार[2] देखकर॥
वस्लो-फ़िराक़की ख़बर कौन पढ़े किसे दिमाग़?
बढ़ गई और बेख़ुदी नामए-यार देखकर॥

उठ गये उस मुक़ामसे अश्क भर आये जिस जगह।
आज तलक बवाये हैं, इश्क़की आबरूको हम॥

अदू देखें ख़ुशी, अहबाब तेरे रंजो-ग़म देखें।
कहाँसे यह कलेजा लायें, किन आँखोंसे हम देखें?
न आई दो घड़ी पहले अजल अफ़सोस क्या करिए।
रक़ीब और हाथ रखकर तेरे बीमारोंका दम देखें॥

बज़्ममें साक़िया शराब बढ़ती है सफ़को[3] तोड़कर।
सब तो हैं एक हालमें, उसपे यह इम्तियाज़[4] क्यों?

तेरी गलीके क़अदो-क़यामकी क्या बात!
इसीको दिलकी ज़बाँमें नमाज़ कहते हैं॥

---

[1]अभिलाषाकी अधिकता; [2]समाधिकी तरफ़; [3]पंक्तिको; [4]भेद-भाव।

बेजाये क़रीबे-नक़्लेगुल, चारा हो नहीं कुछ बुलबुलको।
सैयादका देखो जुल्म ज़रा, ज़ालिमने छुपाया दाम कहाँ ?

वोह ख़ुशनिगाह नहीं, जिसमें ख़ुदनुमाई नहीं।
यह चश्मदीदा है, बातें सुनी-सुनाई नहीं॥
ख़यालसे है कहीं दूर आस्तानए-दोस्त।
वहाँका शौक़ है दिलको, जहाँ रसाई नहीं॥
मरीजे-हिज्रको लाज़िम है तेरे जुल्मकी याद।
दवा यही है मगर हमने आज़माई नहीं॥
वोह आशिक़ोंसे है नाराज क्यों, ख़ुदा जाने ?
वफ़ूरे-शौक़का होना कोई बुराई नहीं॥
ज़बाँपै ज़िक्र मगर दिलमे वसवसा ऐ 'शाद' !
ख़ता मुआफ़ यह धोका है पारसाई नहीं॥

हमें पैग़ाम्बरने कुछ तो ऐसी ही ख़बर दी है।
कहें क्या तुझसे ऐ नासेह ! कि किस मतलबसे जीते हैं ?

उन्हे देखो कि अबतक ग़फ़लतोंसे काम लेते है।
हमें देखो कि बेदेखे उन्हींका नाम लेते है॥

जहाँतक हो बसरकर ज़िन्दगी आला ख़यालोंमें।
बना देता है कामिल बैठना साहेब-कमालोंमें॥

जो आँखें हों तो चश्मे-ग़ौरसे औराक़े-गुल[1] देखो।
किसीके हुस्नकी शरहें[2], लिखी है इन रिसालोंमें॥

वोह सलामत रहें इतना भी बहुत है क़ासिद !
पूछ लेते है, ग़रीबोंपै करम[3] करते है॥

---

[1]फूलकी पत्ती रूपी पृष्ठ; [2]टीकायें; [3]दया।

जो दें सवालपै उनकी सनद नहीं ऐ 'शाद' !
वही करीम हैं जो बे-सवाल देते हैं ॥

पैराक वही हिज्रे-मुहब्बतके हैं ऐ 'शाद' !
डूबें तो किसी हाल उभरते ही नहीं हैं ॥

इश्क़ और अक़्लमें ऐ दोस्त ! हमेशासे है बैर ।
लोग जो कुछ मुझे कहते हैं बजा कहते हैं ॥

हूँ इस कूचेके हर ज़र्रेसे वाक़िफ़ ।
इधरसे उम्र भर आया-गया हूँ ॥
लहदमें[1] क्यों न जाऊँ मुँह छुपाये ।
भरी महफ़िलसे उठवाया गया हूँ ॥
कुजा मैं और कुजा ऐ 'शाद' दुनिया ।
कहाँसे किस जगह लाया गया हूँ ॥

सराए-दहरमें[2] ऐ रूह ! अपना जी नहीं लगता ।
ख़ुदा जाने, यहाँ कितने दिनों रहनेको आये हैं ॥

मेरी तलाशसे मिल जाय तू, तो तू ही नहीं ।
इस अम्रे-ख़ासमें कुछ जाएगुफ़्तगू ही नहीं ॥
नियाज़मन्दको लाज़िम है चश्मतर रखना ।
अदा नमाज़ न होगी अगर वज़ू ही नहीं ॥
वोह दामन अपना उठाये हुए हैं क्यों दमे-क़त्ल ?
ख़ुदाके फ़ज़्लसे यां जिस्ममें लहू ही नहीं ॥

सदा यह आती है क़ब्रोंसे—"घुट रहा है दम ।
कि बेकसीके सिवा कोई आस-पास नहीं ॥"

---

[1]क़ब्रमें ; [2]संसाररूपी सरायमें ।

फ़साना क़ैससे सौदाए-इश्क़का पूछो।
मुझे तो सरके खुजानेका भी हवास नहीं ॥

हुस्नो-इश्क़ एक हैं, ज़ाहिरमें फ़क़त नाम हैं दो।
यह अगर सच है तो, क्या उनके बराबर हम हैं ?
अक़्लसे राह जो पूछी तो पुकारा यह जुनूं—
"वह तो ख़ुद भटकी हुई फिरती है, रहबर[1] हम है ॥"

हिज्रके बाद अगर है वस्ल, तब तो कोई अलम नहीं।
रहम है जिसकी इन्तिहा, फिर वह सितम-सितम नहीं ॥

वाइज़को इख़्तियार है, चाहे वह हो मलूल।
हम तो कलामे-हक़का बुरा मानते नहीं ॥
ऐ 'शाद' जिनके साथ ज़माना बसर किया।
अल्लाह ! अब वही मुझे पहचानते नहीं ॥

बेकार हमको ज़िब्ह किये देती है बहार।
बरसा चमनमें अब्र कि तेग़े बरस गई ॥

परवानेकी बिसात ही क्या थी फ़ना हुआ।
देखा तो शमअ भी न रही अपने हालमें ॥

रुसवाइयाँ ग़ज़बकी हुई तेरी राहमें।
हद है कि ख़ुद ज़लील हूँ अपनी निगाहमें ॥
मैं भी कहूँगा देंगे जो आज़ा[2] गवाहियाँ।
या रब ! यह सब शरीक थे मेरे गुनाहमें ॥
थी ज़ुज़वे-नातवाँ[3] किसी ज़र्रेमें मिल गई।
हस्तीका क्या वजूद तेरी जलवागाहमें ॥

---

[1]पथ-प्रदर्शक; [2]इन्द्रियाँ; [3]निर्बलताके परमाणु।

ऐ 'शाद'! और कुछ न मिला जब बराए-नज़्र[1]।
शरमिन्दगीको लेके चले बारगाहमें[2] ॥

बज़ाहिर मिल नहीं सकता अदाका तेरी अन्दाज़ा।
मगर अहले-नज़र आँखोंमें सब कुछ तोल लेते हैं ॥

कहीं निशाँ न मिलेगा तेरा हमें न सही।
किसीका क्या है हम अपनेको आप खोते हैं ॥

हम ऐसे गुमशुदा इन्साँका ज़िक्र क्या ऐ 'शाद'!
जो बा-निशाँ थे उन्हींका कहीं निशान नहीं ॥

निकली यह कहके आलमे-पीरीमें[3] तनसे रूह—
"बस अब हमारे रहनेके क़ाबिल यह घर नहीं ॥"

मंज़िले-दोस्तका निशाँ देखिए किस तरह मिले।
अक़्ल तो ख़ुद बहक गई, अब किसे रहनुमा करे ?

कोई मातम करे मेरे लिए क्यों ?
सज़ा जीनेकी है, इतना जिए क्यों ?

कुछ इख़्तियार है मालिक उरूज दे जिसको।
वोह शहसवार कहाँ और मेरा ग़ुबार कहाँ ?

कहने लगते हैं जवानीकी कहानी जो कभी।
पहले हम देर तलक बैठके रो लेते हैं ॥
एक तो जाम फिर उस हाथसे अहसनत ऐ 'शाद'!
यूँ कहो, पाते हैं हम, यूँ न कहो, लेते हैं ॥

---

[1]ईश्वरको भेंट करनेके लिए; [2]ईशमन्दिरमें; [3]वृद्धावस्थामें

ख़ुदा शाहिद, बुरा कहता नहीं जन्नतको मैं लेकिन ।
मज़ा कुछ और ही है, मै-कशीका बादाख़ानेमें ॥

दराज़ी उम्रकी हदसे ज़ियादा जब सताती है ।
ब-हसरत हम तुझे ऐ मौत ! घड़ियों याद करते हैं ॥

हज़ार तल्ख़[1] हैं, पीरे-मुग़ाँने[2] जब दी है ।
ख़ुदा-न-करदा[3] जो मैं मुँह बना-बनाके पियूँ ॥
मज़ा है बादाकशीका वहीं तो ऐ साक़ी !
पियूँ जो अब तो तेरे आस्ताँपै आके पियूँ ॥
ज़मींपै जामको रख दे ज़रा ठहर साक़ी !
मैं इसपै हो लूँ तसद्दुक़ तो फिर उठाके पियूँ ॥

अब उनका नाम न ले हिज्रमें कटी जो शबे ।
कर उनका ज़िक्र जो सरपर दिन आनेवाले हैं ॥

तड़पना देखते हो दोस्तो ! रह-रहके बिजलीका ।
न फँस जाये कोई बेकस बलाए-आस्मानीमें ॥

वफ़ाके मुद्दई शिकवा जफ़ाका लबपै लाते हैं ।
वोह गोया बेवफ़ा हैं, हम वफ़ा करना सिखाते हैं ॥
जफ़ायें उनकी हैं बेमस्लेहत ? अक़्लोंके नाख़ुन लो ॥
अब ऐसे क्या वोह भोले हैं, कि बेसोचे सताते हैं ॥

दरीचा खोलकर सुलझाते हैं वोह मुश्कबू ज़ुल्फ़ें ।
यह ख़ुश्बू सूँघ लो ऐसेमें आकर ऐ ! वतनवालो ॥

अपनी हस्तीको ग़मो-दर्द मुसीबत समझो ।
मौतकी क़ैद लगा दी है, ग़नीमत समझो ॥

---

[1]कड़वी; [2]मधुशाला-स्वामीने; [3]ख़ुदा न करे ।

फ़ैसला होता है नेकी-ओ-बदीका हरदम।
दिलको इस सीनेमें छोटी-सी अदालत समझो॥

मयस्सर जिनका था दीदार बेखटके ज़मानेको।
वही ख़ुश चश्म अब मिलते नहीं सुर्मा लगानेको॥
दमे-आख़िर हमारे दिलमें यूँ उम्मीद आती है।
कोई जाये कहीं शर्मिन्दगी जैसे मिटानेको॥

लेता है मेरा ज़ख़्मे-जिगर बोसे-पै-बोसे।
पैकांपै कहीं नाम तुम्हारा ख़ुदा न हो॥

वोह पूछते ही रह गये वजहे-मलालेग़म।
हम सोचते रहे जो कहीं कुछ गिला न हो॥
नाज़ुक मिज़ाज दिलको ही एहसाँ नहीं पसन्द।
शर्मिन्दए-क़ुबूल हमारी दुआ न हो॥

क़ासिद! वोह बात कह कि यक़ीं कुछ तो दिलको आय।
क्या कह रहा है तू कहीं वादा किया न हो॥

यह सब दुरुस्त कि तुम बुत भी हो ख़ुदा भी हो।
मगर नियाज़के क़ाबिल यह दिल रहा भी हो॥

दिल उसको बारगाहमें सिज्दे करे तो क्या?
अपने नियाज़मन्दसे जो बे-नियाज़ हो॥

कोई ऐ 'शाद'! पूछे या न पूछे इससे क्या मतलब?
ख़ुद अपनी क़द्र करनी चाहिए साहेब-कमालोंको॥

"मरीज़े-इश्क़को मरते कभी नहीं देखा।"
दबी ज़बाँसे यह क्या कह गये, इधर देखो!

मुर्दोंकी क़नाअ़तोंपे है रश्क ।
पहने रहे इक कफ़न हमेशा ।।

अपनी आँखोंका यह ईमा है ख़याले-यारसे ।
तूने बेमौसमकी बरसातें न देखी हों तो देख ।।
एक हसरत दो तरफ़ रहती है, मसरूफ़े-कलाम ।
तख़लियेकी[1] गर मुलाक़ातें न देखी हों तो देख ।।

'शाद' ! आता है बगोला अपने इस्तक़बालको[2] ।
दश्ते-ग़ुरबतकी[3] मुदारातें[4] न देखी हों, तो देख ।।

बरसरे-दार[5] खिंचे या न खिंचे वोह लेकिन ।
जो कहे कलमए-हक़[6] तू उसे मंसूर समझ ।।

जुम्बिशे-अबरूए-ख़मदारका पूछो न सबब ।
रक्खे-रक्खे यह कमाँ यूँ भी कड़क जाती है ।।

बहुत कुछ पाँव फैलाकर भी देखा 'शाद' दुनियामें ।
मगर आख़िर जगह हमने न दो गज़के सिवा पाई ।।

लगा न दे तेरी रफ़्तारे-नाज़में धब्बा ।
कहीं-कहीं जो निशाने-मज़ार बाक़ी है ।।

न रोकती जो मुझे ऐ ज़मीं ! कशिश तेरी ।
तो मेरी ख़ाक ख़ुदा जाने क्या-से-क्या होती ।।
तेरी तलाशमें हमने मिला दी ख़ाकमें उम्र ।
तू ही बता कि यह कम्बख़्त रहके क्या होती ?

---

[1]एकान्तकी; [2]स्वागतको; [3]प्रवासके जंगलकी; [4]आवभगत; [5]फाँसीके तख़्तेपर; [6]सत्य बात ।

गुलोंने ख़ारोंके छेड़नेपर सिवा खमोशीके दम न मारा।
शरीफ़ उलझे अगर किसीसे तो फिर शराफ़त कहाँ रहेगी ?

बुत-कदा है कि खराबात[1] है या मस्जिद है।
हम तो सिर्फ़ आपके तालिब है ख़ुदा शाहिद है॥
न मुसल्लेकी जरूरत है न मिम्बर[2] दरकार।
जिस जगह याद करें तुझको, वही मस्जिद है॥

वोह चाहे बदलें-न-बदलें मेरे मुक़द्दरको।
किसी क़दर मुझे तसकीं तो है दुआ करके॥

सुनें कि हम न सुने तूने ख़ुद दिया है जवाब।
हुजूमे-यासमें[3] जब-जब तुझे पुकारा है॥

यह शर्त आपसमें की थी, मैं निकलती हूँ कि तू पहले।
मगर की रूहने सबक़त न निकली आर्जू पहले॥

मेरी जिन्दगानीका सौदा गिराँ है।
घटे तो ज़ियाँ[4] है, बढ़े तो ज़ियाँ है॥

निकालें बहरे-गमसे डूबतोंको यह कहाँ हिम्मत !
ख़ुद अपने हाथसे अपना डुबोना हमको आता है॥
निचोड़ें बैठकर, फिर ख़ुश्क कर लें, यह नहीं आता।
जहाँ बैठे वहाँ दामन भिगोना हमको आता है॥

फ़लकका ज़िक्र तो क्या है, ज़मीके भी न रहे।
हम अपनी चालमें आख़िर कहींके भी न रहे॥

---

[1]मधुशाला; [2]मस्जिदमें वह ऊँचा चौतरा जहाँ बैठकर भाषण दिया जाता है; [3]निराशाओंमें; [4]नुकसान, घाटा।

वोह साहबे-असर हूँ कि ऐ 'शाद' ! बादे-मर्ग ।
बोसे लिये है मेरी लहदके रक़ीबने ॥

असर अब इससे ज़ियादा वफ़ाका क्या होगा ।
क़सम हमारी मुहब्बतकी लोग खाने लगे ॥

वोह नातवाँ[1] हूँ कि नाला मेरा तेरे दर तक ।
लिये गया मुझे बेइख़्तियार खींचे हुए ॥

मैं और अर्ज़ करूँ क्या जनाबे-नासेहसे ।
बस एक आप ग़रीबोंके ख़ैरख़्वाह मिले !

वोह ज़माना वस्लका क्या हुआ, कभी आश्नाए-जफ़ा न थे ।
कि बदनसे रूह अलग भी थी, मगर आप हमसे जुदा न थे ॥
दिले-मुज़्तरिब ! तुझे क्या कहूँ ? अबस उनके पाँवपै सर रखा ।
जो ख़फ़ा भी हो गये थे तो क्या, कि वोह आदमी थे ख़ुदा न थे ॥
हुए जाके तालिबे-दीद जो, यह क़ुसूर है तो उन्हींका है ।
कोई और होंगे वोह बद-यक़ीं, तेरे आस्ताँके गदा[2] न थे ॥

किसीकी बात भला उसके दिलपै क्या लगती ?
ख़ुदाके बन्दोंने यूँ तो कही ख़ुदा लगती ॥

हवाए-दहर[3] बिगाड़े हज़ार फूलोंको ।
न हो वोह रंग, शराफ़तकी कुछ तो बू होगी ॥

ब-वक़्ते-नज़अ वोह नाहक़ चले गये उठकर ।
हम उसके बाद तो आँखोंको ख़ुद फिरा लेते ॥

मैं निसार अपने ख़यालपर कि बग़ैर मैके हैं मस्तियाँ ।
न तो ख़ुम है पेशे-नज़र कोई, न सबू है पास न जाम है ॥

---

[1]निर्बल ; [2]भिक्षुक ; [3]संसारकी हवा ।

बड़ी मुश्किलोंसे हुआ है हल यह किताबे उल्फ़का मस्अला ।
उन्हें वस्ले-ग़ैर हलाल है, हमें शबकी नींद हराम है ॥

इसी सोचमें है दिले-हज़ीं, कि क़यामत आनेको आयेगी ।
हुए उनसे तालिबे-दीद हम, वोह कहेंगे—"मज़्मअे आम है ॥"

कह दो मरीज़े-ग़मसे कि आयेंगे क़ब्रपर ।
रख लो ख़ुदाके वास्ते, इतनी-सी जान भी ॥

बिछाकर जो गया बिस्तरपै काँटे ।
वही ज़ालिम मेरा आरामे-जाँ था ॥

जिसका दिल मुर्झा चुका हो ऐ सबा ! उसके लिए ।
फ़स्ले-गुल आई तो क्या, अब्रे-बहार आया तो क्या ?

भला हुआ कि उड़ा दी सबाने ख़ाक मेरी ।
तेरा तो सरपै न एहसान ऐ ज़मीन ! लिया ॥

आराम कर लो क़ब्रमें चन्दे मुसाफ़िरो !
मंज़िलतक और अब कोई मेहमाँ सरा नहीं ॥

दो-चार वक़्त जाते हैं रोज़ उस गलीमें हम ।
अबतक कोई नमाज़ हमारी क़ज़ा नहीं ॥

मज़ा मिल जायगा जीनेका तुझको ।
किसी ज़ालिम पै नासेह तू भी मर देख ॥

ऐसा न हो मलाइक[1] करने लगें शिकायत ।
तीरे-नज़र तुम्हारा कुछ दूर जा पड़ा है ॥

रहे-वफ़ामें[2] क़दम डिगे न जायें देख ऐ दिल !
सतानेवाले अभी बहुत कुछ सतायेंगे ॥

---

[1]फ़रिश्ते ; [2]निभानेके मार्गमें ।

यह अदा, यह उनका मिलना, यही कह रहा है मुझसे !
कि जफ़ा भी अब जो होगी तो ब-शक्ले-नाज होगी ॥

नजर आए-न-आए कोई आंसू पोंछनेवाला ।
मेरे रोनेकी दाद ऐ बेकसी ! दीवारो-दर देने ॥

उसके लिए तो हाथ उठाना भी है गुनाह ।
जिसकी दुआ हों आप, वोह फिर क्या दुआ करे ?

मोती तुम्हारे कानके थर्रा रहे हैं क्यों ?
फ़रियाद किस ग़रीबकी गोश-आशना हुई ॥

गुलिस्ताने-जहांमें बस वही आज़ाद इन्सां है ।
सबाकी तरह जिस गुलसे मिले उसको हँसा आये ॥

तुलनात्मक अशआर

अब हम 'आतिश' और 'शाद'की हमतरही गजलोके चन्द तुलनात्मक शेर पेश कर रहे हैं, ताकि पाठक जान सके कि एक ही काफियेमें दोनों उस्तादोंने कैसे-कैसे मज़ामीन नज्म किये हैं । और दोनोका मर्तबा ग़ज़ल-गोईमें कितना ऊंचा है । जहां शादने 'आतिश'के किसी क़ाफियेपर शेर नही कहा है, वहाँ मजबूरन उससे मिलता-जुलता शादके दूसरे क़ाफ़िये-का शेर दे दिया है ।

आतिश— न पूछ हाल मेरा चोबे-खुश्के-सहरा[1] हूँ ।
लगाके आग मुझे, कारवां[2] रवाना हुआ ॥

शाद— खुदा बुरा करे इस नींदका यह कैसी नींद ?
खुली कब आँख कि, जब कारवाँ रवाना हुआ ॥

---

[1]जंगलकी सूखी लकडी ; [2]यात्रीदल ।

आतिश— भरा है सोनए-दिल कूचए-मुहब्बतसे।
ख़ुदाका घर था जहाँ, वाँ शराबख़ाना हुआ॥

शाद— ग़ज़ब किया तेरे जानेने बज़्ममें[1] साक़ी!
बुलन्द चारतरफ़ शोर-आमिशाना[2] हुआ॥

आतिश— हो जाये हुस्ने-मानी बेसूरत आश्कार।
रूए-हक़ीकत उलटे जो पर्दा मजाज़का॥

शाद— उनको निगाहे-नाज़ जो पलटी तो देखना।
मुंह देखती रहेगी हक़ीक़त, मजाज़का॥

आतिश— साक़ी! जलाल[3]-ओ-दर्द जो तौफ़ीक़[4] हो सो दे।
मस्तोंको तेरे होश कहाँ इम्तियाज़का[5]॥

शाद— देखा तो होगा हमने अज़लमें तेरा जमाल।
लेकिन वोह कोई वक़्त न था इम्तियाज़का॥

आतिश— क्योंकर वोह नाज़नीन करे बेनियाज़ियाँ।
अन्दाज़से भी हौसला आली है नाज़का॥

शाद— किस तरह दिलमें फ़ित्नए-महशरका हो असर।
हंगामा याद है तेरी रफ़्तारे-नाज़का॥

आतिश— याद करके अपनी बरबादीको रो देते हैं हम।
जब उड़ाती है हवाए-तुन्द[6] ख़ाके-कूए-दोस्त[7]॥

शाद— लाशए-उरियाँ आशिक़का[8] कोई देखे वक़ार[9]।
ढाँकती है उठके किस उल्फ़तसे ख़ाके-कूए-दोस्त॥

---

[1]महफ़िलमें ; [2]आमफहम ; [3]रूपका दर्शन, चमत्कार ; [4]हौसला, सामर्थ्य ; [5]थोड़े-बहुतके भेदका ; [6]तेज़ हवा ; [7]प्रेयसीके कूचेकी धूल ; [8]प्रेमीकी नग्न-लाशका ; [9]महत्व।

आतिश— दाग़े-दिलपर ख़ैर गुज़री तो ग़नीमत जानिए।
दुश्मने-जाँ है जो आँखे देखती है सूए-दोस्त[1] ॥

शाद— तू बड़ा आक़िल है नासेह ! तू ही समझा दे मुझे।
कौन शै रह-रहके दिलको खींचती है सूए-दोस्त ॥

आतिश— दो मरेंगे जख़्मेकारीसे तो हसरतसे हज़ार।
चार तलवारोंमे शल हो जायेगा बाज़ूए-दोस्त ॥

शाद— ख़त गलेपर पड़ चुका था ख़ून देती थीं रगें।
वाये हसरत किस जगह आकर थका बाज़ूए-दोस्त ॥

आतिश— फ़र्शे-गुल बिस्तर था अपना ख़ाकपर सोते है अब।
ख़िश्त[2] ज़ेरे-सर नहीं, या तकिया था जानूए-दोस्त ॥

शाद— किस ख़ुशीसे तहनियत दे-देके यूँ कहता है दिल।
वस्लकी शब है मुबारक दोस्तको पहलूए-दोस्त ॥

आतिश— हिज्रकी शब हो गई रोज़े-क़यामतसे दराज़[3]।
दोशसे[4] नीचे नहीं उतरे अभी गेसूए-दोस्त ॥

शाद— दहरमे क्या-क्या हुए है इनक़लाबाते-अज़ीम।
आस्माँ बदला, ज़मीं बदली, न बदली ख़ूए-दोस्त[5] ॥

आतिश— इस बलाए-जाँसे 'आतिश' देखिए क्योंकर बने ?
दिल सिवा शीशेसे नाज़ुक, दिलसे नाज़ुक ख़ूए-दोस्त ॥

शाद— 'शाद' यूँही अहले-शक शकमे पड़े रह जायेंगे।
हम इन्हीं आँखोंसे इक दिन देख लेंगे रूए-दोस्त ॥

---

[1]प्रेयसीकी तरफ़; [2]ईंट; [3]लम्बी; [4]कन्धेसे; [5]मित्रका स्वभाव।

आतिश— फ़ुरक़ते-यारमें मुर्दा-सा पड़ा रहता हूँ।
रूह क़ालिबमें नहीं, जिस्म है तनहा बाक़ी॥

शाद— मैकदेमें न वोह साग़र है, न ख़ुम है, न वोह जाम।
चल बसे यार, रहे हम तने-तनहा बाक़ी॥

आतिश— इस क़दर सीनए-ग़म, इश्क़से मामूर हुआ।
न रही दिलमें मेरे हसरते-दुनिया बाक़ी॥

शाद— काश जीते यूँ-ही मर-मरके कई बार ऐ दिल!
सैकड़ों साल रहेगी अभी दुनिया बाक़ी॥

आतिश— गरमियाँ हैं जो यही आहे-शरर-अफ़शाँकी[1]।
नहीं रहनेका मेरे यारका पर्दा बाक़ी॥

शाद— चार दीवारे-अनासिरको[2] गिराया भी तो क्या?
वही धोका है, वही है अभी पर्दा बाक़ी॥

आतिश— आशिक़-नवाज़ हुस्नकी तारीफ़ क्या करूँ?
यूसुफ़से भी अज़ीज़ उसे अपना ग़ुलाम है॥

शाद— मस्तोंपै मुनहसिर है न अहले-शऊरपर।
साक़ी! तेरा तमाम ज़माना ग़ुलाम है॥

आतिश— जबतक करे हलाल न मुझ बेगुनाहको।
क़ातिलको दहने हाथका खाना हराम है॥

शाद— इतना भी मैकशोंको नहीं मैकशीमें होश।
हदसे अगर सिवा हो तो पीना हराम है॥

---

[1]चिनगारी झाड़नेवाली आह; [2]पंचतत्त्वको।

आतिश— माशूक़ ही नहीं जो न वादा ख़िलाफ़ हो।
चाहे जो तुझसे पुख़्तगोए-अहद[1] ख़ाम[2] है॥

शाद— तेग़े-निगाहेयार! तेरी काट अल-अमाँ।
फ़ौलाद भी तो आगे तेरे मोमे-ख़ाम है॥

आतिश— दौलतके सामने नहीं कुछ क़द्रे-हुस्न भी।
महमूदका अयाज़-सा ख़ुशरू ग़ुलाम है॥

शाद— कहते हैं किसको हुस्नकी ख़िदमत-गुज़ारियाँ।
जिस मुब्तलाको देखिए दिलका ग़ुलाम है॥

आतिश— सुबहे-बहार है मुझे साकी पिला शराब।
सब जानते हैं ईदका रोज़ा हराम है॥

शाद— इक जामकी बिसात तो साकी बहुत न थी।
पानी भी अब मुझे तेरे घरका हराम है॥

आतिश— 'आतिश'! बुरा न मानिए हक़-हक़ जो पूछिए।
शाइर हैं हम, दरोग़ हमारा कलाम है॥

शाद— मेहमाँ सराए तनसे चली रूह कहके हाय—
"इस घरमें अब न आयेंगे गर 'शाद' नाम है॥"

हमतरही ग़ज़लोंके अतिरिक्त इन दोनों बाकमाल उस्तादोंके ऐसे अशआर भी बहुत अधिक हैं, जो विचारों और भावोंकी दृष्टिसे समानता रखते हैं। उनमें-से चन्द अशआर पेश किये जा रहे हैं, ताकि पाठक जान सकें कि एक ही तरहके भावों और विचारोंको सिद्धहस्त शाइर अपनी-अपनी भाषा और कल्पनाका परिधान पहिनाकर किस तरह सँवारते हैं।

---

[1]वादेकी दृढ़ता; [2]कच्चा, व्यर्थ।

आतिश— दस्ते-यारानें-वतनसे[1] नहीं मिट्टी दरकार ।
दब मरूँगा मैं कहीं, रेगे-बयाबाँके[2] तले ॥

शाद— लबे-तिश्ना[3] रहना, एहसाँसे बेहतर ।
देखा किया मुँह, दरिया हमारा ॥

ख़ुश है गर तिश्ना-लबीने यूँ-ही मारा हमको ।
चीने-अबरू नहीं, दरियाकी गवारा हमको ॥

आतिश— हमेशा झाड़ते हैं गर्दे-पैरहन[4] ग़ाफ़िल !
नहीं समझते कि है ज़ेरे-पैरहन[5] मिट्टी ॥

शाद— शुस्तगोएज़बाँ[6] अबस,[7] दिलमें भरे हैं ख़ारो-ख़स[8] ।
छोड़ अभी बरूनेदर,[9] फ़िक्रे दरूने-ख़ाना कर[10] ॥

आतिश— आस्माँ ! मरके तो राहत हो कहीं थोड़ी-सी ।
पाँव फैलानेको हाथ आये ज़मीं थोड़ी-सी ॥

शाद— आरामसे हूँ क़ब्रके अन्दर जो बन्द हूँ ।
मैं भी तो आदमी हूँ फ़राग़त पसन्द हूँ ॥

आतिश— मारफतमें तेरी ज़ाते-पाकके ।
उड़ते हैं होशो-हवास इदराकके[11] ॥

शाद— तेरे कमालकी हद कब कोई बशर समझा ।
उसी क़दर उसे हैरत है जिस क़दर समझा ॥

---

[1]देशवासी मित्रोंके हाथमें; [2]रेगिस्तानकी धूलमें; [3]प्यासा; [4]पोशाककी धूल; [5]लिबासके नीचे; [6]वाणीकी मधुरता; [7]व्यर्थ; [8]काँटे-तिनके; [9]बाहरी झाड़-पोंछ; [10]अन्तरंगकी; [11]बुद्धिके ।

आतिश— दोनों जहाँके कामका रक्खा न इश्क़ने।
दुनिया-ओ-आख़ेरतसे किया बेख़बर मुझे॥

शाद— फ़लकका ज़िक्र ही क्या है, ज़मींके भी न रहे।
हम अपनी चालसे आख़िर कहींके भी न रहे॥

आतिश— बीना[1] हों जो आँखें तो रुख़े-यारको देखें।
नज़्ज़ारेके क़ाबिल जो तमाशा है तो ये है॥

शाद— यह आर्ज़ू है तेरी जलवागाहमे जाकर।
हज़ार आँखे हों और सबसे यार हम देखे॥

आतिश— हश्रपर वादए-दीदार न कर आशिक़से।
किसको मालूम है, फ़रदाए-क़यामत[2] कब है॥

शाद— तकिय-ए-वादापै[3] सब चुपके पड़े हैं तहे-ख़ाक[4]।
कल क़यामत जो न आई तो क़यामत समझो॥

आतिश— ठहरा हुज़ूरे-यार न माहे-चहार[5] वोह।
दिन हो गया नक़ाब जो शबको उठा दिया॥

शाद— शबे-वस्ल अपनी ही आँखोंसे यह अन्धेर देखा है।
नकाब उनका उलटना रातका काफ़ूर हो जाना॥

---

[1]देखनेवाली; [2]प्रलयका दिन; [3]वादेके भरोसेपर,
[4]मिट्टीके नीचे, समाधिमे; [5]चार चाँद।

आतिश---क़ालिबे-ख़ाकीको[1] तो सुनते हैं 'आतिश' ज़ेरे-ख़ाक।
कुछ नहीं मालूम हमको रूह[2] किस आलममें है॥

शाद-- जिसे पाक रखनेकी थी हविस वोह तो तेरे दरपै पहुँच गई।
यह जो मुश्ते-ख़ाक ज़मींपै है, उसे फेक आओ कहीं सही॥

आतिश-- वक़्ते-आख़िर इश्के-पिन्हाँ, यारपर ज़ाहिर हुआ।
नज़अमें ईसाने पहचाना मेरे आज़ारको॥

शाद-- तुझीको नज़अमें पूछा तेरे ख़मोशोंने।
अख़ीर वक़्त जब आया छुपे न राज़[3] उनके॥

आतिश-- हाथ क़ातिलका मेरे, ख़ंजर तक आकर रह गया।
कुहनियों तक आस्तीनोंको चढ़ाकर रह गया॥

शाद-- हमारी जान सदक़े नौजवां क़ातिलके ग़ुस्सेपर।
कोई अन्दाज़ देखे आस्तीनोंके चढ़ानेका॥

आतिश-- छेड़ बैठे जो हम अफ़सानए-ग़ेसूए-दराज़।
सुबह होगी न रहेगी शबे-यल्दा[4] बाक़ी॥

शाद--जो कहूँ तो ख़त्म न हो सके, जो सुने कोई तो ख़लिश रहे।
यह फ़साना ज़ुल्फ़े-दराज़का[5] मेरी ज़िन्दगीसे दराज़[6] है॥

---

[1]मिट्टीरूपी शरीरकी; [2]आत्मा; [3]भेद; [4]सबसे बड़ी अँधेरी रात; [5]लम्बी जुल्फ़ोंका; [6]लम्बा, विस्तृत।

आतिश— अदमसे हस्तीमें जाकर यही कहूँगा मैं।
हज़ारों हसरते-ज़िन्दाको गाड़-ओ-दाब आया॥

शाद—अभी बहुत दिलमें हैं उम्मीदें तड़पके हसरतसे मर न जाये।
मिलो अगर 'शाद' से अज़ीज़ो! तो ज़िक्र करना न आर्ज़ूका॥

आतिश— चमनिस्ताँको गई नशवोनुमा फिरती है।
रुत बदलती है, कोई दिनमें हवा फिरती है॥

शाद— खिज़ाँमें खुश्क शाख़ोंसे लिपटकर मुफ़्त जो रोना।
बहार आयेगी घबराओ न ऐ उजड़े चमनवालो!

आतिश— आलमसे कुछ ग़रज़ नहीं ऐ जाने-जाँ! हमें।
दिलको नहीं है कोई तुम्हारे सिवा कुबूल॥

शाद— हज़ार मजमए-खूबाने-माहरू[1] होगा।
निगाह जिसपै ठहर जायेगी वह तू होगा॥

आतिश— कहाँतक आँखोंमें सुर्ख़ी शराबख्वारीसे।
सफ़ेदमू[2] हुए बाज़ आ सियाहकारीसे॥

शाद— अब इज्तिनाब[3] मुनासिब है 'शाद' रिन्दीसे।
सफ़ेद आपके दाढ़ीके बाल होने लगे॥

---

[1]सुन्दरियोंका समूह; [2]सफ़ेद बाल; [3]परहेज, बचाव।

आतिश— राज़े-दिल[1] अफ़शा[2] न हो ऐ दिल ! कहे देता हूँ मैं।
फोड़ डाली आँख अगर आँसू नजर आया मुझे॥

शाद— हुजूमे-अश्कसे दीदारमे खलल न पड़े।
जो अबके रोऊँ तो आखोंको मैंने फोड़ दिया॥

आतिश— नाफ़हमी[3] अपनी पर्दा है दीदारके लिए।
वर्ना कोई नक़ाब नहीं यारके लिए॥

शाद— गिला जलवेका तेरे क्या कि आलम आश्कारा है।
हमें रोना तो जो कुछ है वोह अपनी कमनिगाहीका॥

आतिश— खूब रोये हालपर अपने, वतनका सुनके हाल।
कोई गुरबतमे जो आ निकला हमारे शहरसे॥

शाद— चमनको याद करके देरतक आँसू बहाता हूँ।
कोई तिनका जो मिल जाता है उजड़े आशियानेका॥

आतिश— करम[4] किया जो सनमने सितम जियादा किया।
शबे-फिराक़मे मैंने खुदाको याद किया॥

शाद— कोई ख़फ़ा हो-तो-हो, अमरे-हक़[5] मगर यूँ है।
बुतोंको चालने सबको खुदा-परस्त किया॥

---

[1]दिलका भेद; [2]प्रकट; [3]बेसमझी, अज्ञानता; [4]दया, मेहर्बानी; [5]वास्तविकता।

आतिश—हमेशा फ़िक्रसे यां आशिक़ाना शेर ढलते हैं।
जबांको अपनी बस इक हुस्नका अफ़साना आता है॥

शाद— न आईनेका क़िस्सा और न हाले-शाना कहते हैं।
हक़ीक़तमें जमाले-यारका अफ़साना कहते हैं॥

आतिश— हिकायते-गुले-रंगीने-यार क्या कहते?
चमनको आग लगाता जो बाग़बां सुनता!

शाद— जमाले-यारका क़िस्सा चमनमें चलके कहो।
गुलोंके कान खड़े होंगे उस हिकायतसे॥

---

२४ मई १९५३]

द्वितीय संस्करणके लिए

रुबाइयाँ

शादकी ६५ रुबाइयां अंग्रेजी अनुवादके साथ हमीद-मंजिल पटना सिटीने बहुत सुरुचिपूर्ण ढगसे प्रकाशित की हैं। उनमें-से ११ चुनकर यहाँ दी जा रही हैं—

क्या मुफ़्तका जाहिदोंने इल्जाम लिया।
तस्बीहके[1] दानोंसे अबस[2] काम लिया॥
यह नाम तो वोह है जिसे बे-गिन्ती ले।
क्या लुत्फ़ जो गिन-गिनके तेरा नाम लिया॥

क्यों न रहे ग़मे-निहानी[3] तेरा
दुनियामें बता कौन है सानी[4] तेरा॥

---

[1]मालाके; [2]व्यर्थ; [3]अन्तरंग दुःख; [4]तेरे जैसा

हम लेके असा[1] दूर तलक ढूँढ़ आये।
कोसों नहीं नाम है जवानी तेरा॥

घर क़ब्र बने अब वह महल[2] आ पहुँचा।
हुशियार कि पैग़ामे-अजल[3] आ पहुँचा॥
लेकर ख़ते-शौक़[4] चल चुका है क़ासिद।
पहुंचा न अगर आज तो कल आ पहुँचा॥

दुनियामें जो है भी तो न होने की तरह।
जागे भी अगर कभी तो सोनेकी तरह॥
हँसना तो बड़ी बात है, इसका क्या ज़िक्र।
रोना है कि रोये भी न रोनेकी तरह॥

क्या ख़ौफ़ है दुनियासे गुज़र जानेमें।
क्यों डरते हो 'शाद' अपने घर जानेमें?
कुछ ख़ैर है, ज़िन्दगीमें राहत[5] कैसी।
राहत तो है मेरी जान मर जानेमें॥

मसलक[6] जो अलग-अलग नज़र आते हैं।
यह देखके राहगीर घबराते हैं॥
रस्तेका फ़क़त फेर है रह-रव[7] आख़िर।
मंज़िलपै पहुँचते हैं तो मिल जाते हैं॥

जिस दिलमें ग़ुबार हो, वोह दिल साफ़ कहाँ।
फ़िर ख़ुल्क़[8] कहाँ, वफ़ाओं[9] अल्ताफ़[10] कहाँ॥

---

[1]लाठी; [2]अवसर, समय; [3]मृत्यु-सन्देश; [4]मृत्युका पत्र; [5]निराकुलता; [6]रास्ते; [7]यात्री; [8]खुश मिजाजी; [9]-[10]निभाना और महरबानियाँ।

जिस क़ौममें आ गया तअ़स्सुबका[1] क़दम।
उस क़ौममें ऐ 'शाद' फिर इन्साफ़ कहाँ॥

ताक़त तने-नातवाँकी[2] सब दूर हुई।
ख़म हो गई पुश्त,[3] आख बेनूर[4] हुई॥
क्या शोख़ मिज़ाज थी जवानी मेरी।
पीरीसे[5] मिलाके आप काफ़ूर[6] हुई॥

वाइज़ जब तक कि बरसरे-मिम्बर[7] है।
रिन्दोंकी तरफ़ रुए-सुख़न[8] अक्सर है॥
इनसाफ़से इतना तो बता दे कोई।
क्या कीना-कशीसे[9] मैकशी[10] बदतर है?

कितनी ही हयात[11] हो मगर मरना है।
ता-उम्र इसी ज़ीस्तका[12] दम भरना है॥
दोज़ख़ क्या है? हज़ूमे-ग़ममें[13] रहना।
क्या शै है बहिश्त? दिलका ख़ुश करना है॥

बदले न सदाक़तकी[14] निशाँ[15] एक रहे।
हर हालमें पिन्हाँ-ओ-अयाँ[16] एक रहे॥
इन्साँ है वही जो इस दुरंगीसे बचे।
लाज़िम है कि दिल और ज़बाँ एक रहे॥

१८ अगस्त १९५७ ई०]

---

[1]पक्षपात; [2]निर्बल शरीरकी; [3]कमर झुक गई; [4]प्रकाश रहित; [5]बुढ़ापेसे; [6]नौ-दो-ग्यारह; [7]व्याख्यान मचपर; [8]मद्यपोंकी ओर व्याख्यानका रुख है; [9]द्वेष-भावसे; [10]मदिरा पीना; [11]जिन्दगी; [12]जीवनका; [13]दुःखोंके समूहमें; [14]सचाईका; [15]चिह्न; [16]छिपा हुआ और प्रकट।

'हसरत' मोहानी

[१८७५—१९५१ ई०]



सैयद फ़ज़लुलहसन 'हसरत' उन्नाव ज़िलेके मोहाना क़सबेमें १८७५ई० में उत्पन्न हुए, और १९०३ ई०में आपने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से बी० ए० पास किया।

'हसरत' कट्टर और धार्मिक मुसलमान थे। नमाज़ और रोज़ेके सख़्त पाबन्द थे। ओलिया[1] सिफ़त पीरके मुरीद थे। फ़िरंगी महल लखनऊके पीरे-ख़ानक़ाहके हाथपर आप बैअ़त[2] कर चुके थे, और इतनी श्रद्धा-भक्ति रखते थे कि अपने अन्तिम दिनोंमें आप फ़िरंगी महल आ गये थे। यहीं ता० १३ मई १९५१को आपकी मृत्यु हुई। मृत्युसे पहले आपने केवल यही अभिलाषा प्रकट की, कि आपका भी प्रतिवर्ष पीरे-ख़ानक़ाहके साथ उर्स[3] किया जाय। आप अरससे प्रतिवर्ष हज-यात्राको भी जाया करते थे। किसी भी क़िस्मका नशा नहीं करते थे, यहाँतक कि तम्बाकूसे भी परहेज़ था।

मुसलमानोंके हितके लिए जीना और मरना जीवनका मुख्य ध्येय समझते थे। इस्लामके लिए आपके हृदयमें दहकती हुई ज्वाला थी,

---

[1]पहुँचे हुए फ़क़ीर ; [2]ईमान ला चुके थे, उनके भक्त हो गये थे; [3]समाधिपर क़ुरआन पढ़ना एवं धार्मिक गायन आदि।

जिसे आप तमाम उम्र सुलगाये रहे, बड़ी-से-बड़ी मुसीबतोंके झोंके उसे कभी बुझा नहीं सके।

भारतकी बागडोर अंग्रेजोंने मुस्लिम-शासकोंसे छीनी थी। अतः आप अंग्रेजी-राज्यके कट्टर विरोधी थे। यह वह युग था जब कि भारतके मुसलमान नवाब और रईस अंग्रेजोंकी चाटुकारितामें ही बड़प्पन समझते थे, और सर सैयदके आन्दोलनके फलस्वरूप जी-हुजूरी मुसलमानोंमें व्याप गई थी। अंग्रेजोंके विरुद्ध बोलने और लिखनेकी कल्पना स्वप्नमें भी मुसलमानोंसे नहीं की जा सकती थी। 'हसरत' उस समय भी अंग्रेजोंके पाँव भारतसे उखाड़नेके स्वप्न देखने लगे थे।

उन दिनों लोकमान्य तिलक स्वराज्य-आन्दोलन बहुत सरगर्मीसे चला रहे थे। शत्रुका शत्रु अपना मित्र होता है, इसी नीतिके अनुसार 'हसरत' लोकमान्य तिलककी नीतिके समर्थक हो गये। शिक्षा समाप्त करते ही नौकरी आदिके चक्करमें न पड़कर आपने साहित्य और राजनीतिक विचारोंसे ओत-प्रोत 'उर्दूए-मोअल्ला' मासिक पत्र १९०४ ई० में अलीगढ़से निकालना प्रारम्भ कर दिया।

'हसरत' जैसे निर्धन युवकके लिए पत्र-प्रकाशन करना कण्टकाकीर्ण मार्गपर चलना था, परन्तु इरादेके मजबूत और धुनके पक्के 'हसरत'को विचलित करनेका साहस किसमें था? उर्दूए-मुअल्ला बड़े आबोतावसे प्रकाशित हुआ और बड़े धड़ल्लेसे चलता रहा। साहित्यिक और राजनीतिक गंगा-जमुनी (दोनों) विचारधाराएँ निर्बाध गतिसे बहती रहीं। १९०४ ई०में आप पहलीबार प्रतिनिधिकी हैसियतमें काग्रेस-अधिवेशनमें भी सम्मिलित हुए।

१९०८ ई०में एक सज्जनका टर्कीके सम्बन्धमें एक ऐसा लेख 'उर्दूए-मोअल्ला'में प्रकाशित हो गया, जो अंग्रेज सरकारकी दृष्टिमें गैर कानूनी था। ऐसे विद्रोहको अलीगढ़ यूनिवर्सिटीके कर्त्ता-धर्त्ता कैसे बर्दाश्त कर सकते थे? उन्होंने जी खोलकर 'हसरत'के विरुद्ध गवाहियाँ दीं। फलस्वरूप आप दो

वर्षकी जेल भेज दिये गये। मगर चारित्रकी दृढ़ता देखिए कि मजबूर किये जानेपर भी आपने वारंटवाले लेखकका नाम नहीं बताया और सारी जिम्मेदारी आपने ऊपर ओढ़ ली।

जेल जानेका तो आपको मलाल नहीं हुआ, क्योंकि जिस मार्गपर आप चल निकले थे, उसमें ऐसा पड़ाव आना लाजिमी था। मगर बेहद क़लक़ पुलिसकी इस हरक़तसे हुआ कि उसने आपके सामने ही पुस्तकोंका बहुत बड़ा संग्रह फूँक दिया, जिसमें बहुत-से हस्तलिखित दीवान भी थे। जेलमें आपको बीस सेर गेहूँ रोजाना पीसने पड़ते थे। उसी जमानेमें आपने यह शेर कहा था—

हैं मश्क़े-सुख़न जारी, चक्कीकी मशक़्क़त भी।
इक तुर्फ़ा तमाशा है, 'हसरत'की तबीअ़त भी॥

रमजानका महीना आया तो रोजे रखे, मगर जेलमें न रोजे इफ्तियार करनेके, न खोलनेके खाद्य पदार्थ उपलब्ध थे।

कट गया क़ैदमें माहे-रमज़ाँ भी 'हसरत'!
गरचे सामान सहरका[1] था न इफ़्तारीका[2]॥

स्वदेशी-आन्दोलनके आप प्रबल समर्थक थे। भूलकर भी विदेशी वस्त्रका उपयोग नहीं करते थे। एक बार किसीके यहाँ आप मेहमान हुए तो मेज़बानने आपके पलगपर ओढ़नेके लिए विदेशी कम्बल रख दिया। अतः आप उस जाड़ेकी रातमें बगैर ओढ़े ही पड़े रहे।

प्रथम महायुद्धमें टर्की, जर्मनीके साथ था। अतः भारतके मुसलमानोंकी सहानुभूति जर्मनके साथ थी। विद्रोहकी आशंकाके कारण अंग्रेजोंने कुछ भारतीय मुसलमानोंको नजरबन्द कर दिया था। 'हसरत' भी उनमें-से

---

[1]खाद्य-पदार्थ जिन्हें सूर्योदयसे पहले खाकर रोज़ा इख्तियार किया जाता है; [2]खाद्य-पदार्थ जिन्हें सूर्यास्तके बाद खाकर रोजा खोला जाता है।

एक थे। आप लड़ाई समाप्त होनेके बाद छोड़े गये। फिर कांग्रेस और खिलाफतका गठ-बधन हो जानेपर असहयोग-आन्दोलनमे आप जेल गये और कुछ दिनो बड़े सरगर्म कार्य-कर्त्ता रहे, किन्तु साम्प्रदायिक मनोवृत्ति होनेके कारण आप १९२४के हिन्दू-मुस्लिम-सघर्षके बाद सदैवको देशोपयोगी कार्योंसे पृथक हो गये और मुस्लिम-लीग-जैसी साम्प्रदायिक सस्थासे रिश्ता जोड़ लिया। आप मुस्लिम-लीगके टिकटपर ससदके सदस्य निर्वाचित हुए। पाकिस्तानी आन्दोलनके पक्के हिमायती थे। लेकिन भारत-विभाजन होनेके बाद आप पाकिस्तान न जाकर भारतमे ही रहे, और निर्भीक होकर मुसलमानोके हितोंमे विचार व्यक्त करते रहे।

आप स्वभावतः उग्रविचारक और विद्रोही स्वभावके थे। पढ़ते समय यूनिवर्सिटीमे, कांग्रेसमे, मुस्लिम-लीगमे,ससदमे, हर जगह विद्रोहका झण्डा बुलन्द रखते थे। यहाँतक कि पाकिस्तानके प्रबल अंग होते हुए भी आपकी मि० जिनाहसे पटरी नही बैठती थी। यही कारण है कि आप राजनीतिक क्षेत्रमे केवल योद्धा बने रहे, सचालन-सूत्र आप कभी हस्तगत नहीं कर सके।

'हसरत'के राजनीतिक विचारोसे लोगोको मतभेद हो सकता है, लेकिन उनकी शाइराना अज़मत और मानवताको सभी आदर और सराहनाकी दृष्टिसे देखते है। शाइरीमे जो उनका स्थान है, उसका परिचय तो आगे मिलेगा ही, परन्तु इन्होने प्राचीन शाइरोका चुना हुआ कलाम पचासो भागोंमे प्रकाशित किया, जिससे उन शाइरोका कलाम नष्ट होनेसे बच गया। यदि 'हसरत' शाइर न भी होते तो भी यही एक कार्य उनको ख्यातिके लिए बहुत बड़ा कार्य था।

साहित्यिक होनेके अतिरिक्त हसरत बहुत अच्छे इन्सान थे, जिससे जो सम्बन्ध एक बार हो गया, उसे जीवनभर निभाया। बहुत खुश-मिजाज, सुलह-कुल और सादा वजअ-क़तअके बुजुर्ग थे। शेरवानी, तुर्की टोपी,

शरअ़ी पायजामा उनका मख़मूस लिबास था। दूरका चश्मा लगाते थे। पढ़ते वक़्त चश्मा उतार लेते थे। क़द छोटा, रंग साफ़ आँखें बडी, चेहरेपर चेचकके दाग, आवाज बारीक। भारत-विभाजनके बाद कुछ उर्दू पुस्तकोंकी तलाशमें मैं दिल्ली गया था कि वहीं आपके दर्शनहो गये। बहुत अख़लाक और मुहब्बतसे पेश आये। मेरे यह निवेदन करनेपर कि मैं आपका कलाम चयन कर रहा हूं, मगर चाहता हूँ कि एक अपना शेर अपने दस्ते-मुबारकसे डायरीमें लिख दें, आपने सहर्ष यह शेर लिख दिया—

पढ़िए इसके सिवा न कोई सबक़।
"ख़िदमते-ख़ल्क़[1]-ओ-इश्क़-हज़रते-हक़[2] ॥"

डायरीको पढ़ता हूँ और सोचता हूं कि 'हसरत' तो चले गये, मगर कितनी बड़ी नसीहत अ़ता फर्मा गये—

ख़िदमते-ख़ल्क़-ओ-इश्क़-हज़रते-हक़

१३ मई १९५१को ७५ वर्षकी आयुमें आपका निधन हो गया, और अनवरबाग़में अपने पीरे-मुर्शिदके पास आपको समाधि मिली।

हसरतकी शाइरी—

'हसरत' सिर्फ़ ग़ज़लगो शाइर थे, और यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। न तो वे कभी आध्यात्मिक तत्व-चर्चाओंमें उलझे, न कभी दार्शनिक गुत्थियोंको सुलझानेका प्रयत्न किया। उन्होंने केवल वही बोल बोले जो उनके जीवनसे सम्बन्धित थे।

हसरतकी जो ख्याति और सर्वप्रियता मिली, वह बहुत कम लोगोंको

---

[1]संसार-सेवा; [2]सत्यवादियोंसे (हकवालोंसे) प्रेम।

नसीब होती है। जिन शाइरोने मृत्युशैयापर छटपटाती गजलमे जीवन सचार करके उसे दर्शनीय और गौरवपूर्ण बनाया, उनमे-से एक आप भी है।

'हसरत'का शाइरीमे न तो कोई प्रतिद्वन्द्वी था, न उन्हे कभी अपने समकालीन शाइरोसे तू-तू, मै-मैसे वास्ता पड़ा। वे छोटोसे आदर और बडोसे सदैव स्नेह पाते रहे। उनका शाइराना रग और व्यक्तित्व दोनो ही उच्च थे।

'हसरत'की शाइरीमे कृत्रिमता नही, स्वय उनके जीवनके अनुभव है। उर्दूशाइरीमे यह एक बहुत बडा दोष पाया जाता है कि वह वास्तविकतासे कोसो दूर है। जिन शाइरोने कूचए इश्कमे कभी कदम नही रखा, जो नही जानते कि आँख लगनेसे कैसी पीडा होती है, वे भी अपनी शाइरीमे मजनूँ और फ़रहादके उस्ताद नजर आते है। जो जिन्दगीभर जाहिदे-खुश्क रहे, कभी एक बूँद सुरा हलक़के नीचे उतारनेका अवसर नही मिला, वे भी अपनेको मैखानेका इमाम घोषित करते है। जो सारी जिन्दगी नमाज-रोजेमे गँवाते रहे, हज-यात्राको सरके बल जाते रहे, वे शाइर भी काबा-ओ-खुल्दकी खिल्लियाँ उडाते रहे है।

इसका कारण यही है कि उर्दू-शाइरीके महलका निर्माण इश्क और शराबके गारेसे हुआ है। ग़जलमे शराबो-इश्क़के अतिरिक्त और कुछ है ही नही। अतः हर व्यक्ति जो शाइर बनना चाहता है, उसे शराबो-इश्क़के गीत गाने ही पडते है। चाहे उसके जीवनमें इनसे दूरका भी लगाव न हो।

उर्दू-शाइरोके जीवन परिचयमे अक्सर यह पढ़नेमे आता है कि वे ९-१० वर्षकी आयुमे ही शेर कहने लगे थे। भला यह भी कोई उम्रमे उम्र है, जिसमे इश्क़ सम्बन्धी किसी भी बातका अनुभव हो सके। फिर भी शाइरीकी परम्पराके अनुसार इन बाल-कवियोंके कलाममे हुस्न, माशूक़, रकीब, दरबान, हरजाई आदि सभी देखनेको मिलते है। माँ-बापके अत्यन्त

प्रयत्न करनेपर भी दूध पीनेके लिए भी जिनकी नीद उचाट नही हो पाती, वे भी अपने आईनए-कलाममे, गमे-हिजरॉमे रात-रातभर रोते-बिसूरते नजर आते है ।

तात्पर्य यह है कि वे अबोध किशोर जो प्रेम-सम्बन्धी अनुभवोसे शून्य है, वे भी उर्दू-परम्पराका सहारा लेकर कल्पना क्षेत्रमे आशिक़ बने मजनूंकी तरह घूमते है । जो नही जानते कि माशूक़ है किस मर्जकी दवा, वे भी माशक़ोके हाव-भाव, नखरे-शमजे आदिको इस ढगसे नज़्म करते है कि मालूम होता है कि इश्क़की सभी मजिले तै कर ली है ।

उर्दूमे ऐसे अनुभवहीन, शाइरोंका इश्किया कलाम बहुत अधिक है । 'हाली' जैसा शाइर इसी दूषित प्रथाके कारण अपने आपको वर्षों धोखा देता रहा । इस धोखे-धड़ीके सम्बन्धमे हाली लिखते है—

"शाइरीकी बदौलत चन्द रोज झूठा आशिक बनना पड़ा । एक खयाली माशूक़की चाहमे दश्ते-जुनूं (उन्माद-मार्ग)की वह खाक उड़ाई कि क़ैस-ओ-फ़रहादको गर्द कर दिया । कभी नालए-नीमशबी (रात्रिमे बिलखते हुए)से रुबअे-मिस्कूं (आबाद स्थान)को हिला डाला, कभी चश्मे-दरियाबार (आँसुओं)से तमाम आलमको डुबो दिया । आहो-फुगाँके जोरसे कुर्रोबियाँके कान बहरे हो गये । शिकायतोकी बौछारसे जमाना चीख उठा । तानोंकी भरमारसे आसमान चलनी हो गया । जब रश्कका तलातुम (ईर्ष्याका वेग) हुआ तो सारी खुदाईको रकीब (प्रतिद्वन्द्वी) समझा । यहाँतक कि आप अपनेसे बदगुमान हो गये ।..... बार-हा तेगे-अबू (भवे-रूपी तलवार)से शहीद हुए और बार-हा एक ठोकरसे जी उठे । गोया जिन्दगी एक पैरहन (वस्त्र) था कि जब चाहा उतार दिया और जब चाहा पहन लिया । मैदाने-क़यामतमे अक्सर गुजर हुआ । बहिश्त-ओ-दोजखकी अक्सर सैर की । बादानोशी (शराब पीने) पर तो खुम-के-खुम लुंढा दिये और फिर भी सैर (सन्तुष्ट) न हुए ।..... कुफ्रसे मानूस और ईमानसे बेजार रहे ।...खुदासे शोखियां की ।...

..... २० वर्षकी उम्रसे ४० वर्षतक तेलीके बैलकी तरह इसी एक चक्करमे फिरते रहे और अपने नजदीक सारा जहान तय कर चुके। जब आँख खुली तो मालूम हुआ कि जहाँसे चले थे, अब तक वहीं हैं।"[1]

'हसरत'की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उन्होंने अपनेको इस धोखे-जालमे नही फंसाया। स्वय भी सच बोले और दूसरोंको भी सच बोलनेके लिए प्रोत्साहित किया। 'हसरत'का प्रेम मानवी-प्रेम है। उन्होंने ईश्वरकी आडमे प्रेमका बखान करके न तो भक्त बननेकी कभी चेष्टा की और न कभी दार्शनिक और आध्यात्मिक बननेकी भूल की। उन्होंने केवल इसी दुनियाके प्रेमका बखान किया है।

हसरत एक सफल प्रेमी थे। अतः उनके कलाममे हिज्र, नाले, नाकामी, बेएतनाई आदिकी कैफियतोका बयान बहुत कम मिलता है, और यत्र-तत्र जो थोड़ा-बहुत मिलता है, वह उर्दू-परम्पराके हौजमे जी बहलानेके लिए कूद पड़नेके कारण मिलता है।

हसरतका जीवन इश्क, तसव्वुफ और राजनीतिका सगम रहा है। इश्ककी धारा उनके यहा अबाध गतिसे प्रवाहित रही है, और एकाकार हो गई है।

तसव्वुफकी झलक यत्र-तत्र इसलिए मिलती है कि 'हसरत' धार्मिक व्यक्ति थे। नमाज-रोजेके सख्त पाबन्द, अनेक-दराजसे हजके यात्री और सूफियोंके श्रद्धालु और ऐसे भक्त कि फ़िरंगी महलके एक सूफ़ी बुजुर्गके हाथ पर बैअत करली। प्रतिवर्ष अजमेर, पीरानें-कलियर, बहराइच आदि सूफियाए-करामके उर्सोमे शरीक होते थे। यही नही, उन्होंने अपनी जीवन-लीला भी फिरंगी महलकी दरगाहमे समाप्त की। वही उनको समाधि मिली और प्रतिवर्ष उनकी समाधिपर भी उनकी अन्तिम अभिलाषाके अनुसार उर्स होते रहनेकी व्यवस्था हुई। इसी श्रद्धा-भक्तिके कारण

[1] शेरोशाइरी पृ० २७५-७६।

उनके कलाममें यत्र-तत्र सूफ़ियाना शेर नजर आते हैं। लेकिन उनका यह रंग फीका है और फीका होना लाजिमी भी था। गुरुजनोंकी श्रद्धा-भक्तिमें आनन्द तो मिलता है, पर प्रेयसी-मिलनकी प्रतीक्षामें जो उत्कंठा, तड़प, बेचैनी, और गर्मी-ए-मुहब्बत होती है, वह श्रद्धा-भक्तिमें नहीं। कर्तव्य पूर्ण करने और हृदयकी उमगमें जो अन्तर है, या भाई और पतिके साथ नारीके स्नेह और चाहतमें जो अन्तर है, वही अन्तर 'हसरत'की आशिकाना और सूफ़ियाना शाइरीमें है।

'हसरत'की राजनीतिक शाइरी तो और भी फीकी और बेजान है। जनाब खलीलुर्रहमान आजमी लिखते हैं—

"हसरतने बार-हा जेलमें चक्की पीसी और पुलिसके कोड़े खाये। लेकिन उनकी सियासी (राजनीतिक) शाइरी रस्मी और फुसफुसी है। .....क्या वजह है कि उनकी शाइरीमें उनकी जिन्दगीका यह पहलू पूरे तौरपर अपना अक्स न दिखा सका? यह सवाल दरअस्ल बड़ा अहम (गभीर) है और वाकई हैरत होती है कि वही 'हसरत' जिनकी जिन्दगीमें हिन्दोस्तानने कितनी करवटें ली, कांग्रेसकी इब्तिदाई तहरीके-आजादी (प्रारम्भिक आन्दोलन) से लेकर जंगे-अज़ीम, कहते-बंगाल, तक़सीमे-हिन्द, फसादात और न जाने कितने वाकेआत जिन्हें हिन्दोस्तानके बिगाड़ने और बनानेमें बड़ा दख़्ल है, 'हसरत' ही के जमानेमें पेश आये और खुद 'हसरत' उसमें जाती तौरपर शरीक रहे, लेकिन 'हसरत'की शाइरीमें इन वाकेआतकी गरमी, खुनक और धमक कहीं महसूस नहीं होती। उन्होंने तिलक, डा० अन्सारी या बाज सियासी रहनुमाओं (राजनीतिक नेताओं) के बारेमें जो नज्में लिखी हैं, वोह बहुत रस्मी अन्दाजमें लिखी गई हैं, जैसे किसीका सेहरा लिख दिया जाये। वोह नक़्क़ाद (आलोचक) जो किसी शाइरपर लिखते वक़्त महज़ उसके जमानेके हालात और समाजी पसे-मजर (सामाजिक स्थिति) पर ही निगाह रखते हैं, यहाँ बड़ी दुश्वारीमें मुब्तिला हो जायेंगे। आख़िर 'हसरत'के बारेमें क्या फ़तवा सादिर किया जाय? क्या वे रजअ़त

पसन्द (दकियानूसी, पुराने खयालके) शाइर थे, कि जमानेकी तरफसे आँख बन्द करके अपनी महबूबा (प्रेयसी)की यादमे मुब्तिला रहे ? क्या वे कौमी तरक़्की और आजादीकी तहरीकमे दिलसे हिस्सा नही ले रहे थे ? मेरा खयाल है 'हसरत'का बड़े-से-बड़ा मुखालिफ भी इस बातकी जुरअत नही कर सकता कि उनके खुलूस (नीयत)पर शुबहा करे। उन्होंने हिन्दुस्तानकी जगे-आजादीमे जो कुर्बानियां दी है, उनका एअतराफ न करना बडी बेईमानी होगी। लेकिन उनकी शाइरीको पढते और उसपर राय देते वक़्त जरा सब्रसे काम लेना पडेगा। 'हसरत' मुखलिस (साफ़, निर्मल) थे, सच्चे थे। रजअत पसन्द नही, बल्कि बडे तरक़्कीपसन्द और इन्सानियतके लिए बडे मुफीद थे। लेकिन शाइरीपर इन्सानके उस शऊरका असर पडता है, जो उसके मिजाज और उसकी शख्सियत (व्यक्तित्व)का परवरदा (पाला हुआ, पोषा हुआ) होता है। अगर कोई नक़्क़ाद (आलोचक) शाइरके मिज़ाजको समझ ले और उसके शऊरका तजजिया (परख) कर ले तो उसकी शाइरीके महरकात (उभारो) और उसके मौज़ूआत (कविता-विषय)की नौअियतको बहुत आसानीसे समझ सकता है। दरअस्ल खारिजी दुनियामे जो कुछ हो रहा है, उससे तो इन्कार मुमकिन ही नही, लेकिन खारिजी दुनियाका अक्स हर शाइरपर उसके शऊरके एअतबार ही से पडता है। एक आदमी इन्किलाबकी जगमे एक मुखलिस (सच्चे) सिपाहीकी हैसियतसे काम करनेके बावजूद आजादी और इन्किलाबके इदराक (सूझ-बूझ)से महरूम होता है, और उसके शऊरमे उसे जज्ब करने और उसकी तहोंतक पहुँचनेकी सलाहियत (क्षमता) नही होती। वह अपने जिस्मो-जानको उस राहमे कुर्बान करना तो जरूरी समझता है, लेकिन उसे यह पता नही होता कि यह राह किस तरह मुतअय्यन (निश्चित) की जाये। इसमे कौन-कौनसे मोहरे और चाले है। किन हथियारोसे काम लिया जाये कि दुश्मनपर फ़तह हासिल हो। कब क़दम फूंककर रखना है और कब तेजगामीकी जरूरत है। उसे तो सिर्फ़ आजादीसे मुहब्बत

हैं, और उसका वह एक जाँनिसार सिपाही है। इस सिपाहीके खुलूसकी भी तारीफ़ की जाएगी, लेकिन उसके शऊर और इदराक (बुद्धि और समझ)पर भरोसा नहीं किया जा सकता। एक आदमी जो आजादी और इन्किलाबके लिए इतनी कुर्बानियाँ नहीं दे सकता, लेकिन वह उससे अलग रहते हुए भी उसे अपने शऊरमें जज्ब करनेकी सलाहियत (क्षमता) रखता है और साथ ही साथ उसके अन्दर खुलूस है तो वह इस जज्बे (भाव) को शिद्दतसे महसूस कर सकता है ; और उसके इदराक (सूझ-बूझ)पर हम ज्यादा भरोसा कर सकते हैं। 'हसरत' और 'इकबाल'दोनोंकी शाइरीको पढ़िए तो पता चलेगा कि सिर्फ शख्सियतोंके फर्कने एक सियासी (राजनीतिक) आदमीको मुहब्बतका शाइर और गैर सियासी तथा गोशा-नशीन शख्सको क़ौमो-मुल्क आजादी-ओ-सियासत और इन्सानियतका शाइर बनाया। 'हसरत'की सच्चाईमें कोई शुबहा नहीं, लेकिन उनकी शख्सियतमें वोह उन्सर (तत्त्व) नहीं थे, जो एक शख्सको मदोख़ (बुजुर्ग, बरतर) सियासतदाँ, मुफक्किर, फ़ल्सफी और मसाएले-हयात (जीवन-गुत्थियों)का इदराक रखनेवाला बना देते हैं। उनकी सियासी जिन्दगीमें जो लोग वाकिफ़ हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि 'हसरत' एक सियासी कारकुन (कार्य-कर्त्ता) होनेके बावजूद सियासी सूझबूझ नहीं रखते थे। वोह पुर-खुलूस (सच्चे) मगर जज्बाती (भावुक) आदमी थे। बहुत जल्द किसीके बारेमें कोई राय कायम कर लेते थे। यही वजह है कि सियासतमें वोह हमेशा नाकाम रहे। हर जमाअ़तमें हिज्बे-मुखालिफ़ (विद्रोहीवर्ग)की सरदारी उन्होंने की और हर तजवीज़पर मुखालिफतमें धुआँधार तक़रीरें करनेके लिए वे मशहूर थे। किसी बातको ठण्डे दिलसे ग़ौर करना, मसालेह (अच्छे-बुरे पहलुओं)पर नजर रखना, जब्तो-इस्तक़लाल (धैर्य और सजीदगी), हालात और वक़्तकी रफ़्तारको पहचानना और उसके तक़ाजोंको समझना, मुनासिब मौकेपर क़दम उठाना, यह 'हसरत'की सियासतमें शामिल न था। यही वजह है कि हम उन्हें एक सच्चा और वफ़ादार सिपाही कह सकते हैं। लेकिन बा-शऊर

सियासतदाँ नही। जाहिर है कि सिपाही लड़ तो सकता है, लेकिन जगपर बा-शऊर तरीक़ेसे नजर नही डाल सकता। बल्कि उसको तो अपनी कठिन मंजिलोमे अपने माजी (भूतकाल) की सुनहरी यादके सहारे ही दिल बहलाना होगा और मेरा ख्याल है कि हसरत जो बुढापेतक इश्किया शाइरी करते रहे, उसकी सबसे बड़ी वजह यही है।"[1]

'हसरत'की शाइरी उनकी आप बीती जीवनी है। यही उनकी शाइरीकी सबसे बडी विशेषता है और यही उनकी शाइरीका दोष भी। 'हसरत' एक अपने ही समाज और खान्दानकी युवतीसे प्रेम करते है। उसके लिए सामाजिक और खान्दानी रीतिरिवाजोसे सघर्ष करते है। इसी अवधिमे प्रेयसीसे छेड़-छाड़ और आँख-मिचौनी चलती रहती है, और अन्तमे 'हसरत' उसे अपनी जीवन-सगिनी बना लेनेमे कामयाब हो जाते है।

प्रेयसीको पत्नी बना लेनेपर इश्क़ मर जाता है। जो प्रेयसी कभी मल्का समझी जाती थी, वह शादी हो जानेपर दासी हो जाती है। शादी होनेपर प्रेयसीका वह बुलन्द मर्तबा क़ायम नही रह सकता, जो पहले होता है। फूल केवल दूरसे निहारनेके लिए है, सूँघनेपर उसका गौरव नष्ट हो जाता है।

हसरतका इश्क शादी होनेके बाद कबतक स्थिर रहता? अधिक-से-अधिक ८-१० वर्ष। यानी हसरतकी २५-३० वर्षकी उम्रतक। हसरतकी प्रेयसी जो शादीके बाद 'बेगम हसरत' कहलाने लगी, उसे 'हसरत'के इश्क़िया अशआर सुननेके बजाय चूल्हे-चक्कीसे अधिक सरोकार हो गया। 'हसरत'से ज्यादा अब वह बाल-बच्चोको चाहने लगी। उनके भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षाकी चिन्तामे दिन-रात घुलने लगी।

यही कारण है कि 'हसरत'की इश्क़िया शाइरीमे एकरूपता नज़र आती है। यानी उन्हे जो अनुभव जवानीमे हुए, उन्हीको बुढ़ापेतक नज़्म

---

[1]निगार जनवरी १९५२ पृ० ९३।

करते रहे। हसरतकी शाइरी जवानीकी शाइरी है। उनकी शाइरीमे जवानीके उतारके साथ उतार आता गया है। होना तो यह चाहिए था कि उम्रके साथ-साथ नये-नये अनुभवोको अपनी शाइरीके बढते हुए अभ्यासके साथ नित नये ढगसे सँजोते और तराशते जाते। लेकिन ऐसे नही हुआ, और इसका कारण केवल यही हो सकता है कि जवानीके बादा उनका इश्क भी बूढा हो गया, और उनका राजनीतिक जीवन इतना संघर्षमय हो गया कि फिर वे दिलकी शाइरी न करके रस्मी तौरपर शाइरी करते रहे। यही वजह है कि उनकी शाइरी भी उम्रके साथ बूढी होती चली गई, और उनकी शाइरीमे उत्तरोत्तर फीकापन आता चला गया।

वे जिन्दगीभर एक ही मौजूमे लिपटे रहे। जवानीके उफानमे जो बोल, बोल गये—

याद कर वह दिन कि तेरा कोई सौदाई न था।
बा-वजूदे-हुस्न तू आगाहे-रअनाई न था॥

वही बुढापे (१९४१ ई०)मे भी बोलते रहे—

जब सिवा मेरे न था कोई निशाना तेरा।
याद है मुझको अभीतक वोह जमाना तेरा॥

आजमी साहब फर्माते है—

"हसरतके पहले दीवानसे उनके कलामका मुताल्या शुरू कीजिए तो तीसरे-चौथे दीवानतक पहुँचते-पहुँचते हसरत कुछ मद्धिम होना शुरू होते है, और ग्यारहवे-बारहवेतक पहुंचते-पहुँचते तो वे बिल्कुल बुझ जाते है। इधर दस-बारह सालसे अपनी जिन्दगी ही मे ब-हैसियत शाइरके उनका रोल तक़रीबन खत्म हो गया था। कभी-कभार जो गजले कहते थे, वह रस्मी और बेजान होती थीं। जिन्हें लोग तबर्रुकन पढ़ते थे।"[1]

---

[1]निगार जनवरी १९५२ पृ० ११०।

हसरतका शाइ़रीमें मर्तबा----

'हसरत' मौजूदा गजलगोईके बानी-मुबानी समझे जाते हैं। आपने उर्दू-गजलमें उस समय जीवन-सचार किया, जब कि वह मृत्यु-शैयापर पड़ी छटपटा रही थी। न उसमें युगके साथ चलनेकी शक्ति रही थी, न अपनी ओर आकर्षित करनेकी क्षमता। वह बिस्तरे-मर्गपर पड़ी हुई कराह रही थी, और सन्निपात ज्वरमें इस तरह बड-बडा रही थी—

गिरे होते उलझकर आस्तॉसे।
चले आते हो घबराये कहाँसे ?

हमीं झूठे हैं, दग़ाबाज़ हमीं हैं, साहब।
हम सितम करते हैं और आप करम करते हैं॥

बाग़बाँ कलियाँ हों, हलके रंगकी।
भेजना है एक कमसिनके लिए॥

छुपा-छुपाके नज़र-बाजियाँ हों ग़ैरोंसे।
हमींसे आँख चुराना ! ज़रा इधर देखो !!

'अमीर' इतना न छेड़ो उसको सरे-शाम।
कि शब भर प्यार करनेको पड़ी है॥

वोह फूलवालोंका मेला वोह सैर याद है 'दाग़' !
वोह रोज़ झरनेपै जमघट, परी जमालोंका॥

गुद-गुदाया जो उन्हें नाम किसीका लेकर।
मुसकराने लगे वोह मुँहपै दुपट्टा लेकर॥

ईदका दिन है परीज़ाद हैं सारे घरमें।
राजा इन्दरका अखाड़ा है हमारे घरमें॥

पर्दा उठाके मुझसे मुलाक़ात भी न की।
रुख़सतके पान भेज दिये बात भी न की॥

सुबहको आये हो भूले शामके।
जाओ भी अब तुम रहे किस कामके॥
हाथा-पाईसे यही मतलब भी था।
कोई मुँह चूमे कलाई थामके॥

वस्लकी रात चली एक न शोख़ी उनकी।
कुछ न बन आई तो चुपकेसे कहा मान गये॥

पान बन-बनके मेरी जान कहाँ जाते हैं?
यह मेरे क़त्लके सामान कहाँ जाते हैं॥

क्यों मुझसे है यह मुफ़्तकी तकरार, क्या हुआ?
अच्छा जो मैंने कर ही लिया प्यार, क्या हुआ?

जब वोह बाहें गलेका हार नहीं।
दूरका प्यार कोई प्यार नहीं॥

वोह एक हम कि जो चाहा किया विसालकी रात।
वोह एक तुम कि तुम्हारी हयासे कुछ न हुआ॥

तुमने एक बोसेपै 'मुज़्तर' दिले-मुज़्तर बेचा।
यार ईमानकी ये है कि बड़े दाम लिये॥

कहते हैं "वस्लमें तुम छेड़े ही जाते हो मुझे।
गालियाँ कुछ अभी पड़ जायें तो क्या बात रहे"॥

किसीसे दस्तमे सुनते ही ज़बान सूख गई।
"चलो हटो भी, हमारी जबान सूख गई"॥

आँखें दिखलाते हो जोबन तो दिखाओ साहब।
वोह अलग बाँधके रक्खा है जो माल अच्छा है॥

जले हैं ग़ैर क्या-क्या, वोह जो ख़िल्वतसे मेरे निकले।
परेशाँ, बाँधकर जूड़ा, दुपट्टा ओढ़कर उलटा॥

छेड़ देना था कि भरमार थी दुश्नामोंकी।
एक सीग़ा था कि फ़र-फ़र उसे गरदान गये॥

इसतरहकी अश्लील बकवास जब कोई रोगी प्रारम्भ कर दे, तो घरवालोंके अतिरिक्त भला किसमें साहस है, जो उसकी परिचर्या या मिजाजपुरसीके लिए नजदीक आ सके। मृत्युके समीप जाती हुई गजलको सबसे घातक चरका 'हाली'के नज्म-आन्दोलनसे लगा। जब घरका भेदी प्राण लेनेपर उतारू हो जाय, तब उसके बचनेकी आशा भी क्या की जा सकती है ?

'हसरत'ने ठीक ऐसे सकटकालमे गजलको सहारा दिया। 'दाग' और 'अमीर' मीनाईकी चिकित्सासे जो बड-बडाहट प्रारम्भ हो गई थी, उसे 'हसरत'ने प्राकृतिक चिकित्सा-द्वारा समाप्त ही नही किया, अपितु ऐसा कायाकल्प किया कि उसे अमरत्व प्राप्त हो गया। इस कायाकल्पका श्रेय केवल 'हसरत'को है, यह कहना न्यायसगत नही होगा। 'हसरत' की शाइरीका जब युग प्रारम्भ हुआ, तब 'शाद' अजीमाबादी, 'यास' अजीमाबादी (अब नाम यगाना चगेजी) और लखनवी शाइर सफ़ी, अर्ज़ाज, आरजू, जलील, असर, साकिब, महशर, तथा असगर गोण्डवी, फ़ानी बदायूनी आदि बडी तनदेहीसे गजलकी सार-सँभाल कर रहे थे, और उस पतनोन्मुखी वातावरणमे भी उनके मुँहसे सुरुचिपूर्ण शेर निकल रहे थे।

'हसरत' और उनके समकालीन उक्त शाइरोंने सचमुच गजलको जीवनदान दिया। उसे भद्रसमाजके उपयुक्त बनाया और युगके साथ चलते रहनेकी शक्ति प्रदान की।

'हसरत'ने उर्दू-गजलकी पुरानी रवायतोंको नये साँचेमें ढाला। नई तराश-खराश की। उसे आकर्षक रूप-रंग दिया। उनके कलाममें 'मुसहफ़ी' जैसे कोमल और मधुर भाव और 'मोमिन' जैसी फारसी तरकीबोंका सम्मिश्रण एक अजीब लुत्फ पैदा कर देता है। लेकिन उनके यहाँ 'मीर' जैसा सोजो-गुदाज नहीं है। स्वयं भी फर्माया है—

'मीर'का शेवए-गुफ़्तार कहाँसे लाऊँ ?

और 'मीर'का शेवए-गुफ़्तार बाजारमें बिकनेवाली चीज होता तो 'हसरत' भी खरीद लाते। मगर जो शेवए-गुफ़्तार दिलमें चरका लगने-पर और जीवनभर खून रोनेसे आता है, उसे 'हसरत' क्योंकर प्राप्त कर सकते थे ? वे कामयाब आशिक थे। वे क्या जानें असफलता और निराशा-के आनन्दको। उन्हें प्रेयसीकी यादमें सर फोड़ने और बिलख-बिलखकर रोनेकी लज़्ज़त कभी नसीब नहीं हुई।

'हसरत' 'तसलीम'[१] लखनवीके शिष्य थे, और 'मोमिन' स्कूलके तनहा यादगार। सो वह भी चल बसे। बकौल 'आसी' ग़ाज़ीपुरी—

सुबह तक वह भी न छोड़ी तूने ऐ बादेसबा !
यादगारे-रौनक़े-महफ़िल थी परवानेकी ख़ाक ॥

'हसरत' अवध प्रान्तीय और 'तसलीम' लखनवीके शिष्य होते हुए भी देहलवी रंगके शाइर थे। खुद भी फ़र्माया है—

---

[१] 'तसलीम' 'तसनीम'के शागिर्द थे और 'तसनीम' 'मोमिन'के शिष्य थे। 'मोमिन' 'तसनीम' और 'तसलीम'का परिचय एवं कलाम 'शेरो-सुखन' प्रथम भागमें दिया जा चुका है।

'हसरत' मुझे पसन्द नहीं तर्ज़े-लखनऊ।
पैरो हूँ शाइरीमें जनाबे 'नसीम'का॥

'हसरत'ने जिन 'नसीम' साहबका पैरो (अनुयायी) होनेका उल्लेख किया है, वह 'नसीम' देहलवीसे मुराद है, जो 'मोमिन'के शिष्य और 'हसरत'के उस्तादके उस्ताद थे। हसरतके उस्ताद 'तसलीम' लखनवी होते हुए भी सदैव देहलवी स्कूलके अनुयायी रहे।

'हसरत'के चन्द अशआरकी झाँकी

मूसाने ख़ुदाका जलवा तो देखना चाहा, लेकिन अपनेमें इतनी शक्ति और सामर्थ्य न जुटा सके, जो ख़ुदाके जलवेको सह सके। ख़ुदा तो फिर भी ख़ुदा है, लेकिन 'हसरत'की प्रेयसी भी इतनी महान है कि उसकी ओर भी देखनेका साहस नही होता—

मेरी निगाहे-शौक़का शिकवा नहीं जाता।
सोतेमें भी पाससे देखा नहीं जाता॥

'हसरत'का इश्क़ कितना बुलन्द और पवित्र है कि वे उसके आगे फ़िरदौसको भी हेच समझते हैं—

वल्लाह तुझे छोड़के ऐ कूचए-जानां!
'हसरत'से तो फ़िरदौसमें जाया नहीं जाता॥

हमारा प्राणप्यारा जीवन सर्वस्व हमे बिसार बैठा है, इसका कारण शायद यही है कि हमसे कोई अक्षम्य भूल हुई है। अन्यथा उसकी यह उपेक्षा हमपर कदापि न होती—

फिर और तग़ाफ़ुलका सबब क्या है ख़ुदाया!
मैं याद न आऊँ उन्हें, ऐसा नहीं मुमकिन॥

बच्चेकी तोतली और रसभरी वाणी सुनते-सुनते मन तृप्त नहीं होता। जी यही चाहता है कि बच्चा अपनी बातें बार-बार दुहराये जाय।

इसीलिए ऐसा भाव धारण कर लिया जाता है कि हम उसकी बातें सुनना नहीं चाह रहे हैं। फलस्वरूप वह नई-नई अठखेलियों-द्वारा अपनी बातको बार-बार दुहराता है, और माँ-बाप आदि उसकी इस सरलताका आनन्द लूटते हैं। 'हसरत'की प्रेयसीकी भी यही आन्तरिक अभिलाषा है कि वह अपने प्यारेके प्यार भरे बोल बराबर सुनती रहे—

ख़ुद उसको मेरी अर्ज़े-तमन्नाका शौक़ है।
क्यों वर्ना यूँ सुने है कि गोया सुना नहीं॥

भारतीय नारी पतिको ही परमेश्वर समझकर चारों ओरसे ध्यान समेटकर उसीकी हो रहती है। लेकिन पुरुषकी ओरसे उसे वह प्यार और सम्मान नहीं मिलता, जिसकी वह अधिकारिणी है। जो नारी जननी है, अम्बा है, सृष्टिकर्त्ता है, वह नारी भी ईश्वरका ही रूप है। पुरुष यदि कामुकताकी आँखे बन्द करके नारीके इस रूपका दर्शन करे तो फिर स्वर्ग और बैकुण्ठमें जानेकी जहमत गवारा क्यों की जाय? इसी पृथ्वीपर जन्म लेनेको विष्णु ब्रह्मा, तरस उठे 'हसरत' इसी पवित्र भावनाको यूँ व्यक्त करते हैं—

हम क्या करें अगर न तेरी आर्ज़ू करे।
दुनियामें और भी कोई तेरे सिवा है क्या?

अपने प्यारेकी यादमें दिन-रात लीन रहनेके अतिरिक्त और कुछ भी सुखकर नहीं है—

शब वही शब है, दिन वही दिन है।
जो तेरी यादमें गुज़र जाये॥

प्राचीन शाइरोंने प्रेमको असाध्य रोग बताया और उससे बचते रहनेकी कड़ी-से-कड़ी चेतावनियाँ दी। वर्तमान युगीन शाइर 'शाद' और 'जोश'ने

कहा कि इश्क़ मनुष्यके लिए आवश्यक है। बिना इसके आदमीमें आदमीयत नही आती। लेकिन 'हसरत' एक क़दम आगे बढ़ते हुए फर्माते हैं कि इश्क़ इस आदमीयतको अमरत्व प्रदान करता है—

तुमपर मिटे तो ज़िन्दए-जावेद[1] हो गये।
हमको बक़ा[2] नसीब हुई है, फ़नाके[3] बाद॥

और सचमुच—"जिसे मरना नही आया, उसे जीना नही आया।"

माँगनेसे भी कभी राजनीतिक अधिकार मिले हैं? अधिकार मांगे नही जाते, छीने जाते हैं। इसी आशयको 'हसरत' ग़ज़लके अन्दाजमें यूं व्यक्त करते हैं—

वस्लकी बनती है इन बातोंसे तद्बीरें कहीं?
आर्ज़ूओंसे फिरा करती है, तक़दीरें कहीं?

इश्क़ किया नही जाता, हो जाता है। अनजानेमें ही दिलपर ऐसी चोट लग जाती है कि उस चोटका घाव जीवनभर नही भरता, और यह अनजानेमें, बेसमझीमें जो हो जाता है, उसकी याद भी कभी विस्मरण नही होती। वह एक अव्यक्त आनन्दका अनुभव कराती रहती है—

हुस्नसे अपने वोह ग़ाफ़िल था, मैं अपने इश्क़से।
अब कहाँसे लाऊँ वोह नावाक़िफ़ीयतके मजे॥

'हसरत'की प्रेयसी लज्जाशील नारी है—

आईनेमें वोह देख रहे थे बहारे-हुस्न।
आया मेरा ख़याल तो शरमाके रह गये॥

---

[1]अमर; [2]ज़िन्दगी; [3]मृत्युके।

मिर्ज़ा ग़ालिबका अनुभव[1] है कि मृत्युसे पूर्व दुःखोंसे छुटकारा नहीं मिल सकता। लेकिन 'हसरत' और ही कुछ कहते हैं—

क्यों कहें हम कि ग़मे-दर्दसे[2] मुश्किल है फ़राग़[3] ॥
जब तेरी यादमें हर फ़िक्रसे हासिल है फ़राग़ ॥

जब इश्कमें पुख्तगी आ जाती है, तब विरह और मिलनमें कोई अन्तर नहीं रहता—

अब सदमए-हिजराँसे भी डरता नहीं कोई।
ले पहुँची है याद उनको बहुत दूर किसीको ॥

अपने प्यारेकी यादके अतिरिक्त संसारके समस्त कार्य व्यर्थ हैं। यहाँतक कि पूजा-पाठसे भी आत्म-विज्ञापन और अभिमानकी गन्ध आती है—

कुछ भी हासिल न हुआ, जुहदसे[4] नखवतके[5] सिवा।
शुग़ल बेकार हैं सब उसकी मुहब्बतके सिवा ॥

इसी रंगके दो शेर और—

---

[1]वह अनुभव यह है—

क़ैदे-हयात-ओ-बन्दे-ग़म अस्लमें दोनों एक हैं।
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाए क्यों ?

[यह जीवन शरीररूपी पिंजरेमें क़ैद है, जबतक इस शरीरमें रहेगा कष्ट उठाता रहेगा। ज़िन्दगी और कष्टोंका बन्धन (क़ैदेहयात-ओ-बन्दे-ग़म) परस्पर भिन्न नही, अपितु एक ही अवस्थाके दो नाम हैं। दुखोंके पुंजको ही ज़िन्दगी कहते हैं। इसलिए मुक्तिसे पूर्व ग़मोंसे छुटकारेकी आशा व्यर्थ है] [2]दर्दके रंजसे, पीड़ासे ; [3]छुटकारा ; [4]दिखावटी उपासनासे ; [5]अभिमानके।

सबसे मुंह मोड़के राज़ी है तेरी यादसे हम।
इसमें इक शाने-फ़राग़त[1] भी है राहतके[2] सिवा॥

शाम हो या कि सहर याद उन्हींकी रखनी।
दिन हो या रात हमें ज़िक्र उन्हींका करना॥

हसरतके यहां भी उर्दू-ग़जलकी परम्पराके अनुसार रकीबका ज़िक्र आता है। मगर किस खूबीके साथ? वे रक़ीबकी महफ़िलमे अपने हबीबकी बेजा हरकतोंको देखने या उसकी चौकसी करने नही जाते। वे तो केवल अपनी प्रेयसीके हमराह रहते है—

बज्मे-दुश्मनमे भी दिल थामे हुए बैठा रहा।
ग़ैर मुमकिन है जहां ऐ शोख! तू हो, मैं न हूँ॥

अक्सर लोगोंने हसीन, मगर बेशऊर, युवतियोंको रेलवे प्लेटफ़ार्म या किसी दरियापर स्नान करते और कपडे बदलते देखा होगा। उनके फूहड़पन और बेशऊरपनसे पहा खड़े हुए शोहदे लुत्फ़ उठानेसे बाज नही आते—

तमन्नाने की खूब नज्जारा-बाजी।
मजा दे गई हुस्नकी बेशऊरी॥

हसरतके दीवानमे इस तरहके गिरे हुए शेर स्थान न पाते तो उत्तम होता—

तुझमें कुछ बात है ऐसी, जो किसीमें भी नहीं।
यूँ तो औरोंसे भी दिल हमने लगा रक्खा है॥

बात तो 'हसरत' अपनी प्रेयसीसे यही कहना चाहते थे कि तू विश्वकी सुन्दरियोंमे यकता है, तेरा कोई जवाब नही। मगर—"औरोसे भी दिल हमने लगा रखा है" कहकर अपनेको झूठा साबित कर दिया और प्रेयसीको व्यर्थमे आशंकित और बरहम कर दिया। इसी बातको 'मीर'ने इस खूबीसे

---

[1]फ़ुर्सतकी शान; [2]चैनके।

व्यक्त किया है कि उनकी प्रेयसीके अनुपम सुन्दरी होनेके साथ ही 'मीर'के पारखी हृदय और सच्चे इश्क़का परिचय मिलता है—

फूल, गुल, शम्सो-क़मर[1] सारे ही थे।
पर हमें उनमें तुम्हीं भाये बहुत॥

चुना हुआ कलाम

अब हम 'कुल्लियाते हसरत'से चुनकर सभी रगके कुछ शेर सन्वार दे रहे हैं। ताकि पाठक हसरतकी शाइरीके उतार-चढ़ावका अनुमान लगा सके।

१८९३—१९०३ ई०

जो आना हो तो आओ बेतकल्लुफ़।
यह अर्ज़े-जलवए-हैरत-फ़ज़ा[2] क्या?

करते थे कभी हौसलए-तर्के-मुहब्बत।
अब सदमए-दूरी भी उठाया नहीं जाता॥
उम्मीद नहीं उनसे मुलाक़ातकी हरचन्द।
आँखोंसे मगर शौक़े-तमाशा नहीं जाता॥

अल्लाहरी महरूमी, अल्लाहरी नाकामी।
जो शौक़ किया हमने सो ख़ाम[3] नज़र आया॥
इस शुग़लसे[4] आँखोंको दमभर जो नहीं फ़ुरसत।
रोनेमें वह क्या ऐसा आराम नज़र आया?

क़फ़समें सैयाद बन्द करदे, नहीं तो, बेरहम छोड़ ही दे।
यहाँ उम्मीदोबीममें[5] आख़िर रहेंगे हम जेरे-दाम[6] कबतक?

---

[1]चाँद-सूर्य; [2]जलवा देखनेके लिए प्रार्थना कबतक की जाय? [3]व्यर्थ; [4]कार्यमे; [5,6]आशा और डरके जालमे कबतक फँसे रहेंगे?

सताइए न मुझे यूँ ही दिलफ़िगार[1] हूँ मैं।
रुलाइए न मुझे ख़ुद ही बेक़रार हूँ मैं॥
तेरा यह रंग कि है बेसबब ख़फ़ा मुझसे।
मेरा यह हाल कि बेवजह बेक़रार हूँ मैं॥

हज़ारों बार छेड़ा, जोशिशे-ग़म-हाय-फ़ुरक़तने[2]।
हज़ारों बार आँसू आपके सरकी क़सम निकले॥

वोह जो बेचैन हुए देखके हालत मेरी।
हो गई और परेशान तबीअ़त मेरी॥

छेड़ा है दस्ते-शौक़ने[3], मुझसे ख़फ़ा है वोह।
गोया कि अपने दिलपै मुझे इख़्तियार है!

१९०३-१९१२ ई०

हम रहे याँ तक तेरी ख़िदमतमें सरगर्मे-नियाज़[4]।
तुझको आख़िर आश्नाए-नाज़े-बेजा[5] कर दिया॥

मानूस[6] हो चला था तसल्लीसे हाले-दिल।
फिर तूने याद आके बदस्तूर कर दिया॥

किसे फ़ुरसत? तुम्हारी जुस्तजूके शौक़े-बेहदसे।
अभी हमने कहाँ ढूँढा, अभी हमने कहाँ पाया?

दयारे-शौक़में मातम बपा है मर्गे-'हसरत'का।
वोह वज़ए-पारसा उसकी, वोह इश्क़े-पाकबाज़ उसका॥

---

[1]भग्नहृदय; [2]विरह-कष्टोंके जोशने; [3]अभिलाषी हाथोंने; [4]नम्र प्रार्थी; [5]आवश्यकतासे अधिक सौन्दर्य्याभिमानी; [6]अभ्यस्त, परिचित।

चल भी दिये वोह छीनके सब्रो-क़रारे-दिल।
हम सोचते ही रह गये यह माजरा है क्या?

देखो जिसे, है राहे-फ़नाकी तरफ़ रवाँ।
तेरी महल-सराका यही रास्ता है क्या?

इरादे थे कि उनसे हाले-दिल सब मिलके कह देंगे।
मगर मिलनेपर हमसे आज होता है न कल कहना॥

खुले न हमसे खमोशाने-आर्ज़ूकी ज़बाँ।
जो इत्तिफ़ाक़ भी हो, उनसे हमकलामीका॥

अब तो उठ सकता नहीं आँखोंसे बारे-इन्तिज़ार[1]।
किस तरह काटे कोई लैलो-नहारे-इन्तिज़ार[2]॥
उनकी उलफ़तका यक़ीं हो उनके आनेकी उम्मीद।
हों यह दोनों सूरतें, तब है बहारे-इन्तिज़ार॥
उनके ख़तकी आर्ज़ू है, उनकी आमदका ख़याल।
किस क़दर फैला हुआ है, कारोबारे-इन्तिज़ार॥

कमाले-ख़ाकसारीपर यह बेपरवाइयाँ 'हसरत'!
मैं अपनी दाद ख़ुद दे लूँ, कि मैं भी क्या क़यामत हूँ॥

हमपर भी मिस्ले-ग़ैर हैं, क्यों मेहरबानियाँ?
ऐ बदगुमाँ! यह ख़ूब नहीं, बदगुमानियाँ॥

भुलाता लाख हूँ लेकिन बराबर याद आते हैं।
इलाही तर्के-उलफ़तपर वोह क्योंकर याद आते हैं॥
हक़ीक़त खुल गई 'हसरत' तेरे तर्के-मुहब्बतकी।
तुझे तो अब वह पहलेसे भी बढ़कर याद आते हैं॥

---

[1]प्रतीक्षाका बोझ; [2]प्रतीक्षाके रात-दिन।

निगाहे-यार जिसे आश्नाए-राज[1] करे।
वोह अपनी ख़ूबिए-क़िस्मतपै क्यों न नाज़ करे॥

और तो पास मेरे हिज्रमें क्या रक्खा है।
इक तेरे दर्दको पहलूमें छुपा रक्खा है॥
आह वह याद कि उस यादको होकर मजबूर।
दिले-मायूसने मुद्दतसे भुला रक्खा है॥

न देखे और दिले-उश्शाक़पर[2] फिर भी नज़र रक्खे।
क़यामत है निगाहे-यारका हुस्ने-ख़बरदारी[3]॥
यही आलम रहा गर उसके हुस्ने-सहर परवरका[4]।
तो बाक़ी रह चुकी दुनियामें राहो-रस्मे-हुशियारी॥

मेरे उज्रे जुर्मपर मुतलक़ न कीजे इल्तिफ़ात[5]।
बल्कि पहलेसे भी बढ़कर कजअदा[6] हो जाइए॥
मेरी तहरीरे-नदामतका[7] न दीजे कुछ जवाब।
देख लीजे और तग़ाफ़ुल-आश्ना[8] हो जाइए॥
हाय री बे-इख़्तियारी यह तो सब कुछ है मगर।
उस सरापा नाज़से क्योंकर ख़फ़ा हो जाइए॥

मुझे शिकवए-जफ़ाकी नहीं आने पाई नौबत।
वोह सितम भी गर करे हैं, तो ब-लुत्फ़े होशमन्दी॥

देख ऐ सितमे-जानाँ! यह नक़्शे-मुहब्बत है।
बनते हैं ब-दुश्वारी, मिटते हैं ब-आसानी॥

---

[1]भेद जाननेवाला, अन्तरग साथी; [2]आशिक़ोंके दिलपर;
[3]सावधानीकी ख़ूबी; [4]रूपके जादूका; [5]कृपा, [6]तिर्छे, ख़फ़ा;
[7]क्षमा-याचनाके, पत्रका; [8]उपेक्षापूर्ण।

थी राहते-हैरतकी किस दर्जा फ़रावानी ?
मैंने ग़मे-हस्तीकी सूरत भी न पहचानी ॥

मैं उस बुते बद-ख़ूकी[1] इस आनपै मरता हूँ।
खींचा न कभी उसने अन्दोहे-पशेमानी[2] ॥

अर्ज़े-करमपै[3] तर्के-जफ़ा भी न कीजिए।
ऐसा न हो कि आप मिला भी न कीजिए ॥

अब रोनेसे क्या होगा, परवाना है बे-परवा।
बरबाद है सब मेहनत, ऐ शमअ़-लगन तेरी ॥

ज़ाहिर मलाले-रश्को-रक़ाबत[4] न कीजिए।
बेहतर यही है उनसे शिकायत न कीजिए ॥

उज़्रे-सितम ज़रूर न था आपके लिए।
'हसरत'को शर्मसारे-नदामत न कीजिए ॥

सितम हो जाये तमहीदे-करम[5] ऐसा भी होता है।
मुहब्बतमें बता ऐ जब्ते-ग़म ! ऐसा भी होता है ॥

न मुझको इसकी ख़बर है, न ख़ुद उन्हे है ख़याल।
कुछ इस तरहसे मुहब्बत बढ़ाई जाती है ॥

यह भी आदाबे-मुहब्बतने गवारा न किया।
उनकी तसवीर भी आँखोंसे निकाली न गई ॥

---

[1]बदआदत; [2]अपने जुर्मपर शर्मिंदा होनेकी परेशानी न उठाई; [3]कृपाकी याचनापर; [4]ईर्ष्या-शत्रुताका रज; [5]कृपाकी भूमिका।

दिलको था हौसलए-अर्ज़े-तमन्ना[1] सो उन्हे ।
सर गुज़िश्ते-शबे-हिजरां[2] भी सुनाई न गई ।।

१९१२-१६ ई०

शर्फ़[3] हासिल हो उस जाने-जहाँसे[4] मुझको निसबतका[5] ।
गुलामीका सही, गर हो न सकता हो मुहब्बतका ।।

आपको अब हुई है क़द्रे-वफ़ा ।
जब कि मैं लाएक़े-जफ़ा न रहा ।।

तुझको पासे-वफ़ा ज़रा न हुआ ।
हमसे फिर भी तेरा गिला न हुआ ।।
कट गई एहतियाते-इश्क़में उम्र ।
हमसे इज़हारे-मुद्दआ न हुआ ।।
कौन लाता तेरे एताबकी[6] ताब ।
ख़ैर गुज़री कि सामना न हुआ ।।
छिड़ गई जब जमाले-यारकी बात ।
ख़त्म ता-देर सिलसिला न हुआ ।।
मैं गिरफ़्तारे-उल्फ़ते-सैयाद ।
दामसे छुटके भी रिहा न हुआ ।।
हर घड़ी शैखको है फ़िक्रे-सवाब[7] ।
यह भी इक तरहका अज़ाब[8] हुआ ।।
अब यह क्यों आप मनके फिर बिगड़े ।
अब यह किस बातपर अताब[9] हुआ ।।

---

[1]अभिलाषा प्रकट करनेका साहस; [2]विरह-रात्रिकी बीती घटना; [3]इज्ज़त; [4]विश्वसुन्दरीसे; [5]सम्बन्धित होनेका; [6]क्रोधकी; [7]पुण्यकी चिन्ता; [8]कष्ट, दुःख ।

आपके हाथसे करम[1] कि सितम।
जो हुआ मुझपै बेहिसाब हुआ॥

रहने लगी उनकी याद हरदम।
अब और हमें रहेगा क्या याद?

वोह तो करदें मेरा क़ुसूर मुआफ़।
मैं ही कहता नहीं, 'हुज़ूर मुआफ़'॥

सब आये, पर इक तू न आया, न आया।
तेरा ब-देर देखा किये रास्ता हम॥*
यह क्या मुंसिफ़ी[2] है, कि महफ़िलमें तेरी।
किसीका भी हो जुर्म पायें सज़ा हम॥
तेरी लुत्फ़-ओ-करमसे[3] वाकिफ़ थे फिर भी।
हुए मुफ़्त शर्मिन्दए-इल्तिजा[4] हम॥

तमहीदे-सुलहे-शौक़के[5] सामान हो गये।
जितने थे उनके जौर[6] सब एहसान हो गये॥

ख़न्दए-अहले-जहाँकी[7] मुझे परवा क्या थी।
तुम भी हँसते हो मेरे हालपै रोना है यही॥

---

[1]कृपा;

*साक़ी-ओ-मुतरिब आये, जाम आये, सुबू आये।
आना था जिनको वो ही न आये तमाम रात॥
—शमीम जयपुरी

[2]न्यायपरायणता; [3]क्रोधीस्वभावसे; [4]प्रार्थना करके शर्मिन्दा; [5]सुलह करनेके; [6]अत्याचार; [7]ससारके हँसनेकी।

अगर हुआ भी तो उल्टा असर दुआमें हुआ।
सकूने-यास[1] मिला, इज्तिराबके[2] बदले॥

जमाले-यारको[3] रंगीनियाँ अदा न हुईं।
हजार काम लिया हमने खुश बयानीसे॥

बहुत खजिल[4] है तेरे दर्दसे दुआ मेरी।
यह खौफ़ है कि न सुन ले कहीं खुदा मेरी॥
छुपे वोह मुझसे तो क्या यह भी इक अदा न हुई।
वोह चाहते थे न देखे कोई अदा मेरी॥*
कहीं वोह आके मिटा दें न इन्तिजारका लुत्फ़।
कहीं क़बूल न हो जाए इल्तिजा मेरी॥†

मुझसे बरगश्ता न होते तो तअज्जुब होता।
आपको उज्रे-तग़ाफ़ुलकी जरूरत क्या है॥

खींच लेना वोह मेरा पर्देका कोना दफ़अतन।
और दुपट्टेसे तेरा वोह मुंह छुपाना याद है॥

ग़ैरकी नजरोंसे बचकर सबकी मर्जीके खिलाफ़।
वोह तेरा चोरी छुपे रातोंको आना याद है॥

---

[1]निराशाका चैन; [2]तड़पके; [3]प्रेयसीके रूपकी; [4]शर्मिन्दा।

*अन्दाज अपना देखते हैं आईनेमें वोह।
और यह भी देखते हैं, कोई देखता न हो॥
—निजाम रामपुरी

†हम आँख बन्द करके तसव्वुरमें पड़े हैं।
ऐसेमें कहीं छमसे वोह आजायें तो क्या हो॥
—रियाज खैराबादी

पर्देसे इक झलक जो वोह दिखलाके रह गये।
मुश्ताक़े-दीद[1] और भी ललचाके रह गये॥
टोका जो बज़्मे-ग़ैरसे आते हुए उन्हें।
कहते बना न कुछ वोह क़सम खाके रह गये॥

१९१६-१९१७ ई०

सुनके ज़िक्रे-इश्क़ रह जाते हैं अक्सर हम ख़मोश।
अब तलक इतना असर बाक़ी है उनकी यादका॥

क्या हुआ 'हसरत' वोह तेरा इद्दिआ़ए-ज़ब्ते-राम[2]।
दो ही दिनमें रंजे-फ़ुरक़तका गिला होने लगा॥

की मैंने लुत्फ़े-यारकी पहले न कुछ भी क़द्र।
होती है किससे जिन्से-फ़रावांकी एहतियात[3]॥

ऐ सेहरे-हुस्ने-यार[4] मैं अब तुझसे क्या कहूँ?
दिलका जो हाल तेरी बदौलत है आजकल॥
इकतर्फ़ा बेख़ुदीका है आ़लम कि इश्क़में।
तकलीफ़ आजकल है न राहत है आजकल॥

हमपर तेरी निगाह जो पहले थी अब नहीं।
वह भी न कुछ दिनोंमें रहे तो अ़जब नहीं॥

'हसरत' जफ़ाए-यार[5] तो इक आ़म थी अदा।
इज़हारे-इल्तेफ़ात[6] मगर बेसबब नहीं॥

---

[1]देखनेके अभिलाषी; [2]कष्ट सहनेकी क्षमता; [3]अधिक वस्तुका आदर, चौकसी; [4]प्रेयसीके रूपका जादू [5]माशूक द्वारा किये गये ज़ुल्म; [6]कृपाओंका प्रदर्शन।

उसीसे छुपते है होती है जिसपर उनकी नज़र ।
अगर यही है तो उम्मीदवार हम भी है ।।

मुझमें ताबे-जमाले-यार कहां ?
शौक़ उन्हें मेरे रूबरू न करे ।।

उनके क़दमोंपे रख दिया सरे-शौक़ ।
हम यह क्या बेख़ुदीमें कर गुज़रे ?

शबे-फ़ुरक़तमें याद उस बेख़बरकी बार-बार आई ।
भुलाना हमने भी चाहा, मगर बेइख़्तियार आई ।।

आग़ाज़े-आशिक़ी[1] था, जोशो-ख़रोश यकसर ।
या इन्तहाए-ग़म है, हैरानी-ओ-ख़मोशी ।।

१९१७-१९१८ ई०

इसकी बात और है पायें जो हम इसमे भी मजा ।
आपने तो न दिया कुछ भी अज़ीयतके[2] सिवा ।।

उनको यां वादेपे आ लेने दे ऐ अब्रे-बहार !
जिस क़दर चाहना फिर बादमे बरसा करना ।।
कुछ समझमें नहीं आता कि यह क्या है 'हसरत' !
उनसे मिलकर भी न इज़हारे-तमन्ना करना ।।

नज़र फिर न की उसपे दिल जिसका छीना ।
मुहब्बतका यह भी है कोई क़रीना ?
'हसरत' फिर और जाके करें किसकी बन्दगी ?
अच्छा, जो सर उठाये भी उस आस्तांसे हम ।।

---

[1]प्रारम्भिक प्रेमासक्ति; [2]कष्टके ।

पूछते हैं वह कि "हमसे, तेरी ख्वाहिश है सो क्या ?"
दिलमें जो-जो कुछ है मेरे, अब मैं उनसे क्या कहूँ ?

खुदा जाने यह अपना हाल क्या है हिजरे-जानाँमें।
कि आहें लबतक आती हैं, न अश्क आँखोंसे बहते हैं॥

खमोशी को अजब यह गुफ्तगू है वस्लमें बाहम।
न कहते हैं वोह कुछ हमसे, न हम कुछ उनसे कहते हैं॥

हाल खुल जायेगा बेताबिए-दिलका 'हसरत'! ।
बार-बार आप उन्हें शौक़से देखा न करें॥

शौक़ जब हदसे गुजर जाय तो होता है यही।
वर्ना हम और करमे-यारकी परवा न करें॥

हविसे-दीद[1] मिटी है, न मिटेगी 'हसरत'!
देखनेके लिए चाहो उन्हें जितना देखो॥

हर नग़मेने उन्हींकी तलबका दिया पयाम।
हर साजने उन्हींकी सुनाई सदा[2] मुझे॥

१९१८-१९२२ ई०

शिकवए-ग़म तेरे हुजूर किया।
हमने बेशक बड़ा क़सूर किया॥

नादिम हूँ जान देकर, आँखोंको तूने ज़ालिम!
रो-रोके बाद मेरे क्यों लाल कर लिया है ?

देख ले अब भी कहीं आकर जो वोह ग़फ़लत-शआर।
किस क़दर हो जाय मर जानेमें आसानी मुझे॥

---

[1]देखनेकी तृष्णा; [2]आवाज।

१९२२-१९२३ ई०

जान दे दी पहुँचके उनके हुजूर।
हमने और उनसे कुछ कहा न सुना॥

दिले-मजबूर भी क्या शै है कि दरसे अपने।
उसने सौ बार उठाया तो मैं सौ बार आया॥

सब्र मुश्किल है, आर्जू बेकार।
क्या करें आशिक़ीमें क्या न करें॥

इक यह भी हक़ीक़तमें है शानेकरम उनकी।
ज़ाहिरमें वोह रहते हैं जो हर वक़्त ख़फ़ा-से॥

मेरा इश्क़ भी ख़ुदग़रज़ हो चला है।
तेरे हुस्नको बेवफ़ा कहते-कहते॥

१९२३ ई०

हम शिकवए-फ़लक ही करेंगे हुजूरे-दोस्त।
ज़ाहिर न होने देंगे यहाँ भी क़ुसूरे-दोस्त॥

अहदे-यकउम्र फ़राग़तसे भी ख़ुशतर गुज़रा।
वोह जो इक लहज़ा तेरी यादमें हमपर गुज़रा॥

तुझसे अब मिलके तअज्जुब है कि अरसा इतना।
आजतक तेरी जुदाईका यह क्योंकर गुज़रा॥

आपको आता रहा मेरे सतानेका ख़याल।
सुलहसे अच्छी रही मुझको लड़ाई आपकी॥*

---

*वोह दुश्मनीसे देखते हैं, देखते तो हैं।
मैं शाद हूँ कि हूँ तो किसीकी निगाहमें॥

—आतिश

क़दमोंपै उनके रखके सर रफ़ए-मलाल[1] कर दिया।
हिम्मते-उज़्रख़्वाहने[2] आज कमाल कर दिया॥

चलो जान देके 'हसरत' हुई ख़ूब ग़मसे फ़ुरसत।
वोह कभी न तुमसे मिलते यूँ ही सुबहो-शाम करते॥

१९२५-३४ ई०

करनेको तो मैं अहद करूँ तर्के-हविसका[3]।
पर दिलसे कहूँ क्या जो नहीं है मेरे बसका॥

हो रही है सुबहे-इश्क़ तुलूअ[4]।
हो चले हैं चिराग़े-अक़्ल ख़मोश॥

तुझको ऐ महवे-तग़ाफ़ुल[5] मेरी परवाह ही नहीं।
हाले-दिल किससे मैं कहता, तूने पूछा ही नहीं॥

१९३५-१९४० ई०

क़िस्मते-शौक़ आजमा न सके।
उनसे हम आँख भी मिला न सके॥
हम तो क्या भूलते उन्हे 'हसरत'!
दिलसे वोह भी हमे भुला न सके॥

थी कभी याद उनकी वजहे-सुकूँ।
अब किसी हालमे क़रार नहीं॥

१९४१-१९५० ई०

उस शोख़का शिकवा किया, 'हसरत' यह तूने क्या किया?
इससे तो ऐ मर्दे-ख़ुदा! बेहतर था मर जाना तेरा॥

---

[1]मलाल दूर कर दिया; [2]क्षमा मांगनेके साहसने; [3]तृष्णा त्यागका; [4]प्रेमरूपी पौ फट रही है; [5]उपेक्षामे लीन।

यह कि तेरे इज्जतेतमन्नाका[1] पास है कि वोह शोख।
बे-जोमे-नाज[2] भी दामन छुड़ा नहीं सकता॥

रौनक़े-दिल यूँ बढ़ा ली जायगी।
ग़मकी इक दुनिया बसा ली जायगी॥
दिल न तोड़ो 'हसरते'-नाकामका।
ज़ुल्फ़ तो फिर भी बना ली जायगी॥

ख़ुद-फ़रामोशियोंमें[3] भी तो हमे।
भूल जाना किसीका याद रहा॥

बदगुमाँ आप हैं क्यों, आपका शिकवा है किसे?
जो शिकायत है हमे गरदिशे-ऐयामसे है॥

पैमाने-वफ़ाके ईफ़ाका[4] हम उनसे तक़ाज़ा भूल गये।
इसका भी तो अब एहसास नहीं, क्या याद रहा क्या भूल गये॥

'हसरत'की तमाम ग़जलोंकी सख्या ७७१ होती है, जिनमे ३८३ गज़ले कैद या नजरबन्दीकी हालतमे लिखी गई थी।

'हसरत'की पहली गजल जो उन्होंने १२ या १३ सालकी उम्रमे सबसे पहले कही—

मै तो समझा था क़यामत आ गई।
खैर फिर साहब सलामत हो गई॥
मस्जिदोंमें कौन जाये वाअेज़ा!
अब तो इक बुतसे इरादत हो गई॥
जब मै जानूँ दिलमे भी आओ न याद।
गरचे ज़ाहिरमे अदावत हो गई॥

---

[1]नम्रतापूर्ण अभिलाषाका; [2]अभिमानका बल रखते हुए; [3]अपनेको भूले रहनेपर भी; [4]निबाह करनेके वायदेका।

उनको कब मालूम था तर्ज़े-जफ़ा।
ग़ैरको सुहबत क़यामत हो गई॥
इश्क़ने उसको सिखा दी शाइरी।
अब तो अच्छी फ़िक्रे 'हसरत' हो गई॥

और यह अन्तिम ग़ज़ल उन्होंने मृत्युसे छः माह पूर्व २० नवम्बर १९५०को लखनऊमें कही थी—

शौक़ कि दादे-हया मिलती नहीं।
वोह निगाहे-आश्ना मिलती नहीं॥
शेवए-अहले-रियासे जीनहार।
ख़ूए-अरबाबे-सफ़ा मिलती नहीं॥
दीदनी है यह मुरव्वत हुस्नकी।
जुर्मे-उल्फ़तकी सज़ा मिलती नहीं॥
उनसे मिलनेकी हविसमें शौक़को।
ढूंढ़ता है और दुआ मिलती नहीं।
आशिक़ीसे ख़ूए-नाज़े-हुस्ने-दोस्त!
हरसजीले-इतना मिलती नहीं॥
यह भी 'हसरत' क्या सितम है इश्क़से।
हुस्नको दादे-जफ़ा मिलती नहीं॥

३१ मई १९५३ ई०]

'फ़ानी' बदायूनी

[१८७९–१९४१ ई०]



'मीर' उर्दू-शाइरीके ख़ुदाये-सुख़न समझे जाते हैं, और 'फ़ानी' यास-यातके इमाम। यासयात यानी असफल और निराश व्यक्तियोंके ऐसे नेता कि जिन्हें कभी जीवनमें एक क्षणको भी सफलता और आशाकी एक भी किरण दिखाई नहीं दी। तमाम उम्र अथक परिश्रम और उद्योग करते रहे, किन्तु असफलता और निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगा। तब मजबूरन तक़दीर (भाग्य)के आगे तद्बीर (पुरुषार्थ)को घुटने टेकने पड़े। इस पराजयकी घुटनको 'फ़ानी'ने यूँ व्यक्त किया है—

देख 'फ़ानी' वोह तेरी तद्बीरकी मैयत[1] न हो।
इक जनाज़ा[2] जा रहा है, दोशपर[3] तक़दीरके॥

तमाम उम्र हाथ-पाँव मारते गुज़र जायें, फिर भी किनारा हाथ न आये, तब छटपटाकर डूब जानेके अतिरिक्त अन्य उपाय भी क्या है?

कुछ आस्तिक कहेंगे कि 'फ़ानी'ने ऐसे घोर संकटके समय ईश्वरको पुकारा होता तो निश्चय ही बेड़ा पार हो जाता। फ़ानीने यह भी करके

---

[1]अर्थी; [2]शव; [3]कन्धेपर।

देख लिया। वे जीवनभर आस्तिक बने रहे, घोर सकटके क्षणोंमे भी वे खुदाको नही भूले। उनका दृढ विश्वास था कि खुदा रहीम है और उसकी रहमत कभी-न-कभी उनपर भी होगी। लेकिन मरते दमतक भी रहमतका सहारा जब नहीं मिला तो धीरजका बाँध टूट गया, और उसी बेकलीमे उनके मुँहसे निकल गया—

या रब ! तेरी रहमतसे मायूस नहीं 'फ़ानी'।
लेकिन तेरी रहमतकी ताख़ीरको क्या कहिए[1] ?

आपदाओके भँवरमे जब फ़ानीकी जीवन-नौका चक्कर काट रही थी, उनकी सगिनी और युवा कन्या भी चल बसी। जो बच रहे उनको क्षणभर भी निराकुल न देख सके। यह वह मनोव्यथा है कि इस टीसका अनुभव भुक्त-भोगी ही कर सकता है। 'मीर' तो एक कल्पना ही करके रह गये कि उन-जैसा बदनाम मद्यप भी मस्जिदका इमाम बन गया है—

मस्जिदमे इमाम आज हुआ आके वहाँसे।
कलतक तो यही 'मीर' खराबात-नशीं था॥

खराबात (मद्यालयो) के मीर (सरदार) रहे तो क्या, और मस्जिदमे इमाम[2] बने तो क्या ? इससे बिगडता-बनता क्या है ? लेकिन 'फ़ानी' तो जीवनभर असफलताओ और निराशाओसे द्वन्द्व करते रहे और एक क्षणको भी विजयी न हुए, इसीलिए उर्दू-आलोचक उन्हें यासियातका इमाम कहते है।

---

[1]कौन कम्बख्त तेरी दयालुता और दीनबन्धुत्वमे सन्देह करता है ? हमे तो आशा ही नही, पूर्ण विश्वास है कि तू अपनी रहमतका हाथ हमारे लिए भी बढायेगा। लेकिन इतना जो विलम्ब (ताखीर) हो रहा है इसको क्या कहा जाय ? क्या हम डूब जायेगे तब····?

[2]धार्मिक नेता, जिसके पीछे खडे होकर लोग नमाज पढे।

यासियानका इमाम तो वह भी कहला सकता है, जो असफल और निराश व्यक्तियोंमें आशाका सचार करे, कर्तव्य-क्षेत्रमें डटे रहनेके लिए उत्साहप्रद भावना भरे। लेकिन 'फ़ानी' ऐसे इमाम नही है, अपितु किसी व्यक्तिमें आशा-उत्साहका कोई अकुर रह भी गया हो, तो उनकी इमामत (नेतृत्व) उसे जड़-मूलसे उखाड़ फेकती है, उसी अर्थमें वे यासियातके इमाम है।

यही कारण है कि कुछ आलोचक उनकी जीवितावस्थामें ही यह दोषारोपण करने लगे थे कि 'फानी' हर वक़्त रोते-बिसूरते रहते है। उनकी प्रेमज्वाला ठडी पड गई है। ग़मसे घबराकर हर वक़्त मौतकी कामना रखते है। उनकी शाइरीमें व्यक्तिगत रोने-झीकनेके अतिरिक्त और रक्खा ही क्या है? हाय-हाय करना, छाती पीटना, विधवाओंकी तरह शोकमग्न रहना, बिलखते रहना, उनका स्वभाव है। लखनवी शाइरोंकी तरह वह भी प्रेमको एक रोग समझते है। उनकी शाइरीमें जनाजा, मैयत, कफ़न, लहद, मजार, शमअ, परवाना आदि शब्दोंकी भरमार रहती है। 'जोश' मलीहाबादी[1] तो उन्हें मानवतामें गिरा हुआ कहनेमें भी संकोच नहीं करते, क्योकि मनुष्य होकर जो ग़मोसे घबरा उठे, उसे वे मनुष्य नही, मनुष्यताका अभिशाप समझते है।

किसी हालतमें उक्त आलोचनाएँ ठीक है, किन्तु एक ही काँटेपर धान और मोती नही तोले जा सकते। हर व्यक्तिके जीवनके भिन्न-भिन्न पहलू होते है, और भिन्न-भिन्न वातावरणमें रहने-सहनेके कारण जुदा-जुदा आचार-स्वभाव होते है। रामायणका पाठक महाभारतके कौरव-पाण्डवोंमें भी भरत-राम-जैसा स्नेह-सम्बन्ध देखना चाहेगा तो निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नही लगेगा। हर शाइर 'ग़ालिब' और 'जोश' नहीं

---

[1] 'जोश' मलीहाबादीका परिचय 'शाइरीके नये दौर' प्रथमभागमें दिया गया है।

हो सकता। न हर शाइर 'मीर' और 'फानी' जैसा दर्दीला दिल पा सकता है।

ग़ालिब और फ़ानी

प्रारम्भमें 'फानी' भी 'गालिब'से प्रभावित नजर आते हैं, जैसा कि इन चन्द अशआरसे आभास मिलता है—

ग़ालिब— हस्तीके मत फ़रेबमें आजाइयो 'असद'!
आलम तमाम हल्क़ए-दामे-ख़याल है॥

फ़ानी— हर मुजदए-निगाहे-ग़लत जलवा खुदफ़रेब।
आलम दलीले गुमरहीए-चश्मोगोश था॥

ग़ालिब— है ग़ैब-ग़ैब जिसको समझते हैं हम शहूद।
हैं ख़्वाबमें हनूज़ जो जागे हैं ख़्वाबमें॥

फ़ानी— तजल्लियाते-वहम है मुशाहिदाते-आलो-गिर्द।
करिश्मए-हयात है ख़याल, वोह भी ख़्वाबका॥
एक मुअम्मा है समझनेका न समझानेका।
जिन्दगी काहेको है? ख़्वाब है दीवानेका॥

ग़ालिब— हाँ खाइयो मत फ़रेबे-हस्ती।
हर चन्द कहे कि है, नहीं है॥

फ़ानी— है कि 'फ़ानी' नहीं है क्या कहिए।
राज़ है बेनियाज़े-महरमे-राज़॥

ग़ालिब— न गुले-नग़मा हूँ, न परदए-साज़।
मैं हूँ अपनी शिकस्तकी आवाज़॥

फ़ानी— हूँ, मगर क्या यह कुछ नहीं मालूम।
मेरी हस्ती है ग़ैबकी आवाज़॥

ग़ालिब— लो वोह भी कहते हैं कि "यह बे-नंगो-नाम है"।
यह जानता अगर तो लुटाता न घरको मैं ॥
फ़ानी— बहला न दिल, न तीरगीए-शामे-ग़म गई।
यह जानता तो आग लगाता न घरको मैं ॥

ग़ालिब— छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूं।
हर-एकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं ॥
फानी— वोह पाए-शौक़ दे कि जेहल्-आश्ना न हो।
पूछूं न ख़िज़्रसे भी कि जाऊँ किधरको मैं ॥

ग़ालिब— उग रहा है दरो-दीवारसे सब्ज़ा 'ग़ालिब' !
हम बयाबाँमें हैं और घरमें बहार आई है ॥
फानी— यां मेरे क़दमसे है वीरानेकी आबादी।
वां घरमें ख़ुदा रक्खे आबाद है वीरानी ॥

ग़ालिब— मेरी तामीरमें मुज़मिर है इक सूरत ख़राबीकी।
हयूला बर्क़े-ख़िरमनका है, ख़ूने-गर्म दहक़ाँका ॥
फानी— तामीरे-आशियाँकी हविराका है नाम बर्क़।
जब हमने कोई शाख़ चुनी शाख़ जल गई ॥

ग़ालिब— हो चुकीं 'ग़ालिब' बलाएँ सब तमाम।
एक मर्गे-नागहानी और है ॥
फानी— अपनी तो सारी उम्र ही 'फ़ानी' गुज़ार दी।
इक मर्गे-नागहांके ग़मे-इन्तज़ारने ॥

'ग़ालिब' और 'फ़ानी'मे अन्तर यही है कि दोनों आपदाओंकी भट्टीमें जीवनभर सुलगते रहते हैं और अन्तमें राख हो जाते हैं। लेकिन 'ग़ालिब' तब भी मुसकराते रहते हैं, तीखे व्यग्य कसते हैं, और ऐसा मुँह चिढाते हैं कि आपदाये भी झेप-झेपकर रहा जाती है—

न लुटता दिनको तो, कब रातको यूँ बेखबर सोता।
रहा खटका न चोरीका, दुआ देता हूँ रहजनको!

है किसीमें ऐसी हिम्मत कि सर्वस्व लुट जाये, फिर भी आह न करे, उलटा चोरका आभार ही माने? अपने उजडे घरको देखकर कितना तीखा व्यंग्य करते हैं—

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता।
बहर गर बहर न होता तो बयाँबा होता॥

[हमारा घर तो उजाड होना ही था, फिर रो-रोकर उसे आँसुओं-द्वारा हमने स्वय ही डुबो दिया तो क्या बुरा किया?]

कम किरायेके टूटे-फूटे मकानमें रहते हैं। उसकी दीवारोंपर काई जम गई है। छतों और मुँडेरोंपर घास उग आई है। जानते हैं कि निर्धनताके कारण ऐसे मकानमें रहना पड रहा है, किन्तु अपनी इस बेबसीपर आँसू न बहाकर किस खूबीसे मुँह चिढाते हैं कि मकान-मालिकने यह शेर सुना होगा तो अपना सर पीट लिया होगा—

उग रहा है दरो-दीवारपै सब्जा 'गालिब'!
हम बयाबाँमें हैं और घरमें बहार आई है॥

घास और काईको 'सब्जा' और घरकी जीर्णताको 'बहार' कहना गालिबका ही कलेजा है।

दुःख-दरिद्रतामें जीवन व्यतीत करते-करते खयाल आया कि अगर खुदा मुझे लोक और परलोक दोनों प्रदान कर दे तो क्या हो? चट स्वाभिमानी हृदय घृणासे भर आया, कि जिस खुदाने एक लमहेको सुख-चैनकी साँस नहीं लेने दी, उसका दिया हुआ अब क्यों स्वीकृत किया जाय? लेकिन अपनी वजअ-कितअकी शराफतके कारण 'नहीं' कहनेका साहस भी नहीं होता, सकुचाकर रह जाते हैं—

दोनों जहान देके वोह समझा कि खुश हुआ।
याँ आ पड़ी यह शर्म कि तकरार क्या करे॥

मीरका प्रभाव

लेकिन 'फानी' दुःखकी भट्टीमें जलते हुए 'गालिब'की तरह मुसकरा नहीं सकते थे। उनका हृदय जिन परमाणुओंसे बना था, उनमें मुसकानके अणु नहीं थे। 'फानी' अपनी व्यथा-पीडाके कारण 'गालिब'के बजाय 'मीर'के अधिक समीप मालूम होते हैं, उनके बहुतसे अशआर में 'मीर'का धोका होता है। ऐसे चन्द शेर दिये जाते हैं—

'फ़ानी'को या जुनूँ है या तेरी आर्ज़ू है।
कल नाम लेके तेरा दीवानावार रोया॥

नाला क्या? हाँ इक धुआँ-सा शामे-हिज्र।
बिस्तरे-बीमारसे उठ्ठा किया॥

आया है बादे-मुद्दत बिछड़े हुए मिले हैं।
दिलसे लिपट-लिपटकर ग़म बार-बार रोया॥

नाज़ुक है आज शायद, हालत मरीज़े-ग़मकी।
क्या चारागरने समझा, क्यों बार-बार रोया?

ग़मके टहोके कुछ हों बलासे, आके जगा तो जाते हैं।
हम हैं मगर वह नींदके माते जागते ही सो जाते हैं॥

महवे-तमाशा हूँ मैं या रब! या मदहोशे-तमाशा हूँ।
उसने कबका फेर लिया मुँह अब किसका मुँह तकता हूँ॥

गो हस्ती थी ख़्वाबे-परीशाँ नींद कुछ ऐसी गहरी थी।
चौंक उठे थे हम घबराकर फिर भी आँख न खुलती थी॥

फ़स्ले-गुल आई, या अजल आई, क्यों दरे ज़िन्दाँ खुलता है ?
क्या कोई वहशी और आ पहुँचा या कोई क़ैदी छूट गया ॥

या कहते थे कुछ कहते, जब उसने कहा—"कहिए" ।
तो चुप हैं कि क्या कहिए, खुलती है ज़बाँ कोई ?

यहाँ यह कहा जा सकता है कि 'फानी' उम्रभर जलते-भुनते रहते, लेकिन उन्हें अपने दिलकी टीस शाइरीमें बखेरकर पाठकोंके हृदयको द्रवित करने और उन्हें निराशावादका पाठ देनेका क्या अधिकार था ? उन्हें तो अपने रिसते हुए नासूरपर मरहम लगाकर डब-डबाई आँखोंके आँसू पीकर जाहिरामें मुसकराते रहना चाहिए था ।

दिलमें हज़ार ग़म हों, जबींपर शिकन न हो

लेकिन शाइरी चित्र-जैसी कला नहीं कि मनोभाव दबाकर फ़र्माइशके अनुसार चित्रित की जा सके । लाख प्रयत्न किये जायें, शाइरके कलाममें उसके हृदयगत भाव व्यक्त हुए बगैर रह नहीं सकते । 'ग़ालिब'ने लाख चाहा कि वे हृदयमें सुलगते ज्वालामुखीको दबाकर जीवनभर मुस्कराते रहें और व्यंग्योक्तियाँ कसते रहें । मगर यह उनसे भी बराबर नहीं निभ सका, और उनकी हृदयगत आग उनके चारों ओर फैले बगैर नहीं रह सकी—

दिलमें ज़ौक़े-वस्ल-ओ-यादे-यार तक बाक़ी नहीं ।
आग इस घरको लगी ऐसी कि जो था जल गया ॥

किससे महरूमिए-क़िस्मतकी शिकायत कीजे ।
हमने चाहा था कि मर जायें, सो वह भी न हुआ ॥

और जिसे माँगेसे मौत भी न मिले, वह असहाय और लाचार घुट-घुटकर जीने और मनको यह सान्त्वना देनेके अतिरिक्त और कर भी क्या सकता है—

कैदे-हयात-ओ-बन्दे-ग़म, अस्लमें दोनों एक हैं।
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाये क्यों ?

शाइरी एक दर्पण है, जिसमें अनिच्छा होते हुए भी हृदयगत भावोंका प्रतिबिम्ब पड़े बगैर नहीं रह सकता। सैयद सुलेमान नदवीके शब्दोंमें—

"ग़ज़ल लिखनेके लिए स्याही बाजारमें नहीं मिलती, बल्कि खूँ-चकाँ सीनेमें पाई जाती है। उसके लिए जख्मी दिल दरकार है। इसीलिए 'इकबाल'ने कहा है—

मिसरअे़मन क़तरए खूने मनस्त।

और 'कतरए़खून' शेरमें उसी वक़्त टपकता है, जब कि शाइरका खुलूस उसमें कारफ़रमा हो। शेरमें शेरियत (कवित्व)के साथ-साथ तासीर (प्रभाव, असर)का होना भी जरूरी है।"[1] तासीर बगैर शेर निष्प्राण शरीरके समान है।

'फानी'के एक-एक शब्दमें उनकी आत्मा बोल रही है। उनके कलामके अध्ययनमें उनके जीवन-पृष्ठ स्वयं उजागर हो जाते हैं; और यही उनकी शाइरीका कमाल है। जहीरुद्दीन अहमदखाँ लिखते हैं—

"वही शाइरी बुलन्दपाया (उच्चतम) होगी, जिसको शाइरने खुद महसूस किया हो। जिन्दगीकी चक्कीमें जिसने अपनेको पीसा हो, और रंजो-गमकी भट्टीमें जिसने अपनेको सुलगाया हो, उससे जो आवाज निकलती है, वही शाइरी है।"[2]

'फानी' इस शाइरीकी कसौटीपर पूरा उतरते हैं, जैसा कि उनके जीवन-परिचयसे आभास मिलता है।

फ़ानीका परिचय

शौकतअलीखाँ 'फानी' १३ सितम्बर १८७९ ई०में बदायूँ जिलेके

---

[1]निगार अप्रेल १९४६, पृ० १०; [2]निगार अप्रेल १९४६, पृ० ११।

इस्लामनगरमें उत्पन्न हुए। वे पठान हैं और उनके पूर्वज शाह आलमके शासनकालमें काबुलसे भारत आये और यहाँ उच्च पदोंपर प्रतिष्ठित रहे।

'फ़ानी'के परदादा नवाब बशारतखाँ, बदायूँ सूबेके गवर्नर थे और २०० गाँव उनकी जागीरमें थे। धीरे-धीरे जागीर खिसकती गई और नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि आपके पिता मुहम्मद शुजाअतअलीखाँ पुलिसकी नौकरी करनेपर मजबूर हुए और उस थोड़े-से वेतनमें ही अपनी सारी ज़िन्दगी गुजार गये।

'फ़ानी'ने १९०१में बी० ए० और १९०८ में एल-एल० बी० पास किया। १९२३ तक लखनऊमें रहे, उसके बाद सन् ३२ तक आगरेमें वकालत करते रहे। कुछ अर्से बरेली और बदायूँमें भी वकालत की। जब कहीं भी प्रैक्टिस न चली, तब हैदराबादके प्रधान मन्त्री महाराजा किशनप्रसाद 'शाद'ने मेहरबानी फर्माकर हैदराबाद बुला लिया। मगर वहाँ भी अभाग्यने साथ नहीं छोड़ा। वहाँ जाकर जिन असुविधाओं और विघ्न-बाधाओंका सामना करना पड़ा होगा, उसका कुछ आभास निम्न पत्रसे होता है, जो कि उन्होंने २८ जून १९३३ को अपने एक सम्बन्धीको लिखा था—

"मेरा तक़र्रुर (नियुक्ति) नहीं हुआ है, देखिए कब होता है ? और कहाँ ? या ग़ालिबन होता भी है या नहीं।"

'फ़ानी'को वहाँ मुल्की और गैरमुल्की झगड़ोंके कारण भी परेशानी उठानी पड़ी।[1] आखिर राम-राम करके फानी-जैसे शाइरको वहाँके एक हाईस्कूलकी हेडमास्टरी नसीब हुई।

---

[1] हैदराबादमें यह प्रान्तीय भावना बहुत पुरानी है। सरकारी नौकरियोंमें मुसलमानोंको तो तरजीह दी ही जाती रही है, लेकिन वहाँके मुसलमान भी यह बर्दाश्त नहीं करते थे कि उनके यहाँ कोई अन्य प्रान्तीय आये। हैदराबादसे बाहरके लोगोंको वहाँ 'गैरमुल्की' समझा जाता है। मिर्ज़ा 'दाग़'की नियुक्तिपर भी यह एतराज उठा था। आज भी वह रोग ज्यों-का-त्यों बना हुआ है।

इसी अर्सेमें उनकी जीवन-सगिनी और युवा पुत्री चल बसी। यहाँ तक कि उनके वहाँ एकमात्र हितैषी महाराजा किशनप्रसाद भी स्वर्गस्थ हो गये। इसे भाग्य-रेखके अतिरिक्त और क्या कहा जाय? बकौल 'जिगर' मुरादाबादी—

मेरे ग़मख़ानए-मुसीबतको।
चाँदनी भी सियाह होती है॥

आजीविकाकी खोजमें—लखनऊ, बरेली, इटावा आगरा, हैदराबाद—न जाने कहाँ-कहाँकी खाक छानी। जहाँ भी गये असफलताओं और निराशाओंने आगे बढकर स्वागत-सत्कार किया। 'फानी' भावुक थे, तनिक- तनिक-सी बाते उनके दिलपर चरका पहुंचाती थी, और दिल जब ज़ख्मी होता है तो बक़ौल 'सीमाब'—

सितारोंकी चमकसे चोट लगती है रगे-जाँपर

हैदराबादमें जिसप्रकार उन्होंने दिन गुजारे, उनके बारेमें वहाँके पत्र 'पयाम'ने लिखा था—

"इस सरजमीनपर शायद ही कोई ऐसा साहिबे-कमाल इस कसम-पुरसीकी हालतमें दफ़न हुआ हो, जिस हालतमें 'फानी'ने अपनी जिन्दगीके चन्द आखिरी साल गुजारे।"[1]

शेरगोईका शौक़ 'फ़ानी'को ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही हो गया था। यानी सबसे पहली गज़ल आपने १८९० ई०मे कही और २० वर्षका

---

[1] इसी हैदराबादमें 'जलील' मानिकपुरी भी रहते थे और 'फ़ानी' बदायूनी भी। जलील उस्तादे-शाह थे और फ़ानी गदाए-राह (मार्गके भिक्षुक)।

—जोश मलीहाबादी

आयुमें दीवान मुकम्मिल हो गया था। अफ़सोस कि वह नष्ट हो गया। १९०६मे दूसरा दीवान तैयार किया तो वह भी पहले दीवानकी तरह गुम हो गया। आखिर दिल बैठ गया और १९१७ तक 'फानी' दुनियाए शाइरीसे रूपोश रहे। इसके बाद जलवागर हुए तो उनका पहला दीवान बदायूँगे छपा। दूसरा दीवान 'बाकियाते फानी' १९२६मे और शेष कलाम 'बजदानियात' १९४०मे प्रकाशित हुआ। बकौल किसीके—

"लतीफ़तरीन एहसासात रखते हुए तबाहियों और बरबादियोंका मुसलसल(निरन्तर) शिकार होना और फिर जिन्दा भी रहना एक इन्सानको फानी न बना दे तो और क्या तवक्कोअ (आशा) हो सकती है? हवादिस-ओ-सदमात (मुसीबतें और रंजोगम) इब्तदामे दर्दनाक भी मालूम होते हैं, और नाकाबिले बरदाश्त भी। इन्सान चीखता भी है और आंसू भी बहा लेता है। लेकिन उस हिरमाँ-नसीब (असफल-निराश व्यक्ति)को क्या कहिए? जिसके आंसू भी इन मुतवातिर और पैहम (लगातार-निरन्तर) चोटोंसे खुश्क हो जाते हैं। फिर उसकी मुसकराहट भी 'आह' बन जाती है, और यास (निराशा) मे उसको लुत्फ भी आता है। चुनांचे किसी मातमकदे (शोक-गृह)के नौहा (मातम) करनेवालेसे अगर तराना-शादियाने (मंगलवाद्य)की तवक्कोअ (आशा) नही की जा सकती तो 'फ़ानी'की शाइरी भी यासयाते (निराशावादी) शाइरी ही हो सकती थी।"

फानीने जब होश संभाला तो लखनवी शाइरीमे कघी, चोटी, सुरमा-मिस्सी, चोली-दामन विदा हो गये थे। लखनऊकी नवाबी मिट चुकी थी। इसलिए रंगीन और जनानी शाइरीकी जगह मर्सिया ले रहा था। लखनऊके उरूजके दिनोंमे वहाँके शाइरोंने जिस तत्परतासे रंगीन एव खारिजी शाइरीके नोक-पलक संवारे थे, उसी तेजीसे मर्सियाके मैदानमे भी कूदे। जिस घरमे शादीके नग्मोंसे कान पडी आवाज़ सुनाई न देती हो, उस घरमे अकस्मात दुर्घटना होने पर क्रन्दन भी आकाश भेदी उठता है।

मर्सियागोई रगीन शाइरीकी प्रतिक्रिया थी, और यह स्वाभाविक भी था। उन दिनों लखनवी शाइरोको रजो-ग़म गिरिय-ओ-मातम, गोरे-गरीबाँ और यासो-हिरमाके अतिरिक्त कुछ सूझता ही न था। यहाँतक कि ग़ज़लमें भी मर्सियतका रग चढ रहा था। रगीन शाइरीकी तरह इसमे भी लखनवी शाइरोने तकल्लुफ और कृत्रिमताको हाथसे नही छोड़ा।

फ़ानीकी प्रकृति इस वातावरणके अनुकूल थी। वे इस रगसे काफ़ी प्रभावित हुए। यद्यपि प्रारम्भमे वे ग़ालिबके अनुयायी नज़र आते हैं, किन्तु लखनवी मर्सियतका वातावरण उनके अधिक अनुकूल रहा। अतः करुणा-व्यथा भरे बोल उनके मुँहसे अनायास निकलने लगे।

यहाँतक कि इस पृथ्वीका स्वर्ग काश्मीर भी उनके हृदय-कमलको नहीं खिला सका, वहाँका प्रसिद्ध 'निशातबाग' भी उन्हे फ़र्सूदा (कुम्हलाया हुआ) नज़र आया—

इस बाग़में जो कली नज़र आती है।
तसवीरे-फ़सुर्दगी नज़र आती है॥
कश्मीरमें हर हसीन सूरत 'फ़ानी'।
मिट्टीमें मिली हुई नज़र आती है॥

फूलोंकी नज़र-नवाज़ रंगत देखी।
मख़लूक़की दिल-गुदाज़ हालत देखी॥
क़ुदरतका करिश्मा नज़र आया कश्मीर।
दोज़ख़में समोई हुई जन्नत देखी॥

उनकी पत्नी और पुत्री मिट्टीमे मिल जाये और उनका घर जिसे वह जन्नत बनाना चाहते थे, दोज़ख़ बन जाये ; तब हर हसीन सूरत उन्हें मिट्टीमें मिली हुई और 'जन्नत' दोज़खमें समोई हुई दिखाई न दे तो और क्या दे ? यही व्यथा-भरा अलाप धीरे-धीरे वह रूप लेता गया, जिसे आज 'फ़ानी'की शाइरी कहा जाता है। व्यथा रूपी दीमकसे खाये

हुए उनके मनसे यही ध्वनित होगा, चाहे वह काश्मीरमें रहे या हैदराबाद-में—

दैरमें या हरममें गुज़रेगी।
उम्र तेरे ही ग़ममें गुज़रेगी॥

और धीरे-धीरे 'फ़ानी' रंज-ओ-ग़मके इतने आदी हो गये हैं कि उन्हें सुख-चैनका तो ख़्वाबो-ख़याल भी नहीं आता। उन्हें तो अब यही आशंका खाये जाती है कि दुःखसे भरे-पूरे दिन उनके जो व्यतीत हो रहे हैं, वे भी दुर्दैव कहीं उनसे छीन न ले।

हाँ नाख़ुने-ग़म कमी न करना।
डरता हूँ कि ज़ख़्मे-दिल न भर जाये॥

और इस दुःखको वे मर्दानावार आमन्त्रण देते हैं—

ग़ैरत हो तो ग़मकी जुस्तजू कर।
हिम्मत हो तो बेक़रार हो जा॥

और इस ग़मको वे अपना सर्वस्व समझते हुए सगर्व कहते हैं—

चुन लिया तेरी मुहब्बतने मुझे।
और दुनिया हाथ मलकर रह गई॥

'फ़ानी'ने मर्मियतसे बहुत जल्द कनाराकशी करके अपना जुदागाना-रंग अख़्तियार कर लिया। कहीं उनके यहाँ ग़ालिब-जैसी दार्शनिकता, और कहीं 'मीर' जैसा सोज़ोगुदाज़ पाया जाता है। इश्क़िया रंगमें भी उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभाका परिचय दिया है।

हूँ असीरे-फ़रेबे-आज़ादी[1]।
पर है और मश्क़े-हीलए-परवाज़[2]॥

---

[1]स्वतन्त्रताके धोकेका क़ैदी ; [2]पर होते हुए भी न उड़नेके लिए बहाना ढूढ़ना।

इश्क़ है परतवे-हुस्ने-महबूब[1] ।
आप अपनी ही तमन्ना क्या ख़ूब ।।

अब लबपै वोह हंगामए-फ़रियाद नहीं है ।
अल्लाहरे तेरी याद कि कुछ याद नहीं है ।।

हमको मरना भी मयस्सर नहीं जीनेके बग़ैर ।
मौतने उम्रे-दो-रोज़ाका बहाना चाहा ।।

बिजलियाँ शाख़े-नशेमनपै बिछी जाती हैं ।
क्या नशेमनसे कोई सोख़्ता-सामाँ[2] निकला ?

'फ़ानी'की ज़िन्दगी भी क्या ज़िन्दगी थी या रब !
मौत और ज़िन्दगीमें कुछ फ़र्क़ चाहिए था ।।

फ़ानीके चन्द मक़्ते

किसीके ग़मकी कहानी है ज़िन्दगीए-'फ़ानी' ।
ज़माना एक फ़साना है, मेरे नालोंका ।।

ख़ाके-'फ़ानी'की क़सम है, तुझे ऐ दश्ते-जुनूँ !
किससे सीखा तेरे ज़र्रोंने बयाबाँ होना ?

चमनसे रुख़सते 'फ़ानी' क़रीब है शायद ।
कुछ अबकी बूए-कफ़न दामने-बहारमें है ।।

किसकी कश्ती तहे-गिरदाबे-फ़ना[3] जा पहुँची ?
यकबयक शोर जो 'फ़ानी' लबे-साहिलसे[4] उठा ।।

---

[1]प्रेयसीके सौन्दर्य्यका प्रतिबिम्ब; [2]दग्धहृदय; [3]मृत्यु-दरियाके भँवरमे; [4]किनारेसे ।

आज रोज़े-विसाल है 'फ़ानी' !
मौतसे हो रहे हैं नाज़ो-नियाज़ ॥

चुना हुआ कलाम

'बाक़ेआते फानी' और 'वजदानियत' शीर्षक उनके दो सकलनोंसे उनके सभी रगके अशआर पेश किये जा रहे हैं—

तूने करम[1] किया तो ब-उनवाने-रंजेजीस्त[2] ।
ग़म भी मुझे दिया तो ग़मे-जाविदाँ[3] न था ॥

आ गई है तेरे बीमारके मुँहपर रौनक़ ।
जान क्या जिस्मसे निकली, कोई अरमाँ निकला ॥

रस्मेखुद्दारीसे[4] गो वाक़िफ़ न थी दुनिया-ए-इश्क़[5] ।
फिर भी अपना ज़ख्मेदिल शरमिन्द-ए-मरहम[6] न था ॥

मज़ाक़े-तल्ख़पसन्दो[7] न पूछ, उस दिलका—
बग़ैर मर्ग़[8] जिसे ज़ीस्तका[9] मज़ा न मिला ॥

मेरी हयात[10] है महरूमे-मुद्दआ-ए-हयात[11] ।
वोह रहगुज़र[12] हूँ जिसे कोई नक़्शेपा[13] न मिला ॥

यूँ सबको भुला दे कि तुझे कोई न भूले ।
दुनिया ही में रहना है तो दुनियासे गुज़र जा ॥

---

[1]सखावत, मेहरबानी; [2]जीवनके दुःखोंके नाम से; [3]चिर कालीन; [4]स्वाभिमानकी रीतिसे; [5]प्रेम-संसार; [6]मरहमका एहसानमन्द; [7]कड़वाहटसे रुचि; [8]मरणके; [9]जीनेका; [10]ज़िन्दगी; [11]ज़िन्दगीके उद्देश्योंसे रिक्त; [12]मार्ग; [13]चरण-चिह्न, यात्री ।

क्या-क्या गिले[1] न थे कि इधर देखते नहीं।
देखा तो कोई देखनेवाला नहीं रहा॥

एक आ़लमको[2] देखता हूँ मैं।
यह तेरा ध्यान है मुजस्सिम[3] क्या॥

फ़ुरसते-रंजेअसीरी[4] दी न इन धड़कोंने हाय।
अब छुरी सैयादने ली, अब क़फ़सका दर खुला॥

मंज़िलेइश्क़में[5] तनहा[6] पहुँचे कोई तमन्ना[7] साथ न थी।
थक-थककर इस राहमें आखिर इक-इक साथी छूट गया॥

रफ़्तए-नज़र[8] हो जा, सबसे बेख़बर हो जा।
खुल गया है राज़[9] अपना खुल न जाये राज उनका॥

फ़रेबेजलवा[10] और कितना मुकम्मिल ऐ मआ़ज़ल्लाह!
बड़ी मुश्किलसे दिलको बज़्मे-आलमसे उठा पाया॥

हाय क्या दिन है कि नक़्शे-सजदा[11] है और सर नहीं।
याद है वोह दिन कि सर था और बबालेदोश[12] था॥

निगहे-क़हर[13] ख़ास है मुझपर।
यह तो एहसाँ हुआ सितम न हुआ॥
अब करम[14] है तो यह गिला[15] है मुझे।
कि मुझीपर तेरा करम न हुआ॥

---

[1]शिकायत; [2]दुनियाको; [3]पूर्ण; [4]बन्दी जीवनके दुःखोंमें यह अवकाश ही कहाँ मिला; [5]प्रेमकी अन्तिम सीमापर; [6]अकेले; [7]इच्छा; [8]उपेक्षित दृष्टि; [9]भेद; [10]जलवेका धोका; [11]भूमि पर माथा टेकनेसे चिह्नका बनना; [12]कन्धोंका बोझ; [13]क्रुद्ध-दृष्टि; [14]कृपा; [15]शिकायत।

गुलमे वोह अब नहीं है जो आलम था खारका[1]।
अल्लाह क्या हुआ वोह जमाना बहारका ॥

तिनकोंसे खेलते ही रहे आशियाँमें हम।
आया भी और गया भी जमाना बहारका ॥

उसको भूले हुए तो हो 'फ़ानी'!
क्या करोगे अगर वोह याद आया ॥

घर खैरसे तक़दीरने वीराना बनाया।
सामाने-जुनूँ[2] मुझसे फ़राहम[3] न हुआ था ॥

बालींपै[4] जब तुम आये तो आई वोह मौत भी।
जिस मौतके लिए मुझे जीना जरूर था ॥
थी उनके सामने भी वही शाने-इज्तराब[5]।
दिलको भी अपनी वजअपै कितना गुरूर था ॥

बा-खबर है वोह सबकी हालतसे।
लाओ हम पूछ ले न हाल अपना ॥

अल्लाहरे एतमादे मुहब्बत[6] कि आजतक।
हर दर्दकी दवा है वोह, अच्छा किये बग़ैर ॥

निगाहे ढूँढ़ती है दोस्तोंको और नहीं पातीं।
नजर उठती है जब जिस दोस्तपर पड़ती है दुश्मनपर ॥

न इब्तदाकी[7] खबर है न इन्तहा[8] मालूम।
रहा यह वहम कि हम है, सो वोह भी क्या मालूम ?

---

[1]काँटेका; [2]उन्मादका सामान; [3]एकत्र; [4]सिरहाने; [5]तड़पनेकी शान; [6]प्रेम-विश्वास; [7]प्रारम्भकी; [8]अन्त।

यह ज़िन्दगीकी है रूदादे-मुख़्तसर[1] 'फ़ानी' !
वजूदे-दर्दे-मुसल्लम,[2] इलाज ना मालूम ॥

किस जोममें[3] है ऐ रहरवेग़म[4] ! धोकेमें न आना मंज़िलके।
यह राह बहुत कुछ छानी है, इस राहमें मंज़िल कोई नहीं ॥

हाँ ऐ यक़ीनेवादा ! दामन तेरा न छूटे।
यह आसरा न टूटे वोह आये या न आये ॥

दिलमें आते हुए शरमाते हैं।
अपने जलवोंमें छुपे जाते हैं ॥

ना महरबानियोंका गिला तुमसे क्या करें ?
हम भी कुछ अपने हालपै अब महरबां नहीं ॥

तसकीन[5] अजीब चाहता हूँ।
दुशमनका नसीब चाहता हूँ ॥

ग़म भी गुज़श्तनी[6] है ख़ुशी भी गुज़श्तनी।
कर ग़मको अख़्तयार कि गुज़रे तो ग़म न हो ॥

बहार लाई है पैग़ामे-इन्क़लाबे-बहार[7]।
समझ रहा हूँ मैं कलियोंके मुसकरानेको ॥

काफ़िर सूरत देखके मुँहसे आह निकल ही जाती है।
कहते क्या हो ? अब कोई अल्लाहका यूँ भी नाम न ले ॥

गो नहीं ज़ुज़-तर्के-हसरत[8] दर्दे हस्तीका[9] इलाज।
आह वोह बीमार जो आज़ुर्द-ए-परहेज़[10] है ॥

---

[1]संक्षिप्त कहानी; [2]दर्द पूर्णरूपेण है; [3]घमण्डमें; [4]ग़मकी राहपर चलनेवाले; [5]चैन; [6]नाशवान; [7]बहारकी क्रान्तिका सन्देश, पतझड़का; [8]अभिलाषाओंके त्यागके अतिरिक्त; [9]जीवन-व्यथाका; [10]परहेज़ करते-करते दुखी।

अहले-ख़िरदमें[1] इश्क़की रुसवाइयाँ न पूछ।
आने लगी है ज़िक्रे-वफ़ासे हया मुझे॥

या रब! नवाये-दिलसे[2] तो कान आश्ना-से[3] हैं।
आवाज़ आ रही है, यह कबकी सुनी हुई?

तर्के-तदबीरको[4] भी देख लिया।
यह भी तदबीर कारगर[5] न हुई॥
यूँ मिली हर निगाहसे वोह निगाह।
एककी एकको ख़बर न हुई॥
आज तस्कीने-दर्देदिल[6] 'फ़ानी'!
वह भी चाहा किये मगर न हुई॥

उनके तो दिलसे नक़्शे-कुदूरत[7] भी मिट गया।
हम शाद[8] हैं कि दिलमें कुदूरत नहीं रही॥

ज़िन्दगी ख़ुद क्या है 'फ़ानी' यह तो क्या कहिए मगर।
मौत कहते हैं जिसे वोह ज़िन्दगीका होश है॥

न दिलके ज़र्फ़को[9] देखो न तूरको[10] देखो।
बलाकी धुन है तुम्हें बिजलियाँ गिरानेकी॥

कलतक जो तुमसे कह न सका हाले-इज़्तराब[11]।
मिलती है आज उसकी ख़बर इज़्तराबसे॥

मुद्दआ[12] है कि मुद्दआ[13] न कहूँ।
पूछते हैं कि मुद्दआ क्या है?

---

[1]अक़्लमन्दोंमें; [2]दिलकी आवाजसे; [3]परिचित-से; [4]पुरुषार्थ त्यागकर; [5]सफल, [6]दिलके दर्दका आराम; [7]द्वेष-भाव; [8]प्रसन्न; [9]पात्रताको; [10]एक पर्वतका नाम; [11]तड़पकी ख़बर; [12]इच्छा; [13]अभिलाषा।

दुश्मने-जाँ[1] थे तो जाने-मुद्दआ क्यों हो गये ?
तुम किसीकी जिन्दगीका आसरा क्यों हो गये ?

जिन्दगी यादे-दोस्त है यानी—
जिन्दगी है तो ग़ममें गुज़रेगी ॥

आपने अहद[2] किया है मेरी ग़मख़्वारीका[3] ।
अब इजाज़त हो तो यह अहद मुझे याद रहे ॥

मरके टूटा है कहीं सिलसिलए-क़ैदे-हयात[4] ?
मगर इतना है कि ज़ंजीर बदल जाती है ॥

शेवए-आशिक़ी[5] नहीं हिज्रमें[6] आर्ज़ूए-मर्ग[7] ।
हाँ नहीं जिन्दगी अज़ीज़[8], मौत ही जिन्दगी सही ॥

जीने भी नहीं देते मरने भी नहीं देते ।
क्या तुमने मुहब्बतकी हर रस्म उठा डाली ?

तर्के-उम्मीद[9] बसकी बात नहीं ।
वरना उम्मीद कब बर[10] आई है ॥

मौजोंकी[11] सयासतसे[12] मायूस[13] न हो 'फ़ानी' !
गिरदाबकी[14] हर तहमें साहिल[15] नजर आता है ॥

फूलोंसे तअल्लुक़ तो, अब भी है मगर इतना ।
जब जिक्रे-बहार आया, समझे कि बहार आई ॥

---

[1]जानके दुश्मन; [2]इरादा, सकल्प; [3]मेरे दुःखोंको दूर करनेका; [4]जीवन क़ैद; [5]प्रेमियोंका कर्तव्य नहीं; [6]विरहमें; [7]मृत्युकी इच्छा रखना; [8]प्यारी; [9]आशाओंका त्याग; [10]सफल हुई; [11]लहरोंकी; [12]हुकूमत, राजनीति; [13]निराश; [14]भँवरकी; [15]किनारा ।

कर ख़ूए-जफ़ा[1] न यक-बयक[2] तर्क[3]।
क्या जानिए मुझपै क्या गुज़र जाये॥

वोह हमसे कहो छुपते? हम खुद हैं जवाब उनका।
महफ़िलमे जो छुपते हैं, छुपते नहीं महफ़िलसे॥

हर राहसे गुज़रकर दिलकी तरफ़ चला हूँ।
क्या हो जो उनके घरकी यह राह भी न निकले॥
शिकवा न कर फुगाँका, वोह दिन खुदा न लाये।
तेरी जफ़ापै दिलसे जब आह भी न निकले॥

लो तबस्सुम भी शरीके-निगहे-नाज़ हुआ।
आज कुछ और बढ़ा दी गई क़ीमत मेरी॥
दो घड़ीके लिए मीज़ाने-अदालत ठहरे।
कुछ मुझे हश्रमे कहना है ख़ुदासे पहले॥

गुल दिये थे तो काश फ़स्ले-बहार।
तूने काँटे भी चुन लिये होते॥

चौंक पड़ते हैं जिक्रे 'फ़ानीसे'।
नींद उचटती है इस कहानीसे॥

बेज़ौक़े-नज़र[4] बज़्मे-तमाशा[5] न रहेगी।
मुँह फेर लिया हमने तो दुनिया न रहेगी॥

पछतायेंगे आप दिलको लेकर।
कमबख़्त ग़म आशना बहुत है॥

---

[1]अत्याचारी स्वभाव; [2]एकदम; [3]त्याग; [4]सुरुचि पूर्ण दृष्टिके बिना; [5]महफ़िलकी रौनक़।

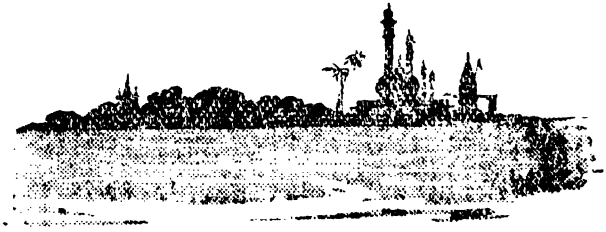
ज़िन्दगीकी दूसरी करवट थी मौत।
ज़िन्दगी करवट बदलकर रह गई॥

क्या बला थी अदाए-पुरसिशे-यार।
मुझसे इज़हारे-मुद्दआ न हुआ॥

तेरे फ़िराक़में हालत तबाह-सी है तबाह।
न दिलपै हाथ न अब सूए-आसमाँ है निगाह॥

रस्मे-बेदादे-दोस्त आम हुई।
तलिस्मए-जौस्त भी हराम हुई॥
करमे-बेहिसाब चाहा था।
सितमे-बे-हिसाबमें गुज़री॥

मिज़ाजे-देहरमें उनका इशारा पाये जा।
जो हो सके तो बहरहाल मुसकराये जा॥



तू कहाँ है कि तेरी राहमें यह काबा-ओ-दैर।
नक़्श बन जाते हैं मंज़िल नहीं होने पाते॥

१४ मई १९५२ ई०]



असग़र गोंडवी

[१८८४—१९३६ ई०]

असग़रहुसैन साहब 'असग़र'के पूर्वज गोरखपुर ज़िला निवासी थे। आपके पिता गोण्डेमें क़ानूनगो थे। उन्होंने वहींसे पेंशन ली और फिर स्थाई रूपसे वहीं बस गये थे।

असग़र १ मार्च १८८४ ई०में पैदा हुए। घरेलू वातावरण और आर्थिक स्थिति अनुकूल न होनेके कारण स्कूली शिक्षा व्यवस्थित रूपसे न हो सकी। यूँ फ़ारसी-अरबीका अच्छा ज्ञान था। अंग्रेज़ी भी समझ-बोल लेते थे, लेकिन यह सब उनके निजी अध्यवसाय और परिश्रमका परिणाम था।

'असग़र' शाइर न होते तो भी उनकी ख्यातिमें अन्तर न पड़ता। आप सदाचारी और पवित्र थे। आपका व्यक्तित्व उच्च और प्रभावशाली था। आपके सत्संगके परिणामस्वरूप 'जिगर' जैसे मशहूर रिन्द मैख़ानेका रास्ता छोड़कर सम्यक् मार्गपर चल निकले।

आप चश्मेका रोज़गार करते थे, आमदनी अल्प होते हुए भी न कभी आपने तंगदस्तीका किसीसे ज़िक्र किया, न कभी मेहमाँनवाज़ीमें अन्तर पड़ने दिया। अच्छा पहनते थे, अच्छा खाते थे। जो वज़्अ शुरूमें इख़्तियार की, उसे जीवनभर निभाया।

कुछ अर्से आप लाहौरके 'उर्दू मरकज'में कार्य करते रहे, और अन्तिम दिनोंमें आप 'हिन्दुस्तानी एकेडमी' इलाहाबादकी त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी'का सम्पादन करते थे। 'असगर' खुद फर्माया करते थे कि "मेरी जिन्दगीमें कोई वाकेआ काबिले जिक्र नहीं है।" १९३६ ई०में आपका निधन हो गया।

शाइरीमें पहले तो आप मुंशी खलील अहमद 'वज्द'से संशोधन लेते रहे। फिर चन्द गजलें मुंशी अमीर अल्लाह 'तसलीम'[1]को दिखाई। लेकिन यह क्रम अधिक नहीं चल सका। 'असगर' बाकायदा किसीके शिष्य नहीं हुए। आपने जो मौलिक प्रतिभा और बुद्धि पाई थी, उसको देखते हुए यह कहना पड़ता है कि उन दिनों आपके योग्य कोई उस्ताद भी नहीं था। वही दकियानूसी पुरातन सड़े-गले विचारोंकी शृंखला चली आ रही थी। उस शृंखलामें 'असगर' जैसा प्रतिभाशाली जकड़कर नहीं रखा जा सकता था। उसे जिस लक्ष्यपर पहुँचना था, उसके लिए कोई पगडंडी नहीं बनी थी। उसे स्वयं नई डगर बनानी थी।

लीक-लीक गाड़ी चले, लीकहिं चले कपूत।
लीक छोड़ तीनों चलें, शाइर, सिंह, सपूत॥

'असगर' उर्दूके उन्हीं शाइरों, नरसिंहों और सपूतोंमें-से एक थे, जो अपना मार्ग स्वयं बनाते हैं। बक़ौल जिगर मुरादाबादी—

अपना ज़माना आप बनाते हैं अहले-दिल।
हम वोह नहीं कि जिसको ज़माना बना गया॥

'असग़र'ने भी 'अमीर' और 'दाग़'की शाइरीके वातावरणमें आँखें खोलीं। लेकिन आपने उस रंगको सर्वथा हेय समझकर अपना नवीन

---

[1]आपका परिचय शेरोसुखन प्रथम भागमें दिया जा चुका है।

मार्ग चुना, और तारीफ यह कि जिस गजलसे लोग दामन बचाकर निकलने लगे थे, उसीको अपने पवित्र भाव व्यक्त करनेका साधन चुना, और उस पतनोन्मुखी गजलमे इतनी पवित्रता भरी कि उसका कायाकल्प ही हो गया। ग़ज़ल आज जिस ऊँचाईपर पहुँच गई है, उसके इस विकासकी कल्पना स्वप्नमे भी नही हो सकती थी।

ईश्वरीय-प्रेम

'असगर'का प्रेम ईश्वरीय प्रेम है। आपके किसी शेरमे आध्यात्मिकता-की सुबास है तो किसी शेरमे दार्शनिकताकी झलक। कही सूफियाना रग हिलोरें ले रहा है, तो कही पवित्र प्रेम छलका पड रहा है। आपके यहाँ अश्लील, निकृष्ट विचार तो दरकिनार, एक शेर भी साधारण और हलका नही मिलता। प्रत्येक शेर आत्म-विभोर कर देनेकी शक्ति रखता है। जो भी कहा गया है, बहुत गहरेमे डूबकर कहा गया है।

'असग़र'का प्रेम निर्मल, स्वच्छ और निष्कलक है। उनके प्रेममे विषयासक्ति नही कि उसे छिपाये फिरे; वे तो मुक्त-हृदयसे अपने प्रेमको प्रकट करते है और दृढ़तापूर्वक कहते है—प्रेम ही मेरे जीवनकी चेष्टा (सअी) है यही मेरे जीवनकी कमाई (हासिल) है। यही मेरी यात्राका अभीष्ट स्थान है और यही वहाँ तक पहुँचनेके लिए पगडडी (जाद-ए-मजिल) है—

इश्क़ ही सअी मेरी, इश्क़ ही हासिल मेरा।
यही मंज़िल है, यही जाद-ए-मंज़िल मेरा॥

'असगर'का यह प्रेम अपने प्यारेकी खोजमे उन्हे मन्दिरो-मस्जिदोकी खाक नही छनवाता। अपितु उनके झमेलोसे उन्हे बेदाग निकाल ले जाता है—

दैर[1]-ओ-हरम[2] भी कूचए-जानां[3] आये थे।
पर शुक्र है कि बच गये दामन बचाके हम॥

---

[1]मन्दिर; [2]मस्जिद; [3]प्यारेके मार्गमे।

परिणाम इसका यह होता है कि वे इस प्रेमाग्निमें तपकर इतने महान हो उठते हैं कि अपने प्यारेकी यादमें जहाँ भी सत्था टेक देते हैं, एक तीर्थ बन जाता है। और यह तीर्थ है भी क्या? जहाँ कहीं सिद्ध पुरुषों और वीतरागात्माओंके चरण पहुँचे हैं, वही उनकी स्मृतिमें तीर्थ बन गये।

नियाज़े-इश्क़को[1] समझा है क्या ऐ वाइज़े-नादाँ!
हज़ारों बन गये काबे, जहाँ मैंने जबीं रख दी॥

प्रेमी जब उक्त स्थितिमें पहुँच जाता है, तब उसके लिए मिलन-सुख और विरह-दुःख कुछ अर्थ नहीं रखते—

क्या दर्दे-हिज्र और यह क्या लज़्ज़ते-विसाल।
उससे भी कुछ बुलन्द मिली है नज़र मुझे॥

और अन्तमें एक ऐसी स्थिति आती है कि प्रेमी और प्यारा दोनों एकाकार हो जाते हैं—

अब न यह मेरी ज़ात है, अब न यह काएनात[2] है।
मैंने नवाए-इश्क़को[3] साज़से यूँ मिला दिया॥

असगरने कुछ इसी तरहके भाव भिन्न-भिन्न अशआरमें इस तरह व्यक्त किये हैं—

इक सूरते-उफ़्तादगीए-नक़्शे-फ़ना[4] हूँ।
अब राहसे[5] मतलब न मुझे राहनुमासे[6]॥

मेरे मज़ाक़े शौक़का इसमें भरा है रंग।
मैं ख़ुदको देखता हूँ, कि तसवीरे-यारको॥

---

[1]प्रेम-विभोरताको; [2]सांसारिक वस्तुएँ; [3]प्रेम-वाणी, प्रेम-सगीतको; [4]विनाशका मिटा हुआ चिह्न; [5]मार्गसे; [6]पथ-प्रदर्शकसे।

हुजूमे-शौक़मे अब क्या कहूँ मैं क्या न कहूँ ?
मुझे तो ख़ुद भी नहीं, अपना मुद्दआ मालूम ॥

जहान है कि नहीं जिस्मोजान है कि नहीं ।
वोह देखता है मुझे, उसको देखता हूँ मैं ॥

बेख़ुदीका[1] आलम है, महवे-जिबिहसाई[2] हूँ ।
अब न सरसे मतलब है, और न आस्तानेसे[3] ॥

अब न कहीं निगाह है, अब न कोई निगाहमे ।
महव[4] खड़ा हुआ हूँ मैं, हुस्नकी जलवागाहमें ॥

जुनूने-इश्क़मे हस्तीए-आलमपै नज़र कैसी ?
रुख़े-लैलाको क्या देखेगे महमिल देखनेवाले ॥

अब मुझे ख़ुद भी नहीं होता है कोई इम्तियाज़[5] ।
मिट गया हूँ इस तरह उस नक़्शे-पा-के सामने ॥

नज़रमे वोह गुल समा गया है, तमाम हस्तीपै छा गया है ।
चमनमें हूँ या क़फ़समें हूँ मैं मुझे अब इसकी ख़बर नहीं है ॥

अक्स किस चीज़का आईन-ए-हैरतमें नहीं ।
तेरी सूरतमें है क्या जो मेरी सूरतमे नहीं ॥

ख़ुदा जाने कहाँ है 'असग़रे' दीवाना बरसोंसे ।
कि उसको ढूँढ़ते है काब-ओ-बुतख़ाना बरसोंसे ॥

"असगरने अपने प्यारेके मोहनी रूपका वर्णन इतनी कुशलता और पवित्रतासे किया है कि कही भी वासनाकी गन्ध नही आती—

---

[1]आत्मलीनताका; [2]नतमस्तक-लीन; [3]प्यारेके दर्वाज़ेके पत्थरसे; [4]तल्लीन; [5]विवेक अन्तर नही मालूम होता ।

उसका वोह क़दे-रअ़ना[1], उसपर वोह रुख़े-रंगीं[2]।
नाज़ुक-सा सरेशाख़[3] इक गोया गुलेतर[4] देखा॥

तुम सामने क्या आये, इकतरफ़ा बहार आई।
आँखोंने मेरी गोया फ़िरदौसे-नज़र[5] देखा॥

उट्ठे अ़जब अन्दाज़से वोह जोशे-ग़ज़बमें।
चढ़ता हुआ इक हुस्नका दरिया नज़र आया॥

दोशपर बिजली गिरी, आँखें भी ख़ीरा[6] हो गईं।
तुम तो क्या थे, इक झलक-सी थी तुम्हारी यादकी॥

जो शजर बाग़में है, वोह शजरे-तूर[7] है आज।
पत्ते-पत्तेमें जो देखा तो वही नूर[8] है आज॥

यूं मुसकराये जान-सी कलियोंमें पड़ गई।
यूं लबकुशा हुए कि गुलिस्ताँ बना दिया॥

ताक़त कहाँ मुशाहिदए-बेहिजाबकी[9]।
मुझको तो फूंक देगी, तजल्ली[10] नक़ाबकी॥

नक़्शे-क़दम यह है, उसी जाने-बहारके।
इक पंखड़ी पड़ी है लहदपर गुलाबकी॥

मैं इज़्तेराब-शौक़[11] कहूँ या जमाले-दोस्त[12]।
इक बर्क़[13] है जो कौंद रही है नक़ाबमें॥

---

[1]उपयुक्त क़द; [2]सुन्दर मुख; [3]टहनीपर; [4]ताज़ा फूल; [5]स्वर्गका दृश्य; [6]चकाचौंध; [7]तूर पर्वतका वृक्ष जो नूरके तेजसे चमकता हुआ दीख पड़ा था; [8]रूप प्रकाश; [9]पर्देसे बाहर देखनेकी; [10]आभा; [11]उत्कण्ठाकी बेचैनी; [12]प्यारेका रूप; [13]बिजली।

वोह निकहतसे[1] सिवा पिन्हाँ[2], वोह गुलसे भी सिवा उरियाँ[3] ।
यह हम हैं जो कभी पर्दा, कभी जलवा समझते हैं ॥

और सच तो यह है कि उसके रूपका बखान हो भी नहीं सकता—

अगर ख़मोश रहूँ मैं तो तू ही सब कुछ है ।
जो कुछ कहा तो तेरा हुस्न हो गया महदूद ॥

पवित्र प्रेम

'असगर'के दीवानमें एक शेर भी ऐसा नहीं, जिसमें कामुकताकी गन्ध आये । उनके यहाँ पवित्र प्रेम हिलोरें ले रहा है । वे तो प्यास बुझाने-को भी कामुकता (बुलहविसी) समझते हैं । अपने प्यारेकी खोजमें मृग-मरीचिका (मौजे-सराब)में भटकते रहना ही जीवनका सार समझते हैं । दर्शनोकी प्यास बुझी तो फिर प्रेम-पिपासा कहाँ रही ?

मैं बुलहविस[4] नहीं कि बुझाऊँगा तिश्नगी[5] ।
मेरे लिए तो उठती है मौजे सराबकी[6] ॥

अब तो यह तमन्ना है किसीको भी न देखूं ।
सूरत जो दिखा दी है तो ले जाओ नज़र भी ॥

आये थे सभी तरहके जलवे मेरे आगे ।
मैंने मगर ऐ दीदए-हैरां नहीं देखा ॥

हम एक बार जलवए-जानाना देखते ।
फिर काबा देखते न सनमख़ाना देखते ॥

तसलीम[7] मुझको ख़ानए-काबाकी मंज़िलत[8] ।
सब कुछ सही मगर वोह तेरा आस्ता[9] नहीं ॥

---

[1]फूलकी सुगन्धसे; [2]छुपा हुआ; [3]नग्न, प्रकट; [4]कामुक; [5]प्यास; [6]मृगमरीचिकाकी; [7]स्वीकृत; [8]इज्जत, गौरव; [9]चौखट, निवासस्थान ।

हर ज़र्रेमें सहराके बेताब नज़र आई।
लैलीको भी मजनूंने यूँ ख़ाक बसर देखा॥

प्रेममें तो आठो पहर भीगा रहे, तभी जीवनकी सार्थकता है—

ज़हर है थोड़ी-सी भी ग़फ़लत तरीक़े-इश्क़में।
आँख झपकी क़ैसकी और सामने महमिल न था॥

'असगर'की रिन्दी मुलाहिजा हो—

रहा जो होश तो रिन्दी-ओ-मैकशी क्या है।
ज़रा ख़बर जो हुई फिर वोह आगही[1] क्या है॥

उर्दू शाइरीकी परम्पराके अनुसार 'असगर'के यहाँ भी शैख-ओ-जाहिदका जिक्र मिलता है। मगर देखिए कितने सलीके और सौजन्यताके साथ—

न होगा काविशे-बेसुदआका[2] राजदाँ[3] बरसों।
वोह जाहिद जो रहा सरगुश्तए-सूदो-ज़ियाँ[4] बरसों॥

सनमकदेमें तजल्लीकी ताब मुश्किल है।
हरममें शैखको महवे-नमाज रहने दे॥

मन्दिर-मस्जिद

मन्दिरो-मस्जिदोको लेकर समारमें इतना अधिक नर-सहार हुआ। फिर भी धर्मान्धोकी आंखे नही खुलती। ईश्वर और खुदाके नामपर,

---

[1]होश्यारी, वाकिफियत; [2]नि स्वार्थ लगन, स्वार्थहीन कार्य्योका; [3]भेदी; [4]हानि-लाभके झगडेमे भटकनेवाला; भाव यह है कि जाहिद तो हूर-जन्नतकी अभिलाषामे नमाज-रोजेका पावन्द रहा, वह कैसे जानेगा कि नि.स्वार्थ पूजा-उपासना क्या होती है?

उनके बन्दोका हर समय रक्त पीनेको प्रस्तुत रहते हैं। इसके विपरीत 'अमगर'का पवित्र हृदय है कि—

मौजे-नसीमे-सुब्हमें[1], बूए-सनम-कदा[2] भी है।
और भी जान पड़ गई कैफ़ियते-नमाज़में[3]॥

शाइ़राना नसीहते

'अमगर' शाइर है, मौलवी या वाइज़ नही। वे भी भूले-भटकोंको मार्ग सुझाते है। मगर वाइज़की तरह नही कि पथिक खिन्न हो उठे—

फ़ित्ना-सामानियोंकी[4] खू[5] न करे।
मुख़्तसर यह कि आर्ज़ू न करे॥
पहले हस्तीकी है तलाश ज़रूर।
फिर जो गुम हो तो जुस्तजू न करे॥
मावराए-सुख़न[6] भी है कुछ बात।
बात यह है कि गुफ़्तगू न करे॥

तर्के-मुद्आ[7] करदे ऐने-मुद्आ[8] हो जा।
शाने-अ़ब्द[9] पैदाकर मज़हरे-ख़ुदा[10] हो जा॥
उसकी राहमें मिटकर, बे-नियाज़ ख़िलक़त[11] बन।
हुस्नपर फ़िदा होकर हुस्नकी अदा हो जा॥
तू है जब पयाम[12] उसका फिर पयाम क्या तेरा।
तू है जब सदा[13] उसकी, आप बेसदा हो जा॥

---

[1]प्रातःकालीन मृदु पवनमे; [2]मन्दिरोंकी सुगन्ध भरी हवा होनेसे; [3]नमाज़ पढ़नेमे और भी आनन्द आने लगा; [4]फ़साद पैदा करनेकी, (सांसारिक वस्तुओंकी); [5]टेव, आदत (इच्छा); [6]वाणीके अतिरिक्त; [7]अभिलाषाओंका त्याग; [8]इच्छा रहित, निर्मल; [9]आत्मसमर्पण करके उसके सेवक बननेका गौरव प्राप्त कर; [10]ईश्वरके प्रकट होनेका स्थान; [11]संसारसे उदासीन; [12]सन्देश; [13]आवाज़।

आदमी नहीं सुनता आदमीकी बातोंको ।
पैकरे-अमल बनकर ग़ैबकी सदा हो जा ।।

यह मुझसे सुन ले तू राज़े-पिन्हाँ[1] सलामती खुद है दुश्मने-जाँ[2] ।
कहाँसे रहरवमें[3] ज़िन्दगी हो कि राह जब पुरख़तर नहीं है[4] ।।

तलब कैसी[5] ? कहाँका सूदो-हासिल कैफ़े-मस्तीमें[6] ।
दुआतक भूल जाते, मुद्दआ[7] इतना हसीं होता ।।

चला जाता हूँ हँसता खेलता मौजे-हवादिससे[8] ।
अगर आसानियाँ हों, ज़िन्दगी दुश्वार हो जाये ।।

'असगर' भी युवकोंको कुछ कर गुजरनेकी प्रेरणा देते हैं, परन्तु कितने कोमल और मधुर ढगसे कि नसीहतका आभासतक नहीं मिलता। वे 'हाली'की तरह वाइज बनकर यह नहीं कहते——

कुछ कर लो नौजवानो उठती जवानियाँ है ।

बल्कि रिन्दाना एक लतीफ़ इशारा भर करके रह जाते हैं ।

खूब जी भरके उठा ले जोशे-वहशतके[9] मज़े ।
फिर कहाँ यह दश्त[10], यह नाक़ा[11] कहाँ, महमिल[12] कहाँ ?

---

[1]छिपा हुआ भेद; [2]सुख-चैन ही आत्माके शत्रु है; [3]यात्रीमें जीवनका ओज कहाँसे आये; [4]जब मार्ग ही भयानक एव कण्टकाकीर्ण नही है, भाव यह है कि सघर्षमे ही जिन्दगी है; [5]अभिलाषाओंका जिक्र क्या; [6]आत्म-लीनतामे हानि-लाभका लेखा-जोखा क्यो, [7]सुरुचि-पूर्ण उपासनाका ध्येय पवित्र हो तो दुआके लिए हाथ उठानेकी भी याद न रहे; [8]आपदाओसे; [9]दीवानगीके उभारके; [10]बियाबान; [11]ऊँटनी; [12]पर्देदार घेरा जो ऊँटकी पीठपर बँधा रहता है, (लैलाका महमिल)।

रोना-बिसूरना

'असगर' इश्कमें रोना-बिसूरना तो खिलाफ़ेशान समझते ही हैं, बल्कि आपका विश्वास है कि सुखके साथ यदि दुःख न रहे तो जिन्दगी बेमजा हो जाय—

सहबाए-खुशगवार[1] भी या रब! कभी-कभी।
इतना तो हो कि तलखिए-ग़म[2] बेमजा न हो॥

चुना हुआ कलाम

हमारे सामने 'असगर' साहबके निम्न दो ग्रन्थ हैं—

१—**निशाते-रूह**—इसमें कुल ६३ गजलें हैं।

२—**सरोदे जिन्दगी**—इसमें कुल ४८ गजलें हैं।

इन्हीं दोनों ग्रंथोंसे असगरके सरल शेर चुनकर दिये जा रहे हैं—

सारे आलममें किया तुझको तलाश।
तू ही बतला है रगे गर्दन[3] कहाँ?
खूब था सहरा, पर ऐ जौके-जुनूं!
फाड़नेको नित नये दामन कहाँ?

वोह लज्जते-सितमका जो खूगर[4] समझ गये।
अब जुल्म मुझपै है कि सितम गाह-गाहका[5]॥
शीशेमें मौजे मैको यह क्या देखते हैं आप।
इसमें जवाब है उसी बर्क़े-निगाहका॥

मेरी वहशतपै बहस-आराइया अच्छी नहीं नासेह!
बहुत-से बाँध रक्खे हैं गरेबाँ मैंने दामनमें॥
इलाही कौन समझे मेरी आशुफ्ता मिजाजीको[6]।
क़फ़समें चैन आता है, न राहत है नशेमनमें॥

---

[1]सुख-चैन-सुरा; [2]दुखको कड़वाहटें, [3]कुरानमें ऐसी आयत है कि खुदा हर रग-गर्दनके नजदीक है, [4]अभ्यस्त, [5]कभी-कभी; [6]अस्थिर स्वभावको।

खिलते ही फूल बाग़मे पज़मुर्दा[1] हो चले।
जुम्बिश रगे-बहारमे मौजे-फ़नाकी है॥

बुलबुलो-गुलमे जो गुज़री हमको उससे क्या ग़रज़।
हम तो गुलशनमे फ़क़त, रगेचमन देखा किये॥

जानते हैं वोह अदाएँ इस दिले-बेताबको।
उनसे बढ़कर कौन होगा, नुक़तादाने-इज़्तराब[2]॥

नासेहे मुश्फ़िक़[3]! मगर यूँ ही तड़पने दे मुझे।
मुझको भी मालूम है, सूदो-ज़ियाने-इज़्तराब[4]॥

तुम बा-ख़बर हो, चाहनेवालोंके हालसे।
सबकी नज़रका राज़ तुम्हारी नज़रमे है॥
मुझको जलाके गुलशने-हस्ती न फूँक दे।
वोह आग जो दबी हुई मुझ मुश्ते-परमें है॥

'असग़र' हरीमे इश्क़में[5], हस्ती[6] ही जुर्म है।
रखना कभी न पाँव, यहाँ सर लिये हुए॥

मरते-मरते न कभी आक़िलो-फ़रज़ाना बने।
होश रखता हो जो इन्सान तो दीवाना बने॥
परतवे-रुख़के करिश्मे थे सरे-राह गुज़र।
ज़र्रे जो ख़ाकसे उट्ठे, वोह सनमख़ाना बने॥
कारफ़र्मा है फ़क़त हुस्नका नैरंगे-कमाल।
चाहे वोह शमअ़ बने, चाहे वोह परवाना बने॥

---

[1]कुम्हलाने लगे ; [2]बेचैनीको समझनेवाला ; [3]हितैषी उपदेशक महाराज ; [4]बेचैनीका हानि-लाभ ; [5]प्रेममन्दिरमें ; [6]अहमन्यता, अपने व्यक्तित्वका भान।

ऐसा कि बुतकदेका जिसे राज़[1] हो सुपुर्द।
अहले-हरममें[2] कोई न आया नज़र मुझे॥

वो नहीं रहता कभी पर्देमे राज़े-आशिक़ी[3]।
तुमने छिपकर और भी उसको नुमायाँ[4] कर दिया॥

सरगर्मे-तजल्ली[5] हो, ऐ जलवए-जानाना[6]!
उड़ जाये धुआँ बनकर, काबा हो कि बुतख़ाना।

अबतक नहीं देखा है, क्या उस रुख़े ख़न्दाँको[7]।
इक-तारे शुआईसे[8] उलझा है जो परवाना॥

माना कि बहुत कुछ है, यह गर्मिए-हुस्ने-शमअ।
इससे भी ज़ियादा है, सोज़े-ग़मे-परवाना॥

ज़ाहिदको तअज्जुब है, सूफ़ीको तहय्युर[9] है।
सद-रश्के-तरीक़त[10] है, इक लग़ज़िशे-मस्ताना[11]॥

राज़की[12] जुस्तजूमें[13] मरता हूँ।
और मैं ख़ुद हूँ एक पर्दए-राज़॥

वोह शोख़ियोंसे जलवा दिखाकर तो चल दिये।
उनकी ख़बरको जाऊँ कि अपनी ख़बरको मैं॥

होता है राज़े-इश्क़ो-मुहब्बत उन्हींसे फ़ाश[14]!
आँखे ज़बाँ नहीं है, मगर बेज़बाँ नहीं॥

पीरीमें अक़्ल आई तो समझे कि ख़ूब थी।
डूबी हुई निशातमें[15], ग़फ़लत शबाबकी[16]॥

---

[1]भेद, ज्ञान ; [2]नमाजियोमे ; [3]इश्कका भेद ; [4]उजागर ; [5]रूप दिखानेको तत्पर ; [6]प्यारेका जल्वा ; [7]हँसमुख मुखड़ेको ; [8]मोमबत्तीकी एक लौसे ; [9]हैरत ; [10]जागरूकता ईर्ष्यालु है ; [11]मस्ती भरी लगज़िशपर ; [12]गुप्त, भेद (जाननेकी) ; [13]खोजमे, (इच्छामें) ; [14]प्रकट ; [15]सुख-चैनमे ; [16]यौवनकी।

न पूछो मुझपै क्या गुज़री है मेरी मश्क़े-हसरतसे।
क़फ़सके सामने रक्खा रहा है, आशियाँ बरसों॥

यह इश्क़ने देखा है, यह अक़्लसे पिनहाँ है।
क़तरेमें समन्दर है, ज़र्रेमें बयाबाँ है॥
धोका है यह नज़रोंका, बाज़ीचा है लज्जतका।
जो कुंजे-क़फ़समें था, वोह अस्ल गुलिस्ताँ है॥

—निशातरूह

समा गये मेरी नज़रोंमें छा गये दिलपर।
ख़याल करता हूँ, उनको कि देखता हूँ मैं॥
न कोई नाम है मेरा न कोई सूरत है।
कुछ इस तरह हमातन-दीद[1] हो गया हूँ मैं॥
न कामयाब हुआ और न रह गया महरूम[2]।
बड़ा ग़ज़ब है कि मंज़िलपै खो गया हूँ मैं॥

खीरगीए-नज़रके साथ, होशका भी पता नहीं।
और भी दूर हो गये, आके तेरे हुज़ूरमें॥
तेरी हज़ार बरतरी, तेरी हज़ार मस्लहत।
मेरी हरइक शिकस्तमें मेरे हरइक क़ुसूरमें॥

बस इतनेपर हुआ हंगामए-दारोरसन[3] बरपा।
कि ले आग़ोशमें[4] आईना क्यों महरे-दरख़्शाँको॥
सुना है हश्रमें शानेकरम बेताब निकलेगी।
लगा रक्खा है सीनेसे मताअे-ज़ौके-इस्याको[5]॥

कहके कुछ लाला-ओ-गुल रख लिया पर्दा मैंने।
मुझसे देखा न गया, हुस्नका रुसवा[6] होना॥

---

[1]देखनेमें लीन; [2]उपेक्षित, असफल; [3]सूली चढ़नेका झगड़ा;
[4]पहलूमें; [5]गुनाहकी शौकरूपी दौलतको; [6]बदनाम।

हश्र है ज़ाहिद ! यहाँ हर चीज़का है फ़ैसला ।
ला कोई हुस्ने अ़मल, मेरी ख़ताके सामने ॥

चमनमें छेड़ती है किस मज़ेसे गुंच-ओ-गुलको ।
मगर मौजे-सबाकी पाकदामानी नहीं जाती ॥

कभी हैं महवेदीद[1] ऐसे, समझ बाक़ी नहीं रहती ।
कभी दीदारसे महरूम[2] हैं इतना समझते हैं ॥
यही थोड़ी-सी मै है और यही छोटा-सा पैमाना ।
इसीसे रिन्द राज़े-गुम्बदे-मीना समझते हैं ॥
कभी तो जुस्तजू जलवेको भी पर्दा बताती है ।
कभी हम शौक़में पर्देको भी जलवा समझते हैं ॥
यह ज़ौक़े दीदको शोख़ी, वोह अ़क्सेरँगे-महबूबी ।
न जलवा है न पर्दा, हम उसे तनहा समझते हैं ॥

सनमख़ानेमें क्या देखा कि जाकर खो गया 'असग़र' !
हरममें काश रह जाता तो ज़ालिम शैख़े-दीं होता ॥

तुम उस काफ़िरका ज़ौक़े-बन्दगी, अब पूछते क्या हो ?
जिसे ताक़े-हरम भी अबरु-ए-ख़मदार हो जाये ॥

हुस्नको वुस्अ़तें जो दीं, इश्क़को हौसला दिया ।
जो न मिले, न मिट सके, वोह मुझे मुद्दआ़ दिया ॥

महो-अंजुममें भी अन्दाज़ हैं पैमानोंके ।
शबको दर बन्द नहीं होते हैं मैख़ानोंके ॥

---

[1]देखनेमें लीन; [2]वंचित, रहित ।

बुझ गई कल जो सरे-बज़्म वही शमअ न थी।
शमअ तो आज भी सीनेमें है परवानोंके॥

जिसपें बुतख़ाना तसद्दुक, जिसपें काबा भी निसार।
एक सूरत ऐसी भी सुनते हैं, बुतख़ानेमें है॥

—सरूदे-ज़िन्दगी

१८ जून १९५३]

द्वितीय संस्करणके लिए

हज़रत असग़र गोण्डवीने किशोरावस्थामें उर्दू-फ़ारसीकी शिक्षा व्यवस्थित रूपमें प्राप्त नहीं की। अंग्रेजी स्कूलमें बिठाये गये तो वहाँ भी आठवीं कक्षा पास न कर सके। पास भी कैसे करते? बक़ौल किसीके—

मेरा मिज़ाज लड़कपनसे आशिक़ाना था

जवानी आई तो उन्हें बहाके ले गई। दरियाए-ऐशो-मस्तीमें उनका बाल-बाल डूब गया। मगर जिसकी किस्मतमें उबरना होता है, वह भवरों और लहरोंसे खेलता हुआ, मगरमच्छों और घड़ियालोंसे उलझता हुआ भी किनारे लग ही जाता है।

असग़र कुछ इस शानसे किनारे लगे कि उन्हें देखकर किसीको आभास भी न होता था कि उन्होंने भी कभी पाँव भिगोया होगा। किनारे लगनेपर उन्होंने अपना गुनाह-आलूदा दामन इस ख़ूबीसे निचोड़कर पाक साफ़ कर लिया था कि फ़रिश्ते वज़ू करने और हूरें नमाज पढ़नेकी लालसा रखें—

दामन निचोड़ दे तो फ़रिश्ते वज़ू करे

—दर्द

नमाज़ें पढ़ती हैं हूरें, हमेशा जिसके दामनपर

—ज़ौक़

असगर साहब जब बाल-बाल डूबे हुए थे और मौजोंके थपेडे खाते हुए ग़ोतेपर गोते खा रहे थे, तब उन्हे एक ऐसे नाखुदा (नाविक)की जरूरत महसूस हुई जो उन्हे डूबनेसे उबार सके। सयोगकी बात कि उन्हे ऐसी स्थितिमे क़ाज़ी अब्दुलगनी साहब जैसे पीरे-मुर्शिदका सहारा मिल गया। उन्हीकी अनुकम्पासे असगर पार हो सके।

मैं समझता था मुझे उनकी तलब है 'असग़र' !
क्या ख़बर थी वही ले लेंगे सरापा मुझको॥

पीरे-मुर्शिदके बताये मार्गपर चलनेसे, उनके चरणोमे बैठनेसे असगरमे जो अभूतपूर्व परिवर्त्तन हुआ, उसका इजहार इस शेरमे किया है—

अब वह ज़मीं, न वह मकाँ, अब वह ज़मीं न आस्माँ।
तुमने जहाँ बदल दिया आके मेरी निगाहमें॥

योग्य पथ-प्रदर्शक मिलनेपर असगर स्वय तो सदाचार-डगरपर चलकर अपने लक्ष्यतक पहुँचे ही ; मार्गमे जो भूले-भटके मिलने गये, उन्हे भी राहपर लगाते गये। आपका जीवन फिर इतना स्वच्छ, पवित्र और अनुकरणीय रहा कि न फिर आपने अपने दामनमे कोई दाग लगने दिया और न अपने शाइराना कलाममे एक शेर ही ऐसा कहा जो सभ्यता, शील, सदाचारकी दृष्टिसे हल्का हो।

जीवन-डोरी सद्गुरुद्वारा पकड लिये जानेपर असगरने उर्दू-फ़ारसी-साहित्य-सागरमे बहुत गहरी डुबकी लगाई और वहासे अनमोल जवाहरात निकाल लानेमे पूर्णरूपेण सफल हुए। अँग्रेजीका भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

आपकी शाइराना-अज़मत और साहित्यिक-प्रतिभाका उल्लेख करने से पूर्व कुछ नैतिकताके उदाहरण दिये जा रहे है।

आपके सस्मरण-लेखक हजरत सगीर अहमद सिद्दीक़ी साहब लिखते है—

१. "असग़र रेलवे इंजीनीयरिंगके दफ़्तरमें मुलाजिम थे। एक ठेकेदारने नजराना दिया। इनको लेनेमें तकल्लुफ़ हुआ। एहबाब (इष्ट-मित्रो) ने मशवरा दिया कि 'ले लीजिए यह रिशवत नही, बल्कि नजराना है।' मगर जरूरतमन्द होनेके बावजूद आपकी तबीअतने गवारा न किया और वह रुपया वापिस कर दिया।"

२. नज्मो-नस्र (पद्य-गद्य) पर आपकी यकसाँ क़ुदरत (अधिकार) देखकर बाज अख़बारात-ओ-रिसाइल (पत्र-पत्रिकायें) आपकी ख़िदमत हासिल करना चाहते थे। मगर आप इस ख़ौफसे इनकार कर दिया करते कि इख़्तियाराते कुल्ली (पूर्ण अधिकार) न होनेके सबब ज़मीर-फरोशी करनी (आत्मा बेचनी) पडेगी।

३. इण्डियन-प्रेसके जिस शोअबह (विभाग) में मुलाज़िम थे। उसमें तखफीफ (कमी) की जाने लगी तो चूंकि प्रेसके मालिक आपके कामसे खुश थे। आपकी बजाय उन साहबको बरतरफ करना चाहते थे, जो आपसे पहिलेके मुलाज़िम थे। आप रज़ामन्द न हुए और कहा कि बरतरफ (अलहदा) कीजिए तो पहले मुझको, क्योंकि मैं बादमें इस शोअबे (विभाग) में आया हूँ। मजबूरन प्रेसको दोनोंही साहबानको रखना पड़ा।

४. असगर साहब रिसाला हिन्दुस्तानीकी इदारत (हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद-द्वारा प्रकाशित 'हिन्दुस्तानी' पत्रके उर्दू-विभागके सम्पादक) के उम्मीदवार थे। मामला सिर्फ इसपर ठहरा था कि आप अंगरेज़ी भी जानते हैं या नहीं। अंगरेज़ीकी बाकायदा तालीम तो हासिल नही की थी। कैसे हाँ कह देते? इनकार करके चले आये। बादमें एहबाबने इसरार (इष्टमित्रोंने आग्रह) करके सर तेजबहादुर सप्रू सदर इन्तखाबिया कमेटी (अध्यक्ष निर्वाचित समिति) के पास सर शाह मुहम्मद सुलेमान मरहूमका खत भेजा, जिसमें उन्होंने अपनी एक अँगरेज़ी किताब-का उर्दूमें तर्जुमा (अनुवाद) करनेपर असग़रको यूँ दाद दी थी—'अगर मैं भी तर्जुमा करता तो इससे बेहतर न हो सकता'—मुलाज़मत मिल गई।

मगर उसको हासिल करनेके लिए मौलाना (असगर) कोई ऐसा इद्दआ (दावा) कैसे कर बैठते, जिसकी इजाजत उनका जमीर (अन्तर-आत्मा) न देता हो।

५. असगर कमगो (बहुत कम बोलते) थे। गजलगो शोअरामें शायद उनकी वाहिद (अकेली) मिसाल है कि जो सोचते थे और महसूस करते थे ; वही और उतना ही कहते थे। महज काफिये-रदीफके मुतालबो-से मजबूर होकर या मश्कोमजावेलन (निरन्तर अभ्यास और मश्क)के जोरमें आकर कभी कुछ न कहते थे। यही वजह है कि उनके कलामसे उनका फलसफये-जिन्दगी वा-आगानी अखज किया जा सकता है।..... उनके कलामके मखसूस मौजू (निश्चित विषय) और मजामीनकी बुनियादी हमरगी (लेखोकी प्रायः अपरिवर्तनीय शैली) पर एक साहबने कहा कि—'मौलाना आपके यहाँ तनौवोअ नही, बल्कि एक ही किस्मकी चीजे मिलती है।' जवाब मिला—'तो इसमें बुरा ही क्या है ? जबतक वह चीज मेयायार (स्टेण्डर्ड, आदर्श) के मुताबिक मिलती है, मेरी दूकान एक ही नौअका सामान बहम पहुँचाती है, और जबतक वह सामान मअयारी (स्टेण्डर्डके अनकूल) है। दूकानकी साख (प्रतिष्ठा) बढनी चाहिए। हाँ, अलबत्ता मे मजामीन (निबन्धों)का कबाड़िया नही हूं, जिसकी दूकानपर भाँति-भाँतिकी अच्छी-बुरी ब-कसरत किस्म (अनेक तरह)की अशिया (चीजे) मिलती है।

६. शाइरी पेशेके तौरपर न करते थे और न शाइरकी हैसियतमे अपनेको पेश करना पसन्द करते थे। मुशाअरोमें शिर्कत करनेसे गुरेज (शरीक होनेसे परहेज) करते थे। और अगर कभी शिर्कत करते भी थे तो मुआवजा (पारिश्रमिक) लेना अपनी शाइराना वकअतो-शान (प्रतिष्ठा और गौरव)के मनाफ़ी (विरुद्ध) समझते थे।..... १९३३ ई० का मुस्लिम होस्टलका सालाना मुशाअरा था। मौलानाको मैंने तरह बहम पहुँचाई और उन्होने गजल भी कही। एहबाब (इष्टमित्रो) को यकीन

था कि मेरी वसातत (जरिये) से असगर साहबकी मुशाअरेमें शिरकत (उपस्थिति) जरूर हो जायगी। मगर जब वक्त आया और मैंने कहा कि चलिए, तो असगर साहबने साफ इन्कार कर दिया और ऐसे मजीदा अन्दाज (गम्भीर भाव) से कि जिसमें शाइराना तकल्लुफका शाएबा (अश, सन्देह) न था। मैं इस इन्कार पर बहुत मुतहैयर (हक्का-बक्का, हैरान) हुआ। फिर मैंने कहा कि—गजल आपने क्यों कही तो बोले 'भई यह कुसूर गजलका है मेरा नहीं। गजल लेते जाओ, इसे किसीसे पढवा देना।' मैंने वापिस आकर एहबाबको जो खबर दी कि असगर साहब नहीं आ रहे हैं तो लोगोंको बडी मायूसी हुई और मुझे ताने दिये गये कि बस रह गई सुबहो-शामकी हाजिरी, अपना-सा मुँह लेकर चले आये।' मैं वापिस हुआ और मौलाना-की नशिस्तगाह (बैठक) में पहुँकर शेरवानी खूटीपर टाँगी और कुछ इस अन्दाजसे बैठा कि मौलानाको पूछना पडा कि क्या इरादा है ? मैंने निहायत मजीदगीसे जवाब दिया कि "दो-तीन दिन बाद जब इस मुशाइरेकी याद और वह सुबकी (जिल्लत, छीछालेदारी) जो इस सिल्सिलेमें मेरी हो रही है, लोगोंको फरामोश (विस्मरण) हो जायगी, तब मैं होस्टलमें वापिस जाऊँगा तब तक खिदमते आलीमें हाजिर रहूँगा।" असगरसाहब बा-दिले नाख्वास्ता (अनिच्छापूर्वक) चलनेको तैयार हो गये। महफिलमें आकर डाएसके पीछे एक बेंचपर बेपरवाहीसे बैठ गये। जब उनकी बारी आई, गजल जनाब हफीज जालन्धरीको पकडा दी। उन्होंने डाएस पर खडे होकर मतला पढा—

वह नग्मा बुलबुले-रंगीं नवा इकबार हो जाए।
कलीकी आँख खुल जाए, चमन बेदार हो जाए।।

इक शोरे-तहसीन-ओ-आफरी (साधुवाद और वाह-वाका) महफिलसे जो बुलन्द हुआ तो हफीज साहबने उस दादको जो उन्हें मुखातिब करके दी जा रही थी, दोनों हाथोंसे समेटकर असगर साहबकी तरफ फेंकना

शुरू किया। फिर क्या था लोगोका इसरार बढ़ा और सदर मुशाइरा सर तेजबहादुर सप्रू ने भी दरख़्वास्त की कि असगर साहब डाएसपर तशरीफ़ लाये। कशाँ-कशाँ लाये गये। बहुत ख़ामोशी और वकारसे चेहरेपर एक ख़फ़ीफ़-सा हलका-सा तबस्सुम लिये बैठे रहे। वे शाइराना अदायें कि 'यह शेर मुलाहिज़ा कीजिएगा, ज़रा गौर कीजिएगा, यह शेर शायद किसी काबिल हो' उनमे कहाँ ? मुरस्सा गज़ल थी। हर शेर पर महफ़िल झूम जाती थी। यह कभी-कभी तस्लीम कर लेते-मगर दाद-तलब अन्दाज़से नही।

असग़र साहबकी सुहबतमे हिन्दू भी शरीक होते थे और मुसलमान भी। सबको उनकी हमनवाईपर नाज़ था। अपने एहबाबसे बहुत खुलूसो-मुहब्बतसे पेश आते थे। सुहबतें बहुत दिलचस्प और मुफीद होती थी। मौज़ूआते-गुफ्तगू मजीदा होते। मज़हब, फलसफा शेरो-अदब सभीपर खयाल आराई होती। असगर मरहूम ख़ुश मज़ाक़ीको कभी हाथसे न जाने देते। तबीअत बज़ला सज (लतीफ़ोंसे भरी हुई) व हाजिर जवाब पाई थी और गुफ्तगूका अन्दाज़ बहुत दिलनशीं था। ख़ुद हँसते और दूसरोको भी हँसाते। उनकी सुहबतोंकी फ़िज़ा बहुत शगुफ्ता और पुरसकून होती और कोई बेक़ैफ़ न होने पाता।

उनके एहबाबने उनको कभी मायूस (निराश) परेशान, मलूल या अफ़सुर्दा (रंजीदा या कुम्हलाया हुआ) नही पाया। हरहालमे आसूदा, मुत्मईन और शगुफ़्ता (आर्थिक चिन्तासे मुक्त, सन्तोषी और मुसकराते हुए) रहते थे। यही नही उनकी तमानियत, आसूदगी और सकून (निराकुलता, ख़ुशहाली और चैन) उनके हमनशींनों (पास उठने बैठनेवालों)में भी मुन्तक़िल (परिवर्त्तित) हो जाता। आप किसी उलझन या परेशानीमें हुए, असग़र साहबके पास थोडी देर बैठकर चले आये तो दिलो-दिमाग़की फ़िज़ा बदल गई। हैरत तो इस पर है कि बावजूद इसके कि वह ख़ुशहाल न थे, किसीने उनको तंगदस्त न पाया।

आखिर जमानेमें प० श्री नारायण मिश्रा जो उस वक्त यूनीवर्सिटीमें अंगरेज़ीके लैक्चरर थे, उनके बहुत करीब आ गये थे। मैंने महसूस किया कि दोनो एक जान दो कालिब (एक आत्मा और दो शरीर) हैं। पण्डितजी अदब और फ़लसफेके आलिम मुतबह्हर (विशेषज्ञ) हैं और शेरो-सुखनका बहुत मजीदा और बुलन्द मजाक रखते हैं। मेरा खयाल है कि असग़र साहबके नजरियए-शेरो-अदब (शाइरी और साहित्य) पर पण्डितजीके खयालातका भी असर पडा है।

असगर मरहूम जब फालिज (लकवे) के मर्जमें मुब्तिला (ग्रसित) हुए तो उनकी देख-भाल और तीमारदारीकी गरजसे पण्डितजी उनको शहरके मकानमें मुन्तकिल कराके अपने करीब यूनिवर्सिटीके पड़ोसमें ले आये। ..... २९ नवम्बर १९३६ ई०की शब (रात) में जब फ़ालिजका आखिरी दौरा पडा तो पण्डितजी बुलाये गये। उन्होंने असग़र साहबको बेहोश पाया। पुकारा तो आँख खोली, मुसकराये और फिर हमेशाके लिए आंख बन्द करली। सुबहको मुझे जब इन्तकालकी खबर मिली तो मैंने जाकर देखा। उस आखिरी तबस्सुमकी झलक चेहरेपर बाकी थी। मअन् उनका यह शेर याद आ गया—

काएनाते, दह्र क्या, रूह-उल-अमीं बेहोश थे।
जिन्दगी जब मुसकराई है क़ज़ाके सामने[1]॥

[मृत्युके आगमनपर ज़िन्दगीने उसका हँसकर स्वागत किया तो साधारण संसारी जीवोंका तो खैर ज़िक्र ही क्या, जिबरील-जैसा फ़रिश्ता भी बेहोश हो गया]

असग़रकी शाइरी

"उन्हें मैंने हर हालमें देखा और हमेशा असग़र साहब ही पाया।

---

[1]नकूश शख्सियात नम्बर अक्तूबर १९५६ पृ० १४८४-८७।

यह महज इत्तफाक था कि वे शाइर भी थे। शाइर न होते तब भी उनके शर्फ या शोहरतमें फर्क न आता।"

रशीद अहमद साहब सिद्दीकी-द्वारा लिखित उक्त उद्धरण देते हुए ख्वाजा अहमद साहब फ़ारूक़ी लिखते हैं—"असग़रकी जिन्दगी बडी साफ़ सुथरी, पाक बाजाना और वजअदारांना थी। वे जिन्दगीके हर नशेब-ओ-फ़राजसे गुजरे थे, और हर क़िस्मकी सुहबते देखी थी।"

लेकिन तहजीब, खुलूस और खुद्दारी (सभ्यता सद्व्यवहार और स्वाभिमान) का दामन कभी हाथसे नहीं जाने दिया।.....असगर साहबकी आमदनी बहुत कम थी। लेकिन उनको कभी तगदस्तीका शाकी (आर्थिक चिन्ताका रोना रोते) नहीं पाया। बडा खर्च था। बहुत अच्छा पहनते थे। उससे अच्छा खाते थे। अपनी हैसियतसे ज्यादा मुदारात (खातिर तवाजा, आव-भगत) करते थे। उनसे दसगुनी आमदनीवालोंको भी उन जैसा रख-रखाव रखनेवाला मैंने नहीं पाया।

यही रख रखाव असगरकी शाइरीमें भी है। जिस तरह उनकी गुफ्तगू, वजअ, लिबास, मुआशरत (रहन-सहन) में जौक और सलीक़ा (सुरुचि और कलापूर्ण ढग) कारफर्मा (निहित) है। ऐसे ही उनका आर्ट भी बहुत रचा हुआ और बडी रियाजत (निरन्तरके अभ्यास) का नतीजा है। बकौल 'सुरूर'—"ढाकेकी मलमल और लखनऊकी जामदानीकी तरह बडा शरीफ आर्ट है, जो अपने दामनपर जरा-सी गर्दका धब्बा गवारा नहीं कर सकता। असगरकी शाइरी उनकी जिन्दगीका आईना है, और जिस तरह उनकी जिन्दगी आलामअयार (उच्च आदर्श) की थी। ऐसे ही उनके कलाममें एक शेर भी ऐसा नहीं मिलता जो मअयारे-तहजीब (सभ्यता) से गिरा हुआ हो।"[१]

असगर साहब दुनियाए-शाइरीमें अपनी प्रौढ़ावस्थामें तब आये, जब

---

[१] क्लासीकी अदब पृ० २३७-३८।

उनका शाइराना अभ्यास परिपक्व हो चुका था। ३५-४० वर्षकी अवस्था तक लिखा हुआ कलाम आपने प्रकाशित नहीं कराया। अत यौवनावस्थामें आपकी रुचि कैसी थी और प्रारम्भिक कलाम किस दर्जेका था? किसीको मालूम नहीं। हालाँकि ऐतिहासिक दृष्टिसे यौवनावस्थामें कहे गये कलामका बहुत अधिक महत्व होता। आपके युवकोचित इश्को-मुहब्बतका वह दर्पण होता।

प्रौढावस्थामें हृदय-सागरमें डुबकी मारकर जो मुक्ता निकालकर आप लाये, उनमें-से भी कुछ मुक्ता हजरत सुहेल आजमगढीने निकाल दिये। केवल वही रहने दिये जो अपनी आबो-ताबसे लोगोंके मनको लुभा सकें।[1] यही कारण है कि आपके कलामके दोनों सकलन—निशातेरूह और मरोदे-जिन्दगी—प्रारम्भमें अन्ततक स्वच्छ और अनमोल मोतियोंके पिटारे मालूम होते है।

परन्तु केवल मोतियोंकी चमक-दमकसे लोगोंकी तृप्ति नहीं होती। उनकी भूख कुछ और भी चाहती है। मिठाईके साथ नमकीन न हो तो जी ऊब जाता है। उसी तरह असग़र साहबका बुलन्द और पाकीजा कलाम पढते-पढते मन थक-सा जाता है। बकौल ख्वाजा अहमद फारूकी—

"असगरकी शाइरी एक ऐसा जामे-शराब (मदिरापात्र) है, जिसको साकीने हमारी नजरोंसे पोशीदा, मालूम नहीं अन्दाजे-तबस्सुम (मुसकान)

---

[1] अभीतक किसी आलोचकको यह मालूम न था कि असग़रके कलाममें भी किसीने काट-छाँट करनेका साहस किया होगा। मगर कबीर अहमद साहब जायसीने सितम्बर १९५७ ई०के 'निगार'में 'निशातेरूह' और 'सुहेल' शीर्षकसे जो लेख प्रकाशित कराया है, उसमें हजरत असग़रकी हस्तलिखित प्रति 'निशातेरूह'के आधारपर यह प्रमाणित किया है कि असग़र साहबकी गजलोंसे उन्होंने इतने शेर काट दिये, जो मुद्रित प्रतिमें नहीं मिलते हैं।

के साथ, या आवरू-कशीदा लरजा-बरअन्दाम कैफ़ियत (भृकुटी चढ़ाकर, क्रोधावेश) मे, या निगाहे-बेतअल्लुक (उपेक्षाभाव) से भरकर महफ़िलमे रख दिया हो।"[1]

असगर साहबके कलामसे परिपक्वावस्थाके वही महानुभाव आनन्द-रस ले सकते हैं, जिनकी रुचि परिष्कृत एव सम्पन्न हो चुकी है और जो निम्नस्तरकी शाइरीसे ऊब चुके है।

असग़रके चन्द शेर

यहाँ हम असगर साहबके कुछ महत्वपूर्ण शेर और दे रहे हैं—

अल्लाहरे दीवानगिए-शौक़का आ़लम।
इक रक़्समे हर ज़र्रे-ए-सहरा नज़र आया॥

[आशिकका अपने महबूबकी चाहत (दीवानगीए शौक) मे यह आलम है कि उसे अणु-अणु (ज़र्रे-ज़र्रे) मे विश्व (सेहरा) यानी अपने महबूबकी झलक मालूम होती है]

ग़ुस्सेकी हालतमे माशूकका तमतमाया चेहरा कभी-कभी बहुत खूबसूरत मालूम देता है। इसी दृश्यसे प्रभावित होकर सम्भवतः अमीर मीनाईने यह शेर कहा होगा—

उनको आता है प्यार पर ग़ुस्सा।
हमको ग़ुस्से पै प्यार आता है॥

ग़ुस्सेपर प्यार क्यों आता है, शाइरने प्रकट नही किया। केवल स्वानुभव व्यक्त कर दिया। प्यार आनेकी वजह असग़रसे मालूम कीजिए—

उठ्ठे अ़जब अन्दाज़से वह जोशे-ग़ज़बमे।
चढ़ता हुआ इक हुस्नका दरिया नज़र आया॥

---

[1] क्लासीकी अदब पृ० २३६।

[हबीबके गुस्सेकी हालतमें सांस फूलने और गजबनाक होकर उठनेके दृश्यको जिन भाग्यवानोंने देखा है, वही इस चढ़ते हुए हुस्नके दरियाका आनन्द उठा सकते हैं। मुझे तो जब भी समुद्रका गजबनाक उफान देखनेका अवसर मिला है। उक्त शेर तुरन्त याद आया है]

रूदादे-चमन सुनता हूँ इस तरह क़फ़समे।
जैसे कभी आँखोंसे गुलिस्ताँ नहीं देखा॥

हजरत असर लखनवी लिखते हैं—"इस शेरकी तारीफ बस इस कद्र काफी है कि गालिबके इस शेरका जवाब, बल्कि उससे भी बेहतर है—

क़फ़समें मुझसे रूदादे-चमन कहते न डर हमदम!
गिरी है जिसपै कल बिजली, वह मेरा आशियाँ क्यों हो?

क्योंकि इससे कायल (बात करनेवाले) ने चमन और नशेमनकी मुहब्बत और उनसे तग़ल्लुकका इजहार कर दिया। हमदम (मित्र) को यूँही पसोपेश है। यह सुनके—

गिरी है जिसपै कल बिजली वह मेरा आशियाँ क्यों हो?

या तो मजीद (अधिक, विस्तारपूर्वक) बयान करनेसे वह बाज (चुप) रहेगा या उन आफात (आफतों) को नरम करके दोहरायेगा। लिहाजा लुत्फे-दास्तान (बात सुननेका आनन्द) कम हो जायेगा या बिलकुल जाइल (नष्ट) हो जायेगा। हजरत असगरने जाहिरी वेतग़ल्लुकी दिखाई है। गोया उन्हें चमनमें कोई वास्ता, कोई दिलचस्पी नहीं रही। अब कहनेवाला बेधड़क और बिला कमोकास्त (घटाये-बढ़ाये बिना, ज्यूं-की-त्यूं) बयान करेगा। गालिबने जिस असरको पूरे दूसरे मिसरेमें तरतीब दिया, हजरत असगरने वही काम सिर्फ एक लफ्ज 'जैसे' से निकाला। यह लफ्ज एक वा-सबूत तारीख (सबूत सहित ऐतिहासिक उल्लेख) है। मैं चमनमें था और चमन आरास्ता (सजा हुआ) और बारौनक था। एक लचकती हुई शाखे-गुलबार

मेरा आशियाना था। मैं वहाँ बहुत खुश और हर फिक्रसे आजाद था। पत्ते-पत्ते, बूटे-बूटेसे उल्फत थी। यकायक मुसीबतका पहाड टूट पड़ा और अब खानए-सैयाद है और क़फस। सैयाद भी वह जो बेरहम और माइले-बेदाद (अत्याचारी) है। लाख मिन्नत-खुशामद की कि आजाद करदे, मगर उसका दिल न पसीजा। आहो-फुगाँ, नाला-ओ-फरियाद सब बेसूद (व्यर्थ) साबित हुए। कुछ दिनके बाद शौको-इज्तिराब (चमन देखनेकी बेचैनी और लालसा) हुज्नो-यास (शोक और निराशा) में बदल चले थे। अफसुर्दगी फिसरते-मानिया (कुम्हलाये-कुम्हलाये रहना, आदत) हो चली थी। इतनेमें खबर आई कि 'गुलशन' उजड गया। आशियाँ ताराज (बरबाद) हो गया। जहाँ हुज्मे-गुचा-ओ-गुल (फूल और कलियोंका समूह) था, सरसब्जी-ओ-शादाबी (हरियाली और प्रफुल्लता) थी, चहल-पहल थी। वहाँ अब खाक उड रही है और बादे-समूम (आन्धियो) के झोंके चल रहे हैं।'

मैं यह (उक्त) रुदाद (घटना) इस तरह सुन रहा हूँ, गोया चमनसे कोई वास्ता ही न था, देखा ही न था। अगर इस तरह न सुनूँ तो कहनेवाला तफसील (विस्तार) से बयान न करेगा। बल्कि अजराहे-तरहहुम (रहम खाकर) बहुत-से वाकेआत छिपा डालेगा और मेरा इश्तियाके-तिश्ना (जिज्ञासा-पिपासु) रह जायगा। कलेजेपर छुरियां चल रही हैं; मगर इस तरह सुन रहा हूँ—

गोया कभी आँखोंसे गुलिस्ताँ नहीं देखा।'

१४ सितम्बर १९५७ ई०]

'छानबीन पृ० ७६-८१।

'जिगर' मुरादाबादी

[१८९० ई०]



अलीसिकन्दर 'जिगर' १८९० ई०में मुरादाबादमें उत्पन्न हुए । आपके पूर्वज मौलवी मुहम्मद समीअ दिल्ली-निवासी थे और शाहजहाँ बादशाहके शिक्षक थे। किसी कारणसे बादशाहके कोप-भाजन बन गये। अतः आप दिल्ली छोड़कर मुरादाबाद जा बसे थे। 'जिगर'के दादा हाफ़िज़ मुहम्मदनूर 'नूर' और पिता मौलवी अलीनज़र 'नज़र' भी शाइर थे।

'जिगर' पहले मिर्ज़ा 'दाग़'के शिष्य थे। बादमें 'तसलीम'के शिष्य हुए। इस युगकी शाइरीके नमूने 'दाग़ेजिगर'में पाये जाते हैं। आपकी वर्त्तमान-ढंगकी शाइरीका दौर 'असग़र' गोण्डवीके प्रभावमें आनेसे हुआ। 'असग़र'की संगतके कारण आपके जीवनमें बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। पहले आपके यहाँ हलके और आम कलामकी भरमार थी। अब आपके कलाममें गम्भीरता, उच्चता और स्थायित्व आगया है। आप ग़ज़लगो शाइरोंमें बहुत बड़ा मर्त्तबा रखते हैं। आप ग़ज़लमें नित नये अनुभवोंका समावेश कर रहे हैं, जिससे ग़ज़लमें एक ताज़गी, स्फूर्ति और नवीनता बढ़ती जा रही है। मजाज़ी इश्क़के साथ-साथ हक़ीक़ी इश्क़का पुट देकर तग़ज़्ज़ुल और तसव्वुफ़का समन्वय करनेमें कमाल रखते हैं। आपके पढ़नेका ढंग

इतना दिलकश और मोहक है कि सैकडों शाइर उसकी कॉपी करनेका प्रयत्न करते हैं, मगर वह बात कहाँ ? जिगर, जिगर है ।

पहले आप मशहूर रिन्द थे । मुशाअरोंमें भी पीकर और बेखुद होकर बैठते थे । यहाँतक कि १९२८ ई०में बिजनौर नुमाइशके मुशाअरेमें हमने उन्हें मुशाअरेमें ही पीते हुए देखा है । मगर अब अर्सेसे तौबा किये हुए हैं । बहुत-से मुशाअरोंमें आपका कलाम हमें सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

पाक इश्क़

इश्कको दिलफेंक छोकरे मनबहलावका एक साधन समझते हैं । जब जी चाहा किया, जब जी न चाहा, छोड़ दिया । यह इश्क नहीं, लुचपन है, अय्याशी है । इश्ककी परिभाषा 'जिगर'से सुनिए—

यह इश्क़ नहीं आसाँ, इतना ही समझ लीजे ।
इक आगका दरिया है, और डूबके जाना है ॥

'जिगर'की प्रेयसी हरजाई या बाजारी नारी नहीं । वह हयापरवर, सुशीला कुलीन सुकुमारी है । न जाने उसके हृदयमें प्रेमकी चिनगारी कैसे जा लगी है ? वह अन्दर-ही-अन्दर सुलगती जा रही है, परन्तु उसका धुआँ बाहर नहीं निकलने देना चाहती । एक भी आह ओठोंसे बाहर निकली तो जग-हँसाई होगी । कुटुम्बी क्या कहेंगे ? इसी भयसे वह मन-ही-मनमें सुलगती जा रही है । सामाजिक और पारिवारिक बन्धन इतने हैं कि वह एक पाती भी अपने प्यारेको नहीं भेज सकती, न किसीके हाथ सन्देशा । जिगर अपनी प्रेयसीकी विवशतासे परिचित हैं । वे अन्य शाइरोंकी तरह शिकवा-ओ-शिकायत, आह-ओ-फ़ुगाँ नहीं करते ; यहीं कहकर दिलको बहलानेका यत्न करते हैं—

इधरसे भी है सिवा, कुछ उधरकी मजबूरी ।
कि हमने आह तो की, उनसे आह भी न हुई ॥

ऐसे हयापरवर माशूकका तसव्वुर उर्दूगजलमें 'जिगर'की जिगर-सोजीसे पहले-पहल आया है।

कुछ शाइरोंका सिद्धान्त है कि—

जो ग़म हुआ उसे ग़मे-जानाँ बना लिया।

यानी सांसारिक आपदायें किसी भी कारणसे आयें, वे सब इश्कके कारण आई, यही समझकर उसका उल्लेख गजलमें करते हैं। लेकिन आजका शाइर गमे-दौराँको गमे-जानाँ न बनाकर, गमे-जानाँको गमे-दौरा बनानेके पक्षमें है।

हमपर अकेले ही यह मुसीबतोंका पहाड नहीं टूट रहा है, अपितु समस्त मानव-समाज इसके नीचे पडा हुआ कराह रहा है। उन सबका दुख दूर होनेमें ही अपना कल्याण है। यही भावना 'गमे-दौराँ' है।

राष्ट्रपिता बापूपर जो अमानुषिक अत्याचार दक्षिण अफ्रीकामें गोरों-द्वारा हुए, बापूने उन्हें व्यक्तिगत न समझकर समस्त अश्वेत जातिका अपमान समझा। इसी समझको 'गमे-दौराँ' कहते हैं।

एक अबला भरी जवानीमें विधवा हो जाती है। वह बिलख-बिलख कर रोनेके बजाय, यह समझकर कि यह आपदा केवल उसीपर नहीं आई है, न जाने कितनी नारियां इस दुःखसे बिलख रही हैं, उनके उद्धारके लिए आश्रमों और शिक्षालयोंका प्रबन्ध करनेमें जुट जाती है। घर-घर जाकर विधवाओंको सान्त्वना देती है। इसी कार्यको 'गमे-दौराँ' कहते हैं।

यदि किसी पुत्रवती माँका इकलौता लाल देशहितमें शहीद हो जाता है, और उसकी माँ अपनेको निपूती न समझकर, समूचे देशकी माँ समझ लेती है। उसी समझको 'गमे-दौराँ' कहते हैं। जिगर इसी 'गमे-दौराँ' के कायल हैं—

मैं वोह साफ़ ही न कह दूं, जो है फ़र्क़ मुझमें, तुझमें।
तेरा दर्द, दर्दे-तनहा, मेरा ग़म ग़मे-ज़माना॥

'जिगर'का मानवीय-प्रेम धीरे-धीरे ईश्वरीय-प्रेममें परिवर्तित हो जाता है, और वे सर्वत्र उसका जलवा देखते हैं—

जिस रंगमें देखा उसे, वह पर्दानशीं है।
और उसपै यह पर्दा है कि पर्दा ही नहीं है॥
हर-एक मकाँमें कोई इस तरह मकीं है।
पूछो तो कहीं भी नहीं, देखो तो यहीं है॥

बाहरकी आँखें बन्दकर जब उसे हियेकी आँखोंसे देखा तो—

मुझीमें रहे मुझसे मस्तूर होकर।
बहुत पास निकले बहुत दूर होकर॥

अपना प्यारा सर्वत्र अपने साथ है, परन्तु अपनी अन्धी आँखें उसे न देख सकें, तो उसका क्या दोष? जिसने जब भी उसे देखा, अपने समीप पाया—

इस तरह न होगा कोई आशिक़ भी तो पाबन्द।
आवाज़ जहाँ दो उसे वोह शोख़ वहीं है॥

साथ ही नहीं है, वह रोम-रोममें व्याप्त है—

आँखोंमें नूर, जिस्ममें बनकर वोह जाँ रहे।
मानी हमींमें रहके, वोह हमसे निहाँ रहे॥

और जो मुसीबतें हमपर आईं, वे हमारे साथ हमारे प्यारेने भी बर्दाश्त कीं। आये हुए दुःखको जब अपने साथी बाँट लेते हैं, समवेदना प्रकट करते हैं, तो दुःखका बोझ बहुत हलका लगने लगता है—

हरचन्द वक़्फ़े-कश-म-कशे-दोजहाँ रहे।
तुम भी हमारे साथ रहे, हम जहाँ रहे॥

हमारा प्यारा हर-रूपमें जलवागर है, हियेकी आँखोंसे देखो तो भूखोंकी भूख-प्याससे, सतियोंके आँसुओंमें, पीड़ितोंकी आहोंमें, पक्षियोंके चहकनेमें, वही दिखाई देगा—

बहारे-लाला-ओ-गुल, शोलिये-बर्क़ो-शरर होकर।
वोह आये सामने लेकिन, हिजाबाते-नजर होकर॥

अपने प्यारेका जलवा कैसे व्यक्त किया जाय? जिन आँखोंने उसे देखा है, वे बोलना नहीं जानतीं, और जीभ कहे तो क्या कहे? उसने कुछ देखा नहीं—

क्या हुस्नका अफ़साना महदूद हो लफ़्ज़ोंमें।
आँखें ही कहें उसको, आँखोंने जो देखा है॥*

वाहरे मेरे प्यारेका मेरे प्रति अनुराग! न वह काबेमें रहा, न मन्दिरोंमें, न धनियोंके महलोंमें। वह तो मेरे इस उजड़े दिलमें ही बना रहा—

जो न काबेमें है महदूद न बुतख़ानेमें।
हाय वोह और एक उजड़े हुए काशानेमें?

मैं तो उसीके हुस्नका आशिक हूँ। मुझे तो सर्वत्र उसीका हुस्न-ही-हुस्न नजर आ रहा है, और कुछ भी नहीं—

हुस्न है मेरे सामने, हुस्नके सासिवा नहीं।
इश्क़में मुब्तिला हूँ मैं, कुफ़्रमें मुब्तिला नहीं॥

परमात्माकी एक झलक देखनेकी साध लिये हुए न जाने कितने साधकोंने साधनाएँ की। कुछ और आगे बढ़े तो परमात्माके चरणोंकी समीपता प्राप्त करनेकी अभिलाषामें दुर्धर तप करते रहे। अधिक-से-अधिक ईश्वरमें एकाकार होनेके प्रयत्न किये, परन्तु परमात्मा कोई पृथक

---

*गिरा अनयन, नयन बिन बानी—तुलसीदास

शक्ति नहीं। वीतराग होनेपर यह आत्मा ही परमात्मा हो सकता है। कुछ इसी सिद्धान्तसे मिलता-जुलता अभिप्राय जिगर इसतरह व्यक्त करते हैं—

यहाँतक जज्ब कर लूं काश तेरे हुस्ने-कामिलको।
तुझीको सब पुकार उट्ठें निकल जाऊँ जिधर होकर॥

प्रेमी और प्यारा जब एकाकार हो जाये, तब विरह-मिलनके दुःखोंका समूल नाश हो जाता है। गुण, गुणी, ज्ञाता, ध्यान, ध्येय, ध्याता, तू, मैं, परका तब भेद-भाव नहीं रहता। मिस्रीसे मिठास जुदा नहीं, इसी तरह यह आत्मा वीतराग होकर परमात्म-पद प्राप्त कर लेता है, तब उपासक और उपास्यका भेद नहीं रहता—

वहदते-खास इश्कमें गैरियतका जिक्र क्या?
अपने ही जलवे देखिए अपनी ही बज्मे-नाजमें॥

ईश्वर नामकी कोई वस्तु संसारमें है और उसीने यदि यह सृष्टि की है तो न जाने वह अपने भक्तोंको मिटानेपर क्यों तुला हुआ है? इस बेरहमीसे तो बच्चा भी अपने खिलौने नहीं तोड़ता। जब भक्त ही न होंगे तो भक्त-वत्सलको कौन पूछेगा? सृष्टि ही न रहेगी तो उसे सृष्टि-कर्ता कौन कहेगा?

मुझे खाकमें तो न यूं मिला, हूँ अगर्चे मैं तेरा नक्शे-पा।
तेरे जलवे-जलवेकी है बक़ा, मेरे शौक़े-नाम-ब-नामसे[1]॥

---

[1]इसी भावको इक़बालने यूं व्यक्त किया है—

इसी कौकबकी ताबानीसे है तेरा जहाँ रोशन।
जवाले-आदमे-खाकी जियाँ तेरा है या मेरा?

(इन्हीं मानव-रूपी चमकते नक्षत्रोंसे तेरा संसार जगमग-जगमग हो रहा है। यदि इनको तू नष्ट कर देगा तो नुकसान तेरा होगा या अन्य किसीका?)

गमे-इश्क़

'जिगर' गमे-इश्कमें रोने-बिसूरनेको शायाने-शान नहीं समझते—

इश्कको अज़मत न हरगिज़ जीते जी कम कीजिए।
जान दे दीजे मगर, आँखे न पुरनम कीजिए॥

तौहीने-इश्क़ देख न हो, ऐ 'जिगर'! न हो।
हो जाए दिलका खून, मगर आँख तर न हो॥

और कभी आहो-नाला मुँहसे निकले भी तो—

नाला यूँ कीजे, यह अन्दाजे-शिकेबाई[1] हो।
जैसे बेसाख्ता[2] होंटोंपे हँसी आई हो॥

गमे-इश्कमें ओठोंपर मुसकान न आये, तो 'जिगर' ऐसे इश्कको इश्क और जिन्दगीको जिन्दगी नहीं समझते—

तेरी खुशीसे अगर गममें भी खुशी न हुई।
वोह जिन्दगी तो मुहब्बतकी जिन्दगी न हुई॥

'जिगर' अपने प्यारे द्वारा दिये गये कष्टोंको कष्ट नहीं समझते। बल्कि उसका एहसान समझकर आभारी होते हैं—

तेरी अमानते-गमका तो, हक़ अदा कर लूँ।
खुदा करे शबे-फ़ुरक़त अभी दराज रहे॥
तेरे निसार अताकरदा एक लतीफ़ खलिश।
तमाम उम्र मुहब्बतको जिसपे नाज रहे॥

अब जबाँ भी दे अदाए-शुक्रके क़ाबिल मुझे।
दर्द बख्शा है अगर तूने बजाए-दिल मुझे॥

---

[1]सन्तोष और सब्रका अन्दाज मालूम दे; [2]अनायास, यकायक।

मनुष्यकी वह स्थिति कितनी शोचनीय है, जब कि कोई उसे दयनीय समझकर जुल्मो-सितमसे हाथ खींच ले। युद्धमें रत एक योद्धा यह समझकर हथियार फेंक दे कि विपक्षी योद्धा अशक्त हो चला है, प्रतिद्वन्द्वी योद्धाके लिए घोर लज्जाकी बात होगी।

फूंक दे ऐ ग़ैरते-सोज़े-मुहब्बत फूंक दे।
अब समझती है वोह नज़रें, रहमके क़ाबिल मुझे॥

रक़ाबत

'जिगर' के यहां भी रक़ीबका जिक्र आता है, मगर कितनी महानताके साथ ?

वोह हज़ार दुश्मने-जां सही, मुझे फिर भी ग़ैर अज़ीज़ है।
जिसे ख़ाके-पा तेरी छू गई वोह बुरा भी हो तो, बुरा नहीं[1]॥

जिगरकी रिन्दी

'जिगर' एक जमानेमें बहुत बड़े रिन्द रहे हैं। ऐसे कि इमामे-मैख़ाना कहलानेके पूर्ण अधिकारी। अपनी रिन्दीके बारेमें फर्माते हैं—

रिन्द जो मुझको समझते हैं उन्हें होश नहीं।
मैकदा-साज़ हूँ मैं मैकदाबरदोश नहीं॥
पाँव रुकते ही नहीं मंज़िले-जानांके ख़िलाफ़।
और अगर होशको पूछो तो मुझे होश नहीं॥
'जिगर'को दर्से-हक़ीक़त बहुत न दे वाइज़!
वोह बेख़बर हैं बज़ाहिर तो बाख़बर पिन्हाँ॥

---

[1]रकीबके सम्बन्धमें किसी अज्ञात कविका यह शेर 'जिगर'को हमने झूम-झूमकर पढ़ते सुना है और उनकी रायमें उर्दू-शाइरीमें इससे अच्छा शेर रकीब पर नहीं लिखा गया।

सामने उसके न कहते मगर अब कहते हैं।
लज्जते-इश्क़ गई ग़ैरके मर जानेसे॥

जबतक शबाबे-इश्क़, मुकम्मल शबाब है।
पानी भी है शराब, हवा भी शराब है॥

तूने जिस अश्कपर नज़र डाली।
जोश खाकर वही शराब हुआ॥

क़ौमी-दर्द

'जिगर' पतनोन्मुखी कौमको देखिए किस अन्दाजमें गैरत दिलाते हैं—

जो साज़ कि ख़ुद नग़मए-हिरमां था उसीको।
अन्देशए-मिज़राब है मालूम नहीं क्यों?
उसी किश्तीको नहीं ताबे-तलातुम सदहैफ़।
जिसने मुँह फेर दिये थे कभी तूफ़ानोंके॥

सुख-दुखका जोडा है। जब सुख भोगते रहे तो दुखमें घबराहट क्यो?

काँटोंका भी कुछ हक़ है आख़िर।
कौन छुड़ाए अपना दामन॥

चुना हुआ कलाम

अब हम आपके 'शोलए-तूर' दीवानसे और पत्र-पत्रिकाओंसे सभी तरहका ताजा कलाम चुनकर दे रहे हैं—

बैठे हैं बज़्मेदोस्तमें[1] गुमशुद्गाने-हुस्ने-दोस्त[2]।
इश्क़ है और तलब[3] नहीं, नग़मा[4] है और सदा[5] नहीं॥

अरबाबे-चमनसे[6] नहीं, पूछो यह चमनसे।
कहते हैं किसे निक्हते-बरबादका[7] आलम॥

---

[1]प्यारेकी महफ़िलमें; [2]प्यारेके रूपमें लीन गुम-सुम; [3]इच्छा; [4]गीत लहरी; [5]आवाज; [6]चमनवालोसे; [7]बरबादीकी गन्धका।

हरइक सूरत, हरइक तसवीर मुबहम[1] होती जाती है ।
इलाही ! क्या मेरी दीवानगी कम होती जाती है ?

तेरे बग़ैर तो जीना रवा नहीं लेकिन ।
मैं क्या करूँ जो तेरा ग़म ही जानवाज़[2] रहे ।।

इश्क ही के हाथोंमें कुछ सकत[3] नहीं रहती ।
वरना चीज़ ही क्या है गोशए-नक़ाब उनका ।।

आँखोंका था क़ुसूर न दिलका क़ुसूर था ।
आया जो मेरे सामने मेरा ग़ुरूर था ।।

किसी सूरत नमूदे-सोज़े-पिनहानी[4] नहीं जाती ।
बुझा जाता है दिल, चेहरेकी ताबानी[5] नहीं जाती ।।

मुहब्बतमें इक ऐसा वक़्त भी दिलपर गुज़रता है ।
कि आँसू ख़ुश्क हो जाते हैं, तुग़्यानी[6] नहीं जाती ।।

जिसे रौनक़ तेरे क़दमोंने देकर छीन ली रौनक़ ।
वोह लाख आबाद हो उस घरकी वीरानी नहीं जाती ।।
वोह यूँ दिलसे गुज़रते हैं कि आहट तक नहीं होती ।
वोह यूँ आवाज़ देते हैं, कि पहचानी नहीं जाती ।।

वोह लाख सामने हों मगर इसका क्या इलाज ?
दिल मानता नहीं कि नज़र कामयाब है ।।

---

[1]धुधली; [2]जानके साथ; [3]शक्ति; [4]अन्तरंग व्यथाका अस्तित्व; [5]चमक; [6]उफ़ान ।

उन्हींके दिलसे कोई इसकी अज़मतें पूछे।
वोह एक दिल जिसे सब कुछ लुटाके लूट लिया ॥

और तो कुछ कमी नहीं आपके इक़्तदारमें[1]।
आप मुझे भुला सकें यह नहीं इख़्तियारमें ॥

फ़िल्नए-रोज़गारमे[2] अम्न[3] है क्या, क़रार[4] क्या ?
हासिले-ज़ीस्त[5] ग़म सही, ग़मका भी एतबार क्या ?

क्यों आतिशे-गुल मेरे नशेमनको जलाये ?
तिनकोंमे है ख़ुद बर्क़े-चमनज़ादका आलम ॥

उन लबोंकी जाँ-नवाज़ी देखना।
मुँहसे बोल उठनेको है जामे-शराब ॥

दिलको बरबाद करके बैठा हूँ।
कुछ ख़ुशी भी है कुछ मलाल भी है ॥

आ कि तुझ बिन इस तरह ऐ दोस्त ! घबराता हूँ मैं।
जैसे हर शैमें किसी शैकी कमी पाता हूँ मैं ॥
कूए-जानाँकी हवा-तकसे भी थर्राता हूँ मैं।
क्या करूँ बेइख़्तियाराना चला जाता हूँ मैं ॥
मेरी हस्ती शौक़े-पैहम, मेरी फ़ितरत इज़्तिराब।
कोई मंज़िल हो मगर गुज़रा चला जाता हूँ मैं ॥

उनके बहलाये भी न बहला दिल।
रायगाँ[6] सईए-इल्तिफ़ात[7] गई ॥

---

[1]अधिकारमे; [2]ससारके झमेलोमे; [3]सुख-शान्ति; [4]चैन; [5]जिन्दगीका हासिल; [6]व्यर्थ; [7]कृपा पानेकी युक्ति।

तर्के-उल्फ़त बहुत बजा नासेह !
लेकिन उसतक अगर यह बात गई ?

सीनए-नैंपै[1] जो गुज़रती है ।
वोह लबे-नै-नवाज़[2] क्या जाने ?

इबरते-बन्दगी-ओ-नाचारी[3] ।
कोई बन्दानवाज़[4] क्या जाने ?

इस इश्क़की तलाफ़िए-माफ़ात[5] देखना ।
रोनेकी हसरतें है, जब आँसू नहीं रहे ॥

हम न मरते तेरे तग़ाफ़ुलसे[6] ।
पुरसिशे-बे-हिसाबने[7]-मारा ॥

हाय यह मजबूरियाँ, महरूमियाँ, नाकामियाँ ।
इश्क़ आख़िर इश्क़ है, तुम क्या करो, हम क्या करें ?

किस तरफ़ जाऊँ, किधर देखूं, किसे आवाज़ दूं ?
ऐ हुजूमे-नामुरादी जी बहुत घबराय है ॥

हमसे पूछो तो इश्क़की भी निगाह ।
सख़्त काफ़िर निगाह होती है ॥
वोह भी है इक मुक़ामे-इश्क़ जहाँ ।
हर तमन्ना गुनाह होती है ॥

---

[1]बाँसुरीके मनपर; [2]स्वर पैदा करनेवालेके ओठ; [3]उपासनाकी नसीहत और उसे न कर सकनेकी मजबूरियाँ; [4]खुदा, माशूक; [5]नष्टप्राय हो जानेके बाद प्रायश्चित; [6]उपेक्षासे; [7]अधिक पूछ-ताछने ।

इलाही ! तर्के-मुहब्बत भी क्या मुहब्बत है ।
भुलाते हैं उन्हें वोह याद आये जाते हैं ।।

मैं तेरा अक्स हूँ कि तू मेरा ।
इस सवालो-जवाबने मारा ।।

देखा गया न यह भी संयावो-बाग़बाँसे ।
इक शाखे-गुल थी लिपटी एक शाखे-आशियाँसे ।।

ज़मानेके हमदोशो[1]-हमराज़[2] कबतक ?
ज़मानेको पीछे हटाता चला जा ।।

सावनकी रैन अँधेरी, तनहाइयोंका आलम ।
भूले हुए फ़साने सब याद आ रहे हैं ।।

शौक़ने बेख़ुदीमे जब दस्ते-तलब[3] बढ़ा दिया ।
इबरते-इश्कने वहीं पहलू-ए-दिल दबा दिया ।।

इश्क़ फ़नाका नाम है इश्क़मे ज़िन्दगी न देख ।
जलवए-आफ़ताब बन, ज़र्रेमे रोशनी न देख ।।
होके रहेगा हमनवा वोह भी तेरे ही साथ-साथ ।
नग़मए-शौक़ गाये जा इश्क़की बरहमी न देख ।।

सोज़े-तमाम चाहिए, रंगे-दवाम चाहिए ।
शमअ तहे-मज़ार हो शमअ सरे-मज़ार क्या ?

भूल जाऊँ कि मेरा ज़ौक़े-मुहब्बत क्या है ?
इस तरह तो न मेरी हौसला अफ़ज़ाई हो ।।

---

[1]कन्धे-ब-कन्धे; [2]साथ-साथ; [3]इच्छाका हाथ ।

उनके जाते ही यह हैरत छा गई।
जिस तरफ़ देखा किया, देखा किया॥

वोह उनकी बेरुख़ी, वोह बेनियाज़ाना हँसी अपनी।
फिरी महफ़िल थी लेकिन बात बिगड़ी बन गई अपनी॥

फूल वही, चमन वही, फ़र्क़ नज़र-नज़रका है।
अहदे-बहारमे था क्या? दौरे-ख़िज़ाँमे क्या नहीं॥

रह गया है अब तो बस इतना ही रब्त इक शोख़से।
सामना जिस वक़्त हो जाता है, भर आता है दिल॥

जब मिली आँख होश खो बैठे।
कितने हाज़िर जवाब हैं हम लोग॥

अल्लाह तुझे रक्खे महफ़ूज़[1] हवादिससे[2]।
ऐ कुफ़्र! तेरे दमतक आराइशे-ईमाँ[3] है॥

पीता बग़ैर इज़्न[4] यह कब थी मेरी मजाल।
दर-पर्दा चश्मे-यारकी शह पाके पी गया॥

किधरसे बर्क़ चमकती है देखें ऐ वाइज़!
मैं अपना साग़र उठाता हूँ, तू किताब उठा॥

बहार तौबा-शिकन, चश्मे-मस्ते-यार मुसिर।
मैं आज पी जो न लेता वह बदगुमाँ होता॥

हमसे नज़र फेर ली उस शोख़ने।
हम भी हैं इन्सान ख़फ़ा हो गये॥

---

[1]सुरक्षित; [2]आपदाओंसे; [3]ईमानकी शोभा; [4]हुक्म, निमत्रण।

इश्क़ ही तनहा नहीं आशुफ़्तासर[1] मेरे लिए।
हुस्न भी बेताब है और किस क़दर मेरे लिए॥

अब नज़रको कहीं क़रार[2] नहीं।
काविशे-इन्तिख़ाबने[3] मारा॥

ज़र्रोंसे[4] बातें करते हैं दीवारो-दरसे हम।
मायूस[5] किस क़दर हैं, तेरी रहगुज़रसे[6] हम॥

कोई हसीं, हसीं ही ठहरता नहीं 'जिगर'!
बाज़ आये इस बुलन्दिए-जौक़े-नज़रसे हम॥

इतनी-सी बातपर है बस इक जंगे-ज़रगरी[7]।
पहले उधरसे बढ़ते हैं वोह या इधरसे हम॥

मुमकिन नहीं कि जज़्बए-दिल[8] कारगर न हो।
यह और बात है तुम्हें अबतक ख़बर न हो॥

जिसे मैं भी ख़ुद न बता सकूँ, मेरा राज़े-दिल है वोह राज़े-दिल।
जिसे ग़ैर दोस्त समझ सके, मेरे साज़मे वोह सदा[9] नहीं॥

अर्ज़े-शौक़पर मेरी, पहले कुछ अ़ताब[10] उनका।
ख़ास इक अदाके साथ, उफ़ वोह फिर हिजाब[11] उनका॥

यह आ़लम है अब ख़ुश्क आँखोंमे अपनी।
कि तूफ़ाँ है बरपा, रवानी[12] नहीं है॥

हुदूदे-कूचए-महबूब[13] है वहींसे शुरूअ़।
जहाँसे पड़ने लगें पाँव डगमगाये हुए॥

---

[1]सरदर्द, परेशानीका कारण; [2]चैन; [3]प्रेयसीके चुनावके प्रयासने; [4]धूल-कणोंसे; [5]निराश; [6]मार्गसे; [7]दिखावटी लडाई; [8]दिलकी भावना; [9]आवाज़; [10]क्रोध; [11]शर्माना; [12]बहाव; [13]प्रेयसीकी गलीकी सीमा।

लेके ख़त उनका किया ज़ब्त बहुत कुछ लेकिन।
थरथराते हुए हाथोंने भरम खोल दिया॥

मिलाके आँख, न महरूमे-नाज़[1] रहने दे।
तुझे क़सम जो मुझे पाकबाज़[2] रहने दे॥

ख़ता मुआफ़ किसी औरका तो ज़िक्र ही क्या?
नियाज़मन्द[3] तेरे तुझसे बेनियाज़[4] रहे॥

मानूसे-एतबारे-करम[5] क्यों किया मुझे?
अब हर ख़ताए-शौक़[6] उसीका जवाब है॥

जो मसर्रतोंसे[7] ख़लिश[8] नहीं, जो अज़ीयतोंमे[9] मज़ा नहीं।
तेरे हुस्नका भी क़ुसूर है, मेरे इश्क़ ही की ख़ता नहीं॥

मेरा ज़ौक़ भी, मेरा शौक़ भी, है बलन्द[10] सतहे-अवामसे[11]।
तेरा हिज्र भी, तेरा वस्ल भी, मेरे दर्दे-दिलकी दवा नहीं॥

चुप है वोह यूँ सुनके मेरा अर्ज़े-शौक़।
जैसे कि सचमुच ही ख़फ़ा हो गये॥

ख़बर नहीं मुझे, मैं क्या हूँ, आर्ज़ू क्या है?
किसीने जबसे यह समझा दिया कि तू क्या है॥

कूचए-इश्क़में निकल आया।
जिसको ख़ाना-ख़राब होना था॥

लाखोंमे इन्तख़ाबके क़ाबिल बना दिया।
जिस दिलको तुमने देख लिया दिल बना दिया॥

---

[1]अदाओंसे उपेक्षित; [2]मयमी, पवित्र; [3]विनयी; [4]बेपर्वा; [5]कृपाओंपर विश्वास रखनेका अभ्यस्त; [6]शौक करनेका अपराध; [7]खुशियोंसे; [8]चुभन; [9]दुःखोंसे; [10]उच्च; [11]सर्वसाधारण स्तरसे।

माना ग़ुरूरे-इश्क़ भी इक चीज़ है मगर।
इतने भी दूर-दूर तेरे आस्ताँसे[1] क्या ?

उनकी वोह आमद-आमद अपना यहाँ यह आलम।
इक रंग आ रहा है, इक रंग जा रहा है॥

वोह कबके आये भी और गये भी, नज़रमें अबतक समा रहे हैं।
यह चल रहे हैं, वह फिर रहे हैं, यह आ रहे हैं, वह जा रहे हैं॥
वही क़यामत है क़द्देबाला, वही है सूरत, वही सरापा।
लबोंको जुम्बिश, निगहको लरज़िश, खड़े हैं और मुसकरा रहे हैं॥

हुस्न आया था ख़ुद मनानेको।
सो तवज्जह ही इश्क़ने कम की॥

मुझे क्या पड़ी है तेरे दरसे उट्ठूँ।
ठहरने जो दे इज़्तिराबे-मुहब्बत[2]॥

यह क्या है कि पहलूमें वोह भी है लेकिन—
शबे-माह[3] फिर भी सुहानी नहीं है॥

अजब इन्क़िलाबे-ज़माना है, मेरा मुस्तसर-सा-फ़साना है।
यही अब जो बार[4] है दोशपर[5] यही सर था ज़ानू-ए-यारपर[6]॥

हश्रके दिन वोह गुनहगार न बख़्शा जाये।
जिसने देखा तेरी आँखोंका पशेमाँ[7] होना॥

दिलको क्या-क्या सुकून[8] होता है।
जब कोई आसरा नहीं होता॥

---

[1]चौखटसे, स्थानसे; [2]प्रेमकी बेचैनी; [3]चान्दनी रात; [4]बोझ; [5]कन्धे पर; [6]प्रियतमाके घुटनेपर; [7]शर्मिन्दा; [8]चैन।

उमीदे-अफ़ूकी[1] भी मैंने अब दिलसे मिटा डाला।
यह था इक बदनुमा धब्बा मेरे दामाने-इस्याँका[2]॥

चाँदनी है, हवा है, क्या कहिए।
मुफ़लिसी क्या बला है, क्या कहिए॥

फिर वह हमसे ख़फ़ा है क्या कहिए?
ज़िन्दगी बेहया है, क्या कहिए॥

अपना ज़माना आप बनाते हैं अहले-दिल।
हम वोह नहीं कि जिसको ज़माना बना गया॥

मुझ नातवाने-इश्क़को[3] समझा है तुमने क्या?
दामन पकड़ लिया तो छुड़ाया न जायगा॥

हरमो-दैरमें[4] रिन्दोंका[5] ठिकाना ही न था।
वोह तो यह कहिए अमाँ[6] मिल गई मैख़ानेमें॥

वोह भी निकली इक शुआए-बर्क़े-हुस्न[7]।
मैं जिसे अपनी नज़र समझा किया॥

नवेदे-बख़्शिशे-इस्याँसे[8] शर्मसार न कर।
गुनाहगारको या रब! गुनाहगार न कर॥

नाज़ करती है ख़ाना-वीरानी।
ऐसे ख़ाना-ख़राब हैं हम लोग॥

उससे भी शोख़तर है उस शोख़की अदाएँ।
कर जाएँ काम अपना लेकिन नज़र न आएँ॥

---

[1]अपराध क्षमा किये जानेकी आशाको; [2]पाप-रूपी चादरका; [3]निर्बल प्रेमीको; [4]मस्जिद-मदिरमें; [5]मद्यपोंका; [6]शरण; [7]हुस्नरूपी बिजलीकी किरण; [8]अपराधोंको क्षमा किये जानेकी सूचनासे।

जुनूने-मुहब्बत यहाँतक तो पहुँचा।
कि तर्के-मुहब्बत किया चाहता हूँ॥

हुस्नकी सेहरकारियाँ[1] इश्ककें दिलसे पूछिए।
वस्ल कभी है हिज्र-सा, हिज्र कभी विसाल-सा॥

हुस्नकी शानें थीं जितनी, सब नुमायाँ[2] हो गईं।
जो तेरे रुखसे बचीं रंगे-गुलिस्ताँ हो गईं॥
—निगार जनवरी १९४१ ई०

मेरी हैरतकी क़सम आप उठाएँ तो नक़ाब।
मेरा ज़िम्मा है कि जलवे न परीशाँ होंगे॥

मेरा जो हाल हो-सो-हो बर्क़नज़र[3] गिराये जा।
मैं यूँ ही नालाकश[4] रहूँ तू यूँ ही मुसकराए जा॥

लहज़ा-ब-लहज़ा दम-ब-दम जलवा-ब-जलवा आये जा।
तिश्नए-हुस्ने-ज़ात[5] हूँ, तिश्ना-लबी[6] बढ़ाये जा॥

लुत्फ़से है कि मेहरसे[7], होगा कभी तो रूबरू[8]।
उसका जहाँ पता चले, शोर वहीं मचाए जा॥

खुशा वोह दर्दे-मुहब्बत, जहे वोह दिल कि जिसे।
ज़रा सुकून[9] हुआ, गुद-गुदा दिया तूने॥

खुशा वोह जान जिसे दी गई अमानते-इश्क़।
जहे वोह दिल जिसे अपना बनाके लूट लिया॥
सलाम उसपे कि जिसने उठाके पर्दए-दिल।
मुझीमें रहके मुझीमें समाके लूट लिया॥

---

[1]जादूगरी; [2]प्रकट; [3]बिजली जैसे कटाक्ष; [4]दीर्घ नि श्वासी; [5]सौन्दर्य्या-मृत पिपासू; [6]प्यास; [7]कृपाओंसे; [8]समक्ष; [9]चैन।

मुझे चाहिए वही साक़िया जो छलक चले, जो बरस चले।
तेरे हुस्ने-शीशा-ओ-दस्तसे, तेरी चश्मे-बादा-ओ जामसे॥

तुम्हे भी ख़बर है जो तुम कह गये हो?
ख़ुद अपनी अदाओंसे मसहूर[1] होकर॥

सुनता हूँ कि हर हालमे वोह दिलके क़रीं है।
जिस हालमे मैं हूँ मुझे अफ़सोस नहीं है॥
वाहरे शौके-शहादत[2], कूए-क़ातिलकी[3] तरफ़।
गुनगुनाता, रक़्स[4] करता, झूमता जाता हूँ मैं॥

—अपनी डायरीसे

तेरी ख़ुशीसे अगर गममे भी ख़ुशी न मिली।
वोह ज़िन्दगी तो मुहब्बतकी ज़िन्दगी न हुई॥
सबा[5]! यह उनसे हमारा पयाम[6] कह देना।
गये हो जबसे यहाँ सुबहो-शाम ही न हुई॥

दिल गया रौनक़े-हयात[7] गई।
ग़म गया सारी काएनात[8] गई॥

जबसे तू महरबान है प्यारे।
और दिल बदगुमान है प्यारे॥

तू जहाँ नाज़से क़दम रख दे।
वोह ज़मीन आसमान है प्यारे॥

शामसे आ गये जो पीनेपर।
सुबहतक आफ़ताब है हम लोग॥

---

[1]जादूका मारा हुआ; [2]शहीद होनेका चाव, [3]बधिककी गलीकी; [4]नृत्य; [5]वायु; [6]सन्देश, [7]जीवन-शोभा; [8]दुनिया, पूंजी।

तू हमारा जवाब है तनहा।
और तेरा जवाब है हम लोग॥

'आजकल' सितम्बर १९४९ ई०

तेरे जलवोंको देखें और मेरे दिलकी तरफ़ देखें।
कहाँ है इत्तिसाले-मौजो-साहिल[1] देखनेवाले ?

कहीं ऐसा तो नहीं वोह भी कोई हो आज़ार[2]।
तुमको जिस चीज़पै राहतका[3] गुमाँ[4] होता है॥

हाय ! वोह सिलसिलए-अश्क कि जो तेरे हुज़ूर।
दिलमे रहता है न आँखोंमे रवाँ[5] रहता है॥

वोह अदाए-दिलबरी[6] हो कि नवाए-आशिक़ाना[7]।
जो दिलोंको फ़तह कर ले, वही फ़ातहे-ज़माना॥
कभी हुस्नकी तबीअ़त न बदल सका ज़माना।
वही नाज़े-बेनियाज़ी[8] वही शाने-खुसरुवाना[9]॥
मैं हूँ उस मुक़ामपर अब कि फ़िराक़ो-वस्ल[10] कैसे ?
मेरा इश्क़ भी कहानी, तेरा हुस्न भी फ़साना॥
तेरे इश्क़की करामत[11] यह अगर नहीं तो क्या है ?
कभी बेअदब न गुज़रा, मेरे पाससे ज़माना॥
मेरे हम-सफ़ीर[12] बूलबुल ! मेरा-तेरा साथ ही क्या ?
मैं ज़मीरे-दश्तो-दरिया तू असीरे-आशियाना॥

---

[1]लहरे और किनारेको मिला हुआ; [2]दुःख, रोग; [3]निराकुलता, आरामका; [4]सन्देह, वहम, भ्रम; [5]जारी; [6]दिल लुभानेवाली अदा, मनमोहक हाव-भाव; [7]प्रेम-राग, [8]उपेक्षाभावका अभिमान; [9]बादशाही शान; [10]विरह और मिलन, [11]प्रताप, ओज; [12]एक ही तरहकी बोली बोलनेवाले, सम-स्वर, मित्र सहयोगी।

तुझे ऐ 'जिगर' ! हुआ क्या कि बहुत दिनोंसे प्यारे ।
न बयाने-इश्क़ो-मस्ती न हदीसे-दिलबराना ।।

—आजकल १५ अगस्त १९४९ ई०

क़दम हटे जो कभी जादए-वफ़ासे[1] कहीं ।
हरेक ज़र्रा पुकारा कि देखता हूँ मैं ।।

इल्म ही ठहरा इल्मका बाग़ी ।
अक़्ल ही निकली अक़्लकी दुश्मन ।।

माहे-नौ करांची फ़रवरी १९५१ ई०

अज़मते-काबा[2] मुसल्लम[3], लेकिन इसका क्या इलाज ?
दिल ही जब कहता हो कि बुतख़ाना फिर बुतख़ाना है ।।

रिन्दोंने जो छेड़ा जाहिदको साक़ीने कहा किस तंजसे आज—
"औरोंकी वोह अज़मत[4] क्या जानें, कमज़र्फ़[5] जो इन्सां होते हैं ।।"
यह ख़ून जो है मज़लूमोंका,[6] ज़ाया[7] तो न जायेगा लेकिन—
कितने वोह मुबारक क़तरे हैं जो सर्फ़े-बहारां[8] होते हैं ?

वोह सब्ज़ा[9] नंगे-चमन[10] है, जो लहलहा न सके ।
वोह गुल है ज़ख़्मे-बहारां जो मुसकरा न सके ।।
घटे अगर तो बस इक मुश्ते-ख़ाक है इन्सां ।
बढ़े तो वुसअते-कौनैनमें[11] समा न सके ।।

२ जून १९५३ ई०]

---

[1]नेकीके, निभानेके मार्गसे; [2]काबेकी प्रतिष्ठा; [3]पूर्णरूपेण मानर्नाय; [4]प्रतिष्ठा, बुजुर्गी, इज्जत; [5]क्षुद्र प्रकृति, नीच; [6]अत्याचार पीड़ितोंका; [7]व्यर्थ; [8]बहारोंके लिए खर्च; [9]घास, हरियाली; [10]उद्यानका कलंक; [11]दोनों लोकोंकी सीमामें ।

द्वितीय संस्करणके लिए

हजरत 'जिगर' साहबको मैंने पहली मर्तबा बिजनौरमें देखा। वहाँ आप दिसम्बर या जनवरी १९२८ ई०में डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी तरफसे आयोजित नुमाइशके आमसरपर होनेवाले मुशाअरेमें तशरीफ लाये थे। इसी नुमाइशमें पहली बार 'सागर' निजामी साहब और 'नरम' मेरठी को भी देखा-सुना था। डिप्टी मोहनलालके सयोजनमें मुशाअरा एक पण्डालमें हो रहा था। मैं भी एक दर्शककी हैसियतसे गया हुआ था। सम्भवतः सागर साहब अपना कलाम सुना रहे थे। वे अपने मधुर स्वर, आनन्ददायक तर्ज और नये ढगकी हिन्दी-उर्दू मिश्रित नज्मों और गीतोंके कारण मुशाअरेपर छाये हुए थे। लोग झूम-झूमकर दादो-तहसीन दे रहे थे कि मुझे यकायक बहुत तेज गन्ध आई। पूछनेपर मालूम हुआ कि यह शराबकी बू है, किसीने पी रक्खी है। किसने पी हुई है, यह जाननेका प्रयास कर रहा था कि मीर मुशाअराने हजरत जिगरको कलाम सुनानेके लिए आमन्त्रित किया। मेरे बिल्कुल बराबर बैठे हुए हजरत उठे तो उनकी बगलसे बोतल गिर गई और पहिले जैसी गन्ध पण्डालमें बहुत अधिक फैल गई। मैं हैरतमें था कि यह हजरत कौन है जो मुशाअरेमें भी शौक फर्मा रहे है। वही हजरत मञ्चपर गजल पढनेको दो जानू बैठे तो मालूम हुआ, यह जिगर मुरादाबादी है, जो हिन्दी-उर्दू-सरस्वतीके लिए बहुत मशहूर है। मनमें खयाल आया, बेचारे क्या खाकर सागर साहबके बाद कलाम सुनायेगे। सागर साहबने महफिलको मत्र-मुग्ध-सा करके रख दिया था। उन्हींको सुननेके लिए चारो ओरसे आवाजे आ रही थी। मुझे मीर मुशाअरापर समझपर तरस आया कि उसने यह कितनी बडी गलती सरजद हुई है। किस गरीबको कलाम पढनेके लिए दावत दी है? मगर मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही कि मतलेका पहला मिसरा सुनते ही लोग दम-ब-खुद होकर बैठ गये। नशेके आलममें भी जिगर कलेजोंको मसले दे रहे थे। सभी उपस्थित शाइर

बेखुद हुए जा रहे थे। कई ग़जलें आपसे पढवाई गई, मगर लोगोंकी तबिअ़त सेर नही हो रही थी। जनताके बार-बार आग्रह करनेपर सागर साहब और जिगर साहब कई-कई गजलें सुनानेको मजबूर हुए।

फिर सन् ३३ से ४० तक दिल्लीके कितने ही मुशाअरोंमे जिगरको सुननेका सयोग मिला। ठिगना कद, काला रग, मुँहपर चेचकके दाग, जुल्फ़े अस्त-व्यस्त, सुरापान किये हुए जिगर मुशाअरोमे नीची नजर किये, चुपचाप, एक आसन इस तरह बैठे रहते है कि अपरिचितोको यह ख्वाबो-खयाल भी नही हो सकता कि यह भी जिगर हो सकते है, जो कि दुनियाए-शाइरीके बेताजके बादशाह है। मुशाअरेमे बैठे हुए न किसीपर फब्ती कसते है, न किसीपर हाशियाआराई करते है। न किसीका मखोल उडाते है और न नुक्ताचीनी करते है। न किसीकी तरफ देखते है। बस नीची नजरे किये खोये-खोये-से चुपचाप एक-आसन बैठे रहते है। अच्छे शेरपर दिल खोलकर दाद देते है। नये शाइरोका हौसला बढाते है। अपनी बारी पर ग़जल पढते है और फिर चुपचाप अपनी जगह पर जा बैठते है।

जनता आपके नामपर मुशाअरोंमे किस तरह टूटती है और आपका कितना खयाल रखा जाता है। चन्द चश्मदीद वाकए इस समय याद आ रहे है।

जामेआ मिल्लिया करौलबाग दिल्लीके सालाना मुशाअरेके अवसरपर हालमे तिल रखनेको जगह न थी। जरूरतसे ज्यादा उपस्थिति, उसपर सिग्रेटोके धुएँसे बडी घुटन-सी महसूस हुई तो डाक्टर जाकिर हुसैन[1] साहबने सिग्रेट पीनेवालोको आड़े हाथो लिया और लमहेभरमे जलाई हुई सिग्रेटें लोगोने मसलकर फेंक दी। हालमे एक स्वच्छ और शान्त वातावरण छा

---

[1]आप उन दिनो जामेआ मिल्लियाके प्रिन्सिपल थे। सन् ४७के बाद अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटीके वाइस चान्सलर और वर्तमान (अगस्त १९५७)मे बिहारके राज्यपाल है।

गया। तभी जिगर साहब माइक्रोफोनपर गजल पढने आये। नशेमें धुत्त, बगैर सिग्रेटके किसी तरह एक गजल तो सुना दी। मगर दूसरीकी फर्माइश हुई तो जी चुराने लगे। लोगोमें कानाफूसी हुई और जाकिर हुसेन साहब जो गजल सुनकर आत्म-विभोर हुए बैठे थे, चौंके और पास बैठे हुओंमें-से सिग्रेट मांगकर जिगर साहबके ओठोंसे लगाकर स्वय ही सुलगाने लगे।

सिग्रेटका कश लगाते ही जिगर साहब फिर लोगोंको वज्दमें लाने लगे। जाकिर हुसेन साहब दस मिनट पहले सिग्रेट पीनेवालोंपर बरस चुके थे, उन्हींको जिगर साहबने इतना आत्म-विस्मृत कर दिया कि लोगोंसे मांग-कर खुद ही सुलगा भी दी। हॉल कहकहोंसे गूंज उठा।

इसी मुशाअरेमें मैंने पहली बार हजरत सफी लखनवी और जरीफ लखनवीको देखा था। उनका कलाम और पढ़नेका ढग भी खूब था। अबतक भुलाये नहीं भूलता।

दूसरे वर्ष जामेआ-मिल्लिया या तिब्बिया कालेज दिल्लीके सालाना जल्सेपर मुशाअरा था। मुशाअरा रेडिओसे रिले भी किया जा रहा था। जिगर साहबकी बारी आई तो आपने माइकपर तवज्जह न देते हुए पढ़ना शुरू कर दिया। मुशाअरा रेडिओपर रिले हो और जिगर साहबकी गजल ब्राडकास्ट न हो सके यह कैसे हो सकता है ? ब्राडकास्टिग-व्यवस्थापकने कभी इस रुख और कभी उस रुख माइक लगानेका भरसक प्रयास किया, परन्तु जिगर मुंह इधर-उधर करते हुए गजल पढते रहे। प्रबन्धकने आजिजी-से कहा—"हुजूर....." । आप बात काटकर बोले—"हम आपके ताबेअ नहीं, जैसे हमारा मिजाज चाहेगा, वैसे पढेंगे।" बेचारा प्रबन्धक मन मसोसकर रह गया।

कम्पनी बागके एक क्लबमें आलीशान मुशाअरा था। रविश सिद्दीक़ी, ताजवर नजीबाबादी, एहसान बिनदानिश, बहजाद लखनवी, साग़र निज़ामी अपना कलाम सुना चुके थे। इसी मुशाअरेमें एहसान बिन दानिशसे 'ना-

ख्वान्दा खातून' और 'मजदूरकी मौत' जैसी प्रसिद्ध नज्में सुननेका अवसर मिला। बहजाद लखनवीने 'जमुनाका किनारा' नज्म और 'जवानी लुटा दी' गजल पढी। सागर साहबने भी अपनी मशहूर गजल 'जवानी लुटा दी' बहुत शानसे पढी। तभी यकायक जिगर साहबकी झलक दिखाई दी। जबकि सवारीसे उतरकर वे क्लबके एक कमरेमे दाखिल हो रहे थे।

शाइर और श्रोता सभी बेचैनीसे उनका इन्तिजार कर रहे थे, मगर जिगर साहब कमरेसे बाहर निकल नही रहे थे। सभीकी उत्सुक नज़रे कमरेकी तरफ लगी हुई थी। अब तक तो काफी पी ली होगी, फिर भी नही आ रहे है, आखिर माजरा क्या है ? तभी मेरे मित्र सुमत साहबने कानमे कहा—"हसन निजामीकी मौजूदगीमे जिगर हरगिज़ नही आयेगे।"

मुशाअरेके सदर तो एक रईस थे। मगर सदरके फराएज़ हसन निजामी साहब अदा कर रहे थे। हर शाइरका परिचय अपने मखसूस अन्दाजमे कराते जाते थे और कलाम पढनेपर इतनी नपी-तुली व्याख्या करते जाते थे कि सुनते ही बनती थी।

यकायक हसन निजामी साहब उठे और फ़र्माया—"मुझे एक जरूरी मीटिगमे शिरकत करनेको जाना पड रहा है। बीचमे इस तरह उठकर चले जानेपर उम्मीद है आप माफ फ़र्मायेगे।"

हसन निजामी साहब अभी पण्डालमे बाहर हुए ही थे कि जिगर साहब-को मदहोशीकी हालतमे पण्डालमे देखा। लोगोके इसरारपर गजल पढने माइकके सन्मुख आये। मगर नशा इतना गहरा था कि किसी तरह एक गजल कह पाये। बावजूद कोशिशके दूसरी गजल न सुना सके।

गजल सुनाते हुए आपेमे न थे। बेखुदी तारी थी। लेकिन लोगोके एहतरामका यह आलम कि कोई इस तरफके हाथमे और कोई उस तरफके हाथमें सुलगी हुई सिग्रेट थमा रहा है और आप उसी आलममे किसी तरह एक गजल पढ पाये है।

लोगोंको जिगरकी इतनी अधिक मै-परस्तीपर बहुत ज्यादा मलाल हुआ। कफे-अफसोस मलते हुए मुशाअरेसे उठे।

हसन निजामी साहबके सामने पिये हुए आना जिगर साहबने अदबन मुनासिब न समझा या उनसे कोई चश्मक थी, यह मालूम न हो सका।

हर्ष है कि जिगर साहबने अपने उस्ताद 'असगर' साहबके प्रयत्नोंसे सुराका त्याग कर दिया है और अब वे उस तरफ देखते भी नहीं।

जिगर अपने उस्ताद हजरते असगर गोण्डवीका कितना अधिक अदब करते थे? यह रशीद अहमद साहब सिद्दीकीसे सुनिए—"बिल्कुल याद नहीं आता कि जिगर साहबसे पहले-पहल कब, कहाँ और कैसे मुलाक़ात हुई। मुमकिन है इलाहाबादमें हुई हो, जहा असगर साहब मरहूम, हिन्दुस्तानी एकेडेमी (यू-पी) मे सीगए-उर्दूके मुशीरे-अदबी (उर्दू-ग्रन्थमालाके सलाहकार) थे। किसी कामसे इलाहाबाद जाना होता तो मेरा कयाम असग़र साहबके यहाँ होता। यह जमाना और उसके बादका काफी ज़माना ऐसा था, जब जिगर साहबपर शराबका बड़ा तसल्लुत (गलबा, अधिकार) था।.....इलाहाबादमे असग़र साहबके सामने जिगर साहब इस तरह खामोश मोअद्दब (शिष्ट तथा नम्र) और आंखे नीची किये हुए बैठते कि उनसे गुफ्तगू भी की जाती तो सिर्फ हाँ, नही, मे मुश्किलसे जवाब देते और फिर सर झुका लेते।.....उनको देखकर ऐसा महसूस होता, जैसे वे खुद न आये हो, बल्कि किसीने पहुँचा दिया हो और इसके मुन्तजिर हों कि मौका मिले तो फिर अपनी मुहिम पर चले जाये।"

जिगर अपने उस्तादका जितना अधिक अदब करते थे। असगर भी उतना ही इन्हे पुत्रतुल्य प्यार करते थे। इनको इमामे-मैखाना देखकर कुढते थे, क्रुद्ध होते थे, और इनके भोजन वगैरहकी पूरी सार-सँवार रखते थे। रशीद अहमद सिद्दीक़ी साहब लिखते है—"एक दफा इलाहाबाद पहुंचा तो असगर साहबके यहाँ जिगर साहब फिर उसी हालमे मिले। खानेका वक़्त आया तो मै और असगर साहब खानेके कमरेकी तरफ चले। जिगर

साहबने शिरकतसे माजूरी (भोजन करनेकी क्षमा)का इजहार किया। असगर साहब उस दिन कुछ खफा मालूम होते थे। चलते-चलते खडे हो गये और जिगर साहबको मुखातिब करके बोले—"ये सब तुम्हारे शेर नही सुनते, तुम्हारा गोश्त खाते हैं।"

खाना खाते हुए रशीद साहबने माजरा पूछा तो असगर साहबने खानेसे हाथ रोक लिया और हजी लहजे (व्यथा भरे स्वर)मे बोले—'रशीद साहब! आपको क्या मालूम यहाँ ऐसे बेरहम लोग भी हैं, जो इनको जहाँ चाहते हैं पकड लेते हैं और पिला-पिलाकर इनसे शेर सुनते हैं और जब ये अधमुए हो जाते हैं, इक्केपर लाद-फाँदकर यहाँ पहुँचा देते हैं।' रशीद साहबने देखा असगर साहब बोलते हुए बेकैफ हो गये और खानेसे भी हाथ खीच लिया।

"खाना खाते वक्त मुलाजिमसे पूछते जाते थे कि यह खाना या वह खाना जिगर साहबके लिए रख दिया है या नही। इससे इत्मीनान नही होता था तो डोंगे और प्लेटसे निकालकर अलहदा प्लेटोंमे रखते जाते और कहते—"यह सब जिगर साहबके लिए है, वगैर खाना खिलाये उनको बाहर न जाने देना।"

शराबसे आलूदा दामन निचोडे हुए और तौबा किये हुए जिगर साहबको वर्षो हो गये। मगर जब रात-दिन उसीमे लथ-पथ रहते थे, तब भी उनसे कोई हल्के किस्मका व्यवहार न होता था। वाणी और शरीरको सयत रखते थे। रशीद अहमद सिद्दीकी साहब लिखते हैं—

"मैंने जिगर साहबको तक़रीबन हर हाल और हर सुहबतमे देखा है। खूबसूरत नौजवान आजाद औरतोंमे, माँ-बहन-बेटियोंमे, उमाएद और अकाबिर (कौमी नेताओं, रईसो और बडे आदमियो) की मौजूदगीमे, तुलबा, व असातजा (विद्यार्थियों और शिक्षकों) मे और दूसरे संजीदा हल्कों (गम्भीर और प्रतिष्ठित समूह)मे। गुफ्तारो-किरदारके एतबार (वार्तालाप और व्यवहारकी दृष्टि)से मैंने उनको कही क़ाबिले

गिरफ़्त न पाया। औरतोंकी मौजूदगीमें जिगर साहब अफीफ़-ओ-शफ़ीक (नेक चलन और कृपा करनेवाले) नजर आयेंगे। उनकी जबानसे कोई हल्की बात न निकलेगी और निगाह कभी बेबाक और बेमहाबा (स्वच्छन्द और बेहया) न होगी। औरतोंकी मौजूदगीमें कितअनजर, बेतकल्लुफ दोस्तोंमें मैंने कभी यह न देखा कि जिगर साहबने बेख़यालीमें या तफरीहन कोई ऐसा जुमला कहा हो जिसमें औरतोंसे तफरीह या औरतोंकी तजहीक (स्त्रियोंसे दिल-बहलाव या उनसे बुरे मजाक)का पहलू निकलता हो। कम-से-कम मेरी जानपहचानका कोई उर्दू शाइर ऐसा नहीं है, सिवा 'फ़ानी' मरहूमके जो इस बारेमें जिगर साहबका मुकाबिला कर सके।"

जिगर साहबके स्वाभिमानके सम्बन्धमें आप लिखते हैं—"मामूली आदमियोंकी बदतमीजी वे बिलउमूम (अक्सर) नजरन्दाज कर देते हैं। लेकिन किसी बड़े आदमीसे जरा भी कोई नावाजिब हरकत सरजद हो जाये तो जिगर साहब बगैर कुछ कहे या किये न रहेंगे। चाहे उसका अंजाम कुछ ही हो। भोपालके नवाबजादा रशीदुलजफर साहब ज़मानए-तालिबे-इल्मी (विद्यार्थी अवस्था) से ही जिगर साहबकी बड़ी इज्जत करते हैं। एक जमानेमें उन्होंने जिगर साहबका वजीफा मुकर्रर करा दिया था और किसी तरहकी कोई पाबन्दी नहीं आइद की थी कि वे क्या करें या कहाँ रहें। इस ज़मानेमें वालियाने-रियासतमें-से अक्सर यह चाहते कि जिगर साहब उनसे वाबस्ता (सम्बन्धित) हो जायें। उनमें-से एक जो बहुत बड़ी रियासतके चश्मो-चिराग थे। इसके दरपै हुए (तुल गये) कि जिगर साहब जिस मुआवजे और शर्तपर चाहें, उनके मुतवस्सिलीन (वृत्ति लेनेवालों)में शामिल हो जायें। तरह-तरहके डोरे डाले गये। जिगर साहबकी माली हालत खराब थी, भूपालके वजीफ़ेसे बस बसर-औकात हो जाती थी। जिगर साहब इस आफ़रको खुश असलूबी (सुरुचिपूर्ण ढंग)से टालते रहे। एक दिन ऐसा इत्तफ़ाक हुआ कि रईसने जिगर साहबसे बरमला अपनी ख्वाहिशका इजहार कर दिया। जिगर साहबने बात टालनी चाही, लेकिन

कामयाबी न हुई। इसरार (आग्रह) बढ़ा और इसरारमें कुछ रंगे-अमारत (रईसाना-ठसक) भी झलका। जिगर साहब बे-काबू हो गये। बोले—'जनाब आप मुझे दागोंसे तरीदना चाहते हैं। मैं तो रशीदुलजफर खाँ साहबके हाथों बिक चुका हूँ।' हाजिरीन सन्नाटेमें आ गये और जिगर साहब पर चले गये"

जिगर साहब दिलके कितने नेक हैं एक घटना सुनिए—"जिगर साहब जब कभी मेरे यहाँ आये, मैंने यही सवाल किया—'सफरमें क्या खो आये?' और तकरीबन हमेशा यही मालूम हुआ कि कुछ-न-कुछ कहीं-न-कहीं छोड़ आये। एक दफा मुशाअरेमें जो कुछ मिला, उसे जेबमें रख लिया था। जिनके यहाँ ठहरे थे, उन्होंने जिगर साहबकी देख-भालके लिए अपने किसी अजीजको मुकर्रर कर दिया था। उन्होंने जिगर साहबकी बड़ी खिदमत की। हरवक्त मौजूद रहते और इजहारे-अकीदत (श्रद्धा-भक्ति प्रकट) करते। जिगर साहबको गाफिल समझकर उन्होंने सारे रुपये निकाल लिये। जिगर साहब कहते थे कि वे यह सब देख रहे थे, लेकिन चुप रहे। मैंने पूछा—'यह क्यों?' बोले—"यह वाकेआ ऐसे वक्त हुआ, जब मैं जाए-कयामसे रुखसत होकर स्टेशन आ रहा था। बहुत-से लोग भी मौजूद थे। कुछ अच्छा न मालूम हुआ कि वहाँ इस चोरीका ऐलान करूँ और किसी शरीफ आदमीको रुसवा करूँ।"

जिगर साहबकी सजीदगी और बड़प्पनके बारेमें फर्माते हैं—"खिलवत हो या जलवत (एकान्त हो या समूह) जिगर साहबको मैंने साथी शुअराके कलामपर कभी हाशियाआराई (नुक्ताचीनी) करते नहीं पाया। शाइरोंमें उनकी तरह सजीदा और खामोश बैठनेवाला शाइर शायद ही कोई और हो। उनकी जबानसे कोई फिकरा निकलेगा भी तो तहसीन और हिम्मत अफजाईका। . . ये मुशाअरेमें शुरूसे आखिर तक दोजानू नीची नजर किये हुए बैठे रहते हैं। खाह मुशाअरा कितनी ही देरमें क्यों न खत्म हो।"[१]

[१] नकूश जिल्दियात नम्बर जनवरी १९५६ पृ० ३१६-३२२।

अब हम 'नक़ूश'के गजल नं० १९५६ से कुछ गजलें और दे रहे हैं—

बाते हैं दो, मक़सूद है एक।
तेरी तलब या अपनी तलब॥

तर्के-तलब और इत्मीनान।
देख तो मेरा हुस्ने-तलब॥

———

दुनियाके सितम याद, न अपनी ही वफ़ा याद।
अब मुझको नहीं कुछ भी मुहब्बतके सिवा याद॥

क्या लुत्फ़ कि मैं अपना पता आप बताऊँ।
कीजे कोई भूली हुई ख़ास अपनी अदा याद॥

मैं तर्के-रहो-रस्मे-जुनूँ कर ही चुका था।
क्यों आ गई ऐसेमें तेरी लग़ज़िशे-पा याद॥

क्या जानिए क्या हो गया, अरबाबे-जुनूँको।
जीनेकी अदा याद, न मरनेकी अदा याद॥

मुद्दत हुई इक हादिस-ए-इश्क़को लेकिन।
अबतक है तेरे दिलके धड़कनेकी सदा याद॥

———

यह दिन बहारके अबके भी रास आ न सके।
कि ग़ुंचे खिल तो गये, खिलके मुसकरा न सके॥

मेरी तबाहिए-दिलपर तो रहम खा न सके।
मगर कभी वे नज़र-से-नज़र मिला न सके॥

यह आदमी है वह परवाना, शमए-दानिशका।
जो रोशनीमें रहे, रोशनीको पा न सके॥

उन्हें सआ़दते-मंज़िल-रसी नसीब हो क्या।
वह पाँव राहे-तलबमें जो डगमगा न सके॥

न जाने आह! कि उन आंसुओंपें क्या गुज़री।
जो दिलसे आंख तक आये मिज़ह तक आ न सके॥

करेंगे मरके बक़ाए-दवाम क्या हासिल।
जो ज़िन्दा रहके मक़ामे-हयात पा न सके॥

जहे-ख़ुलूसे-मुहब्बत! कि हादिसाते-जहाँ।
मुझे तो क्या, मेरे नक़्शे-क़दम मिटा न सके॥

मेरी नज़रसे गुरेज़ाँ बहुत रहे लेकिन।
मेरे ख़ुलूसे-मुहब्बतसे बचके जा न सके॥

यह महरो-माह मेरे हम सफ़र रहे बरसों।
फिर इसके बाद मेरी गर्दको भी पा न सके॥

मेरी नज़रने शबे-ग़म उन्हें भी देख लिया।
वोह बेशुमार सितारे कि जगमगा न सके॥

नया ज़माना बनाने चले थे दीवाने।
नई ज़मीन नया आस्माँ बना न सके॥

जेहले-ख़िरदने दिन यह दिखाये।
घट गये इन्साँ, बढ़ गये साये॥

हाय वह क्योंकर जी बहलाये।
ग़म भी जिसको रास न आये॥

दिलपें कुछ ऐसा वक़्त पड़ा है।
भागे लेकिन राह न पाये॥

झूटी है हर-एक मसर्रत।
रूह अगर तसकीन न पाये॥

हुस्न वही है हुस्न, जो ज़ालिम।
हाथ लगाये हाथ न आये॥

ज़ब्ते-मुहब्बत, शर्ते-मुहब्बत।
जी है कि ज़ालिम उमड़ा आये॥

नग़मा वही है नग़मा, कि जिसको।
रूह सुने और रूह सुनाये॥

राहे-तलब आसान हुई है।
ज़ुल्फ़ो-मिज़हके साये-साये॥

कोई यह कह दे गुलशन-गुलशन।
लाख बलायें एक नशेमन॥

कामिल रहज़न, क़ातिल रहज़न।
दिल-सा दोस्त न दिल-सा दुश्मन॥

फूल खिले हैं गुलशन-गुलशन।
लेकिन अपना-अपना दामन॥

उमरें बीतीं सदियाँ गुज़रीं।
है वही अबतक अक़्लका बचपन॥

इश्क़ है प्यारे खेल नहीं है।
इश्क़ है कारे-शीशा-ओ-आहन॥

बर्क़े-हवादिस अल्लाह-अल्लाह।
झूम रही है शाख़े-नशेमन॥

बैठे हम हर बज़्ममें लेकिन।
झाड़के उट्ठे अपना दामन॥

दिल कि मुजस्सिम आईना-सामाँ।
और वह ज़ालिम आईना-दुश्मन॥

ख़ैर मिज़ाजे-हुस्नकी या रब!
तेज़ बहुत है दिलकी धड़कन॥

तुझ-सा हसीं और ख़ूने-मुहब्बत।
वहम है शायद सुर्ख़िए-दामन॥

आज न जाने राज़ यह क्या है?
हिज्रकी रात और इतनी रौशन॥

आ कि न जाने तुझ बिन कबसे।
रूह है लाशा, जिस्म है मदफ़न॥

क़ितअ़

काम अधूरा और आज़ादी।
नाम बड़े और थोड़े दर्शन॥

शमअ़ है लेकिन धुन्दली-धुन्दली।
साया है लेकिन रौशन-रौशन॥

इ़ल्म ही ठहरा इ़ल्मका बाग़ी।
अ़क़्ल ही निकली अ़क़्लकी दुश्मन॥

हस्तिए-शाइ़र अल्लाह-अल्लाह।
हुस्नकी मंज़िल इ़श्क़का मसकन॥

रंगीं फ़ितरत, सादा तबीअ़त।
फ़र्शनशीं और अ़र्श नशेमन॥
काँटोंका भी हक़ है कुछ आख़िर।
कौन छुड़ाए अपना दामन॥

ग़ज़लें

सरापा हक़ीक़त मुजस्सिम फ़साना।
मुहब्बतका आ़लम, जुनूंका ज़माना॥
वह पहले-पहल दोनों जानिब यह आ़लम।
अदा बे तअ़ल्लुक़, नज़र महरुमाना॥
नज़र उठते-उठते, नज़र मिलते-मिलते।
धड़कते दिलोंका वह नाज़ुक फ़साना॥
तबीअ़त शगुफ़्ता मगर खोई-खोई।
हर अन्दाज़ दिलकश, मगर वालेहाना॥
वह शेरो-तरन्नुमका पुरकैफ़ मौसम।
वह अश्को-तबस्सुमका रंगीं ज़माना॥
ग़ुरूरे-तजम्मुल मगर ज़ख़्म-ख़ुर्दा।
शिकस्ते-मुहब्बत, मगर फ़ातेहाना॥

यह तेरा जमाले कामिल, यह शबाबका ज़माना।
दिले-दुश्मनां सलामत, दिले-दोस्तां निशाना॥
मुझे इ़श्क़की सदाक़तपै भी शक-सा हो चला है।
मेरे दिलसे कह गई क्या, वह निगाहे नाक़िदाना॥

मेरी ज़िन्दगी तो गुज़री तेरे हिज्रके सहारे।
मेरी मौतको भी प्यारे कोई चाहिए बहाना॥

मैं वह साफ़ ही न कहदूं जो है फ़र्क़ तुझमें मुझमें।
तेरा, दर्द दर्दे-तनहा, मेरा ग़म, ग़मे-ज़माना॥

मेरे दिलके टूटनेपर है किसीको नाज़ क्या-क्या ?
तुझे ऐ 'जिगर' मुबारक यह शिकस्ते-फ़ातेहाना॥

किसी सूरत नमूदे-सोज़े-पिनहानी नहीं जाती।
बुझा जाता है दिल, चेहरेकी ताबानी नहीं जाती॥

सदाक़त हो तो दिल सीनोंसे खिचने लगते हैं वाइज़!
हक़ीक़त ख़ुदको मनवा लेती है मानी नहीं जाती॥

जले जाते हैं बढ़-बढ़कर, मिटे जाते हैं गिर-गिरकर।
हुज़ूरे-शमअ़ परवानोंकी नादानी नहीं जाती॥

वोह यूं दिलसे गुज़रते हैं कि आहट तक नहीं होती।
वोह यूं आवाज़ देते हैं कि पहचानी नहीं जाती॥

मुहब्बतमें इक ऐसा वक़्त भी दिलपर गुज़रता है।
कि आंसू ख़ुश्क हो जाते हैं तुग़यानी नहीं जाती॥

'जिगर' वोह भी जे-सर-ता-पा मुहब्बत ही मुहब्बत है।
मगर उनकी मुहब्बत साफ़ पहिचानी नहीं जाती॥

अ़जब आ़लम-सा दिलपर छा रहा है।
हंसी जैसे कोई शर्मा रहा है॥

वह ज़ुल्फ़ें दोशपर बिखरी हुई हैं।
जहाने-आर्ज़ू थर्रा रहा है॥

गले मिलकर वह रुख़सत हो रहे हैं।
मुहब्बतका ज़माना आ रहा है॥

वह ख़ुद तस्कीने-ख़ातिर कर रहे हैं।
मगर दिल है कि डूबा जा रहा है॥

तबीअ़त है कि ठहरी जा रही है॥
ज़माना है कि गुज़रा जा रहा है॥

मेरी रूदादे-ग़म वह सुन रहे हैं।
तबस्सुम-सा लबोंपर आ रहा है॥

'जिगर' ही का न हो अफ़साना कोई।
दरो-दीवारको हाल आ रहा है॥

———

मुहब्बत सुलह भी पैकार भी है।
यह शाख़े-गुल भी है तलवार भी है॥

तबीअ़त इश्क़की ख़ुद्दार भी है।
इधर नाज़ुक मिज़ाजे-यार भी है॥

महफ़िलें जिनसे इक दुनिया है नालाँ।
इन्हींसे गरमिए-बाज़ार भी है॥

ग़नीमत है कि इस दौरे-हविसमें।
तेरा मिलना बहुत दुश्वार भी है॥

३० अगस्त १९५७ ई०



'यगाना' चंगेज़ी

[१८८४–१९५६ ई०]

मिर्ज़ा वाजिदहुसैन 'यगाना' चंगेज़ख़ाँके वंशजोंमें-से हैं। आपके पूर्वज ईरानसे भारत आये थे और तत्कालीन सल्तनतकी तरफ़से पटने (अज़ीमाबाद) में कुछ जागीर प्रदान किये जानेपर वहीं बस गये थे। वहीं १८८४ ई०के लगभग आपका जन्म हुआ। उर्दू-फ़ारसीकी शिक्षाके अतिरिक्त १९०३ ई०में आपने मैट्रिक परीक्षा भी पास की। स्कूलमें सदैव प्रथम रहे और वज़ीफ़े, तमग़े, इनाम आदि हमेशा पाते रहे।

शाइरीमें आपको 'शाद' अज़ीमाबादी-जैसे बड़े उस्तादका शिष्य होनेका गौरव प्राप्त हुआ। १९०५ ई०में आप स्वास्थ्य-सुधारकी दृष्टिसे लखनऊ गये थे। वहाँका वातावरण आपको इतना पसन्द आया कि वहीं सकूनत इख़्तियार कर ली और १९१३ ई०में वहींके एक प्रतिष्ठित परिवारकी कन्यासे शादी भी हो गई। उन दिनों आप 'यास' उपनामसे शाइरी करते थे और 'यास' अज़ीमाबादी नामसे प्रसिद्ध थे।

जिन दिनों आप लखनऊ पहुँचे, उन दिनों लखनऊमें 'नासिख़' और 'अमीर मीनाई'का रंग तो उड़ चुका था, मगर 'मीर'-ओ-'ग़ालिब'की ग़मो-दर्दवाली शाइरीका असफल अनुकरण हो रहा था। मर्सियेकी शाइरीका बोल-बाला था। जिसे देखो वही रोने-बिसूरनेकी शाइरीमें

लीन मालूम होता था। यह गलत अनुसरण 'यास'को न भाया, 'यास'ने मुशाअरोंमे शिरकत फर्माकर और अखबारोंमे निरन्तर लिखकर अपने रगकी धूम मचा दी। आपके कलाममे 'मीर'-ओ-'आतिश'के रगकी पुट होती थी। कहनेका और बयान करनेका अपना निजी अन्दाज था। चन्द ही दिनोमे 'यास'का तूती बोलने लगा। लखनवी उस्तादोको यह कब सहन हो सकता था, उन्होने बहुत जोरोसे मुखालिफत शुरू कर दी। 'यास' इन विरोधोंसे कब दबनेवाले थे। 'यास'ने हार मानना कभी सीखा ही नही। आप स्वभावतः जिद्दी, स्वाभिमानी और अहमन्य है। अतः आपने डटकर मुकाबिला ही नही किया, अपितु वोह दन्दाँ-शिकन जवाबी हमले किये कि रहे नाम साईका।

उन्ही दिनो आपका 'नश्तरे-यास' प्रकाशित हुआ तो लखनवी उस्ताद और भी चिराग-पा हो गये। परिणामस्वरूप कागजी जग छिड गई। १९१५ ई०मे आपने शाइरी सम्बन्धी एक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ किया तो दबी आग फिर भडक उठी। लेकिन मिर्जाने तनिक भी चिन्ता न की और अपनी टेकपर बराबर अडिग रहे।

"नतीजा यह हुआ कि तमाम लखनऊ और सारा अवध एक तरफ हो गया और मिर्जा यगाना एक तरफ़। अच्छा खासा महाज कायम हो गया। जिसका जोर-शोर तकरीबन बीस सालतक रहा। लखनऊके शुअराने मिर्जा यगानाका इस हदतक बाईकाट किया कि जिस मुशाअरेमे वे जाते थे, उसमे तमाम दूसरे शुअरा शिरकत नही करते थे। नतीजा यह हुआ कि लोग मिर्जा यगानाको मुशाअरोंमे मदऊ करनेसे एहतराज करने लगे। मिर्जा यगानाने तकरीबन १९१५ ई०से मिर्जा गालिबके कलामकी तनकीद (आलोचना) करना शुरू की। इससे उनका मकसद गालिब-परस्तोकी रविशकी इस्लाह थी। मगर नतीजा यह बरामद हुआ कि सारे हिन्दुस्तानके शाइर और अदीब बल्कि यूं कहिए कुल अहले-जौक मिर्जा यगानासे बेजार हो गये। मिर्जा यगानाकी गालिबसे दुश्मनी भी बढ़ती ही गई। ताअाँ कि

उन्होने १६३५ ई०मे 'गालिब-शिकन' के नामसे एक रिसाला शाया किया।[1]"

आपकी जिद और उन दिनोके सघर्षकी एक घटनाका उल्लेख हजरत शबनम रूमानी अक्तूबर १६५६के 'नक़ूश' पृ० १४५३मे इस प्रकार करते है—"मिर्ज़ा यगाना और अजीज लखनवीमे हमेशा इख्तलाफ़ (मतभेद) रहा। जिस मुशाअरेमे दोनों हजरात होते। यगाना साहब मुसिर (बजिद) होते कि मै अजीजके बाद पढूंगा, और मुखालिफ जमाअत (विरोधीदल) 'मअयारे-अदब' (एक साहित्य-सस्था) मुतमन्नी (आर्जूमन्द) होती कि अजीज साहब यगानाके बाद पढे। यह कश-म-कश यहाँतक बढती कि दोनों बगैर ग़जल पढे उठ जाते और अहले मुशाअरा सर पीटते रह जाते। एक बार सीतापुरके एक बडे मुशाअरेमे यही इख्तिलाफ शुरू हो गया। 'दिल' शाहजहाँपुरीको बानिये-मुशाअराने बीचमे पडनेको कहा। लखनऊके एक उम्मी शाइर (अनपढ़) शफ़ीक लखनवी भी शरीके-महफिल थे। वे बिल्कुल गैर जानिबदार (किसी भी दलसे सम्बन्धित न) थे। 'दिल' पहले अराकीने-मअयारे-अदब (उक्त सस्थाके कार्यकर्त्ताओ) के पास गये। उनको समझा-बुझकर इस बात पर राजी कर लिया कि उनकी जमाअतके सब शुअरा पहले पढ़ले। उनके बाद मिर्जा यगाना और फिर 'शफीक' लखनवी। चूंकि शफीक साहब लखनऊके है और यगानाके बाद पढ़ेगे। इसलिए जीत अहले लखनऊकी होगी। फिर आप यगानाके पास गये और उनको समझाया कि आप ग़जल उन लोगोंके बाद ही पढेगे। मगर आपके बाद शफ़ीक़ लखनवीको पढ़वा दिया जायगा जो एक अनपढ शाइर है। उनके आखिरमे पढ़नेमे आपकी कोई तौहीन न होगी। यगानाने भी यह तजवीज़ मान ली।"

इस निरन्तरके विरोध, उपेक्षा, घृणा आदिके कारण मिर्ज़ामे एक विचित्र प्रकारकी प्रतिक्रिया अकुरित हो उठी। आप प्रारम्भमे मिर्ज़ा

---

[1] नक़ूश, अक्तूबर १६५६ पृ० ८६८।

'ग़ालिब'के प्रशसक थे, किन्तु लखनवी उस्तादोंकी अन्धी श्रद्धा-भक्ति और असफल अनुकरणकी प्रतिक्रिया-स्वरूप आप मिर्ज़ा ग़ालिबके घोर विरोधी बन बैठे। यहाँतक कि मिर्ज़ा ग़ालिब आपके जन्मसे पूर्व ही परलोक सिधार चुके हैं, और उम्रके लिहाज़से भी आपके दादाकी उम्रोके रहे होगे। फिर भी आप अपनेको 'ग़ालिब'का चचा अथवा ग़ालिब-शिकन कहने लगे और यह प्रतिक्रिया यहाँतक बढ़ी कि आपने सैकड़ो गजलोमे इन शब्दोका प्रयोग किया है, और करते रहते हैं। यथा—

भोण्डापन है मज़ाक़े-ग़ालिबमें रचा।
मिर्ज़ाका कलाम अपनी नज़रोंमें न जँचा॥

महफ़िलमें है अब रंगे-'यगाना' ग़ालिब।
वोह कौन 'यगाना'? वही 'ग़ालिब'के चचा॥

'यास'के बजाय अब 'यगाना' उपनामसे शेर कहने लगे। निरन्तरके विरोधोके कारण लखनऊका वातावरण इतना विषाक्त हो गया कि आप लाहौर चले गये और वहाँ उर्दू-साहित्यके प्रसिद्ध सम्पादकाचार्य तथा आलोचक मौलाना 'ताजवर' नजीबाबादीके साथ साहित्यिक अनुष्ठानमे लग गये। वहाँ भी पजाबियोंकी प्रान्तीय भावनाओके कारण आप स्थिर न रह सके और लखनऊ लौट आना पड़ा। लखनऊ पहुँचनेपर अहले-लखनऊके पुराने ज़ख्म फिर हरे हो गये, और वे आपको हर तरहसे मिटानेको कटिबद्ध हो गये। आखिर महाराजा किशनप्रसाद 'शाद' प्रधान मत्रीके निमत्रणपर आप हैदराबाद चले गये और वहाँ किसी ज़िलेमे सब-रजिस्ट्रार बना दिये गये।

मिर्ज़ा 'यगाना' सर्वधर्म समभावी हैं। साम्प्रदायिकतासे कोसो दूर हैं। फ़र्माया है—

कृशनका[1] हूँ मैं पुजारी अलीका बन्दा हूँ।
'यगाना' शाने-खुदा देखकर रहा न गया॥

---

[1]शुद्ध नाम कृष्ण।

मिर्जा किसी बाहरी खुदाके कायल नहीं, वह तो अपने मन-मन्दिरके पुजारी हैं। जो ईश्वर अपने घटमें विराजमान है, उसे बाहर खोजना सरासर भूल है—

आपसे बाहर चले हो ढूँढ़ने।
आह! पहला ही क़दम झूठा पड़ा॥

दिखावटी पूजा-उपासनासे आपको बेहद चिढ है—

क़लमा पढ़ूँ तो क्यों पढ़ूँ, सबकी नज़रपै क्यों चढ़ूँ?
यादे-खुदा तो दिलसे है, दिलसे ज़बाँतक आये क्यों॥

मिर्जा मजहबी दीवानगीको इन्सानियतके लिए बोझ समझते हैं—

दुनियाके साथ दीनकी बेगार! अलअमाँ।
इन्सान आदमी न हुआ जानवर हुआ॥

और पुरुषार्थ छोड़कर जो हाथपर हाथ धरे ईश्वरके भरोसे बैठनेके आदी हैं, उनके समक्ष ईश्वरकी सर्वशक्तिमानताकी निःसारता बताते हुए फ़र्माया है—

आईको टाल दे जभी जानें।
दम-ब-खुद है तो फिर खुदा क्या है॥

छैल-छबीले विलासी युवकोंपर कितना मीठा व्यंग्य किया है—

वक़्त जिसका कटे हसीनोंमें।
कोई मर्दाना काम क्या करता?

यह नौजवानी, यह नामुरादी।
छाई है मुँह पर यह मुर्दनी क्या॥

मिर्जा सबके हितमें अपना हित समझते हैं। वे आपा-धापीके क़ाइल नहीं। यहाँतक कि एक ही नावमें बैठे मुसाफ़िरोंको डूबते देखकर वे स्वयं भी डूब जाना श्रेष्ठ समझते हैं—

मुझे ऐ नाख़ुदा ! आखिर किसीको मुँह दिखाना है।
बहाना करके तनहा पार उतर जाना नहीं आता॥

महात्मा गांधी जीवनभर हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यका प्रयत्न करते रहे, परन्तु साम्प्रदायिक लोग सदैव अड़ंगा लगाते रहे, इसी भावको मिर्जा यूँ व्यक्त करते हैं—

सुलह ठहरी तो है बरहमनसे।
कहीं मज़हब अड़ा न दे कोई टाँग॥

इन्सान, इन्सानके आगे हाथ फैलाये, इस दयनीय स्थितिसे खीजकर मिर्ज़ाको कहना पड़ा—

ख़्वाह प्याला हो या निवाला हो।
बन पड़े तो झपट ले, भीक न माँग॥

ईश्वर और ख़ुदाके नामपर संसारमें जैसे वीभत्स कृत्य हुए हैं, वैसे कार्य नास्तिकियो, दोजखियो और दरिन्दोंसे होने सम्भव ही नहीं। धर्म, मजहबकी रक्षाके लिए जितने मानवोंकी हत्यायें होती रही हैं, यदि उन सबकी हड्डियाँ एकत्र की जा सकती तो सुमेरु पर्वतको अपनी इस ऊँचाईका इस क़दर गर्व न रहता। ईसाइयोंके रोमन कैथोलिक और प्रोटेसटैण्टोंका पारस्परिक वध, आस्तिकों-द्वारा नास्तिकोंका विध्वन्स, और अहले-इस्लाम-का गैर इस्लामियोंके खिलाफ जेहाद, पुराने पोथोंमें पड़े कराह रहे थे कि भारत-विभाजनके वक़्त ईश्वर-ख़ुदाके लाडले बेटोंने उनके नामपर जो लाखों मनुष्योंकी बलि दी है और लाखों नारियोंकी जो इस्मतदरी की है,

उसके समक्ष दरिन्दोंकी क्रूरता भी पानी-पानी हो गई। स्वयं ख़ुदा भी यह महसूस करने लगा होगा कि मैंने दुनिया बनाकर घोर अपराध ही किया है—

तख़लीक़े-काएनातके दिलचस्प जुर्मपर।
हँसता तो होगा आप भी यज़दाँ कभी-कभी॥

—अदम

ऐसे ही मजहबी उन्मादसे तग आकर मिर्ज़ा 'यगाना'ने अपने किसी मुसलमान दोस्तको[1] कुछ ऐसे शब्द लिख दिये, जो इस्लामके लिए अपमान-जनक समझे गये। बस फिर क्या था ? ख़ुदाके बन्दो और रसूलके इन लाडलोंने ७० वर्षके बूढे यगानाको घेर लिया। तारकोलसे मुँह काला करके, जूतोंका हार गलेमे डालकर उनको गधेपर बिठाना चाहा; मगर गधे-को मनुष्योंकी यह हरकत पसन्द न आई, और वह स्वयं शर्माकर भाग खडा हुआ। इस वाकअसे मजहबी दीवाने क्या सबक लेते, उनका इन्तिक़ाम और भड़क उठा, और उन्होने एक और गधेको पकडकर रिक्शामे जोता और मिर्ज़ा 'यगाना'को उसपर बिठाकर लखनऊभरमें घुमाया गया। थोड़ी-थोड़ी दूरपर उन्हे रिक्शापर खड़े होनेको मजबूर किया जाता था, ताकि जनता उनपर थूक सके, लानत-यलामत कर सके और यह सब दिनदहाडे उत्तरप्रदेशकी राजधानी लखनऊमें इसी अप्रेल १६५३को पुलिसकी चौकियों के सामने हुआ। मानवताका शव निकलता रहा, सभ्यता बैठी सर पीटती रही, मगर ख़ुदाके बन्दे ख़ुदाको ख़ुश करनेमें मसरूफ़ रहे।

सत्य बोलनेपर भी अनेक बाधाओं-मुसीबतोंका सामना करना पडता है, यह मिर्ज़ा यगाना खूब जानते थे, जैसा कि उन्होंने वर्षों पहले फर्माया भी था—

---

[1]यह हज़रत मौलवी अब्दुल माजिद साहब दरियाबादी थे। इन्होंने इस प्राइवेट पत्रको अपने अखबारमे प्रकाशित करके इस तरह उछाल दिया कि जनता क़ाबूसे बाहर हो गई।

शामत आ गई आखिर कह गया खुदा लगती।
रास्तीका फल पाता बन्दए-मुक़र्रब क्या ?

[बारगाहे खुदावन्दीका सबसे बडा फरिश्ता खरी बात कहनेपर जन्नतसे निकाल दिया गया। उसने यही कहा था कि 'जिस सरको मैंने तेरे हुजूरमे झुकाया है, उसे आदमे-खाकीके सामने क्योंकर झुका दूँ'? कितना उच्च और श्रेष्ठ उपासनाका भाव था, परन्तु खुदा साहब इस उच्च भावनाकी क़द्र न कर सके, और तानाशाहीपर उतर आये कि तूने आज्ञा-भग करके अनुशासन-हीनताका परिचय दिया है और उसे जन्नतसे निकाल दिया। जब फरिश्ते भी सत्य बोलनेपर दण्ड पा सकते है तो सर्व-साधारणकी तो बात ही क्या ?]

फिर भी न जाने क्यों चूक गये और ईर्ष्यालुओको व्यर्थमे ही आक्रमण करनेका अवसर दे दिया।

मिर्जा 'यगाना' वृद्धावस्थाके कारण हैदराबादसे आकर अब लखनऊ रहने लगे है।

चुना हुआ कलाम

खुदीका[1] नशा चढ़ा आपमें रहा न गया।
खुदा बने थे 'यगाना' मगर बना न गया॥
गुनाहे-जिन्दा-दिली कहिए या दिल-आजारी[2]।
किसीपे हँस लिये इतना कि फिर हँसा न गया॥
समझते क्या थे, मगर सुनते थे तरानए-दर्द।
समझमें आने लगा जब तो फिर सुना न गया॥
पुकारता रहा किस-किसको डूबनेवाला।
खुदा थे इतने, मगर कोई आड़े आ न गया॥

---

[1]अहमन्यताका; [2]सताना।

पहले अपनी तो ज़ात पहचाने।
राज़े-क़ुदरत बखाननेवाला ॥
जानकर और होगया अनजान।
हो तो ऐसा हो जाननेवाला ॥
पेटके हलके लाख बड़मारें।
कोई खुलता है जाननेवाला ?
खाकमें मिलके पाक हो जाता।
छानता क्या है छाननेवाला ॥
दिनको दिन समझे और न रातको रात।
वक़्तकी क़द्र जाननेवाला ॥

क्या ख़बर थी दिल-सा शाहं-शाह आख़िर एक दिन।
इश्क़के हाथों गदाओं-का-गदा[1] हो जायगा ॥

किस दिले-बेक़रारको तूने यह वलवला दिया।
देना न देना एक है, ज़र्फ़से[2] जब सिवा दिया ॥
हुस्न चमक गया तो क्या, बूए-वफ़ा तो उड़ गई।
इस नई रोशनीने आह दिलका कँवल बुझा दिया ॥

ज़िन्दा रक्खा है सिसकनेके लिए।
वाह अच्छे दोस्तसे पाला पड़ा ॥

किधर चला है ? इधर एक रात बसता जा।
गरजनेवाले गरजता है क्या, बरसता जा ॥
रुला-रुलाके ग़रीबोंको हँस चुका कलतक।
मेरी तरफ़से अब अपनी दसापै हँसता जा ॥

---

[1]भिक्षुक; [2]आवश्यकतासे अधिक, पात्रताके सिवा।

शरबतका घूँट जानके पीता हूँ ख़ूनेदिल।
ग़म खाते-खाते मुँहका मज़ातक बिगड़ गया॥

इसी फ़रेबने मारा कि कल है कितनी दूर।
इस आज-कलमें अबस[1] दिन गँवाये हैं क्या-क्या?
ख़ुशीमें अपने क़दम चूम लूँ तो जेबा[2] है।
वोह लग़्ज़िशोंपै[3] मेरी मुस्कराए हैं क्या-क्या॥

बस एक नुक्तए-फ़र्ज़ीका[4] नाम है काबा।
किसीको मरकज़े-तहक़ीक़का[5] पता न चला॥
उमीदो-बीमने[6] मारा मुझे दुराहेपर।
कहाँके दैरो-हरम[7]? घरका रास्ता न मिला॥

मुझे दिलकी ख़तापर 'यास'! शरमाना नहीं आता।
पराया जुर्म अपने नाम लिखवाना नहीं आता॥
बुरा हो पाए-सरकशका[8] कि थक जाना नहीं आता॥
कभी गुमराह होकर राहपर आना नहीं आता॥
मुसीबतका पहाड़ आख़िर किसी दिन कट ही जायेगा।
मुझे सर मारकर तेशेसे मर जाना नहीं आता॥
दिले-बेहौसला है इक ज़रा-सी ठेसका मेहमाँ।
वह आँसू क्या पियेगा जिसको ग़म खाना नहीं आता॥
सरापा राज़[9] हूँ मैं क्या बताऊँ कौन हूँ, क्या हूँ?
समझता हूँ मगर दुनियाको समझाना नहीं आता॥

गिला[10] किसे है कि क़ातिलने नीमजाँ[11] छोड़ा।
तड़प-तड़पके निकालूँगा हौसला दिलका॥

---

[1]व्यर्थ; [2]मुनासिब; [3]लड़खड़ानेपर; [4]कल्पना-विन्दुका; [5]खोजके लक्षका; [6]आशा-निराशाने; [7]काशी-काबा; [8]उद्दण्ड, उच्छृंखल पावोंका; [9]भेदोंका भण्डार; [10]शिकायत; [11]अर्द्धमृतक।

ख़ुदा बचाये कि नाज़ुक है उनमें एक-से-एक।
तुनक-मिज़ाजोंसे ठहरा मुआमला दिलका॥
किसीके हो रहो अच्छी नहीं यह आज़ादी।
किसीकी ज़ुल्फ़से लाज़िम है सिलसिला दिलका॥
पियाला ख़ाली उठाकर लगा लिया मुंहसे।
कि 'यास' कुछ तो निकल जाय हौसला दिलका॥

परवाने कर चुके थे सर-अंजामे-ख़ुदकुशी[1]।
फ़ानूस आड़े आ गया, तक़दीर देखना॥

चिराग़े-ज़ीस्त[2] बुझा दिलसे इक धुआँ निकला।
लगाके आग मेरे घरसे मेहमाँ निकला॥

तड़पके आबला-पा[3] उठ खड़े हुए आख़िर।
तलाशे-यारमें जब कोई कारवाँ निकला॥
लहू लगाके शहीदोंमें हो गये दाख़िल।
हविस तो निकली मगर हौसला कहाँ निकला?
लगा है दिलको अब अंजामे-कारका खटका।
बहारे-गुलसे भी इक पहलूए-ख़िज़ाँ निकला॥
ज़माना फिर गया चलने लगी हवा उलटी।
चमनको आग लगाके जो बाग़बाँ निकला॥
कलामे-'यास'से दुनिया में फिर इक आग लगी।
यह कौन हज़रते 'आतिश'का हमज़बाँ निकला?

हवाए-तुन्दमें[4] ठहरा न आशियाँ अपना।
चिराग़ जल न सका ज़ेरे-आस्माँ अपना॥

---

[1]आत्महत्याकी व्यवस्था; [2]जीवन-दीप; [3]पाँवके छाले; [4]तेज हवामें।

जरसने[1] मुज़दए-मंज़िल[2] सुनाके चौंकाया।
निकल चला था दबे पाँव कारवाँ अपना॥
ख़ुदा किसीको भी यह ख़्वाबे-बद न दिखलाये।
क़फ़सके सामने जलता है आशियाँ अपना॥

सुहबते-वाइज़में भी अँगड़ाइयाँ आने लगीं।
राज़ अपनी मैकशीका क्या कहें क्योंकर खुला॥

रोशन तमाम काबा-ओ-बुतख़ाना हो गया।
घर-घर जमाले-यारका अफ़साना हो गया॥
दयारे-बेख़ुदी है अपने हक़में गोशए-राहत।
ग़नीमत है घड़ीभर ख़्वाबे-ग़फ़लतमें बसर होना॥
दिले-आगाहने[3] बेकार मेरी राह खोटी की।
बहुत अच्छा था अंजामे-सफ़रसे[4] बेख़बर होना॥

लाश कम्बख़्तकी काबेमे कोई फिकवा दे।
कूचए-यारमें क्यों ढेर हो बेगानेका[5]॥

ज़ीस्तके[6] है यही मज़े वल्लाह।
चार दिन शाद[7], चार दिन नाशाद[8]॥
सब्र इतना न कर कि दुश्मनपर।
तल्ख़[9] हो जाय लज़्ज़ते-बेदाद[10]॥

आप क्या जानें मुझपे क्या गुज़री।
सुबहदम देखकर गुलोंका निखार॥

---

[1]यात्रीदलके ऊँटोंकी घण्टीकी आवाजने; [2]यात्राका अन्त होनेकी ख़ुशख़बरी; [3]जानकार दिलने; [4]यात्राके परिणामसे; [5]गैरका, शत्रुका; [6]जिन्दगीके; [7]ख़ुश; [8]नाख़ुश; [9]कड़ुवाहट आ जाये; [10]अत्याचारके आनन्दमे।

दूरसे देख लो हसीनोंको।
न बनाना कभी गलेका हार॥
अपने ही सायेसे[1] भड़कते हो।
ऐसी वहशतपै[2] क्यों न आए प्यार॥
तू भी जी और मुझे भी जीने दे।
जैसे आबाद गुलसे पहलू-ए-ख़ार॥
बेनियाज़ी[3] भली कि बेअदबी[4]।
लड़खड़ाती ज़बांसे शिकवए-यार॥
बन्दगीका सबूत दूँ क्योंकर।
इससे बेहतर है कीजिए इन्कार॥
ऐसे दो दिल भी कम मिले होंगे।
न कशाकश हुई न जीत न हार॥

ढूँढ़ते फिरते हो अब टूटे हुए दिलमें पनाह।
दर्दसे ख़ाली दिले-गाबर[5]-ओ-मुसलमाँ[6] देखकर॥

सब्र करना सख़्त मुश्किल है तड़पना सहल है।
अपने बसका काम कर लेता हूँ आसाँ देखकर॥

ऐसी पिला कि साक़िया! फ़िक्र न हो निजातकी।
नशा कहीं उतर न जाय रोज़े-शुमार देखकर॥
आबला-पा निकल गये काँटोंको रौंदते हुए।
सूझा फिर आँखसे न कुछ मंज़िले-यार देखकर॥

सब तेरे सिवा काफ़िर, आख़िर इसका मतलब क्या?
सिर फिरा दे इन्सांका ऐसा ख़ब्ते-मजहब क्या?

---

[1]छायासे; [2]बौखलाहटपर; [3]उपेक्षा; [4]उद्दण्डता; [5]नास्तिक; [6]मुसलमान।

जभीं करवट बदलती है बलाए-नागहाँ होकर।
अजब क्या सरपै आए पाँवकी ख़ाक आसमाँ होकर॥
उठो ऐ सोनेवालो! सरपै धूप आई क़यामतकी।
कहीं यह दिन न ढल जाये नसीबे-दुश्मनाँ होकर॥
अरे ओ जलनेवाले! काश जलना ही तुझे आता।
यह जलना कोई जलना है कि रह जाए धुआँ होकर॥

पसीना तक नहीं आता, तो ऐसी ख़ुश्क तौबा[1] क्या?
नदामत[2] वोह कि दुश्मनको तरस आ जाए दुश्मनपर॥

उस तरफ़ सात आसमाँ और इस तरफ़ इक नातवाँ[3]।
तुमने करवट तक न ली दुनियाको बरहम[4] देखकर॥

ख़ुदा जाने अजलको[5] पहले किसपर रहम आयेगा?
गिरफ़्तारे-क़फ़सपर[6] या गिरफ़्तारे-नशेमनपर[7]॥

मजाल थी कोई देखे तुम्हें नज़र भरकर।
यह क्या है आज पड़े हो मले-दले क्योंकर॥

कोई क्या जाने बाँकपनके यह ढंग।
सुलह दुश्मनसे और दोस्तसे जंग॥
क्या ज़माना था कैसे दुश्मन थे?
रातभर सुलह और दिनभर जंग॥
संगे-दिलको[8] बना दूँ देवता मैं।
आप क्या जाने बन्दगीके ढंग?

फिरते हैं भेसमें हसीनोंके।
कैसे-कैसे डकैत थाँग-की-थाँग॥

---

[1]गुनाह न करनेकी प्रतिज्ञा; [2]प्रायश्चित्तकी शर्म; [3]कमज़ोर; [4]क्रुद्ध; [5]मौतको; [6]पिंजरेमें बन्द पक्षीपर; [7]घोंसलेमें गिरफ्तार पक्षीपर; [8]पत्थर-हृदयको।

आह ! यह बन्दए-ग़रीब आपसे लौ लगाये क्यों ?
आ न सके जो वक़्तपर, वक़्तपै याद आये क्यों ?*

दीदकी[1] इल्तिजा[2] करूँ ? तिश्ना[3] ही क्यों न जान दूँ ।
परदए-नाज़[4] ख़ुद उठे, दस्ते-दुआ उठायें क्यों ?

बदल न जाये ज़मानेके साथ नीयत भी ।
सुना तो होगा जवानीका एतबार नहीं ॥
जो ग़म भी खायें तो पहले खिलायें दुश्मनको ।
अकेले खायेंगे ऐसे तो हम गँवार नहीं ॥

नतीजा कुछ भी हो लेकिन हम अपना काम करते हैं ।
सवेरे ही से दूरन्देश फ़िक्रे-शाम करते हैं ॥

दावरे-हश्र[5] होशियार, दोनोंमें इम्तियाज़[6] रख ।
बन्दए-नाउम्मीद[7] और बन्दए-बेनियाज़में[8] ॥
यादे-ख़ुदाका वक़्त भी आयेगा कोई या नहीं ?
यादे-गुनाह कब तलक शामो-सहर नमाज़में ?

नाख़ुदा[9] ! कुछ ज़ोरे-तूफ़ाँ-आज़माई भी दिखा ।
फ़िक्रे-साहिल छोड़ लंगर डाल दे मँजधारमें ॥

---

*इसी मज़मूनपर असर लखनवीका यह अमर शेर भी सुनें—

हम उसीको ख़ुदा समझते हैं ।
जो मुसीबतमें याद आ जाये ॥

[1]दर्शनोंकी; [2]प्रार्थना; [3]प्यासा, निराश; [4]प्रेयसीके नखरेका परदा; [5]प्रलयके दिन न्याय करनेवाले, ईश्वर ; [6]भेद-अन्तर, परख ; [7]असफल भक्तमें ; [8]अभिलाषा न रखनेवाले भक्तमें ; [9]नाविक ।

'यास' ! गुमराहीसे[1] अच्छी ज़हमते-वामान्दगी[2]।
डाल लो ज़ंजीर कोई पाए-कज-रफ़्तारमें[3] ॥

पैवन्दे-ख़ाक[4] होनेका अल्लाहरे इश्तियाक़[5]।
उतरे हम अपने पाँवसे अपने मज़ारमें ॥
शर्मिन्दए-कफ़न न हुए आसमाँसे हम।
मारे पड़े हैं सायए-दीवारे-यारमें ॥
कहते हो अपने फ़ेलका मुख़्तार है बशर[6]।
अपनी तो मौत तक न हुई इख़्तियारमें ॥
दुनियासे 'यास' जानेको जी चाहता नहीं।
वल्लाह् क्या कशिश है इस उजड़े दयारमें[7] ॥

मौत माँगी थी ख़ुदाई तो नहीं माँगी थी।
लो दुआ़ कर चुके अब तर्के-दुआ़ करते हैं ॥

गलेमें बाहें डाले चैनसे सोना जवानीमें।
कहाँ मुम्किन फिर ऐसा ख़्वाब देखूँ ज़िन्दगानीमे ॥
ग़नीमत जान उस कूचेमें थककर बैठ जानेको।
किसे दमभर मिला आराम दौरे-आसमानीमें ॥

यकसाँ कभी किसीकी न गुज़री ज़मानेमे।
यादश बख़ैर बैठे थे कल आशियानेमें ॥
सद्मा दिया तो सब्रकी दौलत भी देगा वोह।
किस चीज़की कमी है सख़ीके ख़ज़ानेमे ॥

---

[1]भटकनेसे; [2]थकावटकी तकलीफ़; [3]टेढी रफ़्तारवाले पांवोमे; [4]ज़मीनमे मिलनेका ; [5]चाव, शौक, ; [6]इन्सान ; [7]बस्ती, देश, ससारमे ।

अफ़सुर्दा[1] ख़ातिरोंको ख़िज़ाँ क्या, बहार क्या ?
कुंजे-क़फ़समें मर रहे या आशियानेमें ॥
हम ऐसे बदनसीब कि अबतक न मर गये ।
आंखोंके आगे आग लगी आशियानेमें ॥
दीवाने बनके उनके गलेसे लिपट भी जाओ ।
काम अपना कर लो 'यास' बहाने-बहानेमें ॥

हिजाबे-नाज़[2] बेजा 'यास' जिस दिन बीचमें आया ।
उसी दिनसे लड़ाई ठन गई शेख़ो-बरहमनमें ॥

तौबा भी भूल गये इश्क़में वोह मार पड़ी ।
ऐसे औसान गये हैं कि ख़ुदा याद नहीं ॥
क्या अजब है कि दिले-दोस्त हो मदफन[3] अपना ।
कुश्तए-नाज़[4] हूँ मैं क़ुश्तए-बेदाद[5] नहीं ॥

ख़ूनके घूंट बलानोश[6] पिये जाते हैं ।
ख़ैर साक़ीकी मनाते हैं जिये जाते हैं ॥
एक तो दर्द मिला उसपे यह शाहाना मिज़ाज ।
हम ग़रीबोंको भी क्या तोहफ़े दिये जाते हैं ॥
दिल है पहलूमें कि उम्मीदकी चिनगारी है ।
अबतक इतनी है हरारत कि जिये जाते हैं ॥

तो क्या हमीं हैं गुनहगार, हुस्ने-यार नहीं ?
लगावटोंका गुनाहोंमें क्या शुमार नहीं ?

---

[1]बुझे दिलोंकी; [2]प्रेयसीका शर्मीलापन; [3]क़ब्र;
[4]प्यारेके द्वारा मारा हुआ; [5]अत्याचारोंसे मारा हुआ नहीं;
[6]अत्यधिक पीनेवाले (शराबी) ।

खटका लगा न हो तो मज़ा क्या गुनाहका।
लज़्ज़त ही और होती है चोरीके मालमें॥
अल्लाह क़फ़समें आते ही क्या मत पलट गई।
आखिर हमीं तो हैं कि फड़कते थे जालमें॥

मेहराबोंमें सिज्दा वाजिब, हुस्नके आगे सिज्दा हराम।
ऐसे गुनहगारोंपै खुदाकी मार नहीं तो कुछ भी नहीं॥
दिलसे खुदाका नाम लिये जा, काम किये जा दुनियाका।
काफ़िर हो, दीदार हो, दुनियादार नहीं तो कुछ भी नहीं॥

सिज्दा वह क्या कि सरको झुकाकर उठा लिया।
बन्दा वोह है जो बन्दा हो, बन्दानुमा न हो॥
उम्मीदे-सुलह क्या हो, किसी हक़परस्तसे।
पीछे वोह क्या हटेगा, जो हदसे बढ़ा न हो॥

मज़ा जब है कि रफ़्ता-रफ़्ता उम्मीदें फलें-फूलें।
मगर नाज़िल कोई फ़ज़्ले-इलाही नागहाँ क्यों हो॥
समझमें कुछ नहीं आता पढ़े जाऊँ तो क्या हासिल?
नमाज़ोंका है कुछ मतलब तो परदेसी ज़बाँ क्यों हो?

दिल अपना जलाता हूँ, काबा तो नहीं ढाता।
और आग लगाते हो, क्यों तुहमते-बेजासे॥

बाज़ आ साहिलपै ग़ोते खानेवाले बाज़ आ।
डूब मरनेका मज़ा दरियाए-बेसाहिलमें है॥

मुफ़लिसीमें मिज़ाज शाहाना।
किस मरजकी दवा करे कोई॥

हँस भी लेता हूँ ऊपरी दिलसे।
जी न बहले तो क्या करे कोई॥

न जाने क्या हो यह दीवाना जिस जगह बैठे।
ख़ुदीके[1] नशेमें कुछ अनकही न कह बैठे॥

कोई ज़िद थी या समझका फेर था।
मन गये वोह मैंने जब उल्टी कही॥
शक है काफ़िरको मेरे ईमानमें।
जैसे मैंने कोई मुँह देखी कही॥
क्या ख़बर थी यह ख़ुदाई और है।
हाय! क्यों मैंने ख़ुदा लगती कही॥

ताअ़त[2] हो या गुनाह[3] पसे-पर्दा ख़ूब है।
दोनोंका मज़ा जब है कि तनहा[4] करे कोई॥

बन्दे न होंगे, जितने ख़ुदा हैं ख़ुदाईमें।
किस-किस ख़ुदाके सामने सिज्दा करे कोई?

इतना तो ज़िन्दगीका कोई हक़ अदा करे।
दीवानावार हालपै अपने हँसा करे॥

ज़माना ख़ुदाको ख़ुदा जानता है।
यही जानता है तो क्या जानता है॥
वोह क्यों सर खपाये तेरी जुस्तजूमें[5]?
जो अंजामे-फ़िक्रे-रसा[6] जानता है॥
ख़ुदा ऐसे बन्दोंसे क्यों फिर न जाये।
जो बैठा हुआ माँगना जानता है॥
वोह क्यों फूल तोड़े; वोह क्यों फूल सूँघे?
जो दिलका दुखाना बुरा जानता है॥

---

[1]अहमन्यताके; [2]उपासना; [3]पाप, जुर्म; [4]अकेले; [5]तलाशमें, चाहतमें; [6]मिलापके प्रयत्नका परिणाम।

क्यों होशमें फिर आया, क्यों हाथ मल रहा है ?
हदसे गुज़रनेवाले तेरी यही सज़ा है ॥
मंज़िलकी फ़िक्र क्यों हो, जब तू हो और मैं हूँ।
पीछे न फिरके देखूँ काबा भी हो तो क्या है ॥

हासिले-फ़िक्रे-नारसा[1] क्या है।
तू ख़ुदा बन गया बुरा क्या है ॥
कैसे-कैसे ख़ुदा बना डाले।
खेल बन्देका है ख़ुदा क्या है ॥
दर्दे-दिलकी कोई दवा न हुआ।
या इलाही ! यह माजरा क्या है ॥
नूर ही नूर है कहाँका ज़ुहूर।
उठ गया पर्दा अब रहा क्या है ॥
रहने दे हुस्नका ढका पर्दा।
वक़्त-बेवक़्त झाँकता क्या है ॥

यहींसे सैर कर लो 'यास' इतनी दूर क्यों जाओ।
अदम-आबादका[2] डांडा मिला है कूए-क़ातिलसे ॥

गला न काट सके अपना वाये[3] नाकामी।
पहाड़ काटते है रोज़ो-शब मुसीबतके ॥

मौत आई आने दीजिए परवा न कीजिए।
मंज़िल है ख़त्म सिज्दए-शुकराना कीजिए ॥
दीवानावार दौड़के कोई लिपट न जाय।
आँखोंमें आँख डालके देखा न कीजिए ॥

---

[1]न पहुँचपानेके सोचका परिणाम; [2]असार ससारका; [3]अफ़सोस।

क्या कोई पूछनेवाला भी अब अपना न रहा।
दर्दे-दिल रोने लगे 'यास' जो बेगानोंसे॥

पढ़के दो कलमे अगर कोई मुसलमाँ हो जाय।
फिर तो हैवान भी दो रोज़में इन्साँ हो जाय॥
आगमें हो जिसे जलना तो वोह हिन्दू बन जाय।
ख़ाकमें हो जिसे मिलना वोह मुसलमाँ हो जाय॥
नशए-हुस्नको इस तरह उतरते देखा।
ऐबपर अपने कोई जैसे पशेमाँ हो जाय॥

मज़ा गुनाहका जब था कि बा-वज़ू करते।
बुतोंको सिज्दा भी करते तो क़िब्ला-रू करते॥

जो रो सकते तो आँसू पूछनेवाले भी मिल जाते।
शरीके-रंजो-ग़म दामनसे पहले आस्तीं होती॥

जैसे दोज़ख़की हवा खाके अभी आया है।
किस क़दर वाइज़े-मक्कार डराता है मुझे॥
जलवए-दारो-रसन अपने नसीबोंमें कहाँ?
कौन दुनियाकी निगाहोंपे चढ़ाता है मुझे॥

सुलहजूईने गुनहगार मुझे ठहराया।
जुर्म साबित जो किया चाहो तो मुश्किल हो जाय॥

नाख़ुदाको नहीं अबतक तहे-दरियाकी ख़बर।
डूबकर देखे तो बेगानए-साहिल हो जाय॥

एक ही सिज्दा किया दूसरेका होश कुजा[1]।
ऐसे सिज्देका यह अंजाम कि बातिल[2] हो जाय॥

---

[1]कहाँ ; [2]ग़लत, नहींके बराबर।

न इन्तक़ामकी आदत न दिल दुखानेकी।
बदी भी कर नहीं आती मुझे कुजा नेकी ?

अल्लाहरे बेताबिए-दिल वस्लकी शबको।
कुछ नींद भी आंखोंमें है कुछ मैका असर भी॥

वोह कश-म-कशे-ग़म है कि मैं कह नहीं सकता।
आग़ाज़का[1] अफ़सोस और अजामका[2] डर भी॥

कोई बन्दा इश्कका है कोई बन्दा अक़्लका।
पाँव अपने ही न थे क़ाबिल किसी ज़ंजीरके॥

शैतान-का-शैतान, फ़रिश्ते-का-फ़रिश्ता।
इन्सानकी यह बुलअजबी याद रहेगी॥

दर्देसर था सिज्दए-शामोसहर मेरे लिए।
दर्देदिल ठहरा दवाए-दर्देसर मेरे लिए॥
दर्देदिलके वास्ते पैदा किया इन्सानको।
ज़िन्दगी फिर क्यों हुई है, दर्देसर मेरे लिए॥
फ़ितरते-मजबूरको अपने गुनाहोंपै है शक।
वा[3] रहेगा कबतलक तौबाका दर मेरे लिए ?

हँसीमें लग़ज़िशे-मस्ताना उड़ गई वल्लाह।
तो बेगुनाहोंसे अच्छे गुनाहगार रहे॥
ज़माना इसके सिवा और क्या वफ़ा करता।
चमन उजड़ गया काँटे गलेका हार रहे॥

ऐसी आज़ाद रूह इस तनमें।
क्यों पराये मकानमे आई॥

---

[1]शुरूआतका; [2]परिणामका; [3]खुला हुआ।

बात अधूरी मगर असर दूना।
अच्छी लुकनत[1] ज़बानमें आई॥
आँख नीची हुई अरे यह क्या।
क्यों ग़रज़ दरमियानमें आई॥
मैं पयम्बर नहीं 'यगाना' सही।
इससे क्या कम[2] शानमें आई?

कीमया-ए-दिल क्या है, ख़ाक है, मगर कैसी?
लीजिए तो मँहगी है, बेचिए तो सस्ती है॥
ख़िज़्रे-मंज़िल अपना हूँ, अपनी राह चलता हूँ।
मेरे हालपर दुनिया क्या समझकर हँसती है॥

बन्दा वोह बन्दा जो दम न मारे।
प्यासा खड़ा हो दरिया किनारे॥
शबे-उम्मीद कट गई लेकिन—
ज़िन्दगी अपनी मुख़्तसर न हुई॥

सलामत रहें दिलमें घर करनेवाले।
इस उजड़े मकाँमें बसर करनेवाले॥
गलेपै छुरी क्यों नहीं फेर देते।
असीरोंको बेबालो-पर करनेवाले॥
खड़े हैं दुराहेपै दैरो-हरमके।
तेरी जुस्तजूमें सफ़र करनेवाले॥
कुजा सेहने-आलम, कुजा कुंजे-मरक़द।
बसर कर रहे हैं बसर करनेवाले॥

जून १९५३ ई०]

---

[1]तुतलाहट; [2]कभी, छोटापन।

द्वितीय संस्करणके लिए

मिर्जा यगाना स्वाभिमानी और अपनी आन-बानके धनी थे। टूट जाना तो उन्हे मजूर हुआ, मगर लचकना उन्हे कभी न आया। हैदराबाद-जैसी रियासतमे जहाँ न जाने कितने शाइर और अदीब मालामाल होते रहे, मिर्जा यगाना वहाँ सब रजिस्ट्रारीकी कुर्सीसे ऊपर न उठे। बकौल किसीके—

आये भी लोग, बैठे भी, उठ भी खड़े हुए।
मैं जा ही देखता तेरी महफ़िलमें रह गया॥

और कुर्सीसे ऊपर उठते भी कैसे ? वे अपने अफ़सरोसे कभी दबकर नही रहे। उनको तुर्की-ब तुर्की जवाब देते रहे। सैयद आजमहुसेन साहब लिखते है—

"सन् १९४२ ई०मे जबकि मिर्जा यगानाकी मुलाजिमत ५५ सालकी बिनापर खत्म होनेवाली थी। प्रिन्स मुअज्जमजाह बहादुर (युवराज)ने मिर्जासे खुद फ़र्माया कि आप वजीफ़े (पेन्शन)से पहले छः महीनेकी ब-तनख्वाह रुखसत लेकर मेरे पास क्यो नही आ जाते ? प्रिन्सकी यह तजवीज सुनकर मिर्जा साहब बहुत घबराये कि यह तो वही बात कह रहे है जो मुझसे कभी मुमकिन नही। यानी दरबारदारी। मिर्जाने कोई जवाब न दिया और खामोश रहे। आखिर मुलाजिमतसे सुबक दोश हो गये, मगर प्रिन्सकी दरबारदारी कबूल नही की।"[1]

यगाना साहबके परिचयमे पिछले पृष्ठोंमें मजहबी दीवानो-द्वारा किये गये उनके अपमानका उल्लेख पढा होगा। मगर यगानाने उसे अपना अपमान नही समझकर, किस रूपमे समझा; यह नकूशके सम्पादक हजरत मुहम्मद तुफ़ैलकी जबाने-मुबारकसे सुनिए, जो भारत-विभाजनके बाद नकूशके सस्मरण अक निकालनेकी तैयारीके सम्बन्धमे भारत

---

[1]नकूश अक्तूबर १९५६ पृ० ८५९।

आये थे। उसी सिल्सिलेमे यगाना साहबसे मिले तो उस मुलाकातका उल्लेख मार्च १९५९के नक्शमे इस प्रकार किया है——

"यगाना उखडती हुई सासोमे हड्डियोका ढाचा एक कमरेमे बन्द, चन्द टूटी-फूटी और बेतरतीब-सी चीजोकी मौजूदगीमे मिर्जा साहब एक चारपाईपर बैठे बाते करते रहे। अपने बा-कमाल शाइरको यू खस्ताहाल देखकर बडा सदमा हुआ।"

उनको इस हालततक पहुंचानेमे ज्यादातर उनकी अपनी ही कोशिशोको दखल है। वे इस वक्त भी 'गालिब'के बुरी तरह रकीब बने बैठे थे और गालिबकी शाइरीको जेहनी आवारगी (मानसिक उन्माद)का दर्जा देते थे। 'इकबाल'को सिरेसे शाइर ही नही मानते थे।

मेरा तो ख्याल यह है कि मुद्दतसे अपने हालातके कतई नामुआफिक होनेकी वजहसे अपना जेहनी तवाजन (मानसिक सन्तुलन) खो ही चुके थे। जभी वे कभी तो खुदापर बरसते थे, कभी गालिबको आवारा शाइर कहते थे और कभी इकबालकी अजमतके मुन्किर बनते थे। इन कमजोरियोके बावजूद उर्दू-गजलमे अपने स्टाइलके तनहा मालिक।

बैठे-बैठे हंसने लगे और फिर मुझसे पूछा——"आपने मेरा जुलूस देखा था ?"

"कैसा जुलूस ?"

"अजी वही, जिसमे मुझे जूतोके हार पहिनाये गये थे। मेरा मुंह भी काला किया गया था और गधेपर सवार करके मुझे शहरभरमे घुमाया गया था।"

"अल्लाहका शुक्र है कि मैंने वह जुलूस नही देखा ?"

"वाह साहब, वाह ! आपने तो ऐसे अल्लाहका शुक्र अदा किया है, जैसे कोई घटिया बात हो गई हो। सोचो तो सही कि आखिर करोड़ो आदमियोमे-से सिर्फ मुझीको अपनी शाइरीकी वजहसे इस एजाज़

(सत्कार)का मुस्तहक (अधिकारी) क्यों समझा गया ? जबकि यह गालिबतकको नसीब न हुआ, मीरतकको नसीब न हुआ।"

मैं चाहता था कि मिर्जा साहब इस तकल्लीफदेह किस्सेको यहीं खत्म कर दें। मगर वे मजे ले-लेकर बयान कर रहे थे, जैसे उन्होंने कोई बहुत बडा कारनामा सरअंजाम दिया हो और उसके बदले यह शिरॉकद इनाम (बेशकीमती प्रतिष्ठित पारितोषिक) पाया हो।

यह वाकेआ बयान करनेके बाद फ़ौरन दो-गजलाके मूडमें आ गये। "जी हाँ जनाब आपके लाहौरमें भी गिरफ्तार हुए थे।"

"वह किस्सा क्या था ?"

"जनाब किस्सा यह था कि मिर्जा यगाना चगेजी यहांसे कराँचीका पासपोर्ट लेकर और लाहौर पहुंचकर अपने एक दोस्तके साथ पंजाबसे निकलकर सरहद पहुंच गये थे। वापिसीपर गिरफ्तार कर लिया गया।" [एकदम जमामें (बहुवचनमें) वाहिदके सीगे (एक वचनके सम्बोधन) पर आ गये], इक्कीस रोज जेलमें बन्द रहा। हथकडी लगाकर अदालतमें लाया गया। पहिली पेशीपर मजिस्ट्रेट साहबने नाम पूछा। मैंने बढी हुई दाढीपर हाथ फेरकर बडी शानसे बताया—"यगाना" साथ खडे हुए एक वकील साहबने बडी हैरतसे मुझसे सवाल किया—"यगाना चगेजी ?"

"जी हाँ जनाब"।

यह सुनते ही मजिस्ट्रेट साहबने मेरी रिहाईका हुक्म सादिर फर्मा दिया। जब रिहा हो गया तो जाता किधर ? और परेशान हो गया। मजिस्ट्रेट साहबने मेरी परेशानीको पढ लिया। मैंने उनसे अर्ज किया—"जनाब मेरे तमाम रुपये तो थानेवालोंने जमा कर लिये थे। अब मुझे वे दिलवा दीजिए, ताकि यहांसे कराँची जा सकूँ।" उन्होंने कहा—"दरख्वास्त लिख दीजिए"। मेरे पास फूटी कौडी न थी। कागज कहांसे लाता और कैसे दरख्वास्त लिखता ? इसपर ब-कमाल शफ्कत साहबने एक आना दिया। और मैंने कागज खरीदकर दरख्वास्त लिखी, जिसपर मुझे फ़ौरन रुपये

मिल गये।" ·····और हाँ आप भी लाहोर जाकर अब यह कहेंगे कि यगानासे मिले थे। आप यगानासे कहाँ मिले हैं ? यगानाको गोश्त-पोस्तके ढाँचेमे देखना ग़लत है। यगानाको उसके शेरोंमे देखना होगा। यगानाको इस टूटी चारपाईपर देखनेके बजाय उस मसनदपर देखना होगा, जिसपर वह आजसे पचास बरस बाद बिठाया जायेगा।"

इस सस्मरणके अन्तमे तुफैल साहब लिखते है—"मुझे यह इल्म (भान) था कि मैं एक ऐसे साहबे-फ़नकी खिदमतमे हाजिर हूँ, जिसपर मुझे फ़ख्र होना चाहिए। काश जमाना उनका साथ देता और वे अपने जेहनकी ग़लत रविशसे बच निकलते।

इकेहरा बदन, चपटी नाक, काला रग, क्लीन शेव, भोण्डी शक्लो-सूरतवालेका एक खूबसूरत शेर यह भी है—

उम्मीदो-बीमने मारा मुझे दोराहे पर।
कहाँके दैरो-हरम, घरका रास्ता न मिला॥

हमारे भारतमे सरकार-विरोधी कार्योंके सम्बन्धमे लाखों मनष्योंको कारावास मिला है और भविष्यमे भी मिलता रहेगा। चन्द दिनोके कारावासके उपलक्षमे अनगिनतोने जेल जाते और आते हुए जुलूस निकलवाये है। क़ीमती गजरोसे गले सजाये है। पत्र-पत्रिकाओमे फोटो छपवाये है। दूध-मक्खन खाते और अनेक सुविधा पाते हुए भी जेल अधिकारियोसे संघर्ष किये है और अखबारों-द्वारा रोष प्रकट किया है। उपलक्षमे बडे-बड़े ओहदे प्राप्त किये है, परन्तु कोई सीनेपर हाथ रखकर कह सकता है कि सत्यकी खातिर यगाना-जैसा घोर अपमान सहनेपर भी, वह यगाना- जैसी खन्दाँ पेशानीसे जिक्र कर सकता था ?

समुद्र मंथनसे प्राप्त हुए रत्नोकी चाहमे तो सभी रहते है, परन्तु हलाहल पीनेवाला बिरला ही होता है। अफ़सोस कि यगाना साहबका

७२ वर्षकी आयुमे ९ फ़रवरी १९५६ ई० को इन्तक़ाल हो गया, और हमेशाके लिए वे इस सघर्षशील दुनियासे निजात पा गये।

२ सितम्बर १९५७ ई०]

यगाना साहबके कलामका चयन उनके निम्न ग्रन्थोसे किया गया है—

१—**गंजीना**—प्रकाशक, कौमी दारुल इशाअत लाहौर,
प्रकाशन-सन और आवृतिका उल्लेख नही।
१८६ पृष्ठोमे १२१ ग़ज़ले और १६३ रुबाइयाँ है;

२—**आयाते-वजदानी**—प्रकाशक, मिर्ज़ा मुरादबेग चुग़ताई हैदराबाद दक्षिण—१९४५ ई०मे प्रकाशित पृ० ४००, विस्तृत टीका और भाष्य सहित।

'आसी' ग़ाज़ीपूरी

[..... — १९१७ ई०]

हज़रत शाह अब्दुलग़लीम 'आसी' अपने सूफ़ियाना कलाम और रुबाइयोंके कारण प्रसिद्ध थे। आप नासिख स्कूलके स्नातक और लखनवी शाइर थे। अतः आपके यहाँ ख़ारजी और लखनवी रंगके अशआरकी भी काफ़ी संख्या है, जिनके नमूने न देकर हम केवल चन्द चुने हुए शेर दे रहे हैं—

गौना करते ही पिया कमाने-खाने परदेश चला गया और वहाँ मिरच-देशवालोंके[1] फन्देमें फँस गया। बेचारे परस्पर मुँह भी न देख सके। वहाँसे किसी तरह बचकर आया भी तो कब ? जब केस रूपा हो गये। और आँखें इस योग्य न रहीं कि एक-दूसरेको निहार सकें। विरह-व्यथा सहते-सहते वे विरहके मूर्तमान रूप हो गये हैं। उन्हें तब वस्ल नसीब

---

[1]दक्षिण अफ़्रीका आदि प्रदेश बसानेके लिए अंग्रेज़ भारतसे क़ुली भर्ती किया करते थे, जो निश्चित अवधिके बाद ही भारत वापिस आ सकते थे। उनमें अधिकांश कष्टोंके कारण मर जाते थे, या वहीं रह जाते थे, बिरले ही लौटकर आ पाते थे। इन्हीं प्रदेशोंको उन दिनों मिरच-देश कहा जाता था।

होता है, जब वे वस्लके योग्य नहीं रहे। वे दोनों रंजो-गमके इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि उन्हें यह जीवनभरकी कठोर तपस्याके बाद मिली हुई मिलनकी शुभवेला भी आकुल किये दे रही है। देखिए इसी जीवनके अनुभवको 'आसी' किस खूबीसे एक शेरमें समोते हैं—

वस्ल है, पर दिलमें अबतक जौके-गम पेचीदा है।
बुल-बुला है ऐन दरियामें मगर नम-दीदा है॥

[वस्ल नसीब है, मगर दिल गमोंके शौकका इतना आदी हो गया है कि वह वस्लका लुत्फ उठाने योग्य नहीं रहा है। पानीका बुलबुला पानीमें रहते हुए भी अश्रुपूर्ण (नमदीदा) है, क्योंकि वह अपने क्षणिक जीवनसे परिचित है]

अक्सर सूफी शाइर हर जगह खुदाका जलवा देखते हैं—

मदरसा या दैर था या काबा या बुतख़ाना था।
हम सभी मेहमान थे, इक तू ही साहबख़ाना था॥

—ख्वाजा दर्द

यहाँतक कि वे माशूकके पैकरमें भी खुदाको ही देखते हैं।

मगर 'आसी'के इश्कको इन्तहा और बुलन्दी देखिए कि वह खुदाको खुदा ही नहीं समझते। वे हश्रमें पहुचे तो उनका ख़याल था कि वहां खुदाका जलवा देखनेको मिलेगा और वह हमारा इन्साफ करेगा। मगर हश्रमें यह क्या हश्र-बरपा हुआ कि जिसे लोग खुदा समझ रहे हैं, वह तो 'आसी' का—वही शोख माशूक है। उसने 'आसी'को देखते ही हयामें मुँह फेर लिया—

हश्रमें मुंह फेरकर कहना किसीका हाय! हाय!!
"आसी-ए-गुस्ताख़का हर जुर्म ना-बख़्शीदा है॥"

वहाँ भी वादए-दीदार इस तरह टाला।
"कि ख़ास लोग तलब होंगे बारे-आमके बाद ॥"

मूर्ति-पूजक तो मुसलमानोसे अधिक तेरे भक्त हैं। मुसलमान तो केवल काबेमे ही तुझे सिज्दा करते हैं और यह तो सब जगह तेरा चिन्तन और स्मरण करते हैं—

इतने बुतख़ानोंमें सिज्दे एक काबेके एवज़।
कुफ़्र तो इस्लामसे बढ़कर तेरा गिरवीदा है ॥

वर्षोंकी साधनाके बाद, प्यारेका दीदार नसीब हुआ, मगर दिलको यक़ीन नही आता कि प्यारा यूँ भी जलवागर हो सकता है—

मेरी आँखें और दीदार आपका ?
या क़यामत आ गई या ख़्वाब है ॥

इश्कके बारेमे 'आसी' फर्माते हैं—

आशिक़ीमे है महवियत[1] दरकार।
राहते-वस्ल[2]-ओ-रंजे-फ़ुरक़त[3] क्या ?

इसी ग़ज़लके चन्द अशआर और—

न गिरे उस निगाहसे कोई।
और उफ़्ताद[4] क्या, मुसीबत क्या ?
जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब[5], ऐसी सुहबत क्या ?
जाते हो जाओ, हम भी रुख़सत है।
हिज्रमें जिन्दगीकी मुद्दत क्या ?

---

[1]तल्लीनता; [2]मिलन-सुख; [3]विरह-दुःख; [4]आफते; [5]इष्ट-मित्र।

'आसी' ख़ुदासे दुआ माँगते हैं—

ताबे-दीदार[1] जो लाये मुझे वोह दिल देना।
मुँह क़यामतमें दिखा सकनेके क़ाबिल देना॥
रश्के-ख़ुरशीदे-जहाँ-ताब[2] दिया दिल मुझको।
कोई दिलबर भी इसी दिलके मुक़ाबिल देना॥

अस्ल फ़िल्ना[3] हैं, क़यामतमें बहारे-फ़रदौस[4]।
जुज़[5] तेरे कुछ भी न चाहे मुझे वोह दिल देना॥
तेरे दीवानेका बेहाल ही रहना अच्छा।
हाल देना हो अगर रहमके क़ाबिल देना॥
हाय-रे-हाय तेरी उक़्दाए-कुशाईके[6] मज़े।
तू ही खोले जिसे वोह उक़्दये-मुश्किल[7] देना॥

चन्द शेर और—

तुम नहीं कोई तो सबमें नज़र आते क्यों हो?
सब तुम ही तुम हो तो फिर मुँहको छुपाते क्यों हो?

फ़िराके-यारकी ताक़त नहीं, विसाल मुहाल[8]।
कि उसके होते हुए हम हों, यह कहाँ यारा[9]?

तलब तमाम हो मतलूबकी अगर हद हो।
लगा हुआ है यहाँ कूच हर मुक़ामके बाद॥

अनल्हक़ और मुश्ते-ख़ाके-मन्सूर।
ज़रूर अपनी हक़ीक़त उसने जानी॥

---

[1]देखनेकी शक्ति; [2]लोक (संसार)को चमकानेवाला (सूर्य) भी ईर्ष्या करे; [3]फ़साद; [4]जन्नतकी बहार; [5]सिवा; [6]भेद खोलने, कठिनाइयाँ हल करनेके; [7]मुश्किल; [8]उपाय।

इतना तो जानते हैं कि आ़शिक़ फ़ना[1] हुआ।
और उससे आगे बढ़के ख़ुदा जाने क्या हुआ॥

यूँ मिलूँ तुमसे मैं कि मैं भी न हूँ।
दूसरा जब हुआ तो ख़िलवत[2] क्या?

इ़श्क़ कहता है कि आ़लमसे जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आ़लम है?

न कभीके बादापरस्त हम, न हमें यह कैफ़े-शराब है।
लबे-यार चूमे हैं ख़्वाबमें, वही जोशे-मस्तिए-ख़्वाब है॥
दिले-मुब्तिला है तेरा ही घर, उसे रहने दे कि ख़राबकर।
कोई मेरी तरह तुझे मगर न कहे, कि ख़ाना ख़राब है॥
उन्हें किब्रे-हुस्नकी[3] नख़वतें[4], मुझे फ़ैजे-इ़श्ककी हैरतें।
न कलाम है, न पयाम है, न सवाल है, न जवाब है॥
दिले-अन्दलीब यह शक नहीं, गुलो-लालाके यह वरक़ नहीं।
मेरे इ़श्क़का वोह रिसाला है, तेरे हुस्नकी यह किताब है॥

नहीं होता कि बढ़कर हाथ रख दें।
तड़पता देखते हैं, दिल हमारा॥
अगर क़ाबू न था दिलपर, बुरा था।
वहाँ जाना सरे-महफ़िल हमारा॥

वहाँ पहुँचके यह कहना सबा! सलामके बाद।
"कि तेरे नामकी रट है, ख़ुदाके नामके बाद॥"

यह हालत है तो शायद रहम आ जाय।
कोई उसको दिखा दे दिल हमारा॥

---

[1]मिट गया; [2]एकान्त; [3]रूपका ग़ुरूर; [4]मद।

बे तेरे, जीनेकी किस जीसे तमन्ना करते ?
मर न जाते जो शबे-हिज्र तो हम क्या करते ?

भला किस दिलसे हम इन्कारे-दर्दे-इश्क़ करते हैं।
नहीं कुछ है तो क्यों रह-रहके दिलपर हाथ धरते हैं ॥

ज़ाहिरमें तो कुछ चोट नहीं खाई है ऐसी।
क्यों हाथ उठाया नहीं जाता है जिगरसे ?

ता-सहर[1] वोह भी न छोड़ी तूने ऐ बादे-सबा[2] !
यादगारे-रौनक़े-महफ़िल थी परवानेकी ख़ाक ॥

तूने दावाए-ख़ुदाई न किया ख़ूब किया।
ऐ सनम ! हम तेरे दीदारको तरसा करते ॥

दिले-बीमारसे दावा है मसीहाईका।
चश्मे-बीमारको अपने नहीं अच्छा करते ॥

दाग़े-दिल दिलबर नहीं, सीनेसे फिर लिपटा हूँ क्यों ?
मैं दिलेदुश्मन नहीं, फिर यूँ जला जाता हूँ क्यों ?
रात इतना कहके फिर आशिक़ तेरा ग़श कर गया।
"जब वही आते नहीं, मैं होशमें आता हूँ क्यों ?"

वोह कहते हैं—"मैं ज़िन्दगानी हूँ तेरी"।
यह सच है तो इसका भरोसा नहीं है ॥*

---

[1]सुबहतक; [2]प्रात कालीन हवा।

*तुम हमारी ज़िन्दगी, पर ज़िन्दगीकी क्या उम्मीद ?
तुम हमारी जान, लेकिन क्या भरोसा जानका ?
—ज़ौक़

कमी न जोशे-जुनूंमें, न पाँवमें ताक़त।
कोई नहीं जो उठा लाये घरमें सहराको[1] ॥

ऐ पीरेमुग़ाँ[2]! ख़ूनकी बू साग़रे-मै में।
तोड़ा जिसे साक़ीने, वोह पैमानए-दिल था ॥

—निगार जनवरी १९५० ई०

कुछ हमीं समझेंगे या रोज़े-क़यामतवाले।
जिस तरह कटती है उम्मीदे-मुलाक़ातकी रात ॥

ग़ुबार होके भी 'आसी' फिरोगे आवारा।
जुनूंने-इश्क़से मुमकिन नहीं है छुटकारा ॥

हम-से बेकल-से वादए-फ़रदा[3] ?
बात करते हो तुम क़यामतकी ॥

साथ छोड़ा सफ़रे-मुल्के-अदममें[4] सबने।
लिपटी जाती है मगर हसरते-दीदार[5] हनूज़[6] ॥

हवाके रुख़ तो ज़रा आके बैठ जा ऐ क़ैस !
नसीमे-सुबहने छेड़ा है ज़ुल्फ़े-लैलाको ॥

बस तुम्हारी तरफ़से जो कुछ हो।
मेरी सई और मेरी हिम्मत क्या ॥

जो रही और कोई दम यही हालत दिलकी।
आज है पहलु-ए-ग़मनाकसे रुख़सत दिलकी ॥
घर छुटा, शहर छुटा, कूचए-दिलदार छुटा।
कोहो-सहरामें[7] लिये फिरती है वहशत[8] दिलकी ॥

---

[1]जंगलको; [2]मैख़ानेका मालिक; [3]कल (भविष्य)का वादा; [4]परलोकके सफ़रमे, मृत्युके मार्गमे; [5]देखनेकी लालसा; [6]अभी भी; [7]पर्वतों-जंगलोंमे; [8]उन्माद।

रास्ता छोड़ दिया उसने इधरका 'आसी' !
क्यों बनी रहगुज़रे-यारमें[1] तुरबत[2] दिलकी ॥

तरक़्क़ी और तनज़्ज़ुलीकी[3] न पूछो।
मैं दुश्मन हो गया, दुश्मन हुआ दोस्त ॥

इश्क़ने फ़रहादके पर्देमें पाया इन्तक़ाम[4]।
एक मुद्दतसे हमारा ख़ून दामनगीर था ॥
वोह मुसव्विर[5] था कोई या आपका हुस्नेशबाब[6]।
जिसने सूरत देख ली, इक पैकरे-तसवीर[7] था ॥

मेरे दुश्मनको न मुझपर कभी क़ाबू देना।
तुमने मुंह फेर लिया, आह, यही क्या कम है ?

कोई तो पीके निकलेगा, उड़ेगी कुछ तो बू मुंहसे।
दरे-पीरेमुग़ांपर मैंपरस्तो चलके बिस्तर हो ॥
किसीके दरपै 'आसी' रात रो-रोके यह कहता था—
कि "आख़िर मैं तुम्हारा बन्दा हूँ, तुम बन्दापरवर हो ॥"

टुकड़े होकर जो मिली, कोहकन-ओ-मजनूंको।
कहीं मेरी ही वोह फूटी हुई तक़दीर न हो ॥

यह दोनों एक ही तरकशके हैं तीर।
मुहब्बत और मर्गे-नागहानी ॥

तुम्हीं सच-सच बता दो कौन था शीरींकी सूरतमें।
कि मुश्ते-ख़ाककी हसरतमें कोई कोहकन क्यों हो ॥

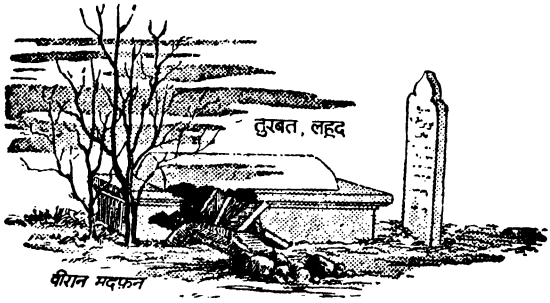
---

[1]यारके रास्तेमे; [2]क़ब्र; [3]अवनतिकी; [4]बदला ; [5]चित्रकार ; [6]यौवनका सौन्दर्य ; [7]चित्रवत ।

कौन उस घाटसे उतरा कि जनाबे 'आसी' !
बोसा लेनेको बढ़े हैं लबे-साहिलकी तरफ़ ॥

मिलनेकी यही राह, न मिलनेकी यही राह ।
दुनिया जिसे कहते हैं, अजब राहगुज़र है ॥

—तनक़ीदी हाशिये



ऐ शबे-गोर ! वोह बेताबि-ए-शबहाय फ़िराक़ ।
आज आरामसे सोना मेरी तक़दीरमें था ॥

६ जून १९५३ ई०]



अमरनाथ 'साहिर'

[१८६३—१९४२ ई०]

पं० अमरनाथ मदन साहब 'साहिर' काश्मीरी ब्राह्मण थे। आपका जन्म २९ मार्च १८६३ ई०में और निधन १९४२ ई० में हुआ। आप देहलीके रईस रायबहादुर पं० जानकीदास मदनके सुपुत्र थे। आपके पूर्वज पं० दीनानाथजी पंजाबके महाराजा रणजीतसिंहके दीवान और ताऊ अंग्रेज़ी फ़ौजमें सूबेदार थे।

'साहिर' साहब तहसीलदारके पदसे सम्मानपूर्वक पेंशन लेकर दिल्लीमें साहित्य-सेवामें जीवन-यापन करते रहे। अपने मकानपर नियमसे मासिक मुशाअ्रे कराते रहते थे और बड़ी धूम-धामसे वार्षिक मुशाअ्रे वृहतरूपमें कराते थे। मैंने स्वयं सन् १९२४से दसों वार्षिक और न जाने कितने मासिक मुशाअ्रे आपके संचालकत्वमें सफलतापूर्वक सम्पन्न होते देखे हैं। उर्दू-संसारमें आपको अत्यन्त सम्मान और आदर प्राप्त था। आप हँसमुख, मिलनसार और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, चेहरेपर सफ़ेद दाढ़ी ख़ूब ज़ेब देती थी।

पहले आप फ़ारसीमें शेर कहते थे, बादमें मित्रोंके आग्रहसे २२ वर्षकी आयुसे उर्दूमें शेर कहना आरम्भ कर दिया। आपका १९३७ ई०में एक दीवान "कुफ़्रे-इश्क़" (पृ० १८४) प्रकाशित हो चुका है। आपका कलाम

उच्चकोटिका दार्शनिक और आध्यात्मिक है। भाषा भी फ़ारसीमय है। गद्यके भी आप मशहूर लेखक थे। यहाँ हम आपके कुछ सरल अशआर दीवाने-साहिर 'कुफ़्रो-इश्क'से देनेका प्रयत्न कर रहे हैं—

चश्मो-दिल नज़अमें है महवे-तमाशाए-जमाल[1]।
हश्र[2] क्या और है इससे कोई बेहतर अपना॥

होनेको तो है अब भी वही हुस्न, वही इश्क़।
जो हर्फ़े-ग़लत होके मिटा नक़्शे-वफ़ा था॥

पिन्हाँ नज़रसे परदए-दिलमें रहा वोह शोख़।
क्या इम्तेयाज़[3] हो मुझे हिज्रो-विसालका॥

ऐ परीरू! तेरे दीवानेका ईमाँ क्या है।
इक निगाहे-ग़लत अन्दाज़पे क़ुर्बाँ होना॥

जुनूने-इश्क़में कब तन-बदनका होश रहता है।
बढ़ा जब जोशे-सौदा हमने सरको दर्दे-सर जाना॥

एक जज़्बा था अज़लसे गोशए-दिलमें निहाँ।
इश्क़को इस हुस्नके बाज़ारने रुसवा किया॥

तमन्नायें बर आईं अपनी तर्के-मुद्दआ होकर।
हुआ दिल बेतमन्ना अब, रहा मतलबसे क्या मतलब?

देखकर आईना कहते हैं कि—"लासानी हूँ मैं"
आईना देता है उनकी लनतरानीका[4] जवाब॥

पा लिया आपको अब कोई तमन्ना न रही।
बेतलब मुझको जो मिलना था मिला आपसे आप॥

---

[1]मृत्युके समय हृदय-नेत्र प्रेयसीके सौन्दर्य देखनेमें लीन है; [2]प्रलय; [3]अन्तर मालूम दे, पहिचान हो; [4]शेखीका, गर्वका।

गुम कर दिया है आलमे-हस्तीमें होशको।
हर-इकसे पूछता हूँ कि 'साहिर' कहाँ है आज॥

दामाने-यार मरके भी छूटा न हाथसे।
उट्ठे हैं ख़ाक होके सरे-रहगुज़रसे हम॥

सदाए-वस्ल बामे-अर्शसे आती है कानोंमें—
"मुहब्बतके मजे इस दारपर चढ़कर निकलते हैं॥"

क़तरा दरिया है अगर अपनी हक़ीक़त जाने।
खोये जाते हैं जो हम आपको पा जाते हैं॥

कहाँ दैरो-हरममें जलवए-साक़ी-ओ-मै बाक़ी?
चलें मैख़ानेमें और बैअ़ते-पीरेमुग़ाँ[1] कर लें॥

परेपरवाज़े-उ़नक़ा[2] लायेंगे गर लामकाँ भी हो।
तुम्हें हम ढूँढ लायेंगे कहीं भी हो, जहाँ भी हो॥

हुस्न क्या हुस्न है जलवा जिसे दरकार न हो।
यूसुफ़ी क्या है जो हंगामए-बाज़ार न हो॥

बेतमन्नाईने बरहम रंगे-महफ़िल कर दिया।
दिलकी बज़्म-आराइयाँ थीं आर्ज़ूए-दिलके साथ॥

अज़लसे दिल है महवे-नाज़ वक़्फ़े-ख़ुद-फ़रामोशी।
जो बेख़ुद हो वोह क्या जाने, वफ़ा क्या है, जफ़ा क्या है?

पर्दा पड़ा हुआ था ग़फ़लतका चश्मे-दिलपर।
आँखें खुलीं तो देखा आलममें तू-ही-तू है॥

---

[1]शराब बेचनेवालेपर ईमान ले आये ; [2]कल्पित पक्षी 'उनक़ा' का उड़नेवाला पख।

जलवए-हक़ नज़र आता है सनममें 'साहिर' !
है मेरे काबेकी तामीर सनम-ख़ानोंसे ।।

हुस्नमे और इश्क़मे जब राब्ता क़ायम हुआ।
ग़म बना दिलके लिए और दिल बना मेरे लिए ।।

वोह भी आलम था कि तू-ही-था और कोई न था ।
अब यह कैफ़ीयत है मैं-ही-मैंका है सौदा मुझे ।।

हुस्नको इश्क़से बेपरवा बना देते हैं वोह ।
वोह जो पिन्दारे-ख़ुदी[1] दिलसे मिटा देते हैं ।।

ख़ाली हाथ आयेंगे और जायेंगे भी ख़ाली हाथ ।
मुफ़्तकी सैर है, क्या लेते हैं, क्या देते हैं ।।

ज़िन्दगीमे है मौतका नक़्शा ।
जिसको हम इन्तज़ार कहते हैं ।।

दीदारे-शश्जेहत[2] है कोई दीदावर[3] तो हो ।
जलवा कहां नहीं, कोई अहलेनज़र तो हो ।।

दरे-सनमकदाको हमने जाके खड़काया ।
हरममें जब न हुए बारयाब, क्या करते ?

हरम है मोमिनोंका, बुतपरस्तोंका सनमख़ाना ।
ख़ुदा-साज़ इक इमारत है मेरे पहलूमें जो दिल है ।।

---

[1]अहमका अभिमान ; [2]अखिलविश्वके दर्शन ; [3]देखनेवाला ।

चले जो होशसे हम बेख़ुदीकी मंज़िलमें।
मिला वोह ज़ौक़े-नज़र, पर उधर न देख सके॥



हम हैं और बेख़ुदी-ओ-बेख़बरी।
अब न रिन्दी न पारसाई है॥

९ मई १९५२]



दत्तात्रय कैफ़ी

[१८६६—१९५५ ई०]

पं० बृजमोहन दत्तात्रय कैफ़ी काश्मीरी ब्राह्मण हैं। आपके पूर्वज फ़र्रुखसियर बादशाहके साथ काश्मीरसे दिल्ली आये और सरकारी दफ़्तरोंमें उच्च पदोंपर नियुक्त हुए। कैफ़ीके पिता पं० कन्हैयालाल नाभा स्टेटमें शहर कोतवाल थे।

अल्लामा कैफ़ी १३ दिसम्बर १८६६ ई०में दिल्लीमें उत्पन्न हुए। आपके नाना फ़ारसीके बहुत बड़े पण्डित थे। उन्हींसे फ़ारसीकी शिक्षा प्राप्त की। मिशन कॉलेजसे १८८० ई०में बी० ए० पास किया। शाइरीका प्रारम्भ ग़ज़लसे हुआ, परन्तु हाली-आज़ादके आन्दोलनोंके फलस्वरूप आपने नज़्म भी लिखनी प्रारम्भ कर दीं।

१९१५-१६ई०में यूरोपका भ्रमण करके वहाँके साहित्यिकोंसे भेंट-मुलाक़ात की। आपकी कई कृतियाँ सरकारसे पुरस्कृत हो चुकी हैं। आप काश्मीरके विदेशी विभागके उपमंत्री पदसे रिटायर हुए और एक रियासतमें मजिस्ट्रेट और कलेक्टर भी रहे। शान्तिपूर्वक साहित्य-सृजन करते रहे हैं। आप उर्दू-साहित्य-इतिहासके बहुत प्रतिष्ठित विद्वान हैं। आपकी आलोचनायें बहुत गवेषणापूर्ण होती हैं। आप उर्दू-संसारके एक स्तम्भ

समझे जाते हैं। सैकडो मुशाअरों और साहित्यिक सभाओंके आप सभापति होते रहे हैं। उर्दू-साहित्यिक आपका बहुत सम्मान करते हैं। न जाने कितने युवक आपसे प्रेरणा पाकर शाइर और लेखक बन गये। विरोधी भी आपकी विद्वत्ता और साहित्यिक सेवाओंका लोहा मानते हैं और आपके दमको उर्दूके लिए एक बहुत बडी देन समझते हैं। हिन्दी-हितैषीके नाते जो स्थान आदरणीय पुरुषोत्तमदास टण्डनका है, वही उर्दू-समारमे आपका है। सादा-मिज़ाज, साफ़-दिल और बा-इखलाक़ बुजुर्ग हैं। सभी आपको श्रद्धा भक्तिसे देखते हैं। दिल्लीकी बड़ी-से-बड़ी बज़्मे-अदबका सभापति होते हुए हमने आपको देखा है। आपके एक-एक शब्दको लोग मत्रकी तरह समझते हैं।

'कैफ़ी' बूढे हो चले हैं और उनकी शाइरी भी बूढी हो गई है। लेकिन उनके कलाममे न तो पुराने ढगकी शोखी मिलेगी, न बाजारूपन। उनका कलाम सजीदा और पाक होता है। निगार जनवरी १९४१ से चन्द अशआर चुनकर यहाँ दिये जा रहे हैं—

है मेरे दिलमें वोह आहें कि जो बिजली न बनीं।
मेरी आँखोंमे वोह क़तरा है जो तूफ़ाँ न हुआ॥

ग़म रहा उनका जो दोज़खमें पड़े जलते हैं।
मेरे खुश होनेका जन्नतमें भी सामाँ न हुआ॥

राज़[1] उनके खुले जाते हैं एक-एक सभूपर।
और इसपे तमाशा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥

हाल यह बेखुदीए-इश्क़मे[2] 'कैफ़ी'का हुआ।
शेख़ काफ़िर उसे और गब्र[3] मुसलमाँ समझा॥

---

[1]भेद ; [2]प्रेमकी तन्मयतामे ; [3]अग्निपूजक (यहाँ गैरमुस्लिममे तात्पर्य है)।

यूं अगर देखिए क्या कुछ नहीं यह मुश्ते-ग़ुबार[1]।
और अगर सोचिए तो ख़ाक भी इन्सांमें नहीं॥

चारागरको हैरत है इरतेक़ाए-वहशतसे।
पांवमें जो चक्कर था आ रहा है वोह सरमें॥

सुहबतें अगली जो याद आती हैं, जी कटता है।
कोई पूछे भी तो कहते हैं हमें याद नहीं॥

हां-हां मगर ऐ दोस्त! तू तदबीर किये जा।
यह भी तेरी तक़दीरके दफ़्तरमें लिखा है॥

गुले-पज़मुर्दाकी बिखरी हुई कुछ पत्तियां देखीं।
तो इक बेदिल यह चीख़ उट्ठा "मेरा दिल है, मेरा दिल है॥"

तुमसे अब क्या कहें, वोह चीज़ है दागे़-नामे-इश्क़।
कि छुपाये न छुपे और दिखाये न बने॥

बात वोह कह गये आये भी तो किस तरह यक़ीं।
और सेहर इसमें कुछ ऐसा कि भुलाये न बनें॥

जिसको ख़बर नहीं, उसे जोशो-ख़रोश है।
जो पा गया है राज़, वोह गुम है, ख़मोश है॥

पैकरे-ख़ाक है तू चर्ख़पे छा मिस्ले-ग़ुबार।
तुझको मिट्टीमें मिलाया है जबीं-साईने॥

नहीं मालूम अज़ां थी कि वोह बांगे-नाक़ूस[2]।
कहीं खींचे लिये जाती है इक आवाज़ मुझे॥

"इन्क़िलाब आनेको ऐसा है न आया हो कभी।"
दरो-दीवारसे आती है यह आवाज़ मुझे॥

---

[1]मुट्ठीभर ख़ाक ; [2]शंख-ध्वनि।

जो ज़िन्दादिल है हमेशा जवान रहते हैं।
बहारे-ज़ीस्त यक़ीनन इसी शबाबमें है॥
हम तो बुरे बने यूं ही नालेसे आहसे।
दिलमें जो था वोह फूट ही निकला निगाहसे॥
आबाद है यह ख़ानए-दिल इक ख़यालसे।
दुनियाके हादिसे इसे वीराँ न कर सके॥

१६ मई १९५२]

द्वितीय संस्करणके लिए

अफ़सोस कि अल्लामा कैफ़ीका ८९ वर्षकी आयुमें १ नवम्बर १९५५को दिनके १२॥ बजे दिल्लीमें देवलोक हो गया। उसी सन्ध्याको यमुना-तटपर आपका दाहसंस्कार हुआ।

भारत-विभाजनसे पूर्व लाहोरमें निजी कोठी बनवाकर आप स्थाईरूप-से रहने लगे थे। साम्प्रदायिक-संघर्षोंके दिनोंमें संयोगसे आप अपने एक मित्रके यहाँ बम्बईमें थे। उन्हीं दिनों आपके क़त्ल किये जानेकी खबरें भी समाचारपत्रोंमें उड़ी। खबरें पढ़कर आपने लिखा—"अगर्चे मैं ज़िन्दा हूँ, लेकिन अहले वतनने जिस वहशत-ओ-बरबरीयत और ज़ुल्मो-सितमका मुज़ाहिरा किया है। काश कि उसे देखनेके लिए मैं ज़िन्दा न रहता"। उन्हीं दिनों २८ मई १९४७ को आपने यह नज़्म लिखी—

यह क्या कर रहे हो? यह क्या हो रहा है?
यह तूफ़ान क्या कुश्तो-ख़ूंका बपा है?
यह क्यों भाई, भाईका दुश्मन हुआ है?
जुनूं क्या यह सरको तुम्हारे चढ़ा है?
यह क्या कर रहे हो, यह क्या हो रहा है?

ज़रा फ़िक्र और ग़ौरसे काम लो तुम।
न भूलो कि अव्वल तो इन्सान हो तुम॥

कहाँ अ़क़्ल और होश तुमने गँवाये।
बुज़ुर्गोंके सब कारनामे भुलाये॥
परख़्चे शराफ़तके तुमने उड़ाये।
सुनो तो, जो कहते हैं अपने-पराये—

"यह क्या हिन्दियोंको जुनूँ हो गया है?
उन्हें क्यों पसन्द अपना ख़ूँ हो गया है?"

कहीं तुम नहीं मुँह दिखानेके क़ाबिल।
यह हालत है रोने-रुलानेके क़ाबिल॥
नहीं मर्सिया यह सुनानेके क़ाबिल।
नहीं है मगर भूल जानेके क़ाबिल॥

मचाई है क्या आग और ख़ूंकी होली।
न दामन ही बाक़ी रहा और न चोली॥

. . . . . .

जुनूँ बरबरीयतका क्यों सरपै छाया?
कहाँ तुमने इन्सानियतको गँवाया?
यह शैतानने तुमको क्या गुर सिखाया?
कि तहज़ीबका तुमने ख़ाका उड़ाया॥

यही हुर्रियतकी अगर इब्तदा है।
तो फिर बरबरीयतकी क्या इन्तहा है?

ज़रा सोचो फिर क्यों यह ख़ूंख़्वारियाँ हैं?
किसे मारनेकी यह तय्यारियाँ हैं॥
यह सब नारे-दोज़ख़की चिंगारियाँ हैं।
जहालतकी सारी फ़ुसूंकारियाँ हैं॥

कभी ख़ूनसे ख़ूंका धब्बा धुला है?
वह नेकी है जिससे बदीकी फ़ना है॥

अल्लामा कैफीके संस्मरण रहमत क़ुत्बी साहबने लिखे हैं। उनमें-से चन्द यहाँ दिये जा रहे हैं—

"दोपहरको आपके आराम करनेका वक़्त था कि दो साहब तशरीफ़ लाये। खासी देरतक बैठे रहे और अदबी (साहित्यिक) बातें बघारते रहे। जैसे—गालिबके बाज अशआरकी शरह (टीका) फ़लाँ शेर वजनमें ठीक है या नहीं। फ़लाँ मुहावरा सही बाँधा गया है या गलत। मुलाक़ातियोंका लहजा साइलाना (जिज्ञासुओं जैसा) भी था और नाकिदाना (आलोचकों-जैसा) भी। आप बहुत सहूलियतसे उनको जवाब देते रहे।.....मैं इस मुलाकातके वक्त मौजूद था। जब वे लोग चले गये तो मैंने अर्ज किया—'शायद आपको मालूम नहीं कि यह वे साहब थे जो आपके कलामपर एतराज-ओ-तअ़रीज (आक्षेप और व्यंग्य) करते हैं।' आप मुस्कराये और फर्माया—'मियाँ क्या मैं उनको यहाँसे निकलवा देता? या उनसे शिकायत करता? ये दोनों बातें मेरी शानके खिलाफ थीं। तुम देखोगे कि वे फिर आयेंगे और उनको तुम बदला हुआ पाओगे'। चुनांचे बादमें ऐसा ही देखा गया।"

"दिल्लीमें एक साहब कहींसे आ टपके। वे अपनेको 'निजामी' उरूजीका हमपल्ला समझते थे। एक दिन वे आपकी खिदमतमें भी हाज़िर हुए। इत्तिफ़ाकसे मैं मौजूद था। उन्होंने लखनऊके किसी शाइरका एक शेर पेश किया और पूछा 'इसमें क्या उरुजीनुक्स (छन्द शास्त्रीय त्रुटि) है?' जवाबमें आपने फ़र्माया 'शायद आपको मेरी अदबी मसरूफ़ियतों (साहित्यिक व्यस्तताओं) का इल्म नहीं और न यह मालूम है कि किन-किन अमराज (रोगों) ने मुझे दबा रक्खा है। मआनी और बयान (अर्थ-भावार्थ) को तो आप अलग रखिए। उर्दूके खिलाफ़ जो ताज़े हमले हो रहे हैं, उनका दफ़ाअ (बचाव) मुश्किलसे होता है। फिर इतनी फ़ुरसत कहाँ, फिर लेक्चरके अंदाज़में फ़र्माया—'यह वक्त है कि सारे उर्दूवाले मुत्तहिद और हम-आहंग (एक आवाज़) होकर उर्दूके मुस्तक़बिल

(भविष्य)के लिए सोचे और कमर कस ले कि उर्दूपर हरगिज-हरगिज आँच न आने देगे।'

"एक साहब जो अक्सर कैफी साहबके यहाँ आया करते थे। एक रोज आये और निहायत मिन्नत समाजतसे मुशाअरेकी सदारत (अध्यक्षता स्वीकृत करने)की दरख्वास्त की, जो कि उन्हीके एहतमाम (व्यवस्था)मे हो रहा था। अल्लामा कैफीने अपनी बीमारी और जिस्मानी नाकाबिलियतोका जिक्र करते हुए फर्माया—'तुम देखते ही हो मेरा जो हाल है। खुली जगहमे मुशाअरा, रातका वक़्त और मेरा यह हाल।' बहुत माजरत (क्षमा याचना) की, मगर वे न माने। आखिर यह तय पाया कि मुशाअरेके वक्तसे कुछ पहले वे आयेगे और अल्लामा कैफीको ले जायेगे, और यह कि अल्लामा मौसूफ़ सिर्फ मुशाअरेका इफ्तताह (उद्घाटन)करके और अपनी नज़्म सुनाके वापिस पहुँचा दिये जायेगे। १५-२० मिनटसे ज्यादा उनको वहाँ नही रहना पडेगा। अगले दिन दाअ़ी (निमत्रणदाता) ने एक रुक्केसे ज़बानी करार दादकी तौशीक-ओ-याद्दहानी की (मौखिक बातचीतको लिखित निमंत्रणद्वारा पक्का किया) अब वह दिन और वक़्त आया, मगर न आपको कोई लेने आया, न किसी किस्मकी इत्तला दी गई। हाँ, अगले दिन अखबारोसे मालूम हुआ कि वह मुशाअरा हुआ और खूब हुआ।

एक महीने बाद दाअ़ी साहब आये, मगर उन्होने मुशाअरेके मुतअल्लिक अपनी इस अहद शिकनीका जिक्रतक भी नही किया। जो कुछ उनका काम था, आपने कर दिया और वे चले गये। करीबन दो माह बाद वे फिर आये। उनकी फर्माइश जो अदबी नौईय्यत (साहित्यिक ढग) की थी, पूरी करके जब वे जाने लगे तो अल्लामा कैफ़ीने उनको रोका और फर्माया—'तुम देख ही रहे हो कि मै बूढा आदमी हूँ, एक ज़माना देखा है और हजारो आदमियोंको बरता है। तुमको यह भी मालूम है कि लोग मुझे अल्लामा भी कहते है। अल्लामा-वल्लामा तो मै नही, मगर इल्मे-नफ़िसयात (मनोविज्ञान)को मैंने बहुत अच्छी तरह पढ़ा है। लेकिन तुमने मुझको

ख़बरदार कर दिया कि इस शाअ़बा (अंश) में मेरी तहक़ीक़-ओ-मुताल्अ़ा नाकिस (खोज एवं अध्ययन व्यर्थ) है। मियाँ! क्या तुम भूल गये कि मेरी अ़जहद मआ़जरतके बावजूद (अत्यन्त क्षमा याचना करने पर) भी तुमने मुझसे उस रोज मुशाअ़रेकी शिरकत (उपस्थिति) का वादा लिया और अगले दिन तहरीरसे उसकी तोसीक़-ओ-याद दहानी भी की (लिखित पत्र-द्वारा समर्थन किया और याद भी दिलाई) लेकिन मुशाअ़रे के वक़्त तुमको वह सब भूल गया। उसके बाद न जबानी न तहरीरके ज़रिये उस अ़हद-शिकनीकी मआ़जरत (न मुँहजबानी न लिखित वादा भूलनेकी क्षमा याचना) की। यह तो यह, महीने बाद आये तो भी उसका जिक्र नही। अब फिर आये तो अपना काम करके जा रहे थे कि मैंने रोका। मै हरान हूँ कि तुमने मुझको क्या समझा? दोनों मुलाकातोके वक्त मै तुम्हारे चेहरेको ग़ौरसे देखता रहा। न उसमे शर्मकी सुर्खी थी, न आँखोंमे झुकाव था, न खिजालतका कोई पसीना तुम्हारी पेशानीपर था।''''दाई (निमन्त्रण दाता) साहब कुछ कहनेको हुए मगर कैफ़ी साहबने जरा सख़्त आवाजसे उनको रोक दिया और फर्माया—'आपकी मआ़जरतकी मीआ़द (क्षमा-याचनाकी अवधि) कभीकी गुज़र चुकी है। मै इस सिलसिलेमे अब एक लफ़्ज भी सुनना नही चाहता। मैंने अपने ज़हनमे फ़ैसला कर लिया है कि तैमूर और हलाकूकी फ़हरिश्तमें आपका नाम लिखना चाहिए। एहसासात और जज़्बात (चेतनाओं और भावनाओं) पर जो काबू आपको है, वह आपको इसका इस्तहक़ाक़ बख़्शता (अधिकार प्रदान करता) है। कहा जाता है कि तैमूरकी पीठमें एक साल तक सख़्त ख़ारिश (बहुत बुरी खुजली) रही। मगर उसने एक दफ़ा भी खुजलाया नहीं। अब मैंने आपकी निस्बत यह फ़ैसला किया है कि अदबी इमदाद (साहित्यिक-सहायता) तो जहाँ तक मुमकिन होगा रोकी नही जायगी, लेकिन आपकी किसी बातपर एतबार नही किया जायगा।'

हजरत फर्माया करते हैं—'बाजोंका खयाल है कि मैं भुलक्कड या तबियतका निहायत फ़ैयाज (उदार हृदय) हूँ। यह दोनों बातें गलत हैं। जो कोई मेरे साथ किसी किस्मकी बदी करे, मैं उसको भूलता नहीं, न मुझे गुस्सा आता है। लेकिन इन्तकाम (बदलेकी भावना) को मैं अपनेसे नीचे और अपनी तौहीन समझता हूँ।' बारहा आपने अशआरमें फर्माया है और आपका अमल भी इसी उसूलपर है कि बदीके बदलेमें बदी करना बदीकी जिन्दगीको बढ़ाना है, घटाना नहीं। किसी शख्सने बुरी बात कही, अब उसका जवाब देना, गोया उस बुराईमें शिरकत करना है।"[1]

जनवरी १९५४में आपकी जन्मगाँठ बहुत धूम-धामसे मनाई गई। आपको चार हजारकी थैली भेंट की गई, जिसे आपने उसी समय साहित्यिक सेवाओंके लिये प्रदान कर दी।

भारत-विभाजनके बाद आप अपने वतन दिल्ली चले आये थे और वहीं स्थाईरूपसे साहित्यिक सेवाओंमें सलग्न रहते थे।

कैफ़ी-जैसे हिन्दू-मुस्लिम एकताके हिमायतीका लाहोरमें रहना असम्भव हो गया और भरा हुआ घर छोडकर हिजरत करनेको मजबूर होना पड़ा। जिसने जीवनभर उर्दूकी सेवा की। अपनी बेशबहा कृतियोंसे उर्दू-साहित्यको मालामाल किया। अपने भाषणों और शास्त्रार्थोंसे उर्दूपक्षका अकाट्य समर्थन किया और दिनरातकी अविराम उर्दू-साहित्य-साधनासे उर्दूके विकासमें प्रकाशस्तम्भका काम किया। मृत्यु-समयतक जो उर्दू-समर्थनके नारे लगाता रहा, उसी कैफीको वहाँ सकूनत नसीब न हो सकी। जहाँकी राज्य-भाषा उर्दू घोषित हुई है। और तो और भारतमें उनको बाबा-ए-उर्दू कहा जानेपर एतराज भी किये गये। उसी कैफ़ीपर जिसका ओढ़ना-बिछौना' इज्जत-आबरू, खाना-पीना, शग्ल-तफरीह सभी कुछ उर्दू थी।

---

[1]सकूश शख्सियात नं० जनवरी १९५६ पृ० २४२-२४४।

आपने व्याख्यानों और लेखों-द्वारा उर्दूकी जीवन-पर्यन्त सेवा की। बीसवीं शताब्दीके उर्दूके हर आन्दोलनमें आप पेश-पेश रहे। आपने ग़ज़लें बहुत कम कहीं।

नज़्मोंके शेर २५-३० हज़ारके लगभग कहे हैं। आपके लिखे नाटक, उपन्यास, नज़्में छप चुकी हैं। लेखों और भाषणोंके दो बड़े-बड़े संकलन पुस्तक रूपमें प्रकाशित होने भी न पाये थे कि आपका निधन हो गया।

२७ अगस्त १९५७]

'आज़ाद' अन्सारी

[१८७०—१९४२ ई०]

शेख अलताफ़ अहमद 'आज़ाद' अन्सारीका जन्म १८७० ई०में नागपुरमें हुआ। वहाँ आपके पिता ओवरसियर थे। १८-१९ वर्षकी अवस्थातक अरबी-फ़ारसीकी शिक्षा प्राप्त की। १९०० ई०में देहरादूनमें मकतब खोला। १९०२से १९०९ तक कानपुरमें हकीमी की। यहीं आपकी पत्नीका निधन हो गया। फिर आप सहारनपुर, अम्बाला, अलीगढ़, दिल्ली, आदि कई स्थानोंमें रहे। १९२३के बाद आप हैदराबाद चले गये और वहाँ चश्मेका व्यापार करने लगे। आप शाइरीमें हालीके शिष्य थे। आप पुनः दिल्लीमें रहने लगे थे। यूँ आप सहारनपुरके रहनेवाले थे। १८९०में आपने शाइरी प्रारम्भ की और २० वर्षतक हालीकी सुहबतका लाभ उठाया। आपका १९४२ ई० में निधन हो गया। आपके स्वयं निर्वाचित कलामसे चन्द शेर हम यहाँ निगार जनवरी १९४१ से साभार दे रहे हैं—

अचानक नुज़ूले-बला[1] हो गया।
यकायक तेरा सामना हो गया॥

तबीअ़त ही दर्द-आश्ना[2] हो गई।
दवाका न करना दवा हो गया॥

---

[1]आपदाओंका आजाना; [2]दुःखोंकी अभ्यस्त।

यूँ याद आओगे हमें असला[1] ख़बर न थी।
यूँ भूल जाओगे हमें वहमो-गुमाँ न था॥

आह! किसने मुझे दुनियासे मिटाना चाहा।
आह! उसने कि जिसे हासिले-दुनिया जाना॥

ज़ाहिर है कि बेकस हूँ, साबित है कि बेबस हूँ।
जो ज़ुल्म किया होगा, बरदाश्त किया होगा॥

उम्मीदे-सुकूँ[2] रुख़सत, तस्कीने-दरूँ[3] रुख़सत।
अब दर्दकी बारी है, अब दर्द मज़ा देगा॥

इक वो हैं कि बेख़ौफो-ख़तर गर्मे-शिकायत।
इक हम हैं कि इज़हारे-तमन्ना नहीं होता॥

तुम और चारए-ग़मे-फ़ुर्क़त,[4] ख़ुशानसीब[5]!
दुःखको दवा नसीब, मरज़को शफ़ा[6] नसीब॥

ज़ुल्फ़ोंवालो! यह अन्धेर!!
दुहरे-दुहरे काले नाग!!

तालिब[7] हूँ, मगर नाकाम, साइल[8] हूँ मगर महरूम[9]।
तक़दीर मेरी तक़दीर, मक़सूम[10] मेरा मक़सूम॥
क़िस्मतसे वोह मुल्ज़िम हूँ, शामतसे वोह मुजरिम हूँ।
जो दादसे भी महरूम, बेदादसे भी महरूम॥

ख़याले-निगाहे-मुहब्बत अबस[11]।
किताबे-निगाहे[12] मुहब्बत कहाँ?

---

[1]कदापि; [2]चैनकी आशा; [3]अन्तरग शान्ति; [4]विरह-दुःखका इलाज; [5]अहोभाग्य; [6]आरोग्यता; [7]अभिलाषी; [8]भिक्षुक; [9]उपेक्षित; [10]भाग्य; [11]व्यर्थ; [12]देखनेकी शक्ति।

जो उट्ठे हैं तो गर्मे-जुस्तजूए—दोस्त उट्ठे हैं।
जो बैठे हैं तो महवे-आर्ज़ू-ए-यार बैठे हैं॥

वोह दिल जिसमें तमन्नाकी ख़ुशी थी।
उसे सर्फ़े-तमन्ना देखता हूँ॥

कभी दिनरात रंगीं सुहबतें थीं।
अब आँखें हैं, लहू है, और मैं हूँ॥

तेरा गुलशन वोह गुलशन, जिसपै जन्नतकी फ़ज़ा सदक़े।
मेरा ख़िरमन[1] वह ख़िरमन, जिसपर अंगारे बरसते हैं॥

अगर कारे-उल्फ़तको मुश्किल समझ लूँ।
तो क्या तर्के-उल्फ़तमें आसानियाँ हैं?
सज़ायें तो हर हालमें लाज़िमी थीं।
ख़ताये न करके पशेमानियाँ[2] हैं॥

आओ फिर अहदे-विसाले-यारकी बातें करें।
दास्ताने-लुत्फ़ छेड़ें प्यारकी बातें करें॥

अब आँखोंके आगे वोह जलवे कहाँ?
अब आँखें उठानेसे क्या फ़ायदा?

अब फ़रेबे-मेहर्बानी[3] रायगाँ[4]।
ज़िन्दगी भरको नसीहत हो गई॥

जब हमें बज़्ममें आनेकी इजाज़त न रही।
फिर यह क्यों पुरसिशे-हालात है? यह भी न सही॥

अब हाले-दिल न पूछ, कि ताबे-बयाँ[5] कहाँ?
अब मेहर्बाँ न हो कि ज़रूरत नहीं रही॥

---

[1]खलिहान; [2]शर्मिन्दगी; [3]कृपाओंका मायाजाल; [4]व्यर्थ; [5]बयान करनेकी शक्ति।

मैं तो इज़हारे-दर्द करता हूँ।
कोई दर्द-आश्ना नहीं न सही॥

तेरा बारे-गिराने-मेहर्बानी कौन उठा सकता ?
तेरा नामेहर्बाँ होना कमाले-मेहर्बानी है॥

सितमशआर ! सता, लेकिन इस क़दर न सता।
कि शुक्र शक्ले-शिकायात इख़्तियार करे॥
ख़ुदाके वास्ते आ और इससे पहले आ।
कि यास चारए-तकलीफ़े-इन्तिज़ार करे॥

हाय ! वोह राहत कि जबतक दिल कहीं आया न था।
हाय ! वोह साअ़त कि जब तुमसे शनासाई हुई॥

मेरे शौक़े-सज़ाका ख़ौफ़नाक अंजाम तो देखो।
किसीका जुर्म हो अपनी ख़ता मालूम होती है॥

समझता हूँ कि तुम बेदादगर हो !
मगर फिर दाद लेनी है तुम्हींसे॥

फसूँगर ! मैं तुझे पहचानता हूँ।
वहींसे बात करना बस वहींसे॥

इक गदाए-राहको[1] नाहक़ न छेड़।
जा, फ़क़ीरोंसे मज़ाक़ अच्छा नहीं॥

तेरा अ़दील[2] कोई तेरे सिवा न होगा।
तुझ-सा कहांसे लाऊँ, तुझ-सा हुआ न होगा॥
मंज़िलकी जुस्तजूसे पहले किसे ख़बर थी ?
रस्तोंके बीच होंगे और रहनुमा[3] न होगा॥

---

[1]मार्गके भिक्षुकको; [2]नज़ीर, मिसाल, तुझ जैसा; [3]पथ-प्रदर्शक।

हक़[1] बना, बातिल[2] बना, नाक़िस[3] बना, कामिल[4] बना।
जो बनाना हो बना, लेकिन किसी क़ाबिल बना॥

जबाँ तक शिकवए-महरूमिये-दीदार[5] आना था।
खिताब आया कि "जा, और ताक़ते-दीदार पैदा कर॥"

ग़ैर फ़ानी[6] ख़ुशी अता कर दी।
ऐ ग़मे-दोस्त! तेरी उम्रदराज़[7]॥

उठो दर्दकी जुस्तजू करके देखें।
तलाशे-सकूने तबीअत कहाँ तक?

दीदारकी तलबके तरीक़ोंसे बेख़बर।
दीदारकी तलब है तो पहले निगाह माँग॥

जो चाहता है चाह मगर क़ाएदेके साथ।
जो माँगना है माँग मगर राह-राह माँग॥

निशाने-राह हाथ आया तो किससे? सिर्फ़ उल्फ़तसे।
कमाले-रहबरी पाया तो किसमें? सिर्फ़ रहज़नमें॥

आओ, फिर मौक़ा है, कुछ, असरारकी बातें करें?
सूरते-मन्सूर बहकें, दारकी बातें करें॥

बयाने-राज़े-दिलकी ख़्वाहिशें और वोह भी मिम्बर पर?
ख़बर भी है? यह बातें दारपर कहनेकी बातें हैं॥

कोई दोनों जहाँसे हाथ उठा बैठा तो क्या परवा?
तुम इन मोलों भी सस्ते हो, तुम इन दामों भी अरज़ाँ हो॥

---

[1]वास्तविक, हकीकी; [2]असत्य, दुनियावी; [3]घटिया; [4]योग्य; [5]दर्शन न होनेकी शिकायत; [6]न मिटनेवाली; [7]लम्बी उम्र होवे।

दिल और तेरे ख़यालसे राहत न पा सके।
शायद मेरे नसीबमें राहत नहीं रही॥

इसे भी ख़ुश नज़र आया, उसे भी ख़ुश नज़र आया।
तेरे ग़ममें ब-हाले शादमाँ कर दी बसर मैंने॥

मुनासिब हो तो अब पर्दा उठाकर।
हमारा शक बदल डालो यक़ींसे॥

तद्बीर क्या है? आपकी जानिबसे हुक्मकार।
तक़दीर क्या है? आपकी मंशा कहें जिसे॥

या दर्दके एहसासकी लज्जत भी अताकर।
या दर्दके एहससे बेगाना बना दे॥

बेख़बर! कारेख़बर मुश्किल नहीं।
बेख़बर हो जा, ख़बर हो जायगी॥

जो वोह मिलता नहीं है आप खो जा।
कि इक यह भी तरीक़े-जुस्तजू है॥

तेरे होते मेरी हस्तीका क्या जिक्र?
यही कहना बजा है "मैं नहीं हूँ"॥

अगर हदसे गुजरें तो बेशक हराम।
जो थोड़ी-सी पी ली तो क्या हो गया?

आज वोह दिन है कि इक साक़ीके दस्ते-ख़ाससे।
पी और इतनी पी कि मैं हक़दारे-कौसर हो गया॥

याराए-जुहदो-ताबे-वर्ए कुछ तलब न कर।
तौफ़ीक़ हो तो सिर्फ़ मजाले-गुनाह माँग॥

जो अहलेहरम दरपए-दुश्मनी हैं।
तो परवा नहीं, आस्ताँ और भी हैं॥

आ, मगर इस क़दर क़रीब न आ।
कि तमाशा मुहाल हो जाये॥

बनाया, खेल देखे, तोड़ फेंका।
यह क्या अन्दाज़े-तख़लीक़े-जहाँ है ?

जब रुख़े-मक़सदसे इक पर्दा उठा।
और ला-तादाद पर्दे पड़ गये॥

इन्सानकी बदबख़्ती अन्दाज़से बाहर है।
कम्बख़्त ख़ुदा होकर बन्दा नज़र आता है॥

बन्दापरवर ! मैं वोह बन्दा हूँ कि बहरे-बन्दगी।
जिसके आगे सर झुका दूँगा ख़ुदा हो जायगा॥

२४ मई १९५२ ई०]

द्वितीय संस्करणके लिए

लुत्फ़की आँखोंसे क्या देखा ?
आह किसी मसरफ़का[1] न रक्खा॥
आजतक आँखें ढूँढ़ रही हैं।
आह वोह प्यारा-प्यारा जल्वा[2]॥

रहम न खाना, ठीक नहीं है।
देखो ! सताकर कुछ न मिलेगा॥
दामने-ग़फ़लत छूट न जाए।
आँख उठाकर देख न लेना॥

---

[1]कामका; [2]रूप, छवि।

ज़ीस्तके[1] दिन काटे नहीं कटते।
काश तेरा अरमान न होता॥
आह ! हमारी नावकी हालत।
मौजे हाइल[2], तूफ़ाँ बरपा[3]॥

मै पी, दिलको ग़मसे न पाट।
ख़ुश जी और ख़ुश जी कर काट॥
आह ! ख़याले-फ़ुरक़ते-दोस्त।
जी भी बेकल, दिल भी उचाट॥

जौरो-जफ़ाकी[4] ख़ू[5] तो न डाल।
महरो-वफ़ा[6]की जड़ तो न काट॥
रहरवे-हैरत[7] ! देखके चल।
ग़ाफ़िल ! आगे राह न घाट॥

अरज़ो-फ़लक[8], सब सरगरदाँ[9]।
जिसको देखो बारह बाट॥

न पूछो कौन हूं, क्यों राहमे नाचार बैठे हैं।
मुसाफ़िर हैं, सफ़र करनेकी हिम्मत हार बैठे हैं॥
उधर पहलूसे तुम उट्ठे, इधर दुनियासे हम उट्ठे।
चलो हम भी तुम्हारे साथ ही तैयार बैठे हैं॥
किसे फ़ुर्सत ? कि ख़िदमते-उल्फ़त बजा लाये।
न तुम बेकार बैठे हो न हम बेकार बैठे हैं॥

---

[1]ज़िन्दगीके; [2]लहरें बाधक; [3]तूफ़ानोंका आक्रमण; [4]ज़ुल्म करनेकी; [5]आदत; [6]दया और नेकी की; [7]आश्चर्यचकित यात्री; [8]पृथ्वी, आकाश; [9]व्यस्त।

जो उट्ठे हैं तो गरमे जुस्तजूए-दोस्त उट्ठे हैं।
जो बैठे हैं तो महवे-आर्ज़ूए-यार बैठे हैं॥
मुक़ामे-दस्तगीरी है कि तेरे रहरवे-उल्फ़त।
हज़ारों जुस्तजूएँ करके हिम्मत हार बैठे हैं॥
न पूछो कौन हैं? क्या मुद्दआ है? कुछ नहीं बाबा!
गदा[1] हैं और ज़ेरे साय-ए-दीवार बैठे हैं॥
यह हो सकता नहीं, आज़ादसे मैख़ाना ख़ाली हो।
वह देखो कौन बैठा है, वही सरकार बैठे हैं॥

वोह तेरा दिलमें रहकर, आँखसे मस्तूर[2] हो जाना।
वोह मेरा बा-वजूदे क़ुर्ब[3], तुझसे दूर हो जाना॥
वह तेरा मेरी उम्मीदोंको बेदर्दीसे ठुकराना।
वह मेरा शीशए-दिल, संगे-यासमें चूर हो जाना॥
वह तेरा जौरपर ताक़ीदे-शुक्रे-जौर फ़र्माना[4]।
वह मेरा इम्तसाले-अ़म्रसे माज़ूर हो जाना[5]॥
वह तेरा मुझको आख़िर मुज़्दए-पासे-वफ़ा[6] देना।
वह मेरी ग़मनसीब उम्मीदका मसरूर[7] हो जाना॥
वह तेरा मुझको आख़िर अपनी मंज़िलका पता देना।
वह मेरी जद्दो-जहदे-शौक़[8]का मश्कूर[9] हो जाना॥
वह तेरा मुझको अपने दर्दकी दौलत अ़ता[10] करना।
वह मेरे दामने-उम्मीदका भरपूर हो जाना॥

---

[1]फ़क़ीर, भिखारी; [2]पोशीदा; [3]नजदीक होते हुए; [4]अत्याचारके लिए भी कृतज्ञता प्रकट करनेका आदेश; [5]माशूककी आज्ञाके आगे अपराधी न होते हुए भी अपराध स्वीकार कर लेना; [6]वफा करनेका शुभ समाचार; [7]प्रसन्न, खुश; [8]इच्छाओंके संघर्षका; [9]कृतज्ञ; [10]प्रदान।

ख़ुशा 'आज़ाद'का फ़ैज़ाने-सुहबत, जिसने समझाया—
ख़ुदाका क़ुर्ब[1] क्या शै है, ख़ुदीसे[2] दूर हो जाना ॥

सम्मे-क़ातिल भी[3] है, तिर्याक़े-शफ़ा[4] भी इश्क़ है।
मौत भी है, मौतके दुखको दवा भी इश्क़ है ॥

रहरवो[5] ! राहे-मुहब्बतमें निडर आगे बढ़ो।
सिर्फ़ रहज़न[6] ही नहीं है, रहनुमा[7] भी इश्क़ है ॥

मुश्किलाते-इश्क़से घबरा न जाना चाहिए।
मुश्किलाते-इश्क़का मुश्किल-कुशा भी इश्क़ है ॥

शेख़ साहब ! इश्क़, कारे-अहले-इसयाँ[8] ही नहीं।
पीरो-मुर्शिद ! मस्लके-अहले-सफ़ा भी इश्क़ है ॥

ज़िन्दगीमें तर्के-शुग़्ले-इश्क़ क्योंकर कीजिए।
ज़िन्दगी भी, ज़िन्दगीका मुद्दआ भी इश्क़ है ॥

आओ अब 'आज़ाद' आसन मार बैठे और जपे।
आत्मा भी इश्क़ है, परमात्मा भी इश्क़ है ॥

—नाक़ूश ग़ज़ल नं० १९५६ ई०

२२ अगस्त १९५७ ई०]

---

[1]नज़दीकी; [2]अहमसे; [3]घातक विष; [4]रोग दूर करनेका काढ़ा; [5]यात्रियो; [6]लुटेरा; [7]मार्गदर्शक; [8]पाप, अपराध।

'वहशत' कलकत्वी

[१८८१-१९५६ ई०]



ख़ान बहादुर मौलाना रज़ाअ़ली 'वहशत' १८ नवम्बर १८८१ ई०में उत्पन्न हुए। कलकत्ता आपका पैत्रिकस्थान था। भारत-विभाजनके समय आप पूर्वी पाकिस्तान जा बसे थे। वहीं आपका ७५ वर्षकी आयुमें १९५६ ई० में इन्तक़ाल हुआ।

आपके कलामका पहला संकलन 'दीवाने-वहशत' १९११ ई०में और दूसरा संकलन 'तरानए-वहशत' १९५४ ई०में प्रकाशित हुआ। कलकत्तेमें पहले आप इस्लामिया कॉलेजमें उर्दूके प्रोफ़ेसर रहे। १९३१ ई०में आपको अंग्रेज़ी सरकारसे खान बहादुरीका खिताब भी मिला।

मौलाना 'वहशत' एक शरीफ़ इन्सान, वज़अदार और मेहमाँ नवाज़ थे। अपने समकालीन शाइरों और अदीबोंसे कभी आपकी चश्मक नहीं हुई। हर छोटे-बड़ेसे बहुत अच्छा और शरीफ़ाना व्यवहार करते थे। आपके शिष्योंमें कई भारतके ख्यातिप्राप्त बड़े आदमी थे, परन्तु आपने दूसरोंपर यह कभी प्रकट नहीं होने दिया। आप अपने शिष्योंसे पुत्रवत् व्यवहार करते थे। नज़रो-नियाज़ कभी नहीं लेते थे। ज़रूरत पड़नेपर अपनी तरफ़से आर्थिक सहायता भी करते थे। दुःख-दर्दमें इष्ट-मित्रों, शिष्यों आदिका हाथ बटाते थे।

शाइरी आपका व्यवसाय नहीं था। मुशाअरोंमे जानेका कभी पारिश्रमिक नहीं लेते थे। किराया लेनेमे भी आपको पसो-पेश होता था। पत्रका उत्तर तुरन्त देते थे। यह वजअदारी आपने अन्त समय तक निभाई, जबकि आपके हाथ-पाँव काँपने लगे थे।

लम्बी शेरवानी, शेरवानीकी जेबमे घड़ी, चौड़े पाँयचेका पायजामा, सरपर टोपी, बढिया मोजे और जूते अमूमन 'वहशत' साहबका मखसूस पहनावा था। वक्तके बहुत पाबन्द थे। जनाब अज़हर क़ादिरी बयान फर्माते हैं—"एक मर्त्तबाका जिक्र है कि मुहसिन कॉलेजमे एक मुशाअरा 'वहशत' साहबकी सदारतमे हो रहा था। मुहसिन कालेज कलकत्तेसे किसी कद्र दूर है। जहाँ लोग आमतौरपर ट्रेनसे जाते हैं। ट्रेन शामके ७ बजे छुटनेवाली थी। जानेवाले तमाम शोअरा स्टेशन पहुँच चुके थे। और मौलाना 'वहशत'का इन्तजार कर रहे थे। सात बजनेवाले थे और मौलाना 'वहशत' इस वक्ततक स्टेशन नहीं पहुँचे थे। लोगोंके दिलोंमे मुख्तलिफ किस्मके शुब्हात पैदा हो रहे थे और उनपर एक बेचैनी-सी तारी थी। सभी कह रहे थे कि जरूर कोई ऐसी-वैसी बात हो गई है। वर्ना वक़्तकी पाबन्दीका खयाल मौलानासे ज्यादा किसको हो सकता है? सात बजनेमे एक मिनट बाक़ी था। तमाम लोग मायूस हो चुके थे कि इतनेमे दूरसे मौलाना 'वहशत' ट्रेनकी तरफ तेजीसे आते हुए दिखाई दिये। जब वे करीब पहुँचे तो तमाम लोग उनको लेकर एक डिब्बेमे दाखिल हो गये और फिर फ़ौरन ट्रेन चल पडी। कुछ देरके बाद एक साहबने मौलाना 'वहशत'से कहा—'हुज़ूर आज खिलाफ़े-मामूल (टाइम टेबिलके विपरीत) ट्रेन एक-दो मिनट देरसे रवाना हुई। यह अच्छा हुआ वर्ना हमलोग शायद इसमे न जा सकते।' मौलाना 'वहशत'ने मुसकराते हुए फर्माया—"मैंने हमेशा वक़्तका ख़याल किया है, क्या आज वक़्त मेरा खयाल न करता।"

'वहशत' बहुत अच्छे दोस्तनवाज थे। वे अपने ग़रीब-अमीर, छोटे-बड़े सभी दोस्तोंसे हृदयसे मिलते थे। वे उन अवसरवादियोंमे नहीं थे

जो बड़े आदमियोंसे मुलाक़ातके कोई-न-कोई तरीके निकाल लेते हैं। और अपनेसे घटिया किस्मके रिश्तेदारों-दोस्तोंको पहचान भी नहीं पाते। मैं एक ऐसे सज्जनको जानता हूँ, जो एक धनिकको अपना बहनोई बताया करते थे। एक रोज बातों-बातोंमें मैंने कहा, 'उनके तो कोई साला नहीं और आप तो उनकी जातके भी नहीं हैं। फिर वे आपके बहनोई कैसे लगते हैं?' कहने लगे उन्हें हमारे यहाँकी लड़की विवाही है। मैंने फिर दुरुखा, 'वे तो फलाँ गाँव विवाहे हैं और आपका गाँव फला है', बोले—'अरे साहब तहसील तो एक है। अब वे बड़े आदमी हैं, हमें भले ही न पूछें; वर्ना रिश्तेदार होनेमें क्या शक है।' कई हजरत ऐसे भी मिले जो उन्हें अपना लँगोटिया यार कहते थे। पूछा—'भई मैंने तो तुम्हें उनके साथ कभी देखा नहीं, लँगोटिया यार कैसे हुए'? बोले—'हम और वे एक ही कालेजमें पढ़े हैं।' मैंने कहा—'आप तो कहते थे हमने एम. ए. इसी वर्ष किया है। उन्हें कालेज छोड़े ८-१० वर्ष हो गये। उम्रमें भी काफी अन्तर मालूम होता है। जवाबमें फ़रमाया—'जिस वर्ष उन्होंने कालेज छोड़ा था, हम उसी वर्ष फर्स्टईयरमें दाखिल हुए थे। आप लंगोटियायार न समझिए, कॉलेज फेलो तो हैं ही।'

बात जब चल निकली है तो दो लतीफ़े जो याद आ गये हैं, उन्हें भी लिखे देता हूँ। सम्भवतः १९३३-३४ की घटना है। दिल्लीसे मेरा परिचित एक विद्यार्थी डाक्टरी पढ़ने कलकत्ते गया था। उन दिनों सिनेमा-संसारमें मिस कज्जन बहुत जोरोंसे छाई हुई थीं। दुर्गा खोटे भी मशहूर हो चुकी थीं। छुट्टियोंमें वे दिल्ली आये तो उनके वार्त्तालापका एकमात्र विषय फिल्म था। फिर फिरकर फ़िल्मके मौजूपर आ जाते और मिस कज्जन और दुर्गा खोटेका जिक्र बहुत मजे ले-लेकर करते। मैंने कहा—"भई तुम तो इनका जिक्र इस तरह कर रहे हो, जैसे अच्छी-खासी मुलाक़ात हो।"

उछलकर बोले—"मुलाक़ात! मुलाक़ात क्या होती है साहब! हमारे उनके बहुत गहरे मरासिम हैं।" मैंने कहा—"भाई वह किस तरह"?

फर्माया—"कज्जनके मोटर ड्राइवरके कपडे जिस दर्ज़ीके यहां सिलते हैं, उस दर्जीका दोस्त मेरा दोस्त है। उसकी मार्फ़त कज्जनके सब हालात मालूम होते रहते हैं, और हम जिस मकानमें रहते हैं, उसके सामनेका पिछला हिस्सा दुर्गा खोटेके मकानका है। उसके पिछवाडेकी खिडकी ठीक हमारे दर्वाज़ेके सामने पड़ती है।" मैंने पूछा—"तब तो दुर्गाको कई बार देखा होगा।" बोले—"अभी तो इत्तफ़ाक़ नही हुआ है, मगर कभी-न-कभी दीदार नसीब ज़रूर होंगे।" मेरे मुंहसे बरजस्ता निकला—

हमने भी कोठा लिया तेरी कोठीके सामने।

सुनकर बहुत झेंपे। 'वहशत' साहबकी दोस्तनवाज़ीके बारेमें अज़हर कादिरी साहब एक घटनाका उल्लेख इस तरह करते हैं—"मैंने अपने एक बुजुर्गसे सुना है कि 'वहशत' साहबके एक हमजमाअत थे, जो ज्यादा तालीम हासिल न कर सके और तालीम तर्क करके एक छोट-सा होटल खोल लिया था। वह होटल हरगिज ऐसा नही था, जहाँ कोई शरीफ और माकूल किस्मका आदमी जाकर बैठता। लेकिन कहते हैं कि 'वहशत' साहब जब कभी उस राहसे गुजरते तो बिला जरूरत भी उस होटलमें जाकर चाय जरूर पी लेते और उसकी वजह सिर्फ़ यह बताई जाती है कि कही मौलानाके इस हमजमाअतके दिलमें यह गुमान न गुजरे कि 'वहशत' साहब बड़े और मशहूर आदमी हो गये है तो मुझसे मिलनेमें हिचकिचाहट होती है और इसे कस्रेशान समझते हैं।"[1]

'वहशत'ने—मिर्जा दाग़, अमीर मीनाई, जलालके युगमें आँखे खोली। कही-कही आपके कलाममें उस युगका रग झलकता है; परन्तु आप मिर्जा ग़ालिबका अनुकरण करनेका प्रयास करते रहे। फ़र्माया है—

तेरे अन्दाज़े-सुख़नसे है यह ज़ाहिर 'वहशत'!
कि मुक़द्दर है तेरा ग़ालिबे-दौरां होना॥

---

[1]नक़्श अक्तूबर १९५६ पृ० ८७३-७४।

सुख़नसे तेरे 'वहशत' तर्ज़े-ग़ालिब आशिकारा है ।
कहीं रंगीबयानीमें, कहीं नाज़ुक ख़यालीमें ।।

और इस प्रयासमे 'वहशत'को काफी सफलता भी मिली है । ग़ालिबके रगमे चन्द शेर—

हूँ मैं इक शमअ़ कि है मुन्तज़िरे-मुबज्जहे-बाद ।
देखिए कब वह इनायतकी नज़र करते हैं ।।

वही मतलूब है दिलको कि जिससे हो ज़ियाँ मेरा ।
मेरी तरकीबमे इक जुज़्वे बरबाद भी शामिल है ।।

तुम वह बेदर्द कि रोनेको गिला कहते हो ।
हम वह मिसकीं कि जफ़ाको भी वफ़ा कहते हैं ।।

नहीं है महरो-वफ़ा ही की जब तुझे परवा ।
तो मेरी महरो-वफ़ाका फिर इम्तहाँ क्यों हो ?

याँ जौफ़े-सितम मुज़्दा कि वह बेसबब आज़ार ।
सरगर्म दिल-आज़ारि-ए-अरबाबे-वफ़ा है ।।

उमीदें ख़ाकमे मिल-मिल गईं तेरे तग़ाफ़ुलसे ।
कोई क्योंकर हरीफ़े-वादए-सब्र आज़्मा होता ।।

किसीका गोशए-अबरू है शायद माइले-जुम्बिश ।
कि अपने काम जो मुश्किल थे आसाँ होते जाते हैं ।।

ख़ाक उससे बन पड़ेगा तेरी बातोंका जवाब ।
हम-सुख़न तेरा हलाके-शोख़िये-तक़रीर है ।।

कहीं-कहीं मोमिनका रंग भी झलकता है—

करो रक़ीब पै क्यों ज़ुल्म मैं तो हाज़िर हूँ।
गिला तुम्हारे सितमका यहाँ-वहाँ क्यों हो?

तूने जो ग़ैरको न सताया भला किया।
जाती तेरी शिकायते-बेदाद हर तरफ़॥

खुल गया मुझपै तेरा ग़ैरसे छुपकर मिलना।
तुझसे मिलते हुए अब मुझको हया आती है॥

'वहशत'का शुमार दिल्ली स्कूलमें किया जाता है। उनकी शाइरी मस्तिष्ककी उपज न होकर हृदयकी शाइरी है। उसमें कृत्रिमता कम और वास्तविकता अधिक है। स्वयं फर्माते हैं—

ख़ुदा गवाह कि हूँ तर्जुमाने-दिल 'वहशत'!
कहे हैं शेर, नहीं की है शाइरी मैंने॥

यानी शेर कहनेके लिए कभी नहीं कहे। जब शेर बर्बस दिलसे निकले तभी कहे—

वही कहता हूँ दिल जिसकी मुझे तालीम करता है।
नहीं है शाइरी मेरी, मगर 'वहशत' ज़बाने-दिल॥

और जब कभी आपको फर्माइशी कलाम कहना पड़ा तो उसमें वह बात न आपाई जो आपकी विशेषता है। इसी मजबूरीकी तरफ़ इशारा करते हुए फ़र्माया है—

हमारी शाइरी अब दिल्लगी-सी रह गई 'वहशत'!
कि कुछ कह लेते हैं, अहबाब जब इसरार करते हैं॥

'वहशत' प्रथम श्रेणीके ग़ज़ल-गो शाइर हुए हैं। मगर आपके कलाममें

न तो मीर-जैसा सोजो-गुदाज मिलता है, न गालिब-जैसा तंज़ और रंगे-बयान। इसका कारण यही है कि उन्होंने दिलके वे अन्तरंग भाव व्यक्त नहीं किये, जो शाइरीके लिए जरूरी हैं। दुनियाकी बदनामीके भयने उन्हें वास्तविक हृदयोद्गार प्रकट नहीं करने दिये। आपने इस मजबूरीका इजहार भी किया है—

ग़ज़ल लिखते हुए 'वहशत' मुझे अन्देशा होता है।
जबाने-खामापर आये न अफ़साने कहीं दिलके॥

बक़ौल प्रोफेसर अरशद काकोरवी—"यह अन्देशा हर गजलगो शाइरको ले डूबता है। 'वहशत'ने अपनी जिन्दगीमें इससे बड़ी गलती कोई नहीं की और अपनी ग़ज़लगोईके साथ इससे बड़ा जुल्म कोई नहीं किया कि दिलके अफसानोंको छुपाये रखनेकी कोशिश करते रहे और गजल कहते रहे।"[1]

अब हम स्वयं 'वहशत' साहबके पसन्दीदा अश्आरमें-से चन्द शेर निगार जनवरी १९४१ से दे रहे हैं—

हमारे पाँवमें तो तुमने जंजीरे-वफ़ा[2] डाली।
तुम्हारे हाथसे क्यों रिश्तए-महरो-करम[3] छूटा?

तग़ाफ़ुल तो अदा है, पुरख़तर है इल्तफ़ात उसका।
मुसीबत आयगी उस वक़्त जब वोह महरबाँ होगा॥

अभी तो तेरी मायूसीसे[4] इत्मीनान है ऐ दिल!
मुझे उस वक़्त होगा खौफ़, जब तू शादमाँ[5] होगा॥

फिर नवाजिश[6] आपकी हदसे ज़ियादा हो गई।
फिर दिले-आफ़तरसीदा[7] बदगुमाँ[8] होने लगा॥

---

[1]निगार जुलाई १९५४ ई० पृ० १८; [2]नेकी करनेकी आदतरूपी बेड़ियाँ; [3]दया-कृपाका रिश्ता; [4]निराशासे; [5]प्रसन्न; [6]कृपाएँ; [7]मुसीबतें उठाया हुआ दिल; [8]अविश्वासी।

फिर हुआ मेरे लिए शौक़ आफ़री[1] उसका शबाब[2]।
फिर मेरा दिल अ़हदे-पीरीमें[3] जवाँ होने लगा ॥

हुई जो चश्मे-हविस[4] कामयाबे-नज़्ज़ारा[5]।
करम[6] है यह भी तेरे शौक़े-ख़ुदनुमाईका[7] ॥

मुझे अब तानए-अफ़सुर्दगी[8] देता है तू ऐ दिल !
कभी तूफ़ान था मैं भी ज़माना याद कर मेरा ॥

गो हयाने जुम्बिशे-लबकी न दी रुख़सत उन्हे।
मैं शहीदे-तर्ज़े-पुरसिश हाय पिन्हाँ हो गया[9] ॥

किसीसे कहती है चितवन किसीकी।
"कि तू क्या और तेरा मुद्दआ क्या ॥"

मजाले तर्के-मुहब्बत[10] न एक बार हुई।
ख़याले-तर्के-मुहब्बत तो बार-बार आया ॥

निशाने-मंज़िले-जानाँ मिले-मिले-न-मिले।
मज़ेकी चीज़ है यह जौक़े-जुस्तजू मेरा ॥

न जाने नाज़ करती किस क़दर बुलबुल गुलिस्ताँ पर।
अगर इक फूल भी शर्मिन्दए-बूए-वफ़ा होता ॥

बारहा बेइल्तिफ़ाती[11] देखकर सैयादकी।
ख़ुद-ब-ख़ुद बेताब होकर मैं तहे-दाम[12] आ गया ॥

---

[1]उत्साहवर्द्धक; [2]यौवन-रूप; [3]वृद्धावस्थामें; [4]लालायित नेत्र; [5]देखनेमें सफल; [6]दया,कृपा; [7]अपने दिखानेका शौक; [8]मुर्झाये जानेका उलाहना ; [9]शर्म-लाजके कारण प्रेयसी ओठतक न हिला सकी। मगर मैं तो उसकी उसी अदापर न्योछावर (शहीद) हो गया, जो भाव मेरा हाल पूछनेके लिए उसके मनमें उठ रहे थे; मगर बाहर नहीं निकल पा रहे थे; [10]प्रेम त्यागकी हिम्मत ; [11]अकृपाये, उपेक्षाये; [12]जालमें।

है नजरबाजोंमे हलचल, सब है गरमे-जुस्तजू।
वोह परी है कौन 'वहशत' जिसका दीवाना हुआ ॥

ईमाँ अगर जाता रहा, उस बुतकी 'वहशत' क्या खता ?
हम भी खुदा लगती कहें तू भी तरफ़दारी न कर ॥

गोया है कोई और भी मामन' जमानेमे।
मायूस होके उट्ठे है उस आस्ताँसे हम ॥

तेवर तेरे कुछ और खबर देते है हमे।
घबरा रहे है अपने दिले-शादमांसे[२] हम ॥

क्या रग इन्तक़ामे-खिजाँका हो देखिए।
डरने लगे है जोशे-बहारे-चमनसे हम ॥

हमारे आगेसे जब वोह कभी गुजरते है।
हम अपने खोए हुए दिलको याद करते है ॥

यह क्या हजूमे-तमन्ना है, खैर हो यारब !
हम उनसे डरते नहीं अपने दिलसे डरते है ॥

दिलके कहनेपे चलूँ अक़्लका कहना न करूँ।
मै इसी सोचमे हूं, क्या करूँ और क्या न करूँ ॥

खफ़ा तुम जुर्मे-उल्फ़तपर, खिजिल[३] मै जुर्मे-उल्फ़तसे।
न तुम मिलनेपर आमादा, न मैं मिलनेके क़ाबिल हूँ ॥

वही गव्वास[४] है जो डूबकर उभरे न दरियासे।
नहीं है इश्क़में उनकी सनद जो पार उतरते है ॥

---

[१]शरण-योग्य स्थान; [२]प्रसन्न दिलसे; [३]शर्मिन्दा; [४]गोताखोर।

जरूरत तुमको क्या मुझसे तकल्लुफको तवाजअकी[1] ।
यही अन्दाज वोह है जो मुझे मायूस[2] करते है ।।

इस दिलनशीं अदाका मतलब कभी न समझे ।
जब हमने कुछ कहा है, वोह मुसकरा दिये है ।।*

कुछ शोख कर दिया है, छेड़ोंसे हमने तुमको ।
कुछ हौसले हमारे तुमने बढ़ा दिये है ।।

निशाने-जिन्दगि-ए-दिल है, बेकरारिए-दिल ।
है दिलकी मौत अगर चैन आ गया दिलको ।।

बज्मे-अगियारमे[3] माजूर[4] न थे वोह 'वहशत' !
बात अगर कर नहीं सकते थे, इशारा करते ।।

इक हद् जरूर होती है सब्रो-करारकी ।
अब नौबत आई नाल-ए-बेइख्तियारकी ।।

आप अपना रुए-जेबा[5] देखिए ।
या मुझे महवे-तमाशा[6] देखिए ।।

हसरतोंका[7] हायरे दिलमे हुजूम ।
आर्जूओंका नतीजा देखिए ।।

मरहमका जिक्र किसने अदावतसे कर दिया ।
यह क्या नई खलिश[8] मेरे जख्मे-कुहनमे[9] है ?

---

*इसी खयालको 'सवा' अकबराबादीने किस खूबीसे व्यक्त किया है—

लुत्फ़हमियोंमें जवानी गुजारी ।
कभी वोह न समझे कभी हम न समझे ।।

[1]खातिर-तवाजअकी; [2]निराश; [3]शत्रुकी महफ़िलमे; [4]मजबूर; सुघड चेहरा, मोहकरूप; [6]देखनेमे लीन; [7]अभिलाषाओंका; [8]चुभन, टीस; [9]पुराने घावमे ।

जिससे चाहो पूछ लो तुम मेरे सोज़े-दिलका हाल। ५
शमअ भी महफ़िलमे है; परवाना भी महफ़िलमे है ॥

कूए-जानाँके[1] लिए मै ही नहीं हूँ मुज़्तरिब[2]।
कूए-जानाँ भी है आतश[3] ज़ेरे-पा[4] मेरे लिए ॥

अब ख़फ़ा होने लगे हो मुझसे हर-हर बातमे।
तुम कि हो जाते थे दुश्मनसे ख़फ़ा मेरे लिए ॥

दोनोंने किया है मुझको रुसवा।
कुछ दर्दने और कुछ दवाने ॥

वतनमे आँख-चुराते है हमसे अहले-वतन।
तड़पते रहते थे ग़ुर्बतमे[5] हम वतनके लिए ॥

सरेबालीं ज़रा आजाओ तुम बीमारे-हिजरके।
कि इक हिचकीमे वोह कह दे कहानी ज़िन्दगी भरकी ॥

निगाहे-नाज़ तेरी मेरे हक़मे इक मुअम्मा[6] है।
समझ ही मे नहीं आता है क्या इर्शाद[7] होता है ॥

क़फ़समे उम्र गुज़री नालओ-आहो-फ़ुग़ाँ करते।
हम आख़िर किस तवक्कुअपर ख़याले-आशियाँ करते ॥

पता मिलता नहीं जिन्से-वफ़ाका इस ज़मानेमे।
कहींसे हाथ अगर लगती तो नज़रे-दोस्ताँ करते ॥

दमे-इश्रत मुझे अन्देशए-अंजाम होता है।
मेरा दिल काँपता है, दौरमे जब जाम होता है ॥

---

[1]प्रेयसीकी गलीके; [2]बेचैन; [3]-[4]मेरे लिए प्रेयसीकी गली भी उद्विग्न है; [5]परदेशमे; [6]पहेली; [7]आदेश।

हँसा हूँ हालपर अपने जहाँ रोनेका मौक़ा था।
किया है शुक्रके पर्देमे क़िस्मतका गिला मैंने॥

है हिदायतके लिए मौजूद ख़ुद तेरा ज़मीर[1]।
गोशे-दिलसे[2] सुन हक़ीक़तकी[3] यही आवाज है॥

गो मैं हूँ तुझसे दूर तेरी आर्ज़ू तो है।
तेरा पता मिले न मिले आर्ज़ू तो है॥

वोह आये या न आये, उन्हे इख़्तियार है।
ऐ जौके-इन्तज़ार मैं ख़ुश हूँ कि तू तो है॥

परवानेकी है मौतपर ऐ शमअ! मुझको रश्क[4]।
तेरा शहीदे-नाज़ तेरे रूबरू तो है॥

उन्हे इल्म हो चुका है मेरी ताक़तो-तवाँका[5]।
वह करेंगे ख़ाक पर्वा मेरे नालए-फ़ुग़ाँकी?

सरे-शाखे-आशियाँ भी मुझे ख़ौफ़ था क़फ़सका।
न हुई नसीब दिलको कभी राहत आशियाँकी॥

मेरे गिरयए-अलम[6] पर न बहाये जाये आँसू।
कहीं तुम हँसी न करना मेरी चश्मे-ख़ूँ फ़िशाँकी[7]॥

मुझे हमनवा[8] न देना कहीं ज़हमते-तकल्लुम।
कही जायगी क़फ़समे न हिकायत आशियाँकी॥

हो रसाई क्या वहाँतक बस इक आसरा यही है।
कि उन्हींको याद आये कभी अपने नातवाँकी॥

---

[1]अतरात्मा; [2]अन्तरगके कानमे; [3]सत्यकी, [4]ईर्ष्या; [5]ताक़त और सामर्थ्यका; [6]व्यथापूर्ण रुदनपर; [7]रक्तरजित नेत्रोंकी; [8]हम जबान।

मुझे अब शगुफ़्तगीकी हो क़फ़समे क्या तवक्कुअ ।
गई साथ आशियोंके जो थी बात आशियाँकी ।।

अब हम समाचार पत्रोंमे प्रकाशित नवीन कलाममे-से कुछ शेर चुनकर दे रहे हैं—

दिलवाले हैं वाक़िफ़ मेरी बरबादि-ए-दिलसे ।
हर चन्द कि यह वाक़ेआ मशहूर नहीं है ।।

कुछ समझकर ही हुआ हूँ मौजे-दरियाका[1] हरीफ़[2] ।
वर्ना मै भी जानता हूँ आफ़ियत[3] साहिलमे है[4] ।।

हसरतोंका हायरे दिलमे हुजूम ।
आर्ज़ूओंका नतीजा देखिए ।।

खयालतक न किया अहले अंजुमनने कभी ।
तमाम रात जली शमअ अंजुमनके लिए ।।

—निगार जुलाई १९५४ ई०

हुए हैं गुम जिसकी जुस्तजूमे, उसीकी हम जुस्तजू करेंगे ।
रखा है महरूम जिसने हमको, उसीकी हम आर्ज़ू करेंगे ।।

गये वोह दिन जबकि इस चमनमे हवा-ए-नश्वो-नुमा थी हमको ।
खिज़ाँको देखा नहीं है हमने कि ख़्वाहिशे-रंगो-बू करेंगे ।।

हिकायते-आर्ज़ू है नाज़ुक, ज़बान क्या खाक कह सकेगी ।
लबे-खमोश-ओ-निगाहे-हसरतसे दिलकी हम गुफ़्तगू करेंगे ।।

जगह जो आँखोंमें मैंने दी थी, तो उनसे थी चश्मे-राज़दारी ।
यह क्या खबर थी कि अश्क मेरे, मुझीको बेआबरू करेंगे ।।

---

[1]लहरोंका; [2]शत्रु,लड़नेको प्रस्तुत; [3]कुशल; [4]दरिया किनारेमे ।

अभी तो गुमकरदा राह खुद है, मए-मुहब्बतकी बेखुदीमें।
अगर कभी आपमे हम आये तो उसकी भी जुस्तजू करेंगे॥

दर्दका मेरे यक़ीं आप करे या न करे।
अर्ज़ इतनी है कि इस राजका चर्चा न करे॥
मेरे अरमानोंको काश इतनी समझ हो 'वहशत'!
कि उन आँखोंसे मुरव्वतका तक़ाजा न करे॥

नक़ूश ग़ज़ल नम्बर फ़रवरी १९५६

शक्ल कुछ ऐसी बदल दी यासने[1] उम्मीदकी।
आर्ज़ू पर[2] भी नहीं होता गुमाने[3]-आर्ज़ू॥

कोई किस तरह मुसीबतसे बचे दुनियामे।
मख़मसे[4] और भी है इश्क़का सौदा न सही॥

जहाँमे छोड़ जाता मै अलमनाक[5] एक अफ़साना।
अगर मुझसे मेरी रुदादे-ग़म[6] तहरीर[7] हो जाती॥

मुझे ज़िद है अपनी फ़लाहसे[8] नहीं फ़ायदा मेरा मुद्दआ[9]।
है ज़रर ही से[10] मुझे वास्ता, मेरा नफ़ा जैसे ज़ररमें है॥

जो ज़िन्दगीमे हमे कुछ उम्मीद ही न रही।
तो ज़िन्दगी ही हमारी रही-रही न रही॥

दिले-फ़ुसुर्दाने[11] यूँ मुझको बेनियाज़[12] किया।
कि दहरमे[13] कोई शै वजहे-दिलकशी न रही॥

---

[1]निराशाने ; [2]सफलताओपर भी ; [3]विश्वास ; [4]झमेले ; [5]व्यथापूर्ण ; [6]गमकी कहानी ; [7]लिखी जाती ; [8]भलाईसे ; [9]उद्देश्य ; [10]हानिमे [11]मुर्झाये दिलने; [12]उदासीन; [13]ससारमे।

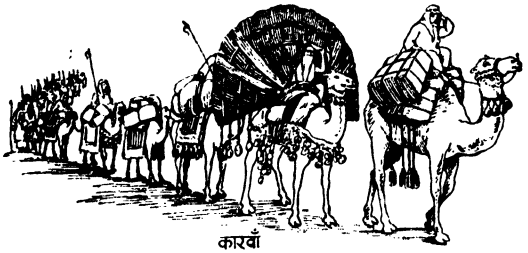
मुक़ामे-शुक्र है कि इक वक़्त ऐसा आ पहुँचा।
कि दिलके हालसे ख़ुद दिलको आगही[1] न रही ॥

ग़लत है दूँ जो गुलिस्ताने-दहरको इल्ज़ाम।
जब अपने ग़ुंच-ए-ख़ातिरमें ताज़गी न रही ॥

यह क्या ज़रूर है रोऊँ मैं ऐशे-रफ़्ताको[2]।
बुरा ही क्या है जो लबपर मेरे हँसी न रही ॥

—नक़ूश अक्तूबर १९५६ ई०

१ सितम्बर १९५७ ई०]



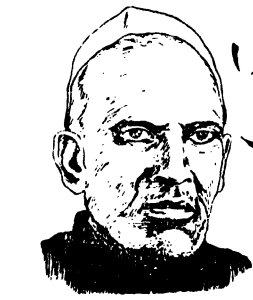
कारवाँ

न परवा की हमारी कारवाँने जब तो, फिर हम भी।
बिछुड़कर कारवांसे क्या तलाशे-कारवाँ करते ?

१ सितम्बर १९५७ ई०]

---

[1]जानकारी; [2]भूतकालीन सुख सुविधा।



'अमजद' हैदराबादी

[१८८४ — ·····ई०]

हज़रत अमजद १८८४ ई० में हैदराबादमें पैदा हुए। आपके जन्मके ४० रोज़ बाद पिताका निधन हो गया। माताके अतिरिक्त कोई ऐसा कुटुम्बी या रिश्तेदार न था, जो भरण-पोषणका भार उठाता। आमदनीका कोई ज़रिआ नहीं था। ज़िन्दगी निहायत तकलीफ़से बसर होती थी। फिर भी विधवा और असहाय माँ ने हिम्मत न हारी और मेहनत-मज़दूरी करके अमजदका भरण-पोषण ही नहीं किया, अपितु उन्हें उन दिनोंके रिवाजके अनुसार फ़ारसीकी उच्च शिक्षा भी दिलाई।

'अमजद' अपनी आत्म-कथामें लिखते हैं—"हमारे वालिद् हज़रत सूफ़ी रहीमअलीका हमारी वालिदासे अक़्द (शादी)के तीन साल बाद ऐन हमारे चिल्ला (जन्मके चालीसवें रोज़ मनाए जानेवाले उत्सव)के दिन मर्ज़े-फ़ालिजसे आनन्-फानन्में इन्तक़ाल हो गया। मेहमानोंसे भरा हुआ इशरतकदा दमभरमें मातम्कदा बन गया। अगर्चे हमारी वालिदाके अज़ीज़ो-अक़ारिब सब मर चुके थे। शौहरका साया भी सरपर बाक़ी नहीं रहा था। सब बच्चे गुज़र जाकर हम अकेले रह गये थे। मगर न मालूम हमारी इन अम्मीजानमें तालीमका शौक़ कहाँसे और किस तरह पैदा हो गया था कि हमसे बार-बार फ़र्मातीं—

"बेटा अगर जीना हो तो कुछ होकर जियो, वर्ना मर जाओ"। माँ इल्मकी दिलदादा, हम खेलपर आमादा। उनको इल्ममें मुहब्बत, हमको पढनमें वहशत।....गरज किसी तरह जान चुरा-चुराकर, मार खाकर खानगी (प्राइवेट) तौरपर क़ुरान मजीद और उर्दूकी दो-एक किताबें उल्टी-सीधी खत्म करली।

जब मदर्समें शरीक हुए, किसी हीले-बहानेकी चन्दाँ जरूरत न पडी। किताबोंका बस्ता बगलमें दबाकर शौकीन बच्चेकी तरह घरसे निकल जाते। बाग़ों और जगलोंकी सैर किया करते और फिर अस्र (शाम)के वक्त उसी तरह बस्ता बगलमें लिये हुए घर वापिस आ जाते। आखिर एक दिन वालिदाको हमारी आवारागर्दीका पता चल ही गया।

एक रोज हमारे दर्वाजेके सामनेसे कहारोंके कन्धोंपर पालकीमें सवार कोई अमीर जा रहा था। पालकी पकडे हुए एक आदमी भी साथ-साथ दौड़ रहा था। वालिदाने हमें बुलाकर दिखाया और कहा "देखो और अच्छी तरह समझो। एक आदमी सवार है, एक पाँव पैदल पालकीके साथ-साथ दौड रहा है। बताओ इन दोनोंमें-से किसकी जिन्दगी तुम्हें पसन्द है ?" हमने कहा—"पालकी सवारकी"।.....वालिदाने कहा—"ऐसी जिन्दगी तो बगैर इल्मके किसीको नसीब नहीं हो सकती। अगर न पढोगे तो तुमको भी इसी दूसरे आदमीकी तरह पालकीके साथ दौडना पडेगा।"

वक्तकी बात, गफ़लतका असर, इस बेशबहा मिसालसे हम बहुत सहम गये और आइन्दा खेलनेसे तौबा करके पढने-लिखनेका अहद कर लिया—

दिलपै लगी जाके हथौड़ेकी तरह।
कहनेको जाहिरमें वह एक बात थी॥
कर दिया दम भरमें इधर-से-उधर।
बात थी या कोई करामात थी[1]॥

---

[1]नक़ूश जनवरी १९५६ पृ० ३२९-३०।

अमजद बहुत परिश्रमी और अध्ययनशील थे। जिन उस्तादसे आपने फारसी-का अध्ययन किया, वे आपके मकानसे १४ मील दूर रहते थे। फिर भी आप उनके पास दैनिक पढने जाते थे। इस परिश्रमका परिणाम यह हुआ कि आपने फारसीमे मुंशी फाजिलकी सर्वोच्च डिगरी प्राप्त की।

हैदराबाद उन दिनों शेरो-शाइरीका मुख्य केन्द्र बना हुआ था। मिर्जा 'दाग'-जैसे ख्यातिप्राप्त उस्ताद हैदराबादमे जलवा-फ़र्मा थे। दो हजारके लगभग उनके शिष्य भारतके कोने-कोनेमे बिखरे हुए थे। 'दाग' की गजलसराईसे जब समस्त भारत गमक रहा था, तब हैदराबादकी साहित्यिक मजलिसोंके तो ठाट ही निराले होगे, जहां वे स्वय अपनी जबाने-मुबारकसे गजल पढते थे। स्थानीय लोगोंके अतिरिक्त बीसों शिष्य दिल्ली, इलाहाबाद, एटा, पजाब आदि-जैसे सुदूर शहरोसे उस्तादकी खिदमतमे रहते थे। महाराजा सर किशनप्रसाद 'शाद' जो कि हैदराबाद राज्यके प्रधान मत्री थे, अधिक-से-अधिक शाइरोका समागम बनाये रखते थे। उन जैसा मेहमां-नवाज, कद्रदां, कला-पारखी और उदार-हृदय प्रधान शासक जहां मौजूद हो और स्वय नवाब हैदराबाद मिर्जा 'दाग'के शिष्य हो, और शेरो-शाइरीमे दिलचस्पी लेते हो, उस हैदराबादका क्या कहना ? गली-गली, कूचे-कूचेमे मुशाअरोकी महफिले जमती थी। 'दाग'के अतिरिक्त उत्तरी भारतमे 'सरशार', 'तुर्की', 'गिरामी', 'जहीर' वगैरह भी रौनक अफरोज थे। इसी वातावरणमे अमजद भी परवान चढ रहे थे। चुनाचे शाइरीका शौक बचपनसे ही हो गया। कहीसे 'नासिख'का दीवान हाथ लग गया, अत. चुपचाप उसे पढते रहते और शेर कहनेका अभ्यास करते रहते थे। पहले-पहल आपने यह शेर मौजूं किया—

नहीं ग़म गरचे दुश्मन हो गया है, आस्माँ अपना।
मगर या रब ! न हो, नाम्मेहरबाँ वोह मेहरबाँ अपना ॥

जीविकोपार्जनके लिए आप स्कूलमे शिक्षक हो गये, और उसी अल्प वेतनमे स्वाभिमानके साथ सन्तोषपूर्वक जीवन-निर्वाह कर रहे थे, कि

दैवसे आपका यह सुख भी नहीं देखा गया। आपकी मां, पत्नी और पुत्री दरियामे डूब गये। किसी तरह कई फर्लांग मौजोके थपेडे खाकर अकेले 'अमजद' साहब बचे। इस दुर्घटनामे आपको बहुत सदमा पहुँचा।

इस दर्दनाक मजरका हाल खुद अमजद साहबके दिले-पुरदर्दसे सुना जाय-

"हमारा मकान मूसा नदीसे कोई साठ गजके फासिले पर था। शाम ही से मूसा नदी लबरेज होकर अपने दोनो साहिलो (किनारो) की तरफ सैले-बला की तरह बढ रही थी। रातके दस बजेतक तो बढते हुए पानीने गनीम (आक्रमणकारी) की फ़ौजकी तरह चारो तरफसे मुहासेरा कर लिया था। थोडी ही देरके बाद कमरेके हालमे पानी आ गया। हम उधरसे भागकर दूसरी तरफ जा बैठे। उधर भी दम लेने न पाये कि सहन्का पानी दर्वाजेके रास्ते चढता हुआ ऊपर आ गया। आखिर एक तख्त बीचमे डालकर हम सब उसपर बैठ गये। हमारे लिए यह बहुत नाजुक वक्त था। दोनो तरफसे पानी बराबर चढता-उतरता आ रहा था। न इधर कोई रास्ता न उधर कोई मफर (भागनेकी जगह) इधर मौत उधर मलिकुल मौत।..

हम एक तरफ, माँ एक तरफ, बीवी एक तरफ, बच्ची एक तरफ। सब मुन्तशिर (अलग-अलग) हो गये। इस जगह भी कुदरतका करिश्मा देखनेके काबिल है। हमारा कदम डूबनेके बाद जमीनकी जगह घासके छप्परपर जा पडा। डूबनेको तिनकेका सहारा। कुछ वक्त उसीपर गुजर गया। यहांतक कि सुबह नमूदार हुई। नदीकी जदमे शहरकी फसील (परिकोटा) का एक हिस्सा गिर पडा। जिसकी वजहसे नदीका सिमटा हुआ जोर दूर-दूर फैलकर हमारी तरफ भी मुन्तकिल हो गया। माँने बेटेकी आवाज सुन ली। उस आलमे-बद-हवासीमे हाथ बढाकर एक पतली-सी डाली पकड ली और मेरी तरफ देखकर कहा—"हाय बेटा! मेरे दोनों चाँद (बहू और पोती) डूब गये।" हमने कहा खैर जो हुआ सो हुआ। तुम तो किसी तरह बच जाओ।.....और वह पतली-सी डाली भी हाथसे छूट गई। अम्माके दो चाँदोकी तरह हमारा एक चान्द (माँ) भी पानीमे हमेशाके लिए डूब गया।

हम नगे-खान्दान, खान्दानको डुबोकर डूबते-डूबते नदीके जबर्दस्त धारेमे बह चले। इसी धारमे कुछ दूर बहने और जनाने हस्पतालके महाजीमे आनेके बाद हस्पतालकी बीमार औरतोने हिम्मत करके डूबते हुएको बचा लिया। बेगैरतकी बला दूर, अजीजोको खोकर नगे-धडगे, भयानक सूरत, डरावना चेहरा लिये हुए एक मर्तबा फिर किनारे लग गये। बहनेवाले बह गये, डूबनेवाले डूब गये और ऐसे गये कि लाशोनकका पता न मिला—

सैलाबमे जिस्मे-जार गोया खस था।
इर्फात् मुहीते-गम कसो-नाकस था॥
इतने दरियामे भी न डूबा 'अमजद'!
गैरतवालेको एक चुल्लू बस था[1]"॥

अमजदने बहुत दुर्दिन देखे है। दरिद्रताका यह हाल था कि दो रुपये माहवारपर एक लडकीको पढानेके लिए चार मील पैदल जाया करते थे। बहुत प्रयत्नो और अनेक स्थानोकी खाक छाननेके बाद आपको १५ रु० मासिककी मुदर्रिसी मिली।

फिर किस्मतने जोर मारा तो आप मुदर्रिसीके चक्करसे निकलकर दीवानी अदालतमे नियुक्त हो गये। जहाँ आप ४० रु० से बढते-बढते ६००रु० मासिक वेतन पाने लगे, और पेशन होनेपर ४०० रु० मासिक वजीफा मिलता रहा।

आप स्वाभिमानी, मेहमाँनवाज, विनम्र और सरल एव सादा स्वभाव-के बुजुर्ग है। आप गजल और नज्म दोनो ही कहते है।

खेद है कि हमे आपका दीवान दस्तयाब न हुआ। अत पत्र-पत्रिकाओमे चुनकर कुछ गजलोके शेर और कुछ रुबाइयाँ दे रहे है—

---

[1] नक़ूश जनवरी १९५६ ई० पृ० ३३१-३२।

नालए-जाने-खस्ता-जा,[1] अर्शबरींपै[2] जाये क्यों ?
मेरे लिए जमीनपर साहबे-अर्श[3] आये क्यों ?
नूरे-जमीन-ओ-आस्मां[4], दीदए-दिलमें आये क्यों ?
मेरे सियाह-खानेमें कोई दिया जलाये क्यों ?
जख्मको घाव क्यों बनाओ ? दर्दको और क्यों बढ़ाओ?
निसबते-हूको[5] तोड़कर कीजिए हाये-हाये क्यों ?
बख्शनेवाला जब मेरा उफ़्फ़ै[6] है तुला हुआ ?
मुझ-सा गुनाहगार फिर जुर्मसे बाज आये क्यों ?
'अमजदे'-खस्ता हालकी पूरी हो क्योंकर आर्जू।
दिल ही नहीं जब उसके पास, मतलबे-दिल बर आये क्यों ?

अमजद सूफी खयालके हैं। आपका इश्क ईश्वरीय और भाव दार्शनिक है। उसी दृष्टिसे निम्न अशआर अवलोकन कीजिए—

हम तो एक बार उसके हो जाये।
वोह हमारा हुआ, हुआ, न हुआ ॥
ढूँढता हूँ मैं हर नफ़स[7] उसको।
मुझसे जो एक नफ़स[8] जुदा न हुआ ॥
क्या मिला वहदते-वजूदीसे[9] ?
बन्दा, बन्दा रहा, खुदा न हुआ ॥
बन्दगीमें यह किब्रियाई[10] है ?
खैर गुजरी कि मैं खुदा न हुआ ॥

---

[1]निर्बल शरीरवाले दिलकी आहे ; [2]ऊंचे आकाशपर, ईश्वरके आसनके समीप तक , [3]भगवान् , [4]हू* के रिश्तेको; [5]क्षमाशीलता-पै ; [6]हर स्वासमें ; [7]एक लमहेको , [8]एक ईश्वरवादमें ; [9]बड़ाई, अभिमान, ईश्वर बनना ।

*सूफी लोग ईश्वर-लीनताके निमित्त 'अल्लाहू'की रट लगाते हैं, इसीको 'हू'का रिश्ता कहते हैं ।

किस तरह नज़र आये वोह पर्दानशीं 'अमजद' !
हर पर्दे के बाद और एक पर्दा नज़र आता है ॥*

वोह करते हैं सब छुपकर, तद्बीर इसे कहते हैं ।
हम धर लिये जाते हैं तक़दीर इसे कहते हैं ॥†

चन्द रुबाइयात--

हर ज़र्रेपै फ़ज़्ले-किब्रिया[1] होता है ।
इक चश्मे-जदनमें[2] क्या-से-क्या होता है ॥
अक्सनाम दबी ज़बांसे यह कहते हैं—
"वोह चाहे तो पत्थर भी ख़ुदा होता है ॥"

हर गामपै चकराके गिरा जाता हूँ ।
नक़्शे-कफ़े-पा बनके मिटा जाता हूँ ॥
तू भी तो सम्भाल मेरे देनेवाले !
मैं बारे-अमानतमें दबा जाता हूँ ॥

इस जिस्मकी केचुलीमें इक नाग भी है ।
आवाज़े-शिकस्ता दिलमें इक राग भी है ॥
बेकार नहीं बना है, इक तिनका भी ।
ख़ामोश दियासलाईमें इक आग भी है ॥

---

*आह पर्दा तो कोई मानए-दीदार नहीं ।
अपनी ग़फ़लतके सिवा कुछ दरो-दीवार नहीं ॥

—दर्द

†हम ख़्वाबमेंवां पहुँचे, तद्बीर इसे कहते हैं ।
वोह नींदसे चौंक उठे, तक़दीर इसे कहते हैं ॥

[1]ईश्वरीय कृपा; [2]पलक मारते । —अज्ञात

हर चीजका खोना भी बड़ी दौलत है।
बेफ़िकरीसे सोना भी बड़ी दौलत है॥
इफ़्लासने[1] सख्त मौत[2] आसाँ कर दी।
दौलतका न होना भी बड़ी दौलत है॥

साँचेमे अजलके[3] हर घड़ी ढलती है।
हर वक़्त यह शमए-ज़िन्दगी जलती है॥
आती-जाती है साँस अन्दर-बाहर।
या उम्रके हलकपर छुरी चलती है॥

हासिल न किया महरसे[4] ज़र्रा तुमने।
दरियासे पिया न एक क़तरा तुमने॥
'अमजद' साहब ! ख़ुदाको क्या समझोगे ?
अबतक ख़ुद ही को जब न समझा तुमने॥

—आजकल १५ जुलाई १९४६ ई०

कामयाबीके नहीं हम ज़िम्मेदार।
कामकी हदतक हमारा काम है॥
जब उस मुख़्तारपर क्योंकर करें ?
अ़र्ज़ कर देना हमारा काम है॥

हुस्ने-सूरतको नहीं कहते हैं हुस्न।
हुस्न तो हुस्ने-अ़मलका नाम है॥
रह सके किस तरह 'अमजद' मुत्मइन !
ज़िन्दगी ख़ौफ़े-ख़ुदाका नाम है॥

—आजकल जून १९४६ ई०

---

[1]निर्धनतासे ; [2]कठिनतासे आनेवाली मृत्यु, दुखदमृत्यु ; [3]मौत-के ; [4]सूर्यसे।

तू कानका कच्चा है तो बहरा हो जा।
बदबीं[1] है अगर आँख तो अन्धा हो जा॥
गाली-गैबत[2] दरोगगोई[3] कबतक ?
'अमजद' क्यों बोलता है, गूँगा हो जा॥

मत सुन पर्देकी बात बहरा हो जा।
मत कह असरारे-गनीम[4] गूँगा हो जा॥
वोह रूए-लतीफ़[5] और यह नापाक नजर[6]।
'अमजद' क्यों देखता है अन्धा हो जा॥

दुनियाके हरइक जर्रेसे घबराता हूँ।
ग़म सामने आता है, जिधर जाता हूँ॥
रहते हुए इस जहाँमे मुद्दत गुजरी।
फिर भी अपनेको अजनबी पाता हूँ॥

दिल शाद[7] अगर नहीं तो नाशाद सही।
लबपर नग़मा[8] नहीं तो फ़रियाद सही॥
हमसे दामन छुड़ाके जानेवाले!
जा-जा गर तू नहीं तेरी याद सही॥

गुलज़ार[9] भी सहरा[10] नजर आता है मुझे।
अपना भी पराया नजर आता है मुझे॥
दरिया-ए-वजूदमे है तूफ़ाने-अदम[11]।
हर क़तरेमे खतरा नजर आता है मुझे॥

—आजकल फ़रवरी १९५४ ई०

---

[1]कुदृष्टि; [2]पीठ पीछे बुराई; [3]असत्य सम्भाषण; [4]शत्रुका भेद; [5]पवित्र चेहरा; [6]गन्दी निगाह; [7]प्रसन्न; [8]सगीत; [9]उद्यान; [10]वीरान जगल; [11]अस्तित्व रूपी दरियामे नेस्ती रूपी तूफ़ान।

सब कहते हैं मर्कज़े-बदी[1] है दुनिया।
किसकी ? मरदूदकी[2] हुई है दुनिया॥
शाकी[3] दुनियाका है, हरएक दुनियामे।
आख़िर किसके लिए बनी है दुनिया ?

तस्कीन[4] नहीं जानको जानाँके[5] सिवा।
मोमिनको नहीं सुकून, ईमाँके सिवा॥
माँ बच्चेको मारती है लेकिन फिर भी।
बच्चेको कहीं पनाह[6] नहीं माँके सिवा॥

है उनकी यही ख़ुशी कि हम ग़ममे रहें।
हरवक़्त सदाए-इरहम-इरहममे[7] रहे॥
है मक़सदे-दम कि दम न ले हमदम भर।
जबतक दम है तलाशे-हम-दममे रहें॥

जो कुछ भी मुसीबते है तुझपर कम है।
ख़ुशियाँ दुनियाकी तेरे हक़मे सम है॥
ग़मसे क्यों दूर भागता है 'अमजद'!
मालूम नहीं तुझे कि ग़ममे हम है॥

तहरीक मार्च १९५६ ई०।

गज़ल

बरबाद न कर बेकसका चमन, बेदर्द ख़िज़ाँसे कौन कहे।
ताराज[8] न कर मेरा ख़िरमन, उस बर्क़े-तपाँसे[9] कौन कहे॥

---

[1]बुराईका केन्द्र; [2]बहिष्कृतकी; [3]बुरा कहनेवाला; [4]चैन; [5]प्यारेके बिना; [6]शरण; [7]हे दीनदयालु ! दयाकर-दयाकर पुकारे; [8]नष्ट; [9]खलिहान; [10]कौन्दती हुई बिजलीसे।

मुझ ख़स्ता जिगरकी जान न ले, यह कौन अजलको[1] समझाये।
कुछ देर ठहर जा ऐ दरिया ! दरिया-ए-रवांसे[2] कौन कहे ॥
सीनेमें बहुत ग़म हैं पिन्हां[3] और दिलमें हज़ारों हैं अरमां।
इस क़हरे-मुजस्सिमके[4] आगे, हाल अपना ज़बांसे कौन कहे ॥
हरचन्द हमारी हालतपर रहम आता है हरइकको लेकिन—
कौन आपको आफ़तमें डाले, उस आफ़ते-जांसे कौन कहे ॥
क़ासिदके बयांका ऐ 'अमजद' क्योंकर हो असर उनके दिलपर।
जिस दर्दसे तुम ख़ुद कहते हो, उस तर्ज़े-बयांसे कौन कहे ॥

—आजकल फ़रवरी १९५४ ई०



किस शानसे 'मैं' कहता हूँ, अल्लाहरे मैं।
समझा नहीं 'मैं' को आजतक वाहरे मैं ॥

[२ सितम्बर१९५७ ई०]

---

[1]मृत्युको; [2]बहते हुए दरियासे; [3]छिपे हुए; [4]साक्षात ग़ज़बके।

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—२८

शेर-ओ-सुख़न

चौथा भाग

मिर्ज़ा 'दाग़'के मुख्य-मुख्य शिष्यों
तथा
ख्यातिप्राप्त और वयोवृद्ध शाइरोंका
जीवन-परिचय एवं कलाम

उठाये कुछ वरक़ लालेने, कुछ नर्गिसने, कुछ गुलने।
चमनमें हर तरफ़ बिखरी हुई है दास्ताँ मेरी॥
उड़ाई क़ुमरियोंने, तूतियोंने, अन्दलीबोंने।
चमनवालोंने मिलकर लूटली तर्ज़े-फ़ुग़ाँ मेरी॥

—सर इक़बाल

दिल्ली-स्कूलके शाइर

१ मोमिन — ४ शेफ़्ता ५ तसकीन — ६ सालिक ७ नसीम — १६ तसलीम — १८ हसरत मोहानी

२ ग़ालिब — ८ मजरूह ९ ज़की — १० हाली ११ रख्शाँ — १७ आज़ाद अन्सारी — १९ अकबर हैदरी

३ ज़ौक़ — १२ ज़फ़र १३ आज़ाद — १४ दाग़ १५ अनवर — २० जोश २१ साइल २२ बेखुद — २३ आग़ा शाइर २४ नूह नारवी — २५ अहसन २६ नसीम २७ हसन — २८ सीमाब २९ नातिक़ — ३० अलम ३१ आसी उल्दनी

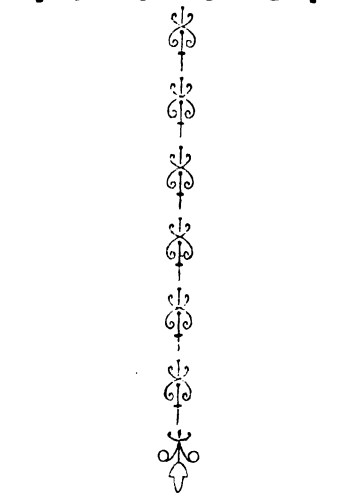
१—उन्नीसवीं शताब्दीके ख्याति प्राप्त १ से १६ तककी संख्याके शाइरोंका परिचय एवं कलाम प्रथम भागमें दिया जा चुका है।

२—संख्या १६–१८ का परिचय एवं कलाम तीसरे भागमें दिया गया है।

३—संख्या १९ से ३१ तकका उल्लेख चौथे भागमें किया गया है।

४—दिल्ली स्कूलके अतिरिक्त चतुर्थ भागमें 'ताजवर' नजीबाबादी, तिलोकचन्द 'महरूम' और 'असर' लखनवीका भी परिचय एवं कलाम दिया गया है।

शेर-ओ-सुख़न



[मिर्ज़ा दाग़-स्कूलके मुख्य शाइर]

१. 'सीमाब' अकबराबादी

२. 'जोश' मलसियानी

३. 'नातिक़' गुलावठी

४. 'साइल' देहलवी

५. आग़ा 'शाइर' क़िज़िलबाश

६. 'बेख़ुद' देहलवी

७. 'बेख़ुद' बदायूनी

८. 'नूह' नारवी

९. 'अहसन' मारहरवी

१०. 'नसीम' भरतपुरी

११. 'हुस्न' बरेलवी

१२. 'अलम' मुज़फ़्फ़रनगरी [**'सीमाब' के शिष्य**]

१३. 'आसी' उदनी [**'नातिक़' के शिष्य**]

मिर्ज़ा 'दाग़'को अपने जीवनकालमें जो ख्याति, प्रतिष्ठा और शानो-शौकत प्राप्त हुई, वह किसी बड़े-से-बड़े शाइरको अपनी ज़िन्दगीमें मयस्सर न हुई। स्वयं उनके उस्ताद शैख़ 'ज़ौक़' शाही क़फ़समें पड़े हुए 'तूतिये-हिन्द' कहलाते रहे, मगर १०० रु० माहवारीसे ज़्यादेका आबो-दाना कभी नहीं पा सके। ख़ुदा-ए-सुख़न 'मीर' अमर-शाइर 'ग़ालिब' और 'आतिश'—जैसे आग्नेय शाइरों को अर्थ-चिन्ता जीवनभर घुनके कीड़ेकी तरह खाती रही। हकीम 'मोमिन' शैख़ 'नासिख़' अलबत्ता अर्थाभावसे किसी क़द्र निश्चिन्त रहे, मगर 'दाग़' जैसी फ़राग़त उन्हें भी कहाँ नसीब हुई[1]?

मिर्ज़ा दाग़

यूं अपने ज़मानेमें एक-से-एक बढ़कर उस्ताद एवं ख्याति-प्राप्त शाइर हुए, मगर जो ख्याति और शुहरत अपनी ज़िन्दगीमें 'दाग़' को मिली, वह औरोंको मयस्सर नहीं हुई। भले ही आज़ उनकी शाइरीका ज़माना लद गया है और मीर, दर्द, आतिश, ग़ालिब, मोमिन, ज़ौक़, आज भी पूरे आबो-ताबके साथ चमक रहे हैं। लेकिन अपने ही जीवनकालमें उन्हें 'दाग़'-जैसी ख्याति प्राप्त नहीं हो सकी।

यह माना कि उनकी शाइरीका युग समाप्त हो गया है और उनकी शोख़, रंगीन, बाज़ारू इश्क़िया शाइरीको आज कोई पूछता भी नहीं; मगर १९वीं शताब्दीका अन्तिम युग 'दाग़'-युग था।

---

[1]जागीर मिलने और उच्च पदवियोंसे विभूषित होनेके अतिरिक्त १५०० रु० मासिक वेतन, राजसी ठाट-बाट और नवाब हैदराबादके उस्ताद होनेका महान् गौरव मिर्ज़ा 'दाग़'को प्राप्त था।

जनसाधारणके वे महबूब शाइर थे। उनके सामने मुशाअरोमें किसीका भी रंग नही जमने पाता था। हजरत 'नूह' नारवी लिखते है कि—"मुझसे रामपुरके एक सिन-रसीदा (वयोवृद्ध) साहबने जिक्र किया कि नवाब कल्बअलीखाँ साहबका मामूल था कि मुशाअरेके वक्त कुछ लोगोको मुशाअरेके बाहर महज इस ख्यालसे बैठा देते थे कि बाद खत्म मुशाअरा लोग किसका शेर पढ़ते हुए मुशाइरेसे बाहर निकलते है। चुनाचे हमेशा यही होता था कि 'दाग' साहबका शेर पढते हुए लोग अपने-अपने घरोको जाते थे।

"एक बार मुशी 'मुनीर' शिकोहाबादीने सरे-दरबार हजरत 'दाग'का दामन थामकर कहा कि—'क्या तुम्हारे शेर मेरे शेरसे अच्छे होते है? मगर इसका क्या सबब है कि तुम्हारे शेर लोगोकी जबानो पर रह जाते है और मेरे शेरो पर लोगोकी न खास तवज्जह होती है, न कोई याद रखता है।' इसपर जनाब 'अमीर मीनाई'ने फ़र्माया—"यह खुदादाद मकबूलियत है, इसपर किसीका बस नही।"[1]

यह मशहूर है कि दागकी गजलके बाद मुशाअरा उखड़ जाता था, और मुशाअरेके बाहर सिवाय 'दाग'के अशआरके किसी शाइरका शेर विर्दे-जबान न होता था। 'असीर' (अमीर मीनाईके उस्ताद) का मकूला है कि वह कलाम पसन्दीदा है, जो मुशाअरेसे बाहर जाये। फ़र्माते थे कि मैंने बाहर जाने वालोंमे अक्सर मिर्जा 'दाग'का शेर बाहर निकलते देखा है।[2]

कौन ऐसी तवाएफ थी जो 'दाग' की गजल बग़ैर महफिलमें अपना रंग जमा सके? क्या मुशाअरे, क्या अदबी मजलिसें, क्या आपसी सुहबतें, क्या महफ़िले-रक़्स, सर्वत्र 'दाग़'का रग गालिब था[3]। गली-कूचों में

[1]निगार जनवरी १९५३ ई०, पृ० २५।

[2]निगार जनवरी १९५३ ई०, पृ० ४७।

[3]हजरत मुहम्मदअलीखाँ 'असर' रामपुरी लिखते है—"जब

उनकी गज़ले थिरकती फिरती थी। यहाँ तक कि उनकी ख्यातिसे प्रभावित होकर उनके कितने ही समकालीन शाइर अपना रंग छोड़कर रंगे-दागमें गज़ल कहने लगे थे।

दागकी ख्याति और लोक-प्रियताका यह आलम था कि उनकी शिष्य मण्डलीमें सम्मिलित होना बहुत बड़ा सौभाग्य एवं गौरव समझा जाता था। हैदराबाद-जैसे सुदूर प्रान्तमें 'दाग'के समीप जो शाइर नही रह सकते थे, वे पत्रद्वारा उनसे संशोधन लेते थे। भारतके कोने-कोनेसे २००० के लगभग शिष्य संशोधनार्थ गजलें भेजते थे। दागका शिष्य कहलाना ही उन दिनो शाइर होनेका बहुत बडा प्रमाणपत्र समझा जाता था और उन दिनों क्यों, आज भी ऐसे शाइर मौजूद हैं, जिन्हे ब-मुश्किल एक-दो गजलों पर इस्लाह लेना नसीब हुआ होगा, फिर भी बडे फख्रके साथ अपनेको मिर्जा 'दाग'का शिष्य कहते है।

मिर्जा दागके जन्नत-नशी होनेके बाद एक दर्जनसे अधिक शिष्य

'दाग' मुशाअ़रेमें अपनी गजल सुनाते थे, तो रामपुरके पठान उन्हे सैकड़ों गालियाँ देते थे। दरियाफ़्त किया गया कि गालियोंका क्या मौक़ा था। पता चला कि कलामकी तासीर (असर) और हुस्ने-क़ुबूल (पसन्दीदगी) का यह आलम था कि पठान बेसास्ता चीखे मार-मार कर कहते थे—'उफ ज़ालिम मार डाला।' ओफ्फोह! गला हलाल कर दिया। उफ़-उफ़ सितम कर दिया, गजब ढा दिया।'

एक दिन नवाब खुल्द-आशियाँने नवाब अब्दुलखाँसे पूछा कि 'दाग़'के मुतअ़ल्लिक तुम्हारी क्या राय है। जवाब दिया कि—"तीतड़ेमें गुलाब भरा हुआ है।" मक्सद यह था कि सूरत तो काली है, लेकिन बातिन (अतरंग) गुलहाए-मआ़नीकी खुशबुओ (कविता-कुसुमकी सुगन्धों) से महक रहा है।

[निगार जनवरी १९५३ ई०, पृ० ४७]

अपनेको 'जा-नशीने-दाग' (गुरुका उत्तराधिकारी शिष्य) लिखने लगे। हालाँकि शाइरीमे उत्तराधिकारस्वरूप कुछ भी प्राप्त नही होता। शाइरी तो उस स्रोतके समान है, जो पृथ्वीसे स्वय फूट निकलता है। यह अन्य पेशेकी तरह वश परम्परागत नही चलता। यह जरूरी नही कि शाइरकी संतान भी शाइर हो।

मीर, गालिब, मोमिन, जौक, आतिश, मुसहफीके पिता शाइर नही थे। उनकी सन्तान भी शाइरोमे कोई उल्लेख योग्य नही। शाइर अपने कलाममे ही ख्याति पाता है। यह समझते हुए भी कई शाइर 'जानशीने-दाग' कहलानेका मोह नही त्याग सके।

नवाब 'साइल' मिर्जा 'दाग'के दामाद भी थे और शिष्य भी। अत. बहुत बडी संख्या उन्हीको 'जानशीने-दाग' समझती थी। 'बेखुद' देहलवी, 'बेखुद' बदायूनी, 'आगा', शाइर किजिलबाश, 'अहसन' मारहरवी, 'नूह' नारवी, भी अपने को 'जानशीने-दाग' लिखनेमे बहुत अधिक गर्वका अनुभव करते है ; और किसीकी मजाल नही जो उन्हे इस गौरवास्पद शब्दमे वंचित कर सके। वास्तविक उत्तराधिकारी कौन है, इस प्रश्नको सुलझानेके लिए वर्षो वाद-विवाद चले है। बीसवी शताब्दी-का वह प्रारम्भिक युग ही ऐसा था कि दागके नाम पर हर शाइर अपने-को उस्ताद घोषित कर सकता था। जैसे कि आज गान्धीके नाम पर हर कांग्रेसी अपनेको पुजवा सकता है और उल्टी-सीधी हरबात गान्धीके नामपर जनताके गलेके नीचे उतार सकता है।

यद्यपि 'दाग'के जीवनकालमे ही उनकी शाइरीपर आक्षेप होने लगे थे। उनकी शाइरीको निम्नस्तरकी, शोख, बाजारू-शाइरी समझा जाने लगा था। फिर भी 'दाग' के परिस्तार एव प्रशसक बहुत अधिक सख्यामें थे। समस्त भारतमे उनके कलामकी धूम एव चाहत थी।

दाग जन्नत-नशीं हुए तो उर्दू-संसारमें सफे-मातम बिछ गई। औरों-का तो जिक्र ही क्या, सर 'इकबाल'-जैसा गम्भीर शाइर अपने उस्तादकी

मौतपर टस-टस रो पडा। मिर्जा दागके उठते ही 'बज्मे-अदब' में घोर अन्धकार छा गया। मगर यह अंधेरा चन्द्रग्रहणके समान रहा। उनके योग्य शिष्योने शम-ए-महफिलको इस खूबीसे सँभाला कि वह टिमटिमानेके बजाय उत्तरोत्तर प्रज्वलित होती गई।

प्राय समस्त भारतमें मिर्जा दागके शिष्य फैले हुए थे। उनके कलाम-मे भी वही उस्तादका शोख रग, बाँकपन, तेवर और हुस्ने-बयान था। दागके प्रशकोने उनके शिष्योमे भी 'दाग' का प्रतिबिम्ब झलकता हुआ देखा तो वे बहुत शीघ्र दागके अभावको भूल गये और अपनी साहित्यिक अभिरुचि उनके शिष्यो-द्वारा शान्त करने लगे।

य तो दागके शिष्योकी सख्या २०००के लगभग बताई जाती है, परन्तु हम बहुत ही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध केवल ११ शिष्योका सक्षिप्त परिचय एव कलाम दे रहे है।

इस तरहकी शाइरीका अब युग नही रहा है, केवल इतिहासका क्रम बनाए रखनेके लिए सक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है। ये सभी शाइर अपने-अपने क्षेत्रमे प्राय उस्तादीका मर्त्तबा रखते रहे है और इनमे-से-हर-एकके सैकडो शिष्य है। यहाँ तक कि कइयोके तो शिष्य भी साहिबे-दीवान है और उनके भी अनेक शिष्य है।

हमने स्वय अपनी आँखोसे दिल्लीके अनेक मुशाअरो में नवाब साइल, आगाशाइर, बेखुद आदिको गजल पढते हुए देखा है। जनता बहुत उत्साह-पूर्वक उनके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहती थी। मुशाअरोके सचालक स्वागतके लिए द्वारपर खडे रहते थे। पधारनेकी सूचना मिलते ही श्रोताओके हृदय आनन्दसे खिल उठते थे। अन्दर आनेपर लोग बा-अदब खडे हो जाते थे। लोग उठ-उठकर आदाब बजा लाते थे। यह लोग भी उम्रमे छोटोका सलाम लेते हुए, अपने बडोका सम्मान करते हुए सलीकेसे यथास्थान बैठ जाते थे और जब कलाम पढते थे तो कुछ न पूछिए, एक-एक मिसरे पर मुशाअरे-का-मुशाअरा लोट-पोट हो जाता था। पढनेका अन्दाज,

बैठनेका सलीका, कलामकी शोखी, चुटीले खयालात, देहलवी टकसाली जबान, मुहावरोकी घुलावट, सब मिलकर कयामत बरपा करते थे। ३०–३२ वर्षोके बाद भी वे दृश्य भुलाये नही भूलते।

मिर्जा 'दाग़'के शिष्योमे सर इकबाल, अल्लामा 'सीमाब' अकबराबादी और 'जोश' मलसियानी तीन ऐसे शिष्य हुए, जिन्होने अपने उस्तादका अनुकरण न करके स्वय अपना जुदागाना रग इख्तियार किया। सर इकबालका परिचय एवं कलाम हम 'शेरो-शाइरी'मे ४० पृष्ठोमे दे चुके है। स्थानाभावके कारण उनका पुनः परिचय इस खण्डमे नही दिया जा रहा है। उनकी शाइरीपर लिखनेके लिए ४००–५०० पृष्ठ आवश्यक है। यदि स्वास्थ्य और समय अनुकूल रहा तो हम उनपर एक स्वतन्त्र पुस्तक भेंट करेगे। 'सीमाब' और 'जोश'का परिचय एव कलाम इसी खण्डमे दिया गया है।

इस परिच्छेदमे दागके शिष्योका कलाम दिया गया है। 'सीमाब' और 'जोश'के अतिरिक्त प्राय सभीका रग उस्तादसे मिलता-जुलता है। वही शोख बयानी, वही तज, वही तेवर, वही जली-कटी बातें, वही छेड-छाड़, वही टकसाली जबान, वही साँचेमें ढले हुए-से मुहावरे इनके कलाममें घुले-मिले है जो मिर्जा 'दाग' के जौहर थे। अत. उन सभी शागिर्दोके कलामपर जुदा-जुदा विचार-विनिमय न करके हम यहाँ मिर्जा 'दाग' की शाइरीपर थोडा-सा प्रकाश डाल रहे है, ताकि उसी रोशनीमे उनके शिष्योकी शाइरीका अवलोकन किया जा सके। मिर्जा 'दाग'की पैदाइश, परवरिश, तरबीयत (शिक्षा-दीक्षा) जिस माहौलमे हुई, जिस वातावरणमे उन्होने जवानीकी अँगडाइयाँ ली और अपना समस्त जीवन व्यतीत किया। उसका लाजिमी नतीजा था कि उनकी शाइरी शोख, रगीन, चुलबुली, बाजारी, और जबानकी शाइरीके अतिरिक्त और कुछ न हो।

मिर्जा 'दाग'की पैदाइशके सम्बन्धमे हजरत कल्बअलीखाँ 'फाइक'

रामपुरीने अनेक पुस्तकों-पत्रोंके उद्धरण और अन्य आवश्यकीय विवरण देकर जनवरी १९५३के ' निगार 'में एक विस्तृत लेख प्रकाशित कराया है, जिसका संक्षिप्त सार यह है--मिर्जा ' दाग 'की

दागकी पैदाइश माँका असल नाम वजीर बेगम उर्फ छोटी बेगम था। वह मुहम्मद युसुफ काश्मीरी सादाकारकी असाधारण रूपवती बेटी थी। उसके अपूर्व सौन्दर्यपर फ़ीरोज़पुर झिरकाके नवाब शम्सुद्दीन अहमदखाँकी चाहतकी नजर १८२६ ई०के लगभग पडी। जिसकी स्मृति-स्वरूप १८३० ई०मे दिल्लीमे ' दाग 'का जन्म हुआ। इन्ही दिनो मि० फ्रेजर एजेण्ट गवर्नर जनरल दिल्लीमे नियत हुआ। वह सौन्दर्योपासक था। अतः वह छोटी बेगमके सौन्दर्य-जालमें फँस गया। नवाब फ़ीरोजपुरको उसकी यह हरकत पसन्द न आई, उन्होने २२ मार्च १८३५ ई० को फ्रेजरका वध कर दिया। परिणामस्वरूप उसी वर्ष अक्तूबर १८३५ ई० मे नवाबको फाँसी दे दी गई।

१८३५से १८४० ई० तक छोटी बेगम सम्भवतः रामपुरके युवराज नवाब यूसुफअलीखाँके आश्रयमे रही, जो कि उन दिनो दिल्ली रहते थे। १८४० ई० के बाद नवाब यूसुफअलीखाँ दिल्ली छोड़कर रामपुर चले गये। नवाबके रामपुर पहुचनेपर मिर्जा ' दाग ' भी अपनी सगी मौसी उम्दाखानमके साथ रामपुर पहुँच गये और वहाँ लगभग ४ वर्ष रहे। उम्दाखानमको सौ रुपये मासिक वृत्ति नवाब दिया करते थे।

नवाबके रामपुर चले जानेपर १८४० ई० मे छोटी बेगमने आगा तुरावअलीका घर बसा लिया। उनकी यादगारे-मुहब्बत आगा मिर्जा शागिल रहे जो कि १८४१ ई० मे जन्मे।

१८४४ ई० मे भाग्य चमका तो छोटी बेगमको मिर्जा फखरू (पुत्र बहादुरशाह बादशाह) ने अपने अन्त.पुरमे डाल लिया। इनसे १८४५ ई० मे मिर्जा खुरशीदआलम पैदा हुए। इस सम्बन्धका नक्शा मौ० मुहम्मद हुसेन आजाद ने यू खीचा है--

"शहरमे छोटी बेगम नाम एक हसीन माहिवे-जमाल अपने हुनरकी बा-कमाल थी। उम्रकी दोपहर ढल चुकी थी और कितने ही अमीरोको मारकर हज्म कर चुकी थी। उसपर भी लडकपनकी कलियाँ चुनती थी। मिर्जा फखरू की २४–२५ बरसकी उम्र थी। रण्डीको नौकर रखकर गुलाम हो गये।"

किलेमे पहुँचनेपर मिर्जा 'दाग'की भी याद आई, अत वे भी १८४४ई० मे १४ वर्षकी उम्रमे किलेमे बुला लिये गये। १० जुलाई १८५६ ई० को मिर्जा फखरूका देहान्त हो गया। छोटी बेगम इस समय लगभग ४३-४४ वर्ष की थी। १० माहके बाद गदर हो गया। इसी ऐयाममे एक अग्रेज अफसरके साथ छोटी बेगमको जिन्दगी गुजारनी पडी, जिसकी निशानी एक लडकी हुई। जिसका नाम मसीहजान उर्फ बादशाह बेगम और तखल्लुस 'खफी' था।

दागकी शाइरी

१३-१४ वर्षकी उम्रमे किलेमे पहुँचे तो वहाँ भी रगीन फजा मिली। उन दिनो मुगलिया सल्तनतका चिराग टिम-टिमा रहा था। बुझनेसे पूर्व टिमटिमाता हुआ दीपक जैसे प्रज्वलित हो उठता है। ठीक उसी स्थितिमे मुगल सल्तनत थी। शमशीरो-सिनाँके जौहर कभीके समाप्त हो गये थे। मगर ताऊसो-रुबाब तब भी मौजूद थे[1]। बेगमातके चोचले खवासोके नखरे,

[1]सर इक्बालके इस शेरकी तरफ इशारा है––

मैं तुमको बताता हूँ तक़दीरे-उमम क्या है?
"शम्शीरो-सिनाँ अव्वल, ताऊसो-रुबाब आख़िर"॥

[मुसलमानके भाग्यकी कुजी यही है कि वह तलवार-तीरको हाथ से न छोड़े––सैनिक बना रहे। राज्यासिहासन और साज-सगीत तो अपने आप मिल जायेगे] लेकिन उन दिनो किलेमे ठीक इसके विपरीत स्थिति थी।

मुगलानियो की शोखियाँ, शाहजादियो की अठखेलियाँ और शाहजादों की रगरलियाँ निरन्तर १३ वर्ष देखते-सुनते मिर्जा 'दाग' किशोरसे युवा हुए।

मादक नृत्य, सुरीले गान, दौरे-शराब, मद-भरे नैनोकी मारमें मिर्जा 'दाग' भी वही बोल बोलने लगे, जो बोल किलेमे बोले जाते थे। एक तो वह उम्र ही अल्हड और दिल-फेक, फिर उसपर वोह मादक समाँ। किलेकी टकसाली एव रसीली उर्दू, जौक-जैसा जवान और मुहावरोका बादशाह उस्ताद मिला। फिर क्या था 'दाग'का कलाम हवामे गूँजने लगा। रगीन मिजाज उनके कलामको सीनेमे लगाये फिरने लगे। गदरके बाद रामपुर गये तो वहाँ भी वही वातावरण मिला। लखनवी शाइरोके जमघटे, और नवाबकी रगीन मिजाजीने और भी हवा दी। 'दाग'का रग उत्तरोत्तर पक्का होता गया, दिन दूना, रात चौगुना निखरता गया।

१८८७ ई० के बाद रामपुर छोडकर हैदराबाद रहना हुआ, तो वहाँका ऐशो-निशात (भोग-विलास) सबपर बाजी ले गया। नवाबके उस्ताद, उच्च पदवियोसे विभूषित, राज्योचित मान-प्रतिष्ठा, शाही ठाट-बाट, १५०० रु० मासिक पेशनके अतिरिक्त जागीर और इनाम इकराम अलग।

दाग स्वभावतः सौन्दर्योपासक और आशिक मिजाज थे। गाना सुननेका बेहद शौक था। दो-तीन तवाइफोको १५०–२०० रु० मासिक पर नौकर रखते थे। साइबजान, उम्दाजान, अख्तरजान, और मुन्नीजान 'हिजाब' आदि तवाइफोसे उनके सम्बन्ध थे। बकौल नवाब हसनअली खाँ "दागको अच्छी सूरतसे इश्क था और जब कभी किसी हसीनकी सुहबत मयस्सर न आती थी तो उन्हे वहशत-सी होने लगती थी[1]।"

यही तवाइफ़ जब इनका दामन झटककर किसी गैरके पहलूको सजाने

---

[1] 'निगार' जनवरी १९५३, पृ० ११०।

लगती थी तो 'दाग़' इनके गमे-हिज्र मे बेचैन हो उठते थे[१]। उनकी शाइरी ऐसी ही औरतोके इश्क-ओ-हिज्रमे लबरेज है।

'दाग' का इश्क गो बाजारी है, मगर वह अनुभूत है। इसीलिए उनकी शाइरीमे जो स्वानुभव व्यक्त हुआ है, वही उनकी शाइरीकी सबसे बड़ी विशेषता है और इसी विशेषताके कारण वे अपने समकालीन शाइरोंमें श्रेष्ठ और यकता नजर आते है। उन्होने न तो हाथमें तस्बीह लिये-लिये हुस्नो-इश्ककी नग्मासराई की है, न काबेका तवाफ़ (परिक्रमा) करते हुए सनमखानोकी मदह (प्रशसा) की है, और न वजू करते हुए जाहिदो-शेखकी दस्तार उछाली है। बल्कि कूच-ए-इश्कमे जो अनुभव हुए, उन्होने जबानकी चाशनीमे लपेटकर पेश किया है। यही वजह है कि उनके एक-एक शेरपर आज भी लोग सर धुनते है। उनकी तबीअतमें बलाकी शोखी थी, जो मरते दम तक साथ रही, और यही सब उनकी शाइरीकी सफलताके कारण है। अल्लामा नियाज फतहपुरी लिखते है—

[१] 'अम्नरजान' इनकी नौकरी छोडकर एक सेशनजजकी नौकर हो गई। एक दिन दागने अपना मुलाजिम भेजकर उसे बुलाना चाहा। मुलाजिमने काफी डोरे डाले, लेकिन वह आनेको तैयार न हुई। मुलाजिमसे कहा कि उनसे कह दे "मेरी वला भी नही आती।" मुलाज़िमने यही जुमला आकर 'दाग' से दोहरा दिया। 'दाग़' लुत्फ अन्दोज़ीकी ख़ातिर बार-बार उससे दरियाफ़्त करते थे कि उसने क्या कहा, और वह इसी जुमलेको दुहराता जाता था। इसी कैफियतमें उन्होने पासमें बैठे नवाब यारजंग बहादुरसे कहा—लिखो—

यह क्या कहा कि मेरी बला भी न आयेगी।
क्या तुम न आओगे तो क़ज़ा भी न आयेगी।।

यह किस्सा 'दाग' साहबके देहान्तसे कोई १।।। वर्ष पहिलेका है। यानी उस वक्त उनकी उम्र ७४ वर्षके लगभग थी।

"दागने अपनी जिस रंगकी शाइरीसे शोहरत हासिल की, वह सिर्फ़ 'दाग'के लिए मख़सूस (नियत) न था। उस वक़्तके तमाम शुअरा एक ही हम्मामके नहानेवाले थे। लेकिन यह वाकेआ है कि 'दाग' से ज़्यादा कोई दूसरा शाइर मकबूल (जन-साधारण-प्रिय) न हो सका। कूचा-ओ-बाजार रक़्स-ओ-सुरूद (नृत्य-गानकी महफिलो)मे हज़रत 'दाग' ही का सिक्का चलता था और उन्हीकी गज़लोंपर दुनिया सर धुनती थी। 'दाग'के हम-अस्र (समकालीन) शुअरा में उस वक़्त अलावा 'अमीर' के 'मुनीर' शिकोहाबादी, 'जलाल' लखनवी, और 'तसलीम' लखनवी, भी जिन्दा थे। लेकिन 'दाग़' से ज्यादा आम मक़्बूलियत (जन-प्रियता) किसीको हासिल न हो सकी और उसके कुछ असबाब (कारण) भी थे।.....

'दाग' के कलाममें जबानो-बयान (भाषा और कथन)के लुत्फके अलावा एक चीज और भी है, जिसने उसे मशहूर कर दिया और वोह उसका तेवर है।.....'दाग'को इस बातमे बड़ा मल्का हासिल (अभ्यास) था कि बात ख्वाह कैसी ही मामूली कहे, लेकिन उसमें ऐसी बेतकल्लुफ़ी, ऐसा तेवर और तीखापन होता था कि क़ाफिया जाग उठता था और पूरा शेर सजकर रह जाता था। 'दाग'की एक गजल है—'काम नही' 'क़याम नही' इस जमीनमें कलामका काफिया बिल्कुल सामनेका है, और उसको नज़्म करनेकी सूरतें भी मुख्तलिफ (भिन्न-भिन्न) हो सकती हैं। लेकिन 'दाग'ने उसे जिस पहलूसे सर्फ़ किया (बान्धा), वह उन्हीका हिस्सा था। लिखते है—

सुनाई जाती है दर-पर्दा गालियाँ मुझको।
कहूँ जो मैं तो कहें, "आपसे कलाम नहीं"॥

इस काफियेको नज्म करनेमें 'दाग'का खयाल महबूबकी जिस तीखी अदाकी तरफ मुन्तकिल हुआ (गया) है। अगर वह अमली जिन्दगीमे इससे दो-चार न हुआ होता, तो क़यामत तक इस पहलूसे यह काफ़िया

नज्म न कर सकता। 'दाग'की खुसूसियत (विशेषता)का पता उस वक्त चलता है, जब एक ही रदीफ-ओ-काफियेमें—दूसरोके अशआरके साथ 'दाग'के अशआरका मुकाबिला किया जाय। एक जमीन है—'आह मे, चाह मे'। इसमे निगाहके काफियेको 'दाग़' 'अमीर' और 'जलाल' सबने नज्म किया है।

अमीर— **आँख अपनी फ़ित्ना-हाए-क़यामतपै क्या पड़े?**
जिसके यह फ़ित्ने हैं, वोह है अपनी निगाहमें॥

दूसरे मिसरे मे 'है' और 'है' के समीप होनेसे बेलुत्फी आ गई है।

जलाल— **शोख़ी, फ़रेब, सहर, फुसूं, लाग, शोब्दा।**
कितने करिश्मे देखे तेरी इक निगाहमे॥

शेरमे तकल्लुफ ही तकल्लुफ है। ताहम अमीरके शेरसे अच्छा है। गो कोई खास बात नहीं।

दाग़— **दिलमे समा गई है, क़मायतकी शोख़ियाँ।**
दो-चार दिन रहा था किसीकी निगाहमे॥

दागने जिस जावियए-निगाह (दृष्टिकोण)को सामने रखकर इस काफियेको निबाहा है, वह बिल्कुल नया और अछूता है।

अमीर— **उठता नहीं है अब तो कदम मुझ ग़रीबका।**
मंजिलसे कह दो दौड़के ले मुझको राहमे॥

'अमीर'का जावियए-निगाह इस काफियेमे जरूर नया है; लेकिन खुद मजिलका दौडकर किसीको राहमे लेना, हकीकतसे बईद (वास्तविकतासे दूर) और यक्सर तकल्लुफ-ओ-तसन्नोअ (कृत्रिम) है।

दाग़— **आती है बात-बात मुझे याद बार-बार।**
कहता हूँ दौड़-दौड़के क़ासिदसे राहमे॥

पूरा शेर साँचेमें ढाला हुआ है, और एक ऐसे तजरुबेको पेश कर रहा है, जो मुहब्बतमे अक्सर पेश आता है। 'अमीर'को चूंकि मुहब्बत

और बेकरारी-ए-मुहब्बतकी सआदत कभी नसीब न हुई थी। इसलिए उनका जेहन (ध्यान) उस तरफ मुन्तकिल (आकर्षित) हो ही न सकता था।"[1]

अब हम मिर्जा 'दाग'के और उनके समकालीन शाइरोंके चन्द तुलनात्मक अशआर बगैर किसी टिप्पणीके पेश कर रहे हैं, ताकि पाठक स्वयं उनकी विशेषताओंका अनुमान लगा सकें।

जलाल—— सुना जो उसने कि मरते हैं हम, तो खुश होकर।
वोह बख़्शवानेको, क्या अपने सब क़ुसूर आया॥

तसलीम—— बड़ी उमीद थी महशरमें सामना होगा।
वहाँ भी काम न मेरे, मेरा क़ुसूर आया॥

दाग—— ख़ुदाने बख़्श दिये हश्रमें बहुत आशिक़।
ख़याले-यारमें कोई न बेक़सूर आया॥

अमीर—— शौक़से मैंने जो ख़ंजरके तले सर रख दिया।
छेड़नेको हाथसे क़ातिलने ख़जर रख दिया॥

जलाल—— दौड़कर जो हमने उनके पाँवपर सर रख दिया।
बोले ठुकराकर "कहाँ फूटा मुक़द्दर रख दिया"?

दाग—— हमने उनके सामने अव्वल तो खजर रख दिया।
फिर कलेजा रख दिया, दिल रख दिया, सर रख दिया॥

जलाल—— कहते हैं मुर्ग़े-चमन "हमको यही ले न उड़े।
शक है झोंके पै सबाके भी कि सैयाद आया"॥

मुनीर—— इस चमनमें हविसे-क़ैद भी निकली न कभी।
पत्ते खड़के जो, मेरे ख़्वाबमें सैयाद आया॥

[1]निगार जनवरी १९५३ ई०, पृ० ४–६।

दाग़— छूटकर कुंजे-क़फ़ससे भी यह खटका न गया।
जब सबा आई तो जाना, वही सैयाद आया॥

अमीर— जब वही हूर नहीं, ख़ुल्दमें तो ऐ दावरे-हश्र!
झोंक देता मुझे दोज़ख़में तो एहसाँ होता॥

दाग़— हश्रके रोज़ तुझे पासे-अदालत होगा।
बख़्श देता जो यहीं जुर्म तो एहसाँ होता॥

जलाल— रात गुज़री थी चमनमें, सुबह होते उठ गया।
आबो-दाना बुलबुलोंका क़तरए-शब्नम हुआ॥

दाग़— बे असर हो तो भी तूफ़ाँ हो, नहीं दरिया तो हो।
हसरत उस आँसूपै है जो क़तरए-शब्नम हुआ॥

अमीर— लाऊँ मैं उससे दिलमें कुदूरत मुहाल है।
यह लाल ख़ाकमें तो मिलाया न जायगा॥

दाग़— दिल क्या मिलाओगे कि हमे आ गया यक़ीं।
तुमसे तो ख़ाकमें भी मिलाया न जायगा॥

अमीर— आँखों ने जो देखा तो उसे दिलने पुकारा।
"मैंने अभी ऐ जलवए-जानाँ नहीं देखा"॥

दाग़— क्या ज़ौक़ है, क्या शौक़ है, सौ मर्तबा देखूँ।
फिर भी यह कहूँ जलवए-जानाँ नहीं देखा॥

अमीर— आनेवाला, जानेवाला बेकसीमें कौन था।
हाँ मगर इक दम ग़रीब आता रहा, जाता रहा॥

दाग़— अब कई दिनसे वोह रस्मो-राह भी मौक़ूफ़ है।
वरना बरसों नामा-बर आता रहा, जाता रहा॥

जलाल— गुनाह बोले जो घबरा गया मैं महशरमे।
"अभी तो पुरसिशे-आमाल थी, हिसाब न था॥"

दाग़— न पूछ मुझसे मेरे जुर्म दावरे-महशर!
मेरे गुनाहोंका दुनियामें भी हिसाब न था॥

जलाल— लाख एहसान जनाज़ेपै गिराँबारीके।
दो क़दम कूचए-महबूबसे चलने न दिया॥

दाग़— बद गुमानीने न चाहा उसे तनहा छोड़।
मैंने क़ासिदको अलग राहमें चलने न दिया॥

अमीर— बहार आई लुंढाते ख़ुम-के-ख़ुम हम बादा-ख़्वारोंमें।
कहो तौबासे चन्दे जा रहे परहेज़गारोंमें॥

दाग़— किसीका दिल तो क्या, शीशा न टूटा बादाख़्वारोंमे।
यह तौबा टूटकर क्यों जा मिली परहेज़गारोंमें॥

अमीर— जिगर रोता है दिलको, दिल जिगरको, तुर्फ़ा मातम है।
वोह इसके सोगवारोंमें, यह उसके सोगवारोंमे॥

जलाल— वोह मातम बज़्मे-शादी है, तुम्हारी जिसमें शिरकत हो।
वोह मरन्ना-ज़िन्दगी है, तुम जहाँ हो सोगवारोंमें॥

दाग़— ख़ुशी मर्गे-अदूकी लाख ग़मसे हो गई बदतर।
मेरी आँखों ने देखा है, किसीको सोगवारोंमें॥

अमीर— मस्जिदोंमें है, यह हू-हक़के कहाँ हँगामे।
रंगे-तौहीद उछलता है ख़राबातोंमें॥

दाग़— अब्रे-रहमत ही बरसता नज़र आया ज़ाहिद!
ख़ाक उड़ती कभी देखी न ख़राबातों मे॥

अमीर— आज़माइशमें जान लेते हैं।
ख़ूब आप इम्तिहान लेते हैं॥

दाग़— साफ़ कब इम्तिहान लेते हैं।
वोह तो दम देके, जान लेते हैं॥

अमीर— वोह दिलकी ताकमें जब शौकसे बन-ठनके बैठे हैं।
तो सौ ग़मज़ोंसे दिलपर तीर उस चितवनके बैठे हैं॥

दाग़— दिलोपर सैकड़ों सिक्के तेरे जोबनके बैठे हैं।
कलेजोंपर हज़ारों तीर इस चितवनके बैठे हैं॥

जलाल— शौक़की बेख़ुदियोंने यूँ किया गुम मुझको।
ढूँढ़ता हूँ मैं तुम्हें, ढूँढ़ते हो तुम मुझको॥

दाग़— अ़रसए-हश्रमें अल्लाह करे गुम मुझको।
और फिरो ढूढ़ते घबराए हुए तुम मुझको॥

अमीर— मैं जो मर जाऊँ तो ऐ पीरे-मुग़ाँ! कह देना।
मुगबचे[1] खींचके डाल आये पसे-ख़ुम मुझको॥

जलाल— या रब! आबाद रहें ज़ेरे-फ़लक बादा-परस्त।
लाके मैख़ानेमें गाड़ा है, तहे-ख़ुम मुझको॥

दाग़— देखना पीरे-मुग़ाँ! हज़रते वाइज़ तो नहीं।
कोई बैठा नज़र आता है, पसे-ख़ुम मुझको॥

तसलीम— वक़्ते-आख़िर है उन्हें रुख़सत करो 'तसलीम' अब।
कौन जाने कोई दम मे, क्या-से-क्या होने लगे॥

[1]शराब पिलानेवाले ख़ूबसूरत लड़के।

दाग़— ारके मज़्कूर पर मेरा बिगड़ना था बजा।
हरो-ठहरो, सँभलो-संभलो, क्या-से-क्या होने लगे॥

तसलीम— चाहता हूँ इतनी में तासीर अपने इश्क़में।
शर्मके उठ जायँ पर्दे सामना होने लगे॥
दाग़— दाग़' मैं परचा ही लूँगा, बातों-बातोंमें उन्हें।
शर्त ये है मेरा उनका सामना होने लगे॥

अमीर— इक ज़रा देख तो क्या कहते हैं मरनेवाले।
ओ गरीबोंके मज़ारोंपै गुज़रनेवाले॥
जलाल— तेरे सब नाज़ हैं, गो ज़िन्दा ही करने वाले।
ढूँढ़ रखते हैं बहाना कोई मरने वाले॥
मुनीर— गुज़रे जायेंगे यूँही जैसे गुज़रनेवाले।
तुम सलामत रहो, जीते रहें मरने वाले॥
दाग़— यह तो पूछे मेरे मरक़दपै गुज़रने वाले।
"क्या गुज़रती है तेरी जानपै मरने वाले"?

अमीर— है जवानी ख़ुद जवानीका सिंगार।
सादगी गहना है इस सिनके लिए॥
दाग़— कुछ निराला है जवानीका बनाव।
शोख़ियाँ ज़ेवर हैं इस सिनके लिए॥

अमीर— वस्लका दिन और इतना मुख़्तसर?
दिन गिने जाते थे इस दिनके लिए॥
दाग़— फ़ैसला हो आज मेरा आपका।
यह उठा रक्खा है, किस दिनके लिए?

अमीर— सारी दुनियाके हैं वोह मेरे सिवा।
मैंने दुनिया छोड़ दी जिनके लिए॥

दाग़— वोह नहीं सुनते हमारी क्या करें?
माँगते थे हम दुआ जिनके लिए॥

जलाल— बाग़से कर ले गया सैयाद मुझको कब असीर?
जब ख़िज़ाँ जानेको थी, फ़स्ले बहार आनेको थी॥

तसलीम— वाये क़िस्मत कब किया सैयादने क़ैदे-क़फ़स?
जब ख़िज़ाँ जाने को थी, फ़स्ले-बहार आनेको थी॥

दाग़— बाद मेरे क्यों नवेदे-वस्ले-यार आनेको थी।
वोह चमन ही मिट गया जिसमें बहार आने को थी॥

अमीर— दिलो-जिगरकी तड़प देखकर वोह कहते हैं।
कि मुद्दईसे भी चालाक यह गवाह मिले॥

जलाल— पुकार उठूँ जो दुबारा तेरी निगाह मिले।
कि दिलको ले गई आँख उसकी, दो गवाह मिले॥

दाग़— कहाँ थे रातको हमसे ज़रा निगाह मिले।
तलाशमें हो कि झूठा कोई गवाह मिले।

अमीर— घबरा न हिज्रमें बहुत ऐ जाने-मुज़्तरिब!
थोड़ी-सी रह गई है उसे भी गुज़ार दे॥

दाग़— दिल दे तो इस मिज़ाजका परवर्दिगार दे!
जो रंजकी घड़ी भी ख़ुशीसे गुज़ार दे॥

अमीर— कहते हैं "आज तो नाख़ूनसे दी मेरे तश्बीह।
कल कहोगे मेरे अबरूसे हिलाल अच्छा है"॥

दाग़— या दिखादो मुझे तुम पाँवका नाख़ुन अपना।
या यह कह दो "मेरे नाख़ुनसे हिलाल अच्छा है"॥

अमीर— न चूक वक़्तको पा करके है यह वोह माशूक।
कभी उमीद नहीं जिससे जाके आनेकी॥

जलाल— ठहर रही है जो आँखोंमे जान वक़्ते-अख़ीर!
यह मुन्तज़िर है किसी बेवफ़ाके आनेकी॥

दाग़— बना हूँ मैं नफ़्से-वापिसीं नक़ाहतसे।
न आके जानेकी ताक़त न जाके आनेकी॥

अमीर— न सुने दर्दे-दिल मेरा न सुने।
मैं कहूँगा वोह सुने या न सुने॥

दाग़— मेरी फ़रियाद दूसरा न सुने।
तुम सुनो ऐ बुतो! ख़ुदा न सुने॥

अमीर— आहें करना कहीं तो यूँ ऐ दिल!
कोई मेरे तेरे सिवा न सुने॥

दाग़— हिज्रमें जो दुआएँ माँगी हैं।
कोई अल्लाहके सिवा न सुने॥

दाग देहलीमें पैदा हुए और वहीं उनका लालन-पालन हुआ, लेकिन उनकी शाइरीको देहलीकी दाखिली शाइरीसे दूरका भी वास्ता नही। उन्होंने जब कूच-ए-शाइरीमें कदम रखा तो वहाँ 'ग़ालिब' और 'मोमिन' जैसे अमर कलाकार अपना कौशल दिखला रहे थे, परन्तु उनसे वे कोई लाभ नही उठा सके। क्योकि 'दाग' किलेके जिस वातावरणमें परवान चढ़ रहे थे, और उस्ताद 'जौक' से जिस प्रकारका दर्से-शाइरी (कविता-पाठ) ले रहे थे, उससे यह सम्भव ही नही था कि वे 'ग़ालिब' और 'मोमिन' की सुहबतका कुछ लाभ उठा सकते।

'दाग'की शाइरीमें हृदयगत भावो, उच्च विचारों और पवित्र प्रेमका अभाव है। उनकी शाइरीमे मीर, दर्द, गालिबकी शाइरीके तत्व न मिलकर 'जुरअत' और 'इन्शा'-जैसे शोख रंग घुले-मिले है।

लेकिन जहाँ तक 'दाग'के लबो-लहजा, तेवर, बाँकपन, शोखिए-बयान, ज़बानके चटखारे और मुहावरोके चुस्त इस्तेअमालका सम्बन्ध है[1], उसमें वे अपना जवाब नही रखते।

[1]मिर्जा 'गालिब'भी 'दाग' की भाषा और मुहावरोके प्रयोगके प्रशंसक थे। मुहम्मद निसारअली 'शुहरत'ने 'आईनए-दाग'में लिखा है—"एक रोज मै मिर्जा गालिबकी खिदमतमे हाजिर हुआ। उस वक़्त आप खाना नोश फर्मा रहे थे। मै बाअदब एक तरफ बैठ गया। आपने एक रंगतरा (शतरा) मेरी तरफ फेका कि इससे शुग्ल कीजिए। चूकि रमज़ानका महीना था और मुझे रोजा था। मैने उस रंगतरे को हाथ नही लगाया। आप ताड गये और फर्माते क्या है—"हां आप मौलवी हो गये है।" मै हँसा तो आप भी मुसकराने लगे। जब आप खाना नोश फर्मा चुके तो कलमी रिसाला आपके सामने रखा था, उसमे कुछ बनाने (संशोधन करने) लगे। गालिबन इस्लाह दे रहे थे। मैने गुजारिश (प्रार्थना) की—'जनाब क्या इरकाम फर्मा रहे है (लेखन-कार्य कर रहे हैं!)' तो फर्माने लगे—'इसमे फारसी अल्फाज (शब्द) बहुत ठूस दिये गये है। इसलिए उन्हे निकाल रहा हूँ और शुस्ता (सरल) उर्दू अल्फ़ाज़ इसमे डाल रहा हूँ।' मैने अदबके साथ गुजारिश की—'आपका दीवान भी तो फारसीसे माला-माल है।' फर्माने लगे—'वे जवानीकी नाजुक-खयालियाँ है। बाज शेर तो ऐसे अदक (कठिन) मेरे कलमसे निकल गये है कि मै अब उनके माने खुद नही बयान कर सकता।' फिर फ़र्माने लगे—'देहलीवालो' की जो उर्दू है, उसको ही अशआरमें लिखना चाहिए। 'आखिर उम्रमें तो हमारी यही राय कायम हुई है।' मैने अदबके साथ

'दाग' की यही विशेषताये उनके शिष्योको विरासतमे मिली और वे भी सब (इकबाल, सीमाब, जोश मल्सियानीके अतिरिक्त) जीवन भर इसी कूचेमें गुल-फिशानियाँ करते रहे। गो कभी-कभी जमानेके उलट-फेर और समयके बहावमें इन्होने भी परिवर्त्तन किया, परन्तु मुख्य और प्रिय रग वही रहा जो उस्तादका था। किसी शाइरके सम्बन्धमें केवल इस दृष्टिकोणसे अच्छी या बुरी धारणा बना लेना कि वह अश्लील कहता है या पवित्र, उचित नही। नग्न चित्र केवल इसलिए तिरस्कार योग्य नही हो सकता कि वह नग्न है। यदि वह कलापूर्ण है और चित्रकार उसमे जो भाव व्यक्त करना चाहता था, वे सब उससे व्यक्त हो रहे है, तो वह चित्र उन सैकड़ो चित्रोके आगे प्रशसनीय है, जो किसी देवताके नाम पर किसी फूहड़ने बनाये हैं। शेरकी भी परख इसी दृष्टिकोणसे करनी चाहिए कि, शाइर जो कहना चाहता था, उसे वह सलीकेसे कह सकनेमे सफल हुआ है या नही। शाइरी भी एक चित्रकला है। चित्रकारोंमे कोई प्राकृतिक दृश्योंपर मोहित होता है तो कोई पशु-पक्षियो पर तूलिका चलाता है। कोई देवी-देवताओके चित्र बनानेमे महारत रखता है तो कोई दीन-दुखियोंमे खोया रहता है। कुछ सौन्दर्योपासक है तो कुछ व्यग्य-चित्र बनाते नही अघाते।

इसी प्रकार बाज शाइर उपमाओ-अलकारोकी छटा बिखेरते है तो बाज शब्दोके रख-रखावकी झडी लगाते है। कुछको हुस्नो-इश्ककी रगीन दास्तान पसन्द है तो कुछको व्यथापूर्ण उद्गार रुचिकर है—

पसन्द अपनी-अपनी नज़र अपनी-अपनी

गुज़ारिश की—'दाग की उर्दू कैसी है?' फर्माने लगे—"ऐसी उम्दा है कि किसीकी क्या होगी। 'जौक़' ने उर्दूको अपनी गोदमे पाला था। 'दाग' उसको न फकत पाल रहा है, बल्कि उसको तालीम दे रहा है।"

[निगार, अप्रैल १९५३, पृ० ३८–३९]

यही कारण है कि एक ही मिसरेपर शाइर अपनी प्रकृति एव स्वभावके अनसार भिन्न-भिन्न तरीक़ोंसे शेर कहते हैं। आशा है पाठक इसी दृष्टि-कोणसे हर शाइरके कलामका अध्ययन करेंगे।

हमारे देखते-देखते बज्मे-अदबसे कितनी ही विभूतियाँ उठ गई, जो बची है अपनी जिन्दगीकी आखिरी मजिलोमे है। उनका रंगे-सुखन पुराना हो चुका है, उनकी आवाजे थक चुकी है। फिर भी उनका दम गनीमत है, उन्होंने पुराने लोगोकी आँखे देखी है और अपने सीनेमे वे कीमती इतिहास छुपाये बैठे है। वकौल इकबाल—

न पूछ इन ख़िरक़ा-पोशोंकी, इरादत हो तो देख इनको।
यदे-बैजा लिये बैठे हैं, अपनी आस्तीनोंमें[1] ॥

२५ फ़रवरी १९५४ ई० |

[1] इन भिक्षुक-से दीखनेवाले फटे हाल व्यक्तियोकी कुछ न पूछिए, बहुत पहुँचे हुए लोग है। यदि जाननेकी अभिलाषा है तो इन्हें श्रद्धापूर्वक समीपसे देखो। तब मालूम होगा कि इनमे कैसे-कैसे चमत्कार छिपे हुए है।



'सीमाब' अकबराबादी

[१८८०–१९५१ ई०]

शेख आशिक़हुसेन साहब 'सीमाब' १८८० ई० में आगरेमें जन्मे। अरबी-फ़ारसीकी पूर्णरूपेण शिक्षा प्राप्त करनेके अतिरिक्त एफ० ए० तक अंग्रेज़ी भी पढ़ी। शाइरीका शौक़ स्वभावतः था। स्कूलमें पढ़ते हुए फ़ारसीकी पाठ्य पुस्तकोंके फ़ारसी अशआरको आप उर्दूका रूप देकर अपने शिक्षकको दिखाते रहते थे। यही आपका दैनिक कार्य था। एक बार जब आपने 'बोस्ताँ' की एक कहानी नज़्म करके शिक्षकको दिखाई तो उन्होंने उसी पृष्ठपर यह शेर लिख दिया—

जब नहीं है शेर कहनेका शऊर।
फिर भला है शेर कहना क्या ज़रूर?

लेकिन मुसकराकर यह भी फ़र्माया कि "कल फिर किसी फ़ारसी नज़्मका तर्जुमा उर्दूमें नज़्म करके लाना।" इसी तरह आपका धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ता गया। पिताके निधनके कारण आपको १७ वर्षकी उम्रमें कालेज छोड़ना पड़ा, और आजीविकाके लिए कानपुर जाना पड़ा। अभीतक आप शाइरीमें किसीके बाक़ाएदा शिष्य नहीं थे। अतः मुशाअरोंमें ग़ज़ल कहनेका साहस नहीं होता था। १८९८ ई० में आप मिर्ज़ा

दागके शिष्य हो गये। अभी आपने २-३ गजलें ही उनके पास संशोधनके लिए भेजी थी कि उस्तादने लिख भेजा कि "आपको अभी मश्ककी जरूरत है।" आपने उनके पास गजलें भेजना बन्द करके उस्तादके आदेशानुसार खूब अभ्यास किया। कई मासके निरन्तर अभ्यासके बाद उस्तादके पास गजल भेजी तो उस्तादने संशोधनके साथ यह भी लिखा—"आफरी है, क्या खूब गजल कही है।" उस्तादके इन शब्दोंसे आपके उत्साहमें दिन-दूनी, रात-चौगुनी उन्नति हुई। हौसले बढते गये, झिझक निकलती गई, और नि संकोच मुशाअरों मे शिरकत फर्माने लगे। उस्तादके निधनके बाद किसी अन्यको संशोधनके लिए कलाम नही दिखाया। स्वयके अध्यवसायसे शाइरीमें यह रुत्बा प्राप्त किया।

आप कानपुर, अजमेर, आगरेमे पहले नौकरी करते रहे, किन्तु जब आपको यह महसूस हुआ कि 'मेरा जन्म साहित्य-सेवाके लिए ही हुआ है' तो आप १९२९ मे आगरमे स्थायी रूपसे रहकर जीवन पर्यन्त साहित्य-सृजन करते रहे। 'शाइर' मासिक पत्रके प्रकाशनके साथ आपने निम्न-लिखित उपयोगी ग्रन्थ भी लिखे—

१—**कारे-इमरोज**—१५० नज्मोका पहला संकलन।

२—**साजो-आहंग**—नज्मोका दूसरा संकलन।

३—**कलीमे-अज्म**—गजलोंका पहला संकलन।

४—**सिद्रतुल्मुन्तहा**—१९३६ से १९४२ तककी गजलोका दूसरा संकलन।

५—**आलमे-आशोब**—द्वितीय महायुद्ध और तत्कालीन वातावरणपर १९४० से १९४३ तक कही हुई ३०० रुबाइयां।

६—**शेरे-इन्क़िलाब**—इन्किलाब संबंधी नज्मोका संकलन।

७—**दस्तूर-उल-इस्लाह**
८—**राजे-उरूज** } शाइरीका व्याकरण।

९—नफ़ीरे-ग़म
१०—सु-रूदे-ग़म } इस्लाम सबधी।

११—इल्हाम मंज़ूम भाग ६—मौलाना रूमके फारसी कलामको उर्दूमें नज्म किया गया है।

हजारसे ऊपर आपके शिष्य भारतके कोने-कोनेमें विद्यमान है। भारत-विभाजनके फलस्वरूप आपको भी १६ अगस्त १९४८ को भारत छोडकर पाकिस्तान जाना पडा। यह विधिकी कैसी विचित्र लीला है कि जो व्यक्ति अपने देशको स्वतत्र देखनेको जीवनभर तडपता रहा, देश-वासियोको गुलामीकी जजीरे तोड फेंकनेके लिए उकसाता रहा, साम्प्र-दायिकोके गढोपर निरतर हमले करता रहा, मानव-सेवा जिसका दीन और ईमान रहा, उसी व्यक्तिको अपने देशमें समाधिके लिए दो गज जमीन न मिल सकी। उसे उसी पाकिस्तानमें दफन होना पडा, जिसका वह घोर विरोध करता रहा! बीमारीकी हालतमें आपने अपने पुत्र एजाज सिद्दीकीसे फर्माया—

"मसाइब (मुसीबतों) से घबराना नही, खुद-एतमादी (आत्म-विश्वास) से काम लेना। मेरे मिशनको जारी रखना, मेरी तहरीकों (आन्दोलनो) को आगे बढाना, मेरे तमाम शागिर्दो को मुत्तहिद (सगठित) करना, मेरी बकिया किताबोंको मुरत्तब करके छपवाना। तुम.... तुम...तुम जिम्मेदार हो। अल्लाह तुम्हारी मदद करे। मैं करॉचीमें मरना नही चाहता, मुझे आगरा ले चलो।"

मगर अफ़सोस आप आगरे नही लाये जा सके। ३-४ माह लकवेसे ग्रसित रहकर ३१ जनवरी १९५१ ई० को करॉचीमें ही समाधि पाई।

मिर्जा दागके तकरीबन् दो हजार शिष्य थे। उनमें-से सर 'इकबाल', 'जोश' मलसियानी, 'सीमाब' अकबराबादी तीन ऐसे शिष्य निकले, जिन्होंने उस्तादके पथ-चिह्नोंपर न चलकर अपने-अपने लिए नवीन पथ खोज निकाले। 'इकबाल' ने ग़जल बहुत कम कहा। वे नज्म-गो शाइर

थे। इश्किया शाइरी न करके शुरू-शुरू में उन्होंने वतनियत और कौमियतके वह राग अलापे कि मुर्दा दिलोंमें जीवन-संचार होने लगा। आध्यात्मिकता और दार्शनिकताकी वह सुरा पेश की, कि लोग पीकर झूमने लगे। यदि वे साम्प्रदायिक बहावमें न बहे होते तो उर्दूके सर्वश्रेष्ठ, महान् और अमर शाइर हुए होते[1]।

'जोश' मलसियानीने गजल और नज्म दोनोंमें तबा-आजमाई की। मगर उनका तग़ज़्ज़ुल मिर्ज़ा 'दाग'के रंगे-तगज़्ज़ुलसे कतई जुदा है[2]।

'सीमाब' गजल और नज्म दोनोके ही कुहनामश्क और श्रेष्ठ शाइर है। उन्होंने ग़जलमें नया लबो-लहजा इख्तियार किया है। उनके यहाँ विषय-लोलुपता हेय, और पवित्र प्रेम आदरणीय है। मानवता उनका दीन और ईमान है। देशके वे चारण है। सम्प्रदायवादियोंके घोर शत्रु हैं।

'सीमाब' के जीवनका उद्देश्य क्या है? यह उन्हीके जबाने-मुबारकसे सुनिए—

ग़फ़लतमें सोनेवालोंकी मैं नींद उड़ाने आया हूँ।
दुनियाको जगाकर छोड़ूंगा, दुनियाको जगाने आया हूँ॥
जो नाक़िस[1] है वह दस्तूरे-तदबीर[4] मिटाने आया हूँ।
इन्सानके शायाँ आईने-तक़दीर बनाने आया हूँ॥
मैं सोज़े-वफ़ाका दुनियाको पैग़ाम सुनाने आया हूँ।
जो आग लगे तो बुझ न सके वोह आग लगाने आया हूँ॥

यह आत्मा ही परमात्मा बन सकता है, मगर कब?

---

[1]सर इकबाल और उनकी शाइरीके लिए देखें 'शेरोशाइरी,' पृ० ३०७–३४६. [2]जोश मलसियानीका परिचय प्रस्तुत पुस्तकमें दिया जा रहा है। [3]निकम्मा; [4]पुरुषार्थका नियम (वर्त्तमान कालीन मजदूर श्रम-समस्यासे तात्पर्य है)।

अगर हद्दे-ख़ुदी-ओ-बेख़ुदीसे[1] मावरा[2] होता।
तो यह इन्सान फिर इन्सान क्यों होता ख़ुदा होता॥

नेतृत्वकी बागडोर स्वय अपने हाथमें ले, यूँ कबतक किसीके पीछ-पीछे चलता रहेगा?

इसी रफ़्तारे-आवारासे भटकेगा यहाँ कबतक?
अमीरे-कारवाँ[3] बन जा, ग़ुबारे-कारवाँ कबतक?

अन्दर-ही-अन्दर सुलगते रहनेकी अपेक्षा हृदय-ज्वालाको प्रज्वलित कर ले—

सुलगना और जीना, यह कोई जीनेमें जीना है।
लगा दे आग अपने दिलमें दीवाने धुआँ कबतक?

उसकी खोजमें लीन रहनेवालोको मन्दिर और मस्जिदके झमेलोंमे पड़नेका अवकाश कहाँ?

जब तू नहीं तो ख़िलवते-दैरोहरम[4] फ़ज़ूल।
अब क्या यहाँ परिस्तिशे[5]-दीवारो-दर करें॥

हरम-ओ-दैरके कत्बे[6] वोह देखे, जिसको फ़ुर्सत है।
यहाँ हद्दे-नज़र तक सिर्फ़ उनवाने-मुहब्बत[7] है॥

जो दैरो-हरम छोड़ दे मंजिलपे वोह पहुँचे!
है कोई परिस्तारे-सनम-ख़ानए-मंजिल?

त्यागी और लक्ष्मी-उपासककी तुलना क्या?

कहाँ तू और कहाँ मैं मंजिले-हस्तीमें ऐ मुनअिम[8]!
कि तू ठोकर है दौलतकी, मेरी ठोकरमें दौलत है॥

---

[1]तू, मै, परके झगड़ोंसे, अहम और परके भाव से ; [2]उच्च, निर्लिप्त ; [3]यात्रीदल का नेता , [4]मन्दिर-मस्जिदका एकान्त ; [5]उपासना , [6]शिला लेख , [7]मुहब्बत-ही-मुहब्बत ; प्रेमका शीर्षक ; [8]धनिक।

ख़ुदाकी याद मे बार-बार सिज्दा करनेके क्या मानी ?

वह सिज्दा क्या ! रहे एहसास[1] जिसमें सर उठानेका।
इबादत और ब-क़दरे-होश तौहीने-इबादत[2] है ॥

'इन्क़िलाब जिन्दाबाद' कहना आसान है। मगर इन्क़िलाब आने पर डटे रहना हँसी-खेल नही। इन्क़िलाबकी एक जुम्बिश (द्वितीय महायुद्ध और भारत-विभाजन) को देखकर ही लोग त्राहि-त्राहि कर उठे—

तुझको दीवाने है, नाहक़ इन्तिज़ारे-इन्क़िलाब।
एक करवट भी जो ली दुनियाने, घबरा जायगा ॥

'मनमे राम बगलमें छुरी' इसी भावको 'सीमाब' अपने शाइराना अन्दाज़मे यू व्यक्त करते है—

दिमाग़ो-रूह[3] यकसाँ चाहिए इन्सानें-कामिलमें[4]।
यह क्या तक़सीमे-नाक़िस[5] है, ख़ुदी सर[6]मे ख़ुदा दिलमें[7] ॥

'मानो तो देव नही पत्थर'—आत्मविश्वास बहुत बडी शक्ति है—

हो यक़ीं दिलमे तो, बन जाती है फिर हर शै ख़ुदा।
बुत-कदा[8] जुज़[9] एतबारे-बरहमन कुछ भी नहीं ॥

जो व्यक्ति अपने देशके सुख-दु खको अपना सुख-दु ख नही समझता, उस देश-द्रोहीको अपने देशमे मरनेका भी क्या अधिकार है ?

उसको क्या हक़ है कि वोह ख़ाके-वतन में दफ़्न हो।
जिसके दिलमें अज़मते-ख़ाके-वतन कुछ भी नही ॥

यदि हमारे कारण हमारे देशपर आँच आती है तो हम—

---

[1]चेतना, ख्याल [2]उपासनाका अपमान [3]मस्तिष्क और आत्मा ; [4]पूर्णरूपेण मानवमे [5]निकम्मा बँटवारा [6]अहमभाव सरमे ; [7]मनमे ईश्वर [8]मन्दिर [9]सिवाय ।

बनायें क्यों न कहीं और जाके घर अपना।
चमन तबाह ब-तक़दीरे-आशियाँ क्यों हो ?

२६ जनवरी १९३० को जब पहले-पहल कांग्रेसने स्वतन्त्रता दिवस मनाया तो जी-हुजूरोंने बहुत मजाक उड़ाया कि "लो भई गुलाम-के-गुलाम रहे और आजाद भी हो गये। अगर इसीको स्वराज्य कहते हैं तो यह तो बहुत पहले भी लिया जा सकता था।" मगर उन्हें क्या मालूम कि——

फ़क़त एहसासे-आज़ादीसे आज़ादी इबारत है।
वही दीवार घरकी है, वही दीवार ज़िन्दाँकी॥

अकर्मण्य देशवासियोंके प्रति——

ज़रा खुलकर पुकार ऐ सूर[1] ! मज़्ज़ूबाने-उल्फ़तको[2]।
यह दीवाने कहीं बैठे न रह जाये बयाबाँ में॥

ये मज़हबी दूकानें——

वोह दैर-ओ-कलीसा[3] हो, या काबा-ओ-बुतख़ाना।
कुछ पर्दे हैं, कुछ धोके, कुछ शोब्दा-गाहें[4] हैं॥

इश्कमें रोना-बिसूरना तौहीने-इश्क है——

खामोश ऐ असीरे-क़फ़स[5] ! यह फ़ुग़ाँ, यह शोर !
तौहीन[6] कर रहा है, निशाने-बहारकी॥

जब दिलपै छा रही हों घटाएँ मलालकी।
उस वक़्त अपने दिलकी तरफ़ मुसकराके देख॥

[1]वोह नर्सिंहा बाजा जो इस्लामधर्मके अनुसार कयामतके दिन हज़रत इसराफ़ील बजायेंगे ; [2]उल्फतमें ग़र्क़ होने वालोंको, प्रेमविभोर व्यक्तियोंको ; [3]मन्दिर-गिरजाघर . [4]तिलिस्म, जादूघर . [5]पिंजरेका बन्दी . [6]अपमान।

ऐ ग़मे-इश्क़ तेरे ज़र्फ़में[1] कुछ आग भी है ?
आँसुओंसे तो इलाजे-तपिशे-दिल[2] न हुआ ॥

हमारी ख़ाना-वीरानी ज़माने पर अयाँ[3] क्यों हो ?
जले जितना नशेमन सुर्ख़ उतना आस्माँ क्यों हो ?

प्रेमीका स्वाभिमानी होना भी आवश्यक है—

इतना बुलन्द कर नज़रे-जलवा-ख़्वाहको[4] ।
जलवे ख़ुद आयें ढूँढ़ने तेरी निगाहको ॥

प्रेममें सफलता कैसी ? प्रेम करना है तो हृदयको हानि-लाभके विचारसे स्वच्छ कर लेना चाहिए—

मुहब्बत नाम है लाहासिल[5]-ओ-ना-तमामीका[6] ।
मुहब्बत है तो दिलको फ़ारिग़े-सूदो-ज़ियाँ[7] करले ॥

जब तक अपने प्यारेका तसव्वुर दिलमें न हो, नमाज और पूजा सब व्यर्थ है—

तू हो निगाहो-दिलमें तो लुत्फ़े-नमाज है ।
वरना नमाज सिर्फ़ जुनूने-नियाज[8] है ॥

वह सुख किस कामका, जिसमे ईश्वर याद न रहे। इससे तो दुःख ही अच्छा, जिसमे उसकी याद तो बनी रहती है—

हासिले-जीस्त[9] मसर्रतको समझनेवाले ।
यक-नफ़स[10] ग़म भी, कि दमभर तो ख़ुदा याद रहे ॥

[1]हृदय-पात्रमें, [2]दग्धहृदयका इलाज, [3]प्रकट, [4]जलवा देखनेवाली नज़र को; [5]असफलता; [6]अपूर्णताका [7]हानि-लाभके भावसे रहित; [8]उपासनाका उन्माद, [9]सुख-चैनको जीवनकी सफलता समझनेवाले, [10]क्षणभरको दुःख भी ज़रूरी है ।

मानव अपनी ही खींची हुई रेखाओंमे घिरकर इतना अशक्त एवं निर्बल हो गया है कि उसे अपनी वास्तविक शक्तिका भी ज्ञान नही रहा—

छीन लीं फ़िक्रे-नशेमनने[1] मेरी आज़ादियाँ।
जज़्बए-परवाज़[2] महदूदे-गुलिस्ताँ[3] हो गया॥

आरज़ी हदबन्दियाँ है, देस क्या परदेस क्या?
मैं हूँ इन्साँ वुसअ़ते-कौनैन[4] है मेरा वतन॥

इस दुनियाकी दुनिया-दारी देखिए कि जो हमे सबसे अधिक प्रिय है, वही हमें मिट्टीमें मिलाता है, और वही सबसे अधिक अपनेको शोकाकुल प्रकट करता है—

मुझे आता है रोना रस्मे-हमदर्दी पै दुनियाकी।
मिला देगा यही मिट्टीमें जो है नौहाख़्वाँ[5] मेरा॥†

हमारा सबसे प्यारा कौन? जो मुसीबतमे याद आये—

तुम्हीं उस वक़्त याद आते हो।
जब कोई आसरा नहीं होता॥*

शंख और अजानके झगडे व्यर्थ है। दोनोंमें उसीकी आवाज है—

---

[1]घोंसलेके निर्माण और बचावकी चिन्ताओंने [2]उडानकी भावना, [3]उद्यान तक सीमित, [4]समस्त विश्व, [5]विलाप करनेवाला।

†सबसे बडा पुत्र ही चितामें आग देता है अथवा क़ब्रमें सुलाता है।

*असर लखनवीने इसी मज़मूनको क्या खूब बाँधा है—

हम उसीको ख़ुदा समझते है।
जो मुसीबतमें याद आ जाये॥

एक लफ़्ज़े 'हू'[1], सदा[2] करनेके सौ अन्दाज़ हैं।
नालए-नाकूस[3] है गोया अज़ाने-बरहमन[4]॥

इच्छाये मनको निराकुल नही रहने देती, इच्छाये हटे तो मनमे आकुलता भी हटे--

दिलमें कितना सुकून[5] होता है।
जब कोई मुद्दआ नही होता॥

ज़माना गर मुख़ालिफ़ है तेरा, बेमुद्दआ हो जा।
न दिलमे मुद्दआ होगा न दुनिया मुद्दई होगी॥

उस दिलपै निसार[6] दोनों आलम।
जिसमे कोई मुद्दआ नही है॥

है हुसूले-आरज़ूका राज[7] तर्के-आरज़ू[8]।
मैंने दुनिया छोड़दी तो मिल गई दुनिया मुझे॥ *

जिस प्रकार आम, लू और आधीके थपेडे खाते-खाते परिपक्व होता है, उसी तरह आदमी भी असफलताओके चरके खाकर ही आदमी बनता है--

हो न जबतक शिकारे-नाकामी।
आदमी कामका नही होता॥

उनसे शिकवा फ़ज़ूल है 'सीमाब'!
क़ाबिले-इल्तिफ़ात[9] तू ही नही॥

[1]ब्रह्म, (सर्वनाम) ईश्वर, [2]आवाज, [3]शखध्वनि, [4]पुजारीका शख बजाना ही उसकी अजान है [5]चैन-सन्तोष, [6]न्योछावर, [7]इच्छाओकी सफलताका भेद, [8]इच्छाओके त्यागनेमे है, [9]कृपा-योग्य।

*इसी भावको स्वामी रामतीर्थने यू व्यक्त किया है--

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
जब हमे नफ़रत हुई, वह बेक़रार आनेको है॥

मालूम नहीं पाठकोंका ऐसे दोस्तोंसे वास्ता पड़ा है या नहीं, जो ज़िन्दगी भरके किये हुए एहसानोंको क्षणभरमें भुला दे, और राई-जितनी भूलको पहाड़ समझकर सदैव याद रखे।

तेरी इस भूलका एहसाँ, तेरी इस यादका शुक्र।
कि मुझे भूल गया मेरे गुनाह याद रहे॥

और ऐसे हितैषियोंको क्या कहिए?

अजब हमदर्दिए-मुहमिल[1] है, रस्मे-चारासाज़ी[2] भी।
नहीं है जिसके दिलमें दर्द, वोह आये है दरमांको[3]॥

संसारकी सब वस्तुयें क्षणिक हैं, केवल प्रेम ही स्थाई है—

क़ैसरी[4]-ओ-ख़ुसरवी[5] तो ढलती-फिरती छाँव है।
इश्क़ ही इक जाविदां[6] दौलत है, इन्सानोंके पास॥

कामुक व्यक्ति और चाहे जो कुछ भी हो, वह प्रेमी कदापि नहीं—

गर नज़रे-हविस[7] तेरी दामने-हुस्न छू गई।
इश्क़की आबरू कहाँ? नफ़सकी[8] आबरू गई॥

जो ईश्वरीय प्रेममें दिन-रात रत हो, उसे प्रकट रूपमें पूजा-उपासनाकी जरूरत नहीं—

वोह अपनी ज़िन्दगीमें बन्दगी क्यों लाज़िमी समझे?
जो अपनी ज़िन्दगीको इक मुसलसल[9] बन्दगी समझे॥

[1]निरर्थक सहानुभूति; [2]चिकित्साकी प्रथा, [3]इलाजको; [4-5]बादशाहत, [6]नष्ट न होनेवाली, स्थाई; [7]कामुक दृष्टि; [8]शारीरिक, इन्द्रियोंकी, मनकी, [9]लगातार।

बुत-शिकन बुतोंको तोड़ते-फिरते है। मगर उनके दिलमे जो अहकारका सबसे बड़ा बुत मौजूद है, उसे नही तोड़ते ?

कर रहे है, दिलमें पिन्दारे-खुदीको[1] परवरिश।
जिसमें इक सबसे बड़ा बुत है, वोह है बुतखाना हम॥

सीमाब अपने प्यारेका जलवा सर्वत्र देखते है, मूर्तिमे भी वही उनका प्यारा दृष्टिगोचर है—

बुतमे भी देखता हूँ उसी खुदनुमाको मै।
अब सिज्दा बरहमनको करूँ या खुदाको मै॥

प्यारेकी तल्लीनतामे—

आजुरदा[2] इस क़दर हूँ सराबे-खयालसे[3]।
जी चाहता है तुम भी न आओ खयालमें॥
तंग आके तोड़ता हूँ, खयाले-तिलस्मको।
या मुतमइन[4] करो कि तुम्हीं हो खयाल में॥

आते भी हो तो अभी न आना।
हूँ महवे-तसव्वुर[5] आजमाई[6]॥

माथेकी आँखे बन्द करके हियेकी आँखोसे देखा जाय, तो उसका जलवा दिखाई दे—

अगर है जौक़े-तमाशा तो बन्द कर आँखें।
जहाँ निगाह नहीं है, वहाँ हिजाब नहीं॥

मिटाना तो आसान है, निर्माण मुश्किल है—

---

[1]अभिमान और अहमकी , [2]व्यथित ; [3]प्रेयसी और चिन्तनरूपी मृगमरीचिकामे , [4]आश्वस्त ; [5-6]चिन्तनकी सफलताकी परीक्षामे लीन।

बताएँ तो मेरी हस्ती बिगाड़ने वाले।
बिगाड़कर कोई मुझको बना भी सकता है?

दुनियाकी हाय-हायमें मरनेवाले—

तू हविसमें दुनियाकी ज़िन्दगी मिटा बैठा।
भूल हो गई ग़ाफ़िल! ज़िन्दगी ही दुनिया थी॥

छिद्रान्वेषी दूसरोंके छिद्र देखते हैं अपने नहीं।

मेरे गुनाहों पै करे, तब्सिरा[1] लेकिन—
सिर्फ़ मैं ही तो गुनहगार नहीं॥

अब हम 'सीमाब' साहब और पाठकोंके बीचमें अधिक मुख़िल नहीं होना चाहते। पहले आपके ख़ुदके चन्द पसन्दीदा अशआर 'निगार' जनवरी १९४१ से साभार दिये जा रहे हैं[2]—

मेरी रसाईसे[3] दूर है तू, मगर अभी तुझको याद होगा।
कि मैंने ऐमनकी वादियों में[4] उलट दिया था नक़ाब तेरा॥

ख़ुदबीं[5]-ओ-ख़ुदशिनास[6] मिला, ख़ुदनुमा[7] मिला।
इन्सांके भेसमें मुझे अक्सर ख़ुदा मिला[8]॥

---

[1]टीका-टिप्पणी ; [2]आपकी नज़्मोंके चन्द उदाहरण 'शेरोशाइरी' में दिये जा चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें केवल गजलोंका उल्लेख हुआ है। इसलिए यहाँ आपकी, ग़ज़लोंके अशआर ही पेश किये जा रहे हैं ; [3]पहुँचसे ; [4]वह स्थान जहाँ कोहेतूर है। वहाँ मूसाने ख़ुदाका जल्वा देखा था ; [5]अपनी आनबान देखनेवाला, अभिमानी ; [6]अपनेको जाननेवाला, महत्त्वाकांक्षी ; [7]आत्मविज्ञापन करनेवाला ; [8]भाव यह है कि इन्सान इस तरहकी शेखी बघारता है, मानो वही ख़ुदा है।

अल्लाहरे शामे-गम मेरे दिलकी शिकस्तगी।
तारोंका टूटना भी मुझे नागवार था॥

जबींसाईसे[1] तसकीं, न सिज्दासे तसल्ली।
उठाकर सरमे रख लूँ, तुम्हारा नक़्शे-पा क्या?

मैं अपने हालसे ख़ुद बेख़बर हूँ।
तुम्हारी कमनिगाहीका गिला क्या॥
दुआ दिलसे जो निकले कारगर हो।
यहाँ दिल ही नहीं दिलसे दुआ क्या॥

यह ज़मीं ख़ुद एक दिन क्या जाने क्या बन जायेगी?
गर यूँ ही इन्सान पैवन्दे-ज़मीं[2] होता रहा॥

फ़ितरत यही अज़लसे है बर्क़े-जमालकी।
उसने जिसे तबाह किया तूर कर दिया॥

बदल गई वोह निगाहें वोह हादिसा था अख़ीर।
फिर इसके बाद कोई इन्क़िलाब हो न सका॥

कम-से-कम फिरिश्तोंको चैन तो मिला दिलका।
आपकी मुहब्बतमे आदमीने क्या पाया?

बन्दगीने हज़ार रुख़ बदले।
जो ख़ुदा था वही ख़ुदा है हनूज़[3]॥

शोरे-हस्ती[4] अभी ज़रा ठहरे।
सुन रहा हूँ ज़मीरकी[5] आवाज़॥

---

[1]मस्तक रगडनेसे; [2]ज़मीनमे दफन; [3]अभीतक. [4]ज़िन्दगीकी चिल्ल-पौ; [5]आत्माकी।

मेरी बेइख़्तियारियोंकी न पूछ ।
न हक़ीक़त[1] ही बसमें है न मजाज़[2] ।।

दफ़अ़तन्[3] साज़े-दो-आ़लम[4] बेसदा[5] हो जायेगा ।
कहते-कहते रुक गये जिस दिन तेरा अफ़साना हम ।।

तू इन्तिज़ारमें अपने यह मेरा हाल तो देख ।
कि अपनी हद्दे-नजर तक तड़प रहा हूँ मैं ।।
जलाले-मशरबे-मन्सूर[6], ऐ मआ़ज़अल्ला[7] ।
किसीने फिर न कहा आजतक खुदा हूँ मैं ।।

मामूरए-फ़नाकी[8] कोताहियाँ[9] तो देखो ।
इक मौतका भी दिन है दो दिनकी ज़िन्दगीमें ।।

तेरे जलवोंने मुझे घेर लिया है ऐ दोस्त !
अब तो तनहाईके लमहे भी हसीं होते हैं ।।

तुमने तो अपने हुस्नको महफ़ूज़[10] कर लिया ।
हम किसके साथ उम्रे-मुहब्बत बसर करें ?

उस मरकज़े-जमालपर[11] अब है मेरी निगाह ।
जलवे भी देख ले तो तवाफ़े-नज़र[12] करे ।।

हिजाब अपनी नज़रसे तो हम उठा न सके ।
उन्हींके हुस्नसे पर्दे उठाये जाते हैं ।।

[1]पारलौकिक ; [2]इहलौकिक , [3]एकाएक , [4]इस लोक और परलोकका वाद्ययत्र ; [5]बेआवाज ; [6]मन्सूरके उस कार्यका गौरव तो देखिए कि फिर किसीको उसके बाद अपनेको खुदा कहनेका साहस नही हुआ ; [7]ईश्वर बचाये , [8]असार ससारकी , [9]सकीर्णता, तंगदिली , [10]सुरक्षित , [11]सौन्दर्य-केन्द्रपर ; [12]दृष्टिकी प्रदक्षिणा दे ।

कोई तो सुर्खिये-अफ़साना यादगार रहे।
हम अपना ख़ून क़फ़समे लगाये जाते है॥

है कोई और शै इन्सानियत मेरे तख़ैय्युलमें[1]।
खयालोंमें कभी तस्वीरे-इन्सां देख लेता हूँ॥

यह दुनिया अगर मेरे क़ाबिल नहीं है।
तेरे पास या रब! जहाँ और भी है?

हक़ीर[2] हूँ, मगर इतना हक़ीर भी न समझ।
मैं ज़र्रा[3] भी तो नहीं हूँ, जो आफ़ताब[4] नहीं॥

आ और आख़िरी निगहे-यास[5] देख जा।
शायद फिर इसके बाद अयादत[6] रवा[7] न हो॥

जवानी और मर्गे-इश्क़[8]! यह है रक़सका[9] मौक़ा।
गज़लख़्वाँ हो मेरे मातममें कोई नौहाख़्वाँ[10] क्यों हो॥

तुझे न देख सकूँ मैं तो कुछ मलाल नहीं।
यही बहुत है कि तू मुझको देख सकता है॥

ले लिया क्यों आपने इल्ज़ाम मेरी मौतका।
इस तबाहीमें अभी गुंजाइशे-तक़दीर थी॥

इशारोंसे, निगाहोंसे बहुत कुछ मनअ करता हूँ।
क़फ़स ही पर झुकी पड़ती है, शाख़े-आशियाँ फिर भी॥

---

[1]विचारोमे ; [2]तुच्छ ; [3]कण, अणु ; [4]सूर्य्य ; [5]निराश दृष्टि ; [6-7]बीमार-पुर्सीको आना उचित ; [8]प्रेम-मरण ; [9]नृत्यका, [10]रोये।

न कली है वजहे-नज़र-कशी[1], न कँवलके फूलसे ताज़गी।
फ़क़त एक दिलकी शगुफ़्तगी[2] सबबे-निशाते-बहार[3] है॥

देना मुझे फ़रेबे-नवेदे-हयात[4] तुम।
जब लोग जा रहे हों जनाज़ा लिये हुए॥

तू अपनी बज़्मे-नाज़को देख और अज़लको[5] देख।
आया कहाँसे तेरी तमन्ना लिये हुए॥
थी कसरते-जमालसे[6] तारीक[7] बज़्मे-दहर[8]।
आना पड़ा चिराग़े-तमन्ना[9] लिये हुए॥

सानेअ़की[10] सनअ़तोंपर[11] सौ हुस्न क्यों न बरसें।
अपनी किसी अदाको इन्सां बना दिया है॥

ख़ुदासे मिल गया है हुस्ने-काफ़िर।
ख़ुदाईपर हुकूमत हो रही है॥
अभीतक महशरे-इन्सानियतमें।
तलाशे-आदमीयत हो रही है॥

हम आप सैर ही कर आयें बज़्मे-महशरकी।
अभी तो देखनेवाले हिसाब देखेंगे॥

मैं जिया भी दुनियामें और जान भी दे दी।
यह न खुल सका लेकिन, आपकी ख़ुशी क्या थी॥

[1]नेत्रोंके आकर्षणका कारण, [2]प्रसन्नता; [3]बहारकी ख़ुशीका कारण, [4]जीनेकी आशाका धोका, [5]सृष्टिके प्रारम्भको; [6]रूपकी प्रचुरताके कारण; [7]अँधेरी; [8]ससाररूपी महफ़िल; [9]अभिलाषाओंका दीपक; [10]कलाकारकी; [11]कलाओंपर।

ज़िन्दगी दरियाए-बेहासिल[1] है और किश्ती ख़राब।
मैं तो घबराकर दुआ करता हूँ तूफ़ाँके लिए॥

कौन जाने आस्माँसे उनको क्या उम्मीद थी।
मरते-मरते भी जो सूए-आस्माँ देखा किये॥

दीदसे[2] उनकी मतलब है, घर न सही महशर ही सही।
हम दानिस्ता देखेंगे, वोह मजबूरन् आयेंगे॥

न फ़र्माओ, "नहीं है आदमीमें ताबे-नज़्ज़ारा"[3]।
सँभल जाओ अब उठती है निगाहे-नातवाँ[4] मेरी॥
मेरी हैरतपै वोह तनक़ीदकी[5] तकलीफ़ करते हैं।
जिन्हें यह भी नहीं मालूम नजरें हैं कहाँ मेरी॥

बता ऐ दुसअ़ते-कौनो-मकाँ[6] ! इसको कहाँ रक्खें ?
ज़रा-सा दर्द लेकर आये हैं, हम उनकी महफ़िलसे॥

कुछ वक़्त कट गया था तेरी यादके बग़ैर।
हमपर तमाम उम्र वोह लमहे गिराँ[7] रहे॥

यह समझिए है कोई दीवाना दुनिया में उदास।
बेसबब जब बज़्मे-आ़लमको[8] परेशाँ देखिए॥

यह वहम हो कि हक़ीक़त[9], सुकूँ[10] इसीसे है दिलको।
समझ रहा हूँ कि तू बेक़रार मेरे लिए है॥

---

[1]असफलताओकी बाढ, [2]देखनेसे, [3]देखनेकी शक्ति, [4]निर्बल दृष्टि; [5]आलोचनाकी, [6]समारके व्यापक क्षेत्र, [7]भारी; [8]समाररूपी महफिलको, [9]वास्तविकता; [10]चैन।

है कुछ सुनी हुई-सी सदायें[१] फ़ज़ामें[२] आज।
क्या मेरे हमसफ़ीर[३] भी ज़िन्दाँमें[४] आ गये?

सदाए-सूरसे[५] मैं क़ब्रमें न जागूँगा।
किसी सुनी हुई आवाज़से पुकार मुझे॥

मेरा कुफ़्रे-मुहब्बत[६] है फ़रोग़े-जाद-ए-ईमाँ[७]।
वोह शमअे-दैर[८] हूँ मैं रोशनी जिसकी हरमतक[९] है॥

जितने सितम किये थे किसीने अ़ताबमें[१०]।
वोह भी मिला लिये करमे-बेहिसाबमें[११]॥
हर चीज़ पर बहार, हरइक शै पे हुस्न था।
दुनिया जवान थी मेरे अहदे-शबाब में[१२]॥

विसाले-दोस्त और मैं, इत्तफ़ाक़ाते-मुहब्बत है।
यह है वोह चीज जो शायद न थी मेरे मुक़द्दर में॥

तुझको दर-पर्दा समझकर हो रहा हूँ बेक़रार।
क्या तमाशा हो जो कोई दूसरा पर्दे में हो॥

क्यों हँसी तू ऐ अजल[१३]! फ़ानी[१४] अगर समझा मुझे।
एक दिन सबको फ़ना है क्या तुझे और क्या मुझे॥

कितने दीवाने मुहब्बतमें मिटे हैं 'सीमाब'!
जमा की जाय जो ख़ाक उनकी तो वीराना बने॥

---

[१]आवाजे ; [२]वातावरणमें ; [३]साथी ; [४]कैदमे , [५]नर्गासहाके शोरसे; [६]धार्मिक-सीमाओके वन्धनसे स्वतन्त्र प्रेम ; [७]ईमानके राहकी नरक्की ; [८]मन्दिर-दीप , [९]मस्जिद तक ; [१०]क्रोधमे , [११]अनगिनत कृपामें ; [१२]युवावस्थामें ; [१३]मृत्यु , [१४]नश्वर।

अब मुझको है क़रार[1] तो सबको क़रार है।
दिल क्या ठहर गया कि ज़माना ठहर गया॥

यूँ ही हम-तुम घड़ी भरको मिला करते तो बेहतर था।
यह दोनों वक़्त जैसे रोज मिलते हैं, जुदा होकर॥

ऐ पर्दादार! अब तो निकल आ कि हश्र है।
दुनिया खड़ी हुई है तेरे इन्तिज़ार में॥

किसी मर्दे-वफ़ाका कूच है फिर अपने मस्कनसे[2]।
उदासी माँगने आई है दुनिया मेरे मदफ़नसे[3]॥

हमें तो यूँ भी न जलवे तेरे नज़र आये।
न था हिजाब तो आँखोंमें अश्क भर आये॥

वोह आलमे-शिकस्तगीए-नाज़[4] अलअमां।
जब हुस्न ख़ुद किसीके असरसे तबाह हो॥

हाय! 'सीमाब' उसकी मजबूरी।
जिसने की हो शबाबमें तौबा॥

क़ातिलका नाम लिख दिया क्यों मेरी क़ब्रपर?
लेते हैं राहगीर भी बोसे मज़ारके॥

अब हम आपकी १९३६ से १९४२ तककी कही हुई गज़लोंके अशआर द्वितीय दीवान 'सिदरतुल-मुन्तहा' से चुनकर पेश कर रहे है। अशआरसे पहले सन् दे दिया गया है, ताकि गजलोंके कहनेके समयका पता चल सके।

---

[1]चैन ; [2]स्थानसे ; [3]कब्रसे ; [4]रूपके अभिमान-मर्दनकी दशा।

१९३६ ई०—

जो ज़ौक़े-इश्क़[1] दुनियामें न हिम्मत आज़मा होता।
यह सारा कारवाने-ज़िन्दगी[2] ग़ाफ़िल पड़ा होता॥
ख़मोशीपर मेरी, दुनियामें शोरिश[3] है क़यामतकी।
ख़ुदा-ना-ख़्वास्ता लब खुल गये होते तो क्या होता?
शिआ़रे-हुरन पाबन्दी, मिज़ाजे-इश्क़ आज़ादी।
जो ख़ुद अपना ही बन्दा है, वोह क्या मेरा ख़ुदा होता?
ख़ुदाने ख़ैर की, थी राहे-इश्क़ ऐसी ही पेचीदा।
कि मेरे साथ मेरा रहनुमा[4] भी खो गया होता॥
उड़ा दीं मैंने आख़िर धज्जियाँ दामाने-हस्तीकी[5]।
गरेबाँ ही के दो तारोंसे क्या ज़ोर-आज़मा होता?
कहाँ यह देहर[6] कुहना[7] और कहाँ ज़ौक़े-जवाँ मेरा।
कोई दुनिया नई होती, कोई आ़लम नया होता॥
किया इक सिज्दा मैंने हुस्नको तो हो गया काफ़िर।
अगर सर काटकर क़दमोंपै रख देता तो क्या होता?

फ़ज़ा पैदा नहीं करती, कहीं दीवाना बरसोंसे।
नहीं उठता कोई पैग़म्बरे-वीराना बरसोंसे॥

रहेगा मुब्तिलाए-कश-म-कश[8] इन्सां यहाँ कबतक?
यह मुश्ते-ख़ाकपर[9] जंगे-ज़मीनो-आसमाँ कबतक?
यह आवाज़े-दरा[10], बांगे-जरस[11], मुहमिल-से[12] नामे हैं।
चलेगा इन इशारोंके सहारे कारवाँ[13] कबतक?

---

[1]प्रेमका शौक; [2]जीवनरूपी यात्रीदल; [3]शोर; [4]पथ-प्रदर्शक; [5]जीवनके दामनकी; [6-7]पुराना संसार; [8]चिन्ताओंमें उद्विग्न; [9]मुट्ठीभर ख़ाक पै; [10]अपनी ही आवाज़ पलट कर सुनाई देना; [11]घटीकी आवाज़; [12]निरर्थक-से; [13]यात्रीदल।

मैं अपना राज़[1] खुद कहकर न क्यों ख़ामोश हो जाऊँ ?
बदल जाती है दुनिया, एतबारे-राज़दा[2] कबतक ?
ब-क़दरे-यक-नफ़स[3] मांग ले और मुत्मइन[4] हो जा।
भिखारी ! यह मुनाजाते-निशाते-जाविदां[5] कबतक ?

जलवोंकी तो आदत है, महबूबे-नज़र रहना।
कुछ तुझमें भी जुरअत है ऐ चश्मे-तमाशाई !

तेरे ही लिए शायद है मेरी नमाज़े भी।
जब मैंने किया सिज्दा काफ़िर तेरी याद आई ॥

चलते हुए दो काबा, फिरते हुए दो मन्दिर।
चमकी तेरे क़दमोंपर तक़दीरे-जबीसाई[6] ॥

पारिस्तारे-मुहब्बतकी[7] मुहब्बत ही शरीअ़त[8] है।
किसीको याद करके आह कर लेना इबादत[9] है ॥

जहाँ दिल है, वहाँ वोह है, जहाँ वोह है, वहाँ सब कुछ।
मगर पहले मुकामे-दिल समझनेकी जरूरत है ॥
बहुत मुश्किल है क़ैदे-ज़िन्दगीमें मुत्मइन्[10] होना।
चमन भी इक मुसीबत था, क़फ़स भी इक मुसीबत है ॥
मेरी दीवानगीपर होशवाले बहस फ़र्माये।
मगर पहले उन्हें दीवाना बननेकी जरूरत है ॥

---

[1]भेद ; [2]अन्तरंग भेद जाननेवालेका भरोसा ; [3]जीभरका गम ; [4]शान्त, सन्तोषी ; [5]स्थाई भोगविलासके लिए कबतक गिड़गिड़ाता रहेगा ? [6]माथा रगड़नेका भाग्य, [7]प्रेमीकी उपासनाकी ; [8]धार्मिक नियम, [9]उपासना, [10]आश्वस्त ।

शगुफ़्ते-दिलको[1] मुहलत[2] उम्रभर मुझको न दी ग़मने।
कलीको रातभरमे फूल बन जानेकी फ़ुर्सत है॥

है चाके-गरेबांके[3] तेवरमे शिकन[4] अबतक।
कल आलमे-वहशतमे[5] किसने मुझे छेड़ा था?

जब कोई तामीर[6] बेतख़रीब[7] हो सकती नहीं।
ख़ुद मुझे अपने लिए बरबाद होना चाहिए॥

यह हुजूमे-ग़म[8] है, महदूदे-हुदूदे-जिन्दगी[9]।
आदमी आया है तनहा और तनहा जायगा॥

संगे-दर[10] सरपै है, दरपर नहीं अब सर मेरा।
अहले-काबा मेरे सिज्दोंका सलीक़ा देखे॥

हमनशीं[11]! क्या मै तुझे दावते-मैनोशी दूं?
अश्क-ही-अश्क भरे है मेरे पैमानेमे॥

मुक़ाम इक इन्तहाए-इश्क़मे ऐसा भी आता है।
जमानेकी नज़र अपनी नज़र मालूम होती है॥
कोई उलफ़तका दीवाना, कोई मतलबका दीवाना।
यह दुनिया सिर्फ़ दीवानोंका घर मालूम होती है॥

जो मुम्किन हो, जगह दिलमे न दे दर्दे-मुहब्बतको।
घड़ी भरकी ख़लिश[12] फिर उम्रभर मालूम होती है॥

---

[1]हृदय-कॅवल खिलनेकी, [2]आज्ञा, फुर्सत, [3]गले फटे हुएके; [4]सिलवटे, त्योरी, [5]उन्मादावस्थामे, [6]निर्माण, [7]बरबादीके बिना, [8]दुःखोका समूह, [9]जीवन-सीमाओमे सीमित, [10]प्रेयसीकी चौखटका पत्थर, [11]पड़ोसी, साथी; [12]चुभन।

जबाँबन्दीसे खुश हो, खुश रहो, लेकिन यह सुन रक्खो ।
ख़मोशी भी मेरी अफ़साना बन जाएगी महफ़िलमें ॥

दिल और तूफ़ाने-ग़म, घबराके मैं तो मर चुका होता ।
मगर इक यह सहारा है कि तुम मौजूद हो दिलमें ॥
न जाने मौज क्या आई कि जब दरियासे मैं निकला ।
तो दरिया भी सिमटकर आ गया आग़ोशे-साहिलमें[1] ॥

लफ़्ज़ोंके परिस्तार[2] ख़बर ही तुझे क्या है ?
जब दिलसे लगी हो तो ख़मोशी भी दुआ है ॥
दीवानेको तहक़ीरसे[3] क्यों देख रहा है ।
दीवाना मुहब्बतकी ख़ुदाईका[4] ख़ुदा है ॥

जो कुछ है वोह, है अपनी ही रफ़्तारे-अमलसे ।
बुत है जो बुलाऊँ, जो ख़ुद आये तो ख़ुदा है ॥

यूँ उठा करती है सावनकी घटा ।
जैसे उठती हो जवानी झूमके ॥
जिस जगहसे ले चला था राह-बर[5] ।
हम वहीं फिर आ गये हैं घूमके ॥
आ गया 'सीमाब' जाने क्या ख़याल ?
ताक़में रख दी सुराही चूमके ॥

१९३७ ई०—

ख़राब होती न यूँ ख़ाके-शमअ-ओ-परवाना ।
नहीं कुछ और तो इन्सान ही बना करते ॥

[1]किनारेकी गोदमे ; [2]वाणीके उपासक ; [3]घृणासे ; [4]प्रेम-संसारका ; [5]पथ-प्रदर्शक ।

मिज़ाजे-इश्क़में होता अगर सलीक़ए-नाज़ ।
तो आज इसके क़दमपर भी सर झुका करते ।।
यह क्या किया कि चले आये मुद्दआ बनकर ।
हम आज हौसिलए-तर्के-मुद्दआ करते ।।
कोई यह शिकवा-सरायाने-जौरसे[1] पूछे ।
वफ़ा भी हुस्न ही करता तो आप क्या करते ?
ग़ज़ल ही कह ली सुनानेको हश्रमें 'सीमाब' !
पड़े-पड़े यूँ ही तनहा लहदमें[2] क्या करते ?

मनशाए-इलाहीपै यक़ीं आ ही चला है ।
ऐ चारागरो[3] ! ज़हमते-दरमाँ[4] कोई दिन और ।।

अपना सिज्दा ख़ुद गिराँ महसूस होता है मुझे ।
जैसे पाए-नाज़पर इक बोझ-सा रखता हूँ मैं ।।

ख़ुदा और नाख़ुदा मिलकर डुबो दे यह तो मुम्किन है ।
मेरी वजहे-तबाही सिर्फ़ तूफ़ाँ हो नहीं सकता ।।
दुआ जाइज़, ख़ुदा बरहक, मगर माँगूँ तो क्या माँगूँ ?
समझता हूँ कि मैं, दुनिया बदामाँ हो नहीं सकता ।।

ज़मीनो-आसमाँसे तंग है तो छोड़ दे उनको ।
मगर पहले नये पैदा ज़मीनो-आस्माँ कर ले ।।

गुनाहोंपर वही इन्सानको मजबूर करती है ।
जो इक बेनाम-सी फ़ानी-सी लज्ज़त है गुनाहोंमें ।।

---

[1]अत्याचारोकी शिकायत करनेवालोंसे , [2]क़ब्रमें ; [3]चिकित्सको ; [4]इलाजकी तकलीफ़ ।

न जाने कौन है गुमराह[१], कौन आगाहे-मंज़िल[२] है।
हज़ारों कारवाँ[३] है ज़िन्दगीकी शाहराहोंमें[४] ॥
रहे-मंज़िलमें[५] सब गुम है, मगर अफ़सोस तो यह है।
अमीरे-कारवाँ[६] भी है, उन्हीं गुमकरदा राहोंमें ॥

१९३८ ई०—

क़फ़समें खींच ले जाये मुक़द्दर या नशेमनमें।
हमें परवाज़से मतलब है, चलती हो हवा कोई ॥
वफा करके मैं यूँ बैठा हूँ फैलाये हुए दामन।
कि जैसे बाँटता फिरता है इनआ़मे-वफ़ा कोई ॥

मैं सुपुर्दे-ख़ुदफ़रामोशी[७] हूँ तू महवे-ख़ुदी[८]।
तेरी हुशियारीसे अच्छा है मेरा दीवानापन ॥
ग़ाफ़िलोंपर गर न हो फ़ितरतके मुर्दोंका यक़ीं।
रातको दुनियामें डाला जाय क्यों काला कफन ?
फ़र्शसे ता-अ़र्श मुम्किन है तरक़्क़ी-ओ-उरूज।
फिर फ़रिश्ता भी बना लेगे तुझे, इन्साँ तो बन ॥

कुछ मुहब्बत ही से है ज़िद सबको।
वरना दुनियामें क्या नहीं होता ॥

१९३९ ई०—

अपने ही हाथसे दे-दे जो तुझे देना है।
मेरी तशहीर न फ़र्मा[९] मुझे साइल[१०] न बना ॥

---

[१]भूला-भटका ; [२]मार्गसे परिचित ; [३]यात्रीदल ; [४]मार्गोंमें ; [५]लक्ष्य तक पहुचनेके मार्गमें ; [६]यात्रीदलका नेता ; [७]अहमको भुलाकर समर्पित हो गया हूँ ; [८]अहम्‌में लीन ; [९]मेरा ढिंढोरा न पीट ; [१०]भिक्षुक।

खुदासे हश्रमें काफ़िर ! तेरी फ़रियाद क्या करते ?
अक़ीदत[1] उम्रभरकी दफ़अ़तन बर्बाद क्या करते ?
कफ़स क्या, हमने बुनियादे-क़फ़सको भी हिला डाला ।
तकल्लुफ़ बरबिनाए-फ़ित्रते-आज़ाद क्या करते ।।
बहुत मुहतात रहकर लुत्फ़ उठाये उम्रे-फ़ानीके ।
ज़रा-सी जिन्दगी जी खोलकर बरबाद क्या करते ?
शबे-ग़म आहे-जेरे-लबमे सब कुछ कह लिया उनसे ।
ज़मानेको सुनानेके लिए फ़रियाद क्या करते ?

मेरे उठे हुए हाथोंको कोई क्या समझे ?
दुआ़से हाथ उठाता हूँ, या दुआ़के लिए ।।

कुछ हाथ उठाके माँग न कुछ हाथ उठाके देख ।
फिर इख़्तियार ख़ातिरे-बेमुद्दआ़के देख ।।

तजहीको[2]-इल्तिफ़ातमें[3] रहने दे इम्तियाज़[4] ।
यूँ मुसकरा न देखके, हाँ मुसकराके देख ।।

तू हुस्नकी नज़रको समझता है बेपनाह ।
अपनी निगाहको भी कभी आज़माके देख ।।
पर्दे तमाम उठाके न माय़से-जल्वा हो ।
उठ और अपने दिलकी भी चिलमन[5] उठाके देख ।।

आशियाँमे न कोई ज़हमत[6] न क़फ़समे तकलीफ ।
सब बराबर है तबीअ़त अगर आज़ाद रहे ।।

---

[1]श्रद्धा-विश्वास . [2-3]हँसी उडाने और मेहरबानीमे ; [4]अन्तर ; [5]चिक, पर्दा ; [6]परेशानी ।

१९४० ई०—

ग़ाफ़िल कुछ और कर दिया शमए-मज़ारने ।
आया था मैं तो नशए-हस्ती[1] उतारने ॥
हँसता है क्या बुझी हुई शमए-हयात पर[2] ।
देखी है सुबह भी तो मेरी लालाज़ारने ॥

उजड़ा और ऐसी शानसे उजड़ा मेरा चमन ।
यह भी पता नहीं कि बनाया था घर कहाँ ?

निज़ामे[3]-सुबहो-शामे-देहर[4] है जिसके इशारोंपर ।
मेरी ग़फ़लत तो देखो मैं उसे ग़ाफ़िल समझता हूँ ॥

कहाँकी बज़्मे-आलम ? यह तो मेरी तंग-फ़हमी है ।
कि मैं इक चलती-फिरती छाँवको महफ़िल समझता हूँ ॥

मुहब्बतमें नियाज़[5] और हुस्न महवे-नाज़[6] क्या मानी ?
मैं इस दस्तूरको तरमीमके[7] क़ाबिल समझता हूँ ॥

बेकफ़न ही दफ़न कर दी जाये दीवानोंकी नाश ।
धज्जियाँ तो हैं अभी महफ़ूज़[8] वीरानोंके पास ॥

अब क्या छुपा सकेगी उरयानियाँ-हविसकी[9] ?
काँधोंसे पिंडलियोंतक लटकी हुई क़बाएँ[10] ॥
वक्ते-विदाअे-गुलशन नज़दीक आ रहा है ।
अब आशियाँ उजाड़े या आशियाँ बनाएँ ॥

---

[1]जीवन-नशा ; [2]जीवन-दीपपर ; [3-4]ससारकी सुबह, शामकी व्यवस्था , [5]नम्रता ; [6]अभिमानमे लीन ; [7]परिवर्त्तनके योग्य ; [8]सुरक्षित , [9]कामुकताकी नग्नता ; [10]लम्बा चोग़ा ।

उनकी ख़ुशीपै जान दूं, मेरी ख़ुशी-ख़ुशी नहीं ।
जैसे वही तो हैं ख़ुदा, मैं कोई चीज़ ही नहीं ॥
उनको पसन्द है नियाज़[1], तर्के-नियाज़ क्या करूँ ?
कोशिशे-बन्दगी में हूँ, आ़दते-बन्दगी नहीं ॥

उम्मीदे-अम्न क्या हो याराने-गुलिस्ताँसे ।
दीवाने खेलते हैं अपने ही आशियाँसे ॥
बिजली कहा किसीने, कोई शरार[2] समझा ।
इक लौ निकल गई थी, दागे-ग़मे-निहाँसे[3] ॥
नाक़ूस[4] बनके मैंने चौंका दिया हरमको[5] ।
पत्थर सनम-कदेके[6] जागे मेरी अज़ाँसे ॥
मदारे-हर-अ़मले-नेको-बद, है नीयतपर ।
अगर गुनाहकी नीयत न हो गुनाह नही ॥
नक़ाब उलट दिया मूसाने तूरपर उनका ।
अगर गुनाह सलीक़ेसे हो, गुनाह नहीं ॥

ऐसे भी हमने देखे है दुनियामें इन्क़िलाब ।
पहले जहाँ क़फ़स था, वहीं आशियाँ बना ॥
सारे चमनको मैं तो समझता हूँ अपना घर ।
तू आशियाँ-परस्त है, जा, आशियाँ बना ॥

वोह भी अ़ताए-दोस्त है, यह भी उसीकी देन है ।
ऐशमें क़हक़हे लगा, तैशमें मुसकराए जा ॥

---

[1]नम्रता, ख़ुशामद ; [2]चिनगारी ; [3]छिपे हुए गमके दागसे ; [4]शंख ; [5]काबेको ; [6]मन्दिरोके पत्थर ।

यादपै तेरी मुनहसिर है, यह हयाते-मुख्तसर ।
मुझको न यादकर मगर, तू मुझे याद आये जा ।।

हजार दर्दमन्द हूँ मगर मुझे नही जुनूं ।
शिकायत उससे क्या करूँ जिसे खयाल भी न हो ।।

पैकरे-खाकको[1] बदनाम न कर आलममे ।
कि तेरा नाम इसी खाकके पैकरसे चला ।।

मुहब्बत ही फ़नाके बाद भी बर-रूए-कार आई ।
न मुझको दीन रास आया, न दुनिया साजगार आई ।।
अँधेरा हो गया, दिल बुझ गया, सूनी हुई दुनिया ।
बड़ी वीरानियोंके बाद शामे-इन्तजार आई ।
न आई पाए-इस्तगनामे[2] इक हल्की-सी लग़िज़श भी ।
मेरे रस्तेमें ठोकर बनके, दुनिया बार-बार आई ।।

क्या जाने यह रहगीर[3] हैं, रहबर[4] है कि रहजन[5] ?
हम भीड़ सरे-राहगुजर देख रहे हैं ।।
पहले तो नशेमनकी तबाहीपै नजर थी ।
अब हौसिलए-बर्क़ो-शरर-देख[6] रहे हैं ।।
पूछो मेरी परवाजका अन्दाज़ उन्हींसे ।
यह लोग जो टूटे हुए पर देख रहे हैं ।।

जवानी ख़्वाबकी-सी बात है दुनियाए-फ़ानीमें ।
मगर यह बात किसको याद रहती है जवानीमे ।।

---

[1]मिट्टीके पुतलेको ; [2]सन्तोष और सब्रके पांवोमे ; [3]यात्री ; [4]मार्गदर्शक , [5]लुटेरे ; [6]बिजली-चिन्गारीका साहस ।

१९४२ ई०—

मैं हूँ कलीमे-हिन्द[1], हिमालय है मेरा तूर।
है इन्तिज़ारे-दावते-जलवागरी मुझे ॥

मैं ऐ 'सीमाब' ! सूरज बनके चमका हूँ अँधेरोंमें।
न होनेसे मेरे महसूस दुनियामे कमी होगी ॥

देकर ख़ुदी बना दिया इन्सानको ख़ुदा।
फ़ितरत ख़ुद अपने दिलमे पशेमाँ है आजकल ॥

जब तवज्जह तेरी नहीं होती।
ज़िन्दगी-ज़िन्दगी नहीं होती ॥
पहरों रहती थी गुफ़्तुगू जिनसे।
उनसे अब बात भी नहीं होती ॥
उनकी तस्वीर में है क्या 'सीमाब' !
कि नज़र सैर ही नहीं होती ॥

ख़ामोश हूँ मुद्दतसे नाले है न आहें हैं।
मेरी ही तरफ़ फिर भी दुनियाकी निगाहें हैं ॥
'सीमाब' गुज़रगाहे-उल्फ़तको भी देख आये।
बिगड़े हुए रस्ते हैं, उलझी हुई राहें हैं ॥

मुझे ग़मसे कितनी ही अफ़सुर्दगी हो।
तेरे सामने मुसकराना पड़ेगा ॥

गुम कर दिया इन्साँको यहाँ लाके किसीने।
समझे ही नहीं शोब्दे दुनियाके किसीने ॥

---

[1]जैसे ख़ुदाके पक्के उपासक कलीम (मूसा) थे, वैसा ही मैं भारत-भक्त हूँ ।

जब जोशे-तमन्नाको न रुकते हुए देखा।
आग़ोशमें ले ही लिया घबराके किसीने॥

इश्क़ है सहल, मगर हम हैं वोह दुश्वार-पसन्द।
कारे-आसाँको भी दुश्वार बना लेते हैं॥



वोह ख़ुद भी समझते नहीं मुझको साइल।
कुछ इस शानसे गोद फैला रहा हूँ॥

२० जून १९५२ ई०]



जोश मलसियानी

[१८८२—.....ई०]

उर्दू पुस्तकें ख़रीदते हुए 'बादए-सर-जोश'को मैंने शाइरे-इन्क़िलाब हज़रते 'जोश' मलीहाबादीकी नवीन रचना समझकर उठाया, तो उसमें रचयिताका नाम पं० लभ्भूराम 'जोश' मलसियानी पढ़कर हैरत-सी हुई। या अल्लाह ! कोई नक़ली 'जोश' भी पैदा कर दिया तूने ? खीझकर वरक़ पलटता हूँ तो जिस कलामपर भी नज़र पड़ी, पड़ी रह गई। अब ये आलम है कि पुस्तक-विक्रेता पुस्तकोंका ढेर लगाये जा रहा है और मैं हूँ कि 'बादए-सर-जोश'से सरशार हूँ।

माशा अल्लाह ! नाम भी अजीब दक़ियानूसी और तसवीर भी एक देहाती पंजाबी-जैसी ! दिलको यक़ीन न हुआ कि श्रीमान्‌जी भी शाइर हो सकते हैं। हिन्दी कवि ऐसी वेश-भूषा और नामके निकल आयें तो कोई अचम्भा नहीं, मगर जिस उर्दू-अदबके तकल्लुफ़, सलीक़े, तौर-तरीक़े, नफ़ासत-लताफ़त ही रूहेरवाँ (प्राण) हों, उसका दिलदादा भी ऐसी पुरानी वज़अ-क़तअका हो सकता है, कुछ समझमें न आया ! मगर हाथ-कंगनको आरसी क्या ? पूरी किताब पढ़े बग़ैर जी न माना।

'जोश' साहब क़स्बा मलसियाँ, ज़िला जालन्धरके रहनेवाले हैं। आप

१ फरवरी १८८२ ई० मे उत्पन्न हुए। १८ वर्षकी आयुमे ही आपके सरसे पिताका साया उठ गया। घरेलू स्थिति ऐसी न थी कि अंग्रेजी-जैसी खर्चीली शिक्षा जारी रखते। पारिवारिक भरण-पोषणका भार आपको १८ वर्षकी आयुमे ही उठाना पडा। फिर भी आपने मुंशी फाजिल और अदीब-फाजिल दो परीक्षाएँ पास की और एक हाई स्कूलमें फारसीके शिक्षक नियुक्त हुए। देहातका जीवन और पारिवारिक वातावरण शाइरीके अनुकूल नही था। फिर भी प्रकृतिका खेल देखिए कि आपको शाइरीका चसका ऐसा लगा कि आज उस्तादोमे आपका शुमार है। बचपनसे ही जहीन थे। सहपाठी नही चाहते थे कि कलाममे आप अव्वल रहे। उन्होने शाइरीका चस्का इस नीयतसे लगाया कि हजरत कहींके न रहेंगे। मगर आपने शिक्षा भी आवश्यकतानुसार प्राप्त की और फन्ने-शाइरीमे भी कमाल हासिल किया।

चमकीली आँखे, चौडी पेशानी, खसखसी सफेद दाढी, बेसँवरी, मूछ, बन्द गलेके कोटमे मलबूस, सरपर देहाती पजाबी पगडी लगाये जो सजीदगीसे बैठे है, वही है हजरते 'जोश' मलसियानी।

वेश-भूषाके साथ आपका खाना-पीना भी सादा है। शराब और गोश्त कभी छुआ नही। फिर भी कलाममे इस तरह के अशआर यत्र-तत्र मिलेंगे—

पी लोगे तो ऐ शैख़ ! जरा गर्म रहोगे।
ठण्डा ही न कर दे कहीं जन्नतकी हवाएँ॥

वर्त्तमानमे जो अच्छे नज्म-निगार है, उन्होने पहले ग़जलकी मश्क़ की, बादमे नज्म लिखना शुरू किया। मगर जोश साहबने शुरू-शुरूमे नज्में लिखी, बादमे गजलगोईकी तरफ माइल हो गये। १९०२ मे नवाब-मिर्जा दागके शिष्यत्वका गौरव प्राप्त किया, किन्तु १९०६ मे दागके परलोक सिधारनेके बाद स्वय धीरे-धीरे कलामकी मश्क़ इस खूबीसे की, कि आज वे स्वय एक अच्छे उस्ताद है।

हजरत 'अमद' मलतानी लिखते है—

"कोई १५-१६ बरस पहले (लगभग १९३० ई०)की बात है। शिमलेमें प्रिन्स ऑफ वेल्स सिनेमाके अन्दर मुशाअ़रा हो रहा था। शेख़ सर अब्दुल कादिर कुर्सीए-सदारत (अध्यक्षपद) पर तशरीफ फर्मा थे। अच्छे-अच्छे शाइर कलाम सुना चुके तो पण्डितजीके नामका एलान हुआ। मुतवस्सित- (साधारण) जिस्मके एक बुजुर्ग स्टेजपर आये। दाढी-मूछें नीम (आधी) सफेद, लिबास निहायत सीधा-सादा। सफेद पगडी, सफेद पायजामा, और मटियाले रंगका ढीला-ढाला कोट। चेहरे पर बा-वकार मतानत (सम्मान योग्य गम्भीरता) के आसार। शिमलेके रंगीन पसे-मजर (वातावरण) मे यह सादगी और भी नुमायाँ (प्रकट) हो रही थी। शेख साहबने उठकर खास तौरपर 'जोश' साहबका तआरुफ (परिचय) कराया और जब उन्होंने गजल पढी--

कोई दुनियाको क्या समझेगा जैसा हम समझते हैं

तो समाँ बँध गया। गजलका एक-एक शेर बार-बार पढ़वाया गया। शेख़ साहब थे कि झूम-झूमकर शेर दोहरा रहे थे।

आपके पुरदर्द अन्दाजने मजमूई तौरपर एक अजीब कैफियत पैदा कर दी। उस रोज पहली बार उनकी शाइराना अजमतका एहसास (आभास) हुआ; और तबीअ़त पर उनकी शाइरीसे बढकर उनकी शख़्सियतका असर।

बाद-अज़ाँ १९३४ ई० से हमारी 'बज्मे-उर्दू' शिमलेके मुशाअ़रे शुरू हुए तो उन्हें हर साल दावत देनेका मामूल बना लिया गया; और उस तरह उनसे मुलाक़ातका सिलसिला भी पैदा हो गया। लेकिन यह ज़ाहिर करनेमे मुझे जरा भी तअम्मुल नही कि हर बार जब उनसे मुलाकात होती या वे मुशाअ़रेमें शिरकत फ़र्माते, उनकी शख़्सियत और शाइरीके मुतअ़ल्लिक़ दिलके ख़ुशगवार तअ़स्सुरात (हृदयगत अंकित भावों) में और भी इज़ाफ़ा हो जाता। बज़ाहिर यह मामूली बात मालूम होगी।

लेकिन इसकी अहमियतका सही अन्दाजा वे साहबान लगा सकते हैं, जिन्हें दौरे-हाजिर (वर्त्तमान युग) के मशहूर शुअ़रासे वक़्तन-फ़वक्तन मिलनेका इत्तिफाक होता रहता है ।

१९३४ ई० के मुशाअरेका वह मंज़र भी मुझे अब तक याद है, जब शिमलेके 'डयूक बाल' रूममे सैयद सर रज़ाअ़लीकी सदारतमें मजलिस गर्म थी और हजरत 'अख़गर' मुरादाबादी मरहूमके बाद पण्डितजीकी बारी आई तो उन्होंने मतला पढा--

सोज़े-ग़ममें वीद-ए-तर काम आ सकता नहीं ।
यह वोह आतिश है, जिसे पानी बुझा सकता नहीं ।।

यू तो इस ग़ज़लके हर शेरकी ख़ूब पिजीराई हुई। लेकिन इस शेरने कयामत बरपा कर दी--

मेरी रुसवाईका हाल ऐ दावरे-महशर ! न पूछ ।
मै भरी महफ़िलमे यह क़िस्सा सुना सकता नहीं ।।

जब यह गज़ल खत्म हुई तो मजीद (दुबारा) कलामका मुतालेबा हुआ। उन्होने एक और गजल पढी, जिसकी जमीन थी--

देना एक और, रूएज़ेबा एक और

इस ग़ज़लका यह असर हुआ कि इसके खत्म होनेपर हाज़िरीनने एक-जबान होकर "एक और एक और" का शोर मचा दिया । नतीजा यह कि उन्हे तीसरी ग़ज़ल भी सुनानी पड़ी[१] ।"

एक और मुशाअ़रे की कलमी तसवीर हजरत हरीचन्द 'अख्तर' यूं खीचते हैं--

"सन् १९३२ ई० का जिक्र है । कपूरथलेका सालाना मुशाअ़रा था ।

[१]आजकल उर्दू, १५ मार्च १९८५ ई०, पृ० ५ ।

लाहौर और दीगर मुकामातसे कई नामवर शाइर आये थे। सदारत (अध्यक्षपद) के लिए शेख मर अब्दुल कादिरसे दरख्वास्त की गई थी। उन्होंने आते ही पूछा—" 'जोश' साहब आ गये।"

मुशाअरेके मुहतमिम (सयोजक) ने बताया कि " 'जोश'साहबने किसी और मसरूफियत (व्यस्तता) के बाइस माजूरी-(क्षमा-याचना) का इजहार किया है।"

शेख साहबने फर्माया—"हैरत है कि यहाँ 'जोश' मलसियानीके बगैर भी कोई मुशाअरा हो सकता है ? इतना बडा उस्ताद इस इलाकेमें मौजूद है और आप उसीको नही बुला सके ?"

मुहतमिम मौका-शिनास था। भला इस सूरते-हालसे क्यों-फायदा न उठाता ? फौरन तजवीज पेश कर दी—"इजाजत हो तो आपकी तरफसे पैगाम भेज दिया जाये ?"

चुनाचे एक खास एलची मोटरकारमे नकोदर रवाना हो गया।

जिन लोगोने इससे पहिले 'जोश'को नही देखा था, उन्हे कुछ देरके लिए जरूर हैरत हुई होगी। दरगियाने कदका एक सीधा-सादा अधेड़ आदमी। मामूली कपडेकी पगडी कमीज और धोती' देशी जूतियाँ। लिबासकी वजअ-कतअ खास देहाती। शाइराना बनाव न उस्तादाना तमकनत। न कोई नकीब न हाशियाबरदार। सरापा-खलूसो-इन्किसार अन्दाज (पूर्ण रूपेण प्यार भरा और नम्रतापूर्ण व्यवहार) में देहातियो की-सी इखलास भरी सादगी और बे तकल्लुफी। होठोपर हल्का-सा मतानत आमेज तबस्सुम (गम्भीरता भरी मुसकान)। सूरत-शक्ल और लिबासको देखो तो ज्यादा-से-ज्यादा एक सफेद-पोश आदमी कह सके। हर शख्शसे यू मिलता है जैसे खुद उसे भी अपने मर्त्तबेका इल्म या एहसास (ज्ञान) नही। भला इस वजअ-कतअ और अन्दाजमे नावाकिफ़ लोगोको उस इश्तियाक (चाहत) और तारीफो-तोसीफ (प्रशसा और गुणो) का जवाज़ (औचित्य) कहाँ नजर आ सकता था ? जिसका इजहार सर

अब्दुल कादिरने फर्माया था। लेकिन उन्हे कुछ ज्यादा इन्तजार न करना पड़ा। मुशाअ़रा करीबुल इख़्तताम (समाप्तिके करीब) था। दो-चार शाइर बाकी रह गये थे। वे पढ चुके तो 'जोश' साहबसे दरख्वास्त की गई। यह मुशाअ़रा मुसल्लिम-उल-सबूत असातिजा (प्रामाणिक उस्तादों) और मशहूरो-मकबूल शुअराकी तादादके अलावा कलामकी बुलन्दी और उम्दगीके एतबारसे भी एक मेयारी इज्तिमाअ़ (उच्च श्रेणीके उपस्थित समूह) का था। एक ही महफिलमे इस पायेका इतना कलाम आजकल तो कुजा, उन दिनों भी बहुत कम सुननेमे आता था। बस इसमे जरा भी मुबालेगा नही कि जब 'जोश' शेर पढनेके लिए उठे तो यू मालूम होता था कि सामईन (श्रोता) न सिर्फ दादो-तौसीफ (प्रशसात्मक शब्दों) के अल्फाजका जखीरा (शब्दो का भण्डार) खत्म कर चुके है, बल्कि वाह-वा और सुबहान-अल्लाहके नारे लगाते-लगाते खुद भी शल (निश्चेष्ट) हो गये है। इस पर तुर्रा यह कि आनेवाले शाइरकी वजअ़-कितअ भी कुछ तवक़्क़ुअ खजे (आशापूर्ण) न थी। लेकिन आपने एक रुबाई ही पढ़ी थी कि सब दोबारा सम्भलके बैठ गये. और गजल शुरू होने तक तो मुशाअ़रेमे गोया एक नई रूह, एक नया जोश और उसके साथ एक——नई कूव्वत पैदा हो गई। अब वह सीधा-सादा मिस्कीन-(भोली-भाली) सूरत और मुनकसिरुल-मिजाज (नम्र स्वभाव) शाइर मुमलिकते-सुखनका पुर-जलाल माहबे-मितवन (कविता-साम्राज्यका बा-रोब बादशाह) नजर आ रहा था। देहाती सादगीका मुनहनी-सा मुजस्सिमा (छोटे-से आकार-वाला) नैसताने-शेर-(कविता-कानन) मे विफरे हुए शेरकी तरह गूज रहा था। एक क़स्बाती स्कूलका मुदर्रिस (कस्बेके स्कूलका मास्टर) परवाजे-तखैय्युल और कमाले-फन (कल्पनाओकी उड़ान और कलाके चमत्कार) के वह करिश्मे दिखा रहा था कि बड़े-बड़े उस्ताद बेखुदीके आलममे झूम रहे थे। पजाबका एक देहाती कौसर (जन्नती नदी) मे धुली हुई टकसाली जबानमे फसाहतो-बलागत (खुशबयानी, साफ, सरल और

भावपूर्ण उच्चकलाम) के दरिया बहा रहा था। जिसपर देहली और लखनऊवाले भी रश्क करें[1]।"

'असद' मुलतानीके शब्दोंमें—"जोशके यहाँ कोई खास निजामे-फिक्र (व्यवस्थित विचार-धारा) या पैगामे-हयात (जीवन-संदेश) नहीं। वे न शाइरे-इन्किलाब (युगपरिवर्त्तनकारी) हैं, न शाइरे-जमूद, न शाइरे तामीर हैं न शाइरे-तखरीब (विध्वंसकारी) बस शाइर हैं, सिर्फ शाइर। पहलूमें एक हस्सास दिल (भावुक हृदय) रखते हैं, और मुंहमें एक सुलझी हुई जबान। जिस बातमें मुतअस्सिर (प्रभावित) होते हैं, सीधे-साधे अल्फाज और दिलनशी अन्दाजमें शेरमें ढाल देते हैं। उन्होंने अपने लिए कोई नया असलूबे-सुखन (नवीन ढंग) नहीं निकाला। लेकिन यही जौके-शेरी (कविता-अभिरुचि) के साथ जबानके गहरे मुताले (गम्भीर अध्ययन) और उसूले-फन (छन्द-शास्त्र) की पूरी पाबन्दीसे उन्होंने रस्मी शाइरीके अन्दर अपने लिए एक इन्फरादी रंग (पृथक ढंग) पैदा कर लिया है। उनके यहाँ अल्फाजकी जाहिरी शानो-शोकत, बयानकी ममनूई (बनावटी) रंगीनी और मजामीनकी पेचीदगी मुतलक़ (लेशमात्र) नहीं पाई जाती। बल्कि खयालकी लताफत और जबानकी सलासत (भाषाका प्रवाह) उनकी शाइरीकी नुमायां खूसूसियत है।"[2]

शाइराना कमालके साथ-साथ आपका पजावके अच्छे शातिरोंमें शुमार है। जब खेलते हैं तो उसमें लीन हो जाते हैं। अक्सर ऐसा भी हुआ है कि आप सुबह-से-सुबह तक जमे रहे हैं। उठनेका मन नहीं हुआ है, और बे मनसे उठे भी हैं तो इस आशकासे कि लोग क्या कहेंगे? सुना है आपने शतरंजके मुश्किल-मुश्किल नक़्शोंके हल भी पुस्तक रूपमें दिये हैं। काश, उन्हें आप प्रकाशित करा दें तो नए खिलाड़ियोंको उससे बिशेष लाभ होगा। कभी-कभी यह शौक शाइरीमें भी जलवागर हो उठता है।

[1]मुकदमा 'जुनूनो-होश', पृ० ७-९ [2]आजकल उर्दू, १५ मार्च १९४५ ई०, पृ० ५।

द्वितीय महायुद्धमे हिटलर जिस तेजीसे देशोको रौन्दता हुआ आगे बढ़ रहा था, उससे प्रतीत होता था कि वह बहुत शीघ्र विश्व-विजय करके रहेगा। लेकिन युद्धका कुछ ऐसा नक्शा पल्टा कि विश्व-विजय तो दर-किनार हिटलर स्वय अपनेको न बचा सका। विश्व-विजयकी सम्भावना तनिक-सी हेर-फेरमे पराजयमे बदल गई। आत्म-हत्यासे पूर्व हिटलरके मनमे इसी तरहके भाव सम्भवत उदित हुए होगे—

समझते खूब थे हम, शातिरे-गर्दूं की[1] चालोंको।
मगर नक़शा पड़ा ऐसा कि बाजी हार बैठे हम॥

शतरजका पैदल सब मुहरोमे घटिया मर्त्तबा रखता है। वह फ़ौजके पैदल सिपाहीकी तरह आगे बढता जाता है, पीछे नही हट सकता। इसी तरह बहुत-से ऐसे इन्सान है, जो अपने वतनसे निकलनेके बाद वापिस नहीं आ पाते। इसी भावको आपने यू व्यक्त किया है—

मुझसे जांबाजको ग़ुरबत[2] है, बिसाते-शतरंज।
जो न पल्टे कभी वापिस वह पियादा हूँ मै॥

दो शेर और—

'जोश'! बिसाते-शौकमें मर्ग[3] है, अस्ल जिन्दगी।
बाजिए-इश्क जीत ले, बाजिए-उम्र हारकर॥

शिकस्त-अंजाम[4] क़ैसो-कोहकन ही को नहीं देखा।
बिसाते-इश्क़ो-उल्फ़त पर तो हर शातिरको मात है॥

आप सन्तोषी और नम्र प्रकृतिके है। अपनी आवश्यकताएं इतनी सीमित की हुई है कि जो थोडी-सी आमदनी है, उसीमे निराकुलतापूर्वक

---

[1]आस्मान रूपी शातिरकी; [2]सफ़र, परदेशमे निवास; [3]मृत्यु; [4]हारका परिणाम।

आप सन्तोषी और नम्र प्रकृतिके है । अपनी आवश्यकताएँ इतनी सीमित की हुई है कि जो थोडी-सी आमदनी है, उसीमे निराकुलतापूर्वक जीवन व्यतीत करते है । गुणियोका यथेष्ट सम्मान करते है । अपनोसे छोटोकी सराहना करके उनका उत्साह बढ़ाते हैं, किन्तु खुशामद और चापलूसीसे कोसो दूर भागते है । सेवाभावी, परोपकारी स्वभावके है । मित्रता सदैव निभाते है, परन्तु वैर-भावका अकुर अपने हृदयमें पनपने नही देते । सरल प्रकृतिके होते हुए भी बहुत बडे स्वाभिमानी हैं । स्वयं फ़र्माते है—

आप क्या पूछते है क़िस्मते-खुद्दारि-ए-दिल[1] ।
सारी दुनियाकी भी दौलत मुझे मंजूर नहीं ।।

संतोषी स्वभाव—

वह गदा[2] हूँ ताजे-शाहीकी[3] हविस[4] तो दर किनार ।
सर छुपानेको जगह ढूढूँ हुमाको[5] देखकर ।।

किसीका एहसान क्यो उठाया जाय ?

मैं वोह हूँ बार फ़लकका कभी चलने ही न दूँ ।
उसका झुकना मेरी गर्दनको झुका देता है ।।

अब दुआसे भी हज़र[6] है मुझको ।
क्या समझ लें वोह उसे क्या जाने ।।

नम्र स्वभाव—

ख़ाकसारीने[7] मुझे पाक[8] बनाया ऐ 'जोश' !
एक भी दाग़े-रऊनत[9] मेरे दामनमें नहीं ।।

---

[1]मनके स्वाभिमानका भाग्य ; [2]भिक्षुक, अपरिगृही ; [3]बादशाहके ताजकी ; [4]तृष्णा ; [5]वह पक्षी जो किसीके सर पै बैठ जाये तो वह बादशाह बन जाये ; [6]परहेज ; [7]सेवाभाव, नम्रस्वभाव ने ; [8]पवित्र ; [9]ढोगका दाग ।

वाणीके मधुर हैं, परन्तु स्पष्ट वक्ता भी है। सभीसे सहृदयताका व्यवहार करते है, परन्तु अहंकारीके मुँह पर ही साफ-साफ कह देते है। मनमें नही रखते। अपने इस स्वभावके बारे में फर्माते है—

ज़माना साज़ियोंसे बन्दापरवर ! हमको नफ़रत है।
भरी महफ़िलमें मुँहपर साफ़ कह देनेकी आदत है॥

इकबालका रग—

कही-कही आपका कलाम 'इकबाल' के रगमे डूबा नजर आता है—

फ़नामे[१] बर्क़-सोज़ाँका[२] असर पैदा कर ऐ बुलबुल !
यह आहें कोई आहें है, यह नाले, कोई नाले है ?

हयाते-जाविदाँ[३] आई है, जाँ-बाज़ोंके[४] हिस्सेमे।
हमेशा जीने वाले है, यह जितने मरने वाले है॥

मुहब्बतमे गिराँ-पा हो न इतना ख़ौफ़े-रहज़नसे[५]।
जो इस रस्तेमे लुट जाये, बड़ी तक़दीर वाले हैं॥

यही इल्तिजा[६] है कि ऐ ख़ुदा ! मुझे हश्रसे तू मुआफ़ रख।
वह तेरे हुजूरमे आये क्या, जो किसीको मुंह न दिखा सके॥

कौन जाने, कौन समझे, चाकदामानीका[७] राज़[८]।
तुममें ऐ अहले-बसीरत[९] ! कोई दीवाना भी है ?

[१]मिटने मे, मृत्यु मे ; [२]बिजलीकी तडपका ; [३]अमर जिन्दगी, [४]प्राणो पर खेलनेवालोके ; [५]लुटेरोंके भयसे ; [६]प्रार्थना ; [७]फटे हुए गरेबाँकी ; [८]भेद; [९]ज्ञानियो।

कहूँ शरहे-बयां[1] क्योंकर ख़िरदमन्दोंकी[2] महफ़िलमें ।
यह वोह नुक्ते हैं जिनको अहले-दानिश[3] कम समझते हैं ।।
हुए जो ख़ूगरे-ग़म[4], ऐशका उनपर असर क्या हो ?
ख़ुशीको वह ख़ुशी समझें, जो ग़मको ग़म समझते हैं ।।

तेवर--

यह तो ऐ शर्ते-मुहब्बत ! कोई इन्साफ़ नहीं ।
हम तमन्ना तो करें, अर्जे-तमन्ना न करें !

मुहब्बत कहाँ यह तो बेचारगी है, सितम भी सहें फिर करम उसको समझें ।
यह जब्र इसलिए कर लिया है गवारा कि इसके सिवा कोई चारा नहीं था ।।

रजो-गममें न आप आहो-जारी करते हैं न किसीका शिकवा-गिला, बल्कि अपनेको यूं तसल्ली देते हैं--

ऐशमें डूबे हुए दिलका ठिकाना ही कहाँ ?
यह भी हिकमत थी कि नाकामे-तमन्ना कर दिया ।।*

विशाल हृदयता--

बहुत-से लोग सकीर्णतामें अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं । उनको विस्तृत क्षेत्रमें जानेकी प्रेरणा यूं देते हैं--

[1]अपनी बातका भावार्थ ; [2]अक्लमन्दोंमें ; [3]ज्ञानी ; [4]दु ख उठानेके अभ्यस्त ।

*इसी मजमूनमें फानी बदायूनीने भी क्या खूब फ़र्माया है--

मेरी हविसको ऐशे-दोआलम भी था क़बूल ।
तेरा करम कि तूने दिया दिल दुःखा हुआ ।।

हरमसे[1] कुछ आगे बढ़े हम तो देखा ।
जबींके[2] लिए आस्तां[3] और भी हैं ॥

सितारोंके आगे जहाँ और भी है ।
अभी इश्कके इम्तिहां और भी हैं ॥

वस्वसा[4] कोई न रह जाए दिले-पुरशौक़में ।
शोरिशे-दरिया[5] भी हो, ख़ामोशिए-सेहरा[6] भी हो ॥

मुहावरे—

उर्दू-साहित्यिक गद्य-पद्यमें मुहावरोका उपयोग बहुत सुरुचिपूर्ण ढंगसे करते हैं । इस प्रथाका प्रचलन इतना अधिक हुआ है कि बहुत-से शाइरोंने केवल मुहावरे बाँधनेके लिए शेर गढे हैं । परिणाम इसका यह हुआ कि उनका ऐसा कलाम केवल कारीगरीका चमत्कार बनकर रह गया । उसमें प्राण-प्रतिष्ठा न हो सकी, जो शाइरीके लिए आवश्यक है । बेजान शाइरीका क्या मूल्य ?

हज़रत 'जोश' 'दाग़' स्कूलके स्नातक हैं । अतः आपकी शाइरीमें भी सुलझी हुई और टकसाली भाषा जलवागर है । मुहावरोका समावेश भी स्वाभाविक और अनायास हुआ है । चन्द नमूने देखिए—

दौरे-ख़िज़ांसे[7] सूखके काँटा हुए हैं फूल ।
इक ख़ारे-ज़ार[8] सहने-गुलिस्तां[9] है आज कल ॥

अंजामे-वफ़ा तो ज़ाहिर है, अंजामे-वफ़ा पर बहस न कर ।
हर साँस ख़बर देती है तुझे हस्तीके हवा हो जाने की ॥

---

[1]मस्जिदमें ; [2]मस्तकके ; [3]चौखट , उपास्य स्थान ; [4]अरमान ; [5]नदीका गर्जन ; [6]जंगलकी शान्ति ; [7]पतझडमें ; [8]काँटोंका क्षेत्र ; [9]उद्यान ।

जल बुझा वोह शमअपर, मैं मर मिटा इस रश्कमें[1] ।
मौत परवानेकी[2] थी या मौतका परवाना[3] था ॥

मौत ही इन्सानकी दुश्मन नहीं ।
ज़िन्दगी भी जान लेकर जायगी ॥

उम्मीद पै मौक़ूफ़ है जां-बाज़िए-उल्फ़त ।
दिल बैठ गया हो तो सितम उठ नहीं सकता ॥

दिनको तारे तो मुक़द्दरने दिखाये मुझको ।
फिर भी आती है सदाएँ "अभी देखा क्या है" ?

इक फ़क़त मैं ही तो नाकाम न आया जालिम !
ख़ाक उड़ाती तेरे कूचेसे सबा[4] भी आई ॥

शब्दोंका उलट-फेर—

मुझसे किस बातमें उलझेंगे हरीफ़ाने-सुख़न[5] ?
मैंने उलझा हुआ मज़मून कभी बाँधा ही नहीं ॥

जुज़[6] अश्को-आह तुझमें है क्या ऐ दयारे-इश्क़ !
बेज़ार हो गये तेरी आबो-हवासे हम ॥

हम और दर्दे-दिलके लिए चारा साज़ियाँ[7] ।
यह रोग अपने जीको लगाया नहीं 'हुनूज़'[8] ॥

इशारा तक न लिक्खा उसने कोई रब्ते-बाहमका[9] ।
बहुत बेरब्त है ख़तका जवाब अव्वलसे आख़िर तक ॥

---

[1]ईर्ष्यामें ; [2]पतंगेकी ; [3]मृत्युका वारट ; [4]हवा ; [5]साहित्यिक स्पर्द्धी ; [6]सिवा ; [7]इलाज ; [8]अभीतक ; [9]परस्परके सम्बन्धका ।

मयस्सर ख़ाक होता ज़िन्दगीमें लुत्फ़े-तनहाई ।
रहे दो-दो फ़रिश्ते[1] हम-रकाब अव्वलसे आख़िर तक ।।

अक़्लसे क्या पूछता, आफ़तको सरपर देखकर ।
वह तो ख़ुद चकरा गई, क़िस्मतका चक्कर देखकर ।।

याद रखना तो आप भूल गये ।
भूल जाना मगर है अब तक याद ।।

व्यंग्य—

मिर्ज़ा 'ग़ालिब' अपने तंज़िया (व्यंग्यात्मक) कलामके लिए प्रसिद्ध हैं । 'ग़ालिब' की तरह अन्य शाइरोंने भी व्यंग्य-पूर्ण शेर कहे हैं । लेकिन हर-एक शाइर इस क्षेत्रमें सफल नहीं हो सकता । व्यंग्य वह नहीं जो दिलको चुभे । व्यंग्यकी ख़ूबी यह है कि जिसपर किया गया हो, वह भी लुत्फ-अन्दोज़ हो और सुननेवाले के दिलको कचोटे नहीं, सिर्फ गुदगुदाये । हज़रत 'जोश'के कुछ शेर इसी ढगके मुलाहिज़ा हों—

नक़ली नमाज़ियोंका कैसा सजीव चित्रण हुआ है—

क़ायल ख़ुदाका यूँ तो है, सारा ज़माना 'जोश' !
कितना है एहतेरामे-ख़ुदा[1] कुछ न पूछिए ।।

मर्दुम-शुमारीमें आदमियोंकी संख्या बढ़ रही है, परन्तु आदमीयत दिन-पर-दिन कम हो रही है—

आदमी है शुमारसे बाहर ।
क़हत[2] है फिर भी आदमीयतका ।।

गुणियोंको भी मूर्खोंके सामने झुकना पड़ता है—

---

[1]ईश्वरमें विश्वास ; [2]अकाल ; अभाव ।

हर नाअहलके[1] क़दमोंपर हम झुककर सिज़्दा करते हैं।
इक कम्बख़्त हविसकी[2] ख़ातिर जो न किया था करते हैं॥

ईश्वर ही की सम्मतिसे जब सब कुछ होता है, उसकी मर्ज़ीके बिना जब पत्ता भी नहीं हिल सकता; तब ईश्वर-द्वारा नाच नचाये जाने पर मनुष्य अपराधी क्यो ?

आमालकी[3] पुरसिश[4] न कर ऐ दावरे-महशर[5] !
मजबूर तो मुख़्तार कभी हो नहीं सकता॥

मुझ पै दुनियामे क़यामत रही बरपा हर रोज़।
और ऐ दावरे महशर ! यह क़यामत कैसी ?

ईश्वर है तो फिर ओझल क्यो ?

इक जहाँ हो जिसका मुश्ताके-जमाल[6] ।
सख़्त हैरत है वह क्यों रूपोश[7] है ?

मन्दिर-मस्जिदके ठेकेदारो से—

कुछ जज़्बए-सादिक़[8] हो, कुछ इख़लासो-इरादत[9] ।
इससे हमें क्या बहस वोह बुत है कि खुदा है ?

जन्नतसे बेजारी—

शुक्रे-नेमतके[10] लिए खुल्दमें[11] आना ही पड़ा।
वर्ना इस गुलशने-बे-कैफ़में[12] रक्खा क्या है ?

---

[1]अज्ञानीके ; [2]स्वार्थकी ; [3]किये हुए कर्मोकी ; [4]पूछताछ ; [5]खुदा; [6]सौन्दर्य देखनेका उत्सुक ; [7]छुपा हुआ . [8]सत्य भावना, शुद्ध मान्यता ; [9]प्रेम , [10]धन्यवाद देनेके लिए आभार-प्रदर्शनके ; [11]जन्नतमें ; [12]नीरस ।

हू[1]का आ़लम हरममें है ऐ शेख़ !
हम तो दो दिन यहाँ बसर न करें ॥

ख़ुदाके इन्साफ पर—

मुमकिन है फ़रिश्तोंसे कोई सह्व[2] हुआ हो ।
मैं इतना गुनहगार कभी हो नहीं सकता ॥*

यह अदा हुई कि जफ़ा हुई, यह करम हुआ कि सजा हुई ।
उसे शौक़े-दीद अ़ता किया जो निगहकी ताब न ला सके ॥

चन्द और—

हाथसे कासा-गदाईका[3] न छूटा एक दिन ।
और मुँहसे ताजे-शाहीके हैं दावेदार हम ॥

आइए हर नौजवाँके दोशपर[4] ।
तन्दुरुस्तीका जनाजा देखिए ॥
दुश्मनोंकी दुश्मनीका जिक्र क्या ?
दोस्तोंमें जौरे-बेजा देखिए ॥

मधुशाला —

मधुशालामें 'जोश' जैसे सदाचारी-सयमी व्यक्ति क्या जाते ? आपने तो उसे छूनेकी भी इज्जत न बख्शी । मगर जाहिदे-खुश्क कभी न बने ।

---

[1]सन्नाटेका वातावरण, अल्लाह हू अल्लाह हू कहने वालोंका शोर ; [2]भूल , [3]भिक्षा-पात्र , [4]कन्धे पर ।

*पकड़े जाते हैं फ़रिश्तोंके लिखेपर नाहक़ ।
आदमी कोई हमारा दमे-तहरीर भी था ?
—ग़ालिब

उनके सत्सगसे शेख़ और रिन्द, छोटे और बडे सभी लाभान्वित होते रहे। पी कभी नही, परन्तु दिलको कभी शुष्क एव नीरस नही होने दिया। क्या खूब फर्माया है—

आता है जज्बे-दिलको, वह अन्दाज़े-मैकशी।
रिन्दोंमें रिन्द भी रहें दामन भी तर न हो॥

बात रिन्दीकी मुझको आती है।
पारसाईकी पारसा जाने॥

यह फ़र्ज़े-मैकशी[1] कोई देखे कि बज्ममें[2]।
ग़ुस्सा भी मुहतसिबका[3] पिये जा रहा हूँ मै॥

दादके क़ाबिल है उसकी मसलेहत-अन्देशियाँ।
जिसने तौबा तोड़ डाली हो घटाको देखकर॥

हश्रमे था नामए-आमाल[4] सबके सामने।
मेरे हाथोंमें मेरा टूटा हुआ पैमाना था॥

वही रिन्दी है जिसके साथ शाने-पारसाई है।
वह मै क्या दामने-तक्वामें[5] जो छानी नहीं जाती॥

शेख़-वाइज—

ऐ शेख़! अगर ख़ुल्दकी[6] तारीफ़ यही है?
मै इसका तलबगार[7] कभी हो नहीं सकता॥

---

[1]मद्यपानका धर्म, [2]महफिलमे; [3]मजहबके खिलाफ काम करनेमे जो रोके; [4]कर्मोंकी तालिका; [5]सदाचार रूपी वस्त्रमें; [6]जन्नतकी; [7]इच्छुक।

यह जवानी ? यह तर्के-सुहबते-मै !
आपकी अक़्लको हुआ क्या है ?

आदमी तो क्या फ़रिश्तेकी नज़र ।
आपकी सूरतसे धोका खाएगी ॥

ऐ शेख़ ! किस जगहको तेरा मुक़ाम समझे ?
तू कुछ ज़मीन पर है, कुछ आस्मान पर है ॥

कुछ और फ़ायदा न सही दिल्लगी तो है ।
बे-कैफ़ियोंमें[1] सुहबते-वाइज़ बुरी नहीं ॥

ज़ाहिदके क़स्रे-ज़ुह्दकी[2] बुनियाद है यही ।
मस्जिद बहुत क़रीब थी, मैख़ाना दूर था ॥

बेचनेके लिए होती है, अगर ताइते-हक़ ।
शेख़ साहब ! यह तिजारत मुझे मंज़ूर नहीं ॥

प्रेरणात्मक—

है अगर राहे-तलब तारीक तो परवा नहीं ।
मशअ़लें रोशन करेंगी बिजलियाँ मेरे लिए ॥

'जोश' के यहाँ—उरियाँ, ज़ुल्फ़, कमर, खाल, खत, माँग, चाहे-ज़न-खदाँ, दुपट्टा, अंगिया, जोबन, जैसे अश्लीलता, उभारनेवाले शेर नहीं मिलेंगे ।

वतन परस्ती—

ऐ 'जोश' ! क्या ग़रज़ मुझे हूरो-क़सूरसे ।
मेरा वतन मेरे लिए जन्नतसे कम नहीं ॥

---

[1]नीरस या ख़ाली बैठे रहनेसे तो ; [2]परहेजकी ।

सूफ़ियाना कलाम--

नज़र-नज़रमें तमाशे दिखा दिये ऐसे।
मुझे भी एक तमाशा बना गया कोई॥
दिखाके शोख़निगाहीका जलवए-बेताब।
मेरी नज़रको तड़पना सिखा गया कोई॥
नमूदे-हुस्नको[1] ख़िल्वतमें[2] था क़रार कहाँ?
तअय्युनातकी[3] दुनियामें आ गया कोई॥
दिया वोह दर्द कि थी जिसमें एक लज़्ज़ते-ख़ास।
सितममें शाने-करम[4] भी दिखा गया कोई॥
यह मोअ़जिज़ा[5] है कि ज़िन्दा हैं अब मेरे अरमाँ।
मरे हुओंको भी जीना सिखा गया कोई॥
नक़ाब रुख़से उठा दी मगर कमाल यह है।
मेरी नज़रका भी पर्दा उठा गया कोई॥

'जोश' साहबके कलामका नवीन और ताज़ा सकलन--'जुनूनो-होश' का प्रथम संस्करण हमारे सामने है। इसमे २० × ३० अठपेजी आकारके २४० पृष्ठोंमें १३८ गज़लें उस्तादानारगकी, इब्तिदाई दौरकी ७० गज़लोंका सक्षिप्त संकलन, ३१ फुटकर और ४४ जिन्दा दिलीके शेर हैं। पृ० १६९ से २४० तक नज़्म, रुबाई, नौहे, तारीख़ वगैरह है। मुद्रण तिथि नही है। इस नये मजमूएमें पूर्व प्रकाशित 'बादए-सरजोश' का भी कलाम दे दिया गया है। हमने शेरो-सुखनके प्रथम संस्करणमें 'बाद-ए-सरजोश' से कलाम चुना था, किन्तु द्वितीय संस्करणके लिए नये सिरेसे 'जुनूनो-होश' से चुनकर दे रहे है--

---

[1]रूपके जलवेको; [2]एकान्तमें; [3]आलोचकोकी; [4]दयालुताकी शान [5]जादू।

चारए-हाले-ज़ार[1] क्या मानी ?
जबमें इख़्तियार क्या मानी ?
राहतो-रंज क्यों है दोश-ब-दोश[2] ?
गुलके[3] पहलूमे ख़ार[4] क्या मानी ?
वोह करमकर[5] जिसे दवाम[6] भी हो,
ज़िन्दगीए-मुस्तआ़र[7] क्या मानी ?
कोशिशे-तर्के-इश्क़[8] है बेसूद[9],
इस नशेका उतार क्या मानी ?
किस गुनहगारको यक़ीन नहीं ?
इतने क़ौलो-क़रार क्या मानी ?
जन्नत इक चीज़ ही सही लेकिन,
हश्र तक इन्तिज़ार क्या मानी ?
क्यों गिने जाते हैं गुनाह मेरे
अनगिनतका शुमार क्या मानी ?

दिल पै जो गुज़री कोई क्या जाने।
यह तो हम जानें या खुदा जाने ॥
दिलको कलतक तो चैन हासिल था।
आज क्या हो गया खुदा जाने ?
बादा नोशोंका[10] हश्र[11] क्या होगा।
मुझ बला-नोशकी बला जाने ॥

---

[1]आन्तरिक बातोके इलाजके ; [2]सुख-दुःख क्यों कन्धे-से-कन्धा मिलाये हुए है ; [3]फूलके ; [4]काँटा ; [5]कृपा , [6]स्थायित्व, अमरत्व ; [7]माँगी हुई, उधार ली हुई ; [8]इश्क छोड़नेका प्रयत्न ; [9]व्यर्थ ; [10]मद्यपोका ; [11]परिणाम।

तुझको अपनी ख़बर नहीं ऐ 'जोश'!
तू ख़ुदाईके राज़[1] क्या जाने ;

चुनेंगे एक मुश्तीको वोह हर सितमके लिए।
ख़ता करे नज़रे-इन्तिख़ाब[2] क्या मानी!
ग़रज़ ही क्या थी तमाशाए-देहरसे[3] तुमको।
अब आये हो तो यह रुख़ पर नक़ाब, क्या मानी?
वक़ारे-मेहरो-वफ़ाको[4] तो सरनिगूं[5] न करो,
हर इक सवालका उल्टा जवाब क्या मानी?
मेरी नज़र ही से यह एहतियात[6] है वर्ना,
नक़ाबके लिए बन्दे-नक़ाब[7] क्या मानी?
बिसाते-देहर[8] उलटती है तो उलट जाये,
तेरे मिज़ाजमें हो इन्क़िलाब क्या मानी?
हदे-शुमारसे बाहर[9] है जब गुनाह मेरे।
हिसाबके लिए यौमे-हिसाब क्या मानी?
कोई बहाना बिगड़नेका चाहिए तुमको।
ज़रा-सी बात पर इतना अ़ताब[10] क्या मानी?

अदाए-नाज़[11] ही के मुख़्तलिफ़[12] यह दो करिश्मे[13] हैं।
तेरा दिलमें उतर जाना, मेरा दिलसे उतर जाना॥
मुहब्बतको हम इक दरियाए-बे-साहिल[14] समझते हैं।
किनारा, उसका गिरदाबे-बलामें[15] डूबकर जाना॥

[1]सृष्टिके भेद ; [2]पारखी नजर ; [3]दुनियाको तमाशा दिखानेसे ; [4]नेकी-भलाईकी प्रतिष्ठाका ; [5]सर नीचा; [6]न देखनेकी सावधानी; [7]नक़ाबका बँधा होना ; [8]संसार रूपी शतरंजी बिसात ; [9]गिनतीसे बाहर ; असंख्य ; [10]क्रोध ; [11]प्रेयसीके हाव-भावोके ; [12]भिन्न-भिन्न ; [13]कारनामे ; [14]किनारा रहित दरिया ; [15]आफतों रूपी भँवरमें ।

न जाना और कुछ ऐ 'जोश'! हमने शेर कह-कहकर।
यही जाना कि अपने ऐबको भी इक हुनर जाना॥

कभी आई है, चमनमें तो किया है तवाफ़[1] इसीका।
रही बर्क़को[2] अ़कीदत[3] मेरी शाख़े-आशियाँसे[4]॥
वोह ग़लत भी कुछ कहेंगे, तो वही बजा[5] रहेगा।
जो निकल गया ज़बाँसे, वह निकल गया ज़बाँसे॥

उनसे बेकार तो बैठा नहीं जाता ऐ 'जोश'!
जब वफ़ा उनको न आये तो जफ़ा भी न करें?

लबे-इज़हारकी ज़रूरत क्या।
आप हूँ अपने दर्दकी फ़रियाद॥

हूरो-ग़िल्माँसे मुहब्बत मुझे मंज़ूर नहीं।
तेरा कूचा हो तो जन्नत मुझे मंज़ूर नहीं॥
क्यों मेरे जज़्बए-मासूमको देता है फ़रेब!
साफ़ कह दे कि मुहब्बत मुझे मंज़ूर नहीं॥
पारसाई पै अगर ज़िक्रे-ख़ुदा है मौक़ूफ़।
ऐसी बे क़ैफ़ इबादत मुझे मंज़ूर नहीं॥
कोहे-ग़म सर पै उठाना तो है मंज़ूर मगर।
आपका बारे-अमानत मुझे मंज़ूर नहीं॥
तर्के-दुनिया भी करूँ, तर्के-तमन्ना भी करूँ।
तौबा-तौबा यह मुसीबत मुझे मंज़ूर नहीं॥
बेचनेके लिए होती है अगर ताअ़ते-हक़।
शेख़ साहब! यह तिजारत मुझे मंज़ूर नहीं॥

[1]परिक्रमा, [2]बिजलीको, [3]श्रद्धा, [4]घोंसलेकी टहनीसे, [5]उचित।

शुक्रे-सितम पै और हुई बदगुमानियाँ।
कहते है वोह कि "यह भी शिकायतसे कम नहीं" ॥
अपनोंकी दोस्तीने सिखाया है यह सबक़।
ग़ैरोंकी दुश्मनी भी इनायतसे कम नहीं ॥

रंजो-ग़म, दर्दो-अलम, यास, तमन्ना, हसरत ।
इक तिरी यादके होनेसे है, क्या-क्या दिलमे ॥

मेरी शोख़ तबईका एहसान मानो ।
तुम्हें आगईं शोख़ियाँ आते-आते ॥
मुझे रातभर याद किसने किया है ।
सहर[1] हो गई हिच्कियाँ आते-आते ॥*

इतना गुमराह न कर नासिहे-नादाँ[2] ! मुझको।
बढ़के ईमाँसे है, वह दुश्मने-ईमाँ[3] मुझको ॥
घर बयाबाँमें[4] बनाया तो यह रुतबा पाया।
सर पै देते है जगह ख़ारे-मुग़ीलां[5] मुझको ॥
आज वोह शाने-करीमी[6] हैं दिखाने वाले।
कहीं रुसवा[7] न करे तंगिये-दामाँ[8] मुझको ॥

[1]सवेरा, सुबह , [2]मूर्ख उपदेशक , [3]ईमानका दुश्मन, प्रेयसी ; [4]उजाड जगलमे ; [5]कीकरके काँटे ; [6]ईश्वरीय कृपालुताका रूप ; [7]बदनाम, , [8]मेरा ओछा दामन (कही उनके दानके लिए मेरा बस्त्र ही छोटा न पड़ जाये) ।

*इसी क़ाफ़िये-रदीफमें 'जोश' साहबके उस्ताद मिर्जा 'दाग़' ने कितना चुटीला शेर कहा है—

मुझे याद करनेसे यह मुद्दआ था ।
निकल जाये दम हिच्कियाँ आते-आते ॥

उसके चक्करमें दुबारा तो मैं आनेका नहीं।
ढूँढती फिरती है क्यों गर्दिशे-दौराँ[1] मुझको ?

अपनी नाकाम-मुहब्बतपै हँसोगे कब तक ?
दर्से-इबरत[2] भी है, वह महज़ तमाशा ही नहीं ॥

जीतेजी मैं किस तरह आज़ाद हूँ।
आप अपनी क़ैदकी मीआ़द हूँ ॥
बूए-गुल[3] बनकर हुआ क्या फ़ाएदा ?
हाय ! अब भी ख़ानुमाँ[4] -बरबाद हूँ ॥
और भी इस शर्मने मारा मुझे।
आपका बन्दा हूँ, फिर नाशाद[5] हूँ ॥*

इस वहमसे कि नींदमें आये न कुछ ख़लल।
अहबाब ज़ेरे-ख़ाक सुलाकर चले गये ॥
मेरी चिराग़े-उम्रसे रौशन थी बज़्मे-नाज़।
सूझी यह क्या तुम्हें कि बुझाकर चले गये ॥
इक मैं कि इन्तिज़ारमें घड़ियाँ गिना करूँ।
इक तुम कि मुझसे आँख चुराकर चले गये ॥

अफ़सुर्दगीए-मआ़ल[6] है उनका हर इल्तिफ़ात[7] ।
जब आये दिलमें आग लगाकर चले गये ॥

---

[1]सासारिक आपत्तियाँ ; [2]नसीहतके सबक़के क़ाबिल , [3]फूलकी सुगन्ध ; [4]बेघर-बार ; [5]पीड़ित-बेचैन ; [6]रंजका कारण ; [7]महर्बानियाँ।

*ज़िंदगी अपनी जब इस शक्लसे गुज़री या रब !
हम भी क्या याद रखेंगे कि ख़ुदा रखते थे ॥

—ग़ालिब

शाकिर[1] हूँ तेरे हर्फ़े-तसल्लीका मैं लेकिन—
डर है मुझे बरबाद न करदे यह कहीं और॥
यह क्या कि सितम मुझपै तो ग़ैरों पै करम[2] हो।
इक फूलका हो रंग कहीं और कहीं और?

देखिए किस-किसका बाग़े-आर्ज़ू[3] पामाल[4] हो।
अपनी ज़िदपर आज वह महशर-ख़िराम[5] आ ही गया॥
मेरा शिकवा ही सही मेरी मज़म्मत ही सही।
ख़ुश हूँ मैं उनकी ज़बाँ पर मेरा नाम आ ही गया॥*
अक़्ल भी रखता था आंखें भी, परे-परवाज़ भी।
फिर यह क्या सूझी कि ताइर[6] ज़ेरे-दाम[7] आ ही गया॥
जिस जगह आकर फ़रिश्ते भी पिघल जाते हैं 'जोश'!
लीजिए हज़रत सँभालिए वह मुक़ाम आ ही गया॥

इतनी ख़ुशी हुई है तेरे इल्तिफ़ातकी[8]।
उम्रे-गुज़िश्ता[9] माँग रहे हैं, ख़ुदासे हम॥

एक भी पाया न राहतका मकाँ[10] मेरे लिए।
ठोकरें खाती फिरी उम्रे-रवाँ मेरे लिए॥

---

[1]आभारी; [2]कृपाभाव; [3]अभिलाषारूपी उद्यान; [4]नष्ट; [5]क़यामतकी चाल चलनेवाला; [6]परिन्दा; [7]जालमें, [8]कृपाओंकी; [9]बीती हुई उम्र; [10]सुख-चैनका स्थान।

वह दुश्मनी से देखते हैं, देखते तो हैं।
मैं शाद हूँ कि हूँ तो किसीकी निगाहमें॥

—आतिश

दाद देता हूँ तुझे या रब! मैं इस तख़्सीसकी।
मेहरबाँ सबके लिए, नामेहरबाँ मेरे लिए॥
मौसमे-गुल ही पै थी मौक़ूफ़ फ़िक्रे-आशियाँ।
अब तो हर उजड़ा चमन है आशियाँ मेरे लिए॥

तुझसे भी कुछ बढ़के थीं तेरी तमन्नाएँ हसीन।
सैकड़ों परियोंके झुरमुटमें तेरा दीवाना था॥
छीन ली क्यों आपने मुझसे मताए-सब्रो-होश[1]?
क्या सज़ाए-क़ैदे-ग़मके साथ कुछ जुर्माना था?

ला और भी इक जाम कि आई है घटाएँ।
ऐ साक़िये-मैख़ाना! तेरी दूर बलाएँ॥
दो-चार जगह ख़त्तेजलीमें[2] जो लिखी है।
वोह दफ़्तरे-इसियाँमें[3] है मेरी ही ख़ताएँ॥
क़ुमरीकी हो फ़रियाद कि बुलबुलका हो नग़मा।
दोनों है मेरे साज़े-मुहब्बतकी सदाएँ॥

ना शगुफ़्ता[4] ही रही दिलकी कली।
मौसमे-गुल[5] बारहा[6] आता रहा॥
जबसे तूने दुश्मनी की इख़्तियार।
एतबारे-दोस्ती जाता रहा॥
अपनी ही ज़िद की दिले-बेताबने।
उनके दर तक भी मैं समझाता रहा॥

[1]सब्र और होशकी दौलत, [2]बड़े-बड़े और आकर्षक अक्षरोंमें; [3]पापके कार्यालयमें, [4]अनखिली, [5]बहार, [6]बार-बार।

जौर[1] तो ऐ 'जोश'! आख़िर जौर थे।
लुत्फ़[2] भी उनका सितम ढाता रहा॥

अल्लाह! अल्लाह!! मंजरे-बर्क़े-जमाल[3]।
देखती है आँख, लब ख़ामोश है॥
आबे-कौसर[4] 'जोश' हो जिसपर फ़िदा[5]।
वह मेरा अश्के-नदामत[6] कोश है॥

हर-इक शमअ़ है, अंजुमनके लिए।
सब अहले-वतन हैं, वतनके लिए॥
न रख पास कौड़ी कफ़नके लिए।
ख़ज़ाने लुटा दे वतनके लिए॥
वही नब्ज़ है, जिन्दगीका निशां।
तड़पती रहे जो वतनके लिए॥
बतनकी ग़रीबीपै नालाँ न हो।
ख़ज़ाना है तू ख़ुद वतनके लिए॥
ढल आये हैं, आँखोंसे कुछ अश्के-ग़म।
यह मोती हैं तोहफ़ा वतनके लिए॥
मुसीबत है तेरा यह ख़्वाबे-गराँ।
न हो बारे-ख़ातिर वतनके लिए॥
इसी मौतमें है मसीहाइयाँ।
मुबारक है मरना वतनके लिए॥

[1]अत्याचार, [2]कृपा, आनन्द; [3]सौन्दर्यरूपी बिजलीका दृश्य; [4]बहिश्तमें बहनेवाली शराबकी नहरका मद्य; [5]न्योछावर; [6]प्रायश्चित्त रूपी आँसू।

अगर तेग़ रखते नहीं 'जोश' तुम।
क़लम हाथमें लो वतनके लिए॥

मंज़रे-तस्वीर[1] दर्दे-दिल मिटा सकता नहीं।
आइना पानी तो रखता है, पिला सकता नहीं॥
मेरी रुसवाईका[2] हाल[3] दावरे-महशर[4] न पूछ।
मैं भरी महफ़िलमें यह क़िस्सा सुना सकता नहीं॥

शबे-तारीके-ग़ममें[5] ज़िन्दगीका है यक़ीं किसको?
सफ़े-अंजुमको[6] हम अपनी सफ़े-मातम[7] समझते हैं॥
हमारे इश्क़ने मफ़हूम[8] लफ़्ज़ोंका बदल डाला।
कि जो दमपर बना दे हम उसे हमदम[9] समझते हैं॥

निगाहे-नाज़पं[10] क़ुर्बान[11] है ख़लक़त[12] कैसी!
हर जगह होती है इस चोरकी इज़्ज़त कैसी!
शोख़तबईने कहींका भी न रक्खा हमको।
दरे-दोज़ख़ भी रोके गये जन्नत कैसी?
जान देकर भी रसाईकी[13] नहीं है उम्मीद।
आह! दुशवार है यह मंज़िले-उल्फ़त कैसी!

मुझको इस तर्ज़े-तग़ाफ़ुलपं[14] ख़फ़ा होना था।
उल्टें तुम मुझपं ख़फ़ा हो यह तमाशा क्या है?

---

[1]चित्र अवलोकन; [2]बदनामीका, [3]कारण; [4]स्वर्गके न्यायाधीश, ख़ुदा; [5]आपदाकी अँधेरी रातमें, [6]सितारोंके समूहको, [7]शोक-सभा; [8]तात्पर्य; [9]जीवन-साथी; [10]प्रेयसीकी चितवनपर; [11]न्योछावर; [12]जनता; [13]पहुँचकी, मुलाक़ातकी; [14]उपेक्षाभावपर।

ख़ुदाको सौंप दो 'ऐ जोश' ! पुश्तारा गुनाहोंका।
चलोगे अपने सर पं रखके यह बारे-गरां[1] कब तक ?

ना-करदा गुनाहोंमें[2] गिरफ़्तार हुआ हूँ।
अब देखिए इस जुर्मकी मिलती है सज़ा क्या ?
महफ़िलसे निकालो हमें कुछ सोच-समझकर।
जब हम न रहे आपकी महफ़िलमें रहा क्या ?*
यह हर्फ़े-तसल्ली भी सितमसे नहीं ख़ाली।
कहते हैं—"सितम कोई हुआ भी तो हुआ क्या ?"
क्या दाद मुझे गिरयए-पैहमकी[3] मिली है।
कहते हैं कि —"आता है तुम्हें इसके सिवा क्या ?"

ख़्वाब समझो ख़याल राहतका।
ज़िन्दगी नाम है मुसीबतका॥
आहे-फ़रियाद नालओ-शेवन।
यही इन्आम है, मुहब्बतका॥
उन्स[4] हमको नहीं गुनाहों से।
इम्तिहां कर रहे हैं रहमतका[5]॥†

---

[1]भारी बोझ, [2] बिना-किये-हुए-पापोमे; [3]निरन्तर रोते रहनेकी; [4]लगाव; [5]दयासागर कहलाने वालेका।

*हमीं जब न होंगे तो क्या रंगे-महफ़िल ?
किसे देखकर आप शरमाइयेगा ?

—जिगर मुरादाबादी

†बनाकर फ़क़ीरोंका हम भेस 'ग़ालिब' !
तमाशाए-अहले-करम देखते हैं॥

—ग़ालिब

ख़ुदनुमाई तो उसकी फ़ितरत है।
हुस्न भूका नहीं है शुहरतका॥
राह नापैद, रहनुमा नापैद।
सामना है अजब मुसीबतका॥
बारे-उल्फ़त वोह क्या उठायेंगे?
उज्र है इसमें भी नज़ाक़तका॥
यही बरताव है तो जाता हूँ।
शुक्रिया आपकी इनायतका॥

इश्कने हमको ज़ियारत-गाहे-आलम[1] कर दिया।
गर्दे-ग़मसे हो गया तामीर[2] काबा एक और॥
बहरे-ग़मकी[3] गोद ख़ाली हमने देखी ही नहीं।
एक अगर मँझधारसे निकला, तो डूबा एक और॥

सितमको[4] भी करम[5] समझा, जफ़ाको[6] भी वफ़ा[7] समझा।
मगर उसपर भी उनकी चीने-पेशानी[8] नहीं जाती॥

तेरे कूचेमें रहकर मुझको मरमिटना गवारा है।
मगर दैरो-हरमकी[9] ख़ाक अब छानी नहीं जाती॥

ऐ दिले-मर्ग-आश्ना[10]! ख़तका जवाब सुन लिया!
और तू बेक़रार हो, और तू इन्तज़ार कर!!

चमनवालोंको यारब! तूने यह किस फेरमे डाला?
कभी फ़स्ले-ख़िज़ाँ आई, कभी फ़स्ले-बहार आई॥

---

[1]संसारके लिए तीर्थ-स्थान; [2]निर्माण; [3]दुःख-रूपी समुद्रकी; [4]अत्याचारोंको; [5]मेहरबानी; [6]जुल्मोंको; [7]नेकी; [8]माथेकी त्यौरी; [9]मन्दिर-मस्जिदकी; [10]प्रेयमीपर मिटा हुआ दिल।

मैंने कहा तो यह था कि तक़सीर हो मुआफ़।
इसके जवाबमें जो सुना कुछ न पूछिए॥
दो-चार दिन तो मुझको रही ताबे-सब्रो-जब्त।
जो हाल उसके बाद हुआ कुछ न पूछिए॥

ज़माने भरमें और उसका ठिकाना भी नहीं कोई।
कहाँ जाये मेरे दिलसे निकलकर रंजो-ग़म मेरा ?

इक-न-इक कांटा अलमका[१] उम्र भर दिलमें रहा।
मुश्किलें हल करने वाला सख़्त मुश्किलमे रहा॥

या रहें इसमे अपने घरकी तरह।
या मेरे दिलमे आप घर न करे॥

यह अजब दुरंगिए-हुस्न है, यह अजब दुरंगिए-इश्क़ है।
मेरे घर कभी वोह न आ सके, मेरी यादसे जो न जा सके॥
कहे कौन उनसे यह दर्दे-दिल कि अदबसे रहे हम दम-ब-ख़ुद।
न बता सके न जता सके, न दिखा सके न सुना सके॥

हिजाबे-जल्वाकी[२] अहले-नज़र परवा नहीं करते।
वोह सौ पर्दो मे उनका रूए-ज़ेबा[३] देख लेते हैं॥

ख़ुदा जाने सबा[४] हर रोज़ क्या पैग़ाम[५] लाती है ?
कि पहरों काँपते रहते है, तिनके आशियानोंमे॥

आलमे-हैरत[६] ही मेरी मंज़िले-मक़सूद[७] थी।
नक़्शे-पा[८] ख़ुद बन गया हूँ, नक़्शे-पाको देखकर॥

[१]दुःखो-मुसीबतोंका; [२]पर्देमे छिपे हुए रूपकी; [३]मुख, [४]हवा; [५]सन्देश; [६]आश्चर्यजनक; [७]लक्ष्यवाला मार्ग; [८]चरण-चिह्न।

बदगुमानीने[१] मेरी वहशत[२] बढ़ा दी और भी ।
और भी गुम हो गया मैं रहनुमाको[३] देखकर ॥

जा-बजा किसने बहाये हैं लहूके आँसू ?
नज़र आते हैं बयाबाँमें चमनके टुकड़े ॥

तुम्हारे चाहने वालोंको मर्गसे[४] क्या ख़ौफ़ ?
तुम्हारे कूचेसे बचकर क़ज़ा निकलती है ॥

कफ़े-अफ़सोस[५] ही मलता मेरी बरबादीपर ।
कोई पत्ता भी तो अब शाख़े-नशेमनमें[६] नहीं ॥
इस क़दर रहती है नादीदा[७] बलाओंकी[८] हविस[९] ।
गरदन उस तौक़में है तौक़ जो गरदनमें नहीं ॥

फ़लकसे[१०] कम नहीं फ़ित्ने उठाये ऐ ज़मीं तूने ।
लहदमें[११] ख़ाक कर डाले हैं, लाखों महजबीं[१२] तूने ॥
मेरी बिगड़ीको भी यारब ! बना देगा तो जानूंगा ।
बनानेको बनाया आस्माँ तूने, ज़मीं तूने ॥

जिन्दए-जावेद[१३] होनेके लिए ।
नफ़्से-अम्माराको[१४] मारा चाहिए ॥

ज़ालिमो ! ख़ौफ़ करो आहको समझो न हक़ीर ।
लफ़्ज़ अल्लाहमें है, इसका असर दो-बटे-तीन ॥

---

[१]अविश्वासने, [२]पागलपन [३]पथ-प्रदर्शकको, [४]मौतसे; [५]पछतावेसे हाथ मलता रहा; [६]घोंसला जिस टहनीपर बना था, उसमें; [७]अनदेखी; [८]मुसीबतोंकी; [९]इच्छा, तृष्णा, [१०]आस्मानसे, [११]कब्रमें; [१२]चन्द्रमुखी; [१३]अमरत्वपद पानेके, [१४]विषय-वासनाओंको ।

मुन्हसिर क़ुव्वते-बाज़ू पै है दौलत मन्दी।
देख लो ज़ोरमें मौजूद है, ज़र दो-बटे-तीन॥
मलक-उल्-मौतसे दुनियामें हिरासाँ नहीं कौन?
जिसको कहते हैं, निडर उसमें है डर दो-बटे-तीन॥

इब्तदाई कलाम (प्रारम्भिक)

दह्रमें[1] जिन्से-वफ़ाका कोई गाहक न मिला।
हमीं घाटेमें रहे मोल यह झगड़ा लेकर॥
ऐ अजल[2]! तेरे गिरायेसे अगर गिर भी गये।
दोशे-अहबाबका[3] उट्ठेंगे सहारा लेकर॥

दूर जा पहुँचा ग़ुबारे-कारवाँ[4]।
मेरी मुश्ते-ख़ाक तनहा रह गई॥
सब तमन्नाएँ हमारी मर चुकीं।
एक मरनेकी तमन्ना रह गई॥

अ़जब मुर्दा दिल है, अ़दमके मुसाफ़िर।
भरी महफ़िलें छोड़कर जा रहे हैं॥

अब इस शिकवेसे क्या हासिल कि "रहबर खुदगरज़ निकला"।
पराई आस जो तकते हैं अक्सर ख्वार होते हैं॥

ऐ मौत! तेरे अ़द्लके क़ुर्बान जाइए।
मुफ़लिसको पाओ-शहके बराबर बना दिया॥

रुक के चलती है सबा मेरे कफ़सके रूबरू!
इस तवक्कअ़पर कि शायद यह कोई पैग़ाम दे॥

---

[1]ससारमें; [2]मौत, [3]इष्ट-मित्रोंके कधोका. [4]यात्रीदलकी धूल।

यह अपनी बेरुखीसे पूछिएगा ।
इधर की हो गई दुनिया उधर क्यों ?

मेरा घर है, बुरा है या भला है ।
लगा दूँ आग क्यों कर आशियाँको ?

ताजे-शाहीके चाहने वाली ।
ख़ाकसारीकी शान और ही है ।।

मुतफर्रिक़--

सरगुज़िश्ते-अहले-महफ़िल है बहुत नागुफ़्तनी ।
शमअ़को मालूम है, सब कुछ मगर ख़ामोश है ।।

सुनता हूँ रात भर रहे बोह पेचो-ताबमें ।
क्या जाने लिख दिया उन्हें क्या इज़्तिराबमें ।।

एक तो यह नाज़ुकी और उसपें इतना बारे-हुस्न ।
आप भी मेरी तरह शिकवा करे तक़दीर का ।।*

तेरे अन्दाज़पर उम्रे रवाँ कुछ शक गुज़रता है ।
लिये जाती है तू मुझको किधर आहिस्ता-आहिस्ता ।।

---

* भूषण भार सम्हारिहै क्यों यह तन सुकमार ।
सूधो पाँव न परत है, शोभा ही के भार ।।
--बिहारी

शानों पै ज़ुल्फ़, ज़ुल्फ़में दिल, दिलमें हसरतें ।
इतना तो बोझ सरपें, नज़ाकत कहाँ रही ।।
--अज्ञात

मेरे दिलकी तड़पने जान तक छोड़ी न क़ालिबमें।
बुझा डाला चिराग़े-उम्र इस पंखेने हिल-हिलकर ॥†

ज़िन्दा-दिलीके कुछ नमूने--

दिल लेके कहते हैं कि "नविश्त इसकी दीजिए।
ऐसा न हो कि बाद में झगड़ा करे कोई" ॥

हसीनोंकी तरफ़ तो पीठ होगी।
धरा क्या है फ़िटिनकी नौकरीमें ॥

रोज़के मिलनेमें यह डर है उन्हें।
दिलबरी नौकरी न हो जाये ॥

अहले-मग़रिबके[1] फ़रेबाबादमें[2]।
सुलहका चर्चा पयामे-जंग है ॥

आप गोरे हैं तो हम काले सही।
ऐब क्या है अपना-अपना रंग है ॥

सांस लेनेमे भी दुश्वारी हुई।
किस क़दर तौक़े-ग़ुलामी तंग है ॥

राहे-अदममें चोर ही इतना करम करे।
चुपके-से ले उड़े मेरी गठरी गुनाह की ॥

---

[1]पश्चिमी देशोंके; [2]झूठ-फरेब-रूपी देशमें।

†जब उखड़ी सांस तो बीमारे-ग़म सम्भल न सका।
हवा थी तेज़ चराग़े-हयात जल न सका ॥
--नानक लखनवी

ऐ काश ! उसको मुझको बाहम गले मिला दें ।
दो आदमी यहाँके, दो आदमी वहाँके ॥

नाम लिख आये थे अपना बाग़के हर फूलमें ।
यूं हुए ऐ बाग़बां ! उनके गलेका हार हम ।

नोट पर यह नोट कर दो 'जोश' तुम ।
दौलत अब काग़ज़का टुकड़ा रह गई ॥

फिरंगीका गिला हर बात पर क्यों ?
तवेलेकी बला बन्दरके सर क्यों ?

ऐ शैख़ ! गो नहीं हैं कोई जीशऊर हम ।
इतना तो जानते हैं कि तुम बेशऊर हो ॥

वोह मदह[1] की कि सुनते ही क़ासिद हवा हुआ ।
हमने उड़ा-उड़ाके कबूतर बना दिया ॥

आया किसको कहेंगे, आई किसको ?
कुछ इसका जवाब दें मुझे अहले-ज़बाँ ॥

चन्द अशआ़र और—

'बादए'—सरजोश' से चुनकर जो शेर प्रथम संस्करणमें दिये गये थे, उनमें-से चन्द शेर यहाँ दिये जा रहे हैं—

उनसे हम तर्के-तग़ाफ़ुलका[2] तक़ाज़ा न करें ।
इसका मतलब है कि जीनेकी तमन्ना न करें ॥
वादा करके वोह अगर वादेका ईफ़ा[3] न करें ।
उससे बेहतर तो यही है कोई वादा न करें ॥

---

[1]प्रशसा. [2]उपेक्षा त्यागका, [3]पालन ।

उनसे तौक़ीरे-मुहब्बत[1] नहीं होती न सही ।
इतनी तहक़ीरे-मुहब्बत[2] भी खुदारा न करें ॥

क्यों फ़ल्सफ़ीको ग़र्रा अपने कमालपर है ।
जितना वोह बाख़बर है, उतना ही बेख़बर है ॥

थोड़ा-सा और सुन लो अफ़सानए-मुहब्बत !
दो हिचकियोंमें अब तो क़िस्सा ही मुख़्तसर है ॥

यह तेरी किस्मतने काँटे बो दिये, ऐ अंन्दलीब[3] !
बेतरह उलझा हुआ है तेरा दामन फूलमें ॥
इनमें जो अच्छा है चुन ले, ऐ निगाहे-इन्तिख़ाब[4] !
एक गुलशन ख़ारमें है, एक गुलशन फूलमें ॥
ऐ ख़िज़ां[5] ! अब ख़ारोख़समें[6] भी जगह पाता नहीं ।
आह ! वोह ताइर[7] कि था जिसका नशेमन[8] फूलमें ॥

निकम्मा हो गया मैं इस क़दर मसरूफ़े-ग़म[9] होकर ।
मेरे आमालके कातिब[10] भी अब बेकार बैठे हैं ॥

रंजे-दुनिया, खौफ़े-उक़्बा[11], बारे-ग़म[12] फ़िक्रे-मआश[13] ।
एक जाने-नातवाँपर[14] सौ अज़ाबे-ज़िन्दगी ॥

नक़्शे-उल्फ़त मिट गया तो दाग़े-उल्फ़त है बहुत ।
शुक्र कर, ऐ दिल ! कि तेरे घरकी दौलत घरमें है ॥

---

[1]मुहब्बतकी इज़्ज़त; [2]प्रेमका अनादर; [3]बुलबुल; [4]पारखी दृष्टि; [5]पतझड़; [6]काँटो-तिनकोमें; [7]पक्षी; [8]घोंसला; [9]विपत्तियोंमें व्यस्त; [10]भाग्यरेखा लिखने वाले; [11]परलोकका भय; [12]मुसीबतोंका बोझ; [13]आजीविकाकी चिन्ता; [14]निर्बल प्राणोपर ।

नज़अमे[1] पेशे-नज़र है उम्र भरके वाक़िआत।
सारी दुनियाका मुरक़्क़ा[2] आख़िरी मंज़रमे है ॥

कामिलकी[3] जो पूछो तो नहीं ख़िज़्र[4] भी कामिल।
जीना उसे आता है तो मरना नहीं आता ॥
ना-अहल[5] है वह अहले-सियासतकी[6] नज़रमे।
वादेसे कभी जिसको मुकरना नहीं आता ॥

आप बेवजह मुद्दई क्यों है ?
आपका इससे मुद्दआ क्या है ?

हुस्न और मेहरबानी ! इश्क़ और शादमानी !!
ऐसा कभी न होगा, ऐसा कभी हुआ है ?

बिजलीने किया ख़ाक चमन जिसका जलाकर।
आँधी भी उसी सोख़्ता-सामाँके लिए है ॥

ग़म जो खाता हूँ तो मुझको खाये जाता है यह ग़म—
"खाऊँगा फिर क्या मैं दुनिया भरका ग़म खानेके बाद ?"

माहे-नौपर[7] भी उठी है हर तरफ़से उँगलियाँ।
जो कोई दुनियामे आया उसकी रुसवाई हुई ॥

नातवानी[8] भी तेरे कूचेमे।
पाये-रफ़्तार[9] हुई जाती है ॥

---

[1]मृत्यु-समयमे; [2]चित्र ; [3]सिद्धहस्तकी ; [4]भूले-भटकोंको मार्ग बताने वाला एक फ़रिश्ता; [5]मूर्ख [6]राजनीतज्ञोंकी दृष्टिमे; [7]दूजके चन्द्रमापर; [8]निर्बलता, [9]तेज चाल।

तेरे ग़ममें सोज़े-दिलकी[1] वोह शररफ़िशानियाँ[2] है।
कि असर भी जल गया है, मेरी गरमिये-फ़ुग़ाँसे[3] ॥
तुझे देखनेका सौदा[4] तो जहानमें है सबको।
मगर आँख देखनेकी कोई लायगा कहाँसे ?

न दुनियामे निभी अपनी, न रास आया अदम हमको।
कभी इस घरसे निकले है, कभी उस घरसे निकले है ॥

सरगुज़िश्ते-अहले-महफ़िल है बहुत नागुफ़्तनी।
शमअको मालूम है सब कुछ मगर ख़ामोश है ॥

रुबाइयात--

क्यों तर्के-मए-नाब गवारा कर लूँ ?
क्यों ख़ूने-रगे-हयात ठंडा कर लूँ ?
ताइब ही अगर निजातके क़ाबिल है।
बेहतर है कि तौबा ही से तौबा कर लूँ ॥

दुनियाको हुनर, विक़ार खोकर न दिखा।
जौहर अपना ज़लील होकर न दिखा ॥
आलमको दिखा तू आबदारी अपनी।
लेकिन कभी आबरू डुबोकर न दिखा ॥

अब नाचने-गानेमे बुराई न रही।
उरयानिए-तन, यह जग हँसाई न रही ॥
आवारगिए-तबअसे नफ़रत तो कुजा।
ज़ाहिर कोई अंगुश्त-नुमाई न रही ॥

---

[1]दग्ध हृदयकी; [2]चिनगारियाँ उडती है, [3]आह रूपी गर्मीसे. [4]उन्माद, बेताबी।

कुछ अपनी करामात दिखा ऐ साक़ी !
जो खोल दे आँख वोह पिला ऐ साक़ी !
हुश्यारको दीवाना बनाया भी तो क्या,
दीवानेको हुश्यार बना ऐ साक़ी !

एक नज़्मका नमूना--

ग़रीबोंकी दुनिया

....

ग़रीबोंके घरमें मसर्रत[१] भी ग़म है,
ग़रीबोंके दिलमे ख़ुशी भी अलम[२] है ।
ग़रीबोंकी गर्दन है, तेग़े-सितम[३] है :
ग़रीबोंकी हस्ती[४] अदम[५] है, अदम है ।
ग़रीबोंकी दुनियामें राहत[६] न ढूँढ़ो ॥

....

ख़ता हो किसीकी ख़तावार[७] ये है,
क़ुसूर औरका हो, गुनहगार[८] ये है ।
शफ़ा[९] जिनसे भागे, वे बीमार ये है,
नहीं जिसका चारा[१०], वे लाचार ये है ।
ग़रीबोंकी दुनियामें राहत न ढूँढ़ो ॥

....

१५ जनवरी १९५८ ई०]

---

[१]प्रसन्नता, ख़ुशी; [२]रंज; [३]अत्याचारकी तलवार; [४]अस्तित्व; [५]मनहूस; [६]सुख-चैन; [७]अपराधी; [८]पापी, मुजरिम; [९]आरोग्यता; [१०]उपाय ।

"नातिक़" ग़ुलावठी

[१८८६ — .... ई०]

अबलहसन 'नातिक़'के पिता ज़हीरुद्दीनको भी शेर कहनेका शौक़ था। आपके पूर्वज अहमदशाह अब्दालीके साथ भारत आये थे। आप गुलावठी ज़ि० मेरठके रहनेवाले हैं। व्यापारके सिल्सिलेमें अ़र्सेसे नागपुरमें निवास करते हैं।

११ नवम्बर १८८६ ई० को आपका जन्म हुआ। १८५७ के विप्लवमें आपके बड़ोंकी समस्त जाएदाद लुट गई थी, साथ ही आपके एक ताया (ताऊ) विद्रोही होनेके कारण फाँसी चढ़ा दिये गये थे।

नातिक़ने देवबन्दके प्रसिद्ध इस्लामिया स्कूलसे अ़रबीकी सनद हासिल की। १९०० ई० में आपने शाइरी प्रारम्भ की और १९०४ ई० में मिर्ज़ा 'दाग़' के शिष्य हुए। अभी ५-६ ग़ज़लोंपर ही इस्लाह लेने पाये थे कि 'दाग़' का इन्तिक़ाल हो गया। फिर आपने अन्य किसीसे इस्लाह नहीं ली। आपके शिष्योंमें अ़ब्दुलबारी 'आसी' जैसे मशहूर शाइर भी हैं।

मेरे सब्रने भी ग़ज़ब किया कि अ़दूकी जानपं बन गई।
यह कहाँकी चोट कहाँ लगी, यह कहाँका दर्द कहाँ उठा॥

ले जा रहे हैं दोस्त मुझे, आ रहा है दोस्त।
क्या मौतको भी आज ही मरना ज़रूर था ?

जिसकी हसरत थी, उसे पा भी चुके खो भी चुके।
अब किसी चीज़का हमको नहीं अरमाँ होता ॥

बेख़ुदी आई थी उनके बाद बज़्मे-नाज़में।
फिर नहीं मालूम हमको, कौन आया किसके बाद ॥

ज़िन्दगीका सुबूत नालए-ज़ार ?
वह भी क्या इक मरी हुई आवाज़ !

सहराए-ज़िन्दगीसे न भागूँ तो क्या करूँ ?
आख़िर कहाँतक उसमें भटकता फिरा करूँ ॥
बाक़ी नहीं जहाँमें कोई माँगनेकी चीज़।
अब हाथ भी उठाऊँ तो मैं क्या दुआ करूँ ॥

शामे-ग़मको तो अभी देर है आनेके लिए।
दो घड़ी दिनसे न हम कूचका सामाँ करदें ॥

देख लो अहले-चमन ! रुसवाइए-सुबहे-बहार।
कौन-सा गुल है कि जिसपर क़तरए-शबनम नहीं ?

चारागर ! मस्तकी दुनिया है ज़मानेसे जुदा।
होशमें आ कि जहाँ हम हैं, वहाँ होश नहीं ॥

याद करनेकी तो बातें हैं बहुत-सी 'नातिक़' !
पहले वोह भूल तो जाऊँ जो फ़रामोश नहीं ॥

अभी हम जान देकर सोये हैं, दम लेके उट्ठेंगे।
न छेड़ ऐ शोरे-महशर ! हट ज़रा आराम लेते हैं ॥

कहते हैं जिसे वहशत्, वोह बात कहाँ साहब !
क्या कहते हो ? मजनूँ है देखा हुआ दीवाना ॥

हाँ आग लगानेके लिए मेरे घर आये।
क़ासिद ! वोह इसी वास्ते आये, मगर आये ॥

अदूसे वादा किया, वादा करके टाल गये।
चलो वोह अब भी बहुत बातको सँभाल गये ॥
हलाल कर गये कहकर कि अब न आयेंगे।
वोह जाते-जाते तड़पतेपै हाथ डाल गये ॥

साथ भी छोड़ा तो कब, जब सब बुरे दिन कट गये।
ज़िन्दगी तूने यहाँ आकर दिया धोका मुझे ॥

हिचकियोंपै हो रहा है ज़िन्दगीका राग ख़त्म।
झटके देकर तार तोड़े जा रहे हैं साज़के ॥

क्या इरादे हैं वहशते-दिलके ?
किससे मिलना है, ख़ाकमें मिलके ?
ऐ दिले शिकवा-संज ! क्या गुज़री ?
किस लिए होंट रह गये सिलके ?

ख़त्म होती है कहीं मंज़िले-आलाम अभी।
पूछता क्या है चलाचल दिले-नाकाम अभी ॥

यह मुद्दत हस्तीकी आख़िर यूँ भी तो गुज़र ही जाएगी।
दो दिनके लिए मैं किससे कहूँ आसान मेरी मुश्किल करदे ॥

कौन आये मरनेको, वोह हमारी बस्ती है।
ज़िन्दगी जहाँ आकर मौतको तरसती है ॥

गये हैं जबसे वोह, अपने भी आये ग़ैर भी आये।
सब आये भी गये भी, घरकी वीरानी नहीं जाती ॥

वोह गये, हिम्मत गई, रुख़सत शकेबाई हुई ।
रफ़्ता-रफ़्ता अपनी दुनिया ही गई-आई हुई ॥

अपनी रुसवाईका ग़म था, जब हमें, वोह दिन गये ।
अब तो यह ग़म है कि ऐसी फिर न रुसवाई हुई ॥

उनका हरीमे-नाज़, मेरा परदए-निगाह ।
छुपते हैं इस अदासे कि देखा करे कोई ॥

मेरे ग़मकी उन्हें किसने ख़बर की ।
गई क्यों घरसे बाहर बात घरकी ?
गये थे पूछने अपना पता आज ।
हमें उसने बता दी राह घरकी ॥
बताऊँ क्या वोह दिल लेते हैं क्योंकर ।
ज़रा-सी इक सफ़ाई है नज़रकी ॥

मुश्किल रहे-अदमको हम आसाँ न कर सके ।
जल्दी में चल दिये कोई सामाँ न कर सके ॥
शर्त उनकी जुस्तुजू थी न पाया नहीं सही ।
यह तो नहीं हुआ कि हम अरमाँ न कर सके ॥

या दुनिया हमपर हँसती थी, या हम हँसते हैं दुनियापर ।
जब हम रो बैठे दुनियाको तो दुनिया हमको रोती है ॥

लाता सनम-कदेसे, थी क्या मजाले-वाइज़ ?
जी हाँ, हमें उठाता ? हम राहमें पड़े थे ?



नवाब 'साइल' देहलवी

[१८६७—१९४५ ई०]

नवाब सिराजुद्दीन अहमद ख़ाँ 'साइल' १८६७ ई०में उत्पन्न हुए। आपके जन्मकी ख़ुशीमें मिर्ज़ा 'ग़ालिब'ने सात अशआ़रका क़िता लिखा था। आप मिर्ज़ा शहाबुद्दीन अहमदख़ाँ 'साक़िब'के पुत्र और नवाब ज़ियाउद्दीन अहमदख़ाँ 'नैयर दरख़्शाँ' जागीरदार लोहारूके पौत्र थे। मिर्ज़ा 'ग़ालिब' ज़ियाउद्दीनके बहनोई होते थे। यानी नवाब 'साइल'के पिताके रिश्तेमें मिर्ज़ा 'ग़ालिब' फूफा लगते थे।

नवाब 'साइल' अभी चार वर्षके ही हुए थे कि आपके सरसे आपके पिताका साया उठ गया। १४ वर्षकी उम्रतक अ़रबी-फ़ारसीकी शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद कूचए-शाइरीमें क़दम रक्खा। आप मिर्ज़ा दाग़के प्रिय शिष्य थे, और उनकी सुपुत्रीको पत्नी बनानेका भी आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ[1]। मुद्दतों उस्तादकी ख़िदमतमें रहकर शाइरीकी बारीकियों

[1]दरअस्ल बेगम साइल, मिर्ज़ा दागकी हक़ीक़ी बेटी न होकर उनकी सालीकी नवासी थीं। जिन्हें मिर्ज़ा दाग़ने गोद ले लिया था। उनका विवाह पहले साइल साहबके छोटे भाईसे हुआ था। विधवा होने पर नवाब साइलसे निकाह हुआ। साइल साहबको मिर्ज़ा दागके दामाद होने पर बहुत गर्व था और वे अक्सर अपनी ग़ज़लोंके मक़्तोंमें फ़ख़्रिया इज़हार भी किया करते थे—

और देहलीकी टकसाली जबान सीखनेका आपको फ़ख्र हासिल हुआ। आपके वास्ते कोई उपयुक्त और मौज़ूँ तख़ल्लुसकी तलाश थी कि एक रोज एक शरीफ और सवाली सूरतने आकर सलाम किया। आनेका सबब पूछनेपर उसने कहा कि "साइल (भिक्षुक) हूँ।"। तख़ल्लुसके लिए मौज़ूँ शब्दकी चरचा चल ही रही थी कि इस शरीफ इन्सानके मुँहसे 'साइल' शब्द सुना तो उस्तादको वह इतना भाया कि उसी रोजसे आप 'साइल' कहलाने लगे। यह भी कुदरतकी सितम जरीफी ही समझिए कि जिसका पाँच वशोसे नवाबका खिताब चला आ रहा हो, जो शक्लो-शबाहतमे नवाबो, बादशाहोको दूर बिठाता हो, जिसका व्यक्तित्व इतना आकर्षित हो, वह 'साइल' नामसे ख्याति पाये। दोस्तोके छेडनेपर तख़ल्लुसके सम्बन्धमे आपने फर्माया था—

रफ़ीक़[1] करते हैं ईराद[2] क्यों तख़ल्लुसपर[3] ?
हुनरको[4] छोड़के निस्बतसे[5] बा-वक़ार हूँ[6] मैं ॥
'ज़हीर'-ओ-'ग़ालिब'-ओ-'अरशद'का हूँ जिगर-गोशा[7]।
जनाबे-'दाग़'का तलमीज़[8]-ओ-दामाद हूँ मैं ॥
अमीर करते हैं इज्ज़त मेरी वोह 'साइल'[9] हूँ।
गुलोंके पहलूमें रहता हूँ ऐसा ख़ार[10] हूँ मैं ॥
तख़ल्लुसमें मआनीका अगर कुछ परतव होता।
तो 'साइल' आपमें यह शान, यह शौकत कहाँ होती ?
'साइल'को तुम न चश्मे-हिकारतसे देखना।
नव्वाब पाँच पुश्तसे उसका ख़िताब है ॥

जनाबे दाग़के दामाद हैं, हम दिल्ली वाले हैं।
उँगलियाँ उठने लगीं—"दाग़का दामाद आया" ॥

[1]मित्र; [2]एतराज; [3]उपनामपर; [4]शाइरीके अतिरिक्त, [5]वंशसे; [6]प्रतिष्ठित; [7]कलेजेका टुकडा; [8]शिष्य; [9]भिक्षुक; [10]काँटा।

नवाब 'साइल'के सम्बन्धमे यह बात मशहूर थी कि जिसने मिर्जा 'गालिब'को न देखा हो, वह आपको देख ले। लम्बा कद, भरा हुआ गोरा-चिट्टा जिस्म, सुर्ख-ओ-सफेद किताबी चेहरा, बडी-बडी कटीली आँखे, रेशम-सी मुलायम सुफेद दाढी। पाँच पी० के लट्ठेका चूडीदार पायजामा, तनजेब अथवा रफलका अँगरखा पहनकर अपने हाथकी सिली हुई मखमली चौगोशिया टोपी जब सरपर रखते थे, तब देखते ही बनता था। आँखोमे बारीक सुर्मा, मुँहमे पान, सुनहरी चश्मा, उनको खूब फबते थे।

मुझे उनको पहले-पहल १९२८ मे रायबहादुर पारसदास जैनके मुशाअरेमे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस वक्त उनकी उम्र तकरीबन साठके लगभग होगी, लेकिन बुढापेका कोई खास हमला नही हुआ था। वही चौडा-चकला सीना, वही जवानोकी तरह चाल, वही बातचीतका तरीका, वही आवाज। हा बाल जरूर सुफेद हो गये थे, जो कि उनके व्यक्तित्वको और भी प्रतिष्ठित कर रहे थे। बहुत ही वजअ-कितअके बुजुर्ग थे। उनको देखनेसे आभास मिलता था कि यही पोशाक-ओ-लिबास कभी अहले-देहलीका रहा होगा।

मुशाअरोमे शिरकत फरमानेको तशरीफ लाते थे तो मुशाअरोके सयोजक और श्रोता बहुत ही उत्सुकतापूर्वक उनकी बाट जोहते रहते थे, और जब आनेकी सूचना मिलती थी तो, सयोजक, मित्र-अहबाब, मुख्य-मुख्य शिष्य उनको लिवा लानेके लिए दरवाजेतक दौड पडते थे। अन्दर तशरीफ लाने पर प्राय सभी शाइर बा-अदब खडे हो जाते थे, और आप मुसकराते हुए, अभिवादनोका जवाब देते हुए, अपनेसे उम्रमे बडोंको सलाम करते हुए सलीकेसे अपनी नियत जगहपर बैठ जाते थे। आप बहुत ही आकर्षक ढगसे तरन्नुममे गजल पढते थे और कहते है कि मुशाअरोमे सबसे पहले आप ही ने तरन्नुमसे पढनेका श्रीगणेश किया। आपका एक खास किस्मका तरन्नुम था, जो कि आपका ही तर्जे-खास समझा जाता था।

नवाब 'साइल' को पचासो मुशाअरोमे देखने-सुननेके अतिरिक्त

मुझे आपके दौलतख़ानेपर हमकलाम होनेका भी फख्र हासिल हुआ है। आपने स्वप्नमें श्रीकृष्णको देखा तो श्रद्धा-भक्ति से ओत-प्रोत होकर उनकी शानमें मसनवी लिखी थी। उस मसनवीके चन्द शेर मुझे सुनाये, दो-तीन सेहरे और चन्द गजलोंके अशआर भी। और सबसे बडी स्मरण रखने योग्य बात तो यह हुई कि उनकी बेगम जो मिर्जा 'दाग' की लाडली बेटी थी, उनके चन्द फिकरे परदेमेंसे ही सही, सुननेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। उर्दू जबान उनके घरकी लोण्डी थी, और वे आकाए-जबान थे।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें वृद्धावस्थाके कारण चलने-फिरनेमें दिक़्क़त होती थी। उस लाचारीका बयान आपने कितने करुणाभरे शब्दोंमें किया है--

रखा है तख़ल्लुस ब-मजबूर 'साइल' हुई इतनी जब इहतियाजोंकी मुश्किल।
मिले दाना खानेको जब दाना माँगूं, मयस्सर हो पीनेको पानी कहो तो ॥

इस लाचारीके बावजूद भी वजअ़दारीका यह आलम था कि जिन इष्ट-मित्रोंकी मिजाज-पुर्सीके लिए जाना आप आवश्यक समझते थे, रिक्शामें बैठकर उनके यहाँ हो आते थे। मृत्युसे एक रोज पूर्व आप पाटौदी रियासतसे शामको दिल्ली आये थे। आते ही रिक्शामें सवार हुए और उन इष्ट-मित्रोंसे मिल आये, जिनसे वे रोजाना मिला करते थे। यह किसीको क्या मालूम था कि नवाब 'साइल' का देहलीके गली-कूचोंमें यह अन्तिम फेरा है।

७८ वर्षकी आयुमें १५ सितम्बर १९८५ को दिनके दस बजे जन्नत नशीन हुए। आपकी मृत्युपर कितने ही शाइरोंने नौहे और तारीखें कही, सैकडों आपने शिष्य छोडे हैं।

नवाब 'साइल'ने गजलोंके छः दीवान और मसनवीका एक दीवान छोड़ा है। इन दीवानोंमें अनुमानतः एक लाख शेर होंगे। खेद है कि

अभीतक एक भी प्रकाशित नहीं हुआ है। यहाँ हम उनके चन्द अशआ़र दे रहे है—

कल शबको बज़्मे-मैंमें अ़दू मेहमाँ न था ?
बिगड़ो नहीं, ख़फ़ा न हो, जाने दो, हा न था ॥
मूसामे क्यों खुला वोह, किया हमसे क्यों हिजाब ?
जोके-जमाले-यार यहाँ था, वहाँ न था ॥

खामोशीमे है अ़र्जेहाल क्या-क्या ।
कोई समझे हमारा मुद्दआ़ क्या ॥

दिलमे है दर्द, दाग़ कलेजेमे, लबपै आह ।
'साइल' को जो नसीबसे मिलता गया, लिया ॥

वादा किया था आपने और फिर मुकर गये ।
दमभरका तज़किरा है, यह आधी घड़ीकी बात ॥
मै पीके वाज़ सुनता हूँ, हुरमत[1] ज़रूर है ।
मशरबके[2] गो ख़िलाफ़ सही शेख़जीकी बात ॥
वोह आशोबे-तजल्ली[3] हँस रहा है गो पसे-पर्दा[4] ।
मगर अ़क्से-तबस्सुम[5] आ पड़ा है सारा चिलमनपर[6] ॥
हमेशा ख़ूने-दिल रोया हूँ मै, लेकिन सलीक़ेसे ।
न क़तरा आस्तींपर है, न धब्बा जेबो-दामनपर ॥

जो हम है शौक़से बेताब, तो वोह शोख़ीसे ।
क़रारसे न वही है न है क़रारसे हम ॥

ग़लत है नामए-आमाल[7] सब यह दावरे-हश्र !
हम अपनी मासियतोंका[8] शुमार रखते है ॥

[1]इज्जत; [2]धर्मके ; [3]बिजली-जैसी नजरवाला ; [4]पर्देके पीछे; [5]मुसकान की छाया; [6]चिकपर, पर्देपर, [7]गुनाहोका हिसाब रखना सम्भव नहीं; [8]अपराधोका ।

मुझे आपके दौलतखानेपर हमकलाम होनेका भी फख्र हासिल हुआ है। आपने स्वप्नमे श्रीकृष्णको देखा तो श्रद्धा-भक्ति से ओत-प्रोत होकर उनकी शानमे मसनवी लिखी थी। उस मसनवीके चन्द शेर मुझे सुनाये, दो-तीन सेहरे और चन्द गजलोके अशआर भी। और सबसे बडी स्मरण रखने योग्य बात तो यह हुई कि उनकी बेगम जो मिर्जा 'दाग' की लाडली बेटी थी, उनके चन्द फिकरे परदेमेसे ही सही, सुननेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। उर्दू जबान उनके घरकी लोण्डी थी, और वे आकाए-जबान थे।

जीवनके अन्तिम दिनोमे वृद्धावस्थाके कारण चलने-फिरनेमे दिक्कत होती थी। उस लाचारीका बयान आपने कितने करुणाभरे शब्दोमे किया है--

रखा है तखल्लुस ब-मजबूर 'साइल' हुई इतनी जब इहतियाजोंकी मुश्किल।
मिले दाना खानेको जब दाना माँगूँ, मयस्सर हो पीनेको पानी कहो तो ॥

इस लाचारीके बावजूद भी वजअदारीका यह आलम था कि जिन इष्ट-मित्रोंकी मिजाज-पुर्सीके लिए जाना आप आवश्यक समझते थे, रिक्शामें बैठकर उनके यहाँ हो आते थे। मृत्युसे एक रोज पूर्व आप पाटोदी रियासतसे शामको दिल्ली आये थे। आते ही रिक्शामे सवार हुए और उन इष्ट-मित्रोंमे मिल आये, जिनमे वे रोजाना मिला करते थे। यह किसीको क्या मालूम था कि नवाब 'साइल' का देहलीके गली-कूचोंमे यह अन्तिम फेरा है।

७८ वर्षकी आयुमे १५ सितम्बर १९४५ को दिनके दस बजे जन्नत नशीन हुए। आपकी मृत्युपर कितने ही शाइरोंने नौहे और तारीखे कही, सैकडो आपने शिष्य छोडे है।

नवाब 'साइल'ने गजलोके छः दीवान और मसनवीका एक दीवान छोड़ा है। इन दीवानोमें अनुमानतः एक लाख शेर होंगे। खेद है कि

अभीतक एक भी प्रकाशित नहीं हुआ है। यहाँ हम उनके चन्द अशआर दे रहे हैं—

कल शबको बज्मे-मैंमें अदू मेहमाँ न था ?
बिगड़ो नहीं, ख़फा न हो, जाने दो, हा न था ॥
मूसासे क्यों खुला वोह, किया हमसे क्यों हिजाब ?
जल्वे-जमाले-यार यहाँ था, वहाँ न था ॥

खामोशीमें है अर्जेहाल क्या-क्या ।
कोई समझे हमारा मुद्दआ क्या ॥

दिलमें है दर्द, दाग कलेजेमें, लबपै आह ।
'साइल' को जो नसीबसे मिलता गया, लिया ॥

वादा किया था आपने और फिर मुकर गये ।
दमभरका तजकिरा है, यह आधी घड़ीकी बात ॥
मैं पीके वाज सुनता हूँ, हुरमत[1] जरूर है ।
मशरबके[2] गो ख़िलाफ़ सही शेखजीकी बात ॥
वोह आशोबे-तजल्ली[3] हँस रहा है गो पसे-पर्दा[4] ।
मगर अक्से-तबस्सुम[5] आ पड़ा है सारा चिलमनपर[6] ॥
हमेशा खूने-दिल रोया हूँ मैं, लेकिन सलीक़ेसे ।
न क़तरा आस्तींपर है, न धब्बा जेबो-दामनपर ॥

जो हम हैं शौक़से बेताब, तो वोह शोख़ीसे ।
क़रारसे न वही हैं न हैं क़रारसे हम ॥

ग़लत है नामए-आमाल[9] सब यह दावरे-हश्र !
हम अपनी मासियतोंका[8] शुमार रखते हैं ॥

[1]इज्जत; [2]धर्मके ; [3]बिजली-जैसी नजरवाला , [4]पर्देके पीछे; [5]मुसकान की छाया; [6]चिकपर, पर्देपर, [9]गुनाहोंका हिसाब रखना सम्भव नहीं; [8]अपराधोंका ।

खुदाजोई[1] है ज़ाहिदमे, खुदासाज़ी[2] बरहमनमें ।
है दो रिश्ते तअल्लुकके पड़े दोनोंकी गरदनमे ।।

शेख़ ! मैख़ानेमे हुश्यार ज़रा चलियेगा ।
मुँहके बल गिरते है, जब पैर रपट जाते है ।।

नज़ाकतपर यह दावा है कि हम तलवार मारेंगे ।
तुम ओछे हो, तुम्हारा हाथ भी लाखोंमें ओछा है ।।

सरे-बाली[3] खड़े है अपने बीमारे-मुहब्बतकी ।
नज़र है लाशपर और हाथ है आमादा[4] मातमको ।।

यह भी कोई रोना है, कि दो अश्क भर आये ।
आँखोंमे लहू बनके दिल आये, जिगर आये ।।

आया भी रहम तुझको किसी खस्ता हालपर ?
तूने कभी सुनी भी किसी दादख़्वाहकी[5] ?

आसान नज़र आये हरइक मुश्किले-दुनिया ।
दे साथ अगर हिम्मते-मर्दाना किसीका ।।

मालूम नहीं किससे कहानी मेरी सुन ली ।
भाता ही नहीं अब उन्हें अफ़साना किसीका ।।

उम्र भरमें एक तो पहचान हमको हो गई ।
उसको आशिक़ जान लेना, जिसको हैराँ देखना ।।

हर्फ़े-मतलब सुनके 'साइल' का शरारतसे कहा—
"इनकी सूरत, इनकी जुरअत, इनका अरमाँ, देखना ।।"

[1]ईश्वरकी खुशामद, [2]ईश्वर बनानेकी कला; [3]मिरहाने; [4]तैयार; [5]फरियादीकी ।

इस क़दर लुत्फ़ असीरीका[1] मिला है सैयाद !
याद मुतलक़[2] न रहा, मक़सदे-परवाज़[3] मुझे ॥

'साइल' सवाल करके न खोना तुम आबरू ।
दुनियामें एक चीज़ है, बस आदमीकी बात ॥

साक़ीने बादा-ख़्वारको[4] दी मैं न शैख़को ।
उसने कहा मुझे मिले, उसने कहा मुझे ॥

परवाने मिट रहे हैं, तेरी शमए-बज़्मपर ।
यह अंजुमन इक और तेरी अंजुमनमें है ॥

अमल सब ज़ुहदो-तक़वाके[5] धरे रह जाये ऐ 'ज़ाहिद' !
कोई कामिल अगर मिल जाय तो कपड़े उतरवा ले ॥

न कीजो एतबारे-जुब्बा-ओ-दस्तार[6] ऐ साक़ी !
शराबे-नाब पीछे दीजो, पहले दाम धरवा ले ॥

बन गये 'साइल' तो क्या शाने-इमारत मिट गई ।
देखनेवाले नहीं खाते हैं धोखा नामसे ॥

—ख़ुमख़ानए-जावेद भाग चार

सुना भी कभी माजरा दर्दे-ग़मका, किसी दिल जलेकी ज़बानी, कहो तो ?
निकल आये आँसू कलेजा पकड़ लो, करूँ अर्ज़ अपनी कहानी, कहो तो ?
वफ़ापेशा आशिक़ नहीं देखा तुमने, मुझे देख लो, जाँच लो, आज़मा लो ।
तुम्हारे इशारेपै क़ुर्बान कर दूँ, अभी मायए-ज़िन्दगानी[7] कहो तो ?
करमकी[8] उम्मीदोंपै बीमारे-उल्फ़त, बताओ जिये रोज़ मर-मरके कबतक ?
किया जाये दशनेसे[9] या ज़हरसे ख़ुदमदावाए-दर्दे-निहानी[10] कहो तो ॥

---

[1]बन्दी जीवनका आनन्द; [2]बिलकुल; [3]उड़नेका उद्देश्य; [4]मद्यपको
[5]उपासनाओंके; [6]कपड़े और पगड़ीका विश्वास; [7]जीवन-धन;
[8]कृपाओंकी; [9]खंजरसे; [10]छुपेदर्दकी दवा ।

मिले ग़ैरोंसे मुझसे रंज, ग़म यूँ भी है और यूँ भी।
वफ़ा दुश्मन जफ़ाजूका, सितम यूँ भी हुँ और यूँ भी॥
शबे-वादा वोह आ जायें, न आयें मुझको बुलवालें।
इनायत यूँ भी और यूँ भी, करम यूँ भी है और यूँ भी॥

किये जाइयो ऐशो इशरतमे हा-हू, न कीजो नज़र बावफ़ाकी तरफ़ तू। तुझे क्या ख़बर ऐ सितमगर जफ़ाजू! कि दम मरनेवालेने क्योंकर दिया है? मेरादाग़ दिलका चमकता जो देखा, तो पूछा सितमगरने–"है चीज यह क्या"? कहा जोड़कर हाथ मैंने, बस इतना––"तुम्हींने यह ऐ बन्दापरवर! दियाहै"॥

दिले-नाकामको उम्मीदे-करम है तो सही।
देखनेको सूए-दर[1],आँखोंमें दम है तो सही॥

हो परिस्तारको[2] क्या तेरे, तमन्नाए-बिहिश्त ?
हूर-पैकर[3] तेरा घर, रश्के-इरम्[4] है तो सही॥
किस बिनापर हो शको-शुबहा ग़लतगोई का।
उनके हर क़ौलमें पैवन्दे-क़सम है तो सही॥

नाम 'साइल' है मगर, चश्मे-तमअ़से[5] उसने।
कभी देखी ही नहीं, साहबे-ज़रकी[6] सूरत॥

मज़ा यह दागे-उल्फ़तका है, दिलमे हज़रते 'साइल'!
उभरकर आबला हो, बैठकर नासूर हो जाये॥

रखनी है बरकरार अगर आबरूए-दिल।
गोश-आशनाए-ग़ैर न हो आरज़ूए-दिल॥

---

[1]द्वारकी तरफ, [2]आसक्तको; [3]परीका शरीर; [4]स्वर्गसे बढकर; [5]अभिलाषा दृष्टिसे; [6]धनिककी।

सितमगारीकी तालीमें उन्हें दी हैं, यह कह-कहकर।
कि रोता जिस किसीको देख लेना, मुसकरा देना॥

सरे बज़्मे-सुख़न 'साइल'के चर्चे हो चले देखो—
"जनाबे दाग़के दामाद हैं, यह दिल्लीवाले हैं॥"

यही ख़त उसके मुँहपर मार दीजो, बेधड़क क़ासिद!
अगर तुझको कड़ी नज़रोंसे, उसका पासबाँ देखे॥



फ़रेबे-दामो-दानासे[1] बचा ले दम[2], अगर बुलबुल।
तो रोशन आँधियोंमें भी, चिराग़े-आशियाँ देखे॥

२६ मई १९५२ ई०]

---

[1]जाल और चुग्गेके जालसे; [2]स्वयंको।

आग़ा शाइर क़िज़िलबाश

[१८७१–१९४०ई०]



आग़ा मुज़फ़्फ़रबेग 'शाइर' दिल्लीमें १८७१ ई०में उत्पन्न हुए थे और मिर्ज़ा दाग़के प्रिय शिष्योंमें-से थे। वर्षों उस्तादकी सेवामें हैदराबाद रहे थे। आपने बड़े अदबके साथ अपने लेखोंमें उस्तादका उल्लेख किया है और यह भी बताया है कि हम इस्लाहके लिए कितने डरते हुए उस्तादके पास जाया करते थे और उस्ताद कितनी मेहनत और लगनसे ग़ज़लोंका संशोधन किया करते थे[1]। आपके सैकड़ों शिष्य थे। मुंशी महाराज बहादुर 'बर्क़' और पं० जिनेश्वरदास जैन 'माइल'-जैसे सुयोग्य शाइर आप ही के शिष्य[2] थे।

मैंने आपको कई मुशाअ़रोंमें देखा है। ग़ज़ल पढ़नेका ढंग इतना आकर्षक और मोहक होता था कि श्रोता मंत्रमुग्ध-से हो जाते थे। शेर पढ़ते हुए स्वयं शेर बन जाते थे, और व्यथापूर्ण शेर पढ़ते हुए अक्सर रो पड़ते थे। वह ग़ज़ल तो मुझे अब याद नहीं, हाँ वह दृश्य अब भी ज्यों-का-त्यों आँखों में घूम रहा है। 'वोह आ रहे हैं' शेरका कुछ ऐसा मतलब था

---

[1] शेरो-सुखन प्रथम भागमें मिर्ज़ा दाग़के परिचयमें इस तरहके १-२ अवतरण दिये गये हैं; [2] महाराज बहादुर बर्क़का परिचय शेरो-शाइरीमें दिया जा चुका है। माइल साहबका कलाम दस्तयाब होनेपर आगे किसी पुस्तकमें दिया जायगा।

और आपने शेर पढ़ते हुए कुछ इस अदासे दाहिने दरवाजेकी तरफ देखा कि तमाम श्रोता गर्दन फेर-फेरकर उधर देखने लगे, जैसे कि कोई सचमुच आ रहे हैं, और जब आपने इसी मिसरेको पढ़ते हुए बाये दरवाजेकी ओर सकेत किया तो दर्शक उधर देखने लगे थे। उनकी समूची गजलका अन्दाज यही होता था।

आपका रगे-शाइरी वहीं 'दाग' स्कूलका है। आप शाइर होनेके अतिरिक्त बहुत अच्छे गद्य-लेखक और अनुवादक भी थे। आपके साहित्यिक और आलोचनात्मक ३७ लेखोका सकलन 'खुमारिस्तान' प्रकाशित हो चुका है। उमर खैयामकी फारसी रुबाइयोंको उर्दू-रुबाइयोका रूप इस सलीकेसे दिया है कि उमर खैयामकी असल रुबाइयाँ मालूम होती है। आपने कितने ही उपन्यास और नाटक भी लिखे थे।

मझोला कद, जिस्म दुहरा गुदाज था। चेहरा गोल, आँखे बडी-बडी चमकदार और रसीली। सरपर पठानी ढगका साफा, आवाज दर्दीली और पाटदार। १२ मार्च १९४० को आपका निधन हुआ तो दिल्लीके एक अखबारने लिखा—"दिल्लीका जबानदाँ, हिन्दु-मुस्लिम इत्तिहादका सच्चा आशिक़ चल बसा"। दूसरे अखबारने लिखा—

मर गया नाविक-फ़िगन मारेगा दिलपर तीर कौन ?

आपकी कब्रपर जो कतबा लगा हुआ है, उसमे एक मिसरा यह भी है—

आख़िरी शाइर जहाँनाबादका ख़ामोश है

आगा शाइर सहृदय और कोमल स्वभावके थे। नफीस और नाजुक तबीअत पाई थी। अपनी पोशाकको इत्रोमे बसाये रखते थे, वही आगा शाइर अपने इस शेरके अनुसार मिट्टीके नीचे दबे पड़े है—

लहदमे उनके जिस्मे-नाज़नींपर क्या गुज़रती है।
सहरतक[1] जिनको बेचैनी रही हो चीने-बिस्तरकी[2] ॥

---

[1]प्रातःकाल तक, [2]बिस्तरकी सिलवटकी ।

आग़ाशाइर साहबका पहला दीवान 'तीरोनश्तर' १९०९में प्रकाशित हमारे सामने है। जिसमे नज़्मो, कसीदोके अतिरिक्त १०० पृष्ठोमें ३०० गजले है। तीरो-नश्तरसे और कुछ पत्र-पत्रिकाओसे चन्द अशआ़र चुनकर यहाँ दिये जा रहे हैं--

क्या बात है कि आँखमें सुर्मा नहीं है आज।
ख़ाली धरा हुआ है तमंचा चला हुआ॥
उसको ही अद-बदाके मिलाया है ख़ाकमे।
देखा है जिसको चर्ख़ने फूला-फला हुआ॥

कहा जो मैंने कि "पहले तो सीधे-सादे थे।
यह बाँकपन न था, इस तरह पेचो-ताब न था॥
ख़मोश रहते थे गोया ज़बाँ न थी मुँहमें।
यह शोख़ियाँ, यह तलव्वुन, यह इज़्तिराब न था॥
हमेशा फिरते थे बेपरदा सामने मेरे।
खुले थे बन्दे-क़बा और कुछ हिजाब न था॥
यकायक ऐसा हुआ क्या, यह इन्क़लाब न था।
कि परदे लग गये और कोई बारयाब न था॥"
तो मुसकराके कहा--"दूर अक़्लके दुश्मन!
समझ ले इतना कि जब आ़लमे-शबाब न था।"

सर काटकर न आँखोंसे लड़ियाँ बहाइए।
हमको वफ़ाका लुत्फ़ जफ़ा ही में आ गया।

पहले इसमें इक अदा थी, नाज़ था, अन्दाज़ था।
रूठना अब तो तेरी आ़दतमें दाख़िल हो गया॥

यह किसने रौज़ने-दीवारसे हँसकर मुझे झाँका?
कि शोला फिर गया आँखोंमें मेरी बर्क़-सोज़ाँका॥

नब्ज़ देखी, हाल पूछा, उठ चले।
बैठिए साहब, भला यह आये क्या ?

किस तरह जवानीमें चलूं, राहपर नासेह !
यह उम्र ही ऐसी है, सुझाई नहीं देता ॥

जवानी भी अजब शै है कि जब तक है नशा उसका।
मजा है सादे पानीमें शराबे-अर्ग़वानीका ॥

तंग आकर जब कहा मैंने—"नहीं मिलनेके तुम ?"
हँसके बोले—"बस यही फ़िक़रा जवाबी हो गया।"

हाय इस कहनेके सदक़ क्यों न मर जाये कोई।
"मर मिटा कोई तो फिर एहसान हमपर क्या हुआ ?"

जीते-जी तो लाख झगड़े थे बतानेके लिए।
यह किसीने भी न समझाया कि मरकर क्या हुआ ॥

किस अदासे पूछते हैं, मेरी सूरत देखकर—
"यह तेरा क्या हाल है, दो दिनमें कैसा हो गया ?"

जिस ख़ाकमें हों चाँदके टुकड़े हजार-हा।
निस्बत है आस्मानको फिर उस जमींसे क्या ?

जब कहा महशरमें—"सच्चा चाहनेवाला है कौन ?"
उफ़रे शोख़ी मुझको उँगलीसे बताकर रह गया ॥

पहन लें कफ़न अब यह नौबत है अपनी।
मगर है वही हमसे पर्दा तुम्हारा ॥

कहा जलके यह ज़िक्रे-मर्गे-अदूपर ।
"उठाते हैं चलकर जनाज़ा तुम्हारा ।।"

आँखें नशीली, बाल खुले, मुसकराहटें ।
इस वक़्त यह नशा है तुम्हें किस बहारका ?

किसीके रुख़पै हैं ज़ुल्फ़ें कि आफ़ताबमें साँप ।
ख़ुदाकी शान है रहने लगे नक़ाबमें साँप ।।

—दो इजाज़त तो कलेजेसे लगा लूँ रुख़सार ।
सेंक लूँ चोट जिगरकी, इन्हीं अंगारोंपर ।।

लाखमें एक कोई निकलेगा ।
कौन करता है, मुफ़लिसीमें लिहाज़ ?

'शाइर' किसे दिखाऊं ग़ज़ल हाय क्या करूँ ?
मेरे तो दिलसे जा नहीं सकता है दाग़े-'दाग़' ।।

न क्यों गालियाँ खाके होंट उसके चूमूँ ।
कि देती है तल्ख़ी शराब अव्वल-अव्वल ।।
वोह भी न चैनसे कहीं दमभरको रह सका ।
दुनियामें जिसने आके सताये पराये दिल ।।

पहले यह हुक्म था आवाज़ न निकले मुँहसे ।
अब यह ज़िद है कि तड़पते हुए फ़रियाद करें ।।

—जब कभी हमने बुलाया उनको ।
यही कहते हैं—"कहो आते हैं ।।"

मिलना न मिलना यह तो मुक़द्दरकी बात है ।
तुम ख़ुश रहो, रहो मेरे प्यारे, जहाँ कहीं ।।
मैंकश हूँ वोह कि पूछता हूँ उठके हश्रमें--
"क्यों जी शराबकी हैं दुकानें यहाँ कहीं ?"

माना कि देखनेसे भी जीता है आदमी ।
वोह क्या करे जिसे तेरे दरतक गुज़र न हो ।।

हुस्ने-रफ़्ताका अब मलाल ही क्या ?
आरज़ी चीज़ थी रही-न-रही ।।

देखना उनकी शरारत कि अदूकी ख़ातिर ।
मेरे मरनेकी ख़बर झूठ उड़ा रक्खी है ।।

तुम कहाँ, वस्ल कहाँ, वस्लकी उम्मीद कहाँ ?
दिलके बहलानेको इक बात बना रक्खी है ।।

पामाल करके पूछते हैं किस अदासे वोह--
"इस दिलमें आग थी ? मेरे तलवे झुलस गये ।।"

बहुत सुन ली बस अब आपेमें रहिए ।
निकल जाये न कुछ मेरी ज़बाँसे ।।

हमारी दास्ताने-ग़म सुनी, सुनकर यह फ़र्माया--
"जिसे तुम कह रहे हो क्यों जी यह क़िस्सा कहाँतक है ?"

क्यों कर गया, मिला-न-मिला, उसने क्या कहा ?
ऐ नामाबर ! सिरेसे सुना, दास्ताँ मुझे ।।

ख़ुदाकी शान क्या तक़दीर आई है बिगड़नेपर ।
हमारी बात भी जब तुमको गाली होती जाती है ।।

दरवाज़ेपै उस बुतके सौ बार हमें जाना ।
अपना तो यही काबा, अपना तो यही हज है ।।
ऐ अबरूए-जानाँ ! तू, इतना तो बता हमको ।
किस रुखसे करें सिज्दा क़िब्लेमें ज़रा कज है ।।

न छेड़ो अब शिकस्ता ख़ातिरोंको !
कोई ग़मज़े उठायेगा कहाँतक !

बस चलो हो चुका इतना नहीं बनते तौबा ।
देखना रात गुज़र जाय न सामानोंमें ।।
माशा अल्लाह रक़ीबोंका यह जमघट आहा ।
आज तो शमअ़ बने बैठे हो परवानोंमें ।।

ग़रीबोंके मरक़दको ठुकरानेवाले ।
सँभल जानेवाले, सँभल जानेवाले ।।

ख़याले-अबरुए-पुर-ख़मसे इक तसवीर पैदा है ।
ज़रा तुम सामने आना कि हमने चाँद देखा है ।।

उधर जो देखता है, वोह इधर भी देख लेता है ।
तेरी तसवीर बनकर हम तेरी महफ़िलमें रहते हैं ।।

यह चमनका है तसव्वुर कि क़फ़समें पहरों ।
डालियाँ झूमती हैं मुर्ग़े-गिरफ़्तारके पास ।।

दम न निकला सुबहतक शामे-अलम ।
हसरतोंने रातभर पहरा दिया ।।

काबेसे दैर, दैरसे काबा ।
मार डालेगी राहकी गर्दिश ॥

तुम क्या सुनोगे, वाह सितमगरसे क्या कहें ?
हाँ कोई अहले-दर्द हो, पत्थरसे क्या कहें ?

सिधारें भला आप क्या देखते हैं ?
जनाज़ा किसीका, तमाशा किसीका ॥

आदमी-आदमीसे मिलता है ।
बात करनी तो कुछ गुनाह नहीं ॥

रोज़ फ़र्माते हैं "हम चाहें तो मिट जाओ अभी ।"
देखना क्या मेरी तक़दीर बने बैठे हैं ॥

इनकारे-गिरियापर मेरे किस नाज़से कहा—
"आँसू नहीं तो पूछते हो आस्तींसे क्या ?"

लो आओ मैं बताऊँ तिलिस्मे-जहाँका राज़ ।
जो कुछ है सब ख़यालकी मुट्ठीमें बन्द है ॥

बुरे हालसे या भले हालसे ।
तुम्हें क्या ? हमारी बसर हो गई ॥

जो बर्क़ो-बादपर क़ादिर वह इस क़दर मजबूर ।
कि एक साँस बढ़ानेका इख़्तियार नहीं ॥

हम जिलाये गये हैं मरनेको ।
इस करमकी सहार कौन करे ?

हश्रमें इन्साफ़ होगा, बस यही सुनते रहो ।
कुछ यहाँ होता रहा है, कुछ वहाँ हो जायगा ॥

फिर मेरे सरकी क़सम खाकर चले ।
फिर मुझे सरकारने धोका दिया ॥

कोसते हैं सतानेवालेको ।
आपसे तो कोई ख़िताब नहीं ॥

तुम भला कौन थे दिलमें मेरे आनेवाले ।
देखना जान-न-पहचान चले आते हैं ॥

तिनकेकी तरह सैले-हवादिस लिये फिरा ।
तूफ़ान लेके आये थे हम ज़िन्दगीके साथ ॥

उफ़ री शबनम ! इस क़दर नादारियाँ ?
मोतियोंको घासपर फैला दिया !!

ऐ शमअ ! हमसे सोज़े-मुहब्बतके जब्त सीख ।
कम्बख़्त एक रातमें सारी पिघल गई ॥

बर्क़े-ख़िरमन-सोज़ ! अब रखना ज़रा चश्मे-करम ।
चार तिनके फिर जुड़े हैं, आशियानेके लिए ॥

लो हम बतायें ग़ुंच-ओ-गुलमें है फ़र्क़ क्या ?
इक बात है कही हुई, इक बे-कही हुई ॥

९ जून १९५२]



'बेख़ुद' देहलवी

[१८६०—१९५५ ई०]

हाजी सैयद वहीदुद्दीन अहमद 'बेख़ुद' १८६० ई०में भरतपुरमें उत्पन्न हुए, और दो माहके बाद ही आपके पिता अपने वतन दिल्ली ले आये। ४ वर्षकी आयुसे शिक्षा प्रारम्भ हुई।

फ़ारसीका अभ्यास तो पूर्णरूपेण हो सका, किन्तु शाइरीके चस्केके कारण अरबी-शिक्षा अधूरी रह गई। १२ वर्षकी उम्रमें आपने शेर कहना शुरू कर दिया था। आपने जो पहले-पहल शेर कहा, वह यह था—

दिलसे निकल गया कि जिगरसे निकल गया।
तीरे-निगाहे-यार किधरसे निकल गया ॥

आपके बाबा 'सालिक' उपनामसे शाइरी करते थे और मिर्ज़ा ग़ालिबके शिष्य थे। आपके पिता भी 'सालम' उपनामसे शाइरी करते थे, और आपके दो चाचा—'मौज़ूँ' और 'फ़र्द' भी शाइर थे। आपके मामा 'शैदा' उपनाम फ़र्माते थे और 'आज़ुर्दा' आपकी माताके फूफा थे। गोया यूँ कहना चाहिए कि—

पुश्तें गुज़री हैं इसी दश्तकी सैयाहीमें[1] ।

[1]इसी जंगलकी यात्रामें ।

आपके शेर कहनेका यह आलम था कि रोजाना १-२ ग़ज़ल कह लेते थे, और रोजाना फाड डालते थे। इस तरह आपने तकरीबन एक दीवानके योग्य ग़जले स्वय ही नष्ट कर डाली।

एक रोज आपके चचा 'मीजूँ' साहब गजल कह रहे थे। आपने दरियाफ्त फर्माया कि—"आप क्या लिख रहे है"? जवाब मिला—"गजल कह रहा हूँ।" आपने फर्माया कि—"इजाजत दे तो मैं भी इस जमीन मे तबअ-आजमाई करूँ।" चचा बोले—"तुम क्या कहोगे?"

यह बात आपको नागवार हुई! अदबसे चुप हो रहे, कुछ जवाब न दिया। लेकिन दिलमे कहा—"हम गजल जरूर कहेगे।" उस वक्त आप १८ वर्षके थे। फिर क्या था, आपने इस फनमे वोह महारत हासिल की, कि इस घटनाके २५ वर्ष बाद आपके वही चचा साहब अपनी गजलोका सशोधन आपसे कराने लगे।

एक दिन आपके मामा 'रसा' साहब—'हाल कब', 'खाल कब' काफिया-रदीफपर गजल कह रहे थे, रसा साहबने यह किता कहा—

देखो तो आईना जरा ऐ हजरते 'रसा'!
चेहरेसे आश्कार[1] था, रंजो-मलाल कब?
हमने न कह दिया था कि अच्छा नहीं है इश्क़।
कब तुम थे बेक़रार, हुआ था यह हाल कब?

'बेखुद' भी पास ही बैठे थे, आपने तुरन्त ये मिसरे लगाये—

मेरी खता मुआफ़ हो, है शर्मकी यह जा।
यह हाले-जार, और हो हजरत-सा पारसा॥

[1] प्रकट।

बेख़ुदकी शक्लको भी तो दिलसे भुला दिया ।
देखो तो आईना ज़रा ऐ हज़रते 'रसा' !
चेहरे-से आश्कार था रंजो-मलाल कब ?

था क़ौल आपका तो कि गर्दूं-नशीं है इश्क़ ।
या कहते हो कि मौतसे बदतर कहीं है इश्क़ ।।
क्यों है ज़बाँपे दुश्मने-दुनिया-ओ-दीं है इश्क़ ।
हमने न कह दिया था कि अच्छा नहीं है इश्क़ ।।
कब तुम थे बेक़रार, हुआ था यह हाल कब ?

हज़रत 'हाली' उन दिनो आपको 'गालिब' का फारसी दीवान पढाया करते थे। उन्हे जब ये मिसरे सुनाये गये, तो बहुत खुश हुए और उन्होने आपको हजरत दागका शिष्य होनेका मश्विरा दिया। मौलवी 'बेदिल' साहब आपको 'दाग'की खिदमतमें ले गये और आपकी तरफ इशारा करके बोले—"इनको अपना शागिर्द कीजिए।" हजरत 'दाग' ने बेखुदसे अपनी कोई गजल पढनेको कहा। आपने जब यह शेर पढा—

जब आँख पड़ी अपनी, इक बात नई पाई ।
इन देखनेवालोंने तुझको अभी क्या देखा ?

शेर सुना तो दाग फडक गये। बहुत तारीफ की और मौलवी साहबसे फर्माया कि—"कोहना-मश्क (पुराने अभ्यासी) मालूम होते है।" आखिर आपको बताना पड़ा कि १२ वर्षकी उम्रसे रोज़ाना गजल कहता हूँ और फाड डालता हूँ। हजरत 'दाग' आपसे बहुत प्रसन्न हुए और पूरी तवज्जहके साथ आपकी गजलोंका सशोधन करने लगे।

बेखुद छः माह उस्तादके पास हैदराबाद भी रहे और बहुत शीघ्र आप सशोधन करानेके बन्धनसे मुक्त कर दिये गये।

आपकी ज़बान देहलीकी टकसाली जबान है, और आपका भी विश्वास है कि आपको उस्तादकी ज़बान अता हुई है। फर्माते है—

ज़बाँ उस्तादकी 'बेख़ुद' तेरे हिस्सेमें आई है।
फिर इतना भी नहीं कोई, ख़ुदा रक्खे तेरे दमको॥

और उर्दू-ज़बान आपको इस क़दर प्रिय है कि उसके समक्ष फ़ारसीको भी हेच समझते हैं--

बोलनी आ गई जिसे उर्दू।
सामने उसके फ़ारसी क्या है?

आप अपने उस्ताद 'दाग़' के रंगमें ही शेर कहते हैं। वही शोख़ी, वही छेड़-छाड़, वही ताने-शिकवे, वही हरजाई माशूक़ जो 'दाग़' के यहाँ है, वही आपके कलाममें घुले-मिले हैं। 'दाग़' की शाइरीका युग लद गया। दर्जनों इन्क़लाब सरसे गुज़र गये। नज़्मको तो छोड़िए, ग़ज़लकी कायापलट हो गई। मगर आप अपने उसी रंगमें बेख़ुद हैं।

आप 'दाग़' के प्रसिद्ध शिष्योंमें-से हैं, और शाइरीमें उनके उत्तराधिकारी समझे जाते हैं। ३००के लगभग आपके शिष्य हैं। कई मुशाअ़रोंमें मुझे भी आपका कलाम सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरी शादीपर आपने सेहरा लिखकर अ़ता फ़र्माया था। बड़े दबदबेके पुरानी वज़अ़-क़तअ़के बुज़ुर्ग हैं। देहलीकी पुरानी यादगारोंमें आपका दम ग़नीमत है।

जनवरी १९३८में मुद्रित ३३८ पृष्ठका आपकी ग़ज़लोंका संग्रह 'गुफ़्तारे-बेख़ुद' हमारे सामने है, उसमें-से आपका चुना हुआ कलाम पेश किया जाता है--

जो तमाशा नज़र आया उसे देखा समझा ।
जब समझ आ गई दुनियाको तमाशा समझा ।।
गैरियत तक था परेशानी-ओ-फ़ुरक़तका गिला ।
कुछ शिकायत ही न थी, जब उसे अपना समझा ।।

क्या हूँ मैं ? मेरे समझनेको समझ है दरकार ।
ख़ाक समझा जो मुझे ख़ाकका पुतला समझा ।।
एक वोह हैं, जिन्हें दुनियाकी बहारें हैं नसीब ।
एक मैं हूँ, क़फ़से-तंगको दुनिया समझा ।।

यह दिल कभी न मुहब्बतमें कामयाब हुआ ।
मुझे ख़राब किया, आप भी ख़राब हुआ ।।
अजलमें, ज़ीस्तमें, तुरबतमें, हश्रमें, ज़ालिम !
तेरे सितमके लिए मैं ही इन्तिख़ाब हुआ ।।
निगाहे-मस्तको साक़ीकी कौन दे इल्ज़ाम ?
मेरा नसीब कि रुसवा मेरा शबाब हुआ ।।
हमारे इश्क़की दस-बीसने भी दाद न दी ।
किसीका हुस्न ज़मानेमे इन्तिख़ाब हुआ ।।
फनाका दावा हज़ारोंको था ज़मानेमें ।
हुबाबने[1] मुझे देखा, तो आब-आब[2] हुआ ।।

खा के आये हो क़सम आज किसीकी झूठी ।
लबे-रंगींमें वोह शीरीनिए-गुफ़्तार[3] नहीं ।।
मेरे मसकनका[4] पता, तुझको यही काफ़ी है ।
वोह मेरा घर है जहाँ दर नहीं, दीवार नहीं ।।

[1]बुलबुलेने; [2]पानी-पानी; [3]मीठी बोली; [4]घरका ।

साँस गिनता हूँ, तेरी यादमें कितने गुज़रे।
रात-दिन काममें मसरूफ़[1] हूँ, बेकार नहीं ॥

अदा सीखो, अदा लानेके दिन है।
अभी तो दूर शरमानेके दिन है ॥
तुम्हें राज़े-मुहब्बत क्या बतायें ?
तुम्हारे खेलने-खानेके दिन है ॥
छुपाओ मुंह नक़ाब उठने न पाये।
कि रंगे-रुख़[2] निखर जानेके दिन है ॥

कहें किस मुंहसे अपना आईना-बरदार[3] रहने दें।
तमन्ना है ग़ुलामीमें हमें सरकार रहने दे ॥
यह पर्देकी निराली तर्ज़ ऐ पर्दानशीं निकली।
जब आँखे बन्द होती है नज़र आता है तू मुझको ॥
जनाबे शेख़की दावत भी हो, रोज़ा-कुशाई[4] भी।
कहींसे हाथ आ जाये, अगर बेरंगो-बू मुझको ॥
शराबे-इश्क़से मदहोश रहता हूँ मगर 'बेख़ुद' !
फ़रिश्ता भी तो छू सकता नहीं है बेवजू मुझको ॥

काबा-ओ-दैरकी राहे तो खुली है हर-सू[5]।
कोई इतना नहीं, जो दश्ते-मुहब्बतमे रहे ॥
हमसे दुनियाका न सुलझेगा यह गोरखधन्धा।
कौन इस ग़ममें फँसे, कौन मुसीबतमें रहे ॥
बे-ख़लिश जिन्दगिए-इश्क़ मजा देती है।
कामयाबीकी न उम्मीद मुहब्बतमें रहे ॥

---

[1]व्यस्त, [2]कपोलका रग, [3]दर्पण थामनेवाला; [4]रोजा खोलना; [5]हर तरफ़।

वाये वोह आँख जिसे दीदए-मुश्ताक़[२] कहें।
हाय वोह दिल जो गिरफ़्तार मुहब्बतमें रहे॥

लड़ना था अगर मुझसे ख़िलवतमें[३] लड़े होते।
महफ़िलमें जो तुम बिगड़े दुश्मनकी बन आई थी॥

वोह बन्देका ख़ुदा है, उससे बन्दा छुट नहीं सकता।
ज़रा-सी बात पर इन्सॉको इन्सॉ छोड़ सकता है॥

ख़ामोश हूँ मैं और वोह कुछ पूछ रहे हैं।
माथेपै शिकन भी है, इनायतकी नज़र भी॥

क़ुर्बान उस ज़बानके, सदक़े बयानके।
नासेहकी बात ही नहीं, जो बेतुकी न हो॥

ख़ाक भी हम तो न ऐ नासेहे-नादाँ समझे।
जाके समझा तू उसे जो तुझे इन्सॉ समझे॥

चार दाग़ोंपै न एहसान जताओ इतना।
कौन-से बख़्श दिये तुमने ख़ज़ाने हमको?

बिगड़ना उसका ग़ुस्सेमें भी शोख़ीसे नहीं ख़ाली।
मज़ेकी बात कह जाता है, ज़ालिम बेमज़ा होकर॥

अब नाम भी वफ़ाका न लूँगा तमाम उम्र।
मुझसे ख़ता हुई, मुझे बख़्शो किसी तरह॥

हिजाब[४] दूर तुम्हारा शबाब[५] कर देगा।
यह वोह नशा है, तुम्हें बे-हिजाब कर देगा॥

---

[१]अफ़सोस; [२]अभिलाषी नेत्र; [३]एकान्तमें; [४]लाज; [५]यौवन।

दम है बाक़ी, न तग़ाफ़ुलका[1] गिला है बाक़ी।
क़हरकी[2] आँखसे यह किसने इधर देख लिया?

'हाँ' को इतना खींचते क्यों हो ख़ुदाके वास्ते?
फिर तो इस वादेका मतलब दूसरा हो जायगा॥

जो बात न कहनी थी ग़ुस्सेने उगलवा दी।
शरमाये बहुत दिलमें, वह मुझपै ख़फ़ा होकर॥

सोगवारोंमें मेरे हुस्ने-अदा भी हो शरीक।
आईना देखके ज़ुल्फोंको परेशाँ करना॥

हमें तुरबतमें[3] आई नींद यह उनकी इनायत है।
कफ़नमें सरके नीचे अपनी ख़ाके-आस्ताँ[4] रख दी॥
हमें पीनेसे मतलब है, जगहकी क़ैद क्या 'बेख़ुद'!
उसीका नाम काबा रख दिया बोतल जहाँ रख दी॥

तुम कहते हो "दिलमें न कोई मेरे सिवा आये"
क्या टाल दूँ उसको भी मुहब्बत अगर आये?

बेकसीमें था तो ले-देके सहारा उसका था।
मौत भी आकर कफ़े-अफ़सोस मुझपर मल गई॥

वही 'बेख़ुद' हूँ मैं समझे हो बेख़ुद जिसको तुम अपना।
तुम्हारी याद कैसी मैं तो ख़ुद अपनेसे ग़ाफ़िल हूँ॥

नाम 'बेख़ुद' है तो मैख़्वार भी होगा वोह ज़रूर।
पारसा हम तो समझते नहीं, कहता है वही॥

[1]उपेक्षाका; [2]क्रुद्ध दृष्टिसे; [3]क़ब्रमें; [4]चौखटकी मिट्टी।

उनसे कहदे यह कोई, दिलको अलग दफ़न करें।
क्यों क़यामतका यह फ़ित्ना मेरी तुरबतमें रहे॥

ग़ैरके साथ जो वोह फूल चढ़ाने आये।
हट गया अपनी जगह छोड़के मदफ़न मेरा॥

तू-ही-तू हो, जिस तरफ़ देखें उठाकर आँख हम।
तेरे जलवेके सिवा पेशे-नज़र कुछ भी न हो॥

अभी यह जलवानुमाई, अभी कुछ ख़ाक नहीं।
बुल-बुला पानी का इन्सानकी हस्ती कर दी॥

गुज़र जाते हैं दो-दो दिन हमें बेदाना-पानीके।
क़फ़समें कौन खाये बैठकर सैयादके टुकड़े?

ख़ाकमें मिलके भी दावा है मुहब्बतका मुझे।
नहीं मिटती है मिटायेसे भी हैरत तेरी॥

नज़ाकत आईना तक अक्सको जाने नहीं देती।
यही नक़्शा है तो बस खिंच चुकी तसवीर रहने दो॥

ऐ काश मेरी आहमें इतना असर तो हो।
मेरा ख़याल उसको, मुझे देखकर तो हो॥
यह क्या कि आज कुछ है तो कल कुछ ज़बानपर।
शिकवा हो या हो शुक्र, मगर उम्रभर तो हो॥

ना-उमीदीने मिटा दी 'आरज़ू'।
काम यूँ निकले दिले नाकामके॥

फ़र्क़ कुछ आलमे-ईजादसे पहले तो न था।
एक ही रंग था, उस वक़्त तो मेरा-तेरा॥

गुस्ताख़ी-बेअदबकी नज़रसे निहाँ हैं आप।
इतना तो चश्मे-गौरसे पर्दा ज़रूर था॥

वही हम हैं, वही रातें, वही है जुस्तजू तेरी।
वही आँखोंकी हालत है, इधर देखा, उधर देखा॥

दर्दे-दिल जिसका सिला है, वोह दुआ तो यह थी।
आदमी मुझको बनाना, मुझे इन्साँ करना॥

शबए-मज़ार थी न कोई सोगवार था।
तुम जिसपै रो रहे थे, वोह किसका मज़ार था?

सौदाए-इश्क़ और है वहशत कुछ और चीज़।
'मजनूँ' का कोई दोस्त फ़साना-निगार था॥

जादू है या तिलिस्म तुम्हारी ज़बानपै।
तुम झूठ कह रहे थे, मुझे एतबार था॥

क्या-क्या हमारे सिज्देकी रुसवाइयाँ हुईं।
नक़्शे-क़दम किसीका सरे-रहगुज़ार था॥

जवाब सोचकर वोह दिलमें मुसकराते हैं।
अभी ज़बानपै मेरा सवाल भी तो न था॥

बागे-आलमके तमाशाई मुझे भी देख लें।
मैं भी इस गुलशनका हूँ एक फूल कुम्हलाया हुआ॥

या तो है देखनेमें नज़रका मेरी क़सूर।
या कुछ बदल गया है, ज़मानेका हाल अब॥

फिर बेवफ़ासे अ़हदे-वफ़ा ले रहे हैं हम।
बे-एतबारियोंका नहीं एतबार आज॥

हम उसे देखा किये जबतक हमें ग़फ़लत रही।
पड़ गया आँखोंपै पर्दा होश आजानेके बाद॥
मैं हक़ीक़त-आश्ना[1] हूँ हस्तिए-मौहूमका[2]।
देखता हूँ ग़ौरसे फूलोंको मुरझानेके बाद॥
राहमें बैठा हूँ मैं, तुम संगे-रह[3] समझो मुझे।
आदमी बन जाऊँगा कुछ ठोकरें खानेके बाद॥

बज़्मे-दुश्मनमें बना बैठा था मैं तसवीरे-ग़म।
छेड़कर मुझको किसीने छेड़ दी तफ़्सीरे-ग़म॥

चोट खाकर ही तो इन्सान बना करता है।
दिल था बेकार अगर दर्द न होता पैदा॥

ज़बाँपर राज़की बातें है 'बेख़ुद'!
कहींसे आज भी आया है तू क्या?

तुमसे खुलने नहीं देता दिले-बदज़न[4] मेरा।
मेरे पहलूमें छुपा बैठा है दुश्मन मेरा॥

जबतक था दिलमें, आपके इक़रारे-वस्ल था।
जब आगया ज़बानपै इन्कार हो गया॥

छुपकर मेरे दिलमे, सुनो कानोंसे मेरे तुम।
कहता है ज़माना सरे-बाज़ार तुम्हें क्या॥

वही है बेख़ुदे-नाकाम तुम समझ लेना।
शराबख़ानेसे जो होश्यार आयेगा॥

---

[1]वास्तविकताका ज्ञाता [2]कल्पित जीवनका; [3]मार्गका रोड़ा, पत्थर; [4]अविश्वासी हृदय।

आप ही के तो इशारेसे हरइक काम हुआ।
छुप गये आप तो मैं मुफ़्तमें बदनाम हुआ॥

मशरिक़की[१] सिम्त[२] क्यों शबे-वादा[३] है रोशनी?
निकलेगा आज रातको भी आफ़ताब[४] क्या?

दमभरके बाद तुम मुझे पहचानते नहीं।
अब इससे बढ़कर और मिटेगा शबाब क्या?

बैठे हुए हैं सामने सूरत तो देखिए।
'बेख़ुद' है नामके ये पियेंगे शराब क्या॥

पहले ही ज़ख़्मी न करलूँ दिलको नोके-तीरसे।
क्या करूँगा तीर जब उनका ख़ता हो जायगा॥

क्यों दिलके तक़ाज़ेपर बेवक़्त दुआ माँगी?
कुछ जब्र किया होता, कुछ सब्र किया होता॥

तुम्हारे बाद सुना है मेरी अजल[५] आई।
तुम्हारे साथ सुना था मेरा शबाब गया॥

गिनती मुसीबतोंकी शबे-ग़म न पूछिए।
ऐसा हुजूम था कि मेरा दम उलट गया।
दामन किसीका खींच रहा था खयाल मे।
अब देखता हूँ मेरा गरेबान फट गया!

मुझे किस तरह बावर[६] हो, कि वोह तशरीफ़ लाते है।
कलेजेमें न टीस उट्ठी न दिलमे इज़्तिराब[७] आया॥
तुम्हारी एक महफ़िल, उसमें यह दो रंग कैसे है?
कहीं आँखोंमें अश्क[८] आये, कहीं जामे-शराब[९] आया!

---

[१]पूर्वकी, [२]तरफ; [३]वादेकी रात्रि, [४]सूर्य, [५]मृत्यु; [६]विश्वास; [७]बेचैनी, तड़पन; [८]आँसू; [९]शराबका प्याला।

न था फिर मुद्दई दीदारका कोई वही वह थे।
ग़रूरे-हुस्न जब बढ़कर उलटनेको नक़ाब आया॥

भरी महफ़िलमें हुस्नो-इश्क़का बाहम असर देखा।
कभी उसने इधर देखा, कभी हमने उधर देखा॥

तेरे दीदारसे[1] बढ़कर नहीं कोई खुशी हमको।
हिलाले-ईद[2] भी हमने तेरा मुँह देखकर देखा॥
मुहब्बत दिलमें लाये थे, मुहब्बतसे ग़रज़ रक्खी।
गरज़ यह है यही इक ख़्वाब हमने उम्रभर देखा॥

जफ़ाएँ तुम किये जाओ, वफ़ाएँ मैं किये जाऊँ।
तुम अपने फ़नमें कामिल हो, मैं अपने फ़नमें यकता हूँ॥
अजलने मुँहपै मुँह रखकर दमे-आख़िर कहा मुझसे--
"इधर तो देख, आँखे खोल, मैं तेरी तमन्ना हूँ॥"

ग़ाफ़िल है वोह मुझसे, मुझे किस तरह यक़ीं हो।
आँखोंमे फिरा करता है हर वक़्त कहीं हो॥
जब अर्शपै[3] रहते थे, तो अब दिलके मकीं[4] हो।
पहचान लिया मैंने तुम्ही थे वोह, तुम्हीं हो॥

क्या आग लगाये कोई नालेके असरको
पहलूमें वोह बैठे है झुकाये हुए सरको॥
मैं चश्मे-इनायतका[5] भरोसा न करूँगा।
सौ रंग बदलते हुए देखा है नज़रको॥

मैं पूछ तो सकता नहीं रस्ता तेरे घरका।
हैरतसे तका करता हूँ हर राह-गुज़रको॥

---

[1] छवि देखनेसे; [2] ईदका चाँद [3] आकाशमें; [4] वासी; [5] कृपा-दृष्टिका।

मिला होगा न मुझ-सा क़द्रदाँ-दर्दे-मुहब्बतको!
निकल जाता है दम मेरा अगर तस्कीन[1] दमभर हो॥

हाथसे ज़िबह करो, उठ नहीं सकती जो छुरी।
हम तो बेमौत भी मौजूद हैं मरजानेको॥
चौंक उठता हूँ कि दुनियासे सफ़र करना है।
कोई तैयार जो होता है कहीं जानेको॥
कई मैदान तो ऐसे हैं जो तड़पा देंगे।
ख़त्म तक कौन सुनेगा मेरे अफ़सानेको?

हमने 'बेख़ुद' तुझे हँसते हुए देखा न कभी।
ज़िन्दगी ख़्वाब सही सर्फ़े-मतानत क्यों हो?
आँखोंसे रवाँ ऐ दिल! यूँ अश्के-तमन्ना हो।
रुक जाये तो मोती हो, बह निकले तो दरिया हो॥

तुम्हें ग़रज़ जो दिले-दाग़दारको देखो।
तुम अपने हुस्नको, अपनी बहारको देखो॥

पहले तो मुँह-ही-मुँहमें ख़ुदा जाने क्या कहा?
अब मुझपर यह एताब है, तूने सुना नहीं॥
ख़िलवत[2] समझ रहा हूँ तेरी बज़्मे-नाज़को[3]।
मैं क्या करूँ कि ग़ैर मुझे सूझता नहीं॥

सहे हैं ज़ुल्म इतने बन गया हूँ दर्दका पुतला।
जो तोड़ा फूल गुलशनमें तो काँटा चुभगया दिलमें॥

मेरे मदफ़नपै[4] क्यों रोते हो आशिक़ मर नहीं सकता।
यह मर जाना नहीं है, सब आना इसको कहते हैं॥

---

[1]चैन; [2]एकान्त; [3]प्रेयसीकी महफ़िलको; [4]क़ब्रपर।

ज़मानेकी अ़दावतका सबब थी दोस्ती जिनकी।
अब उनको दुश्मनी है हमसे, दुनिया इसको कहते हैं॥

यूँ वरक़ उलटे ज़मानेका तो कैसी सैर हो?
रोज़ तुम हमको मनाओ, रोज़ हम रूठा करें॥

चुभे किसीके न दिलमें इलाही यह काँटा।
हज़ार तरहकी तकलीफ़ है मुहब्बतमें॥

हमारा क़त्ल क्या दुश्वार था, बातोंसे मर जाते।
मगर मुश्किल तो यह है वह इसे मुश्किल समझते हैं॥
वह सुनकर हूरकी तारीफ़ पर्देसे निकल आये।
कहा फिर मुसकराकर—"हुस्ने-ज़ेबा इसको कहते हैं॥"
ग़ैरकी बज़्मसे आये थे अयादतके लिए।
याद है, याद है, वोह आपका एहसाँ मुझको॥



दरे-मस्जिद ही पै मैख़ाना है 'बेख़ुद'! अफ़सोस।
मुझको बदनाम मेरे नक़्शे-क़दम करते हैं॥

२ जून १९५२]

द्वितीय संस्करण के लिए--

हजरत बेखुद देहलवीका ९७ वर्षकी आयुमें २ अक्टूबर १९५५को अपने खान्दानी मकान वाकअ् मटियामहल जामामस्जिद दिल्लीमे इन्ति-काल हो गया। आप भारत-विभाजनके वाद भी पाकिस्तान जानेको तैयार न हुए। हर परिस्थितिमे दिल्लीमे ही रहे। फर्माया करते थे--"यहीमे लाश उठेगी।"

अपने निश्चयके अनुसार दिल्लीमे ही इन्तिकाल किया और वहींकी खाकमे दफन हुए। स्वराज्य होनेके वाद १९४७से भारत सरकार १५० रु० मासिक वृत्ति आपको देती थी।

स्वभाव उग्र और स्वाभिमानी था। आपके सम्बन्धमे चन्द संस्मरण जनाब गुलजार देहलवीसे सुनिए--

"एक मर्त्तवा अल्लामा 'सफी' लखनवीने[1] एक मजलिसमें दरियाफ्त फर्माया--'हजरत यह तो फर्माइए कि आपके खयालमे कौन शाइर वाकमाल और मुस्तनद है।' कुछ इसरार पर फर्माया--'वस दो है, आप और मैं' और कुछ तअम्मुलके वाद कहने लगे--'और आप भी क्या'?

एक मर्त्तवा किसी मुआमलेमे अल्लामा प० अमरनाथ मदन 'साहिर'[2] देहलवीसे इख्तिलाफे-राय हो गया। अहद कर लिया कि कभी साहिर साहबके मुशाअरेमे गजल नही पढ़ूंगा। १९३६में उनकी वज्मे-सुखनकी सेह-रोजा (तीन दिवसीय) जुवली हुई। सारे हिन्दुस्तानके शाइर जमा हुए। मगर 'बेखुद' न आये। मेरे वालिद 'जार' साहव गये तो उनके साथ चलनेपर आमादा हो गये। मजलिसमे आये, मगर मुशाअरेमे गजल न पढी। यूँ हर दूसरे-तीसरे दिन बेखुद और साहिर दोनों साहब एक-दूसरेके यहाँ मिजाजपुर्सी और उठने-बैठनेके लिए आते-जाते रहे।

---

[1] शेरो-सुखन भाग दूसरेमे आपका परिचय एवं कलाम दिया गया है।

[2] आपका परिचय एवं कलाम शेरो-सुखन भाग तीनमे दिया जा चुका है।

गो मेरे वालिदसे ११-१२ बरस उम्रमे बडे थे। मगर हमेशा उनको बडाभाई कहते रहे। वजह पूछने पर फर्माया—'यह नवाब ' ' के मुझसे पहलेके शागिर्द है।' यह तहजीब, यह मुरव्वत, और अखलाक अब कहाँ ?

एक मर्त्तबा चचा, उस्ताद नूह[1] नारवीसे कुछ बरगश्ता खातिर हो गये। एक मुलाकातमे फर्माने लगे—'मियाँ' देखते हो बेटे! वे 'नूह' साहब हमे शेर कहकर देने लगे'। मैंने पूछा—'हुजूर कैसे ?' फर्माया—'उनका मिसरा है—

पदमे देहलवीके कोई 'नारवी' तो है

मै कुछ-कुछ मिजाजसे वाकिफ था। मैंने मुअद्दबाना (बा-अदब) अर्ज की कि—'किबला वे तो आपकी और दिल्लीकी बडी इज्जत करते है। किसीने आपको गलत तरीके पर बहकाया है' पूछा 'क्योकर ?' मैंने नूह साहबका यह शेर सुनाया—

सौ वस्फ़ तुझमे हो मगर ऐ 'नूह' नारवी !
यह दाग़ है जरूर कि तू देहलवी नहीं ॥

यह शेर सुनकर बस एक कहकहेमे सब गुस्सा थूक दिया, और जब नूह साहब किबला देहली तशरीफ लाये तो उसी तरह बगलगीर हुए।"[2]

बेखुद अंग्रेजोको उर्दू पढाया करते थे। नामी शहसवार थे। मुँहजोर-मे-मुँहजोर घोडे उनके पास सधाये जानेके लिए भेजे जाते थे। जवानीका तो जिक्र क्या ८० वर्षकी उम्रमे भी उनके सामने घोडा चीं बोल जाता था। पैराकी, तीर-अन्दाजी, पतंगबाजी, कबूतरबाजी, पहलवानी, आदिका भी अच्छा शौक रखते थे।

[1]आपका परिचय प्रस्तुत भाग मे आगे मिलेगा।
[2]'आइना' देहली ३१ अक्तूबर, १९५५ ई०, पृ० ५ ।

शाहिद अहमद देहलवी साहब आपके बारेमें लिखते है—

"बाते ख़ास दिल्लीवालोके लहजेमे करते और यह बाते बड़ी दिल-चस्प होती। मसलन फर्माते—'मै अब्बाके साथ दादा 'ग़ालिब[१]' के यहाँ ५ सालकी उम्रमे गया था। बिल्लौरी सुराही और गिलास रखा था। एक तश्तरीमे तले हुए बादाम और पिस्ते थे। एक चुस्की लगाते और दो-चार दाने फाँक लेते। अब्बा तो इधर-उधरकी बाते करके नमाज पढने खड़े हो गये और दादा गालिब मुझसे बाते करने लगे। बोले—यारच· लो कुछ खाओ। मैने थोड़े-से बादाम उठा लिये। हँसी-मजाककी बातें करते रहे। फिर बोले—'यारच: ! तुम हमारे सर पर एक धौल तो कसकर लगाओ।' यह कहकर अपना घुटा हुआ सर मेरे आगे कर दिया। मै बचपनमें बहुत शरीर था। धौल रसीद करनेके लिए खड़ा हो गया। अब्बाने जल्दीसे सलाम फेरकर "हूँ-हूँ" कहकर मुझे घूरा और मिर्जासे बोले—'मिर्जासाहब ! अल्लाहने बड़ी ख़ैर की। मुझे तो मुँह दिखाने को जगह न रहती। यह बडा शैतान है। इसका क्या है, यह तो मार बैठता, मगर मै तो कहीका न रहता।'

हमे अगर कोई पुराना लफ़्ज या मुहावरा पूछना होता तो बेखुद साहबसे पूछ लेते, वे बेतकल्लुफ बता देते। एक दफा खुद उनके इस मक्तेका मतलब उनसे पूछा—

बेख़ुदके लब भी तर न हुए वक़्ते-मैकशी।
आलूदए - शराब गरेबान ही रहा॥

फ़र्माने लगे—'दरअस्ल यह शेर एक वाक़एसे मुतअ़ल्लिक़ है। मै फलाँ रियासतमे मुलाजिम था। रईसकी महफिले-खास रोजाना रातको सजती। जब दौरे-शराब चलता तो रईसकी मंजूरे-नज़र तवाइफ़

[१]उर्दू के अमर शाइर 'गालिब'—आपका परिचय शेरो-शाइरी और शेरो-सुख़न प्रथम भागमें विस्तारसे दिया जा चुका है।

जाम भर कर मुकर्रबीनको पेश करती। इङ्कार की मजाल किसी को न होती थी। मैं भी उससे जाम लेता और मुँह तक लेजाकर चुपके-से अपने गरेबानमें उलट लेता था[1] ?'

चन्द शेर—

मुहब्बतमें इक इन्क़िलाब आगया।
उन्हें आज मुझसे हिजाब आगया॥
वह छोड़ेगा अब ज़िन्दा किसको यहाँ ?
क़यामतसे पहले शबाब आगया॥
हँसानेको छेड़ा था मैंने उसे।
तबस्सुमके बदले अ़ताब आगया॥

१२ सितम्बर १९५७ ई०]

[1] नक़ूश जनवरी १९५६ ई०, पृ० ५१६-१७ ।

'बेख़ुद' बदायूनी

[१८५७ — १९२६ ई०]

मौलवी अब्दुलहई 'बेख़ुद' १७ सितम्बर १८५७ ई० में बदायूंमें उत्पन्न हुए। आपके पिताका नाम मौ० ग़ुलाम सरवर था। अरबी-फ़ारसीकी शिक्षाके लिए कई उस्ताद नियुक्त किये गये, किन्तु पूर्णरूपेण शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। इसकी वजह स्वयं फ़र्माते हैं—"आँखें हुस्न-तलब, दिल दर्द-आश्ना, तबीअत नफ़ासत-पसन्द और मिज़ाज आज़ादी-जू था। १४-१५ बरसकी उम्रसे शेर कहने लगे।"

जब तबीअतका यह हाल हो, तब पढ़ना-लिखना क्या ख़ाक होता? फिर भी आश्चर्य है कि १८७५ ई० में आपने वकालत पास कर ली। कुछ दिनों शाहजहाँपुरमें वकालत करनेके बाद राजस्थानकी सिरोही रियासतमें जूडीशियल ऑफ़ीसर हो गये। वहाँसे रिटायर होकर जोधपुरमें स्पेशल मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए और मृत्युपर्यन्त १९२६ ई० तक वहीं रहे।

प्रारम्भमें आपने 'हाली'से मशविरए-सुख़न लिया। बादमें आप 'दाग़'के शिष्य हो गये, और उनकी सेवामें रहनेका भी आपको सौभाग्य मिला। जब ३६ वर्ष निरन्तर शाइरी करते हुए हो गये और एक भी शेर आपने किसी पत्र-पत्रिकामें छपने नहीं भेजा, तब आपके इष्ट-मित्रोंने किसी तरह आपसे कलाम लेकर प्रकाशित कराया। ५३ वर्षकी आयु होनेपर आपका पहला दीवान व-मुश्किल प्रकाशित हुआ। खेद है कि

हमें आपका दीवान दस्तयाब नही हो सका। यहाँ हम 'बहार' कोटी द्वारा सकलित, 'शाइर' जून १९४४ मे प्रकाशित अशआ़रमे-से चन्द शेर दे रहे हैं—

असर दुआ़का न हो, ज़हरकी तो हो तासीर।
कोई सबील तो निकले क़ज़ाके आनेकी ॥

दिल दिया, दर्द दिया, दर्दमे लज़्ज़त दी है।
मेरे अल्लाहने क्या-क्या मुझे दौलत दी है ॥

दी क़सम वस्लमें उस बुतको ख़ुदाकी तो कहा—
"तुझको आता है ख़ुदा याद हमारे होते ?"

सच है 'बेख़ुद' से क्या मिले कोई।
आदमी-आदमीसे मिलता है ॥

हमींने मस्लहतन की तलबमे कोताही।
असर तो दौड़के आता जो हम दुआ़ करते ॥

ग़ैर अच्छा ही सही, 'बेख़ुद' निकम्मा ही सही।
आप ऐसा ही समझते है तो ऐसा ही सही ॥

नाज़ाँ है इसपै वोह कि बड़े बे-वफ़ा है हम।
अब बेवफ़ाइयोंका गिला कोई क्या करे ?

किस आ़जिज़ीसे हमने कहा—"बेक़रार है"।
किस बेरुख़ीसे उसने कहा "कोई क्या करे ?"

क्या हश्र किया है, निगहे-शर्मने बरपा।
इतना तो कोई आँख उठाकर ज़रा देखे ॥

रंज हो, दर्द हो, वहशत हो, जुनूं हो, कुछ हो।
आप जिस हालसे ख़ुश हों, वही हाल अच्छा है ॥

अबूसे बज़्ममें तुम तो इशारा कर बैठे ।
हमारे मुंहसे भी नाले अगर निकल जाते ?

७ जून १९५२ ई०]

द्वितीय संस्करण के लिए—

दर्दे-दिलमें कमी न हो जाये ।
दोस्ती दुश्मनी न हो जाये ?
तुम मेरी दोस्तीका दम न भरो ।
आस्माँ मुद्दई न हो जाये ?
बैठता है हमेशा रिन्दोंमें ।
कहीं ज़ाहिद वली न हो जाये ?
अपनी ख़ूए-वफ़ासे डरता हूँ ।
आशिक़ी बन्दगी न हो जाये ?
कहीं 'बेख़ुद' तुम्हारी ख़ुद्दारी ।
दुश्मने-बेख़ुदी न हो जाये ?

—नक़ूश ग़ज़ल-नम्बर



'नूह' नारवी

[१८७६.....ई०]

नूह साहब मिर्ज़ा दाग़के ख्यातिप्राप्त शिष्योंमें-से हैं, उन्हींके रंगमें शेर कहते हैं। वही टकसाली, चुस्त और मुहावरेदार भाषा, वही रंगीनी और शोख़ी, वही बात-में-बात पैदा करनेका हुनर, वही परम्परागत भाव, जो दाग़ स्कूलकी विशेषता है, आपके कलाममें भी पाई जाती है। आपके 'सफ़ीनए-नूह' और 'तूफ़ाने-नूह' दो दीवान प्रकाशित हो चुके हैं। तीसरा दीवान मुद्रणकी प्रतीक्षामें है। आपके ४००के लगभग शिष्य हैं।

उनमें-से कितने ही शिष्योंके कलाम प्रकाशित हो चुके हैं और वे भी अनेक शिष्योंके उस्ताद हैं। गोया 'नूह' साहब सैकड़ों शाइरोंके दादा उस्ताद हैं। श्री सुखदेवप्रसाद 'बिस्मिल' इलाहाबादी आपके ही योग्य शिष्योंमें-से हैं।

'नूह' साहब मुद्दतों उस्तादके पास हैदराबाद रहे हैं, और अपनेको उनका जा-नशीन कहते हैं।

आपका जन्म १८ सितम्बर १८७६ ई० में हुआ। इलाहाबाद ज़िलेके नारा गाँवके आप रईस हैं। यह गाँव १८५७ ई० के विप्लवमें ख़ैरख़्वाही करनेके एवज़में अंग्रेज़ी सरकारसे आपके पिताको मिला था। वार्षिक आय दस हज़ार रु० है। आपने अ़रबी-फ़ारसीके अतिरिक्त अंग्रेज़ी शिक्षा भी प्राप्त की है।

'नूह' की आँखोंसे निकले सैकड़ों तूफ़ाने-अश्क ।
उसका रोना भी है तो दरियादिलीके साथ है ।।

फ़लकके पार होती है, कलेजेमें उतरती है ।
हमारी एक-इक फ़रियाद दो-दो काम करती है ।।
हमारा दिल हो या उनकी जबाँ, दोनों ही आफ़त हैं।
यह सब कुछ कर गुज़रता है, वह सब कुछ कह गुज़रती है ।।

बयाने-ग़मका कोई क़द्रदाँ नहीं मिलता ।
मुझीको लोग सुनाते हैं दास्ताँ मेरी ।।

निगाहे-ग़ौरसे सैयाद उसको देखते हैं ।
हिलाले-ईद है, क्या शाख़े-आशियाँ मेरी ?

ख़ारे-सहरा ख़ुद कफ़े-पासे अलग हो जायेंगे ।
आप वह काँटा निकालें जो हमारे दिलमें है ।।

बाद मरनेके भी दिल लाखों तरहके ग़ममें है ।
हम नहीं दुनियामें लेकिन एक दुनिया हममें है ।।

जो न दिनको पास आया, जो न ठहरा रातको ।
है उसीका ज़िक्र, उसीकी याद सोते-जागते ।।

ख़ुदाके डरसे तुमको हम, ख़ुदा तो कह नहीं सकते ।
मगर लुत्फ़े-ख़ुदा, क़हरे-ख़ुदा, शाने-ख़ुदा, तुम हो ।।

गुज़रती है बशरकी ज़िन्दगी किस-किस तवह्हुममें ।
जो ऐसे हो तो ऐसा हो, जो ऐसा हो तो, ऐसा हो ।।

तुम्हारे वादए-फ़रदापै क्योंकर एतबार आये ?
कभी कुछ हो, कभी कुछ हो, कभी क्या हो, कभी क्या हो ।।

हज़ारों शोखियाँ, फिर शोखियोंमें सैकड़ों गमज़े ।
तुम्हें दुनियासे क्या मतलब कि तुम ख़ुद एक दुनिया हो ।।

मेरी तद्बीरने मुझको मेरी तक़दीरपै टाला ।
मगर अब देखिए तक़दीर क्या तद्बीर करती है ।।

उसे सौ तरहका ख़याल है, हमे सौ तरहका लिहाज़ है ।
कहीं आये क्यों, कहीं जाये क्यों ? कहीं आये क्या, कहीं जाये क्या ?

तुम्हारी तमन्ना भी क्या दिलनशीं है ?
वहीं थी जहाँ है, जहाँ थी वहीं है ।।

वोह लिये जाते हैं दिलको अपने साथ ।
देखता जाता है मेरा दिल मुझे ।।

नब्ज़ साकित, सर्द जिस्म, अहबाब चुप, हैरॉ तबीब ।
अब मेरे अल्लाहको कुछ और ही मंज़ूर है ।।*

लड़खड़ाकर कभी क़दमोंपै जो साक़ीके गिरे ।
फेंककर जामो-सबू, उसने सँभाला हमको ।।

और तो उल्फ़त न निभनेका सबब कोई नहीं ।
या बुराई आपमें है या बुराई हममे है ।।

ब-ज़ाहिर तो हमारे इश्क़की तारीफ़ होती है ।
समझते हैं वोह जैसा दिलमें, उसको हम समझते है ।।

उन्हें हिजाब, अदू शादमाँ, अज़ीज़ निढाल ।
मेरा जनाज़ा भी कोई उठायेगा कि नहीं ?

—सीमाब अकबराबादी

शमअ़के सर भी मुसीबत आई परवानके साथ ।
कर दिया दोनोंको उसने अपनी महफ़िलसे अलग ।।

—आजकल १ नवम्बर १९४५ ई०

वफ़ा-ओ-मेहरके[1] बाद आपका मग़रूर[2] हो जाना ।
यह ऐसा है कि जैसे पास होकर दूर हो जाना ।।

क्योंकर बसर हुई शबे-फ़ुरक़त न पूछिए ।
सब मुझसे पूछिए, यह हक़ीक़त न पूछिए ।।*

असीराने-क़फ़सको वास्ता क्या इन झमेलोंसे ।
चमनमें कब खिज़ाँ आई, चमनमें कब बहार आई ।।

आप हैं, हम हैं, मैं हैं, साक़ी है ।
यह भी एक अम्र[3]-इत्तिफ़ाक़ी है ।।
हो गईं ख़त्म हिज्रकी घड़ियाँ ।
और थोड़ी-सी रात बाक़ी है ।।

दिल है तो उसीका है, जिगर है तो उसीका ।
अपनेको रहे-इ़श्क़में बरबाद जो कर दे ।।

यह मैं तस्लीम करता हूँ कि इससे तुमको नफ़रत है ।
मगर इतना समझ रक्खो मुहब्बत फिर मुहब्बत है ।।

---

[1]नेकी और कृपाके; [2]अभिमानी; [3] आकस्मिक घटना।

*इसी काफिये और बहर में तस्कीन कुरैशीने क्या खूब शेर कहा है—

कुछ और पूछिए यह हक़ीक़त न पूछिए ।
क्यों आपसे है मुझको मुहब्बत, न पूछिए ।।

हम उनसे क्यों कहें आज़ारे-दुनिया[1] मुल्तवी कर दो ।
तबीअ़त रफ़्ता-रफ़्ता ख़ूगरे-ग़म[2] होती जाती है ॥

हर सदाए-इश्क़में एक राज़ है ।
नालए-दिल ग़ैबकी पहचान है ॥

कुछ न कहना भी किसीके सामने ।
इक तरहका इन्किशाफ़े-राज़[3] है ॥
इश्क़ने दिलको पुकारा इस तरह ।
मैं यह समझा आपकी आवाज़ है ॥
उनसे मिलकर मैं उन्हींमें खो गया ।
और जो कुछ है, वह आगे राज़[4] है ॥
हुस्नके जलवोंको अपने दिलमें देख ।
लनतरानी दूरकी आवाज़ है ॥

क़ब्रोंके मनाज़िरने करवट न कभी बदली ।
अन्दर वही आबादी, बाहर वही वीराना ॥

वोह नादिम[5] हुए क़त्ल करनेके बाद ।
मिली ज़िन्दगी मुझको मरनेके बाद ॥
रहा ज़िन्दा-दरगोर[6] मरनेसे क़ब्ल[7] ।
ख़ुदा जाने क्या होगा मरनेके बाद ?

अब और इससे सिवा हाले-ज़ार क्या होगा ?
वोह मुझको देखने आये, मगर न देख सके ॥

---

[1]संसारके दुःख; [2]दुखोंकी अभ्यस्त; [3]भेदका प्रकट करना; [4]भेद; [5]शर्मिन्दा; [6]जीवित ही मृतकके समान; [7]पूर्व ।

हम बड़ी देरसे यह देखते हैं ।
इस तरफ़ कोई देखता भी नहीं ॥

—निगार जनवरी १९४१ ई०

सिवा इसके दुनियामें क्या हो रहा है ।
कोई हँस रहा है, कोई रो रहा है ॥
अरे चौंक यह ख़्वाबे-ग़फ़लत कहाँतक ?
सहर हो गई और तू सो रहा है ॥
सितम अपने ही अहले-इश्क़ो-वफ़ापर ।
यह क्या कर रहे हो, यह क्या हो रहा है ?
मुझी तक नहीं ज़ुल्म महदूद तेरा ।
मेरे साथ सारा जहाँ रो रहा है ॥

—आजकल १५ अगस्त १९४९ ई०

कुछ मजाकिया कलाम—

अहले-मशरिक़से नहीं करते वोह बात !
अहले-मग़रिबकी यही पहचान है ॥
रोज़के चन्दोंसे आजिज़ आ गये ।
लीजिए हाज़िर हमारी जान है ॥

रेलपर क़ुर्बान, होटलपर निसार ।
बाप-दादाकी कमाई हो गई ॥
पास आयाके जो मैं आया-गया ।
ख़ानसामासे लड़ाई हो गई ॥

२ मई १९५२]

'अहसन' मारहरवी

[१८७६—१९४० ई०]



सैयद अलीहसन, मारहरह ज़िला एटा निवासी थे। आपका जन्म ई० स० १८७६ में और निधन ३० अगस्त १९४० में हुआ। १८९४ ई० में आप मिर्ज़ा 'दाग़' के शिष्य हुए। प्रारम्भमें पत्र-व्यवहारद्वारा अपना कलाम संशोधन कराते रहे, बादमें उस्तादके चरणोंमें रहनेका भी काफ़ी अर्से सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उस्तादके पास हैदराबादमें रहते हुए, आपने उस्तादका जीवन-चरित्र "जलवए-दाग़" लिखा। उस्तादकी मृत्युके बाद आप वहाँसे चले आये। 'कुल्लियाते-वली' और 'तारीखे-नस्रे-उर्दू' आपके दो ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। आपने अत्यन्त परिश्रम करके उस्तादके वृहत चारों दीवानोंका संक्षिप्त संकलन किया था। खेद है कि वह आपके जीवनकालमें प्रकाशित न होकर एक वर्ष बाद प्रकाशित हुआ।

आपका सरमायए-कलाम और शिष्य बहुत हैं। अफ़सोस है कि अभीतक आपका दीवान प्रकाशित नहीं हुआ। 'मुन्तखिबे-दाग़'में आपके १५०के क़रीब अशआ़र परिचयके साथ दिये हुए हैं। उन्हींमें-से चन्द यहाँ दिये जा रहे हैं।

अहसन पुराने उस्तादोंमें-से थे, कलाम भी वही दाग़-स्कूलके नमूनेका

पुराने ढर्रेका है। हम उनका कलाम सनवा र दे रहे है, इससे मालूम होगा कि उनके कलाममें उत्तरोत्तर विकास और परिवर्तन होता गया है।

१८९५ से १९०५ ई० तकके प्रारम्भिक चन्द शेर—

ऐसे दीदारमें मज़ा क्या था ?
न सुना कुछ, न कुछ कलाम किया।
उस तरफ़ आँखने उसे देखा।
इस तरफ़ दिलने अपना काम किया॥
वस्लकी शबका इन्तिज़ार न पूछ।
हमने मर-मरके दिन तमाम किया॥

१९१० के लगभगका कलाम—

न दफ़्तर खोल तू ऐ नामा-बर ! इतना बता मुझको।
गया था जिस ग़रज़से तू वहाँ वोह बात भी ठहरी॥
क़यामत भी उसी दिन 'अहसन' अपना सर उठायेगी।
हमारी साँस जिस दिन चलते-चलते इक घड़ी ठहरी॥

दिल गया है ज़रूर उनके साथ।
क्यों गया यह ख़बर नहीं मुझको॥
क़ब्रमें भी तो मरके पहुँचा हूँ।
रास कोई सफ़र नहीं मुझको॥

बहुत बढ़-चढ़के दावे चौदहवींका चाँद करता है।
तुम्हें मेरी क़सम उठना, ज़रा तुम भी सँवर जाना॥
कलाई जिनकी शाख़े-गुल है, वोह क्या तेग़ उठायेंगे।
उठायें भी तो क्या उन फूलकी छड़ियोंसे डर जाना ?

क्या करे उम्रे-दोरोज़ापै कोई सैरे-जहाँ ?
खेल है ख़त्म ख़ुद अपना ही, तमाशा किसका ?

आये तो तेरा ज़िक्र किसीकी ज़बानपर ।
हो ग़ैर भी तो चूम लूँ मुंह इस बयान पर ।।

१९२३ का कलाम--

संगे-दर[1] बनकर भी क्या हसरत[2] मेरे दिलमें नहीं ।
तेरे क़दमोंमें हूँ लेकिन, तेरी महफ़िलमें नहीं ।।

रोक ले ऐ जब्त ! जो आँसू कि चश्मे-तरमें है ।
कुछ नहीं बिगड़ा अभी तक घरकी दौलत घरमें है ।।

लोग महफ़िलमें तुझे ऐ इश्वा-गर ! देखा किये ।
हम अलग बैठे हुए सबकी नज़र देखा किये ।।
हमने देखा एक ही शब ख़्वाब उनके वस्लका ।
और ताबीर उसकी दुश्मन उम्रभर देखा किये ।।
देखना तद्बीरे-मंज़िल वहशियाने-इश्क़की !
करके वीराँ अपने घरको उनका दर देखा किये ।।

न सही क़ब्रमें आकर मुझे राहत न सही ।
तेरे चक्करसे तो ऐ गर्दिशे-दौराँ ! निकला ।।

१९२४ का कलाम--

दिल इधर है पज़मुर्दा, जाँ उधर है अफ़सुर्दा ।
किसको इन हवादिसपर एतबारे-हस्ती है ?

देखते और वोह क्या, हाले-मरीज़े-वहशत ।
जाँ-ब-लब देख लिया, ख़ाक-ब-सर देख लिया ।।

---

[1]दरका पत्थर; [2]अभिलाषा ।

न मिली सैले-हवादिससे कहीं मुझको पनाह ।
मैंने साहिलको भी बा-दीदए-तर देख लिया ।।

ज़माना बदलता रहा लाख चालें ।
मगर फ़र्क़ आया न उनके चलनमें ।।
यह है मरके भी शर्मे-इसयाँका आ़लम ।
कि हम मुँह लपेटे पड़े हैं कफ़नमें ।।
हुआ चाक जिस वक़्त दामाने-हस्ती ।
लगा फिर न पैवन्द इस पैरहनमें ।।

दुनियाकी लग़्व-गोई, ऐ इ़श्क़ ! तूने देखी !
आबादियोंको तेरी वीराना कह रही है ।।

पयाम आया न ख़त आया, न वोह आये, न मौत आई ।
मेरी सइये-तलब सब राएगाँ मालूम होती है ।।
मज़े ले-लेके ज़िक्रे-हूरो-ग़िलमाँ शेख़ करते हैं ।
तबीअ़त पीरे-मुर्शिदकी जवाँ मालूम होती है ।।

खुल गया, ख़ाली हवा-बन्दी है राज़े-ज़िन्दगी ।
यानी इक-तारे-नफ़स है, नग़मा-साज़े-ज़िन्दगी ।।

कभी सुलह हो, कभी जंग हो, कभी संग हो, कभी मोम हो ।
जो यह हर घड़ी तेरा ढंग हो, तो हो कौन ऐसी अदासे ख़ुश ।।

१९३६का कलाम—

बड़े नाफ़हम हैं, वोह जो उन्हें क़ातिल समझते हैं ।
हम उनकी दिल-सिताईको हयाते-दिल समझते हैं ।।
मज़ालिम ही सही वाबस्तगी तो उनसे क़ायम है ।
ग़नीमत है कि वोह हमको किसी क़ाबिल समझते हैं ।।

ख़ुदावन्दाने-उल्फ़तका भी उलटा कारख़ाना है ।
कि ख़ुद दिल माँगते है, और हमे साइल समझते ह ।।

ख़ुदकुशीका शबे-ग़म तजरुबा करने न दिया ।
मौतने वक़्तसे पहले मुझे मरने न दिया ।।

फ़ना बग़ैर बक़ाका मज़ा नहीं मिलता ।
ख़ुदी मिटाओ न जबतक ख़ुदा नहीं मिलता ।।

किसीको भेजकर ख़त, हाय ! कैसा यह अताब आया ।
कि हर-इक पूछता है "नामा-बर आया, जवाब आया" ?

जमाकर हुस्ने-बे-परवाने सिक्का बे-नियाजीका ।
चलन उठवा दिया कम-हिम्मतोंसे इश्क़बाज़ीका ।।

जबीं काबेमे रख दी या सरे कूए-बुताँ रख दी ।
ग़रज़ अब उठ नहीं सकती, जहाँ रख दी, वहाँ रख दी ।।

अन्तिम ग़जल, जो उन्होने जुलाई १९४० मे कही, उसके चन्द अशआर——

दामनोंको बाँध लेते क्यों गिरेबानोंके पास ?
अक़्ल अगर होती गिरहकी तेरे दीवानोंके पास ।।
वस्लमें भी सोज़े-फ़ुरकतका मज़ा जाता नहीं ।
शमअ रो-रोकर जला करती है परवानोंके पास ।।
दब सकी पस्ती बुलन्दीकी, ज़बरदस्तीसे कब ?
झोंपड़े अक्सर नज़र आते है ईवानोंके पास ।।
तेरे दीवानोंका आबादीमें जी लगता नहीं ।
बस्तियाँ उनकी बसा करतीं है वीरानोंके पास ।।

२७ मई० १९५२ ई०]

नसीम भरतपुरी

[१८५९–१९०९ ई०]

सैयद शब्बीर सेन जाफ़री 'नसीम' के पिताका नाम मीर इल्तिमास हुसेन था। आप भरतपुर निवासी और मिर्ज़ा दाग़के शिष्य थे और उनके रंगमें बहुत खूब कहते थे। हमें खेद है कि प्रयत्न करनेपर भी आपका दीवान हमें प्राप्त नहीं हो सका। मालूम हुआ है कि आपका एक दीवान प्रकाशित हुआ था। न किसी तज़किरेमें ही आपका परिचय और कलाम दिखाई दिया। सौभाग्यसे अध्ययन करते हुए जनाब मुहम्मद वशीर साहबका डेढ़ पृष्ठका लेख 'आजकल' १ सितम्बर १९४५ के अंकमें दिखाई दे गया, उसीसे परिचय और कलाम यहाँ दिया जा रहा है।

नसीमका व्यक्तित्व कैसा था, इसका कुछ अन्दाज़ा उनके इस मक़्तेसे लगाया जा सकता है—

रईस-ज़ादा था, बा-वज़अ़ था, मुहज़्ज़ब था।
तुम्हें 'नसीम'से कुछ तो कलाम करना था॥

नसीम बलाके ज़हीन और तेज़ थे। अ़रबी-फ़ारसीकी शिक्षा आपने शीघ्र ही प्राप्त कर ली। मिर्ज़ा 'दाग़' उन दिनों रामपुरमें क़याम फ़र्माते थे, तभी आप १८७६ ई०में पत्र-व्यवहार-द्वारा उन्हें अपना गुरु बनाकर गज़लोंपर संशोधन लेने लगे।

मिर्ज़ा दाग़को होनहार शिष्यकी तेज़ तबीअ़त भाँपते देर न लगी और उन्होंने आपको अपने पास रामपुर बुला लिया।

वहाँ एक रोज़ ख़्वाजा 'क़लक़'ने नसीमसे अपना कलाम सुनानेकी

फर्माइश की। नसीम संगलाख़ जमीनोके आशिक थे। उन्होंने अपनी ताजा गजल—'मिनक़ार चुटकीमें' सुनाई—

'नहीं' करते उन्हें कुछ देर लगती है, न 'हाँ' करते।
अभी इनकार चुटकीमें, अभी इक़रार चुटकीमें॥

कलकको शक हुआ कि यह गजल 'नसीम' की नही है। दागने शागिर्दका दिल बढानेके लिए दे दी है। नसीमसे और दो-चार शेर इसी जमीनमे कहनेकी फर्माइश की। उन्होने फिलबदीह एक और गजल 'चुटकीमे' वही कहकर पढी—

हक़ीक़त कबक[1]-ओ-ताऊसे[2] गुलिस्ताँकी भला क्या है?
क़यामतको उड़ाती है तेरी रफ़्तार चुटकीमे॥
लिया था इस जमींमे, इम्तिहाने-तबअ़ यारोंने।
किये मौज़ूँ यह हमने ऐ 'नसीम'! अशआ़र चुटकीमें॥

इस फिलबदीह गजलकी 'अमीर' मीनाई, 'मुनीर' शिकोहाबादी, और 'कलक'ने बेहद तारीफ की। जौहर-शनास उस्तादने बहुत कद्रकी नजरसे शागिर्दको देखा और उसकी हिम्मत बढाई।

दागने जब हैदराबादसे अपना दीवान 'महताबे-दाग' प्रकाशित करना चाहा तो 'नसीम'को भरतपुरसे हैदराबाद बुलाकर उसकी तरतीबका कार्य आपके सुपुर्द कर दिया था। 'दाग'की ख्यातिसे कुढकर जब कुछ ईर्ष्यालुओने आलोचनात्मक हमले किये तो अकीदतमन्द शागिर्द नसीमने सीना-सिपर होकर बडे दन्दान-शिकन जवाब दिये और इन एतराजोके जवाबमे 'ताजियाना' नामक पत्रका प्रकाशन शुरू किया। कहते है कि एक मर्तबा किसीने कहा कि 'अमीर' मीनाईके शागिर्दोमे

---

[1]चकोर, [2]मोर।

'रियाज' खैराबादीका जवाब नही है तो 'दाग' ने मुसकराकर नसीमकी तरफ देखा और कहा—"मेरा रियाज नसीम" है। हैदराबादमें एक बहुत मार्केका मुशाअरा हुआ। मिसरा तरह था—

यह चोटी किस लिए पीछे पड़ी है ?*

मिर्जा दागने अपने एक खतमें लिखा था—"तमाम शहरने इसमें गजल कही है। लखनऊ तकसे गजलें चली आ रही है।" 'नसीम' ने भी गजल कही। सुनते है यह गजल दागने अपनी गजलके साथ 'अमीर' मीनाईको लखनऊ भेजी थी—

वोह आये ऐसी उनको क्या पड़ी है ?
यह तूने दिलसे ऐ क़ासिद ! घड़ी है ॥
बुरा है इश्क यह मैं जानता हूँ ।
मगर नासेहसे जिद-सी आ पड़ी है ॥

मर्सिया-गोईमें भी 'नसीम'ने अपने खूब जौहर दिखलाये है, अफसोस है कि मर्सियेका दीवान अभीतक प्रकाशित नहीं हो पाया है।

नसीम निहायत खलीक और बा-वजअ आदमी थे। रियासत भरत-पुरमें सब इन्सपेक्टर पुलिस थे। आपका इन्तिकाल १९०९ ई०में हो

---

*इस मिसरेपर 'रियाज' खैराबादीने यह गिरह लगाई थी—

रहे सीना तना लंगरसे इसकी ।
यह चोटी इसलिए, पीछे पड़ी है ॥

[पतगमें बाज दफा नीचेकी तरफ कपडेकी धज्जी-सी बाँध देते है, ताकि पतंग हवाके रुखपर ठीक तनी रहे। उसी खयालको किस खूबीसे रियाजने बाँधा है।]

गया था। 'नसीम' ने अपने उस्तादके प्रति कृतज्ञता इन शब्दोमें व्यक्त की है—

आ गया और ही कुछ रंग तबीअतमे 'नसीम' !
हाथ जब 'दाग़' सुख़न-संज-सा उस्ताद आया ॥

इस मक़्तेको पढकर ही सम्भवत: सर 'इकबाल'ने यह शेर कहा होगा—

'नसीम'-ओ-'तिश्ना' ही 'इक़बाल' कुछ इसपर नहीं नाज़ाँ।
मुझे भी फ़ख्र है शागिर्दिए-दाग़े-सुख़न-दाँपर ॥

नसीम भरतपुरीके चन्द चुने हुए शेर दिये जा रहे है—

ग़ैरके घर है वोह मेहमान, बड़ी मुश्किल है।
जान जानेके है सामान, बड़ी मुश्किल है ॥

सुबह चलना कूए-जानाँमे 'नसीम' !
अब यह क्या मौक़ा है ? आधी रात है ॥

वफ़ा अग़ियार तुमसे क्या करेंगे ?
जो यह होगी तो कुछ होगी हमींसे ॥

ख़तमें उसने ग़ैरका लिक्खा सलाम।
यह भी लिक्खा था मेरी तक़दीरमें ॥

आप नाराज़ न हों, आपका कुछ ज़िक्र नहीं।
अपने दिलसे है गिला आपसे क़िस्सा क्या है ?

तुम सुनोगे उसे ? तुम सुनके तसल्ली दोगे ?
वाह, क्या ख़ूब ! कहूँ तुमसे फ़िसाना दिलका !!

कल दाम भीक माँगके भी देंगे साक़िया !
पिलवादे बहरे-साक़िए-कौसर उधार आज ॥

क़ियामत भी कल आई जाती है ऐ हज़रते-वाइज़ !
तुम्हें अल्लाह हूरें बख़्श देगा, हम भी देखेंगे ॥

ख़ुदा-ख़ुदा करो मैं कब गया था मस्जिदमें ?
मुझे लगाओगे इल्ज़ाम पारसाईका !!

'नसीम' ! मैसे उज़्र इस क़दर, जवानीमें ।
डरो ख़ुदासे, यह है अ़हद पारसाईका ?

लज़्ज़ते-जौर ख़ुदाकी क़सम एहसाँमें नहीं ।
जो मज़ा तेरी 'नहीं'में है, तेरी 'हाँ'में नहीं ॥

न मुअज्ज़िनका है खटका, न गजरका धड़का ।
यह शबे-वस्लके झगड़े, शबे-हिजराँमें नहीं ॥

क्या बताऊँ कि ख़ुदा जाने जवानी क्या थी ?
जागते-जागते एक ख़्वाब मगर देखा था ॥

तर्के-उल्फ़तका ग़म उधर भी है ।
कलसे चुप-चुप वोह फ़िल्ना-गर भी है ॥

हिज्रमें जानसे जाना है निहायत आसाँ ।
इसमें जीना ही मेरी जान बड़ी मुश्किल है ॥

१४ मई १९५३ ई०]

हसन बरेलवी

[१८५७–१९०७ ई०]

हाजी मुहम्मद हसनरज़ाख़ाँ साहब 'हसन' १८५७ ई०में पैदा हुए। आपके पूर्वज दिल्लीके रहनेवाले थे, किन्तु फिर स्थाई रूपसे बरेलीमें बस गये। मिर्ज़ा 'दाग़' जब रामपुरमें क़याम फ़र्माते थे, तब आप उनके शिष्य हुए, और प्रत्येक वर्ष एक-दो मास उस्तादकी सेवामें रहते थे। १९०७ ई०में आपका निधन हो गया। ख़ुमख़ानए-जावेद भाग २ से कुछ अशआ़र चुनकर दिये जा रहे हैं—

क्यों दिले-ज़ार ! मुहब्बतका नतीजा देखा ?
दर्दे-फ़ुरक़तका कोई पूछनेवाला देखा ?
बस रुख़े-यारसे उठता हुआ पर्दा देखा।
फिर ख़बर ही न रही, क्या कहें फिर क्या देखा ?
कान वोह कान है, जिसने तेरी आवाज़ सुनी।
आँख वोह आँख है, जिसने तेरा जल्वा देखा ॥

मैं क्या पूछूँ कि है मेरी ख़ता क्या ?
अ़ताबे-बेसबबका पूछना क्या ?

ज़रा आहे-पुरदर्दसे बचते रहना।
नहीं दिल्लगी दिल दुखाना किसीका ॥

जलबेकी रोक-थाम करेगा हिजाब क्या ?
दरियाके आगे आबे-रवाँकी नक़ाब क्या ?

ऐसेसे दिलका हाल कहें भी तो क्या कहें ?
जो बे कहे, कहे कि "चलो बस सुना, सुना" ॥

दर्दे-उलफ़तमें ज़िन्दगी कैसी ?
मौतका कौन चारागर[1] होगा ॥

मौत भी क्या जाने कुछ बीमार है ।
क्यों नहीं आती तेरे बीमारतक ॥

ज़बाने रुक गईं, सर झुक गये, ख़ीरा[2] हुईं आँखे ।
नक़ाब उलटे हुए कौन आ गया महशरके मैदाँमें ॥

'हसन' इस आहके, इस आहकी तासीरके सदक़े ।
मुझे दरसे उठाने घरसे वोह बाहर निकलते हैं ॥

वोह हुस्न है कि क़ब्ज़ा करे दो जहानपर ।
वोह इश्क़ है कि कुछ न रहे इख़्तियारमें ॥

दिलमें ख़याले-आरिज़े-पुर-नूरे-यार[3] है ।
हम शमअ़ लेकर आये हैं, अपने मज़ारमें ॥

मर्गे-आशिक़की जो मानें मिन्नतें ।
वोह मेरे मरनेका मातम क्या करें ?

दे दिया है सब अतिब्बाने जवाब ।
तुम न कह देना कहीं, "हम क्या करें ?"

ख़ुद मुआ़लिजकी[4] ज़रूरत है मुआ़लिजको मेरे ।
मेरे नुस्ख़ेमे कहीं शरबते-दीदार नहीं ॥

[1]चिकित्सक; [2]चकाचौध; [3]प्रेयसीके प्रकाशमान कपोल; [4]चिकित्सककी ।

सब हसीं एक ही आदतके हुआ करते हैं ।
फूल भी नाल-ए-बुलबुलपै हँसा करते हैं ।।

बन सँवरकर नाशपै[1] आये तो हैं ।
इससे बढ़कर वोह मेरा ग़म क्या करें ?

मेरे लाशेपै[2] वोह किस वास्ते बैठे हैं मुँह ढाँके ।
कोई पूछे तो अब भी क्या मुझे जिन्दा समझते हैं ?

लोग कहते हैं अदूसे दोस्ती अच्छी नहीं ।
क्या यह आदत आपके नज़दीक़ भी अच्छी नहीं ।।

मौत अच्छी है, जो दम निकले तुम्हारे सामने ।
आँखसे ओझल हो तुम तो जिन्दगी अच्छी नहीं ।।

दोनों हाथोंसे कलेजा थामे बैठा है 'हसन' !
या ख़ुदा अब कौन पकड़े दामने-दिलदारको ।।

मैं से मैंने कब की तौबा ?
तौबा, तौबा ! कैसी तौबा ?

मैं जानता था मेरी ही उलफ़तकी हद नहीं ।
लेकिन तुम्हारे जुल्म भी हदसे गुज़र गये ।।

उस बदगुमानने यह कहा मेरी लाशपर ।
"अल्लाहरे फ़रेब कोई जाने मर गये ।।"

दिलमें तुम, आँखोंमें तुम, छुपते हो फिर किस वास्ते ?
तुमको शर्म आती नहीं, आशिक़से शर्माते हुए ।।

---

[1]लाश पै; [2]अर्थी पै ।

जाँ-ब-लब हूँ इक नज़रके वास्ते आँखें न फेर ।
जानेवाले इक नज़र फिर देख ले जाते हुए ॥

देख आओ मरीजे-फ़ुरक़तको ।
रस्मे-दुनिया भी है, सवाब भी है ॥

कहो तो हमसे भी ख़तका जवाब क्या आया ?
'हसन' ! जो आज क़दम तुमने नामा-बरके लिये ॥

वोह अगर याद करें हमको तो भूलें किसको ?
हम अगर उनको भुलायें तो किसे याद करें ?

हज़रते-ज़ाहिद ! तुम्हें जन्नत दिखा लायेंगे रिन्द ।
फूल खिलने दीजिए चश्मे उबलने दीजिए ॥

क़ैसके हालको सुन-सुनके जिगर फटता है ।
साथ खेलेकी मुहब्बत भी बुरी होती है ॥

आपकी ज़िदने मुझे और पिलाई हज़रत !
शेख़जी इतनी नसीहत भी बुरी होती है ॥

२३ मई १९५३ ई०]

'सीमाब' अकबराबादीके शिष्य—

'अलम' मुज़फ़्फ़रनगरी

[१८९४—ई०]

मौलाना मुहम्मद इसहाक़ 'अलम' मुज़फ़्फ़रनगर निवासी हैं।

आप अ़ल्लामा 'सीमाब' अकबरावादीके सुयोग्य शिष्य हैं। अपने जीवनकालमें ही अ़ल्लामा सीमावने आपको मसनदे-उस्तादी अ़ता कर दी थी। उस्तादकी वृद्धावस्थामें आप ही अपने गुरुभाइयोंके कलामका संशोधन करते रहे हैं और उनकी मृत्युके बाद भी यह क्रम चालू है। आपके अपने शिष्य भी काफ़ी हैं। आपके संशोधन बहुत मार्केके होते हैं। आपके एक शिष्य श्री कुलभूषण जैन 'कौसर' डालमियानगरमें क़याम फ़र्माते हैं। मुझे उनके कलामपर आपकी दी हुई इसलाहें देखनेका इत्तिफ़ाक़ होता रहता है। उस बिनापर मुझे कहना पड़ता है कि आप अपने शिष्योंके साथ बहुत ही सहृदयताका व्यवहार रखते हैं और उन्हें काफ़ी प्रोत्साहन देते रहते हैं। बतौर नमूना चन्द इसलाहें यहाँ दी जाती हैं—

कौसर— **बाग़े-हस्तीमें सबक़ फूलसे लें अहले-नज़र ।**
जिसने की उम्र तबस्सुमसे बसर ख़ारोंमें ॥

अलम— **बाग़े-हस्तीमें सबक़ गुलसे लें अहले-शिकवा ।**
जिसने हँस-खेलके की उम्र बसर ख़ारोंमें ॥

कौसर-- बख़्शे-ख़ुफ़्ता ! तेरा सदशुक्र तेरे फ़ैज़से हम।
ख़्वाबे-ग़फ़लतसे गुज़रकर हुए बेदारोंमें ॥

अलम-- बख़्शे-ख़ुफ़्ता ! यह हक़ीक़त है तेरे फ़ैज़से हम।
नींदसे जागके शामिल हुए बेदारोंमें ॥

कौसर-- किसीको साग़रे-ज़रसे, किसीको ओकसे साक़ी !
मिटाया इस तअ़स्सुबने तेरे तहज़ीबे-इन्सॉंको ॥

अलम-- किसीको साग़रे-ज़रसे किसीको ओकसे साक़ी !
सरे-महफ़िल न यूँ बरबाद कर तहज़ीबे-इन्सॉंको ॥

कौसर-- ग़ुरूरे-हुस्न उनका ख़ूनके दरिया बहा देता।
सरे-महफ़िल मगर यूँ कहिए आईना मुक़ाबिल था ॥

अलम-- ग़ुरूरे-हुस्न उनका सैकड़ों फ़ितने जगा देता।
सरे-महफ़िल मगर यूँ कहिए आईना मुक़ाबिल था ॥

कौसर-- क़ुसूर उनका नहीं, जो मुझको महफ़िलसे निकलवाया।
ख़ता मेरी ही थी नावाक़िफ़े-आईने-महफ़िल था ॥

अलम-- क़ुसूर उनका नहीं, जो मुझको महफ़िलसे निकलवाया।
ख़ता मेरी थी, मैं ना वाक़िफ़े-आईने-महफ़िल था ॥

कौसर-- इन्तिहा ग़मकी है ग़ाफ़िल ! इब्तिदा-ए-हद्दे-ऐश।
राज़ यह समझा है जाके मैंने ज़िन्दानोंके पास ॥

अलम-- सुबहे-इशरत शामे-ग़मके बाद आती है नज़र।
राज़ यह समझा है जाके मैंने ज़िन्दानोंके पास ॥

'अलम' साहब द्वारा किये गये शब्दोंके तनिक-से हेर-फेर, परिवर्तन एवं संशोधनसे उक्त अशआरमें क्या बात पैदा हो गई है, विज्ञ पाठकोंको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं।

आप गद्य लिखनेमें भी सिद्धहस्त हैं। भारतके प्रायः सभी प्रसिद्ध उर्दू-पत्र-पत्रिकाओंमें आपके आलोचनात्मक और गवेषणापूर्ण लेख छपते रहते हैं। नज़्ममें भी बहुत अच्छी महारत रखते हैं।

'अलम' साहबने अरबी-फारसीकी उच्च शिक्षा प्राप्त की है और वर्तमानमें मुजफ़्फरनगरके इसलामिया इण्टर-मीजियट कॉलिजमें लेक्चरर हैं। यूं आप कसीदे, मसनवी, रुबाई, नज्म, गजल सभीमें महारत रखते हैं। मगर गजलकी तरफ विशेष रुचि है। आपके कलामके निम्न दो संकलन अभी तक प्रकाशित हुए हैं—

१. **सलसबील**—आलमगीर बुकडिपो लाहौर (१९४८ ई०) पृष्ठ २५६। १६६ पृष्ठोंमें ग़जले और शेष पृष्ठोंमें नज्मे हैं।

२. **कौसरो-तसनीम**—नाजिम दारुल-इशाअ़त फिरदौस मंजिल—मुजफ़्फरनगर (१९५१ ई०) पृ० २२३। १३१ पृष्ठोंमें नज्मे और शेषमें गजलें हैं।

इन्हीं दोनों संकलनोंसे पहले हम चन्द गजलोंके शेर चुनकर दे रहे हैं। 'अलम' साहब सूफी मुसलमान हैं। अतः आपके यहाँ रंगे-तसव्वुफ काफी नजर आता है—

ऐसे बीमारे-मुहब्बतका ख़ुदा हाफ़िज़ है।
नींद आई तो उसे मौतका सामाँ समझा॥

शोरे-नाक़ूसे-बरहमन[1] हो कि हो बाँगे-हरम[2]!
छुपके हर आवाज़में तुझको सदा[3] देता हूँ मैं॥

---

[1]पुजारीके शंखकी ध्वनि; [2]मस्जिदकी अजान; [3]आवाज़।

बड़ी आफ़त है दमभरका सुकूँ[1] भी राहे-उल्फ़तमें।
जो हर मंज़िलपै ठहरे, वोह हमारा हमसफ़र क्यों हो ॥

है उन्हींका अक्से-रुख़ हर जलवए-दैरो-हरम[2]।
किस तरह फिर इम्तियाज़े-कुफ्रो-ईमाँ[3] कीजिए ?

सब ही निगाहमें रहें अपने हों या कि ग़ैर हों।
महफ़िले-नाज़में तेरी ऐसा निज़ाम[4] चाहिए ॥

बहुत-से व्यक्ति ऐसे भी है जो ईश्वरोपासनामे तो लीन रहते हैं, मगर उसके बन्दोकी उपेक्षा करते है। ईश्वरको पतितपावन, दलितोद्धारक, कहते नही थकते, परन्तु स्वय पतितो एवं दलितोसे घृणित और दुर-दुरका व्यवहार करते है। इसी भावनाको लक्ष्य करके सर इकबालने फ़र्माया था—

ख़ुदाके बन्दे तो है हज़ारों, बनोंमे फिरते है मारे-मारे।
मै उनका बन्दा बनूँगा जिनको, ख़ुदाके बन्दोंसे प्यार होगा ॥

इसी भावको देखिए 'अलम' किस ख़ूबीसे व्यक्त करते है—

है फ़र्ज़ तुझपै फ़क़त बन्दए-ख़ुदाकी तलाश।
ख़ुदाकी फ़िक्र न कर, वोह मिला, मिला-न-मिला ॥

तलाशो-जुस्तुजूकी सरहदें अब ख़त्म होती है।
ख़ुदा मुझको नज़र आने लगा इन्सानें-कामिलमें ॥

---

[1]चैन; [2]मन्दिर-मस्जिदका चमत्कार; [3]धर्म-अधर्ममें भेद-भाव; [4]प्रबन्ध, व्यवस्था ।

अत्याचारी शासकोंको देखिए 'अलम' साहबने रंगे-तग़ज़्ज़ुलमें कितनी बडी चेतावनी दी है—

कहीं यही न हो बुनियादे-इन्क़िलाबे-चमन।
चमनकी ख़ाकमें यूँ ख़ाके-आशियाँ न मिला॥

न दे तू तानए-उफ़्तादगी[1] पाबन्दे-मुश्किलको[2]।
यह उट्ठा तो उठेगा साथ लेकर तेरी महफ़िलको॥

अदूरदर्शी अथवा गलत नेताके कारण जनता आपत्तियोके भँवरमें फँस जाती है। फिर भी वह अज्ञानवश उसके चगुलसे निकलनेका प्रयत्न नही करती। जो व्यक्ति नाख़ुदाको[3] खुदा समझ ले, उसके दुर्भाग्यका उपाय ही क्या?

नाख़ुदाको मैं ख़ुदा उस वक़्त भी समझा किया।
जब मुझे ख़ुद नाख़ुदाने ज़ेरे-तूफाँ कर दिया॥

लेकिन 'अलम' साहब इसका भी उपाय बताते है। यानी आप जहरकी दवा जहर बताते है—

और भी आसान होंगी राहकी दुश्वारियाँ।
हर अमीरे-कारवाँको[4] राहजन[5] होने भी दे॥

'अलम' साहबके इश्क़का तसव्वुर मुलाहिजा फर्मायें—

मैं अब वाक़िफ़ हुआ हूँ, है कमाले-इश्क़ वोह मंज़िल।
जहाँ इन्सानको महसूस होती है कमी अपनी॥

---

[1]खस्ता हालतके ताने; [2]असहाय स्थितिमें पडे हुए को, लाचारको; [3]केवटको, मल्लाहको; [4]यात्रीदलके नेताको; [5]लुटेरा।

कहाँ वोह ऐ 'अलम'! रंजे-हयाते-आशिक़ी[१] समझे।
जो मर जाना मुहब्बतमें कमाले-ज़िन्दगी समझे॥

बेनियाज़ी[२] थर-थरा उठ्ठी मिज़ाजे-हुस्नकी।
दिलने जिस दम बारगाहे-इश्क़में[३] सिज्दा[४] किया।

अक्सर ग़ज़लमे वर्णित आशिक अपनी वफाओकी तारीफे और माशूकके जौर-ओ-तगाफुलकी शिकायते करते हुए नही थकता था। लेकिन वर्त्तमान युगमे ग़ज़लका लबो-लहजा बदल गया है। आजका शाइर दूसरोके छिद्रान्वेषण करनेकी अपेक्षा स्वय अपनी त्रुटियाँ खोजनेका प्रयत्न करता है--

मुझे क्यों छोड़ जाता बेसहारे दश्ते-ग़ुरबतमें[५]?
ज़रूरत कुछ अगर महसूस करता कारवाँ[६] मेरी॥

कुछ नीतिपूर्ण शेर--

हुआ करती है दुश्वारी ही से आसानियाँ पैदा।
बड़े नादान है, मुश्किलको जो मुश्किल समझते है॥

ग़मो-इशरतके[७] हर पहलूको रखते है, निगाहोंमें।
अज़लसे[८] जो मआले-गर्दिशे-आलम[९] समझते है॥

ख़ाकसारीका[१०] है ग़ाफ़िल! बहुत ऊँचा मर्तबा।
यह ज़मीं वोह है कि जिसपर आस्माँ कोई नहीं॥

---

[१]प्रेमी-जीवनकी व्यथा; [२]उपेक्षा; [३]प्रेम-मन्दिरमें; [४]प्रणाम; [५]यात्रा-मार्गमे, परदेशमें, [६]यात्रीदल; [७]दु:ख-सुखके; [८]सृष्टिके प्रारम्भसे; [९]संसारचक्रका कारण; [१०]नम्रता, सेवाभावका।

बन सके तो शमअ बनकर रौनक़े-काशाना[1] बन।
वरना जलकर दफ़अतन खाकिस्तरे-परवाना[2] बन॥

जेब[3] देती नहीं इन्सानको तलखीये-कलाम[4]।
गुफ़्तगूको सबबे-बरहमी-ए-दिल[5] न बना॥

बेफ़ायदा है, सिज्दागुज़ारी[6] सुबह-ओ-शाम।
जब दिल ही झुक सका न सरे-बन्दगीके साथ॥

हदमे ज्यादा चमने-दहरमे[7] उड़नेवाले।
देगी धोका तुझे बेज़ाबितए-परवाज़[8] कहीं॥

तलबमे[9] दोनों आलमकी[10] झुका रक्खा है क्यों सरको?
यह रस्मे-बन्दगी[11] इक दिन अज़ावे-दाइमी[12] होगी॥

वोह अपने हर क़दमपर है कामयाबे-मंज़िल[13]।
आज़ाद हो चुका जो तकलीदे-कारवाँसे[14]।

ऐ महवे-निशाते-फ़स्लेगुल[15]! अंजामे-खुशी[16] ग़म होता है।
फूलोंकी तरह जो हँसते हैं, इक रोज वोह गिरिया[17] होते हैं॥

तदबीर[18] ही तेरी नाक़िस[19] थी, तक़दीरको तू इलज़ाम न दे।
कर सब्र ज़रा, कारे-मुश्किल[20] सब वक़्तपर आसाँ होते हैं॥

---

[1]मकानकी शोभा; [2]या प्रेमदीपपै जलकर पतंगेकी खाक बन; [3]शोभा; [4]कटु वचन; [5] हृदयको चोट पहुचानेका कारण; [6]नतमस्तक होकर ईश्वरके आगे गिरना; [7] ससाररूपी उद्यानमे, [8] बेमोची-समझी उडान; [9]अभिलाषामें, [10]इहलोक-परलोककी; [11]दिखावटी उपासना; [12]स्थाई परेशानी; [13]निर्दिष्ट स्थान पानेमे सफल; [14] यात्रीदलके अनुकरणमे; [15] सुखमे तल्लीन, [16]खुशीका परिणाम, आखिर; [17]रोते है, [18]पुरुषार्थ; [19]व्यर्थ, हीन; [20]कठिन कार्य।

उनको तो जगाया सोते थे, जो राहमें ऐ फ़रियादे-जरस[1] !
जो चलते-चलते सोते हैं, उनको भी जगाना आता है ?

तू ख़ुद रहबर[2] है, ख़ुद बांगे-जरस[3] है, ख़ुद ही मंज़िल है।
मुसाफ़िर ! फिर यह तक़लीदे-अमीरे-कारवाँ[4] कब तक ?

सूरते-नक़्शे-रहगुज़र[5] आजिज़ी[6] इख़्तियार कर।
अर्शकी[7] रफ़अतोंपै[8] गर तुझको मुक़ाम चाहिए ॥

चन्द भिन्न-भिन्न रंगके शेर

जहाँमे सोज़े-मुहब्बतका[9] तर्जुमाँ[10] न मिला।
ज़बाने-शमअपै परवानेका बयाँ न मिला ॥

कहाँ था नब्ज़-शिनासे-चमन वोह दुनियामें।
बहारे-गुलमें जिसे पहलुए-ख़िज़ाँ न मिला ॥

मैं रहने-जब्र हूँ, तू इख़्तियारका मालिक।
मेरे फ़िसानेसे यह अपनी दास्ताँ न मिला ॥

अज़लसे गर्मे-सफ़र हूँ, मगर मुझे अबतक।
बिछड़ गया था मैं जिससे, वोह कारवाँ न मिला ॥

क़फ़समें और नशेमनमें रहके देख लिया।
कहीं भी चैन मुझे ज़ेरे-आस्माँ न मिला ॥

---

[1]यात्रीदलके ऊँटके गलेमें बँधी घण्टी की आवाज़; [2]पथप्रदर्शक; [3]घण्टीकी आवाज; [4]यात्रीदलके नेताका अनुकरण; [5]पदचिह्नोंकी तरह, [6]नम्रता, [7]आकाशकी; [8]ऊँचाइयोंमें। [9]प्रेम-ज्वालाका; [10] बतानेवाला।

सभीने उनसे कहा हश्रमें फ़सानए-दिल।
मुझे यहाँ भी 'अलम' मौक़ए-बयाँ न मिला॥

हरेक नक़्शे-क़दम रोजे-हश्र देख लिया।
तलाश जिसकी थी मुझको वोह बेवफ़ा न मिला॥

देख ऐ मुनअिम[1]! यही था मुझमें-तुझमें इम्तियाज़[2]।
तेरा क़ब्ज़ा था जहाँपर, मेरा क़ब्ज़ा दिलपै था॥

न देख इन गहरी नज़रोंसे मुझे ऐ देखनेवाले!
भरम खुल जायगा ज़ालिम! मेरे जज़्बाते-पिन्हाँका[3]॥

दबा रक्खा है सीनेमें जिसे तेरे असीरोंने[4]।
कभी गुलशनमें वोह नाला[5] क़फ़सकी दास्ताँ होगा॥

मैं नालए-दिलसे काम लूंगा मुझीसे होगा यह काम मेरा।
सबाको[6] है क्या ग़रज़ कि उन तक वोह लेके जाये पयाम[7] मेरा॥

जो डूबना हो तो काफ़ी है एक आँसू भी।
तेरा क़ुसूर कि तू ग़र्क़े-आब[8] हो न सका॥

अब बियाबाँसे गुलिस्ताँकी तरफ़ जायेंगे क्या?
तेरे दीवाने फ़रेबे-रंगो-बू खायेंगे क्या?
मुस्तक़िल कोई न देगा क्या सुबूते-सोज़े-इश्क़!
जितने परवाने हैं सब ही जलके मर जायेंगे क्या?

---

[1]धनिक; [2]अन्तर, भेद; [3]अन्तरग भावनाओका; [4]कैदियोने; [5]रुदन, आह; [6]पूर्वी हवाको; [7]सन्देश; [8]पानीमे डूब न सका।

सुन चुके जब दास्ताने-दर्द तो कहने लगे—
"और भी इसके सिवा कुछ आप फ़रमायेंगे क्या ?"
आशियाँ जिनका है ज़ेरे-आतिशे-गुल बाग़बाँ !
हमलाहाए-बर्क़ी-बाराँसे[1] वोह घबरायेंगे क्या ?
दारपर दुनिया चढ़ा ही देगी क्या मंसूरको ?
वाक़िफ़ाने-राज़ सब ख़ामोश हो जायेंगे क्या ?

वोह कहाँ लज़्ज़ते-सोज़े-ग़मे-पिन्हाँ समझा ?
हिज्रमे जीनेसे मरनेको जो आसाँ समझा ॥
ज़र्रा-ज़र्रा था चमन अक्से-रुख़े-लैलासे।
क़ैस दीवाना गुलिस्ताँको बयाबाँ समझा ॥

उस दिन 'अलम' को फ़ितरते-ग़म[2] मरहमत[3] हुई।
जिस रोज यह ज़मीन बनी, आरमाँ बना ॥

हमारी ख़ाकसारी बादमुर्दन भी नुमायाँ है।
गलीमे उनकी उड़ता है, बहुत नीचा ग़ुबार अपना ॥

बहरे-हस्तीका अज़लसे[4] हूँ शनावर[5] लेकिन।
आजतक वाक़िफ़े-राज़े-तहे-दरिया[6] न हुआ ॥

नज़अमे[7] बहुत धीमी जुम्बिशे नफ़सकी[8] है।
है क़रीब मंजिलके आज कारवाँ अपना ॥

परफ़िशानीका[9] क़फ़समे मुझे मौक़ा न मिला।
नोच डाला मेरे सैयादने जो पर निकला ॥

---

[1]बिजली-वर्षाके आक्रमणोंसे; [2]दुखी स्वभाव; [3]प्रदान; [4]अनादि-कालसे; [5]तैराक, परिचित; [6]नदीके अन्तस्थलसे परिचित; [7]प्राणान्त-कालमे; [8]इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं; [9]उड़ानका।

देखिए अब कौन-सा तूफ़ाँ जगाता है हमें।
मुँह छुपाके सो रहे हैं दामने-साहिलसे[1] हम॥
सामने मंज़िल है और आहिस्ता उठते हैं क़दम।
पास आकर हो रहे हैं दूर फिर मंज़िलसे हम॥
कामयाबीमें भी है नाकामयाबे-ज़िन्दगी।
ऐन मंज़िलपर, नहीं है आश्ना[2] मंज़िलसे हम॥

मज़ाके-ग़म न पैदा कर सका मैं उनकी फ़ितरतमें।
सुनाई बाग़वालोंको क़फ़सकी दास्ताँ बरसों॥

तेरी मरज़ीपै छोड़ दूँ किस तरह तूफ़ानमें किश्ती ?
तुझे ऐ नाख़ुदा ! नावाक़िफ़े-साहिल समझता हूँ॥

कोई रिन्दीकी इस ज़र्फ़े-नज़रकी[3] वुसअ़ते[4] देखे !
हरइक टूटे हुए सागरको जामे-जम समझते हैं॥
निसारे-शमअ़ होकर बज़्ममें कहते हैं परवाने—
"कोई समझे-न-समझे, हम मआ़ले-ग़म समझते हैं"॥

जो बयाने-इश्क़ भी समझे, ज़बाने-हुस्न भी।
आपकी महफ़िलमें ऐसा, राज़दाँ[5] कोई नहीं॥

वफ़ाके पर्देमें क्या-क्या जफ़ाएँ देखी हैं।
निगाहे-लुत्फ़पर अब मुझको एतमाद[6] नहीं॥
मुझे यक़ीं है मगर दिलको क्या करूँ कि उसे।
किसीके वादए-फ़रदापै[7] एतमाद नहीं॥

---

[1]नदी-तटसे; [2]परिचित; [3]दृष्टिकोणकी; [4]उदारताएँ; [5]जानकार; [6]भरोसा; [7]भविष्यके वादेपर।

नज़र हैरां, ज़बाँ बहकी हुई-सी।
यह आप आख़िर कहाँसे आ रहे हैं?
बयाँ करके सबब जोरो-जफ़ाका।
वफ़ाओंको मेरी शरमा रहे हैं॥

दिलके इत्मीनानका यूँ ही कोई सामाँ करें।
एतबारे - इन्क़िलाबे - गर्दिशे - दौराँ करें॥

मेरी तूफाँ-शिनासी नाख़ुदा! मुझको बचायेगी।
मैं तूफाँमें निगाहे-मौजे-तूफाँ देख लेता हूँ॥

क़ैदमें भी है मयस्सर ऐ जुनूँ! लुत्फ़े-चमन।
ख़ूनके छींटोंसे ज़िन्दाँको[1] सजा देता हूँ मैं॥

दिल मेरा बहलता है, तेरे ही तसव्वुरसे[2]।
इश्क़के नतीजोंसे गर्चे आश्ना[3] हूँ मैं॥

नहीं आदाबे-जुनूँसे यह बहारें वाक़िफ़।
वरना गुल बाग़में यूँ चाक गरेबाँ कर दें?

मेरी परवाज़ क्या आये नज़र तुमको चमनवालो!
तसव्वुरमें जो उड़ता हो, वोह महदूदे-नज़र क्यों हो?

मिली तो क्या मिली सैयाद! ऐसी आज़ादी।
जब एक शाख़े-नशेमनपै इख़्तियार न हो।

हम अपने दिलको महफ़ूज़े-तमन्ना क्यों न रहने दे।
यह इक क़तरा लहू, सरगश्तए-आहो-फ़ुगाँ[4] क्यों हो?

---

[1]कारागारको; [2]ध्यानसे, चिन्तनसे; [3]परिचित; [4]आह-रुदनसे हैरान।

बदनसे रूह जाती है तो दिलको साथ ले जाये।
अमानत इश्क़ है जिसमें, वोह हिस्सा राएगाँ[१] क्यों हो ?

दिलको बना हरम-नशीं[२], तौफ़े-हरम[३] नहीं, न हो।
मानीए-बन्दगी[४] समझ, सूरते-बन्दगी[५] न देख॥

न पूछ उसके तहम्मुलकी[६] वुसअ़तें[७] सैयाद !
कि दर्से-जब्ते-फ़ुग़ाँ[८], जिसने ज़ेरे-दाम[९] लिया॥

कहीं बिजली, कहीं गुलचीं, कहीं सैयादका ख़तरा।
फले-फूलेगी इस गुलशनमें शाख़े-आशियाँ क्योंकर ?

तवज्जह[१०] सर्फ़[११] करता वाक़ई गर नाख़ुदा[१२] अपनी।
तो क्यों साहिलसे टकरा करके किश्ती डूबती अपनी ?

जुनूँवालोंकी उरयानीपै[१३] यूँ हँसना नहीं अच्छा।
मनायें ख़ैर अपने पैरहनकी[१४] पैरहनवाले॥

है ज़ाहिर उसपै चमनकी हक़ीक़तें जिसने—
शगुफ़्ता[१५] लालओ-गुलका मआल[१६] देखा है॥
नहीं है दिलमें तमन्नाए-वस्ल तक बाक़ी।
फ़िराक़े-यारमें इतना मलाल देखा है॥

---

[१]व्यर्थ नष्ट; [२]काबेमे लीन कर; [३]तीर्थकी प्रदक्षिणा; [४]उपासनाका तात्पर्य्य; [५]वाह्य उपासनाओको, [६]बरदाश्तकी, सब्रकी; [७]विशालता; [८]आहको रोकनेका पाठ; [९]जालमें; [१०]ध्यान; [११]देता; [१२]मल्लाह; [१३]फटेहालपै, नग्नतापै; [१४]परिधानकी, लिबासकी; [१५]खिले हुए; [१६]परिणाम ।

सुना है फिर वोह सुनने आ रहे हैं, दास्ताँ मेरी।
इलाही ! आज तो रंगे-असर लाये ज़बाँ मेरी ॥

जंजीरे-आहनीको[1] समझते थे शाख़े-गुल।
वोह हौसले शिकस्ता दिलोंमें कहाँ रहे ?

ज़र्फ़[2] उस क़तरए-नाचीजका देखे कोई।
ऐन दरिया हो मगर, सूरते-दरिया न बने ॥
ग़र्क़ हो-होके कई बार तो उभरे लेकिन।
फिर भी हम राज़शिनासे-तहे-दरिया[3] न बने ॥

—सलसबील

थके-माँदे भी मंज़िलपर पहुँच जाये ब-आसानी।
कोई तद्बीर ऐसी ऐ अमीरे-कारवाँ ! कर ले ॥

मुझको न देख शाने-करमपर[4] निगाह कर।
मुझसे ख़ता हुई है, मगर बेबसीके साथ ॥

मंज़िले-अर्शपै दम लेनेको ठहरूँ तो मगर।
दम भी लेने दे मुझे लज़्ज़ते-परवाज़ कहीं ॥

हर-इक ज़र्रेमें जिसके सैकड़ों गुलशन हैं पोशीदा !
जुनूंकी राहमें ऐसा भी इक वीराना आता है ॥

जा पहुँचता मंज़िले-मक़सूदपर अबतक 'अलम' !
कारवाँको ख़िज्रे-मंज़िल गामज़न होने भी दे ॥

---

[1]लोहेकी जंजीरको; [2]होसला; [3]दरियाकी गहराईके भेदी; [4]दयालुताके मर्त्तबेपर।

मुझे मुस्तहक़े-अमानते-गमो-दर्दे-इश्क़ बना दिया।
यह था एतमादे-वफ़ा उसे, फ़क़त एक मुश्ते-गुबारपर॥

नाख़ुदा डूब चुका, नाव है ग़र्क़े-तूफ़ां।
हाय किस वक़्त मुझे याद ख़ुदा आती है॥
बोह तसव्वुर है गुलिस्तॉमे खटकती है कली।
टूटनेकी जो किसी दिलकी सदा आती है॥

मेरी खुद्दारिए-बहशतपै तनक़ीदे[1] बजा लेकिन--
न देखा तुमने अपने इन्तिज़ामे-जब्ते-महफ़िलको॥

आदाबे-गुलिस्तॉ फ़र्ज सही, ताईदे-जुनूं भी वाजिब है।
क्या जाने बहारें कब आयें, हम चाक गरेबॉ होते है॥

शबो-रोज़ मुहब्बत सीनेमें, पोशीदा अगर्चे है, फिर भी--
आहोंमें लरजते रहते है, अश्कोंसे नुमायॉ होते है॥
रुकते है कहीं दीवारोंसे, थमते है कहीं जंजीरोंसे।
इज़हारे-जुनूं पर आमादा जब क़ैदिए-ज़िन्दॉ होते है॥
जी भरके तड़प लेने दे उन्हे, रह-रहके ज़रा जलने दे उन्हे।
ऐ शमअकी लौ! यह परवाने इक रातके मेहमॉ होते है॥

शिकस्ता सोख़्ता भी और ख़िज़ॉ-दीदा भी है लेकिन--
ग़नीमत है चमनमें मेरी शाख़े-आशियॉ फिर भी॥

मिलेगा लुत्फ़े-आज़ादी उन्हें क्या मौसिमे-गुलमें?
क़फ़ससे छूटकर गुलशनमें जो बेबालो-पर आये॥

---

[1]आलोचनाये।

सालिके-राहे-ख़ुदी,[1] इस भेदसे वाक़िफ़ नहीं।
बेख़ुदीकी राहमें भी इक मुक़ामे-होश है॥

तसकीन मुसीबतमे देनेको, यूँ तो ज़माना आता है।
ऐसा भी कोई आता है जिसे, बिगड़ीको बनाना आता है॥
काँटोंकी ज़बाने-तिश्नासे गुलशनकी हक़ीक़तको पूछो।
याराने-चमन इन फूलोंको तो हँसना-हँसाना आता है॥

कौन है यह ना-शिनासे-लज़्ज़ते-तूफ़ाने-ग़म?
डूबनेवालेको साहिलसे सदा देने लगे॥

कहीं मशग़ूले-असबाबे-सफ़र पीछे न रह जाये।
शरीके-कारवाँ हो, इन्तिज़ामे-कारवाँ कबतक?

अँधेरी रात, तूफ़ाने-तलातुम, नाख़ुदा ग़ाफ़िल।
यह आलम है तो फिर किश्ती, सरे-मौजे-रवाँ कबतक?*
मेरी परवाज़ है ख़ुद बेनियाज़े-मरकज़े-मंज़िल[2]।
मुझे उड़ने दो तअ़ईने मकानो-लामकाँ[3] कब तक॥

किधर ले जा रहा है, बहरे-तूफ़ाँ-खेज़में किश्ती?
तुझे मौजे-रवाँपर, नाख़ुदा! साहिलका धोका है॥
सरे मंज़िल पहुँच सकता नहीं वोह, क़ाफ़िला हरगिज़।
जिसे रहबरपे भी बेगानए-मंज़िलका धोका है॥

---

[1]अहमन्यता-मार्गका यात्री; [2] निश्चित स्थानसे अपरिचित; [3]आकाशको सीमित करना।

*उन्हें हिजाब, अ़दू शादमां, अ़ज़ीज़ निढाल।
मेरा जनाज़ा भी कोई उठायेगा कि नहीं?
—सीमाब अकबराबादी

तूरे-सीनापर न जाते फिर कलीम।
देखते गर तूरे - दिलकी रोशनी।।
उठ गये सब राजदाने-मैकदा।
अब किसे दे मन्सबे-साक़ी-गरी ?

बढ़ा दी इतना कहकर शमअने परवानोंकी हिम्मत—
"है जलना काम उनका जो है दिलवाले, जिगरवाले"।।

ख़ुशी-ख़ुशीमें न, ग़ममें कोई मलाल मुझे।
बना दिया है मुहब्बतने बे-मिसाल मुझे।।

वाक़ेआ यह दोनों आलममें रहेगा यादगार।
जिन्दगानी मैंने हासिल की है मर जानेके बाद।।

यह तलातुम बहरे-हस्तीमें नहीं है बेसबब।
आ गई है किश्तिए-दिल, जेरे-मौज-ग़म कहीं।।

जितनी छींटें हैं लहूकी सब हैं तारीख़े-जुनूं[1]।
ग़ौरसे नज्जारए - दीवारे - जिन्दां[2] कीजिए।।

दामने-हस्तीसे यह आवेजिशें अच्छी नहीं।
चाक करना है तो चाक अपना ही दामाँ कीजिये।।

यह तो सच है मैं नियाजे-इश्क़से वाक़िफ़ नहीं।
कुछ मिजाजे-हुस्नका तुमने भी अन्दाजा किया ?

न ख़तरा है ख़िजाँका और न उम्मीदे-बहारे-गुल।
नशेमनमें क़फ़स-जैसी फ़राग़त[3] हो नहीं सकती।।

---

[1] उन्मत्तावस्थाका इतिहास, [2] कारागारकी दीवारोंका अवलोकन; [3] फ़ुरसत, इत्मीनान।

बहारे-गुलका मुज़्दा[1] या नवेदे-वस्ले-जानाँ[2] हो।
मुसीबतमें कोई शै वजहे-राहत हो नहीं सकती॥
हक़ीक़त, वोहमआले-इश्क़की क्या ख़ाक समझेंगे?
हमारे हालसे भी जिनको इबरत हो नहीं सकती॥

फ़ूलोंसे पूछिए न सितारोंसे पूछिए।
दिल क्या है अश्के-ग़मके शरारोंसे पूछिए॥

तालिबे-इश्क़ न था हुस्न, तो वह मेरी तरफ़।
मुल्तफ़ित क्यों हुए पैग़ामे-नज़रसे पहले?

तेरी नज़रें दे रही हैं, तुझको धोका पै-ब-पै।
है ग़ुबारे-दश्त दीवाने! यहाँ महमिल कहाँ?
हर ज़र्रा दे रहा है 'अलम' दावते जमाल।
लेकिन जहाँमें चश्मे-हक़ीक़त-निगर कहाँ?

इसी वास्ते है पैहम, नज़र इसपै बिजलियोंकी।
है सजी हुई गुलोंसे मेरी शाख़े-आशियाना॥

थी न आज़ादे-फ़ना किश्ती-ए-दिल ऐ नाख़ुदा!
मौजे-तूफ़ाँसे बची तो नज़रे-साहिल हो गई॥
कोई एजाज़े-सफ़र था, या फ़रेबे-चश्मे-शौक़?
सामने आकर निहाँ आँखोंसे मंज़िल हो गई॥

मैंने यूँ किश्तीका रुख़ फिर सूए-तूफ़ाँ कर दिया।
साज़गारे-दिल हवाए-दामने-साहिल न थी॥

[1]बहारका शुभसन्देश; [2]प्रेयसीमिलनका सन्देश।

कुछ मिटे-से नक़्शे-पा भी है, जुनूंकी राहमे।
हमसे पहले कोई गुज़रा है यहाँ होते हुए।।

—कौसरो-तसनीम

नज़्मोंके चन्द अशआर

मआले-तमन्ना

. . . . . .

किसीने सेहने-चमनमें क़रीब ही से सुना।
यह ख़ुश्क पत्तियोंसे उसकी आ रही थी सदा—
"उरूजे-हुस्नने[1] मुझको गिराया पस्तीमे।
कली ही रहता यह अच्छा था बाग़े-हस्तीमे।।
तबाहियोंका है सर-चश्मा इन्तिहा-ए-कमाल।
कमाल ही को न फिर क्यों कहें दलीले-ज़वाल"।।

है कामयाब वही इस जहाने-फ़ानीमे।
जो बेनियाज़े-तमन्ना है ज़िन्दगानीमे।।

बसन्त

. . . . . .

वोह तोड़ती ह जब फूल तो शाखे झुककर सिज्दा करती है।
उसकी रंगीन जवानीसे आईने पैदा करती है।।
फूलोंके आईनोंमे अपने अक्ससे वोह शरमाती है।
होंठोंसे तबस्सुम खिलता है, आँखोंमें हया थर्राती है।।
ख़ुद टूटके रंगी फूल कुछ उसके दामनपर आ पडते है।
वोह दोशीज़ा हंस देती है, नज़रोंसे तारे झड़ते है।।

. . . . . .

भरकर फूलोंसे दामन जब वोह अपने पाँव बढ़ाती है।
हर नक़्शे-क़दमपर होनेको कुरबान बसन्त आ जाती है।।

[1]सौन्दर्यकी उँचाईने।

यह दोशीज़ा[1] उस मौसिमकी गोया इक ज़िन्दा देवी है।
है ज़िन्दगी उसकी चितवनमें, यह ख़ुद ही बहारे-हस्ती है॥

—सलसबील

शबाब आ रहा है

शबाब आ रहा है, शबाब आ रहा है।
दहकता हुआ आफ़ताब आ रहा है॥
है अठखेलियोंपर चमनकी हवाएँ
नये सिरसे फिर इन्क़िलाब आ रहा है।
. . . . . .
यह सूरज है मशरिक़मे या मैकदेमें।
कोई लेके जामे-शराब आ रहा है॥
यह क़ौसे-क़ज़ह है कि बज़्मे-फ़लकसे।
मुग़न्नी उठाए रबाब आ रहा है॥
कँवल खिल रहा है कि हौज़े-चमनसे।
उभरता हुआ आफ़ताब आ रहा है॥

—सलसबील

वफ़ा

कहता है तुझे कोई बुरा कहने दे।
तू छोड़ न दामाने-वफ़ा हाथोंसे॥
मिट्टीको ज़रा देख ब-चश्मे इबरत।
ज़िल्लतके एवज़ बख़शती है गुलदस्ते॥

—कौसरो-तसनीम

२८ सितम्बर १९५३ ई०

[1] कुँवारी लड़की।

आसी उल्दनी

[१८९३—१९४९ ई०]

मौलवी अब्दुलबारी 'आसी' मेरठ जिलेके उल्दन गांवमें १८९३ई० में उत्पन्न हुए। आपके पिता मिर्जा गालिबके शिष्य थे और 'हुस्साम' उपनामसे शाइरी करते थे। आपके पितामह 'आजिज' और परपितामह 'आशिक' तखल्लुस फरमाते थे। 'आशिक' साहब ख्याति-प्राप्त 'मीर' के समकालीन हुए हैं और कितने ही मुशाअरोंमें 'मीर'के साथ-साथ गजल पढ़नेका इत्तिफाक हुआ है।

'आसी' का अरबी-फारसीका शिक्षारंभ १८९८ में हुआ। हिकमतका भी अध्ययन किया। १९११–१२ ई० में फारसी अध्यापक रहे। १९१३-१४ ई० में दिल्लीमें 'हमदर्द' अखबारमें कार्य किया। इसके बाद आप लखनऊ चले गये और वहीं रहने लगे।

अध्ययनकालमें ही शाइरीका शौक हो गया। एक रोज मार्ग चलते हुए खुद-ब-खुद आपसे यह शेर मौजूं हो गया—

यह क्या तुमने जख्मी किया दिल हमारा।
बड़ा तीर मारा, बड़ा तीर मारा॥

सम्भवतः यह घटना १९०४ ई०की है। इसके बाद रोजाना शेर कहने लगे। एक मित्रके सुझावपर 'आसी' उपनाम रख लिया। धीरे-धीरे आपके पिताजीके कानमें भी आपके शौककी भनक पड़ी। उन्होंने मिसरा दिया—

"उठाओ गठरी, सँभालो बिस्तर कि रात अब कुछ नहीं रही है"

उक्त मिसरेपर गजल सुनकर आपके पिता प्रसन्न तो अवश्य हुए किन्तु साथ ही यह भी फर्माया कि अभी बहुत कमी है। कभी-कभी वे स्वयं इस्लाह भी देते रहते थे। १९१० ई०मे आप मिर्जा दागके शिष्य 'नासिक' गुलावठीके शिष्य हुए और उन्होने आपका खूब उत्साह बढाया।

'आसी'ने अनेक रगोमे डुबकियाँ लगाई है। प्रारम्भमे आप 'नासिख'के रगमे कहते थे। जब उस शब्दाडम्बरी शाइरीके दोषोसे आप अवगत हुए तो 'हाली'का रग अपनाया। इसी जमानेमे यह भी शौक हुआ कि हर शेर मे कोई-न-कोई मुहावरा नज्म होना चाहिए। कभी दुअर्थक शेर कहनेका शौक चर्राया तो कभी 'दाग'के रगीन और शोख कलामका अनुसरण किया।

१९१४ ई०में लखनऊ पहुँचनेपर चित्त स्थिर हुआ। वहाँ 'अजुमने-मेअयारे-अदब' नामक साहित्यिक सस्थाका उन दिनो काफी प्रभाव था। और अमानजए-लखनऊ 'गालिब'के रगमे तबा आजमाइयाँ कर रहे थे। आप भी उसी रगमे लिखने लगे। इसके बाद तसव्वुफ एव दार्शनिक रगकी तरफ झुके, मगर शीघ्र सँभल गये और अपना एक मत स्थिर कर लिया, और वह यह कि शेर किसीके भी रगका हो, मगर अपना रग भी उसमे झलकना चाहिए और उसमे हृदय-स्पर्शकी शक्ति होनी चाहिए।

यू तो 'आसी' गजल, नज्म कसीदे, मसनवी, रुबाइयात सभी कुछ कहते है। लेकिन गजले और रुबाइयात कहनेकी ओर विशेष रुचि है। आप ३०–३२ पुस्तकोके रचयिता है। शिष्योकी सख्या १५० के लगभग है। उनमे—शौकत थानवी, अमीर मलोनवी, उमर अन्सारी, शहीद बदायूनी, आजाद लखनवी विशेष तौर पर उल्लेखनीय है। आप १० जनवरी १९४६ ई०को ऐशबाग लखनऊमे दफ्न हुए।

आपका एक दीवान गजलोका, एक नज्मोका और एक रुबाइयातका मुद्रणकी प्रतीक्षामे है। आपके स्वयके पसन्दीदा अशआर जनवरी

१९४१ के 'निगार' में प्रकाशित हुए हैं। जिनमें-से कुछ चुनकर साभार यहां दिये जा रहे हैं--

खुल गया दुनियापै राज़े-हुस्नो-इश्क[1]।
वोह हँसे, मुझको पसीना आ गया ॥

जब चमनमें कुछ इन्क़िलाब[2] हुआ।
इक-न-इक आशियाँ ख़राब हुआ ॥

जो छुटे तो फिर मिलेंगे, न छुटे तो यह समझना।
यह सलाम आख़िरी है, तुझे ऐ बहार! अपना ॥

रोते हैं चारागर और देखने वाले चुप हैं।
हाय बिगड़ी हुई हालत तेरे बीमारोंकी!
दाम ख़ाली नज़र आता है, मगर ऐ सैयाद!
आ रही है अभी आवाज़ गिरफ़्तारोंकी ॥

दिल रहीने-आर्ज़ू[3] है, आर्ज़ू मरहूने-यास[4]।
घर हमें बरबाद करनेको बनाना चाहिए ॥

मुझे तो याद नहीं है कोई ख़ुशी ऐसी।
शरीक जिसमें किसी तरहका मलाल न था ॥

उस साल फ़स्ले-गुलमें उजड़ा था बनते-बनते।
रहता तो आशियाँको अब एक साल होता ॥

हज़ारों तरह अपना दर्द हम उसको सुनाते हैं।
मगर तस्वीरको हर हालमें तस्वीर पाते हैं।

---

[1]सौंदर्य और प्रेमका भेद, [2]परिवर्तन, [3]अभिलाषाओंके पास गिरवी, [4]और अभिलाषाएँ निराशाओंके पास गिरवी है।

बुझा दे ऐ हवाए-तुन्द[1] ! मदफ़नके[2] चिराग़ोंको ।
सियह-बख़्तीमें[3] यह इक बदनुमा धब्बा लगाते हैं ।।
मुरत्तब[4] कर गया इक इश्क़का क़ानून दुनियामें ।
वोह दीवाने हैं जो मजनूँको दीवाना बताते हैं ।।
उसी महफ़िलसे मैं रोता हुआ आया हूँ ऐ 'आसी'!
इशारोंमें जहाँ लाखों मुक़द्दर बदले जाते हैं ।।

फूल हँस-हँसकर दिखाते हैं जहाँको दागे-दिल ।
मुख़्तलिफ़ शकले हैं, इज़हारे-ग़मो-आलामकी[5] ।।

मेरा दौरे-गुज़िश्ता[6] भी यूँ ही गुज़रा है ऐ हमदम[7] !
बना रक्खी थी इक सूरत ख़ुशीकी, शादमाँ[8] क्या था ?

हमीं नावाक़िफ़े-रस्मे-चमन थे ऐ क़फ़सवालो !
फ़लकसे अहद ले लेते तो फ़िक्रे-आशियाँ करते ।।

ख़ारो-ख़स[9] जमअ करे, नाम नशेमन[10] रख दे ।
जिसको मंज़ूर हो, गुलशनको बयाबाँ करना ।।

नक़्क़ाशिए-फ़रेबे-मआसी[11] न पूछिए ।
जन्नत बनाके रख दी गुनहगारके[12] लिए ।।

इब्तिदा[13] वोह थी कि दुनिया थी मलामतगर[14] मेरी ।
इन्तिहा[15] यह है कि कोई कुछ नहीं कहता मुझे ।।*

[1]तेज हवा, [2]मज़ार के, [3]अभाग्यरूपी अंधेरी में, [4]निर्माण, [5]दुःख-शोककी, [6]भूतकाल, [7]मित्र, [8]प्रसन्न, [9]काँटे-तिनके, [10]घोंसला; [11]पापोंकी अय्यारानी कला, [12]पापीके, अपराधीके, [13]शुरुआत, [14]छिद्रान्वेषी, [15]आखिरी ।

—*आग थे इब्तिदाए-इश्क़में हम ।
हो गये ख़ाक इन्तिहा है यह ।।—मीर

अहदे-वफ़ाए-दोस्त[1] बजा, लेकिन ऐ नदीम[2] !
क्योंकर कहूँ कि भूल गया आरमाँ मुझे ॥

शराबे-ज़ीस्त[3] अभी सेर होके पी भी नहीं ।
कि सुन रहा हूँ सदाएँ शिकस्त-साग़रकी[4] ॥

हज़ार तरह तख़य्युलने[5] करवटें बदली ।
कफ़स-कफस ही रहा, फिर भी आशियाँ न हुआ ॥

कहते हैं कि उम्मीदपे जीता है ज़माना ।
वोह क्या करे, जिसको कोई उम्मीद नहीं है ॥

नसीहतको आते हैं, ग़मख्वार 'आसी' !
गरेबाँको फिर आज सीना पड़ेगा ॥

अदब-आमोज[6] है मैख़ानेका ज़र्रा-ज़र्रा ।
सैकड़ों तरहसे आ जाता है सिज्दा[7] करना ॥
इश्क़ पाबन्दे-वफ़ा है, न कि पाबन्दे-रसूम[8] ।
सर झुकानेको नहीं कहते हैं सिज्दा करना ॥

जो फूल आता है गुलशनमें गरेबाँ चाक आता है ।
बहारे-रंगो-बूमे ख़ून दीवानोंका शामिल है ॥*

[1]प्रयसीका नेर्काका सकल्प, [2]साथी, [3]जिन्दगीकी शराब, [4]मद्य-पात्र टूटनेकी आवाज, [5]कल्पनाने, [6]विनय सिखानेवाला; [7]ईश्वरके ध्यानमें झुकना, [8]रस्म-रिवाजोंका पाबन्द ।

*चमन सैयादने सींचा यहाँतक ख़ूने-बुलबुलसे ।
कि आख़िर रंग बनकर फूट निकला आरिज़े-गुलसे ॥

—अज्ञात

इस फक़ीरीमे यह हालत मेरे इन्कारकी है ।
बादशाही कहीं मिल जाये तो आफत हो जाय ।।

आलामे-ज़िन्दगीकी[1] हक़ीक़त न पूछिए ।
लाखों तो ऐसे हैं जो मुझे याद भी नहीं ।।

ऐ दुश्मने-मुरव्वत[2] ! कुछ हक भी है हमारा ।
बरसों तेरे लिए हम अहबाबसे[3] लड़े हैं ।।

मुझे एहसास[4] कम था, वरना दौरे-ज़िन्दगानीमे ।
मेरी हर साँसके हमराह मुझमे इन्किलाब[5] आया ।।

रह गई दिलमे तो क्या हाल करेगी दिलका ?
वोह शिकायत कभी लबतक जो न लाई जाए ।।

हज़ारों नग़मए-दिलकश[6] मुझे आते हैं ऐ बुलबुल !
मगर दुनियाकी हालत देखकर चुप हो गया हूँ मैं ।।

खुला यह राज़[7] बज़मे-नाज़का[8] पर्दा उठानेपर ।
कि जिसपर तेरा धोका था, वह इक तस्वीर थी मेरी ।।

हुआ एहसास पैदा मेरे दिलमे तर्के-दुनियाका[9] ।
मगर कब ? जब कि दुनियाको ज़रूरत ही न थी मेरी ।।

अपनी हालतका ख़ुद एहसास नहीं है मुझको ।
मैंने औरोंसे सुना है कि परेशान हूँ मैं ।।

---

[1]जीवनके कष्टोंकी, [2]प्रेमके वैरी; [3]इष्ट-मित्रोंसे, [4]चेतना, [5]परिवर्तन, क्रांति, [6]चित्ताकर्षक गीत; [7]भेद, [8]प्रेयसीकी महफिलका; [9]संसार-त्यागका ।

ऐ ग़मे-दोस्त ! बता दे मुझे मरज़ी अपनी ।
जितनी ख़्वाहिश हो तेरी, उतना परेशान हूँ मैं ।।

है कुछ ख़राबियाँ मेरी तामीरमें[1] ज़रूर ।
सौ मर्तबा बनाके मिटाया गया हूँ मैं ।।

मिसाले-गर्दे-रह मस्कन कहाँ है हम गरीबोंका ।
घड़ी भरके लिए थककर जहाँ बैठे वहीं घर है ।।

नई राहें बताता है, नए रस्ते दिखाता है ।
नहीं मालूम ज़ालिम इश्क, रहज़न[2] है कि रहबर[3] है ।।

रंगे-निशात[4] देख, मगर मुत्मइन[5] न हो ।
शायद कि यह भी हो कोई सूरत मलालकी ।।
गुलशन बहारपर है, हँसो ऐ गुलो ! हँसो ।
जबतक ख़बर न हो, तुम्हें अपने मआलकी[6] ।।
एहसास अब नहीं है, मगर इतना याद है ।
शक्ले जुदा-जुदा थी, उरूजो[7]-ज़वालकी[8] ।।

यह सब फरेब है, नज़रे-इम्तियाज़का[9] ।
दुनियामें वरना कोई भी अच्छा-बुरा नहीं ।।
अब कौन है रमूज़े-मुहब्बतका[10] राज़दाँ[11] ।
इक हम रहे हैं, हमको कोई पूछता नहीं ।।

[1]निर्माणमें, [2]लुटेरा; [3]पथ-प्रदर्शक, [4]उल्लासकी रंगीनियाँ; [5]आश्वस्त; [6]भविष्यकी, [7-8]उत्थान-पतनकी; [9]दृष्टिभेदका, [10]प्रेमके भेदोंका, [11]भेदी ।

रफ़्ता-रफ़्ता यह ज़मानेका सितम होता है।
एक दिन रोज़ मेरी उम्रसे कम होता है॥
बाग़ रोता है असीराने-कफ़सको[1] शायद।
दामने-सब्ज़-ओ-गुल[2] सुबहको नम[3] होता है॥

क़ैदसे पहले भी आज़ादी मेरी ख़तरेमे थी।
आशियाना ही मेरा सूरतनुमाए-दाम[4] था॥

हज़ारों बार कोशिश कर चुका हूँ।
नहीं छुपतीं मुहब्बतकी निगाहें॥

मैं चुप बैठा हुआ हूँ और यह मालूम होता है।
कि जैसे इक ज़माना कह रहा है दास्तां[5] मेरी॥

तग़ाफ़ुलका गिला क्या? मैं तो ऐ साक़ी यह कहता हूँ।
कि प्यासोंकी नज़रसे बाल पड़ जाता है सागरमें॥

दुनियामें कोई ग़मके अलावा ख़ुशी नहीं।
वोह भी हमे नसीब कभी है, कभी नहीं॥*

धोका न खाओ चारा-गरो[6]! वाक़ेआतसे[7]।
पहलूमें दिल नहीं है, तो क्या दर्द भी नही?

फिर बढ़ चला तलातुमे-तूफ़ाने-आर्ज़ू।
हालाँ कि डूबकर अभी उभरा नहीं हूँ मैं॥

---

[1]पिंजरेके बन्दियोंको, [2]घास और फूलोंका किनारा [3]भीगा हुआ, [4]जालकी मृगतृष्णा, [5]कहानी, [6]चिकित्सकको, [7]वास्तविकतासे।

*ऐ फ़लक! दे हमको पूरा ग़म तो खानेके लिए।
वोह भी हिस्सा कर दिया सारे ज़मानेके लिए॥
—दाग़

तू क्यों मुझे मायूस किये देता है नासेह !
क्या तूने मेरा ख़त्ते-जबी[1] देख लिया है ?
अच्छे हुए ज़मानेके बीमार सैकड़ों ।
दिल वोह मरीज़ है जो अभी ज़ेरे-ग़ौर है ।।
छोड़ा ही क्या है लूटनेवालोंने मेरे पास ।
इक ज़िन्दगी सो वह भी कोई दिनकी और है ।।

अब मैं क्या तुमसे अपना हाल कहूँ ।
ब-ख़ुदा याद भी नहीं मुझको ।।
ज़िन्दगानीका आसरा है यही ।
दर्द मिट जाएगा तो क्या होगा ?

बेसाख़्ता उठी जो वोह तौबा-शिकन[2] निगाह ।
ख़ुद मुझको शक हुआ कि मुसलमाँ[3] नहीं रहा ।।

मिटाके सफ़हए-हस्तीसे अपना नामो-निशाँ ।
ज़माने भरमें तेरा नाम लिख चला हूँ मैं ।।

ऐ मेरे दर्द मन्द-दिल ! सुन मेरी एक बात सुन ।
उसको न भूलना कभी, जिसने तुझे भुला दिया ।।

चमक जाओ ऐ शामे-ग़मके[4] सितारो !
मुसीबतके मारोंपै एहसान होगा ।।

ख़ुदा जाने अब दिल कहाँ जाके ठहरे ।
बड़े इन्क़िलाबात-से[5] हो रहे हैं ।।

---

[1]भाग्यलेख; [2]प्रतिज्ञा तोडनेवाली, [3]संयमी, [4]शोक-रात्रिके, [5]क्रान्तियाँ, परिवर्तन ।

झूठा नहीं कहते है तुझे हम, मगर 'आसी' !
जैसा तू बताता है, वोह ऐसा तो नहीं है ।।

मताए-ज़िन्दगीके[1] देनेवाले यह तो समझा दे ।
कि इतना बोझ सरपर रखके ले जाना कहाँ होगा ?

कोई नासेह है, कोई दोस्त है, कोई ग़मख्वार ।
सबने मिलकर मुझे दीवाना बना रक्खा है ।।

उम्र फानी है तो फिर मौतसे डरना कैसा ?
इक-न-इक रोज़ यह हंगामा हुआ रक्खा है ।।

रोती है शबनम, कली दिल-तंग है, गुल सीना-चाक ।
क्या इसी मजमूअए-ग़मका गुलिस्ताँ नाम है ?

बहुत इलाज किया दर्दे-इश्क़का लेकिन ।
वही मआल[2] हुआ जो मआल होता है ।।

तड़पे भी, मुज़्तरिब[3] भी हुए, वक़्ते-क़त्ल हम ।
सब कुछ सही, तुम्हारा तो दामन बचा दिया ।।

मंज़िलके रहनेवालो ! क्या देखते हो हमको ?
आसूद-ए-मकाँ[4] तुम वामाँद-ए-सफ़र[5] हम ।।

यह राज़ है ऐ हरीसे-दुनिया[6] ! तुझे कुछ इसकी खबर नही है ।
उसीका घर है तमाम दुनिया[7], कि जिसका दुनियामें घर नहीं है ।।

कुछ उनको हमारा पास नहीं, जो चाहते है कह जाते है ।
हम सुनते है, सर धुनते है, मुंह तकते ही रह जाते है ।।

---

[1]जीवनधनके, [2]परिणाम, [3]घबराये, [4] घरमें सम्पन्न, सुख-चैनमें, [5]यात्रामें थके-हारे, क्लान्त [6]संसार-लिप्त, [7]समस्त विश्व ।

जीना पड़ा उम्मीदे-वफ़ापर तमाम उम्र ।
हालाँ कि जान देनेमें कोई ज़ियाँ[1] न था ।।

रुसवा हुए, मगर दिले-मुज़्तरको[2] क्या करें ?
मरना पड़ा वहीं हमें, मरना जहाँ न था ।।

अगर दिल सलामत रहेगा तो 'आसी' !
बहुत मिल रहेंगे दग़ा देनेवाले ।।

उनको यह ग़ुस्सा कि मैं उनकी गलीमें क्यों गया ?
मुझको यह हैरत कि क्योंकर शक्ल पहचानी मेरी ।।

तजाहुलसे[3] मेरे नामो-निशाँके पूछनेवाले ।
वहीं रहता हूँ मैं अबतक, जहाँ ढूँढ़ा नहीं तूने ।।

यक़ीन रख कि यहाँ हर यक़ीनमें है फ़रेब ।
बक़ा तो क्या है, फ़नाका भी एतबार न कर ।।

नक़्शे-हस्ती बनी नज़र तेरी ।
न गई याद उम्र भर तेरी ।।

साथ हर साँसके मेरे दिलसे ।
आ रही है, अभी ख़बर तेरी ।।

अब जुदाईमें याद आती है ।
गुफ़्तुगु बात-बात पर तेरी ।।

इतना मुझे मजबूर न कर नासेहे-ग़मख़्वार !
ऐसा न हो-दामन भी गरेबानमें सिल जाय ।।

---

[1]हानि; [2]बेचैन दिलको; [3]अज्ञानतासे ।

मैं अपने दिलसे कहता हूँ कि दर्द कुछ कम है।
मेरा दिल मुझसे कहता है कि अक्सर यूँ भी होता है।।

सबूत है यह तमन्नाकी सादा-लौहीका।
बग़ैर वादेके रहता है इन्तिज़ार मुझे।।*

दिलको शिकवा कि मेरे दर्दका दरमाँ[1] न हुआ।
हम पशेमान कि और इसके सिवा क्या करते।।

अबतक तो मुहब्बतमें वह साअ़त नहीं आई।
जिस रोज़ वह रोनेपे मेरे हँस न दिया हो।।

यह कैसी बदशगूनी है जो मैं महसूस करता हूँ।
कि हूँ और फिर नहीं मालूम होता उसकी महफ़िलमें।।

—निगार, जनवरी १९४१ ई०

ऐसा भी इत्तिफ़ाक़ मुझे बार-हा हुआ।
उनसे मिला हूँ, उनका पता पूछता हुआ।।

कहींसे ढूँढ़के ला दे हमें भी ऐ गुले-तर!
वोह ज़िन्दगी, जो गुज़र जाए मुसकरानेमें।।

देखकर अहले-जहाँकी बेरुख़ी तेरे बग़ैर।
हँस रहा हूँ आज मैं पहली हँसी तेरे बग़ैर।।

[1] इलाज

*न कोई वादा न कोई यक़ीं, न कोई उम्मीद।
मगर हमें तो तेरा इन्तिज़ार करना था।।

—फ़िराक़ गोरखपुरी

जा, सुकूने-ज़िन्दगानी मेरी क़िस्मतमें न ढूँढ़।
ठोकरें खाई हैं मैंने उम्रभर तेरे लिए।।

ग़मोंपर ग़म फट पड़ते हैं ऐयामे-जवानीमें।
इज़ाफ़े हो रहे हैं वाक़िआते - ज़िन्दगानीमें।।

मेरा हाल पूछा मेरी बात मानी।
तवज्जह, इनायत, करम, मेहरबानी।।

नज़र नीची अरक़ आया हुआ-सा।
मिला भी वोह तो शरमाया हुआ-सा।।

बहार आती है और मैं डर रहा हूँ।
कि अक्सर मुझको रास आती नहीं है।।

—आजकल १ दिसम्बर, १९४६ ई०



रहा बर्क़-तपाँसे साबिक़ा तक़दीरमें इतना।
कि अब अपना नशेमन हम बनाते हैं शरारोंमें।।

२८ जनवरी, १९५२ ई०]

द्वितीय संस्करण के लिए

एक ग़ज़ल—

नज़रमें, दिलमें, तख़ैय्युलमें जगमगाएजा।
चिराग़े ख़ान - ए - आशुफ़्तगी जलाएजा॥
करम-ब-शक्ले-सितम या सितम-ब-शक्ले-करम।
वह कोई रंग सही दिलको दिल बनाएजा॥
शराब आग है साक़ी! यह जानता हूँ मगर।
बनाके आगको पानी मुझे पिलाएजा॥
सुकून जिसका लिया, नाम हमनशीं तूने।
कहाँ है, कौन है, क्या है, ज़रा बताएजा॥
ज़मीं-फ़रेबे-तमाशा, फ़लक फ़रेबे-नज़र।
फ़रेब ही की है, दुनिया फ़रेब खाएजा॥
कहीं शकेब कहीं हसरतें, कहीं आँसू।
वफ़ाकी राहमें जो कुछ मिले लुटाएजा॥
फ़ना मआले-वफ़ा है, वफ़ा-मआले-फ़ना।
समझसे काम ले और फ़ायदा उठाएजा॥
यह मेरा फ़र्ज़ कि मैं तुझको ढूँढ़ने निकलूँ।
यह तेरा काम कि रस्ता मुझे बताएजा॥
फ़रेबे-वादए-पैहमका वास्ता तुझको।
कि इन्तिज़ारे-तमन्नाको आज़माएजा॥
सफ़र लिया है, तो हिम्मत न हार थककें न बैठ।
बहुत क़रीब है मंज़िल, क़दम बढ़ाएजा॥

निगाह मुन्तज़िर उस दौरकी है ऐ साक़ी !
कि वह पिलाए मुझे मैं कहूँ पिलाएजा ।।

—आजकल, अक्तूबर १९५६ ई०

अफ़सोस कि मरहूम 'आमी'की गज़लोंका दीवान अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ। इसीसे हमने पत्र-पत्रिकाओंसे जो भी कलाम दस्तयाब हो सका, चुनकर प्रथम संस्करणमें दिया था।

'आमी'की ६०० रुबाइयात "रुबाईयाते-आमी" शीर्षकसे नवलकिशोर प्रेस लखनऊने १९४८ई० में, उनकी मृत्युके बाद प्रकाशित की थी। उसी पुस्तकसे ४८ रुबाइयाँ चुनकर यहाँ दी जा रही हैं।

रुबाइयात—

दौरे-इशरतसे[1] शाद[2] होना सीखा,
रंगे-इबरतसे[3] होश खोना सीखा,
गुलने दी थी मुझे हँसीकी तालीम,
शमए-महफ़िलसे मैंने रोना सीखा ।।

बचपनका ज़माना खेलमें सर्फ़[4] हुआ ।
और वक़्ते-शबाब[5] ख़्वाबे-ग़फ़लतमें गया ।।
ले-देके रही थी एक पीरी[6] बाक़ी ।
पीरी आई तो मौतका है धड़का ।।

चेहरेका नक़ाब हो गई है दुनिया ।
आँखोंका हिजाब हो गई है दुनिया ।।
जबसे दुनियासे मैंने मुँह मोड़ा है ।
भूला हुआ ख़्वाब हो गई है दुनिया ।।

---

[1]मौज-मज़ाके दिनोंमें; [2]प्रसन्न; [3]नसीहतोंसे; [4]व्यतीत, खर्च; [5]जवानीका वक़्त; [6]वृद्धावस्था।

जानेके लिए सूए-जहाँ[1] क्यों आता?
करता हुआ नाला-ओ-फ़ुग़ाँ क्यों आता?
होता जो मेरे ही बसमें आना-जाना।
तो क़ोफ़्त[2] उठाने मैं यहाँ क्यों आता?

पूरा मेरा मुद्दआ यक़ीनी होगा।
दिल ग़मसे कभी जुदा यक़ीनी होगा॥
माना कि यह एक बहरे-बेपायाँ[3] है।
फिर भी कोई नाख़ुदा[4] यक़ीनी होगा॥

मक़सूदे-दिली[5] ज़बानपै लाना कैसा?
और बहरे-दुआ[6] हाथ उठाना कैसा?
आलिम[7] है, ख़ुदा तो ऐ! ख़ुदाके बन्दे!
हर वक़्त ख़ुदाको आज़माना कैसा?

ज़र[8] जमअ किया, मिला नहीं कोई सिला।
ज़रसे मेरा ग़ुंचए-तमन्ना न खिला॥
ज़र अस्लमें इक बलाए-जान था 'आसी'!
ज़र पाससे जब गया तो आराम मिला॥

पैदा जबसे जहाने-ईजाद[9] हुआ।
इक शाद[10] यहाँ तो इक नाशाद[11] हुआ॥
यह फ़ितरते-मुन्क़लिब[12] रही आख़िर तक।
दुनिया उजड़ी तो महशर आबाद हुआ॥

---

[1]ससारकी तरफ; [2]रंज-मुसीबतें; [3]असीमित दरिया; [4]नाविक, मल्लाह, [5]दिलकी अभिलाषा; [6]नमाज़के बाद ख़ुदासे माँगनेको हाथ उठाना; [7]सर्वज्ञ, ज्ञानी; [8]धन; [9]संसार; [10]सुखी; [11]दुःखी; [12]उल्टी प्रकृति।

इक मुर्ग़े-चमन[1] क़फ़ससे आज़ाद हुआ।
गुलशनमें गया, उड़ा बहुत शाद हुआ॥
लेकिन अभी आशियाँमें पहुँचा भी न था।
उड़ता हुआ फिर असीरे-सैय्याद[2] हुआ॥

उस जूदको[3] और उस सख़ाको[4] देखा।
उस लुत्फ़को और उस अ़ताको[5] देखा॥
जिसका बन्दा नहीं सिवा तेरे कोई।
देखा वाइज़! तेरे ख़ुदाको देखा॥

मालूम है तुझको ऐ बख़ीलोंके[6] ख़ुदा।
ज़र तूने दिया तो किन कमीनोंको दिया॥
अब और तो क्या कहूँ मैं तुझसे लेकिन।
होना यह न चाहिए था जो कुछ कि हुआ॥

कहते हैं ख़ुदा ख़ुलूसे-ताअ़त[7] लेगा।
तस्लीमो-तवक्कुल-ओ-क़नाअ़त[8] लेगा,॥
जिसने लाखोंको मुफ़्त शाही[9] दे दी।
क्या हमसे बहिश्तकी वह क़ीमत लेगा?

इसियाँसे[10] उसी तरह सरोकार रहा।
तौबा करली मगर गुनहगार रहा॥
पहले जब रिन्द[11] था तो बेबाक[12] था मैं॥
जब जुह्द[13] किया तो सख़्त मक्कार रहा॥

---

[1]पक्षी; [2]अहेरीका कैदी; [3]दानवीरताको; [4]उदारताको; [5]देनेको; [6]कजूसोके; [7]निष्कपट उपासना, सच्ची बन्दगी; [8]बन्दगी, श्रद्धा, सन्तोषीपन; [9]बादशाहत; [10]पापोसे, [11]मद्यप; [12]निडर; [13]सयमका पालन।

उसने उलटी अगर्चे सौ बार नक़ाब।
हाइल[1] रहा फिर भी मेरी आँखोंका हिजाब[2]॥
था वस्लमें[3] मुब्तिलाए-हिजराँ[4] यानी।
दरियामे तही-दस्त[5] रहा मिस्ले-हुबाब[6]॥

रिन्दोंके यहाँ सफ़ाए-बातिन[7] है शराब।
सूफ़ीकी[8] नजरमे दीन करती है ख़राब॥
अलक़िस्सा यह वह अजीब शै है जिसका।
पीना भी सवाब[9] और न पीना भी सवाब॥

मैख़ाना मुबारक ऐ! जवानाने-ख़राब।
पीते रहो तुम कि है, अभी अहदे-शबाब॥
जो पीर है, उनसे कह दो बाहर जाये।
साक़ीने लूँढादी, उनके हिस्सेकी शराब॥

ऐ हजरते-जाहिद! मुअल्ला-अलक़ाब।
दीजे मेरे इक सवालका आप जवाब,॥
दोजखमें रहेंगे जब शराबी सारे।
फिर कौन पिएगा जाके जन्नतमें शराब?

इन्साँके लिए यह उम्रे-फ़ानी[10] है, मौत।
इन्साँके लिए यह जिन्दगानी है मौत॥
डरते है जवानीमें अबस्[11] मरनेसे।
सौ मौतकी एक यह जवानी है मौत॥

---

[1]बीचमे बना रहा; [2]लिहाज, लाज. [3]मिलनमे; [4]वियोगी; [5]खाली हाथ [6]बुलबुलेके समान; [7]दिल साफ रखनेवाली, [8]सन्त या धार्मिकोकी, [9]दुरुस्त; [10]मिटनेवाली उम्र, [11]व्यर्थ ।

ऐ जाहिदे-खुद-नुमा ज़रा ख़ौफ़ तो कर।
इतना तो न हो सरको झुकाकर ख़ुदसर॥
हँसता है, ज़माना और रोती है उमर।
इस तेरी नमाज़ और तेरे रोज़े पर॥

इक महफ़िले-ऐशमें हुआ मेरा गुज़र।
देखा इक ख़ुश्क फूलको मिज़्मर[1] पर॥
पूछा मैंने कि क्यों जलाते हैं तुझे।
बोला कि चमनमें हँस लिया था दम भर॥

ऐ वाइज़े-ख़ुश-बयान मुझे तंग न कर।
बातोंका तेरी नहीं मेरे दिल पै असर॥
आने वाला न कोई, जाने वाला।
फिर किससे सुनी बिहिश्त-ओ-दोज़खकी ख़बर?

तस्बीह[2] इधर है, और ज़ुन्नार उधर[3]।
काबा है इधर, तो उस तरफ़ है मन्दर॥
ऐ बे-ख़बरे-मआले-सैरे-हस्ती,[4]!
जाना है किसी तरफ़ तो जा देर न कर॥

बेशक है, ख़ुल्दमें[5] मै साफ़-ओ-तुहूर[6]।
लेकिन नहीं होता उससे रिन्दोंको सुरूर[7]॥
शिकवा किस बातका जनाबे-वाइज़!
तुम भी मजबूर और वह भी माज़ूर॥

---

[1]अँगीठी पर, अगरदान पर; [2]माला; [3]जनेऊ, [4]जीवन-यात्रा से अनभिज्ञ, [5]जन्नतमें; [6]स्वच्छ, पवित्र, [7]नशा।

इक दोस्त जो कर गया था दुनियासे सफ़र।
रोता था मैं उसकी क़ब्र पर जा-जाकर॥
इक दिन यह सदा सुनी कि "ऐ दुश्मने-होश!
औरोंके लिए न रो, अब अपना ग़म कर"॥

क्या सरको झुका रहा है तू ऐ मग़रूर[1]!
जो सरमें है, उसको पहले सरसे कर दूर॥
वर्ना तेरी वह मिसाल हो जाएगी।
दरियामें हुबाब[2] जैसे दरियासे दूर॥

मैख़ानए-दहरके नये हैं, अन्दाज़।
हर फ़िरक़े के वास्ते जुदा है इक राज़॥
ज़ाहिद उसे जानता है, इक लग़्ज़िशे-पा।
साक़ी जिसे मानता है, मस्तोंकी नमाज़॥

ईमान नहीं है, कुफ़्र[3] पिनहाँ[4] है हनोज़[5]।
जाँ ख़ाक हुई, मगर ग़मे-जाँ[6] है हनोज़॥
लेकिन इस बातका तअ़ज्जुब क्या है।
आदम नहीं और जहाँमे शैताँ है हनोज़॥

जब किश्तिए-उम्र आई साहिलकी[7] तरफ़।
और पहुँची हयात अपनी मंज़िलकी तरफ़॥
काफ़ूरे-कफ़नसे हो गये बाल सफ़ेद।
बालोंसे सियाही आगई दिलकी तरफ़॥

---

[1]अभिमानी, [2]बुलबुला, [3]अधार्मिकता, [4]छिपी हुई; [5]अभीतक; [6]जान जाने का दुःख; [7]किनारेकी।

है अस्लमें जहर हम, ब-ज़ाहिर तिरयाक़[1]।
जी ख़ुश है, गुनहसे और चेहरा ग़मनाक॥
है ज़ाहिर-हाल और तो बातिन[2] और।
कपड़े है तमाम पाक, दिल है नापाक॥

पहुँचा नहीं कोई सरहदे-मतलब तक।
उक़्दा[3] यह खुला नहीं किसी पर अब तक॥
तू उम्र गुज़ार अपनी, यह फ़िक्र न कर।
दुनिया कबसे है, और रहेगी कब तक॥

ज़िन्दा है तो ज़िन्दगीसे रख अपना मेल।
तहक़ीक़े-हयातका[4] यहाँ खेल न खेल॥
मै पीले, यह पूछनेसे क्या मतलब है।
अंगूरका पेड़ था कि अंगूरकी बेल॥

कुछ भी नहीं है यह कुफ़्रो-ईमाँ दोनों।
कुछ भी नहीं यह गबरो[5]-मुसल्माँ दोनों॥
जब राज़े - हक़ीक़तसे[6] उठाया पर्दा।
रोने लगे, हो-होके पशेमाँ[7] दोनों,॥

इस बाग़े-जहाँमे गुल खिले है लाखों।
सदमोंसे यहाँके दिल हिले है लाखों॥
एक अपने ही दिलको तू लिये फिरता है।
ऐसे-ऐसे मुझे मिले है लाखों,॥

---

[1]जहरकी दवा, [2]अन्तरग, [3]भेद, [4]जीवनके अनुसन्धानका; [5]अग्निपूजक, अधार्मिक; [6]वास्तविकतासे; [7]शर्मिन्दा।

हर्गिज़ न कहो, कि कोई आक़िल ही नहीं।
जाहिल हैं तमाम, कोई कामिल ही नहीं॥
अपने पै क़यास, दूसरोंका न करो।
क्या तुम जो नहीं, तो कोई आक़िल ही नहीं?

ज़िन्दा रहे हम अगर्चे[1] मरना था हमें।
हँसते रहे गर्चे[2] नाला करना था हमें॥
यह रंज नहीं कि करदनी[3] कुछ न किया।
ग़म यह है, किया वह जो न करना था हमें॥

हस्तीने कहा ग़मे-फ़ना[3] दूँगी मैं।
दुनियाने कहा कि दिल बिठा दूँगी मैं॥
इन्सानको सुनके यह बड़ा रंज हुआ।
ग़फ़लतने कहा कि सब भुला दूँगी मैं॥

इस बाग़े-जहाँमें नुक्ता-पर्दाज[4] नहीं।
इस बज़्ममें कोई महरमे-राज़ नहीं॥
मज़्बूर ज़बाँ बन्द कर ली हमने।
क्या फ़ाएदा जब कोई हम-आवाज़[5] नहीं॥

अब अपनी नमाज़ और वह रोज़ा भी नहीं।
वह ज़ुह्द[6] वह इत्तक़ाका[7] धड़का भी नहीं॥
थीं हमको खुदासे सैकड़ों उम्मीदें।
अब मर गये तो ख़ुदाने पूछा भी नहीं॥

[1-2]यद्यपि, [3]नाशवान दुःख; [4]बुद्धिमान; [5]स्वर मिलानेवाला साथी. [6]सयम; [7]विवेकका, परहेज़का।

पैहम[1] दमे-सर्द क्यों मरे जाते हो?
बेवक़्त क़ज़ासे[2] क्यों डरे जाते हो?
मुश्किल नहीं मौत आजमाओ तो सही।
मरजानेसे पहिले क्यों मरे जाते हो?

मुतलक़ न निगाह नेको-बद पर डालो।
नफ़ओ-नुक़्सान कभी न देखो भालो॥
एक-एकको रोज़ ज़िबह करते जाओ।
ऐ क़ौमकी बकरियाँ चराने वालो!

इन्सॉसे ज्यादा किसकी हालत है तबाह?
इन्सॉसे ज्यादा कौन है नामा-सियाह?
यह वोह है कि रोज़ जिसकी घटती है उम्र।
यह वोह है कि रोज़ जिसके बढ़ते हैं गुनाह॥

जैसे ही सुफ़ेदी आके सरमे पहुँची।
इक उम्रकी आफ़ियत[3] ख़तरेमें पहुँची॥
रअशेकी[4] हुई तमाम आज़ामे[5] नमूद[6]।
किश्तीए-सलामती भँवरमे पहुँची॥

किस बातका खौफ़ है, यह कैसा डर है।
क्या मौत निज़ामे-ज़ीस्तसे[7] बाहर है?
इतना ही तो मौतो-ज़िन्दगीमे है फ़र्क।
कल सरपै था चाँद आज तुर्बत पर है॥

---

[1]लगातार; [2]मौतसे; [3]चैन, कुशल [4]कंपनकी [5]अवयवोंमें, [6]प्रकटन; [7]जीवन-व्यवस्था से।

है बेख़बरे-मआल[1] आफ़त यह है।
सूरत ही कोई नहीं है सूरत यह है॥
मंज़िल जो दराज़ हो तो कुछ ख़ौफ़ नहीं।
मंज़िलकी ख़बर नहीं, क़यामत यह है॥

आईनो-तरीक़ो[2] दीनो-मशरब[3] क्या है।
कुफ़्रो-इस्लाम क्यों है, यह सब क्या है॥
मज़हब है अगर ख़ुदाके ख़ुश करनेको।
हम भी तो सुनें ख़ुदाका मज़हब क्या है?

मैख़ानेमें लुत्फ़े-ज़ीस्त[4] पाने वाले!
मीना-ओ-सुबूसे[5] दिल लगाने वाले!
पी ली है तो मैकदेको ख़ाली कर दे।
बाक़ी है अभी बहुत-से आने वाले॥

तूने मुझे जो उम्र अता[6] कर दी थी।
सब नज़रे-गुनाह[7] ऐ ख़ुदा कर दी थी॥
अब तू भी करमकी इन्तिहा[8] कर देना।
मैंने भी ख़ताकी इन्तिहा कर दी थी॥

४ जनवरी १९५८ ई०]

[1]परिणामसे अनभिज्ञ; [2]नियम व रीति. [3]धर्म व पथ. [4]जीवन-आनन्द; [5]सुराही व घड़ेसे; [6]आयु दी थी; [7]गुनाहको भेंट. [8]दयालुताकी अन्तिम हद।

कुछ और मशहूर शाइर



१ अकबर हैदरी

२ ताजवर नजीबाबादी

३ तिलोकचन्द महरूम

४ असर लखनवी

आज़ाद अंसारीके शिष्य—



अकबर हैदरी

[.... — १९४० ई०]

अकबर हैदरी साहब दिल्ली-निवासी थे और अंगरेज़ोंको हिन्दी-उर्दू पढ़ानेका कार्य करते थे। मौलाना हालीके शिष्य, आज़ाद अन्सारीके आप शाइरीमें शागिर्द थे। आपने शाइराना दिलो-दिमाग़ पाया था। ग़ज़लके अतिरिक्त नज़्म, रुबाई आदि भी कहते थे। अंगरेज़ी, फ़ारसी, पश्तो, हिन्दीका अच्छा ज्ञान था।

दरमियाना क़द, रोबीला गोल चेहरा, हँसता हुआ ललाट, मुसकराती हुई आँखें, मुंहमें तम्बाकूका पाइप, निहायत ख़शपोश, ख़ुशबाश, ख़ुशमिज़ाज। बात-बातमें लतीफ़े कहते थे। दुःख-दर्दमें भी हँसते रहते थे। मगर दूसरोंके रंजो-ग़ममें दिलसे हाथ बटाते थे। दोस्तके दुःख-सुखको अपना दुःख-सुख समझते थे। स्पष्ट वक्ता और स्वच्छ हृदय थे। वज़अ और उसूलकी पाबन्दी अपना ईमान समझते थे। ईर्ष्या योग्य स्वास्थ्य था। १२ मार्च १९४० ई० को आपका निधन हो गया। १५ नवम्बर १९४६ के 'आज-कल'में प्रकाशित आपका कुछ कलाम यहाँ दिया जा रहा है—

जहाने-हुस्नमें[1] महवे-तरन्नुम[2] है वफ़ा[3] मेरी।
मैं नग्मो[4] हूँ मुहब्बतका, मुहब्बत है सदा[5] मेरी॥

दिले-मुज़्तरको[6] जिसपर एतमादे-कामरानी[7] था।
मेरे एहसासे-खुद्दारीमें[8] है वोह इल्तिजा[9] मेरी॥

मशीयतकी[10] निगाहोंमे जो मेआरे-परस्तिश[11] थी।
हुई है जज़्ब[12] अश्के-खूँ-फ़िशाँमे[13] वोह दुआ मेरी॥

इक आँसू और वोह भी दिलकी रंगीनीसे बेगाना।
न देखी जायगी दुनियासे तस्वीरे-वफ़ा मेरी॥

नियाज़ो-नाज़का[14] अफ़साना लिखनेके लिए 'अकबर'!
सुनी है कातिबे-कुदरतने[15] बरसों इल्तिजा[16] मेरी॥

तसन्नोअ[17] है, तकल्लुफ़ है, तअ़ल्ली[18] है, तमाशा है।
समझ ही मे नहीं आता कि मेरी ज़िन्दगी क्या है॥

खुदावन्दा मेरी गुमराहियोंसे दरगुज़र फ़रमा।
मैं उस माहौलमे[19] रहता हूँ, जिसका नाम दुनिया है॥

---

[1]सौंदर्य-ससारमे, [2]सगीतमे लीन; [3]नेकी, [4]सगीत; [5]आवाज; [6]बेचैन दिलको, [7]सफलताका विश्वास; [8]स्वाभिमानी चेतनामे, [9]प्रार्थना, [10]खुदाकी मर्जीकी; [11]उपासनाका आदर्श, [12]लीन; [13]खूनके आँसुओंमें; [14]नम्रता और अभिमानका; [15]भाग्य विधाताने; [16]प्रार्थना; [17]बनावट; [18]शेखी, [19]वातावणरमे ।

ख़ुद-परस्ती[1] ख़ुदा न बन जाये।
एहतियातन् गुनाह करता हूँ॥

हवादिस्में[2] फ़ना[3] होकर बक़ाके[4] राज़[5] समझा हूँ।
मेरी जमईयते-ख़ातिर[6] हुई मेरी परेशानी॥

अब देखिए कि कौन ठहरता है देर तक।
बज़्मे-शबाब भी है, जहाने-हुबाब[7] भी॥

किस चमनकी ख़ाकमें फूलोंका मुस्तक़बिल[8] नहीं?
दूरबीं-नज़रोंमें[9] रंगो-बू है, आबो-गिल नहीं॥

मेरी अंजाम-बीं नज़रें[10] मुझे मग़मूम[11] करती हैं।
लरज़ जाता है मेरा दिल, उरूजे-माहे-ताबाँसे[12]॥

तज़किरा बर्क़ो-शररका[13] जो सुना मैंने कभी।
आह भरकर दिले-ग़मगींने कहा—"हाय शबाब"॥

फ़िरिश्ते आदमी बनकर न रह सके 'अकबर'!
वोह ऐसी कौन-सी मुश्किल थी आदमीयतमें?

फ़ितरतने लेके अश्के-नदामतकी सुर्खियाँ[14]।
उनवान[15] लिख दिया मेरी फ़रदे-गुनाहपर[16]॥

---

[1]अहमन्यता; [2]मुसीबतोंमें; [3]मरकर; [4]जिन्दगीके; [5]भेद; [6]तमल्ली; [7]पानीके बुलबुलोका संसार; [8]भविष्य; [9]दिव्य दृष्टिमें; [10]अंजाम देखनेवाली आँखें; [11]ग़मगीन; [12]चमकते चन्द्रमाके विकाससे, [13]बिजली-आगका जिक्र; [14]प्रायश्चित्तके आँसुओंकी लाली; [15]शीर्षक; [16]पाप-तालिकापर।

आबरूए - गुनाहगारी हूँ।
अ़रक़े-इन्फ़िआ़ल[1] क्या कहना॥

ज़मीरे-पाकतीनत[2] आह कितना बेमुरव्वत है।
सितमगर हर मसर्रतको[3] गुनहगारी बताता है॥

मैं किस दिलसे करूँ ताअत[4] कि ताअतमे मसर्रत है।
निको-कारीसे[5] डरता हूँ कि मुझको लुत्फ़ आता है॥

गुनाहोंमे यक़ीनन एक एहसासे-मसर्रत है।
गुनाहोंके लिए लेकिन जवानीकी जरूरत है॥
जवानीमें गुनहगारी बहुत मासूम होती है।
यही हुक्मे-जवानी है, यही आईने-फ़ितरत है॥

दरोग़े-मस्लेहत-आमेज़[6] है दिलकी तसल्ली भी।
खुदाका वास्ता देकर न पूछो अहले-ईमाँसे॥

न अल्फ़ाज़े - हमदो - सना[7] जानता हूँ।
न दिलचस्प तर्ज़े-अदा जानता हूँ॥
मेरी बन्दगी है इसीमे कि तुझको।
ख़ुआ मानता हूँ, ख़ुदा जानता हूँ॥

मशीयतकी[8] परिस्तारी[9] और इस अन्दाजसे 'अकबर'!
दुआ लबपर नहीं आती, मगर आँसू निकलते हैं॥

---

[1]शर्मिन्दगीके पसीने; [2]पवित्र हृदय; [3]खुशीको. [4]उपासना; [5]बदनामीसे; [6]झूठ बोलना भी मस्लेहत लिये हुए है; [7]प्रशंसा; [8]खुदाकी; [9]उपासना।

बेतकल्लुफ़ तुझे ख़ुदा कहना।
मेरी सादा-दिलीका क्या कहना॥
जानता हूँ जरूरतें अपनी।
मस्लेहत है तुझे ख़ुदा कहना॥

शमअमें इक सोज़ था, इक साज़ परवानेमें था।
हुस्न गोया इश्क़के ख़ामोश अफ़सानेमें था॥

ऐ दर्दे-मुहब्बत मुझे गुमराह न करना।
दिल अश्कमें बह जाय, मगर आह न करना॥

दूर - अन्देशियाँ मुहब्बतकी।
बे-वफ़ाओंको बा-वफ़ा कहना॥

जो यही रहा तबस्सुम[1], जो यही रहा तरन्नुम[2]।
मैं सुना चुका फ़िसाना, शबे-गमकी काविशोंका[3]॥

बुत-कदा था इधर, उधर काबा।
थी जवानीकी रहगुज़र[4] दिलचस्प॥

एक हम हैं दोस्तीपर भी हमें दुश्मन ख़िताब।
एक तुम हो, दुश्मनीपर भी तुम्हारा नाम दोस्त॥

देखा हविस-ओ-हुस्नको[5] बाहम[6] जो बग़ल-गीर।
नाकामे-मुहब्बतने कहा---"हाय मुहब्बत"॥

---

[1]मुसकान, [2]मगीत; [3]विरहरात्रिकी मुसीबतोंका; [4]मार्ग, राह; [5]विषयलोलुपता और रूपको, [6]परस्पर।

यूं न फ़ितने उठा ख़िरामे-नाज़ !
मेरा ईमान है, क़यामत है ॥

पुरसिशे-ग़म अगर तकल्लुफ़ थी।
इस तकल्लुफ़को वेर-पा करते ॥

इक तबस्सुम है, उनके होटों पर।
या मेरी गुम-शुदा जवानी है ?

तड़पकर करवटें पैहम दिले-नाकाम लेता है।
लरज़ जाता हूँ जब कोई, वफ़ाका नाम लेता है ॥

हसरत[1] भी है, उम्मीद भी है, आर्ज़ू भी है।
सब कुछ मेरे नसीबमें है, एक तू नहीं ॥

तूफ़ाने - बर्क़ो - बादकी[2] ज़र्रा - नवाजियो !
मैं ख़ानुमाँ-ख़राब[3] किसे आशियाँ कहूँ ?

अभी तो नाख़ुदाके बाद मेरे इक ख़ुदा भी है।
हवादिस[4] क्यों तड़पकर रह गये ,आग़ोशे-तूफ़ाँमें[5] ?

तकमीले-दर्द[6] होती है, जब हर दवाके बाद।
हसरतसे देखता है, मेरा चारागर[7] मुझे ॥

बेकसीका लुत्फ़ भी जाता रहा।
शामे-ग़ुरबत[8] भी सहरने[9] छीन ली ॥

३ जून १९५३ ई०]

---

[1]अभिलाषा; [2]बिजली-आँधीके तूफ़ानकी; [3]जिसका घर बरबाद कर दिया गया हो; [4]मुसीबतें; [5]तूफ़ानोकी गोदमें; [6]दर्दमें अधिकता; [7]चिकित्सक; [8]यात्राकी शाम; [9]सुबहने।

'ताजवर' नजीबाबादी

[१८९४–१९५१ ई०]

मौलाना ताजवर नजीबाबादी उर्दूके बहुत बड़े हितैषी, प्रसारक और प्रामाणिक विद्वान् थे। आपके निधनसे उर्दू-संसारकी बहुत अधिक हानि हुई है। आप जीवन-पर्यन्त उर्दूके प्रसार, निर्माण, और नोक-पलक निकालनमें लगे रहे।

आपका पूरा नाम एहसानअ़लीखाँ और उपनाम 'ताजवर' था। उत्तर-प्रदेशके बिजनौर ज़िलेकी तहसील नजीबाबादमें आपका १८९४में जन्म हुआ। देववन्दके प्रसिद्ध मुस्लिम विद्यालय 'दारुल-उलूम' की अ़रबी-फ़ारसी और मज़हबी, शिक्षामें पारंगत होनेके बाद १९१४ ई०में २० वर्षकी अवस्थामें आप लाहौर चले गये और वहाँ ता-उम्र साहित्य-सेवा करते रहे। पंजाबियोंकी कट्टर प्रान्तीयताके कारण आपको पग-पगपर विघ्न-बाधाओंने घेरा; परन्तु आप मर्दाना-वार मैदानमें डटे रहे और अपने लक्ष्यकी ओर बराबर बढ़ते रहे। पंजाबमें 'उर्दू-बोलो' आन्दोलनके आप मुख्य प्रेरक थे। आपने अपने विचारोंके प्रसारके लिए मख़ज़न, हुमायूँ शाहकार और अदबी दुनिया-जैसे प्रसिद्ध पत्रोंका संपादन, प्रकाशन किया। आपके आलोचनात्मक, गवेषणात्मक, खोजपूर्ण लेखों और साहित्यिक निबन्धोंको बहुत चावसे पढ़ा जाता था। पंजाब यूनिवर्सिटीसे आपका सदैव सम्बन्ध रहा। आपके अनेक शिष्य पाकिस्तान और भारतमें ख्याति-

प्राप्त साहित्यिक विद्वान् है। आप आत्म-विज्ञापनसे सदैव बचते रहे। यहाँ तक कि अपने कलामका सकलन तक नही छपवाया। शिष्योंको आस्मानमें चढ़ा दिया, परन्तु स्वयं एकाग्र होकर कार्य करते रहे।

मन-बहलावके लिए कभी-कभी शेर भी कह लेते थे। नमूनेके तौरपर चन्द शेर दिये जा रहे है। उर्दू-ससारमे आपका मर्त्तवा गद्य-लेखक और सम्पादकके नाते बहुत बुलन्द है।

अब आप बनेंगे अपनी दुनिया।
दुनिया तुझे भूल जायेंगे हम॥

ग़मकी तनहाईमे जब वोह ख़्वाबे-हसीं याद आता है।
यूँ ही बैठे-बैठे दिलको जाने क्या हो जाता है?

ऐ दोस्त! तेरे होते भी तिलिस्मे-राज़ बनी है क्यों दुनिया?
इस चेहरेसे भी नक़ाब उठा, इस राजको भी रुसवा करदे॥
ऐ वाइज़! क्या समझाता है मैं उसका देखनेवाला हूँ।
जो अपनी एक नज़रसे पत्थरमे भी दिल पैदा कर दे॥

खटक रहा हूँ हर-इककी नज़रोमें, बचके चलती है मुझसे दुनिया।
जहे-गिराँ-बारीए-मुहब्बत कि दोशे-हस्तीपै बार हूँ मैं॥

तेरी मुहब्बतमें मेरे चेहरेसे है नुमायाँ[1] जलाल[2] तेरा।
हूँ तेरे जलवोंमें मह्व[3] ऐसा कि तेरा आईनादार[4] हूँ मैं॥

ख़ाना-बरबादे-चमन बरसों क़फ़समे हमसफ़ीर!
आशियाँसे छुटके ख़्वाबे-आशियाँ देखा किये॥

अहले-चमनको क़ैदे-क़फ़सकी है आर्ज़ू।
सैयादसे भी बढ़के सितम बाग़बाँके है॥

---

[1]प्रकट, [2]रूप-गौरव; [3]लीन; [4]प्रतिबिम्ब।

यह लुटी हुई-सी बहार क्यों है, कहाँ वह जाने-बहार है ?
यह चमनसे कौन चला गया, कि कली-कलीको फ़िशार[1] है ?

बस रहा है मेरी आँखोंमें वही जाने-बहार।
जिसका हम-रंग कोई फूल चमनभरमें नहीं॥

महफ़िले-हश्र भी सूनी नज़र आती है मुझे।
ढूँढती है जिसे नज़रे, वही महशरमे नहीं॥

है मेरे ख़ाकके ज़र्रोंमें फिर नमूदे-हयात[2]।
कहीं उन्हें तो नहीं याद आ रहा हूँ मैं ?

मुहब्बत आह, मुहब्बतकी ज़िन्दगी मत पूछ।
बड़ी मुसीबतोंमे मुब्तिला[3] रहा हूँ मैं॥

मान लिया कि 'ताजवर'! वोह नहीं इख़्तियारमें।
कहिए तो अपने दिलपै है, आपको इख़्तियार क्या ?

न दिल बदला, न दिलकी आर्ज़ू बदली न वोह बदले।
मैं कैसे एतबारे-इन्क़िलाबे-आस्माँ कर लूं ?
सबब हर-एक मुझसे पूछता है मेरे रोनेका।
इलाही सारी दुनियाको मैं क्योंकर राज़दाँ[4] करलूं ?

ख़लिशे-इश्क़[5] मिटेगी मेरे दिलसे जबतक।
दिल ही मिट जाएगा, ऐसा नज़र आता है मुझे॥

मलामत-गरो ! उनको ज़िदपै तुम्हारी।
नहीं भी अगर चाहता, चाहता हूँ॥

---

[1]फटीहुई-सी हैं, परेशान है. [2]जीवन के चिह्न, [3]घिरा हुआ; [4]भेदी; [5]प्रेमचुभन।

ख़ुदा मुझको तुझसे ही महरूम कर दे।
जो कुछ और तेरे सिवा चाहता हूँ॥
नज़रभरके जो देख सकते हैं मुझको।
मैं उनकी नज़र देखना चाहता हूँ॥

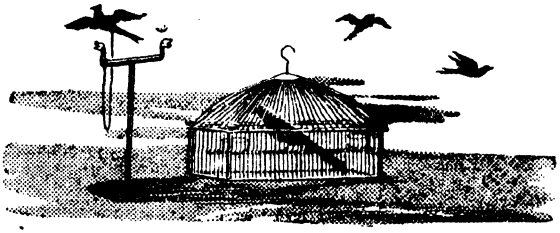
बस इतनी दाद देना बाद मेरे मेरी उल्फ़तकी।
कि याद आऊँ तो अपने आपको तुम प्यार कर लेना॥

ख़ुद्दारिए-जुनूँने न जाने दिया वहाँ।
कम्बख़्त राहे-दोस्तमें दीवार हो गई॥

मिटा न मुझको मुहब्बतकी ख़ुद-फ़रामोशी[1]।
कि अपने भूलनेवालेकी यादगार हूँ मैं॥

कहीं रुसवा न हो अब शाने-इस्तग़ना मुहब्बतकी[2]।
मेरी हालत तुम्हारे रहमके क़ाबिल न बन जाये॥

—निगार जनवरी १९४१ ई०



यह सितम? क़ैदे-क़फ़समें सैयाद!
किसने पूछा था बहार आई है?

जनवरी, १९५३ई०]

[1]अपनेको भूल जाने की स्थिति; [2]प्रेमकी बेपरवाहीकी शान।

तिलोकचन्द 'महरूम'

[१८८७—ई०]



गतवर्ष दिसम्बरमें दिल्ली जाना हुआ तो इच्छा हुई कि वयोवृद्ध ला० तिलोकचन्द साहब 'महरूम' से नियाज़ हासिल किया जाय। यद्यपि आपका संक्षिप्त परिचय एवं कलाम शेरो-सुख़नके प्रथम संस्करणमें छप चुका था। फिर भी आन्तरिक अभिलाषा थी कि आपसे साक्षात् परिचय प्राप्त करके पुनः लिखा जाय।

संयोगकी बात उन्हीं दिनों एशियाई लेखक-संघका अधिवेशन दिल्लीके विज्ञान-भवनमें हो रहा था। वहीं पर आपके सुपुत्र श्री जगन्नाथ साहब 'आज़ाद' से भेंट हो गई। आज़ाद साहब मुझसे-परिचित थे और मेरे आग्रहपर तीन-चार माह पूर्व डालमियानगरके एक मुशाअ़रेमें सम्मिलित हो चुके थे। आपने मुझे ३० दिसम्बरको दोपहरके लिए भोजनका निमंत्रण दिया, ताकि वहाँ उर्दूके अन्य अदीबोंसे परिचय कराया जा सके। मैंने उनके निमंत्रणको तुरन्त मंज़ूर कर लिया; क्योंकि इससे अच्छा अवसर मुझे कहाँ नसीब होता? अदीबोंसे मुलाक़ातका शर्फ़, और क़िबला-ओ-काबा (महरूम साहब)की ज़ियारत भी।

मेरे पहुँचते ही आप ड्राइंग-रूममें तशरीफ़ लाये, मैंने बाअदब खड़े होकर नमस्कार किया और आपने मुसकराते हुए अपने साथ कोचपर बैठा लिया। छः फ़ीटके क़रीब लाँबा छरहरा क़द, लम्बोतरे चेहरेपर लम्बी

और घनी मूँछे, नाक सुतवाँ, चौड़ी पेशानी, सफ़ेद बाल। चाल पठानों जैसी, ७० वर्षकी उम्रमे भी न हाथ-पावोमे कोई लग्जिश न कमरमें झुकाव। बातचीतमे सादगी, मगर आवाजमे मर्दानगीकी कड़क। उस वक़्त आप खद्दरका कुर्त्ता-पायजामा, काला ऊनी कोट, पहिने हुए थे। गलेमे मफलर था।

करीव १॥ घण्टे पास बैठे हुए वार्त्तालाप करते रहे। मेरे सवालोका जवाब बगैर किसी तकल्लुफ या बनावटके देते रहे। मेरा उत्साह वढाते रहे। आपके पास बैठे हुए यह कतई ध्यान न रहा कि मै एक शाइरे-आजमके पास बैठा हुआ हूँ। यही मालूम हो रहा था कि मै अपने ही घरमे अपने बुजुर्गमे घरेलू बाते कर रहा हूँ। मेरी अभिलाषापर हस्ताक्षर करके अपना चित्र भी इनायत फ़र्माया। आपका जीवन सदाचारी और सयमी रहा है। शाइराना मर्त्तबेके अतिरिक्त मानवताकी दृष्टिसे भी अपना विशेष स्थान रखते है।

भद्रस्वभावी, मृदुभाषी, सरलताकी मूर्त्ति और स्वच्छ हृदयके है। धार्मिक उन्माद आपसे कोसो दूर रहता है। खाने-पीनेमे वहुत एहतियात बरतते है। यहाँ तक कि अगूर और टमाटर भी छीलकर खाते है। सदाचारी जीवनका यह प्रभाव समझिए कि इस ७०वर्ष की उम्रमे भी बग़ैर छडीके सहारे चलते-फिरते है। इस उम्रमे भी कालेज पढाने जाते है। इतना अच्छा स्वास्थ्य होते हुए भी आप किसी-न-किसी रोगसे घिरे रहते है। सफरमे भी दवाओका बक्स साथ रहता है।

महरूम साहबको प्रकृतिकी ओरसे शाइराना दिलो-दिमाग प्रदान हुआ है। आप बचपनसे ही नज्म कहने लगे थे। जब आप तीसरे दर्जेमे पढते थे 'मज्मूअ़ए-कशिश' शीर्षक पुस्तक आपके हाथ लग गई। जिसमे चन्द क़िस्से आसान नज्ममे थे। उन्हे पढते-पढते स्वय आपसे भी उसी रंगके मिसरे मौजूँ होने लगे। सातवी-आठवी श्रेणीमे पहुँचते-पहुँचते आपको ऐसा अभ्यास हो गया कि शिक्षक और सह-पाठी आपकी नज्में

सुनकर आश्चर्य-चकित रह जाते थे। मलिका विक्टोरियाका देहान्त १९०१ ई० मे हुआ तो आपने भी स्कूलकी शोक-सभामें पढनेको एक नौहा लिखा। जिसका एक शेर यह था—

फ़र्ते-ग़मसे ग़ुंचे चुप हैं, गुल गरेबाँ चाक है।
नव जवानाने-चमन भी सर पै डाले ख़ाक है॥

इससे पूर्व बारिशपर भी एक नज्म कही थी, जिसका एक शेर यह था—

इलाही तेरी मेहरबानी हुई।
कि सारी ज़मीं पानी-पानी हुई॥

यह दोनों नज्म आपने सातवें दर्जेमे पढते हुए कही थी। दसवी क्लासमे पहुँचते-पहुँचते आपका अभ्यास इतना बढ गया था कि कानपुरके 'जमाना' और लाहौरके 'मखजन' जैसे प्रसिद्ध पत्रोमे आपकी नज्में प्रकाशित होने लगी थी। 'चिडिया की जारी' शीर्षक नज्म आपने दसवीं क्लासमे ही कही थी, जिससे प्रभावित होकर एक मुसलमान शिक्षकने अपनी बन्दूक बेचदी थी और शिकारसे तौबा कर ली थी।

फिलबदीह शेर कहनेका भी आपको बहुत खब अभ्यास है। हफीज जालन्धरीसे आपकी पुरानी मित्रता है। आप लाहौर गये तो मालूम हुआ कि हफीजने अनारकलीमे ऊपरकी मजिलपर दफ्तर ले लिया है। आप वहाँ पहुँचे तो हफीज दफ्तरमे मौजूद न थे। अतः आप एक कागज पर यह शेर लिखकर उनकी मेजपर रख आये—

दफ़्तर जो बालाख़ानेपर देखा हफ़ीज़का।
"महरूम"! सच तो यह है कि दिल शाद हो गया॥
रौनक़ हुई अनारकलीकी चहारचन्द।
बाज़ार 'सोज़ो-साज़'से[1] आबाद हो गया॥

[1]'सोज़ो-साज' हफ़ीजकी शाइरीकी मशहूर पुस्तक है।

जिन मंज़िलोंपै हुस्न कभी जल्वा-रेज़ था।
अब इश्क़ उनमें माइले-फ़रियाद हो गया॥

१९३५ई० मे रावलपिण्डीके मुशाअरेमे हफीज नज्म पढ चुकनेके बाद अपने स्थान पर बैठे तो आपने फिलबदीह यह शेर कहे—

हफ़ीजे-खुश-नवा ! बज्मे-सुखनमे।
क़यामत तक रहेगी याद तेरी॥
निशात-आगीं तेरे नग्माते-रंगीं।
ग़म-अफ़ज़ाए-जहाँ फ़रियाद तेरी॥
किया पाबन्दे-नै नालेको तूने।
यह तर्जे-ख़ास है, ईजाद तेरी॥

इसी मुशाअरेमे महरूम साहब पहली बैठकमे अपनी नज्म सुना चुके थे। मगर हफीजने एलान कर दिया कि दूसरी बैठकमे भी जनाब महरूम अपना कलाम सुनायेगे। आपके पास दूसरी नज्म न थी, समय भी बहुत कम था। मगर एलान हो चुका था, अतः आपने चन्द लमहोमे ही दूसरी नज्म कह डाली।

सर इक़बालकी मृत्यु हुई तो आपने अपने सुपुत्र जगन्नाथ 'आजाद'से कहा कि मै दो-चार शेर लिखवाता हूँ, तुम नोट करलो। नौहेका पहला शेर यह लिखवाया—

ज़ाहिरकी आँखसे तू निहाँ हो गया तो क्या?
एहसास में समागया दिलमें उतर गया॥

जब आप यह शेर लिखा चुके—

कुंजे-मज़ारमें तने-ख़ाकीको छोड़कर—
क़ुद-सी-नज़ाद औजे-समावातपर गया॥

काशानए-बक़ामें मुसाफ़िर पहुँच गया।
वीरान-ए-फ़नासे सलामत गुजर गया॥
बाग़े-जहाँमें सूरते-गुलहाए-तर रहा।
बाग़े-जिनाँमे मिस्ले-नसीमे-सहर गया॥
ख़ाके-चमनमें गौहरे-शबनम निहाँ नहीं।
खुर्शीदे-जलवा-बारसे पूछो किधर गया ?

तो आजाद ने पूछा—"इस नज्ममे आप 'मरगया' काफिया तो इस्तेमाल नही करेगे ?" कहने लगे "क्यों ?" आजाद चुप हो गये, उनका खयाल था 'मरगया' क़ाफिया शेरको बेजान कर देगा। आपने अन्तमें लिखवाया—

'महरूम'! क्यों तेरे दिले-हिरमाँ-नसीबको[1] ?
यह वहम हो गया है कि 'इक़बाल' मर गया॥

शेर सुनकर आजादको अनुभव हुआ कि उन्होने अपनी सम्मति बनानेमें कितनी भूल की थी।

'वकार' अम्बालवीसे भी उनके मित्रताके सम्बन्धमें हैं। वे पहिले रोजाना 'प्रताप' मे काम करते थे। वहाँ से 'एहसान' के दफ़्तरमें चले गये। 'वकार' से मुलाकात होने पर आपने फर्माया—

जिस दिनसे उधरसे तू इधर आया है,
चश्मे-बीनाको कम नज़र आया है॥
'एहसान' पै भी एहसान था जरूरी लेकिन—
'परताप' को बेवक़ार कर आया है॥

---

[1] दुखी मनको।

द्वितीय महायुद्धके दिनोंमें जबकि हिट्लर मुल्कोको रौदता हुआ बढ़ रहा था और आभास होना था कि चन्द दिनोमे ही वह विश्व-विजय कर लेगा। 'वकार' अम्बालवीने आपकी सम्मति जाननी चाही तो एक मिनट मौन रहनेके बाद फर्माया—

हो लाख मए-ख़ुदीसे हिट्लर सरमस्त।
हो जायेगे उसके हौसले आखिर पस्त॥
जब घरमें ख़ूराक ख़त्म हो जायगी।
क्या खायेगा वह अगर न खायेगा शिक्स्त ?

एक बार 'वकार' और आप लाहौरके बाजारसे गुजर रहे थे। जगह-जगह दीवारोपर सिनेमाके अर्द्धनग्न पोस्टर देखकर 'वकार' ने उस ओर संकेत किया तो आपने फर्माया—

लबे-इशरतपै तबस्सुम नजर आता है मगर।
आँख इख़लाक़की रोती है, बड़े शहरों में॥
ख़िलवते-ख़ासमे जिस बातसे आती है हया।
मंजरे-आमपै होती है बड़े शहरोंमें॥

शाइरीमें आपने किसीमे इसलाह नही ली। उस्तादी-शागिर्दीके बन्धनसे आप सदैव मुक्त रहे है। न आपने किसीको शाइरीमे अपना उस्ताद चुना, न किसीको शिष्य बनाया। यूँ मश्विरए-सुखन जिसने भी चाहा सहर्ष देते रहे है।

आपको शेर कहनेके लिए विशेष आयोजनकी आवश्यकता नही। शेर कहनेको जब दिल चाहता है, कागज-पेन्सिल लेकर बैठ जाते हैं। दिलमें जो भाव उठते है, कागजपर उतारते जाते है। कागजपर एक बार उतारा हुआ कलाम आपके भावोंका सही चित्र होता है। न उसे फिर काटते-छाँटते हैं, न उसे सँवारते है। जो भी एक बार लिख दिया, लिख

दिया। नज़्म कहते समय बच्चोंका शोरो-गुल, पड़ोसियोंकी चीं-चपड़ कुछ भी आपको महसूस नहीं होती। नज़्म कहने बैठते हैं तो कहकर ही उठते हैं। हाँ कभी-फ़र्माइशी नज़्में स्कूलकी नौकरी करते समय कहनी पड़ती थीं, तब अलबत्ता घरसे बाहर निर्जन स्थानमें चले जाते थे।

'महरूम' साहबका जन्म १८८७ ई० में सिन्ध नदी के किनारे ईसाखेल तहसीलमें गाजराँवाला गाँवमें हुआ। आपके पिता भगत रामदयाल धार्मिक प्रवृत्तिके सज्जन थे। गाँवमें आने-जानेवाले मुसाफिरोंकी आव-भगत करते और कोई साधु-संन्यासी आता तो उसके साथ हो लेते। कई-कई दिन घर नहीं आते थे। सिन्ध नदीकी बाढ़से जन्मभूमिका गाँव बह जानेके कारण आपका परिवार ईसाखेलमें जाकर बस गया था। ६–७ वर्षकी उम्रमें आप स्कूल भेजे गये। प्राईमरीसे हाईस्कूल तक आप प्रत्येक श्रेणीमें प्रथम आते रहे। उस जमानेमें ज़िलेभरमें कोई हाईस्कूल न था। अतः आपको घरसे ६०-७० मील दूर बन्नूके हाईस्कूलमें दाखिल होना पड़ा था। १९०७ई० में आपने प्रथम श्रेणीमें मैट्रिक पास किया। एफ़० ए० और बी०ए० की परीक्षाएँ नौकरी करते हुए पास कीं।

मैट्रिक करनेके बाद आप लाहौर गये तो रास्तेमें मलिका नूरजहाँका मज़ार भी देखा। देखनेपर जो भाव उदित हुए, आपने उन्हें इस तरह नज़्म किया—

दिनको भी यहाँ शबकी सियाहीका[1] समाँ है।
कहते हैं यह आराम-गहे-नूरजहाँ[2] है॥
मुद्दत हुई वोह शमअ तहे-ख़ाक निहाँ[3] है।
उठता मगर अब तक सरे-मरक़दसे[4] धुआँ है॥

---

[1]रातकी अँधेरीका; [2]नूरजहाँके आराम करनेका स्थान; [3]छिपी हुई, दबी हुई; [4]क़ब्रसे।

जलवोंसे अयाँ[1] जिनके हुआ तूरका आलम।
तुर्बतपै है उनकी शबे-दैजूरका[2] आलम॥

ऐ हुस्ने-जहाँ-सोज़ ! कहाँ है वोह शरारे ?
किस बाग़में गुल हो गये, किस अर्शके तारे ?
क्या बन गये अब किर्मिके-शब-ताब[3] वोह सारे ?
हर शाम चमकते है जो रावी के किनारे ?

या हो गये वह दाग़ जहाँगीरके दिलके ?
क़ाबिल ही तो थे आशिक़े-दिलगीरके दिलके।

तुझ-सी मलिकाके लिए यह बारहदरी है ?
ग़ालीचा सरे-फ़र्श है न कोई दरी है॥
क्या आलमे-बेचारगीये[4] ताजवरी है ?
दिनको यहीं बिसराम, यहीं शबबसरी[5] है॥

ऐसी किसी जोगनकी भी कुटिया नहीं होती।
होती हो, मगर यूं सरे-सेहरा[6] नहीं होती॥

.....

चौपाये जो घबराते है, गरमीसे तो अक्सर।
आराम लिया करते है, इस रौज़ेमे आकर॥
और शामको बालाई सियह-ख़ानोंसे[7] शप्पर[8]।
उड़-उड़के लगाते है दरो-बामपै चक्कर॥

मामूर हो यूं महफ़िले-जानाँ न किसीकी।
आबाद रहे गोरे-ग़रीबाँ न किसीकी॥

[1]प्रकट रौशन, [2]अँधेरी रातका [3]जुगनूं [4]असहाय स्थिति, [5]रातका रहना; [6]जगलमे, [7]अँधेरे कोनोंसे, [8]चमगादड़।

आरास्ता[1] जिनके लिए गुलज़ारो-चमन[2] थे ।
जो नाज़ुकीमें दाग़-देहे-बर्गे-समन[3] थे ॥
जो गुलरुख़ो[4]-गुल-पैरहनो[5]-गुंचा-दहन[6] थे ।
शादाब[7] गुले-तरसे[8] कहीं जिनके बदन थे ॥

पज़मुर्दा[9] वोह गुल दबके हुए ख़ाकके नीचे ।
ख़्वाबीदा[10] हैं, ख़ारो-ख़सो-ख़ाशाकके[11] नीचे ॥

रहनेके लिए दीदा-ओ-दिल जिनके मकाँ थे ।
जो पैकरे-हस्तीके लिए[12] रूहे-रवाँ[13] थे ॥
महबूबे-दिले-ख़ल्क़[14] थे, जाँ-बख़्शे-जहाँ[15] थे ।
थे यूसुफ़े-सानी[16] कि मसीहाए-ज़माँ[17] थे ॥

जो कुछ थे कभी थे, मगर अब कुछ भी नहीं हैं ।
टूटे हुए पिंजरे-से पड़े ज़ेरे-ज़मीं हैं ॥

दुनियाका यह अंजाम है, देख ऐ दिले-नादाँ !
हाँ भूल न जाये तुझे यह मदफ़ने-वीराँ ॥
बाकी हैं न वोह बाग़, न वह क़स्र, न ईवाँ[18] ।
आरामके असबाब न वोह ऐशके सामाँ ॥

---

[1]सजे हुए; [2]उद्यान, बाटिकाएँ; [3]फूलकी पखडियो से भी हल्के, [4]फूलों जैसे कपोल; [5]फूल जैसे कोमल परिधान पहिने हुए; [6]फूलों की कलीकी तरह मुख, [7]हरे-भरे-प्रसन्न; [8]खिले हुए ताजाफूलसे; [9]कुम्हला गये, [10]सोये पडे है; [11]काँटों, घासके; [12]जीवित शरीरके लिए, [13]चेतन तत्त्व, [14]जनताके प्राणप्रिय; [15]जहानको जान बख़्शनेवाले; [16]यूसुफ द्वितीय, विश्वसुन्दरी; [17]जमानेभरको जीवन दान देनेवाले; [18]महल ।

टूटा हुआ इक साहिले-रावीपै[1] मकाँ है ।
दिनको भी जहाँ शबकी सियाह[2] का समाँ है ।।

आपकी पहली शादी १९१० ई० मे हुई। ५ वर्षके बाद एक सालकी बच्ची 'विद्या'को छोडकर पत्नी स्वर्ग-धाम चली गई। उस शोक-पूर्ण स्थितिमे आपने यह नज्म कही थी—

यह आज होने लगी है किधरकी तैयारी ?
है, बेतरह मुतरश्शेह नज़रसे बेज़ारी ।
कहाँ है, आज तुम्हारी वोह तर्ज़े-ग़म-ख़्वारी ।
कि बे असर मेरे नाले है, बे असर ज़ारी ।।

यह हाथ जोड़के मुझसे मुआफ़ियाँ कैसी ?
छिड़ी है आज यह रुख़सतकी दास्ताँ कैसी ?

ज़रा तो ध्यान करो मेरे सोज़े-ग़मकी तरफ़ ।
चले हो तारोंकी छाओंमें क्यों अदमकी तरफ़ ?
नज़र उठाओ ज़रा मेरी चश्मे-नमकी तरफ़ ।
बढ़ाओ हाथ न ऐ जाँ मेरे क़दमकी तरफ़ ।।

मुझे तो रोकते हो बार-बार रोनेसे ।
रुकोगे क्या न मेरे ज़ार-ज़ार रोनेसे ?
....
किया था अहदे-वफ़ा मुझसे उम्रभरके लिए ।
अभीसे हो गये तैयार क्यों उधरके लिए ।।

गुज़रने पाये है मुश्किलसे पाँच साल अभी ।
शबाबपर है तुम्हारा तो बाल-बाल अभी ।।

---

[1]रावी नदीके किनारे; [2]रातकी अँधेरीका ।

उरूजपर[1] है उरूसाना[2] चाल-ढाल अभी ।
न लाओ मौतका दिलमे ज़रा ख़याल अभी ।।

तुम्हारे मरनेके ऐ जान ! यह दिन नहीं हरगिज़ !
जहाँसे उठनेको यह साल-ओ-सिन नहीं हरगिज़ ।।

.....

लो उठके बैठो कि 'विद्या' सिरहाने आई है ।
तुम्हारे मुंहसे वोह दामन उठाने आई है ।।
अदाए-तिफ़लीको[3] ही तो दिखाने आई है ।
कि हँसती आई है तुमको हँसाने आई है ।।

वोह चलके आई है घुटनोंपै, थक गई होगी ।
तुम्हारे प्यारसे फिर उसको ताज़गी होगी ।।

आपकी पत्नीने जो एक वर्षकी बच्ची छोडी थी। उसने २२ वर्षकी उम्रमे सुसरालके झगडोसे तग आकर तीन बच्चोंकी माँ होने पर भी कपडोमे आग लगाकर आत्म-हत्या कर ली। इस दुर्घटनासे आपका कलेजा टूक-टूक हो गया। कितने व्यथापूर्ण शब्दोमे उस दुर्घटनाको नज्म किया है—

शमशानका नज़ारा दिखाती है यह दुनिया ।
अफ़सोस इसी शमशानमें खायेंगे-पियेंगे ।।
तू मरनेपै मजबूर हुई मर गई जलकर ।
हम जीनेपै मजबूर हैं जल-जलके जियेंगे ।।

बुझ नहीं सकती जो दिलमें आग है भड़की हुई ।
आलमे-फ़ानीमे[4] अब राहत[5] कहाँ मेरे लिए ?

---

[1]उत्थानपर, [2]दुल्हनोंकी-जैसी, [3]बाल सुलभ क्रीडाएँ, [4]असार-संसारमे, [5]सुख-चैन ।

सच तो यह है तेरे जल मरनेसे ऐ लख़्ते-जिगर !
हो गये दोज़ख ज़मींनो-आस्माँ मेरे लिए ॥

पहिले ही अ़ज़ा-ख़ाना[1] थी, वह मेरी नज़रमें,
अफ़सोस कि अब और भी बरहम हुई दुनिया ॥
ऐ लख़्ते-जिगर ! आह कि जल मरनेसे तेरे।
मेरे लिए आतिश-कदए-ग़म[2] हुई दुनिया ॥

ताब इक लौ की ला सकती नहीं जाने-बशर !
एक चिनगारीसे हो जाता है इन्साँ बेक़रार ॥
हाय किन मजबूरियोंमे तूने ऐ लख़्ते-जिगर !
कर लिया मलबूसे-तनको[3] अपने तन पर शोलाज़ार[4] ॥

दिले-बेताब जलता ही रहेगा उसकी हिद्दतसे।
ज़वाले-उम्रमें[5] जो दाग़े-पिनहाँ[6] दे गई विद्या ॥
जिगर भुनता है मेरा, आग लगती है कलेजेमें।
तसव्वुरमें नज़र आती है, जब जलती हुई विद्या ॥

कुदरतकी सितम जरीफी देखिए कि उसने 'महरूम' साहबको उनके उपनामके अनुसार सुख-चैनसे प्राय. महरूम (वचित) रक्खा। आपका जीवन, सघर्ष करते हुए, परेशानियो, झझटोमे घिरे हुए, आपदाओ और अभावोंमें झकझोरे खाते हुए गुजरा है।

ब-मुश्किल ५ वर्षके भी न हुए थे कि जन्मस्थानका गाँव बाढमे नष्ट हो जानेके कारण उजड़कर दूसरे गाँवमे जाना पडा। मैट्रिक पास करते-करते बापका साया सरसे उठ गया। आगे पढनेका स्वप्न भंग हो गया।

---

[1]दु.खपूर्ण; [2]दु:खोंका अग्निकुण्ड; [3]पहिने हुए कपडे; [4]धधकती आग; [5]अन्तिम उम्रमें; [6]गुप्त घाव।

पारिवारिक समस्त भार आपके काँधो पर आ पडा तो मजबूरन प्राइमरी स्कूलमे मुदर्रिसी करनी पड़ी। १९०८ से १९४३ ई० तक गाँवके स्कूलोमें कही मास्टरी और कही हेडमास्टरी करते रहे। यह हेडमास्टरी उनके अधीन शिक्षकोंको फूटी आँखो न सुहाई। और सुहाती भी कैसे? मास्टर लोग विद्यार्थियोसे पैसे हडपते तो आपको नागवार गुजरता। पढानेके बजाय स्कूलमें ताश खेलना चाहते तो आप खेलने नही देते। मास्टरोके घरोमे विद्यार्थियोको टहल-चाकरी करनेसे रोकते। विद्यार्थियोको शिक्षकोके लिए घरसे दूध-लस्सी भी न लाने देते। यह सब बन्धन स्वच्छन्द शिक्षक कब तक बर्दाश्त करते? सगठित होकर मजहबके नाम पर मनमाना विरोध किया गया। मनमाना परेशान किया गया।

शादीके ५ साल बाद एक वर्षकी बच्ची छोडकर पत्नी चल बसी। और जिस मातृ-हीना बच्चीको कलेजेसे लगाकर-परवान चढाया, वह भी व्याही-त्याही २२ वर्षकी उम्रमे मरनेपर मजबूर होगई।

१९४३ ई० में स्कूलकी हेडमास्टरीसे नजात पाई और गार्डन कालेज रावलपिण्डीमें उर्दू-फार्सीके लेक्चरर नियत हुए। यह दिन कुछ सुख-चैनसे व्यतीत हो रहे थे कि १९४७के भारत-विभाजनकी आँधीमे फिर बसा-बसाया घर उजड गया।

इन सब परेशानियोके बावजूद और ऐसे जगली इलाक़ेमे तरबियत पाते हुए भी जहाँ शाइरीका वातावरण तो दरकिनार बोली भी उर्दू न होकर जगली थी। 'महरूम' साहबके हृदयसे शाइरीका चश्मा फूट निकला। यह क़ुदरतका एक करिश्मा ही समझिए, वर्ना कहाँ ईसा खेलका रेगिस्तान और कहाँ शाइरीका कँवल? स्वय 'महरूम' साहबने उक्त स्थिति और वातावरणकी ओर यत्र-तत्र उल्लेख किया है—

काँटोंमें रहके फूल यह तूने खिलाये है।
'महरूम' खुश है तेरी गुल-अफ़शानियोंसे हम॥

बेरंग है जीस्त तेरी 'महरूम'!
लेकिन है तेरा कलाम रंगीं॥

भारत-बटवारेके बाद आप अपने सुपुत्र श्री जगन्नाथ साहब आजादके पास दिल्ली आ गये है। पहिले दिल्लीके दैनिक उर्दू तेजमे कार्य किया। फिर पजाब यूनिवर्सिटी कैम्प कालेज नई दिल्लीके लेक्चरर नियुक्त हुए और अभी तक वही आप कार्य कर रहे है।

डाक्टर एजाजके शब्दोमे—"'महरूम'को जबानकी सफाई, तर्जे-बयानकी सजीदगीका बहुत ज्यादा खयाल रहता है। मतानत व पुख्तगीके फूल हर जगह अशआरमे बाइसे-जीनत है। मजाके-सलीम, जबानपर उबूर होनेकी वजहसे कलाममे बरजस्तगी और रवानी आम तौर से नुमायाँ है"[1]। आपकी नज्मोंसे प्रभावित होकर 'अकबर'-इलाहाबादीने लिखा था—

है दादका मुस्तहक़ कलामे-'महरूम'।
लफ़्जोंका जमाल और मआनीका हुजूम॥
है उनका सुख़न मुफ़ीदो-दानिश-आमोज़।
उनकी नज्मोंकी है बजा मुल्कमें धूम॥

आपका नज़्म-गो शाइरोमे बहुत बुलन्द मर्त्तवा है। कभी-कभी गजल भी कह लेते है। आपकी गजलें नीति और पवित्र प्रेमसे ओत-प्रोत होती है। आपके स्वयंके पसन्दीदा अशआर निगार जनवरी १९४१में प्रकाशित हुए है। उनमेसे चन्द यहाँ दिये जा रहे है—

ऐ हमरहाने-दश्ते-मुहब्बत बढ़े चलो।
अपना तो पाए-शौक़ सलासलमे रह गया॥

---

[1] मुख्तसर तारीखे-अदबे-उर्दू, पृ० २८७।

ऐ दिल! यह क्या फ़सुर्दगी[1] आग़ाज़े-इश्क़में[2]।
गुल क्यों तेरा चिराग़ सरे-शाम हो गया॥

हो दौरे-ग़म कि अ़हदे-ख़ुशी दोनों एक हैं।
दोनों गुज़श्तनी[3] हैं ख़िज़ाँ क्या, बहार क्या॥

समझमें आया न राज़े-सनअत[4] ज़रा भी सूरतगरे-अज़लका[5]।
बना रहा है मिटा-मिटाकर, मिटा रहा है बना-बनाकर॥
अगर है मंज़ूरे-सर बुलन्दी तो दूर नज़रोंसे कर बुलन्दी।
कि औज[6] शम्सो-क़मरने[7] पाया है सरको अपने झुका-झुकाकर॥

हैं-हैं! किसीकी बज़्म मुझे याद आगई।
वाइज़! ख़ुदाके वास्ते ज़िक्रे-जिनाँ[8] न छेड़।
दुनियामें ऐ ज़बाँ! रविशे-सुलहकुल[9] न छेड़।
जिससे किसीको रंज हो ऐसा बयाँ न छेड़।
हमदम[10]! कहीं न हसरते-ख़्वाबीदा[11] जाग उठे।
ऐयामे-हुस्नो-इश्क़की[12] फिर दास्ताँ न छेड़॥

किससे सुनूँ? जो तुम न करो बात प्यारकी।
किससे कहूँ? जो तुम न सुनो माजराए-दिल[13]॥

मए-गुलरंग न दे, साक़ीए-बज़्म-इशरत!
अश्के-ख़ूं देख मेरे, बाइसे-इन्कार न पूछ॥

---

[1]मुर्झायापन; [2]प्रेमके प्रारम्भमें; [3]नाशवान; [4]कला-भेद; [5]विधाताका; [6]उच्चता, उन्नति; [7]सूर्य-चन्द्रने; [8]जन्नतकी चरचा, [9]मेल-मिलापका स्वभाव; [10]साथी; [11]भूली-बिसरी इच्छाएँ. [12]सौन्दर्य और प्रेमके दिनोंकी; [13]दिलकी बात।

है सुबह और आज परीशाँ अभीसे है।
यानी शबे-फ़िराक़के सामाँ अभीसे है ॥

कोहो-सहरा[1]-ओ-साहिले-दरिया[2]।
बे-ठिकानोंके सौ ठिकाने हैं॥

बचूँ तेरी आतिशे-इश्क़से[3] यह मजालो-ताब कहाँ मुझे?
मेरे दिलका और तेरे हुरनका, है ख़सो-शररका[4] मुआमला॥

नज़र कर ख़न्दए-गुलपर[5] रियाज़े-दहरमे[6] ग़ाफ़िल!
निहायत मुख़्तसर है, जो घड़ी है याँ मसर्रतकी[7]॥

बाद तर्के-आर्ज़ू[8] बैठा हूँ कैसा मुत्मईन[9]।
हो गई आसाँ हरइक मुश्किल ब-आसानी मेरी॥

शबे-फ़ुर्क़तकी दास्ताँ है तवील[10]।
नींद अल्मुख़्तसर नहीं आती॥

फ़िरदौसमे[11] दिल उनका लगाहै न लगेगा।
जो है तेरे कूचेकी फ़ज़ा[12] देखनेवाले॥

फिर लज्ज़ते-ईज़ा की[13] हुई दिलको तमन्ना[14]।
अल्लाह करे वोह बुते-बेदादगर[15] आये॥

---

[1]पर्वत-जगल, [2]दरियाका किनारा, [3]प्रेम-अग्निसे; [4]फूस-आगका, [5]फूलोकी मुसकानपर; [6]ससाररूपी उद्यानमे, [7]सुखकी, खुशीकी, [8]अभिलाषाओका त्याग करने के बाद, [9]निश्चिन्त, [10]बडी; [11]जन्नतमे, [12]वातावरण; [13]दुखका स्वाद चखनेकी; [14]इच्छा; [15]अत्याचारी प्रियतमा।

मेरी फ़ुग़ाँ[1] ही से रौनक़ है मेरी हस्तीकी[2]
सदा जरसकी[3] ज़रूरी है कारवांके लिए[4]

ख़लिशने[5] दिलको मेरे कुछ मज़ा दिया ऐसा।
कि जमा करता हूँ मैं ख़ार[6] आशियाँके लिए॥

नहीं अब फ़ुग़ाँ मे भी कुछ मज़ा कि नशेमन[7] अपना क़फ़स[8] हुआ।
वोह ज़माना ख़ूब था जब कि हम थे असीरे-दाम[9] नये-नये।

दिलमे कहते हैं कि "ऐ काश न आये होते"।
उनके आनेसे जो बीमारका हाल अच्छा है॥*

भेजते हैं आज मग-नागहानीको[10] पयाम[11]।
तेरे वादों पर कोई ऐ हीला-जू कबतक रहे?

दामने-उम्र भी कट जायगा जब तक कि रफ़ू-
चाक-दिल, चाक-जिगर, चाक-गरेबाँ होंगे॥

तुम्हींसे ली है सबाने भी शोख़िये-रफ़्तार[12]।
चिराग़े-गोरे-ग़रीबां[13] न क्यों बुझाके चले?

---

[1]आहमें, [2]अस्तित्वकी, [3]यात्रीदलके ऊँटोंकी घण्टीकी आवाज़, [4]यात्री दलके लिए, [5]चुभनने, [6]काँटे, [7]घोसला, [8]पिजरा; [9]जालमें फँसेहुए; [10]अचानक आनेवाली मौतको; [11]सन्देश; [12]चालकी चचलता, [13]कब्रोंके दीपक।

*उनके आनेसे जो आजाती है मुँहपर रौनक़।
वोह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है॥
—ग़ालिब

रहेगी हाजते-शरहे-जफ़ा[1] न महशरमें।
इसी अदासे जो तुम सामने ख़ुदाके चले।।

दिखाई देते हैं ख़ूबोंके ऐब भी अच्छे।
कि चाके-दामने-गुलको नहीं रफ़ू करते।।

कोई सोता हो जैसे डूबती किश्तीके तख़्तेपर।
अगर कुछ है तो बस इतनी है इस दुनियाकी राहत[2] भी।।

किस मुँहसे जाके शिकवए-जौरो-जफ़ा[3] करे।
मरते हैं और उनकी पशेमानियोंसे हम।।

हो जाते हैं दौरे-आशिक़ीमे।
हालात तमाम नामुवाफ़िक़।।

अब जहाँमे उनकी क़ब्रोंके निशाँ मिलते नहीं।
उम्रभर जो फ़िक्रे-तसखीरे-जहाँ[4] करते रहे।।

हूँ वोह बरबाद कि क़िस्मतमे नशेमन न क़फ़स।
चल दिया छोड़के सैयाद तहे-दाम[5] मुझे।।

पहलूमे दिल है दर्दकी दुनिया कहें जिसे।
पर इस क़दर उजाड़ कि सहरा[6] कहे जिसे।।
वोह रोबे-हुस्न था कि बन आई न हमसे बात।
यूँ हाले-दिल कहा कि न कहना कहे जिसे।।

[1]अत्याचारोका भाष्य करनेकी आवश्यकता [2]सुख-चैन; [3]अत्याचारोंकी शिकायतें, [4]ससार-विजय, [5]जालमे फँसा छोडकर; [6]रेगिस्तान, जगल।

ऐ जाने-बहार! तेरे दमसे।
गुलज़ार हुआ तमाम रंगीं॥
साक़ी! तेरा अक्से-रुख़ है वरना—
सहबा[1] रंगीं न जाम[2] रंगीं॥

जिनकी तक़दीसकी[3] खाते हैं फ़रिश्ते भी क़सम।
हम गुनहगारोंमें होते हैं वोह इन्सां पैदा॥

अक़्लको क्यों बतायें इश्क़का राज़[4]?
ग़ैर को राज़दां[5] नहीं करते॥

ज़ीस्तकी[6] दुश्वारियोंने यह तो एहसां कर दिया।
मौत-सी मुश्किलको मेरे हक़में आसां कर दिया॥

इन बेनियाज़ियोंपै[7] तो दिल है रहीने-शौक़[8]।
क्या जाने इसको क्या हो जो परवा करे कोई॥

किस मुंहसे शिकवा उनके न आनेका कीजिए।
जब जा सके न उनके न आयेपै जाँसे हम॥

ज़माना ख़ाकसारीका[9] नहीं, ख़ुद्दार[10] बनकर उठ।
मिटा वोह राहे-मंज़िलमें जो बैठा नक़्शे-पा[11] होकर॥

याद जब भी आगई तेरी निगाहे-अव्वलीं।
खुल गया इक दफ़्तरे-महरो-वफ़ा मेरे लिए॥

---

[1]सफ़ेद अंगूरोंकी शराब; [2]प्याला; [3]पवित्रता सयमकी, [4]भेद; [5]भेदोसे परिचित; [6]जीवनकी, [7]उपेक्षाओंपै, [8]उत्साहित, [9]नम्रताका; [10]स्वाभिमानी; [11]चरणचिह्न।

ज़िन्दगी नाकामियोंकी इक मुसलसल[1] दास्ताँ।
मौत क्या है ज़िन्दगीकी दास्ताँका ख़ात्मा॥

सफ़र करते हुए मंज़िल-ब-मंज़िल जा रहे हैं हम।
मुझे यह सारी दुनिया कारवाँ[2] मालूम होती है॥

दर्दे-दिल, सोज़े-जिगर, अश्के-रवाँ[3], दागे-फ़िराक़[4]।
सच तो यह है आपके एहसाँ है मुझपर बेशुमार॥

साफ़ आता है नज़र अंजाम[5] हर आग़ाज़का[6]।
ज़िन्दगानी मौतकी तमहीद[7] है मेरे लिए॥

जो तू ग़मख़्वार हो जाये तो ग़म क्या?
ज़माना क्या ज़मानेके सितम क्या॥

हविसे-गुलमें बढ़ाया न कभी मैंने हाथ।
न किसी ख़ारसे उलझा कभी दामन मेरा॥

कहाँ अफ़सानए-हस्तीका[8] आग़ाज़[9]।
सुनाते आये हैं सब दरमियाँसे॥
तुम्हारे आस्ताँ पर ख़ाक मेरी?
ज़मीं टकरा रही है आस्माँसे॥

तुझसे राहत[10] छीन ली जायेगी कल उसके लिए।
ऐ दिले-राहत-तलब[11]! जो तालिबे-ईज़ा[12] है आज॥

---

[1]क्रमवद्ध, [2]यात्रीदल, [3]बहते हुए आँसू, [4]जुदाईका दाग; [5]परिणाम; [6]शुरुआतका; [7]प्रस्तावना, भूमिका, [8]जीवन-कहानीका; [9]प्रारम्भ; [10]सुख-चैन; [11]सुख-चैनके इच्छुक; [12]दुःखी बनाने वाला।

बादे-बहार! तुझसे उमीदे-निशात[1] क्या?
बस इस क़दर कि ज़ख़्मे-कुहनको[2] हरा करे॥

महफ़िलमें उनकी ग़ैर है, जलिए कि बैठिए?
'महरूम'! देख शमअको, यानी कि जलके चल॥

रुबाइयात—

२५२ पृष्ठकी मुद्रित 'रुबाइयाते-महरूम' हमारे समक्ष है, जिसमे-से कुछ रुबाइयाँ यहाँ चुनकर दी जा रही है—

इन्सान—

हासिल[3] कितना कमाल इन्साँने किया।
अफ़लाकको[4] पाएमाल[5] इन्साँने किया॥
यह अक़्ल मगर अभी नहीं आई कि क्यों।
इन्साँको तबाह-हाल इन्साँने किया?

फ़रियाद है, किस लिए दरे-यज़दाँ[6] पर?
इलज़ाम तराशते हो क्यों शैताँ पर?
यज़्दाँने किये कभी न शैताँने किये।
इन्साँने किये है जो सितम[7] इन्साँ पर॥

हुस्ने-ज़ाहिरसे[8] है, दुरख़्शाँ[9] इन्साँ।
बातिनको[10] कर चुका है वीराँ[11] इन्साँ॥
रखता नहीं हैफ़[12], इस हक़ीक़त[13]पर, नज़र।
बेसिदक़ो[14] - सफ़ा[15] नहीं है इन्साँ॥

---

[1]सुखकी आशा. [2]पुराने जख्मोको; [3]प्राप्त; [4]आकाशको. [5]पाँवसे रौंदा, खराब-खस्ता [6]ईश्वरके द्वार पर. [7]अत्याचार [8]बाह्यरूप से. [9]चमकता हुआ [10]अन्तरंग, हृदयको; [11]उजाड. नष्ट; [12]अफसोस, खेद है. [13]वास्तविकता पर. [14-15]सचाई और पवित्रता रहित।

इन्साँने दरिन्दोंके[1] चलन सीख लिये।
अतवारे-रज़ा-ए-अहरमन[2] सीख लिये॥
अपने इल्मो-हुनर पै[3] ख़ुश है नादाँ[4]।
बरबादि-ए-दोजहाँ[5] के फ़न[6] सीख लिये॥

है रहमो-करमसे[7] आज बेज़ार[8] इन्सां।
इन्साँसे है ख़ुद बरसरे-पैकार[9] इन्साँ॥
दुनियाको बना दिया है दोज़ख[10] इसने।
किस मुँहसे है, जन्नतका तलबगार[11] इन्साँ?

उड़ते देखा जो ताइरे - परांको[12]।
उड़नेकी उमंग ले उड़ी इन्साँको॥
गोले बरसा दिये ज़मीं पर इसने।
परवाज़[13] नसीब हुई जब इन्साँको॥

करता है हुनरसे[14] अपने सैरे-अफ़लाक[15]।
फिरता है, बहरो-बरमे[16] कैसा बेबाक[17]॥
लेकिन बेबस है यूँ अजलके[18] आगे।
जैसे तूफ़ाँके सामने हो खाशाक[19]॥

---

[1]हिंसक पशुओंके, [2]शैतानको प्रसन्न करनेके ढंग, [3]बुद्धिकलापर, [4]मूर्ख, [5]इहलोक और परलोकको नष्ट-भ्रष्ट करनेके, [6]हुनर; [7]दया-कृपासे, [8]परेशान, [9]परस्पर गुत्थम-गुत्था, [10]नरक, [11]इच्छुक, [12]परिन्दोंको, [13]उडान; [14]बुद्धि-कौशलसे; [15]आस्मानकी सैर; [16]जल-थलमें; [17]स्वच्छन्द, निर्भय; [18]मृत्युके; [19]तिनका।

ख़िदमत-गरे इन्साँ है ज़माना सारा[1]।
हर ज़र्रा[2] ज़मींका, चर्ख़का[3] हर तारा।।
राहतकी[4] हविसमें[5] छोड़कर राहतको।
फिरता है कहाँ-कहाँ यह मारा-मारा।।

दुनिया—

दुनियाने अ़जब नक़्श[6] जमा रक्खा है।
हर-इकको ग़ुलाम अपना बना रक्खा है।।
फिर लुत्फ़ यह है कि जिससे पूछो यह कहे—
"इस आ़लमे-आबो-गिलमें[7] क्या रक्खा है" ?

जज़्बात—

कब कोई जहाँ में छूटता है, ग़मसे।
दिल आख़िरकार टूटता है ग़मसे।।
सदमातसे[8] खुलती है, बशरकी[9] आँखें।
फोड़ा ग़फ़लतका फूटता है ग़मसे।।

ले बैठिए ज़िन्दगीमें क्यों तेरा ग़म?
क्या तल्ख़िए-ज़ीस्तको[10] यह कर देगा कम ?
तू भी करती है, कब किसीकी परवा।
ऐ मौत ! अगर है, तुझसे बे परवा हम।।

---

[1]समस्त ससार मनुष्य की सेवा करने पर लगा हुआ है; [2]पृथ्वीका प्रत्येक अणु, [3]आकाशका प्रत्येक नक्षत्र; [4]सुख-चैनकी, [5]तृष्णामे; [6]रूप, प्रभाव; [7]ससारके पानी-मिट्टीमे; [8]दु:खोसे; [9]मनुष्यकी; [10]ज़िन्दगियोकी कड़वाहटको ।

दरकार[1] जिगर था जख़्मकारीके[2] लिए।
तैयार न था जिगर-फ़िगारीके[3] लिए॥
'महरूम'! ख़ुश इसको मैं किस तरह रखता।
जो उम्र मिली थी सोगवारीके[4] लिए॥

क्या चीज़ तेरी है, जिसको तू खोता है।
नुक़्साँ-नुक़्साँ[5] पुकारकर रोता है॥
इक ज़र्रा[6] भी दहर[7]में नहीं जब तेरा।
बेताब[8] ग़मे-ज़ियाँसे[9] क्यों होता है?

लाये थे साथ कुछ न ले जायेंगे।
हमराह[10] अमल[11] बुरे-भले जायेंगे॥
जिसको अपना समझ रहे हैं सब कुछ।
रह जायगा और हम चले जायेंगे॥

फिक्रो-नजर—

क्यों सबको सुनाये हाले-अबतर[12] अपना।
जब इसमें क़ुसूर हो सरासर अपना॥
हम कोसते हैं, अबस[13] मुक़द्दरको[14] नदीम!
आमालसे[15] बनता है मुक़द्दर अपना॥

---

[1]मजबूत जिगरकी जरूरत थी. [2]गहरा घाव बर्दाश्त करनेके लिए; [3]यह कमजोर जिगर घायल होनेको आमादा न था; [4]शोकके लिए; [5]हानि-हानि; [6]कण-अणु [7]संसारमें [8]आतुर, परेशान; [9]हानिके रंजसे [10]अपनेसाथ. [11]कर्म, आचरण. [12]दुरवस्था, [13]व्यर्थ. [14]भाग्यको [15]अपने कर्मोंसे।

दरवाज़ा निजातका[1] बयाबाँमे[2] नहीं।
दिलका आराम क़सरो-ईवाँमे[3] नहीं॥
तसकीं[4] जन्नतमें भी नहीं मिल सकती।
जब तक मौजूद क़ल्बे-इन्सांमें[5] नहीं॥

हम भूलको अपनी इल्मो-फ़न समझे है।
ग़ुरबतके[6] मुक़ामको वतन[7] समझे है॥
मंज़िल पै पहुँचके झाड़ेंगे इसको।
यह गर्दे-सफ़र[8] है, जिसको तन समझे है॥

रुत्बोंमें[9] यहाँ राहतो[10]-आराम नहीं।
मअ़ज़ूल[11] कहीं गर्दिशे-ऐय्याम[12] नहीं॥
किस औज पै[13] उड़ते है, यह बादल 'महरूम'?
रोनेके सिवा इनको कोई काम नहीं॥

कितनी ही एहतियात[14] कोई कर जाये।
छलकेगा जामे-ज़िन्दगी[15] जब भर जाये॥
जीना हो तो बे असर हो अफ़ईका[16] ज़हर।
मरना हो तो ज़म्बूरका[17] काटा मर जाये॥

---

[1]मुक्तिका; [2]जगलोंमें; [3]महलो-अटारियोमे, [4]निराकुलता; [5]मनुष्यके दिलमे; [6]यात्रा-स्थानको; [7]अपना जन्मस्थान; [8]यात्राकी धूल; [9]पदो-गौरवोमे; [10]सुख-चैन; [11-12]ससारकी आपदाये कही नही रुकती, [13]ऊचाई पर; [14]सावधानी; [15]जीवन-घट, [16]साँपका; [17]ततैया-शहदकी मक्खीका।

दम अक्सर पारसाईका[1] भरता है।
हैरॉ हूँ कि दिल मेरा यह क्या करता है॥
ख़ौफ़ इसको गुनाहसे[2] नहीं है लेकिन।
इल्जामे-गुनाहसे[3] बहुत डरता है॥

इन्कारे-गुनाह[4] भी किये जाता हूँ।
तकरारे-गुनाह[5] भी किये जाता हूँ॥
हासिल हो[6] सवाब[7] इस लालचमें।
इक़रारे-गुनाह[8] भी किये जाता हूँ॥

दिलकी ख़्वाहिश यह है बन जाऊँ नेक।
नेकी करूँ और उसका सिला[9] पाऊँ नेक॥
तहरीक[10] मगर नफ़्सकी[11] हर लहजा[12] है यूँ।
नेकीसे करूँ गुरेज़[13] कहलाऊँ नेक।

हरचन्द[14] वोह बेनियाज़[15] कहलाता है।
मख़लूक़पै[16] अपनी रहम[17] फ़र्माता है॥
दिल ख़ौफ़से उसके काँप उठता है मेरा।
इंसाँ जब बेज़बाँको तड़पाता है॥

---

[1]सदाचरणका; [2]पापोसे, [3]पापोके आरोपसे; [4]अपराधोसे इन्कार, [5]दुष्कर्मोंपर बहस, [6]प्राप्त हो; [7]पुण्य; [8]दुराचरणोंकी स्वीकृति; [9]बदला, एवज; [10]आन्दोलन; [11]मनकी, [12]प्रतिक्षण; [13]परहेज, अलहदगी, [14]बहुतेरा, कितना ही; [15]निःस्वार्थी; [16]जनतापै; [17]दया।

सवाल—

हरचन्द[1] बुरी मैंने रविश[2] रक्खी है।
फ़ितरत[3] पै निगाहे-बे-ख़लिश[4] रक्खी है॥
गर बे-अदबी न हो तो इतना पूछूं।
क्यों तूने गुनाहमें[5] कशिश[6] रक्खी है?

सवाल—

वह चीज़ गुनाहमें कहाँ है 'महरूम'!
दिल जिसके लिए तेरा तपाँ[7] है 'महरूम'!
लज्ज़ातमें[8] है जो दिल-फ़रेबी[9] कमो-बेश[10]।
तेरी नीयतका इम्तिहाँ है 'महरूम'!

हरचन्द गुनाहमें कशिश है मौजूद।
लेकिन साथ इसके सरज़निश[11] है मौजूद॥
हर नोशमें[12] नेशका[13] ख़तरा है पिन्हाँ[14]।
हर फूलमें ख़ारकी[15] ख़लिश[16] है मौजूद॥

इस दौरे-कमालातमें[17] पस्पा[18] हूँ मैं।
नक़्शे-क़दम[19] क़दमका[20] जोया[21] हूँ मैं॥

[1-4]माना कि मैं दुराचारी हूँ और सांसारिक रंगीनियोंमें बेरोकटोक लिप्त रहा हूँ। [5-6]फिर भी इतना जानना चाहता हूँ कि इन गुनाहों में इतना आकर्षण तूने क्यों भर दिया है? [7]विचलित, आकुल, [8]भोग-विलासमें, [9]दिल लुभावनापन; [10]थोड़ा-बहुत; [11]लानत-मलामत, आलोचनायें, [12]आनन्दमें; पीनेमें, [13]डंक, ज़हरका (नोश का विपरीत), [14]छिपा हुआ; [15]काँटेकी; [16]चुभन; [17]उन्नतिके युगमें; [18]पिछड़ा हुआ; [19-20-21]प्राचीन चरण-चिह्नोंका तलाश करने वाला।

साइन्सकी तुम तरक़्क़ियाँ गिनवाओ।
इन्सानकी मुसीबतोंको गिनता हूँ मैं॥

पीरी—

तिफ़्ली[1] थी वक़्फ़[2] नाज़ो-नेमतके[3] लिए।
था अहदे-शबाब[4] ख़्वाबे-ग़फ़लतके[5] लिए॥
पीरी[6] हुई नज़रे-ज़ोअफ़े-पीरी[7] अफ़सोस।
रक्खा था जिसे मैंने रियाज़तके[8] लिए॥

हैरान हूँ क्या किया ख़ुदाया मैंने।
बेफ़ाएदा उम्रको गँवाया मैंने॥
पीरी भी क़रीबे-ख़ात्मा आ पहुँची।
मंज़िलका निशाँ अभी न पाया मैंने॥

उठती ही नहीं नज़र झुकी जाती है।
नादिम[9] है ख़ाकपर झुकी जाती है॥
सर पर है उम्र भरका बारे-इसयाँ[10]।
पीरी में जो यूँ कमर झुकी जाती है॥

तालिब[11] दिले-ज़ार[12] शादमानीका[13] है।
मक़सद[14] कुछ और ज़िन्दगानीका है॥
ग़फ़लतमें[15] बसर[16] हुई जवानी सारी।
मातम[17] फिर भी उसी जवानीका है॥

[1]बाल्यावस्था; [2]धरोहर; [3]लाड-प्यारके; [4]युवावस्था; [5]कल्पित स्वप्नोंके; [6]वृद्धावस्था, [7]बुढापेकी कमजोरीको अर्पित; [8]उपासनाके; [9]शर्मिन्दा, लज्जित; [10]पापोंका बोझ; [11]इच्छुक; [12]दुःखी हृदय; [13]आनन्दोल्लासका; [14]उद्देश्य, [15]अज्ञानता, बेपरवाही; [16]व्यतीत, [17]शोक।

सवाल—

हरचन्द[1] बुरी मैंने रविश[2] रक्खी है।
फ़ितरत[3] पै निगाहे-बे-ख़लिश[4] रक्खी है॥
गर बे-अदबी न हो तो इतना पूछूँ।
क्यों तूने गुनाहमें[5] कशिश[6] रक्खी है?

सवाल—

वह चीज गुनाहमें कहाँ है 'महरूम'!
दिल जिसके लिए तेरा तपाँ[7] है 'महरूम'!
लज्जातमें[8] है जो दिल-फ़रेबी[9] कमो-बेश[10]।
तेरी नीयतका इम्तिहाँ है 'महरूम'!

हरचन्द गुनाहमें कशिश है मौजूद।
लेकिन साथ इसके सरज़निश[11] है मौजूद॥
हर नोशमें[12] नेशका[13] खतरा है पिन्हाँ[14]।
हर फूलमें ख़ारकी[15] ख़लिश[16] है मौजूद॥

इस दौरे-कमालातमें[17] पस्पा[18] हूँ मैं।
नक़्शे-क़दम [19] क़दमका[20] जोया [21]हूँ मैं॥

[1-4]माना कि मैं दुराचारी हूँ और सासारिक रगीनियोंमें बेरोकटोक लिप्त रहा हूँ। [5-6]फिर भी इतना जानना चाहता हूँ कि इन गुनाहो में इतना आकर्षण तूने क्यों भर दिया है? [7]विचलित, आकुल, [8]भोग-विलासमे, [9]दिल लुभावनापन; [10]थोडा-बहुत; [11]लानत-मलामत, आलोचनाये, [12]आनन्दमे; पीनेमें, [13]डंक, जहरका (नोश का विपरीत); [14]छिपा हुआ; [15]काँटेकी; [16]चुभन, [17]उन्नतिके युगमें; [18]पिछडा हुआ; [19-20-21]प्राचीन चरण-चिह्नोंका तलाश करने वाला।

साइन्सकी तुम तरक़्क़ियाँ गिनवाओ।
इन्सानकी मुसीबतोंको गिनता हूँ मैं॥

पीरी—

तिफ़्ली[1] थी वक़्फ़[2] नाज़ो-नेमतके[3] लिए।
था अहदे-शबाब[4] ख़्वाबे-ग़फ़लतके[5] लिए॥
पीरी[6] हुई नज़रे-जोअ़फ़े-पीरी[7] अफ़सोस।
रक्खा था जिसे मैंने रियाज़तके[8] लिए॥

हैरान हूँ क्या किया ख़ुदाया मैंने।
बेफ़ाएदा उम्रको गँवाया मैंने॥
पीरी भी क़रीबे-ख़ात्मा आ पहुँची।
मंज़िलका निशाँ अभी न पाया मैंने॥

उठती ही नहीं नज़र झुकी जाती है।
नादिम[9] है ख़ाकपर झुकी जाती है॥
सर पर है उम्र भरका बारे-इसयाँ[10]।
पीरी मे जो यूँ कमर झुकी जाती है॥

तालिब[11] दिले-ज़ार[12] शादमानीका[13] है।
मक़सद[14] कुछ और ज़िन्दगानीका है॥
ग़फ़लतमें[15] बसर[16] हुई जवानी सारी।
मातम[17] फिर भी उसी जवानीका है॥

[1]बाल्यावस्था; [2]धरोहर; [3]लाड-प्यारके; [4]युवावस्था; [5]कल्पित स्वप्नोके; [6]वृद्धावस्था, [7]बुढ़ापेकी कमजोरीको अर्पित; [8]उपासनाके; [9]शर्मिन्दा, लज्जित; [10]पापोका बोझ; [11]इच्छुक; [12]दुःखी हृदय; [13]आनन्दोल्लासका; [14]उद्देश्य; [15]अज्ञानता, बेपरवाही; [16]व्यतीत; [17]शोक।

क्या तुझको ? जो कोई है बद-आमाल[1] ऐ दोस्त !
कर उसके हिसाबकी न पड़ताल ऐ दोस्त !
माइल[2] जो किसीकी ऐबजोई[3] पै हो दिल ।
मुँह अपने गरेबाँमे वहीं डाल ऐ दोस्त !

आईना-ए-दिलको[4] गर्द-कींसे[5] रख साफ़ ।
करदे अहले-रियाके[6] कीनोंको[7] मुआफ़ ।।
दुनियामें न कर किसीसे बे-इन्साफ़ी ।
दुनियासे मगर न रख उम्मीदे-इन्साफ़ ।।

रस्मो-राहे-करमसे[8] ग़ाफ़िल[9] न रहे ।
आहे-दिले-पुर-अलमसे[10] ग़ाफ़िल न रहे ।।
एहसासे-ग़म[11] इस लिए मिला है इसको ।
इन्साँ-इन्साँके ग़मसे ग़ाफ़िल न रहे ।।

६ जनवरी १९५८ ई०]

---

[1]कुचारित्री; [2-3]बुराई करनेको दिल चाहता है; [4]हृदय-दर्पण को; [5]द्वेषकी धूलसे; [6]धोखेबाजो के, छद्मवेशियोके; [7]द्वेषो को; [8]दया-धर्म की परम्पराओं से; [9]अनजान; [10]हृदयकी व्यथाओसे; [11]दुःख-दर्दकी चेतना, ज्ञान ।



असर — लखनवी

[१८८५ ई०—]

उर्दू-साहित्यकी पचास वर्षसे निरन्तर एक निष्ठ, निःस्वार्थ सेवा करनेवाले प्रसिद्ध समालोचक, ख्यातिप्राप्त शाइर, मीरो-ग़ालिबके तुलनात्मक अध्येता, उर्दू-भाषाके प्रामाणिक विद्वान्, विशेषकर लखनवी ज़बानके वर्त्तमानमें एकमात्र अधिकारी हज़रत 'असर'को समीपसे देखनेकी आकांक्षा थी। विशेषकर उन्हें अपने अध्ययन-कक्षमें लिखते-पढ़ते हुए एक नज़र देखनेकी तमन्ना बहुत रहती थी। लेकिन उनके नामके आगे-पीछे—खानबहादुर, डिप्टी कलेक्टर, ऐडीशनल-कमिश्नर, वज़ीरे-काश्मीर-जैसी रोबीली पदवियाँ देखकर साहस नहीं होता था।

लेकिन शेरो-सुख़न दूसरे भागके लिए आपका कलाम चयन करते-करते मेरा यह विश्वास उत्तरोत्तर दृढ़ होता गया कि हज़रत 'असर' इन्सान पहले हैं, और कुछ बादमें। और जब मैंने उनका यह शेर—

दिल हो शबनमका, आँख शबनमकी।
यह है मेराज इब्ने-आदमकी[1]॥

पढ़ा तो उक्त विश्वास श्रद्धामें परिवर्त्तित हो गया और दर्शनोंकी लालसा बलवती होती गई। शोन[2] बेटीके १६ जनवरी १९५५ ई० के

---

[1] हृदय और नेत्र ओसके समान पर-दुःखमें द्रवित और संवेदनशील रहें, यही मानवकी कसौटी, लक्ष और आदर्श है।

[2] लोकोदय ग्रन्थमालाके यशस्वी विद्वान् सम्पादक बन्धुवर लक्ष्मी-चन्द्रजी जैन एम-ए० की सुपुत्री इन्दु जैन एम० ए०।

पाणिग्रहणके शुभावसरपर लखनऊ जाना हुआ तो १८ जनवरीको हजरत 'असर'के आस्तानेकी जियारत भी नसीब हुई।

काश्मीरी मुहल्लेमें जिनसे भी आपके दौलतकदेका पता पूछा, उन सबने बहुत अदब और इज्जतके साथ आस्ताने-असरकी तरफ सकेत किया और हमें[1] भी एहतरामकी नजरोंसे देखा। दौलतसराकी तरफ बढ़ते हुए मनमें भाव उठे कि जब आस्ताने-असरकी जियारतको जानेवालोंके लिए लोगोंके दिलोंमें यह भाव है, तो स्वय 'असर' न जाने कितने आदरणीय और महान होंगे? दूरसे आस्तानेकी झलक मिलते ही मेरे दिलकी जो स्थिति हुई, उसका कुछ-कुछ आभास 'असर' साहबके इस शेरसे हो सकता है—

मैं अब सिज्दे करूँ? दिलको सम्भालूँ? या बढ़ूँ आगे?
नजर आता है, कोसोंसे किसीका आस्ताँ मुझको॥

दौलतसरातक पहुँचे ही थे कि ड्योढीसे तुरन्त मुलाजिम निकला। वह विजिटिग कार्ड लेकर बरावरके कमरेमें गया और तत्काल अन्दर पहुँचनेका संकेत किया। हम ड्राइग रूममें पहुँचे कि किबला 'असर' सोफेसे उठकर मुसकराते हुए हमारे स्वागतको आगे बढे और बहुत वात्सल्य एव सौजन्यपूर्ण ढगसे हाथ मिलाते हुए कमरेम पडे हुए सोफासेटपर बिठाया।

लम्बा-छरेहरा, गोरा-चिट्टा जिस्म, ढीले पायजामे और ऊनी गाउनमें मलबूस था। सरपर नवाबी ढगकी-सी ऊनी टोपी थी। सुरुचिपूर्ण ढगसे तराशी हुई धवल मूँछे मुसकराते हुए मुखपर बहुत भली लग रही थी। स्निग्ध और गौरव-युक्त आँखोंपर चश्मा लगाये हुए थे। उन्नत ललाट, भद्रव्यवहार, मधुर सम्भाषण एव प्रभावशाली व्यक्तित्व, आपकी कुलीनता, सभ्यता, प्रतिष्ठा, मानवता, सहृदयता और अध्ययनशीलताके प्रतीक

---

[1]मेरे साथ दो महानुभाव और थे, इसीसे बहुवचनका प्रयोग किया है।

थे । वार्त्तालापमें लखनवी जबान और मुहावरोंके प्रयोगोंकी छटाके क्या कहने ? सुनकर निहाल हो गया। सयतपूर्ण मुसकानसे आभास होने लगता था कि हारश्रृगारके फूल झड रहे है । भाषाकी सरलता, भावकी गम्भीरता, अछूती कल्पना और दार्शनिकताके मिश्रणमें प्रतीत हो रहा था कि मीरो-गालिब दोनोका आविर्भाव एक ही पैकरमें हुआ है । बादमें 'असर' साहबका यह शेर देखनेमें आया तो मेरे कयासको और बल मिला--

'असर' सोज़ो-गुदाज़ो-दर्दो-लज़्ज़त, रफ़अतो-जिद्दत ।
मिला है, 'मीरो-मिर्ज़ा'से यह अन्दाज़े-बयाँ मुझको ॥

मैंने अपने दोनो साथियोंका परिचय कराते हुए जब एकके बारेमें कहा--"ये लखनऊके रईस लाला मुन्नालालजी कागजीके साहबजादे श्री जिनेन्द्रचन्द्र जैन है" तो सुनकर भूली-बिसरी-सी बातको स्मरण करते हुए-से फर्माया--"कौन लाला मुन्नालाल कागजी ? वही बुजुर्ग तो नहीं, जो हमारे वालिद साहबके कनकव्वेबाजीमें उस्ताद-भाई थे ?"

जिनेन्द्रचन्द्रजीके 'जी हाँ' कहनेपर उनके पिताकी बहुत-सी खूबियो, दोनो बुजुर्गोके राहो-रस्म, मुहब्बतो-इखलास और उनके उस्तादके पतग बाजीके कौशलका बहुत एहतरामके साथ जिक्र करते रहे । उस्तादके लडकेको जिनेन्द्रचन्द्रजीने अपने यहाँ मुलाजमत दी हुई है । इस सूचनासे उन्हे काफी मसर्रत हुई । फिर अपनी लापरवाही और उपेक्षापर खेद प्रकट करते हुए फर्माने लगे कि "मुझे हैरत है, कि मै अब तक आपके यहाँ खैरो-आफियत पूछनेतकको नही गया ?"

जिनेन्द्रचन्द्रजीके कृतज्ञता प्रकट करनेपर बहुत ही आत्मीयताके साथ बोले--"आप मेरे वालिदके उस्ताद भाईके साहबजादे है तो मेरे भी भाई हुए । आपके हर दुःख-सुखमें शामिल होना मेरा फर्ज है ।"

पुराने राहो-रस्मका प्रसग चल निकला तो आपने कई स्वानुभव सुनाये। जिनमे-से दो इस समय स्मरण है, उन्हे सक्षेपमे अपनी ही भाषा-मे व्यक्त कर रहा हूं, क्योकि मैने उस समय आपके वार्त्तालापको लेखबद्ध नही किया था। काश मै लिख लेता।

हजरत 'अमर' डिप्टी कलेक्टरकी हैसियतसे हरदोई जिलेके दौरेपर निकले तो शाहआबाद तहसीलमे पालीगाँवके समीपवाले बागमे आपके पडावके लिए भी खेमे लगाये जाने लगे, जिसमे और सब सरकारी हाकिमोके खेमे लगा करते थे। जब उस गाँवके जमींदार चौधरी फतह-सिहके वशजको विदित हुआ कि आगन्तुक अतिथि लखनऊ निवासी है, तो अपनी श्रद्धा-भक्ति अहले-लखनऊके प्रति प्रकट करनेके लिए आपके खेमे एक ऐसे विशेष उपवनमे लगवाये, जिसका कण-कण अहले-लखनऊका कृतज्ञ था।

नवाबी-शासन-कालमे पालीगाँवने सामूहिकरूपसे लगान देना बन्द कर दिया तो उस विद्रोही गाँवको परास्त करनेके लिए एक हिन्दू सेनापतिकी कमानमे नवाबने फौज रवाना की। समूचे गाँवको तोपसे उडा देनेका शाही-फरमान था। फौजका पडाव गाँवके बाहर उसी बागमे था, जहाँ कृतज्ञतास्वरूप 'अमर' साहबके खेमे लगवाये गये थे। बागके कुएँसे एक युवती पानी भरने आई और जब उसे विदित हुआ कि फौज लखनऊसे आई है, तो उसने सहज-स्वभाव पहरेपर खडे सन्तरीसे पूछा—"क्या फौजके साथ हमारे काका भी आये है?"

सिपाहीने काकाका नाम जानना चाहा कि अकस्मात खेमेसे सेना-नायक बाहर निकल आये और सन्तरीको एक युवतीसे वार्तालाप करते देखकर पूछा "यह कौन औरत है, यहाँ क्यो आई है?" सतरी कुछ जवाब दे कि वह युवती स्वय बोली—"आपने शायद मुझे पहिचाना नही, मैं आपके मुहल्लेके अमुक कहारकी लडकी हूँ। यहाँ मेरी सुसराल है।"

कहारकी लड़कीको दो मीठे शब्द कहकर सेनानायकने विदा कर दिया। मगर स्वयं उलझनमें पड़ गये। "अगर गाँवका मुहासिरा करता हूँ तो इसका पति भी मारा जायगा। तब क्या मैं अपनी इस मुँहबोली भतीजीके वैधव्यका पातकी नहीं बनूँगा?" सोच-विचारकर अन्तमें उन्होंने नवाबको संदेश भेजा कि "जो सजा आप दें भुगतनेको तैयार हूँ। मगर मुझसे इस गाँवपर गोलाबारी हरगिज नहीं हो सकेगी।" नवाबको जब वास्तविक स्थितिका पता चला तो फर्मान भेजा—"वह कहारकी लड़की तुम्हारी ही नहीं हमारी भी भतीजी है। तुम फौज लेकर वापिस चले आओ। इस रिश्तेकी यादगारमें हम हमेशाके लिए उस गाँवका लगान मुआफ करते हैं।"

हजरत 'असर'ने जब वहाँ कयाम फर्माया था, तब भी उस गाँवका लगान मुआफ था।

हजरत 'असर' जब उन्नावमें डिप्टी कलेक्टर थे, तब आपकी अदालत-में राजा बेनीमाधवसिंहके वंशजपर एक मुकदमा दाइर हुआ। राजा-बेनीमाधवसिंह बड़े शूरवीर और वफादार थे। १८५७ के स्वतंत्रता-युद्धके विफल हो जानेके बाद लखनऊके अन्तिम नवाब वाजिदअलीशाह बन्दी बनाकर कलकत्ते भेज दिये गये तो उनका एक शाहजादा बिरजीस-कद्र अँग्रेजोंकी आँख बचाकर नैपालकी तरफ रवाना हुआ। उस शाहजादेको राजा बेनीमाधवसिंह अपनी फौजके साथ स्वयं हाथमें नंगी तलवार लिये नैपालतक सुरक्षित पहुँचा आये। वापसी पर राजा साहबको अँग्रेजोंने फाँसी दे दी और उनकी रियासत जब्त कर ली।

उन्हीं राजा साहबका एकमात्र बचा हुआ वंशज छोटी-सी जमींदारी-में किसी तरह गुजर-बसर कर रहा था कि लेनदार-द्वारा नालिश कर देनेपर रहे-सहे सहारेके छिन जानेके आसार भी दिखाई देने लगे। सौभाग्यसे उस गरीबका मुकदमा 'असर' साहबकी अदालतमें था। आपको जब उसके

पूर्वजकी कीर्ति-गाथा मालूम हुई, तो बगैर सरकारी रोआब डाले नालिश करनेवालेको मुकदमा उठा लेनेके लिए राजी कर लिया और दे सकने योग्य किस्तोमें समझौता करा दिया। आपके इस सद्व्यवहारसे राजाका वशधर जीवन-पर्यन्त आभार मानता रहा और जहाँ भी आप तब्दील होकर गये, वही कृतज्ञतास्वरूप दर्शनार्थ पहुँचता रहा।

आप इतने विद्वान् और प्रतिष्ठित होते हुए भी अत्यन्त नम्र और सौम्य है। अपने सम्बन्धमे प्रशसात्मक शब्द सुनते हुए सकोच-सा अनुभव करते है। दूसरोके राई भर कार्यकी भी सराहना करते है। मजहबी दीवानगीसे कोसो दूर है। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यके शुद्ध और आदर्श प्रतीक है। आपके यहाँ इस तरहके भावोकी झाँकी यत्र-तत्र मिलती है—

इस तरह दैरो-हरमकी[1] सैरको निकलो 'असर'!
हाथमे तसबीह[2] हो और दोशपर[3] जुन्नार[4] हो॥

न तो हिन्दू कभी देखा न मुसलमाँ देखा।
मैने इन्साँकी नजरसे सुए-इन्साँ[5] देखा॥

और यह इन्सानी नजर न कही पोथोके पढनेसे, न कही धार्मिक स्थानोंमे सर रगड़नेसे, और न किसी नेत्र-विशेषज्ञकी कृपासे मिलती है। यह तो हृदयसे ईर्ष्या-द्वेषरूपी धुएँके धो-पोछनेसे मिलती है।

हम दिलमें किसीसे कभी कीना[6] नहीं रखते।
यह शेवए-रिन्दाने-मै-आशाम[7] नहीं है॥

---

[1]मन्दिर-मस्जिदकी; [2]माला; [3]कन्धेपर, गलेमे; [4]जनेऊ; [5]इन्सानकी तरफ़ [6]रज, द्वेष; [7]यह कार्य मस्तोंके योग्य नही है।

शेरो-शाइरीके प्रसगपर आपने फर्माया—शाइर तो बहुत ह, मगर सुखन-फ़हम और सुखन-शनास बहुत मुश्किलसे मिलते है। अपने किसी खयालको शेरका जामा पहिनाना आसान है, मगर कलामके ऐब और खूबी समझना मजाक नही। यह पारखी नजर हर-एकको नसीब नही होती।

इसी सिल्सिलेमे कई स्वानुभव सुनाये, जिनमे-से निम्नलिखित याद रह गया है।

"एक बार कुछ साहब मेरे ग़रीब खानेको रौनक बख्श रहे थे। शाइर, सुखन-फहम, ना-अहल सभी किस्मके लोग थे। शाइरीका दौर चला तो एक ना-अहल हजरत बढ-बढकर दाद देते रहे। जब मैंने अपनी गजल पढी तो एक शेरपर बेतहाशा दाद देते हुए बोले—"यह कहा है, आपने हमारे रगका शेर, किवला ऐसे ही अशआर कुछ और कह सके तो दुनियाए-शाइरीम आपका जवाब न मिले।"

मै उनकी इस दीदादिलेरीका क्या जवाब देता? चूंकि मेरे ही गरीबखानेपर तशरीफ फर्मा थे इसलिए इखलाकन बजुज शुक्रियाके म और क्या कहता? मगर मुहबत खत्म होनेपर तख्लिया हुआ तो काफी गौरो-खौज करता रहा कि इस शेरमे ऐसा कौन-सा झोल रह गया है, जो ऐसे बद-जौकको पसन्द आया। बावजूद नजरे-सानीके भी जब मुझे कोई नुक्स नजर न आया तो मैंने वह शेर ही अपनी गजलसे इस खयालसे निकाल दिया कि मुमकिन है मुझे अपने कलामके ऐब नजर न आते हों, मगर, इस शेरमे जरूर कोई ऐसी कमी है, जिसकी वजहसे उन-जैसे नाफ़हमको पसन्द आया?"[1]

---

[1]इसीतरहकी निम्नलिखित घटना जनाब जगन्नाथ साहब 'आजाद' की क़यामगाहपर ३० दिसम्बर १९५६ ई० को उर्दूके प्रसिद्ध विद्वान् और शाइर प० हरीचन्द अख्तरने भी सुनाई—

ब-वक़्ते वापसी मैंने अर्ज किया—"अब मुझे कदम-बोसीकी इजाजत दीजिए तो फ़र्ते-मसर्रतमे खडे हो गये। मुझ जर्रए-नाचीजको बढावा देते हुए गलेसे लगा लिया। मेरे सरपर उसी मुहब्बतसे हाथ फेरा, जैसे कि बुजुर्ग अपने बच्चोंके साथ बरतते है।

डालमियानगर वापिस आनेपर मैंने अपनी इस मुलाकातका उल्लेख अपने अनन्य मित्र सुमत साहबके पत्रमे किया तो उन्होंने ७ जून १९५५ ई० को पत्रोत्तर देते हुए लिखा—

"एक बार जीमे आई कि तुरन्त उत्तर लिख डालूँ। फिर यह सोचकर इरादा बदल दिया कि ऐसा करना निहायत मजेदार सन्तरेके रसके गिलास-को एक घूँटमे पी जानेके बराबर होगा। इतने दिन जो हो गये है, तो चुस्की लगानेका-सा मजा आता रहा है।.....

'असर' साहबका तजकरा पढकर लुत्फ आ गया। मै सोचता हूँ कि जब इसतरहके सारे चिराग बुझ जायेंगे तो दुनियामे कितना भयानक अँधेरा हो जायेगा?[१] **'नज़र आता है कोसोंसे किसीका आस्ताँ मुझको'** शेरका जवाब नही है। मै पिछले छ महीनेसे इस शेरका लुत्फ ले रहा हूँ। चुस्की लगानेका मतलब अब आप समझ गये ना?"

सुमत साहबके पत्रमे इस मिसरेका उल्लेख पढकर मुझे एक

"एक शाइर दस-पाँच अदीबोंमे बैठे हुए गजल सुना रहे थे कि एक हजरत जो बड़ी बेदिलीसे वहाँ बैठे हुए थे। किसी शेरपर एका-एक दाद दे बैठे! बस फिर क्या था। उन्होंने गजल पढ़ना छोड मुझसे पेन्सिल माँगी और सबके सामने उस शेरको काट दिया। दाद देनेवाले हजरत-पर घड़ों पानी पड गया।"

[१]उन दिनो १०-१२ बहुत प्रतिष्ठित उर्दू-अदीब चल बसे थे, उसी शोकाकुल स्थितिकी ओर सकेत है।

बात स्मरण हो आई। 'असर' साहबके सामने न जाने किस प्रसगमे उक्त शेरका जिक्र आया तो उन्होने बतलाया कि "एक हजरतको न जाने क्या हुआ, बैठे हुए शेर सुन रहे थे कि यह शेर सुनकर मुझसे लिपट गये और रोने लगे। खुदा-खुदा करके मैने अलग किया। तब भी वज्दकी हालतमे बैठे हुए आँसू बहाते रहे और शेरको गुन-गुनाते रहे। कुछ दिनके बाद इस शेरपर यह कलमी तसवीर लाये और मेरे कमरेमे लगा गये।"

वह तसवीर काफी बडी थी और उस वक़्त भी ड्राइगरूममे लगी हुई थी।

यह तो उर्दूका सौभाग्य है, कि 'असर' शाइर और अदीब भी है। यदि यह न भी होते तो भी आपपर देशको अभिमान होता। आप जैसे शरीफ और नेक इन्सान, सच्चे दोस्त, मेहमाँनवाज, गरीबपरवर, खुश इखलाक, तअस्सुबी-कीनासे पाक, आन-बानवाले बहुत मुश्किलसे नजर आते है। बकौल इकबाल--

हज़ारों साल नर्गिस अपनी बेनूरीपै रोती है।
बड़ी मुश्किलसे होता है, चमनमे दीदावर पैदा॥

'असर' साहबके पूर्वज हकीम मुहम्मद शफ़ी मुग़लिया शासन-कालमे इसफहान (ईरान)से भारत आये और आगरेमे रहकर चिकित्सा-कार्य करने लगे। थोडे ही अर्सेमे आपकी ख्याति दूर-दूर फैल गई। लखनऊके नवाब आसफुद्दौला बीमार पडे और उन्हे आराम न हुआ तो आपको आगरेसे बुलाकर दिखाया गया और आपके इलाजसे नवाबसाहबको जासे-सेहत पीना नसीब हुआ। उन दिनों लखनऊ गुणियोका केन्द्र बन रहा था। नवाबसाहब खोज-खोजकर उच्च कोटिके गुणियों, कला-विदोको लखनऊमे बसा रहे थे। अतः आपको भी नवाब साहबके आग्रह-पर लखनऊ अपना निवास-स्थान बनाना पडा। आपके वशमे चिकित्साके

साथ-साथ विद्या-वैभवका भी उत्तरोत्तर विकास होता रहा। 'असर' साहबके पिता हर्काम मिर्जा अफजलहुसैनखाँने 'असर' साहब को अपनी वश परम्परागत शिक्षा-दीक्षामे पारगत कराया। आधुनिक अँग्रेजी-शिक्षाकी तालीम भी दिलाई। परिणामस्वरूप असर साहब पुरातन और नवीन दोनो ही युगोका प्रतिनिधित्व करते हैं। मीर-ओ-गालिबके रगमे गजल भी कहते हैं और इक़बाल-ओ-जोशके शाने-ब-शाने नज्म भी कहते है। हिन्दोस्तानी वजअ-क़ितअके दिलदादा भी है, और यूरोपियन विशेषताओके गुण-ग्राहक भी।

अब हम आपके कुछ पत्रोत्तर उद्धृत कर रहे हैं जिनसे आपकी अध्ययन-शीलता, चिन्तन-मनन, और उर्दू-साहित्य-सेवावृतका आभास मिल सकेगा। भारत और पाकिस्तानसे आपके पास अदबी-मालूमात हासिल करनेके लिए न जाने कितने पत्र आते रहते है। उन सबका आप इस ७२ वर्षकी वृद्धावस्थामे भी स्वय अपने हाथसे लिखकर बहुत खन्दापेशानी और तवज्जुहके साथ हर सवालका जवाब देते है। जवाबके लिए पोस्टेज भेजनेपर आप बुरा मान जाते है, अपना ही पोस्टेज लगाकर बहुत सुन्दर अक्षरोमे तत्परतासे पत्रोत्तर देते है। डालमियानगरमे मेरे एक साथी श्री कुलभूषण जैन 'कौसर' उर्दू-अदबमे दिलचस्पी रखते है। वे 'सीमाब' अकबराबादीके शिष्य है और उनकी मृत्युके बाद 'अलम' मुजफ्फरनगरीसे इस्लाह लेते है। मगर अदबी चर्चा वे अधिकारी विद्वानोसे पत्रों-द्वारा करते रहते है। उनके पास आये हुए असर साहबके चन्द खुतूत यहाँ दिये जा रहे है —

कश्मीरी मुहल्ला-लखनऊ
२५ सितम्बर, १९५३ ई०

मेहरबान बन्दा !

आपका खत मिला, इस्तफसारात (सवालों) का जवाब-जैलमे दर्ज है। ('कौसर' साहबने निम्नलिखित शेरोंपर प्रकाश डालनेके लिए निवेदन किया था)

खुल गये ऐबो-हुनर सब कातिबे-तक़दीरके।
रंग है आमदए-परवाज हर तसवीरके॥

"कातिबे-तकदीर (भाग्य-लेखक) खुदा है, उसमे ऐबका मन्सूब (सम्बन्धित) करना कुफ्रो-जहालत (नास्तिकता और मूर्खता) व जिन्देका (अज्ञानता) है। खुदापर नुक्ताचीनी करनेवालोको पहले राजे-तखलीक (सृष्टिका रहस्य) व-फ़ितरते-इन्सानी (मानवस्वभाव), नीज उन कवानीन (नियमोंका, उसूलो) का समझना लाजिम है, जिनके मातहत वह कारबन्द होता है। इन्सान एक हदतक फाइले-मुखतार (कर्म करनेमे स्वतन्त्र) है। उसमे अच्छे-बुरेकी तमीज मौजूद है। उसके होते अगर वह अपने जमीर (अन्तरात्मा)की खिलाफ-वर्जी (विरुद्ध कार्य) करे तो यह उसकी खता हुई या कातिबे-तक़दीरकी? नविश्तए-किस्मत (भाग्य-लेख)का मशा इसके सिवा कुछ नहीं कि खुदाके इल्ममे कोई शै बाहर नही। इन्सानपर आजतक यही नही खुला कि वह पैदा क्यो किया गया? फिर किस बिरतेपर "तत्ता पानी"? जो शै पैदा हुई है, वह फना भी जरूर होगी। इसको ऐब या हुनरसे मन्सूब करना सरासर हिमाकत है।

दूसरा मिसरा जबानके एतबारसे भी नाकिस है। माना कि तसवीरमे मुतअद्दिद (अनेक) रग होते है, या हो सकते है। मगर जब कहेगे तो यही कहेगे कि इस तसवीरका रग उड गया है, या उड रहा है, रग ब-सीगयेजमअ (बहुवचन) इस्तेमाल न करेगे।"

है जानके साथ और इक ईमानका डर भी।
वह शोख़ कहीं देख न ले मुड़के इधर भी॥

"यह शेर भी ग़लत और मोहमिल (बेमायनी-सा, निरर्थक) है। 'इधर भी' से ईमानकी तरफ इशारा है। माशूक जान ले चुका, अब मक़सूल (घायल) डर रहा है, कि मुड़के देखा तो ईमान भी जायगा। जान जानेके बाद ईमानका जाना कोई तुक भी है?"

जलवए-दारो-रसन अपने नसीबोंमें कहाँ?
कौन दुनियाकी निगाहोंपे चढ़ाता है मुझे?

"इस शेरमें कोई ऐब नहीं, मगर सुस्त और बेकैफ--(बेमजा) है। शाइर यही कहना चाहता है कि मन्सूरने 'अनलहक' कहकर हँगामा बरपा किया और मुस्तहके-दार (फाँसीके दण्डके योग्य) ठहरा। इस तरह उसकी शोहरत हुई। मुझे कोई गर्दन-जदनी (गर्दन कटाने योग्य) भी न समझेगा, क्योंकि मैं दुनियाकी नजरोंमें समाता ही नहीं।

मैंने कभी कहा था.—

मंसूरकी बातें जाने दे मंसूरकी हिम्मत पैदाकर।
हक़ बात जबाँपर लाते क्यों अल्लाहके बन्दे डरता है"?

मोमिन-- उस नक़्शे-पाके सज्देने[1] क्या-क्या किया ज़लील[2]।
मैं कूचए-रक़ीबमें[3] भी सरके बल गया॥

"कूचए-रकीबमें सरके बल जानेका यह सबब हुआ कि उधर भी माशूकके नक़्शे-क़दम थे। माशूकके नक़्शे-पा पर सिज्दा करना मजहबे-इश्कमें जाइज बल्कि वाजिब है। जिल्लतका सबब यह हुआ कि हरीफ या रकीबके कूचेमें सरके बल जानेसे लोग समझे कि रकीबसे रहमका तालिब है और उसके कूचेमें नाक रगड़ता है।"

ग़ालिब-- जाना पड़ा रकीबके दरपर हज़ार बार।
ऐ काश! जानता न तेरी रह-गुज़रको[4] मैं॥

"ख़याल इसमें भी वही है जो मोमिनके शेरमें है। मगर वोह बुसअते-मअनी (भावकी विशालता) नहीं। गालिबका दरे-रकीबपर जाना महज बर बिनाए-रश्क है। नक़्शेपाए-यार रहनुमा नहीं है।"

---

[1]प्रेयसीके चरण-चिह्नोंके सिज्देने; [2]ख़्वार; [3]प्रतिद्वन्द्वीकी गलीमें; [4]आने-जानेका मार्ग।

"अब जरा 'मीर'का बाँकपन देखिए—इसमें जिल्लतका शाएबा (लेशमात्र) नहीं, बल्कि माशूकपर तञ्ज (व्यग्य) है, जली-कटी है, ताहम इन्तेहाई रश्क (ईर्ष्या)का इजहार है—

इतना रक़ीबे-खाना-बर-अन्दाज़से सुलूक ?
जब पूछते हैं, जाके यह सुनते हैं "घर नहीं"॥

"रश्कका यह आलम कि माशूक कहीं गया हो, गुमान यही होता है कि रक़ीबके घर गया है। मगर टोह लेनेके लिए कुचए-रक़ीबके चक्कर नहीं लगाते।"

खाकसार
'असर'

कश्मीरी मुहल्ला, लखनऊ
१५ अक्टूबर १९५८ ई०

मकर्रमी-मलामे-शोक,

आपका खत मिला। इस्तफसारात (प्रश्नों)के मुतअल्लिक अपनी नाचीज राय जाहिर करता हूं—

मोमिन— **तुम मेरे पास होते हो गोया।**
जब कोई दूसरा नहीं होता॥

सारी-खूबी लफ्ज 'गोयाके' सर्फ (प्रयोग) में है। गोयाके एक मअनी तो यह हुए कि तुम मेरे पास नहीं होते, मगर मालूम यही होता है कि मेरे पास हो। गोयाके दूसरे मअनी हम-सुखन (परस्पर बातें करते) होनेके हैं। यानी तसव्वुर (प्यारेका चिन्तन) इतना शदीद (गहरा) होता है कि सिर्फ सूरतगरी नहीं करता, बल्कि तुमको मुझसे हमकलाम कर देता है। दूसरा मिसरा खिलवतका पसेमञ्जर (एकान्त मिलनका दृश्य)

मुहैया (उपस्थित) करता है। दिलको ऐसी यकसूई (तल्लीनता) तनहाई (एकान्त)के बगैर मयस्सर नहीं हो सकती।

शौक़ सन्दीलवी

सादगीमे यह कहाँ लुत्फ़े-खलिश[1] दिलको नसीब।
खत भी वह खत है ? अगर शोखिए-तहरीर न हो।।

पहले मिसरेमे लफ़्ज 'यह' भर्ती ही का नही, बल्कि इगलाक (भ्रम) पैदा करता है।

सादगीमे दिलको लुत्फ़े-खलिश कहाँ नसीब ?

मतलब पूरा हो गया। दूसरे मिसरेकी बन्दिश गलत है, नस्र (गद्य) मे यूँ कहते--

वह भी खतमे कोई खत है, जिसमे शोखिए-तहरीर न हो

इस्लाहे-बेखुद देहलवी--

सादगीमे भी हुआ लुत्फ़े-खलिश दिलको नसीब।
उनका खत है ! न सही शोखिए-तहरीर न हो।।

आपको दूसरे मिसरेकी इस्लाह पसद आई। मेरा खयाल है कि मिसरा जबानकी हदोमे नही रहा। नस्रमे यूँ कहेगे--"उनका खत है, शोखिए-तहरीर नही है(तो) न सही, या उनका खत है, उनकी-शोखिए-तहरीर न सही" अलबत्ता आपका यह खयाल दुरुस्त है कि माशूकके खतसे इबारत सादा हो या रगीन, दिलको तस्कीन होगी, न कि लुत्फ़े-खलिश हासिल होगा। आपके जौकको मद्देनजर रखते हुए 'शौक़'का शेर शायद इसतरह बेहतर होता--

दिले-बेताबकी तस्कींके लिए काफ़ी है।
खत तो उनका है, नहीं, शोखिए-तहरीर न हो।।

---

[1]चुभनका आनन्द।

अहसन मारहरवी

क्यों दस्ते-शौक़ सुबहको बिस्तरसे चुन न ले।
है यह बसे हुए तेरे नाज़ुक बदनके फूल॥

इस्लाहे-दाग़

क्यों चश्मे-शौक़ सुबहको बिस्तरसे चुन न ले।
है, यह बसे हुए तेरे नाज़ुक बदनके फूल॥

दागकी इस्लाह उस्तादाना है। आँखसे फूल चुननेमे जिस मोहब्बत और एहतराम (आदर) का इजहार होता है, वह हाथसे चुननेमे कहाँ? अलावा बरी इस्लाहमे एक कदीम रस्मकी तरफ इशारा हो गया गुलबाजीमे जब किसी फरीकमे फूल वापिस नही किया जा सकता था, बल्कि जमीनपर गिर पडता था तो उसकी Penalty यह होती थी कि आँखोंसे उठाये। हिन्दीवालेने किस गजबका कहा है—

फुल गेदवा ना मारो महाराज, लगत करेजवामे चोट

गेंदेके फूलसे कलेजेमे चोट लगती है, इस नजाकते-एहसासका क्या ठिकाना है?

साग़र निज़ामी

संगको बुतकी शक्ल दी, सनअ़ते-बुत-तराशने।
मैंने मगर तराशकर बुतको ख़ुदा बना दिया॥

आपका एतराज माक़ूल है कि तराशे हुए बुतकी दुबारा तराश-खराश क्योंकर हुई। आपके एतराजका लिहाज रखते हुए दूसरा मिसरा यूँ कैसा हो?

मेरे नियाज़े-इश्क़ने बुतको ख़ुदा बना दिया

यानी मैंने बुतमें खुदाकी शान देखी। उसीका मजहर (प्रतिबिम्ब) समझा। क्या आपने मेरे तर्जुमाए-गीताका मुतालेआ— (अध्ययन) खत्म कर दिया। अपनी आजाद रायसे जरूर मुत्तलअ कीजिए। खुदा करे आप खैरियतसे हों।

नियाजमन्द,
'असर'

'कौसर' साहबने कई शाइरोंके कुछ घटिया-बढ़िया शेर खल्त-मल्त करके इस भावनासे भेजे थे कि देखें असर साहबकी पारखी दृष्टि कैसी है ? वे सोनेको ही सोना कहते हैं या चमकती पीतलको भी सोना समझ लेते हैं। उन अशआरपर असर साहबका निम्नलिखित विवेचन पढ़कर यह मानना पड़ा कि वे मुक्ता-सुक्ताके सिद्धहस्त पारखी हैं। आप लिखते हैं—

"मेरा खयाल है, कि अशआर मुन्दर्जाका मुवाजना (लिखित शेरों-का तुलनात्मक विवेचन) किसी मंजिलतक नहीं पहुंचा सकता। इनका एक मजमून, एक बहर या एक रदीफ़ो-काफिया नहीं। लिहाजा हर शेरको एक इकाई करार देकर उसके महासिन-ओ-मआइब (गुण-दोषों) को परखना होगा—

किस क़दर दिलचस्प होगा मंजरे-नाजो-नियाज।
तीर बरसाएगा कोई फूल बरसाएँगे हम॥

मिसरा अव्वल यूँ हो सकता था—

दीदनी होगा वह ऐ दिल ! मंजरे-नाजो-नियाज

दिलका शमूल (मिलन) जो इस मोहबते-नाजो-नियाजमें शरीक होता, बलागत भी पैदा कर देता। हासिलके लिहाजसे शेर अच्छा है। हुस्नके तीर उसकी अदाएँ हुई, तर्जे-निगाह हुआ जिनपर इश्क फूल निछावर

करेगा। हर कतरा खूने-दिलका पजीराई-ए-हुस्न (सौन्दर्य्यकी स्वीकृति मिलने) मे फूल बन जायगा।

रंगे-हिनाए-यारमे दिलका लहू भी दे मिला।
शर्ते-वफ़ा तो है यही, हुस्नमे कुछ कमी न देख॥

शेर हर लिहाजमे नाक़िस (घटिया) है। बन्दिश सुस्त, 'मिलादे' की जगह 'दे मिला' समाग्रत (कानो) पर बार (बोझ) है। 'तो' भरतीका। 'कमी न देख'—इसका मतलब इसके सिवा क्या हो सकता है कि हुस्नमे खामी है तो हो, इसकी तरफ मे आंखे बन्द करले। रगे-हिनामे खूने-दिल मिलानेसे हुस्नकी खामी क्योकर दूर हो जायगी? वह कमी क्या है, जिसकी खानापूरी दिलके लहूसे होगी। शेरमे इस अमूरकी तरफ कोई उचटता-सा भी इशारा नही।

पिलाके खूने-जिगर अपना बागे-हस्तीमे।
किया है, खारको फूलोंका हम-नशीं मैंने॥

ताहम खार (काटा) खार है, और फूल-फूल। खूने-जिगर मुफ्त राएगा (व्यर्थ) हुआ। खारको फूलोका हमनशी (समकक्ष) करना खार-पर एहसान, तो फूलोपर जुल्म हुआ। शेरकी कोई कल सीधी नही।

तजल्लियाँ[1] उसे अपनी नजर जब आने लगीं।
निगाहे-इश्क़मे[2] फिर हुस्न भी समा न सका॥

इश्कमे तजल्लियाँ पैदा होना, इश्कमे हुस्नका रूनुमा (प्रकट) होना है। ताहम यही नही कि हुस्न नजरमे नही समाता बल्कि समा न सका। यानी आपने सई-ए-पजीराई भी की; मगर इश्कने हुस्नको नाक़ाबिले एतना (अविश्वस्त) क़रार दिया। दराँ हालाँ कि जब इश्कमे हुस्नकी

---

[1]प्रकाश, चमक, जलवा, झलक; [2]प्रेम-दृष्टिमें।

रअनाइयाँ (खूबियाँ) रूनुमा (उजागर) होगी तो खुद इश्कको हुस्नमे इश्क होगा। बग़ैर तमव्वुरेहुस्न (सौन्दर्य्य चिन्तनके बिना) इश्क एक लफ्जे- मोहमिल (निरर्थक) है। इश्कके लिए मरकज (केन्द्र) दरकार है और वह हुस्न है। खुद उसमे हुस्न हो या उसमे बाहर हो।

शिकस्ता शीशा जो फिर शीशागरसे जुड़ न सका।
ख़बर नहीं कि दिले-शीशागरपै क्या गुज़री?

'फिर' यानी एक मर्तबा शीशागर शिकस्ता शीशा जोडनेमे कामयाब हुआ था। दूसरी दफा नाकाम रहा। शेरमे लफ्ज 'फिर' महज बराए बैत (भर्तीका) है, अलावा बरी शीशागर शीशा जोडता नही, बल्कि ढालता है। शाइरीमे शीशेसे मुराद दिल है। ऐसा दिल जो शीशेकी तरह नाजुक और दर्दो-सोजो- गुदाजमे लबरेज है और जो जरा-सी ठेसमे टूट जाता, बल्कि चूर-चूर हो जाता है। ऐसा दिल निगाहे-शीशागरमे बहुत अजीज होता है। बकौल इकबाल--

तू बचा-बचाके न रख इसे, तेरा आईना है, वह आईना।
कि शिकस्ता हो तो अज़ीज़तर है, निगाहे-आईना-साज़मे॥

मगर यहाँ ऐसा दिल शीशागरके पास इसलिए ले जाते है कि वह इसे जोड दे। मगर शीशागर नाकाम रहता है, और कलेजा पकडके रह जाता है। यह शाइरी नही तुकबन्दी है।

अपने उस्ताद अल्लामा सीमाब अकबराबादीकी एक ग़ज़लपर कौसर साहबने कुछ ऐतराज और संशोधन 'असर' साहबके पास भेजे थे। यहाँ वह अंश दिया जा रहा है--

'कौसर' साहब दरियाफ़्त फ़र्माते हैं--

गुज़र गया गुज़राँ दौरे-नाम ख़ुशीकी तरह।
ख़िज़ाँ भी एक हवा थी, बहार ही की तरह॥

"मतलेके पहले मिसरेमे लफ्ज 'गुजरा' हश्व (भर्तीका) मालूम होता है। दूसरे मिसरेमे 'हवा'के बजाय अगर तगैय्युर (परिवर्तन) होता तो मेरे खयालमे शेरके मुआनी ज्यादा साफ हो जाते। मेरे खयालमे शेर यूं बेहतर होता—

अलमका दौर भी गुजरा युं ही खुशीकी तरह।
खिजांमें भी था तगैय्युर बहार ही की तरह॥"

'असर' साहबने जवाबमें लिखा—

"मतला बे ऐब है। गुजराँके मआनी है, 'गुजरनेवाला' (मिटने-वाला) नापायदार (अस्थायी, क्षणिक)। इसी ऐतबारसे 'हवा'का लफ्ज भी मुनासिब है। हवाका झोंका आता है, और गुजर जाता है। इसी तरह बहारो-खिजाँके मौसम, खुशी और गमके जमाने आये और गुजर गये।"

कौसर

तगैय्युरात[1] है, मुझमे भी जिन्दगीकी तरह।
कभी किसीकी तरह हूँ कभी किसीकी तरह॥

"जब कि जिन्दगीमे तगैय्युरात है, फिर जिन्दगीकी हर चीजमे तगैय्यु-रात होना खुद-ब-खुद साबित हो जाता है। चूँकि शाइर बजाते-खुद भी जिन्दगीमे अलग कोई जुदागाना चीज नही है। इसलिए अपने अन्दर तगैय्युरात जाहिर करनेका मकसद क्या है, कुछ समझमे नही आता। शेर मामूली मालूम होता है, जिसमे शेरियत बहुत कम नजर आती है।"

असर

"जिन्दगी आम है, किसी शख्सकी अपनी जिन्दगी उसका एक हकीर

---

[1]इन्किलाबात, क्रान्तकारी परिवर्तने।

जुज (छोटा-सा अंश) है। लिहाजा तशबीह (उपमा) दुरुस्त है। दर-अस्ल खामी जबानकी है। दूसरे मिसरेमे दोनो 'की' जायद है। 'कभी किसी तरह हूं' 'कभी किसी तरह' तगैय्युरात साबित और मतलब पूरा हो गया।"

कौसर

दो लफ़्ज़ एक ही मानीके हैं, शिकस्तो-शिगुफ़्त।
यह वक़्त दिल पै भी आता रहा कलीकी तरह॥

"दोनो मिसरे गैर मरबूत (असम्बन्धित) मालूम होते है। पहले मिसरेमे शिकस्तो-शिगुफ्त दोनो अल्फाजके हममानी होनेमे क्या मुराद है और दूसरे मिसरेमे—'यह वक्त' मे मुराद कौनसे वक्तसे है। कुछ साफ जाहिर नही होता।"

असर

"शिकस्त या शिकस्तगी टूटना है। शिगुफ्त या शिगुफ़्तगी खिलना है। कलीका खिलना उसकी पँखडियोका एक दूसरेसे जुदा होकर फूलकी शक्ल अख्तियार करना है। यही बस्तो-कुशाद (बन्द होना और खुलना) पजमुर्दगी-ओ-शिगुफ्तगी (मुर्झाने और खिलने) की हालत दिलपर भी तारी होती रहती है। मगर शिकस्तो-शिगुफ्तसे बहतर अल्फाज इज-हारे-मतलबके लिए 'बस्तो कुशाद' होते। मुँह बन्द कली खिलती है। ऐसी कलीको 'बस्ता (बँधा हुई) कहना मुनासिब था न कि 'शिकस्ता'। अलावा बरी—(इसके अतिरिक्त) 'आता रहा' तवातुर (लगातार होने) का मफहूम है। यानी कभी शिकस्त और कभी शिगुफ्त जो हकीकतके खिलाफ़ है। जहांतक कलीका तअल्लुक है, वह खिलनेके बाद मुर्झाती है तो फिर नही खिलती। दिलपर यह हालत मुतवातिर गुजरती है।"

कौसर

तेरी गलीसे निकलकर बहुत खराब हुए।
कहीं न चैन मिला फिर तेरी गलीकी तरह॥

"दोनों मिसरोंमें 'तेरी गली' की तकरार गैर फसीह मालूम होती है। शेर यूँ होता तो शायद ज्यादा बेहतर होता—

निकलके कूचेसे तेरे बहुत खराब हुए।
कहीं न चैन मिला फिर तेरी गलीकी तरह॥

असर

"शेर बे ऐब है। गलीकी तकरार ऐबके बजाय हुस्न है। कूचेसे यह बात पैदा न होती। मजूजा (मौजूदा), इस्लाह ना मौजूं है।"

कौसर

नियाज[1] ही की मेरे नाजमें[2] भी शान रही।
खुदीकी[3] लहर भी आई तो बेखुदीकी तरह॥

"पहले मिसरेमें 'मेरे नाज' अल्फाजसे कुछ यह समझमें नहीं आया कि हजरत 'सीमाब'का मतलब अपने नाजसे है या माशूकके नाजसे? अगर मुराद अपने नाजसे है तो यह बात कुछ खिलाफे-फितरत-सी मालूम होती है, क्योंकि आशिकके अन्दर तो नियाज ही होता है और नाज माशूककी फितरत है। अगर लफ्ज 'मेरे' नियाजके लिए है 'नाज'के लिए नहीं है तो फिर यहां 'मेरे नाज' तरकीबमें जम (परिहास) का पहलू पैदा हो जाता है।"

---

[1]नम्रता; [2]अभिमानमें; [3]अहमन्यताकी।

अमर

"एतराज दुरुस्त है। पहला मिसरा उलझा हुआ है। शायद इस तरह बहतर होता--

"मेरे नियाजमे इक शान तेरे नाजकी है"

कौसर

मैं फ़ितरतन हूँ ग़म-अन्दोज़ क़हक़हा कैसा।
हँसी लबों पै न आई कभी हँसीकी तरह॥

"मे कह नही सकता कि गम-अन्दोजका इस्तैमाल इस मुकामपर किस हदतक मौजूँ है। बहरहाल मुझे यह इसलिए खटक रहा है कि मुझे जहाँतक याद है, इसका इस्तेमाल मैंने मरई (बेजान) चीजोके लिए ही देखा है। गैर मरई (जानदार) चीजोके लिए गमगीन, गम-आगी, वगैरह अल्फाज ही नजरमे गुजरे हैं। मेरे खयालमे शेर यूँ होता तो ज्यादा बेहतर था--

मैं गम नसीब अज़लसे हूँ क़हक़हा कैसा?
हँसी लबों पै न आई कभी हँसीकी तरह॥

अमर

"शेर मोहमिल है, मगर गम-अन्दोजकी तरकीब गलत नही। ग़म अन्दोजके मानी है--गम जमा करनेवाला। मसलन--लज्जत-अन्दोज, लज्जत जमा करनेवाला। अगर पहला मिसरा इस तरह मौजूँ कीजिए तो शेर खूब हो जाये--

"मैं ग़म-नसीब अज़लसे हूँ ज़ुल्मकी सूरत"

नियाजमन्द
'असर'

शेरां-सुखन दूसरे भागके प्रथम सस्करणमे 'बहारां' (१९३९ ई० मे प्रकाशित) कुलियातमे चुनकर शेर दिये गये थे। द्वितीय सस्करण प्रेसमे देनेके बाद इच्छा हुई कि १९४७ मे वर्तमानतकका ताजा कलाम स्वय 'अमर' साहबका पसन्दीदा दिया जाय तो पुस्तकमे चार-चाँद लग जाये। मेरी प्रार्थनाको मान देकर कलाम भेजते हुए आपने तहरीर फर्माया--

"बहारांके बाद मेरी गजलोका कोई मजमूआ किताबी सूरतमे शाया नही हुआ और न अब उम्मीद है। गो पाँच हजारसे ऊपर शेर है। गैर जबानोकी नज्मोके तराजम (अनुवादों)के अलावा कोई डेढ-सौ नज्मे मेरी कही हुई है, और सभी तरहकी है। तमद्दुनी (सास्कृतिक) सियासी (राजनीतिक) फलसफयाना (दार्शनिक) आशिकाना, नेचुरल (प्राकृतिक) सिर्फ काश्मीरपर ही कोई २० नज्मे है।

आपके हुक्मकी तामीलमे सन् ४७ के बादकी तकरीबन ५०० गजलोमे-से ३८ गजले जो सरसरी इन्तखाबमे आई रवाना करता हूं। इनके अशआरकी तादाद कोई ४०० होगी। इनमे-से अपनी मर्जीके मुताबिक इन्तखाब कर लीजिए। इसी तरह मुख्तलिफ नज्मोके नमूने है.....।"

द्वितीय भागमे दिये गये परिचयसे भिन्न, नया सस्मरण लिखकर और अता फर्माये हुए कलामसे चुनकर गजलोंके अशआर और चन्द नज्मोके नमूने तबर्रुकन दिये जा रहे है। मेरी इच्छा थी कि आपकी इनायत की हुई पूरी-की-पूरी ३८ गजले और सब-की-सब १५ नज्मे दी जाये। साथ ही चन्द अशआरपर विशेष प्रकाश भी डाला जाये, ताकि आपके शाइराना मर्त्तबेका कुछ आभास मिल सके, परन्तु स्थानाभाव और समयकी तगीके कारण मन-मसोसकर रह जाना पड रहा है।

भारत-विभाजनके समयकी मन.स्थितिका उल्लेख रगे-तगज़्जुलमे देखिए किस सलीकेसे व्यक्त हुआ है--

यह वक़्त वह नहीं कि नशेमन बचाइए।
बाज़ी लगाके जानकी, गुलशन बचाइए॥

भड़की हुई है आग फ़सादो-अनादकी[1]।
फुकनेको आबरूका है खिरमन[2] बचाइए॥

दुनिया है, तहलकेमें तो परवा न कीजिए।
यह दिल है, रूहे-अस्रका मसकन[3] बचाइए॥

दिल बुझ गया तो जानिए अंधेर हो गया।
इक शमअ[4] आँधियोंमें है रोशन, बचाइए॥

छाया गुलोंसे[5] और बसा ज़म-ज़मोंसे[6] हो।
यह हो रहेगा पहले नशेमन बचाइए॥

काँटोंपै मुन्हसिर[7] नहीं, फूलोंसे भी यहाँ।
है शर्त एहतियात[8] कि दामन बचाइए॥

बे-महर बागबानकी[9] मिन्नत न कीजिए।
मर रहिए पर न कहिए "नशेमन बचाइए"॥

हर चन्द आर्ज़ूओं का मदफ़न[10] है, दिल नहीं।
पामालियोंसे फिर भी यह मदफ़न बचाइए॥

जब पाको-साफ़ रूहका[11] शोला[12] नहीं 'असर'!
क्यों फ़िक्र है कि जिस्मका ईंधन बचाइए॥

---

[1]फ़साद और वैर-भावकी; [2]खलिहान; [3]हृदयरूपी मन्दिर; [4]दीपक; [5]फूलोंसे छाया हुआ; [6]गीतोंसे गूँजता हुआ; [7]निर्भर; [8]साव-धानताकी; [9]नाराज मालीकी (रक्षककी); [10]उमगों-इच्छाओंकी समाधि; [11]पवित्र एवं स्वच्छ आत्माका; [12]प्रकाश, दीप्ति चिनगारी।

साम्प्रदायिक संघर्षके बाद स्वराज्य तो मिला, परन्तु मनकी कली न खिली--

गुलशनमें जब कहीं कोई जाए-अमाँ[1] न हो।
फिर क्यों बहार अपनी नज़रमे ख़िज़ाँ न हो॥

हम क़ैदसे रिहा जो हुए भी तो क्या हुए।
जब गोशए-चमनमे नसीब आशियाँ न हो॥

उस लमहे-हयातकी[2] उफ़ सोगवारियाँ[3]।
फितरत[4] तो मुसकराती हो, दिल शादमाँ[5] न हो॥

उक्त स्फूर्ति और प्रेरणादायक गजलमे ऐसा प्रतीत होता है, कि 'अमर' आज भी जवाँ है। गजलका हर शेर मुर्दादिलोमे जीवन-ज्योति जगाता है--

मंज़िलका एतबार[6] बढ़ाते चले चलो।
काँटे रहे-तलबसे[7] हटाते चले चलो॥

ज़र्रोंको[8] आफ़ताब[9] बनाते चले चलो।
दीदावरीकी[10] शान दिखाते चले चलो॥

हर मंज़रे-हयातको[11] मानिन्द सुबहे-नौ[12]।
इक पैकरे-जमाल[13] बनाते चले चलो॥

माना नसीब सो गये बेदार[14] तुम तो हो।
सोते हुए नसीब जगाते चले चलो॥

---

[1]शरणको स्थान; [2]जीवन-क्षणकी; [3]शोकावस्था; [4]प्रकृति; [5]प्रसन्न; [6]विश्वास; [7]लक्ष्य-मार्गसे; [8]कणोको; [9]सूर्य; [10]होशमन्दीकी; [11]जीवनके दृश्यो, अनुभवोको; [12]नवीन प्रातः कालके समान; [13]सौन्दर्यका आकार; [14]जागे हुए।

लग़ज़िश[1] भी हो क़दमको तो मस्तानावार हो।
इतना तो कैफ़े-ज़ीस्त[2] बढ़ाते चले चलो॥

दानिशवरोंमें[3] कुफ़्र[4] नहीं इसके मासिवा[5]।
आपसका इख़्तलाफ़[6] मिटाते चले चलो॥

काँटोंको रौन्दते हुए, शोलोंसे खेलते।
हर-हर क़दमपै धूम मचाते चले चलो॥

नैरंगे - हस्तो-बूद फ़रेबे - नज़र[7] सही।
बेहद हसीं फ़रेब हैं, खाते चले चलो॥

ज़िन्दाने-माओ-मनमें[8] बहुत रह चुके असीर[9]।
अब क़ैद माओमनकी उठाते चले चलो॥

मकरो-दग़ाके दाम बिछाते जो हैं, बिछाये।
तुम नेकियोंके नक़्श बिठाते चले चलो॥

तामीरे-अस्रे-नौकी[10] तुम्हींमें हैं, अहलियत[11]।
क़ौलो-अमलसे[12] अपने जताते चले चलो॥

है शर्त एहतियात[13] यही ख़ार हो कि गुल।
दामनको ग़ैर हक़से[14] बचाते चले चलो॥

बुझते हुए चराग़ भी हैं, कामके 'असर'!
शमएँ नई उन्हींसे जलाते चले चलो॥

---

[1]पाँव भटके, काँपे; [2]जीवन-आनन्द; [3]समझदारोंमें; [4]अधर्म; [5]अतिरिक्त; [6]मन मुटाव, [7]जीवन-अस्तित्व नजरोंका धोंक ही सही, [8]अहंभावके कारागारमें, [9]बन्दी, [10]नवयुग-निर्माणकी, [11]योग्यता; [12]वचनों और आचरणोंमें; [13]सावधानताकी शर्त; [14]दूसरोंके अधिकारोंमें।

यह ग़ज़ल पूरी-की-पूरी क्रान्तकारी भावोंसे ओत-प्रोत है—

हद्दे-सब्रो-ज़ब्तसे[1] इक दिन गुज़र जाना भी है।
बन्दिशोंको तोड़कर क़स्रे-सितम[2] ढाना भी है॥

सिर्फ़ अपना ही नहीं दुनियाका ग़म खाना भी है।
जौक़े-यकजेहती ज़माने भरमे फैलाना भी है॥

ज़िन्दगी तक़सीम[3] होकर ज़िन्दगी रहती नहीं।
इसको वहदतको[4] समझना और समझाना भी है॥

वह सियासत[5] जिसके आगे सर झुकाये काएनात[6]।
उसका परचम[7] दस्ते-सुबहे-नौमें[8] लहराना भी है॥

वह उख़ूव्वत[9] जिसका है मेयार[10] ईसारो[11]-ख़ुलूस[12]।
उसका कलमा ख़ुद भी पढ़ना और पढ़वाना भी है॥

वह सदाक़त, ज़िन्दगी इक जुर्म है जिसके बग़ैर।
इम्तहाँ गाहे-अमलमे उसके गुन गाना भी है॥

वह निडरपन जो परखता है, खरा-खोटा यहाँ।
उसका लोहा मुनकिराने-हकसे[13] मनवाना भी है॥

मुद्दई जो-जो क़ियादतके[14] हैं, सुन रक्खे ज़रा।
राह पर लानेसे पहले राह पर आना भी है॥

---

[1]शान्त रहो, सब्र करो, इन उपदेशोंकी कोई सीमा भी है?; [2]इन बन्धनोंको तोडकर, अत्याचारोके महल ढाने होंगे; [3]बिखरकर, असगठित रहकर; [4]सगठन शक्तिको; [5]राजनीति; [6]ससार; [7]झण्डा; [8]नई सुबहके हाथो द्वारा; [9]भाई-चारा, [10]आदर्श; [11]अपनेमे दूसरोंको अच्छा समझना; [12]मुहब्बत; [13]असत्यवादियोंसे, दूसरेके अधिकारोंको छीननेवालोंसे; [14]नेतृत्वके दावेदार।

सीखले फूलोंसे ग़ाफ़िल मुद्दआ-ए-ज़िन्दगी।
ख़ुद महकना ही नहीं, गुलशनको महकाना भी है॥

जोतको दिलकी जगा हुस्ने-अमलसे मुत्तसल[1]।
जिस तरह लाज़िम दियेकी लौ को उकसाना भी है॥

ख़्वाब बुनिए, ख़ूब बुनिए, लेकिन इतना सोचिए।
इनमें है ताना-ही-ताना या कहीं बाना भी है॥

तुम समझते हो वजूद उफ़्तादगी[2] कुछ भी नहीं।
इश्कका शेवा अकड़ना और बल खाना भी है॥

ख़ुद ही सरशारे-मए-उल्फत[3] नहीं होना 'असर'!
इससे भर-भरकर दिलोंके जाम छलकाना भी है॥

इन दो ग़ज़लोंमे असर साहब जीवनोपयोगी कितने कामकी बात कह गये हैं—

और जो कुछ हो, यह अन्धेर न होने पाये।
यास[4], उम्मीदका बेड़ा न डुबोने पाये॥

बन्दए-ऐश! जगह उनके लिए ख़ाली कर।
जो घड़ी भर न कभी चैनसे सोने पाये॥

ख़ूब है, ज़ुहदे-अमल[5] ध्यान रहे बस इतना।
ज़िन्दगी अपनी तवानाई[6] न खोने पाये॥

जिनको मक़दूर है, वह काश, मुनादी करदे—
"बीज नफ़रतका न अबसे कोई बोने पाये॥"

---

[1]बराबर; [2]मुसीबतोंके अतिरिक्त; [3]स्वय ही प्रेम-मदिरासे आनन्दित नही होना; [4]निराशा, [5]तपस्या; [6]शक्ति, बल।

हमको अपना तो कहा साक़िए-दरियादिलने[1]।
बहती गंगामे मगर हाथ न धोने पाये॥

अक़्ल सल,[2] ज़हन मुअत्तल[3] है बदस्तूर 'असर'!
होके आज़ाद हम, आज़ाद न होने पाये॥

ज़िन्दगीको ज़िन्दगीपर नाज़[4] होना चाहिए।
राज़को[5] ख़ुद राज़का गम्माज़[6] होना चाहिए॥

हिम्मते-मर्दाना कहती है कि "पसअज़ हरशिकस्त[7]।
फिर नये सरसे नया आग़ाज़[8] होना चाहिए"॥

ताइरे[9]-जाँ कितने ही गुलशन तेरे मुश्ताक़[10] हैं।
बाज़ुओंमे ताक़ते-परवाज़[11] होना चाहिए॥

मैं बताऊँ मुझको तड़पाना अगर मंज़ूर है।
दिल-नवाज़ी भी शरीके-नाज़ होना चाहिए॥

बेकसी ऐ बेकसी[12]! आवाज़पर आवाज़[13] दे।
कोई तो शामे-अलम[14] दम-साज़[15] होना चाहिए॥

धुनके पक्के आगका दरिया पड़े तो झेल जाय।
आपको हम सरफिरों पर नाज़ होना चाहिए॥

मरनेको तैयार ही रहना नहीं काफ़ी 'असर'!
मिस्ले-बूए-गुल सुबुकपरवाज़ होना चाहिए॥

---

[1]उदार साकीने; [2]कुण्ठित; [3]स्मरण शक्ति क्षीण; [4]अभिमान, [5]भेदको; [6]संकेत करनेवाला, आँखों-आँखोंमे समझानेवाला, [7]प्रत्येक असफलताके बाद; [8]प्रारम्भ; [9]जीवनरूपी पक्षी; [10]लालायित; [11]बाहुओंमे उडनेकी शक्ति; [12]लाचारी; [13]तुम्ही आओ, पुकारो; [14]दु खोकी मध्यामे; [15]साथी।

साम्प्रदायिक विषैली हवाने हरा-भरा चमन वीरान करके रख दिया—

इक हवा ऐसी भी चलकर रह गई।
हर तमन्ना हाथ मलकर रह गई॥

या चटकती थी कली, या मुँहसे आज।
इक घुटी सिसकी निकलकर रह गई॥

कौन था बर्बादियोंपर खन्दाज़न[1]?
खुद मशीअ़त[2] भी सम्भलकर रह गई॥

आतिशे-ग़मसे लहूकी बून्द-बून्द।
आंसुओंके साथ जलकर रह गई॥

आगया था हर्फ़े-मतलब[3] ता-ब-लब[4]।
वह तो कहिए बात टलकर रह गई॥

अब हम चन्द इश्किया गजलोंके चुने हुए शेर बगैर किसी टिप्पणीके पेश कर रहे हैं—

तेरी अदाएँ दिलको लुभाएँ तो क्या करे?
आँखें न माने देखे ही जाये तो क्या करे?

हाँ वह सितम शआ़र[5] है, पैमाँ-शिकन[6] भी है।
फिर भी जो निकले दिलसे दुआएँ तो क्या करे?

माना कि आँसुओंका है पीना ही मस्लेहत।
आंसू जो फिर भी उमड़े ही आये तो क्या करे?

---

[1]हँसनेवाला; [2]ईश्वरीय इच्छा; [3]अभिलाषाके शब्द; [4]ओठों तक; [5]अत्याचार करनेका अभ्यस्त, [6]वादा भूलनेवाला।

कहना न चाहिए था जो उससे वही कहा।
जब तह न उसको बातको पायें तो क्या करे?

वह शोखियाँ कि जिनको हयासे हैं साजबाज।
बेताबियाँ जो दिलको सिखाये तो क्या करे?

ख़ामोश रहने पर तो है, यह बदगुमानियाँ।
ऐसेसे राज़े-दिल[1] न छुपाये तो क्या करे?

ख़ूने - हज़ार हसरतो - अरमाँके बावजूद।
उसकी नज़रमे हम न समाये तो क्या करे?

तस्लीम[2] है, कि शेवए-तस्लीम[3] यह नहीं।
शिकवे[4] जबाँ पे ख़ुद-ब-ख़ुद आये तो क्या करे?

गुंचे चटक-चटकके जो फ़स्ले-बहारमे।
भूले फ़साने याद दिलाये तो क्या करे?

तानोंका उसके जब न कोई बन पड़े जवाब।
मिर्ज़ा 'असर' जो सर न झुकाये तो क्या करे?

न तुम बदले, न दिल बदला, न रंगे-आस्माँ बदला।
न जाने क्यों नज़र आता है, फिर सारा जहाँ बदला॥

गुलोंको सरगराँ[5] देखा तो अन्दाज़े-फ़ुगाँ बदला।
मगर उसपर भी या क़िस्मत मिज़ाजे-बागबाँ बदला॥

न सोचा कोई क्या-क्या गुल खिलेंगे इसके पर्देमे।
चमनसे जब चमन और आशियाँसे आशियाँ बदला॥

---

[1]दिलका भेद; [2]मंजूर है, मानते है; [3]अदबका तरीका, सभ्य वर्ताव; [4]खफा, मस्त।

नज़र आती नहीं अब मंज़िले-मक़सूद[1] कोसोंतक।
यह किसने कारवाने-शौक़का[2] सगे-निशाँ[3] बदला॥

फ़क़त अपनी समझका फेर है, वर्ना यही देखा।
ज़ियाँ[4] भी सूद[5] था जब मरक़ज़े-सूदो[6]-ज़ियाँ बदला॥

बदले वह लाखबार ज़बाँ कुछ न पूछिए।
हाँमे मिलाये जाइए हाँ, कुछ न पूछिए॥

यूँ जलवागर[7] है, दिलमे ख़याले-जमाले-दोस्त[8]।
जैसे सहर सितारा फ़िशाँ कुछ न पूछिए॥

हर चन्द उसको मुनफ़इले-जौरकर[9] दिया।
दिल पै जो गुज़री बाद-अज़ाँ[10] कुछ न पूछिए॥

वह उसका आँख भरके इधर देखना 'असर'!
वह रुख़सते-शकेबो-तवाँ[11] कुछ न पूछिए॥

होशके बन्दे समझेंगे, क्या ग़फ़लत है, क्या हुशियारी।
अक़्लके बदले जिस दिन दिलकी जोत जगाकर देखेंगे॥

किससे कहिए और क्या कहिए, सुनने वाला कोई नहीं।
कुछ घुट-घुट कर देख लिया, कुछ शोर मचाकर देखेंगे॥

रश्के-मुहब्बत[12] वक़्ते-नज़ारा[13] यह भी गवारा[14] करता नहीं।
तै यह किया है, तुमसे भी तुमको अबसे छुपाकर देखेंगे॥

---

[1]यात्राका लक्ष, यात्रीके पहुँचनेका स्थान; [2]उत्साही यात्रीदलका; [3]लक्षतक पहुँचनेके मार्गके मीलके पत्थर; [4]नुकसान, [5]लाभ; [6]हानि-लाभका केन्द्र; [7]प्रकाशमान; [8]प्यारेके रूपका चिन्तन; [9]अत्याचारोपर शर्मिन्दा; [10]बादमे; [11]सामर्थ्य और सन्तोषका बिदा होना; [12]प्रेमकी स्पर्द्धा; [13]प्रियतमाको देखते समय; [14]सहन।

किसीने हाल जब पूछा तो यह हालत हुई अपनी।
नज़र भी झुक गई अपनी ज़बाँ भी रुक गई अपनी॥

जबीने-सिज्दामें[1] कौनैनकी वुसअ़त[2] समा जाये।
अगर आज़ाद हो क़ैदे-ख़ुदीसे बन्दगी[3] अपनी॥

वही मंज़िल है इरफ़ाँकी[4] वही मेअ़राज इन्साँकी[5]।
जहाँ मक़सूद[6] बन जाये ख़ुद अपना, ज़िन्दगी अपनी॥

न कुछ कहना न कुछ सुनना, फ़क़त मुँह तकते रह जाना।
फिर उसके बाद पछताना कि हसरत कह न दी अपनी॥

हर-इक नज़्मे-फ़लक[7] है, चश्मे-हैराने-तमाशाई[8]।
निछावर कर रहा है चाँद किसपर चान्दनी अपनी?

फ़क़त एक नीम-गुफ़्ता-हर्फ़[9] काफी था तसल्ली को।
मगर तुमने सुपुर्दे-शर्म कर दी दिल-दही अपनी॥

कहे तो हम कहे क्योंकर, सुने तो वह सुने क्योंकर।
उधर ख़ुदबीनियाँ[10] उनकी, इधर बेचारगी अपनी॥

ब-फ़ैज़े-इश्क़[11] आख़िर वोह मक़ामे-आगही[12] आया।
जहाँ महसूस होती है, हर-इक शैमे कमी अपनी॥

जिन्हे साहिलकी हसरत है, उन्हे साहिल मुबारक हो।
बग़ल-परवर्दए-तूफ़ाँ[13] 'असर' है ज़िन्दगी अपनी॥

---

[1]नत मस्तकमें; [2]विश्वकी विस्तीर्णता, [3]अहंभावसे रहित उपासना; [4]ईश्वरतक पहुँचनेकी; [5]मानवताका लक्ष; [6]उद्देश्य; [7]आकाशका नक्षत्र, [8]आश्चर्य्यचकित; [9]आधा अक्षर; [10]अपनी सार सम्हार; [11]प्रेमकी बदौलत; [12]अनुभव स्थान; [13]तूफानोकी बगलमें परवरिश पाई हुई।

ज़ाहिर हुआ[1] कि इश्क़ ही लैला-ए-हुस्न[2] था।
जब चश्मे-शौक़[3] पर्द-ए-महमिल[4] नहीं रही॥

आराइशे-मिज़ाके[5] लिए कुछ तो चाहिए।
क्या इक लहूकी बून्द भी ऐ दिल नहीं रही?

इक रहनवर्दे-शौक़का[6] अल्लाहरे इज़्तराब[7]।
जादा[8] नहीं रहा कभी मंज़िल नहीं रही॥

अच्छा है, डूब जाये सफ़ीना हयातका[9]।
उम्मीद आर्ज़ूओंका[10] साहिल[11] नहीं रही॥

पीना-न-पीना एक है, ज़ाहिद! ख़ता मुआफ़।
नीयत जब एतबारके क़ाबिल नहीं रही॥

दिलबरक़रार, हिम्मते-दिल बरक़रार है।
मुश्किल यह आ पड़ी है, कि मुश्किल नहीं रही॥

अब नाख़ुदाके नाज़ उठाये न जायेंगे।
जिस तिश्नगीका नाम था साहिल, नहीं रही॥

अभी है इश्क़मे इक शाइबा[12] तमन्नाका[13]।
अभी वह नशा कि जिसमे न हो ख़ुमार[14] कहाँ॥

किधर है ध्यान तेरा ऐ दिले-हविस-कुश्ता[15]!
सिवाय जब्रके उल्फ़तमे इख़्तियार कहाँ?

---

[1]ज्ञात हुआ; [2]प्रेम ही सौन्दर्य्यरूपी लैली; [3]प्रेमीकी दिव्य दृष्टि; [4]महमिलमे सकुचित; [5]पलकोंके शृंगारके लिए; [6]यात्रीका; [7]यात्राका चाव; [8]पगडंडी,; [9]जीवन-नौका; [10]उद्देश्योंकी पूर्तिका; [11]किनारा (चाव); [12]अंश सम्मिश्रण; [13]आकांक्षाका; [14]नशेके उतारकी स्थिति; [15]वासनाओंके शिकार।

मिज़ासे[1] टपके हुए ख़ने-आर्ज़ूकी क़सम।
ख़बर नहीं कि घर आई, गई बहार कहाँ॥

बतादे अपनी ही रहमतका वास्ता तुझको।
पनाह ढूंढने जाये गुनाहगार कहाँ?

किनाराकश रहे तेरे तवाफ़े-दामनसे[2]।
सिवा 'असर'के किसी औरका ग़ुबार कहाँ॥

हुजूमे-यास-ओ-ग़म[3] बेहिसाब क्या मानी।
कनारे-शबमें[4] न हो आफ़ताब[5] क्या मानी॥

असीर अपनी ख़ुदीके[6] कभी समझ न सके।
बग़ैर बहर नमूदे-हुबाब[7] क्या मानी॥

यह किसने दर्द भरा है, नवाए-बुलबुलमें[8]?
बहार और गुलोंका शबाब क्या मानी॥

कोई तो रब्त, है नाज़ो-नियाज़में[9] वर्ना।
निगाहे-शौक़से[10] तेरा हिजाब[11] क्या मानी॥

गुनाहगार हूँ इक़रार है, गुनाहोंका।
सज़ा दे, यह सरे-महशर, हिसाब क्या मानी?

तो क्या यह समझूँ कि तजदीदे-अहद[12] भी होगी।
तो फिर यह पुरसिशे-हाले-ख़राब[13] क्या मानी॥

---

[1]पलकोंके बालोंसे; [2]दामनकी परिक्रमासे; [3]निराशा और दुखोंकी भीड़; [4]रातमें, [5]सूरज; [6]अहमन्यताके बन्दी; [7]दरियाके बिना बुलबुले उठना, [8]बुलबुलकी आवाजमें, [9]आशिको-माशूक़में, अभिमान और नम्रतामें, [10]आशिककी निगाहोंमें; [11]पर्दा-छिपाव; [12]वादेकी फिरसे शुरूआत; [13]खस्ता हालतकी पूछ-ताछ।

किधर है, ध्यान तेरा अम्नो-ऐशके जूया[1] !
हयात[2] बे-ख़लिशे-इज़्तराब[3] क्या मानी ॥

नहीं जो ग़ैरकी तो नफ़्सकी ग़ुलामी है।
यह देखनेका फ़क़त इन्क़लाब क्या मानी ॥

ज़रूर मोतकिफ़े-ख़ानक़ः[4] थे आप 'असर' !
मगर यह ख़िरक़ा ओ-दामे-शराब क्या मानी ॥

मुहब्बतकी अल्लाहरी पर्दादारी।
तमन्ना-तमन्नाकी महरम[5] नहीं है ॥

ख़फ़ा तो न होगे जो इक़बार पूछे।
वोह है, कौन वादा जो मुबहम[6] नहीं है ?

मुहब्बत है वह दर्द जिसका मदावा[7]।
ब-ज़ाहिर[8] बजुज़-काहिशे-ग़म[9] नहीं है ॥

उसे टोककर कहदे कहना है जो कुछ।
दिले-ज़ार इतना भी क्या दम नहीं है ॥

वही जीने वाले वही मरने वाले।
तेरी दिलबरीका वह आलम नहीं है ॥

न जाने किधर जा रही है, यह दुनिया।
किसीका यहाँ कोई हमदम नहीं है ॥

---

[1]सुख-चैनके इच्छुक, [2]ज़िन्दगी, [3]चुभन और तड़पनेके बिना; [4]मस्जिदमें; [5]जानकार, [6]अस्पष्ट गोल-गोल; [7]इलाज; [8]प्रकट रूपमें; [9]दुःखोंको कम करनेवाला।

बहम्दिल्लाह[1] क़रीबतर हिम्मते-दिल[2] होती जाती है।
रसाई ता-ब-मंज़िल[3] जितनी मुश्किल होती जाती है॥

यही मशा था शायद नाख़ुदाकी[4] कम निगाहीका[5]।
तलब साहिलकी[6] रफ़्ता-रफ़्ता साहिल[7] होती जाती है॥

नया साक़ी, नये मैकश, नये मुतरिब[8], नये नग़मे।
नये अन्दाजसे तरतीबे-महफ़िल होती जाती है॥

इसीको इस्तलाहे-इश्क़में[9] जन्नत भी कहते हैं।
वह इक लज़्ज़त जो दर्दे-दिलमे शामिल होती जाती है॥

एक-इक जज़्बए-दिल हुस्नका दफ़्तर निकले।
इश्क़का राज अगर पर्देसे बाहर निकले॥

पार होता है, मुहब्बतमे उसीका बेड़ा।
डूबकर अपने लहूमे जो शनावर[10] निकले॥

शबनम आलूदगिए-गुल भी फ़साना हो जाए।
अश्के-ख़ूँ एक तो ऐसा मिज़हतर निकले॥

हाँ मे हाँ भी जो मिलाओ तो वह कहता है 'असर'!
"बात करते हो वही जिसमें कोई शर निकले॥"

ख़याले-तौबा[11] जब आया उसी असलूबसे[12] आया।
कि मस्ती बेनियाज़े-बादा-ओ-पैमाना[13] हो जाये॥

---

[1]ईश्वर जानता है; [2]दिलकी हिम्मत मजबूत; [3]निश्चित लक्ष्यतक पहुँचनेकी; [4]मल्लाहकी; [5]उपेक्षाका; [6]किनारे पहुँचनेकी इच्छा; [7]किनारे, मिटती जाती है; [8]सगीतज्ञ; [9]प्रेमकी भाषामें; [10]तैराक [11]शराब न पीनेकी प्रतिज्ञाका ध्यान; [12]ढंग, तरीके से; [13]मद्य और मद्य-पात्रमे बेखबर।

चमन ऐसा बहार ऐसी हवाए-ख़ुश गवार ऐसी।
क़यामत है कि ख़ाली रिन्दका पैमाना हो जाये॥

अभी मैखानए-दो।दार[1] हर ज़र्रेमें[2] खुलता है।
अगर इन्सान अपने आपसे बेगाना[3] हो जाये॥

जो बात थी होनी होके रही, नाशाद भी है बर्बाद भी है।
कुछ तुम भी सहारा दे न सके कुछ हम भी सम्भलना भूल गये॥

यह ऐशके बन्दे सोते रहे, फिर जागे भी तो क्या जागे।
सूरजका उभरना याद रहा और दिनका ढलना भूल गये॥

बेताब निगाहोका अपनी उस रुखपै समाँ जब याद आया।
तो आरिज़े-गुल पै रह-रह कर शबनमका मचलना भूल गये॥

आँखमें अश्के-नदामत[4] डब-डबाकर रह गये।
हम यूँ ही अक्सर दुआको हाथ उठाकर रह गये॥

कितने ही शिकवे ज़बाँपर आये, आकर रह गये।
कुछ न कहते बन पड़ा गर्दन झुकाकर रह गये॥

कैसी तस्कीं[5]? बेक़रारीमें इज़ाफ़ा[6] हो गया।
हाथ वह नज़दीक दिलके लाये, लाकर रह गये॥

तंग था जिसके लिए हर्फ़े-बयाँका दाइरा[7]।
वह फ़साना हम ख़मोशीमें सुनाकर रह गये॥

उन पै हँसिए शौक़ए जो माइले-फ़रियाद[8] है।
उनसे डरिए जो सितमपर मुसकराकर रह गये॥

---

[1]दृष्टिरूपी मदिरालय; [2]प्रत्येक अणुमे; [3]अहभावसे रहित; [4]शर्मिदगीके आँसू; [5]तसल्ली; [6]बढौतरी; [7]शब्दोंके बयान करनेका क्षेत्र सकीर्ण था; [8]फरियाद करनेके आदी।

आह उन तारोंकी ख़ूंगश्ता[1] तमन्नाए-नमूद[2]।
जो उभरते ही उफ़क़से[3] झिलमिलाकर रह गये॥

इन्तज़ारे-दोस्तमे शमएँ जलाई रातभर।
शमएँ जब बुझने लगी आँसू बहाकर रह गये॥

खुद-परस्तोंसे कही हक़बात जब कोई 'असर'!
मानना तो इक तरफ़, त्योरी चढ़ाकर रह गये॥

बक़द्रे-होश है, ग़फ़लत किसीको क्या मालूम।
बशरकी हद्दे-जहालत किसीको क्या मालूम॥

हुबाब[4] देख लिया, आबगीना[5] देख लिया।
शिकस्ते-दिलकी[6] नज़ाकत किसीको क्या मालूम॥

चमनमे फूल तो खिलते सभीने देख लिये।
सिसकते ग़ुंचेकी[7] हालत किसीको क्या मालूम॥

निशात जोशिए-निकहतकी[8] है, ख़बर सबको।
तबाह कारिए-निकहत किसीको क्या मालूम॥

जो आँखसे किसी मज़लूमकी[9] टपकता है।
उस अश्के-ग़मकी सरायत[10] किसीको क्या मालूम॥

ख़याल, जिसमे है, परतव जमालका[11] तेरे।
उस इक ख़यालकी रफ़अत[12] किसीको क्या मालूम॥

---

[1]लहूमे डूबी; [2]उभरनेकी आकांक्षाये, [3]आकाशमे; [4]बुलबुला; [5]शीशा, [6]दिल टूटनेकी, [7]कलीकी, [8]सुगन्धके जोशकी और खुशीकी; [9]अत्याचार-पीडितकी; [10]असर, प्रभाव; [11]सौन्दर्य्यकी झलकका चिन्तन; [12]ऊंचाई।

मिज़ातक[1] आके जो पलटा वफ़ूरे-ग़ैरतसे[2]।
उस अश्के-यासकी[3] क़ीमत किसीको क्या मालूम॥

जब अपने नफ़्सपर[4] इन्सान फ़तह पाता है।
जो गीत गाती है, फ़ितरत[5] किसीको क्या मालूम॥

नियाज़े-इश्क़की[6] ऐसी भी एक मंज़िल है।
जहाँ है शुक्र शिकायत[7] किसीको क्या मालूम?

मुझे ख़ुद अपनी मुहब्बतसे अब मुहब्बत है।
यह लुत्फ़े-रश्को-रकाबत[8] किसीको क्या मालूम?

आ, कि ख़त्म होती है, इन्तज़ारकी घड़ियाँ।
रगे-शब परीदा[9] है, सब्र पा बजौलाँ[10] है॥

वहमकी परिस्तारी[11] देखने नहीं देती।
वर्ना एक-इक ज़र्रा जल्वाज़ार इरफ़ाँ[12] है॥

इश्ककी वह मंज़िल है, मीरज़ा 'असर'! जिसमें॥
दोन है, न दुनिया है, कुफ़्र है, न ईमाँ है॥

बेगानगीकी[13] तुमसे शिकायत नहीं मुझे।
मालूम ख़ुद भी अपनी हक़ीकत नहीं मुझे॥

जबसे हुआ हूँ, दर्दे-मुहब्बतका[14] राज़दाँ[15]।
है, कौन ग़म जो वजहे-मसर्रत[16] नहीं मुझे॥

---

[1]पलकोंतक; [2]ग़ैरतकी अधिकताके कारण; [3]निराश आँसूकी; [4]इन्द्रियवासनाओंपर; [5]प्रकृति; [6]प्रेम मार्गकी; [7]आभार प्रकट करना, बुरा लगता है; [8]प्रेमस्पर्द्धाका आनन्द; [9]रात्रि परी जैसी सुन्दर; [10]सब्र बन्दी है; [11]पाखण्ड-पूजा; [12]एक-एक कण, सत्यसे प्रकाशवान; [13]उपेक्षाकी, गैर समझनेकी; [14]प्रेम-रोगका; [15]परिचित; [16]सुख-चैनका कारण।

मारा हुआ हूँ दीदए-इबरत-शनासका[1]।
परवाए-रंजो-ख्वाहिशे-राहत नहीं मुझे॥

आईनए-ख़यालमे हूँ, जलवागर कोई।
हँगामा हाए-शौकको फ़ुर्सत नहीं मुझे॥

तेरे दरके जबसे गदा[2] हो गये हम।
बड़े ख़ुदनुमा, ख़ुदसिता हो गये हम॥

मुहब्बतमे तेरी गिरफ़्तार[3] होकर।
हर-इक रंजो-ग़मसे रिहा हो गये हम॥

न पाया कोई क़द्रदाँ जब वफ़ाका।
ख़ुद अपनी वफ़ापर फिदा[4] हो गये हम॥

मुहब्बतमे ऐसा भी इक दौर गुजरा।
नजर उसने फेरी ख़फ़ा होगये हम॥

करमपर[5] भी होता है धोका सितमका।
यहाँ तक अलम-आश्ना[6] हो गये हम॥

रही बेकसीमे[7] भी इतनी तो ग़ैरत[8]।
जो शल[9] हो वह दस्ते-दुआ[10] हो गये हम॥

हया जिसको रुख़सत[11] न दे इल्तजाकी[12]।
निगाहोंको वह इल्तिजा[13] हो गये हम॥

---

[1]शिक्षा ग्रहण करनेवाली आँखोका; [2]फकीर; [3]न्योछावर, कुर्बान; [4]महर्बानीपर; [5]दुःखोके अभ्यस्त; [6]मजबूरीमे भी; [7]स्वाभिमान, हया; [8]व्यर्थ, स्थिर; [9]दुआ माँगनेवाले हाथ; [10]इजाजत, छूट; [11]चाहत प्रकट करनेकी; [12]प्रार्थना।

'असर' उसकी पुरसिश[1] पै जाने हुआ क्या।
सदाए-दिले-बेनवा[2] हो गये हम॥

सर झुकाकर कुछ कहा शर्मा गये।
दिलदेहीको[3] आये थे तड़पा गये॥

जुर्म ठहरा है, वफ़ाका ज़िक्र भी।
हम सज़ा अपने किये की पा गये॥

मैकदा[4] जन्नत है, इतनी बात थी।
जिसको वाइज़ तूलसे[5] फ़र्मा गये॥

कुछ नशेमन तो गुलोंसे छा गये।
और कुछ बिजलीकी ज़द्में आ गये॥

आपकी बातें हैं उसका मशग़ला[6]।
आप बातोंमें जिसे बहला गये॥

आने वाले आ, कहाँ तक इन्तज़ार?
चाँद डूबा तारे भी कजला गये॥

मदर्में तक ही थीं बहस आराइयाँ।
चुप लगी जब बातकी तह पा गये॥

हुस्न अपनी करिश्मा साज़ीसे।
बेख़बर और इस क़दर उफ़! उफ़!!

जैसे नरगिसकी अधखिली हो कली।
दीदए-पुरख़ुमार[7] अरे तौबा॥

---

[1]हाल-पूछनेपर; [2]मौन हृदयकी आवाज; [3]सान्त्वना देने; [4]मदिरालय, [5]विस्तारपूर्वक, [6]चर्य्या, कार्य; [7]नशीली आँखें।

वह जवानी कि खुद जवानीको।
जिसपर आ जाये प्यार अरे तौबा॥

दिल नहीं अब 'असर' है पहलूमें।
हसरतोंका मजार अरे तौबा॥

उन पदलोलुपोंपर कितना तीखा व्यंग्य है, जो योग्यता न रखते हुए भी शासनकी बागडोर सम्भालना चाहते हैं—

जो रम्ज़-शनास[1] ख़िज़ाँका नहीं, वह ख़ाक बहारे लूटेगा।
यह बेख़बरी[2] उसपर यह हविस[3], गुलशनका इजारा[4] होजाये॥

चुपके-से नाम लेके तुम्हारा कभी-कभी।
दिल डूबने लगा तो उभारा कभी-कभी॥

अहदे-फ़िराक़[5] यूं भी गुज़ारा कभी-कभी।
ज़ुल्फ़े-उरूसे-ग़मको[6] सँवारा कभी-कभी॥

ढूढा है बेकसीका सहारा कभी-कभी।
यह जब्र भी किया है गवारा कभी-कभी॥

मैंने तो होंट सी लिये इस दिलको क्या करूँ।
बे-इख़्तियार तुमको पुकारा कभी-कभी॥

सिर्फ़ इसलिए कि दिलशिकनी हो न दोस्तकी।
एहसान कर लिया है गवारा कभी-कभी॥

कतराके एक मौज यह कहती निकल गई—
"साहिलसे मस्लेहत है, किनारा कभी-कभी॥"

---

[1]पतझड़के कारणोंका ज्ञाता नहीं, [2]अज्ञानता; [3]तृष्णा; [4]बागपर कब्जा; [5]विरह-काल; [6]दुःखरूपी दुल्हनकी जुल्फोंको।

ऐ शाहिदे-जमाल! कोई शक्ल है कि हो।
तेरी नजरसे तेरा नजारा कभी-कभी॥

रहमत करे क़बूल तो बेवास्ता कुबूल।
रखते हैं दूर अपनी दुआको असरसे हम॥

शायद खुले कि हुस्न है, क्या और इश्क़ क्या।
ऐ काश तुझको देखले तेरी नजरसे हम॥

इस इल्तिफाते-खासके[1] क़ुर्बान जाइए।
खोये हुए-से वह हे तो कुछ बेखबर-से हम॥

इससे तो डूबना कहीं बेहतर है नाखुदा!
खाशाक[2] बनके गुजरे जो मौजे-खतरसे[3] हम॥

जो कुछ तेरी रया कहे, लेकिन खता मुआफ़।
जो काम है, नजरका न क्यों ले नजरसे हम॥

आया जो वक़्त सो गये, या था यह वलवला।
दुनिया नई बसायेंगे ताजा सहरसे[4] हम॥

जितनी राहतकी तलबगार[5] हुई जाती है।
जीस्त[6] इक पैकरे-आजार[7] हुई जाती है॥

किस तरह तेरी मुहब्बतको छुपाये रखिए।
खामुशी भी लबे-इजहार हुई जाती है॥

नींदमें तुझको जो मलते हुए आँखें देखा।
हर कली दीदए-बेदार[8] हुई जाती है॥

---

[1]विशेष कृपाओंके; [2]तिनकेके समान, [3]भयावह लहरोंसे; [4]सुबह होते ही; [5]आरामकी आर्दा; [6]जिन्दगी; [7]मुसीबतका आकार; [8]खिली हुई-सी दिखाई देती है, जगी हुई आंखें।

आदमीयत कि थी दिलदादा[1] मुहब्बतकी 'असर'।
अब वह नफ़रतकी परिस्तार[2] हुई जाती है॥

जनाबे-शेख मैकशीमें आड़ लेके खुल्दकी[3]।
सिनाए-बादामें[4] हुए हैं, गुलफ़िशाँ[5] कहाँ-कहाँ॥

यह महवियत[6] भी होती है कि उनका नाम आते ही।
लबों पर अक्सर आगया है, नागहाँ[7] "कहाँ-कहाँ"?

स्याह बादलोंमें जैसे चाँद हो छुपा हुआ।
खुशो मिली निहाँ गमोंके दरमियाँ कहाँ-कहाँ?

खुदा कहो, खुदा कहा, मगर न आये राह पर।
मिलाए जाइये, बुतोंकी हाँ-में-हाँ कहाँ-कहाँ॥

वह आस्ताँ[8] तो इक तरफ़ न उसकी रहगुज़र[9] मिली।
रवाँ-दवाँ[10] सितारोंके हैं, कारवाँ[11] कहाँ-कहाँ?

तूफ़ाँसे खेलना अगर इन्सान सीखले।
मौजोंसे आप उभरे किनारे नये-नये॥

तहजीबकी हवा भी जिन्हें छू नहीं गई।
पैदा हुए हैं राज-दुलारे नये-नये॥

हर नफस[13] है निशातसे लबरेज[14]।
तर्क जिस दिनसे इख्तियारमें[15] है॥

---

[1]अनुरक्त; [2]उपासक, [3]जन्नतके बहाने; [4]शराबकी प्रशंसामें, [5]कैसे बहके हैं (मुँहसे फूल झड़े हैं); [6]तल्लीनता; [7]अकस्मात, व्यर्थ; [8]छुपी हुई, [9]स्थान; चौखट; [10]राह; [11]चलनेमें उत्साहित; [12]यात्री-दल; [13]स्वास; [14]सुख-चैनसे भरपूर; [15]त्यागकी महिमा जबसे समझी, जब जी चाहे त्याग कर दे।

जिससे मस्तानावार गुज़रा इश्क़।
मस्ती उस राहके ग़ुबारमें है॥

सीना कावीके[1] साथ-साथ 'असर'!
एक लज़्ज़त भी इन्तज़ारमें है॥

लिल्लाह न हँस उनपर जो आपेसे बाहर हैं।
क्या जानिए क्या समझें दीवाने-तो-दीवाने॥

समझाते थे वह जितना हम और तड़पते थे।
वह रूठ गये आख़िर जो आये थे समझाने॥

एक गीतका आधा अंश

देश-विदेश

इठलाती बलखाती नदी, सागरसे चली है मिलनेको।
लिपटी हुई ठाठरसे जूही करती है इशारे बेलेको॥
बिजलीको लगावट देखे कोई, मतवाले रसीले बादलसे।
अँगड़ाई भी हँसकर तोड़ गई मुखड़ेको छुपाते आँचलसे॥
जंगलमें मोरैला चिंघाड़ा और छम-छम नाचा मस्तीमें।
धरतीने भी ठट्ठा मारा इक गूँज-सी फैली बस्तीमें॥
साजन है, महीना सावनका।

उँह, चाहिए किसको धन-दौलत, सोना-चाँदी गहना-पाता।
बलिहारी गई सब कुछ पाया, तू मुझको अकेला छोड़ न जा॥
साजन है महीना सावनका॥

---

[1]रुदन, छाती कूटनेके।

वह झाँझ बजे, मिरदंग बजे, और चोट पड़ी वोह नगारों पर।
मैं बिरहाकी मारी दुखियारी लोटती हूँ अंगारों पर॥
साजन तो सिधारे बिदेस सखी!

हमजोलियाँ मिल-मिल गाती हैं, और चुहलें करती जाती हैं।
पी-पास हैं और वह पीकी सुहागन क्या-क्या धूम मचाती हैं॥
इक मैं हूँ सताई पीतमकी इक मैं हूँ जिसे आराम नहीं।
रोना भी तो घुट-घुटके रोना और इसके सिवा कुछ काम नहीं॥
साजन तो सिधारे बिदेस सखी!

चन्द नज्मोंके नमूने

वतनके सूरमा

क्या ही आरामसे वह सोते हैं।
जो वतनपर निसार[1] होते हैं॥

फूल बरसाती है, बहार आकर।
साजपर निकहतोंके[2] गा-गाकर॥

अपनी जुल्फोंसे साफ करके मजार[3]।
बरकतें माँगती है बादे-बहार[4]॥

चान्दनी रोशनी है चादरको।
मोती शबनमके[5] हैं निछावरको॥

जो शगूफ़ा है, रंगे-सामाँ है।
अब सितारे नहीं चिराग़ाँ है॥

---

[1]बलिदान; [2]सुगन्धित-वाद्यपर; [3]क़ब्र; [4]बहाररूपी हवा; [5]ओसके।

खुश हैं, उनके शआरसे क्या-क्या।
तकती रहमत है, प्यारसे क्या-क्या॥
कितनी रंगी है, उनकी क़ुर्बानी।
हूरें करती हैं फातेहा-ख्वानी॥
इज्जत आकर तवाफ़[1] करती है।
दम बफ़ाओंका उनकी भरती है॥
देके आशीर्वादे - आज़ादी।
उनके गुन गाती है वसद शादी॥
सरज़मीं जो लहूसे सींची गई।
क्यों न पाइन्दा हो बहार उसकी॥
कौन कहता है, मर गये वह लोग।
मौतको जिन्दा कर गये यह लोग॥

साराए-जंग

चले चलो, घरोंको अपने छोड़कर
सुनेहरी रिश्ते, उल्फ़त, और दोस्तीको तोड़कर।
लड़ो वतनके वास्ते, खवा-खवेसे जोड़कर
सफ़ोंको[2] तोड़-फोड़ दो, कलाइयाँ मरोड़कर।
ख़ुदा न ख्वास्ता कहीं यह पाक सरज़मीं
बुज़ुर्गोंकी यह ख्वाब - गह।
नजिस[3] ग़नीमके क़दमसे[4] हो
लड़ो और इस तरह लड़ो
अदू[5] कहे यह हार कर।
पछाड़ें[6] मार - मारकर—
"न जनती काश ऐसे वीर पूत माँएँ हिन्दकी"।

---

[1]परिक्रमा; [2]शत्रु-पंक्तियों; [3]अपवित्र; [4]शत्रुओंके पाँवोंसे; [5]शत्रु; [6]पछाड़ खा-खाकर।

पलटके आओ इस तरह
दरस[1] दिखाओ इस तरह।
तुलूअ[2] आफ़ताब[3] हो
सहरके वक़्त[4] जिस तरह।
उमग है तरंग है
तरग है उमग है।
जो शेवा[5] फ़ातहोंका है
बहादुरोंका ढग है।
जो यूं हो जग-जग है
वगर्ना बज़हे-नंग[6] है।
अगर न आओ इस तरह
तो फिर वहींके हो रहो।

लहू भरे लिबासमे वतनसे दूर सो रहो
वतनसे दूर सो रहो लहू भरे लिबासमे।

जो पीछे रह गये हैं, वह जईफ़, बूढ़े, नातवां[7]
ग़रीब रोगी, नीमजां[8] भुगत ही लेंगे सख्तियाँ।
ग़मोंकी तीरह रोजियां[9], मुसीबतोंकी तल्खियाँ
तुम्हारा इम्तहाँ वहाँ, हमारा इम्तहां यहाँ।
खिज़ाब होने दो लहूसे यह सफ़ेद दाढियाँ।
नहीं-नहीं ! कभी नहीं

तो फिर बढ़े चलो कि मौत खुद है पासबां[10]।

---

[1]सूरत, मुख, [2]सूरज निकलना है; [3]सुबहके वक़्त; [4]विजेताओंका, कर्तव्य; [5]बदनामीका कारण; [6]निर्बल; [7]अर्द्ध-मृतक; [8]दुःखरूपी अंधेरे, [9]रक्षक।

चले चलो, चले चलो
वतनको और दोस्तोंको छोड़कर।
सभीसे मुँहको मोड़कर
तुम्हारे दोस्त और अज़ीज़।
तुम्हारे खेत और घर
तुम्हारी यादसे बसे।
जो उजड़े भी न उजड़ेंगे
ख़याल इस क़दर रहे।
ख़ुदा न ख़्वास्ता कहीं, यह पाक सर ज़मीं।

बुज़ुर्गोंकी यह ख़्वाबगह
नजिस ग़नीमके क़दमसे हो।

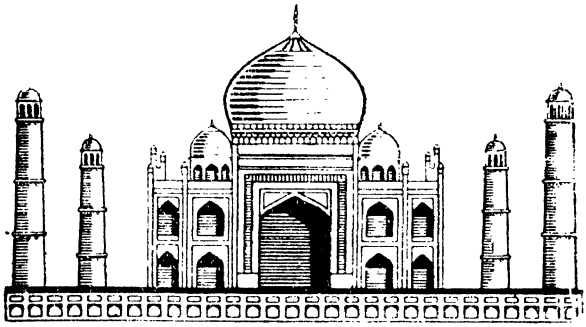
१० अप्रैल १९५७ ई०]

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—२१

शेर-ओ-सुख़न

पाँचवाँ भाग

प्राचीन और वर्त्तमान ग़ज़ल-गोईपर तुलनात्मक
अध्ययन, हरजाई, बेवफ़ा, ज़ालिम माशूक़के
एवज़ नेक और पाक हबीबका तसव्वुर,
रोने-बिसूरनेकी प्रथा बन्द, रंजो-ग़मका
मुसकानभरा स्वागत
निराशावादका अन्त



यह शाइरी नहीं है, तमन्नाकी क़ब्रपर।
तामीर एक ताजमहल कर रहा हूँ मैं॥

—अख़्तर अनूसारी

ज़रूरी

१—प्रस्तुत पाँचवें भागमें उर्दूके प्रारम्भसे १९५७ ई० तककी ग़ज़लका इतिहास सम्पूर्ण हो गया है।

२—अब इससे आगे—नज़्म, रूबाई, मर्सिया, गीत आदिका क्रम-बद्ध इतिहास और इनके सर्वश्रेष्ठ शाइरोंका परिचय एवं कलाम तैयार हो रहा है, जो कि **'शाइरीके नये दौर'** और **'शाइरीके नये मोड़'** शीर्षक पुस्तकोंमें सम्भवतः आठ भागोंमें समाप्त होगा। इन ग्रन्थोंकी रूप-रेखाका किंचित् आभास पाँचवें भागके अन्तमें दी हुई दो पृष्ठोंकी विज्ञप्तिसे हो सकेगा।

३—उन ख्याति-प्राप्त ग़ज़ल-गो शाइरोंका परिचय भी उक्त नवीन पुस्तकोंमें मिलेगा, जिनकी आयु ५० से अधिक नहीं है। यानी जो इसी बीसवीं शताब्दीमें उत्पन्न हुए और १९२० के बाद १९५७ तक किसी भी अवधिमें प्रसिद्ध हुए। अथवा अपने रंगे-सुख़नके कारण वयो-वृद्ध होते हुए भी नये युगके शाइरोंमें जिनका शुमार है। क्योंकि 'शेरो-सुख़न' में प्राचीन शाइरोंके अतिरिक्त स्वर्गस्थ अथवा वयोवृद्ध वर्त्तमान-युगीन उन्हीं शाइरोंका उल्लेख हुआ है, जिनकी आयु ५० से अधिक है, यानी जो १९वीं शताब्दीमें पैदा हुए और १९२० ई० के लगभग उस्तादीके मर्त्तबेको पहुँच गये। इनसे कम आयुके नज़्म-गो एवं ग़ज़ल-गो शाइरोंका परिचय **'शाइरीके नये दौर'** और **'शाइरीके नये मोड़'** ग्रन्थोंमें होगा। इतिहासकी सुरक्षाकी दृष्टिसे पुरानोंके साथ नयोंकी खलत-मलत मुझे उचित प्रतीत नहीं हुई। युगानुसार और क्रमवार परिचय देना ही उपयुक्त जँचा।

४—'शेरो-सुख़न' ग़ज़लका इतिहास है। लेकिन उसमें चन्द ऐसे

शाइरोंका भी परिचय एवं कलाम दिया गया है, जो ग़ज़ल और नज़्म दोनों कहते हैं। क्योंकि वे अपनी आयु अथवा ख्यातिके लिहाज़से इसी युगके शाइर हैं। यथास्थान उनकी १०-५ नज़्मोंके नमूने भी दे दिये गये हैं।

५—'शेरो-शाइरी' और 'शेरो-सुख़न' में केवल १४ हिन्दू शाइरोंका उल्लेख हुआ है। वर्त्तमान युगीन अनेक ख्यातिप्राप्त हिन्दू शाइरोंका परिचय 'शाइरीके नये दौर' और 'शाइरीके नये मोड़' में संकलित किया जा रहा है और पुराने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शाइरोंके कलामकी खोज भी की जा रही है। उन सबका परिचय किसी भिन्न ग्रन्थमें देनेका प्रयास किया जायगा।

डालमियानगर
१ जुलाई १९५४ ई०

द्वितीय संस्करणके लिए

पसन्द अपनी-अपनी, समझ अपनी-अपनी

शेरो-सुख़नके पाँचों भागोंमें अनेक स्थलोंपर प्रसंगवश तीखी आलोचनाएँ भी हुई हैं। जिसे शेअ्र समझनेका शऊर नहीं, बज़्मे-अदबमें बैठनेका सलीक़ा नहीं, फिर भी उनके कलामपर लबकुशाई करे ? बौना होकर भी हिमालयपर चोट करनेकी जुरअत ! लाहौल वलाक़ूवत.....

बक गया हूँ जुनूँमें क्या-क्या कुछ
कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई
—ग़ालिब

अणुकी क्या विसात जो सूर्य्यके प्रकाशको धूमिल बता सके ? आन्धी-तूफानके क्षणोंमें सूर्य्य-प्रकाश किसीको धूमिल प्रतीत होने लगे तो इससे सूर्य्यकी गरिमा कम नहीं हो जाती। ग़ज़लका विश्लेषण करते हुए उसपर तत्कालीन शासकों, रीति-रिवाजों, वातावरण आदिका क्या प्रभाव पड़ा, उसकी प्रगतिमें कौन सहायक और कौन बाधक हुए ? उसके उत्थान एवं पतनके क्या कारण थे। लखनवी-देहलवी स्कूलोंकी स्पर्द्धाने उसे क्या लाभ और क्या नुक़सान पहुँचाया ? प्रसंगवश स्पष्टीकरण करते हुए यथास्थान मधुर और कटु उल्लेख हुए हैं।

उनके कलामरूपी समुद्रको मन्थन करनेपर जो कुछ पाया है उसे शेरो-सुख़नके पृष्ठोंमें सँजो दिया है। बक़ौल ग़ालिब—

रूए-सुख़न किसीकी तरफ़ हो तो रूस्याह।
सौदा नहीं, जुनूँ नहीं, वहशत नहीं मुझे॥

कौन शेअ्र अच्छा है और कौन बुरा ? यह परख आसान नहीं।

शाइराना कलामसे साधारण-सी बातमें भी चार चाँद लग जाते हैं और गैर शाइराना अन्दाजसे कही गई बडी-से-बडी बात भी दो कौड़ीकी हो जाती है। सिद्धहस्त कलाकार नग्न मूर्तिमें भी वह प्रभाव उत्पन्न कर देता है कि दर्शक देखते ही आत्म-विभोर हो जाये। बडे-से-बडा मूर्ति-भजक भी मस्तक झुकानेको बाध्य हो जाये और अनाडी पूज्यनीय व्यक्तियोंके भी ऐसे चित्र बना देता है, जिन्हे कौडीके तीन-तीन भी नही पूछा जाता। शेअरकी अच्छाई-बुराई परखते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि शाइरने अमुक शेअर किस वातावरणमें, किस परिस्थितिमें कहा। क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल, वातावरण आदि शाइरीके निर्माणमें बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं।

सन् १९२३ की मेरे सामनेकी घटना है। ६-७ मित्र पिकनिकके लिए दिल्लीसे कुतुबमीनार गये हुए थे। खाने-पीनेके बाद लतीफों और शेअरो-शाइरीका भी दौर चला। तभी एक हजरतको लनतरानीकी जो सूझी तो यह मिसरअ—

ओढ़ा गया न तुससे दुपट्टा सम्भालके

देकर बोले—"जो इसपर पाँच मिनटमें गिरह न लगाये, वह रण्डीका।"

गाली सुनी तो एक सज्जन जो बहुत ही भद्र, सभ्य और मितभाषी थे, मारे गैरतके उनके मुँहसे अनायास निकल गया—

जूता जो हमने तेरे लगाया निकालके।
ओढ़ा गया न तुझसे दुपट्टा सम्भालके॥

शेअरका सुनना था कि यार लोगोंने कहकहोंसे आस्मान सरपर उठा लिया। दादका वह रेला था कि थम नही पा रहा था। क़िस्म-किस्म-की हाशियाआराइयाँ होने लगी। किसीने कहा—"क्यों यार, देसी लगाया या विलायती?" तो किसीने तुरप जड़ी—"क्यों साहब बस एक ही?"

और वे मिसरेबाज हैं कि कटे जा रहे हैं और झेंप मिटानेके लिए दाद देनेमें सबसे पेश-पेश हैं।

अब देखिए न यह शेअर है न शेअरकी दुम। मगर मौकेपर इसीने सबकी आबरू रख ली। अब कोई साहब उक्त तुकबन्दीको उन सज्जनके नामसे चस्पाँ कर दें तो उस गरीबके पास सर फोड़ लेनेके सिवा और चारा भी क्या है ?

प्रायः सभी लेखकों और शाइरोंको प्रसगवश कविके विपरीत भी कभी-न-कभी कहना पड़ जाता है।

दोस्तोंका मजमअ लगा हुआ है। एक-से-एक बढ़कर बेतुकत उड़ रहा है। हास्य-परिहास चल रहा है। ऐसे वातावरणमें मौलवियाना रग-ढंग कोई कबतक इख्तियार कर सकता है। विवाह-शादी, मेले-तमाशे, तफरीही मजलिसों-पिकनिकों आदिमें हर शख्स अपनी जोलानीये तबिअत-का परिचय देना चाहता है। बड़े-से-बड़े गम्भीर व्यक्तिके मुखसे भी ऐसे विनोदी वाक्य निकल जाते हैं कि जिनकी उनसे कभी आशा नहीं की जा सकती। आखिर इन्सान-इन्सान है। न वह चौबीसों घण्टे कुरआनकी तिलावत ही कर सकता है और न गीता-रामायणका अखण्ड पाठ। हर व्यक्तिको जीवनमें आमोद-प्रमोदकी आवश्यकता है।

'रियाज' खैराबादी दोस्तोंके मजमेमें बैठे हुए हैं। खुश गप्पियाँ चल रही हैं। हाजिर जवाबीके नये-से-नये जुमले तराशे जा रहे हैं। तभी एक दोस्त यह मिसरअ देकर रियाजको गिरह लगानेके लिए मजबूर कर देते हैं—

यह चोटी किस लिए पीछे पड़ी है ?

अब आपही बताये रियाज साहब क्या करें ? क्या वहाँसे उठकर मस्जिदमें जाकर अजान देने लगें या उक्त मिसरेपर कुरआन शरीफकी कोई आयत चस्पाँ कर दें ? या मौलवियाना नसीहत झाड़ने लगें ? आखिर गिरह लगानेपर बाध्य होते हैं—

रहे सीना तना लंगरसे इसके।
यह चोटी इसलिए पीछे पड़ी है॥

मिर्ज़ा दाग शतरज खेल रहे है। प्यास लगनेपर पानी मँगवाया गया। एक १२-१३ वर्षकी छोकरी पानीका गिलास लाई तो हवाके जोरसे उसका दुपट्टा कान्धेसे सरक गया। उसने मारे हयाके दोनो हाथ सीनेपर रख लिये। दागने यह मंज़र देखा तो अनायास उनके मुँहसे निकला—

बादे-सबाने भी न किया उनको बेहिजाब।
सीनेपै हाथ आ गये, जब शाना खुल गया॥

दाग ही क्या, कोई और मजीदा शाइर भी यह दृश्य देखता तो इसी तरहके भाव व्यक्त करता। ग़जलका शेअर प्रकटमे कुछ और अन्तरगमे कुछ और भाव रखता है। गजलमे हर बात हुस्नो-इश्क, साकी-ओ-मैखाना और गुलो-बुलबुलके माध्यमसे कही जाती है। यह तो अपनी-अपनी समझ और रुचि है कि ग़जलके शेअरको कहाँ और किस सलीकेसे उपयोगमे लाया जाय। दर्पणमे प्रतिबिम्बित होनेकी क्षमता है। हूर और लगूर सभीके चेहरे उसमे देखे जा सकते है।

१९३० ई० के असहयोग-आन्दोलनके युगकी बात है, दिल्लीके कम्पनी बागमे काँग्रेसके जल्सेमे राजपूताना-केसरी श्री अर्जुनलाल सेठीका धुआँ-धार भाषण हो रहा था। जनतामे एक हूका आलम था। सब दम-ब-खुद बने सुन रहे थे। "अग्रेजोंने कैसी-कैसी धूर्त्तताओसे भारतको आधीन किया, यहाँके उद्योग-धन्धोंको किन बेरहमियोसे चौपट किय? भारतीयोंको गुलाम बनाये रखनेके लिए क्या-क्या ऐय्यारियाँ करते रहते है। उनसे अब दामन बचाकर निकलनेका वक़्त आ गया है" इसतरहके भाव व्यक्त करते हुए ज़ौकका यह शेअर—

माल जब उसने बहुत रद्दोबदलमे मारा।
हमने दिल अपना उठा, अपनी बगलमें मारा॥

कुछ इस अन्दाजमें पढकर बैठ गये कि आस्मान दादों-तहसीनमें गूंज उठा और फिर किसी अन्य वक्ताका रग न जम सका। इसी तरह जैन-परिषदके अधिवेशनमें जहाँ रूढिवादी बहुत बडी सख्यामें दस्सा-पूजा प्रस्तावका विरोध करनेको डटे हुए थे। एक कुशल व्याख्यानाने प्रस्तावपर बोलते हुए अन्धविश्वासोकी बखिया उधेडते हुए, और नवीन अच्छी बातोको ग्रहण करनेकी प्रेरणा देते हुए जब यह शेअर—

वस्लसे इंकार करना यह पुरानी बात है।
अब नये अन्दाज सीखो दिल जलानेके लिए॥

पढा तो अधिवेशनमें उनकी ऐसी धाक जमी कि विरोधी भी प्रस्तावके समर्थनमें हाथ उठा गये। इसीतरह यह शेअर—

खूब पर्दा है कि चिलमनसे लगे बैठे है।
साफ़ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं॥

कितना रगीन और चुलबुला है। मगर देखिए अल्लामाँ नियाज फ़तहपुरीके इस्तेअमालका सलीका—पाकिस्तान और भारतके मैत्रीपूर्ण समझौतेकी वार्त्ता जब प० नेहरू और लियाकतअलीमें चल रही थी। उन्ही दिनो लियाकतअली पाकिस्तानमें भारतको घूंसा भी दिखाते थे और समझोतेके लिए हाथ भी बढाते थे। उसीपर अगस्त १९५३ के निगारमें सम्पादकीय लिखते हुए लियाकतअलीको लक्ष करते हुए नियाजने अन्तमें लिखा कि—

साफ़ छुपते भी नहीं सामने आते भी नहीं

पाकिस्तानके तीसरे प्रधान मत्री मुहम्मदअली जब मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए भारत आये तो बहुत खुलूसे दिलीसे वार्त्तालाप हुआ, जिससे जनताको आभास होने लगा कि अब भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध अच्छे होने चले जायेगे। नियाज साहबने इसी सम्बन्धमें लिखा—

"बहरहाल यह मुलाकात बडी मुबारक मुलाकात थी और अगर यह सिल्सिला जारी रहा तो—

और खुल जायेंगे दो-चार मुलाक़ातोंमे"

पत्र-व्यवहारमे भी उर्दू-अदीब अशआरका इस्तेअमाल इस कौशलसे करते है, गोया गागरमे सागर भर देते है। उर्दूमे पत्र-व्यवहार सम्बन्धी बीसों सकलन प्रकाशित हो चुके है। यहाँ हम अपने अभिन्न मित्र श्री सुमत-प्रसाद साहब जैन पी० सी० एस० के अपने पास आये हुए चन्द पत्रोंका केवल उतना अश दे रहे है, जो अशआरसे सम्बन्धित है —

गुड़गाँव ७ मार्च १९४२

"ऊपरके पतेसे आपको अन्दाजा हो गया होगा कि मै भी अब आपकी तरह जिलावतन हूँ और १५ दिनसे गुडगाँवके जगलमे खाक छान रहा हूँ। भई बड़ी खराब जगह है। यूँ कहनेको तो दिल्लीसे सिर्फ २० मील दूर और कुतुबसे १० मील है। पर ऐसे समझो जैसे सुखके साथ दुःख लगा हुआ है। वुसअतका यह हाल है कि आपको न साइकिलकी जरूरत न घोडागाडी की। आप चाहे कही हों। कोई भी जगह ५ मिनिटके फासलेसे ज्यादा नही है। फिर न बिजली, न नल, न सिनेमा, न चाट-पकौड़ी। बस वकील, अदालतें और अहलकार; इनको चाहे ओढ लो चाहे बिछा लो। यह विचार करके कि आपको तो इस दश्त (जगल) सैया ही (यात्रा) मे सालसे अधिक हो चुका, यह शेअर याद आ गया—

आ अन्दलीब मिलके करें आहो-जारियाँ।
तू हाय गुल पुकार, मैं चिल्लाऊँ हाय दिल॥

शनिवारको अलबत्ता यार लोग दिल्ली भाग लेते है और फिर सोमवारकी सुबहसे पहले नही पलटते। पर, यह भी कुछ दिनोकी मौज है। ऊखलीमे सर दिये बाद कही बहुत दिनोंतक मूसलसे बचाव हो सकता है? हाँ एक क्लब भी है। जहाँ शामको थोडा-बहुत ताश

मिल जाता है। पर तुम जानो, 'प्रकाश' और 'ज्योति' जैसे भाई लोगोंके बग़ैर क्या ताशका मजा ? वे शौक़की महफ़िले थी, यहाँ धधा समझो।

तुम्हीं कहो कि गुज़ारा सनम-परस्तोंका।
बुतोंकी हो अगर ऐसी ही ख़ू तो क्यों कर हो ?

रावलपिण्डी १८-१२-४६

....."पत्रका उत्तर तो तुरन्त दोगे ना ? अरे बाबा मुझे कहो तो मै डालमियानगर भी आनेको तैयार हूं। 'साइल'का वह शेअर याद दिला दूँ—

शबे-वअ़दा वोह आ जाये, न आये मुझको बुलवाले।
इनायत यूँ भी और यूँ भी, करम यूँ भी है और यूँ भी॥

रावलपिण्डी ९-१-४५

"नये मालकी बधाई। मगर आप है कि चिट्ठी ही नही लिखते। भई ऐसा नही चाहिए। बकौल 'जिगर'—

एक तजल्ली एक तबस्सुम
एक निगाहे-बन्दानवाज

बस यही कुछ हमारे लिए काफ़ी है।

रोहतक ९–२–४७

[पत्रोत्तर देनेमे मुझे विलम्ब हुआ तो बतौर उलाहना पत्रमे रविश सिद्दीकी केवल निम्न शेअर लिख भेजा।]

ज़िन्दगी क्यों हमातन गोश हुई जाती है।
कभी आया है जो आयेगा पैग़ाम उनका ?

रोहतक २४-३-४७

"आपको रावलपिण्डीके नूरपुरके मेलेके बारेमे बताया था ना ? जहाँ हरसाल कई सौ गानेवाली जमा होती है और बडे ठाठका मेला

होता है। जमालके साथ तीन साल उस मेलेकी सैर की है। अबकी बार झगडोके कारण शायद मेला न हो सकेगा। मैंने जमालको लिखा कि फिर हरिद्वार ही हो आवे। यह लिखते हुए मिर्जाका एक शेअर याद आ गया। आप भी सुनिए। कैसा चस्पाँ होता है? और दूसरे मिसरेमे 'ही' शब्द क्या मजा दे रहा है।—

अपना नहीं यह शेवा कि आरामसे बैठे।
उस दरपै नहीं बाट तो कअबे ही को हो आये॥

रोहतक १०-४-४७

"नवाब अच्छन मियाँ रामपुरवालोका जिक्र आपसे किया था ना? वह जिनका 'सर्द-मुहरी'वाला शेअर था। आज सुबह न जाने किस धुनमे बैठा था कि उनका एक और शेअर याद आया। अब तो खैरसे अंग्रेजी राजका वह हाल है कि—

साग़रको मेरे हाथसे लेना कि चला मैं।

वर्ना नवाबसाहबका यह शेअर अंग्रेजके ९० सालके शासनपर कैसी यथार्थ टिप्पणी है—

असीरीका यह एहतमाम अल्लाह-अल्लाह!
नशेमन भी है ज़ेरे-दाम अल्लाह-अल्लाह॥

शेअर सुनकर दाद नही दी तो या तो मुझपर बदमजाकीका इल्जाम आयेगा या आपपर बदजौकीका।

होश्यारपुर ११-१-५०

"आप कल चले गये और दिनचर्यामे जैसे एक रिक्ति-सी हो गई। वह साहिरकी रुबाई तो याद है ना?

चन्द कलियाँ निशातकी चुनकर
मुद्दतों महवे-यास रहता हूँ

तुझसे मिलना ख़ुशीकी बात सही
तुझसे मिलकर उदास रहता हूँ

होश्यारपुर १७-११-५१

[पत्रोत्तर देना आपको स्मरण नही रहा तो याद आनेपर केवल यह शेअर लिख भेजा—]

लीजिए चचा (गालिब) का एक शेअर सुनिए—

मैं बेख़ुदीमें भूल गया राहे-कूए-यार।
जाता वगर्ना एक दिन अपनी ख़बरको मैं॥

लुधियाना १७-३-५२

[सुमत साहबके पत्रोत्तर न देनेपर मैं भी उन्हे पत्र नही लिख सका तो आपने पत्रमे सिर्फ यह लिखा।]

"आख़िर गुनाहगार हूँ काफ़िर नही हूँ मैं"

लुधियाना १६-९-५२

[मेरे एक पत्रके जवाबमें—]

कुछ इस अदासे आपने पूछा मेरा मिज़ाज
कहना ही पड़ा "शुक्र है परवर्दिगारका"

लुधियाना १०-१-५३

नौ-भेद न हो इनसे, ऐ रहरवे-फ़रज़ाना।
कम-कोश तो है, लेकिन बेज़ौक़ नहीं राही॥

—इक़बाल

लुधियाना २५-७-१९५३

"देख रहा हूँ कि आप बहुत नाराज है। इस बातपर न मुझे तअज्जुब है न रज। इसलिए कि मै खुद भी अपने आपसे बेहद नाराज़ हूँ।

मैं कि अज़-रूए-नंगे-बेनूरी
हूँ ख़ुद अपनी नज़रमें इतना ख़्वार
कि मैं अपनेको गर कहूँ ख़ाकी
जानता हूँ कि आये ख़ाकको आ़र।

यह लम्बी कहानी कभी लिखी जा सकी तो लिखूंगा।"

अमृतसर ४-३-५४

[मुझे पत्र देनेमें बिलम्ब हुआ तो इस तरह मुझे स्मरण किया—]

मेरे ख़यालमें यूँ तेरी याद आती है।
कि जैसे साज़के तारोंमें रागिनीका ख़िराम॥
कि जैसे ग़ुंचए-नौरसमे क़तरए-शबनम।
कि जैसे सीनए-शाइरमे बारिशे-इल्हाम॥

—सर्दार जअ़फ़िरी

अमृतसर ६-१०-५४

लीजिए एक शेअ़र सुनिए—

ग़मे-हयातके पंकर बदलते रहते हैं।
वही शराब है साग़र बदलते रहते हैं॥

और एक अदमका शेअ़र है। जिसने तड़पा-तड़पा दिया है। आपका शायद पढ़ा हुआ हो—

आएं ग़मे-दौरां ! दरे-मैख़ाना है नज़दीक।
बैठेंगे ज़रा चलके वहाँ बात करेंगे॥

होश्यारपुर ४-८-५५

[अर्सेतक पत्र न लिखने पर किस मज़ेका तअ़ना दिया है—]

"लीजिए उस्ताद दाग़का, एक पुराना शेअ़र सुनिए—

देखो-देखो मुझपे बरसाते रहो तीरे-निगाह।
संद जिस दम आँखसे ओझल हुआ, जाता रहा॥

होश्यारपुर २१-४-५५

"आपने तो पत्र लिखनेकी जैसे क़सम खा ली हो। ऐसे भी कोई नाराज होता है—

बारहा देखी है उनकी रंजिशें।
पर कुछ अबकी सर गिरानी और है॥

देहली आये, प्रायः एक सप्ताह ठहरे। खबर भी न दी। लीजिए पिछले दिनों एक मजेदार शेअर सुना था, आपकी नजर है—

भला यह बताओ कि फिर क्या बनेगा?
मनाते-मनाते जो हम रूठ जाएँ॥

पिछले दिनों नवाशहर जाना पड़ा। वापिसीमें गढ़शंकरके डाक-बँगलेमें कुछ देरके लिए ठहरा। वे तीन-चार दिन आँखोंमें फिर गये, जब उस बँगलेमें बैठकर गालिब-नामा तैयार किया जा रहा था।

मुझे याद है वह जरा-जरा, तुम्हें याद हो कि न याद हो

अनवर साबिरीके दो शेअर सुनिए—

किसने आवाज दी रोते-रोते?
चौंक उठा हुस्न भी सोते-सोते॥
दर्दे-दिलकी मुझे फिक्र क्यों हो?
हो ही जायेगा कम होते होते॥

आजकल क्या कुछ लिखा जा रहा है। प्रूफरीडरोकी लिस्टसे तो शायद मेरा नाम सदाके लिए कट चुका होगा[1]—

तुम जानो तुमको ग़ैरसे जो राहो-रस्म हो।
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो॥

होश्यारपुर २६-४-५५

"मै दो दिनके लिए लाहोर चला गया था। राजा गुलाममहदी और अनवर साहबमे मुलाकात रही। एक छोटी-सी मुशाइरेकी सोहबत भी बन गई। हफीज जालन्धरी आये हुए थे। उनकी जबानमे अब भी वही पहिलेका-सा जादू है। छोटी बहरमे एक गजल पढी। तडपा-तडपा दिया। चार शेअर जो हाफिजेमे महफूज रह गये, हाजिरे-खिदमत है—

सिमट आये है घरमे वीराने।
तू किधर जा रहा है दीवाने॥
सुबह होते ही हो गये रुखसत।
शमअके जाँ-निसार परवाने॥
कर रहा हूँ तलाश अपनोकी।
जबसे गुम हो गये है बेगाने॥
बढ़ गई बात अर्ज़े-मतलबपर।
मुख्तसर यह कि वोह नहीं माने॥

हरिसदन मंसूरी १५-९-५५

[मेरे पत्रोत्तर न देनेपर उलाहनेमे केवल यह पत्र लिखा—]

---

[1]आपने शेरो-शाइरी और शेरो-सुखन पाँचो भागोके प्रूफ अत्यन्त परिश्रमसे देखे। आपको वहम है कि शायद आगेके हिस्सोके प्रूफ आपको न भेजूँ। मगर जब आगेके हिस्से कम्पोज़ ही नही तो प्रूफ कहाँसे भेजता? उसीका उलाहना है।

लालेकी ख़न्दारूईपै सबकी नज़र गई।
दागे-जिगर कि राजे-निहाँ-का-निहाँ रहा॥
—दीवान

सख़्तियाँ बढ़ रही हैं आ़लमकी।
हौसले मुस्कराये जाते हैं।
—ख़ुर्शीद

अगर्चे पीर होगये, गई न इश्क़-बाजियाँ।
कि मुख़्तसर न हो सकीं उम्मीदकी दराज़ियाँ॥
गिरहमें गो दिरम न थे, मिली शराब बेतलब।
रहेंगी याद साकिया! तेरी गदा-नवाज़ियाँ॥
जो उनके दरपै जा रहे तो कोई ख़ास बात थी।
वगर्ना जानते हैं सब हमारी बेनियाज़ियाँ॥
—दीवाना

होश्यारपुर ७ जून १९५५

"लाहोरकी क्या पूछते हो? पुराने दोस्तोंमें अन्वर और गुलाममहदीके अलावा कोई नहीं मिला। ख़ुर्शीद रावलपिण्डीमें है, सबा और अशरफ कराचीमें। मुद्दतों बाद जो जाना हुआ तो शौकका यह आ़लम था कि हर अजनबी पर हबीबका गुमान होता था। और उन लोगोंकी ख़ातिरदारी और मुहब्बत देखकर जी भर-भर आता था।' चार शेअ़र सुनिए—

उस दौरमें जीनेकी दुआ़ माँग रहा हूँ।
जिस दौरमें मरनेकी दुआ़ काम न आये॥
काम आया न तूफ़ाने-बहारोंमें नशेमन।
सब कामके तिनके थे, मगर काम न आये॥
—'सबा'

चिराग़े-हुस्न जलाओ बहुत अँधेरा है।
नक़ाब रुख़से हटाओ बड़ा अँधेरा है।

जिसे ख़िरदकी जबाँमें शराब कहते हैं।
वह रोशनी-सी पिलाओ बड़ा अँधेरा है।

—अज्ञात

उक्त उदाहरणोंसे स्पष्ट हो गया होगा कि ग़ज़लका शेअर अपनेमें कई-कई भाव सँजोये हुए होता है। हर व्यक्ति अपनी रुचिके अनुसार उसके भाव ग्रहण करता है।

'मीर'के दो शेअर सुनिए —

असबाब मुहैया थे, सब मरने ही के लेकिन—
अब तक न मुए हम जो, अन्देशा कफ़नका था॥

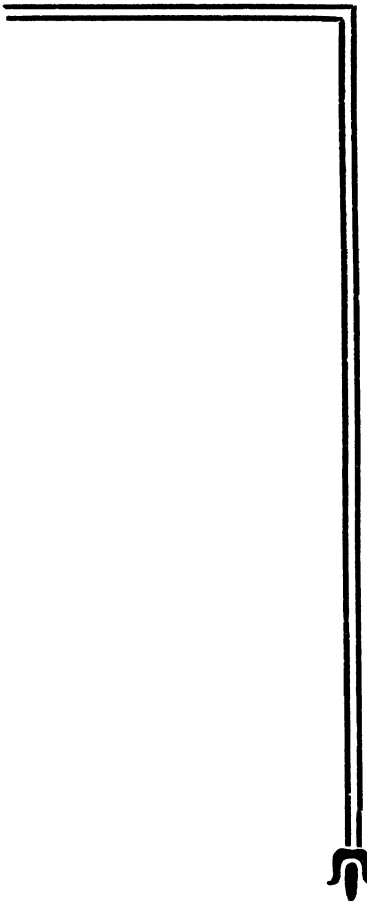
इश्क़की सोजिशने दिलमें कुछ न छोड़ा क्या करे।
लग उठी यह आग नागहाँ कि घर सब फुँक गया॥

मीरने न जाने किस आलममें यह शेअर कहे होंगे और आपका ज़ौके-सलीम न जाने क्या असर क़ुबूल करेगा। मगर मुझे तो पहिला शेअर मुस्लिमलीगी मिनिस्ट्रीके युगमें पड़े हुए बंगालके अकालकी याद ताजा कर रहा है। अकालकी विभीषिकाने मरनेके सब साधन उपलब्ध कर दिये थे। यदि कफ़नपर कण्ट्रोल न होता तो हर अकाल-पीडित जीते रहनेकी लअनत बर्दाश्त न करके सहर्ष मृत्युका आलिंगन करता।

दूसरा शेअर भारत-बटवारेके समय हुए लकाकाण्डपर कहा गया प्रतीत होता है। अब यह मेरी समझ ही तो है। वर्ना यह तो मैं भी जानता हूँ कि मीरके युगमें न बंगालमें अकाल पड़ा था न भारत-विभाजन हुआ था। उसने तो न जाने किस भावावेशमें कहे होंगे। और यही ग़ज़लकी विशेषता है कि वह कभी अप्रासंगिक नहीं होती। उसके शेअर हर मौक़ा-महलके लिए चुने जा सकते हैं।

डालमियानगर
५ दिसम्बर १९५७ ई०

सिंहावलोकन



पूर्वार्द्ध

[प्रारम्भसे ई० स० १९५७ तककी इश्क़िया शाइरी]

१. ग़ज़लका मुख्य लक्ष्य
२. ग़ज़लका अर्थ
३. ग़ज़लका उपयुक्त पात्र
४. ग़ज़लमें मिश्रण
५. इश्क़के भेद
६. स्वानुभूत और काल्पनिक शाइरी
७. पाक इश्क़ (पवित्र प्रेम)
८. नापाक इश्क़ और बाज़ारी माशूक़
९. हबीबका तसव्वुर (असती प्रेयसीका उल्लेख)
१०. देहलवी-लखनवी शाइरी
११. प्रेम-पात्र, पुरुष या स्त्री
१२. दाखिली-खारिजी शाइरी
१३. लखनऊकी पुरानी शाइरी
१४. गज़लकी मुख़ालफ़त
१५. ग़ज़लमें स्वाभाविकता और विकार
१६. इकतर्फ़ा इश्क़
१७. ग़ज़लका कायाकल्प
१८. ग़ज़लकी विशेषताएँ

उर्दू-शाइरीके आदि कवि 'वली' दक्खनी (१६६८—१७४४ ई०)से लेकर वर्त्तमानकालीन 'मजाज़' लखनवीतक केवल इश्क़ ही ग़ज़लका प्रधान और मुख्य विषय रहा है। मान-

ग़ज़लका मुख्य लक्ष्य

वमें-से आत्मा निकलनेपर पुद्गल तो शेष बचता है, परन्तु ग़ज़लमें-से इश्क़ निकाल दिया जाय तो कुछ भी बाक़ी नहीं रहता। इश्क़ ही ग़ज़लकी आत्मा एवं जिस्म है। ग़ज़ल-गो शाइरोंके अतिरिक्त नज़्म-गीत-गो शाइरों, यहाँ तक कि प्रगतिशील नवयुवक शाइरोंका भी इश्क़ एक दिलचस्प और ख़ास मौज़ूं रहा है।

ऐ 'वली'! रहनेको दुनियामें मक़ामे-आशिक़[1]।
कूचये-ज़ुल्फ़[2] है या गोश-ए-तनहाई[3] है॥

—वली

वोह अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी लिया दर्स नुस्ख़ये-इश्क़का[4]।
कि किताब अक़्लकी ताक़पर[5] ज्यूँ धरी थी त्यूँ ही धरी रही॥

—सिराज

इश्क़-ही-इश्क़ है जहाँ देखो।
सारे आलममें फिर रहा है इश्क़॥
इश्क़ माशूक़, इश्क़ आशिक़ है।
यानी अपना ही मुब्तला[6] है इश्क़॥
कौन मक़सदको[7] इश्क़ बिन पहुँचा?
आरज़ू इश्क़, मुद्दआ[8] है इश्क़॥

---

[1]प्रेमियोंके रहने योग्य स्थान; [2]प्रेयसीकी लटें अथवा प्रेयसीका कूचा; [3]एकान्त स्थान; [4]प्रेमपाठ; [5]आलेपर; [6]आशिक़; [7]लक्ष्यको; [8]अभिप्राय।

इश्क़ है तर्जे-तूर इश्क़के तईं।
कहीं बन्दा कहीं ख़ुदा है इश्क़[1]॥

—मीर

इश्क़से तबीयतने ज़ीस्तका[2] मजा पाया।
दर्दकी दवा पाई, दर्द बे दवा पाया[3]॥

—ग़ालिब

कोई समझे तो एक बात कहूँ।
इश्क़ तौफ़ीक़[4] है, गुनाह नहीं॥

—फ़िराक़ गोरखपुरी

मक़ामे-इश्क़को हर आदमी 'सीमाब' क्या समझे?
यह है इक मर्त्तबा जो मावराये-आदमीयत[5] है॥

—सीमाब अकबराबादी

मुहब्बतका इस पीरसे दर्स लो।
ख़सो-ख़ारसे[6] भी मुहब्बत करो॥
मुहब्बतकी दुनियामे गुंचे खिलाओ।
शरारे बुझा दो, सितारे उगाओ॥

---

[1]ख़ुदा मुहब्बत है और मुहब्बत ख़ुदा है—इर्जील। [2]जीवनका, [3]प्रेम-रहित जीवन निरर्थक है। प्रेम ही मनुष्यमे जीवन डालता है। 'ग़ालिब' फर्माते है—इश्ककी वजहसे हमको जीस्त (जिन्दगी) का मजा आया। बगैर इश्क तो यह जिन्दगी दर्द (दूभर) थी। इश्क इस दर्दकी दवा बन गया। लेकिन मलाल इतना है कि इश्ककी कोई दवा नही, यह स्वय एक असाध्य रोग है। [4]योग्यता, ईश्वरकी देन; [5]मनुष्यतासे भी बढकर; [6]घास-काँटोसे।

न हिन्दू, न गबरू,[1] मुसलमाँ बनो।
अगर आदमी हो तो इन्साँ बनो॥
नहीं तो हलाकतमें[2] ढल जाओगे।
ख़ुद अपने जहन्नममें जल जाओगे॥

—जोश मलीहाबादी

इश्कका जौके-नज़ारा[3] मुफ़्तमें बदनाम है।
हुस्न ख़ुद बेताब है, जलवा दिखानेके लिए॥

—मजाज़

इश्क ही गजलका प्राण, मन और शरीर सब कुछ होनेका कारण यह है कि गजलके शाब्दिक अर्थ ही इश्किया अशआर कहने और औरतोंकी बातें करनेके है। गज़ल यूँ तो अरबी-भाषाका शब्द है, मगर ईरानियोंने इसे विशेष तौरसे अपनाया है। वहाँ हजार वर्षसे ज्यादा गजलका-दौर-दौरा रहा। 'रूदकी' जो कि ९१० ई० के लगभग जन्नतनशी हुआ, गजलका बडा उस्ताद था। फारसी-पुस्तकोमें गजलकी परिभाषा इस प्रकार की गई है—

गजलका अर्थ

सुख़न अज़ ज़नान (या अज़ माशूक़) गुफ़्तन

जिसका सही अर्थ है—"औरतोकी बातें करना, यानी औरतोका जिक्र करना।" लेकिन प्रारम्भमें किसी लेखकने 'अज' शब्दके भ्रममें पडकर गजलका अर्थ 'औरतोसे बातें करना' लिख दिया और बादके लिखनेवाले उसी भूलको दोहराते रहे[4]। यदि 'औरतोसे बातें करना' कहना अभीष्ट होता तो—**सुख़न-बा-ज़नान कहते न कि अज ज़नान।**[5]

---

[1]अग्निपूजक; [2]मृत्युकी तरफ़ पतितोन्मुखी अवस्थामें; [3]देखनेकी उत्सुकता; [4]उर्दू-कोशमें भी यह गलती होनेके कारण हमने स्वय पहले भागमें यह भूल दोहराई थी; [5]प्रो० मसूद हसन रिजवी—निगार फरवरी १९४६ पृ० ४५।

अतः ग़जलका अर्थ हुआ—औरतोंका ज़िक्र करना, उनके इश्क़का दम भरना और उनकी मुहब्बतमें मरना।

मां-बाप, भाई-बहन, पत्नी-सन्तान और इष्ट-मित्रोंसे भी मुहब्बत होती है; परन्तु इस मुहब्बतमें और ग़ज़लके इश्क़ो-मुहब्बतमें बहुत बड़ा अन्तर है। जिस व्यक्तिके देखने-सुननेसे काम-वासना उदित हो; उसके सम्बन्धमें अपने मनोभावोंको, जिस कवितामें प्रकट किया जाय, केवल उसी कविताको गजल कहते हैं। ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम, कौटुम्बिक-स्नेह, आध्यात्मिक या दार्शनिक विचार, प्राकृतिक वर्णन, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक-स्थिति आदिका वर्णन गजलका विषय नहीं।[1]

ग़ज़लका उपयुक्त पात्र

काम-वासना सम्बन्धी चाहे जैसे विचार, चाहे जैसी भाषामें, चाहे जिस ढगसे व्यक्त कर देनेसे गजल नहीं बनती। गजलका अपना छन्द-शास्त्र और व्याकरण है। अपनी खास जबान, तर्जे-अदा और लबोलहजा है। उसका अपना सीमित और विशेष क्षेत्र है। अत्यन्त कोमल और रसभरी भावनाओंसे उसका निर्माण होता है।

वर्त्तमानयुगीन गजलमें तो सभी तरहका मिश्रण पाया जाता है, अब वह सिर्फ़ इश्किया शाइरीतक ही सीमित नहीं रही। उसका क्षेत्र व्यापक हो गया है। धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि सभी भावोंका उसमें समावेश हो गया है और वह हर समयोपयोगी विचारोंको ग्रहण करनेकी क्षमता रखती है। लेकिन सबसे पहले गजलमें तसव्वुफ़ (ईश्वरीय भावों) और फ़लसफ़े (दार्शनिक विचारों) का मिश्रण हुआ। इन मिश्रण करनेवालोंमें दो प्रकारके शाइर थे।

ग़ज़लमें मिश्रण

एक वे जो दिलमें इश्क़की आग रखते थे और उसे व्यक्त करनेवाला

---

[1]विशेष जानकारीके लिए देखें शेरोसुख़न पहला भाग, पृ० २३५-७४।

मस्तिष्क और हृदय भी। मगर उस आगको ज़ाहिर कर सकनेका हौसला उनके पास नही था। सामाजिक बन्धनोसे सघर्ष करने, पारिवारिक मर्यादाओंको तोड़कर कूचये-इश्कमे कदम रखने और मैखानेकी तरफ मुँह करनेका उनमे साहस नही था, और न उनमे इतनी सामर्थ्य थी कि वे अपने इश्क़को सीता-राम, राधा-कृष्ण, सत्यवान-सावित्री, नल-दमयन्ती, पृथ्वीराज-सयोगिता—जैसा पवित्र प्रेम बना सकते। वे किसीकी चितवनसे घायल होकर अपने घावोंपर कल्पित ईश्वररूपी प्रेयसीकी मुसकानका मरहम लगाते रहे, और उनकी प्यासी आत्मा लग-जिश खाकर किसीके क़दमोंमे गिरनेके बजाय कौसरो-तसनीमकी मृग-मरीचिकासे अपनी प्यास बुझाती रही। बकौल नियाज फ़तहपुरी—"जो गुनाह वे यहाँ न कर सकते थे, उसे दूसरी दुनियापर उठा रक्खा। जहाँ दुनियाका हर गुनाह अतैया-ए-खुदाबन्दी (ईश्वरीय देन) की हैसियत अख्तियार कर लेता है।"[1]

दूसरे वे शाइर जो आलमे-शबाब (जवानी) मे तो मनचाहे गोते खाते रहे, परन्तु अन्तमे वृद्धावस्था और शक्तिहीनता आदिके कारण 'अल्लाहू' 'अल्लाहू' पुकारने लगे। यानी उनका इश्क़ इहलौकिकसे पारलौकिकमे परिणत हो गया और यही पारलौकिक इश्क़ हक़ीक़ी, रुहानी, सूफ़ियाना, आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे मशहूर होता गया; और दुनियावी इश्क, मजाजी इश्क़ कहलाने लगा।

इसप्रकार गजल-गो शाइर—**हक़ीक़ी** और **मजाजी**—दो शाखाओमे विभक्त हो गये। सर्वसाधारण इसी ससारमे उत्पन्न अपने-जैसे हाड़-माससे बनी प्रेयसीसे प्रेम करना चाहते है। हक़ीक़ी शाइर भी अपने निराकार ईश्वरका जलवा इसी दुनियावी प्रेयसीके रूपमे साकार देखना चाहता है। अतः

इश्क़के भेद

[1] निगार, जनवरी १९४१, पृ० ४।

इन सूफ़ी शाइरोंने अपने इश्कके इजहारके लिए उन सभी उपमाओं, उदाहरणोंका उपयोग किया, जो मानवी-प्रेमसे सम्बन्धित है।

बे-हिजाबी यह कि हर ज़र्रेमे जलवा आशकार।
इसपे घूँघट यह कि सूरत आजतक नादीदा है[1]॥
हश्रमें मुँह फेरकर कहना किसीका हाय-हाय—
"'आसी'-ए-गुस्ताख़का हर जुर्म ना बख़्शीदा है[2]॥"

उक्त दोनो शेर प्रसिद्ध सूफी शाइर 'आसी' गाजीपुरीके है, जिनका परिचय शेरोसुखनके तीसरे भागमे दिया गया है। 'घूँघट' और 'मुँह फेरकर' शब्द प्रकट करते है कि शाइरके मस्तिष्कमे किसी घूँघटवाली हया-परवर नारीका तसव्वुर है जिसने अपनी मानसिक यौन-सम्बन्धी भूखको ईश्वरीय-प्रेमकी आडमे शान्त करनेका विफल प्रयास किया है। इन्हीका एक शेर और है—

तुम्हीं सच-सच बताओ, कौन था शीरींके पैकरमें ?
कि मुश्ते-ख़ाककी हसरतमे कोई कोहकन[3] क्यों हो ?

इस शेरके भावसे प्रकट होता है कि शाइरके समक्ष वार्तालाप करते हुए, ईश्वर मानवी-प्रेयसीके रूपमे उपस्थित है। 'रियाज' खैराबादीने इसी कल्पनाको और भी मोहकरूप दिया है—

---

[1]ईश्वरकी बे-हिजाबीका यह आलम है कि वह कण-कणमे नजर आ रहा है। फिर भी मुँहपर घूँघट इस ग़ज़बका है कि आजतक उसकी सूरत देखनेमे नही आई।

[2]हश्रमे खुदाके सामने पहुँचे तो उसने हमे देखकर मारे हयाके अपना मुँह फेर लिया और चुपके-से बोला—"यह तो वही मेरा गुस्ताख आशिक़ 'आसी' है, जिसकी उद्दण्डताएँ क्षमा करने योग्य नही।"

[3]शीरीका आशिक फ़रहाद।

हम आँख बन्द किये तसव्वुरमें पड़े हैं।
ऐसेमें कहीं छमसे वह आ जाय तो क्या हो ?

यहाँ भी 'छम' शब्द किसी इन्सानी परीपैकरके नूपुरोंकी 'छम-छम' शब्दका तसव्वुर है, और सचमुच कहीं निराकार ईश्वरका दिव्यदर्शन किसी मोहिनीके रूपमें हो सके तो, उस प्रेमीके भाग्यका क्या कहना ? इसी भावको सर इकबालने कभी यूँ व्यक्त किया था—

कभी ऐ हक़ीक़ते-मुन्तज़िर ! नज़र आ लिबासे-मजाज़में।
कि हज़ारों सज्दे तड़प रहे हैं, मेरी जबीने-नियाजमें[1] ॥

और एक शाइरने इसी भावको इस प्रकार कहा है—

यह बजा कि ख़िलवते-दिलमें है, तू हज़ार रंगसे जलवागर।
ज़रा आके सामने बैठ जा कि नज़रको ख़ू-ए-मजाज़[2] है॥

और यह ख़ूए-मजाज ही एक रोज इन्सानको वनों-पर्वतोंकी खाक छनवाती है, सर फोडनेको मजबूर करती है, खूनके आसू रुलाती है। दो-दो कौडीके आदमियोकी नसीहते सुनवाती है। आशिक़े-मजाजीको कूचये-इश्कमें जो रुसवाइयाँ नसीब होती है, कौटुम्बिक और सामाजिक सघर्षोंसे जो टक्करें लेनी पडती है, वह आशिके-हकीकीके भाग्यमें कहाँ ?

यूँ तो आशिके-हकीकी भी अपने हबीब (खुदा) का तसव्वुर (ध्यान) आशिके-मजाजी जैसा ही रखता है। वह भी उसे किसी घूँघटकी ओटमें छमछमवालीके रूपमें देखना चाहता है। मगर दोनोंके इश्कमें पृथ्वी-आकाश-का अन्तर है। आशिके-हकीक़ी मस्जिद या ख़ानकाहमें बैठा हुआ अपने

---

[1]निराकार ईश्वर, कभी तो साकार रूपमें नज़र आ; मेरे विनम्र मस्तकमें तेरे दर्शनके लिए हजारो सजदे बेचैन और उत्सुक है।
[2]प्रत्यक्ष देखनेका अभ्यास।

हबीबके तसव्वुरमें रोने-हँसनेके सिवा और कुछ भी नही करता। न वह आशिक़-मजाज़ीकी तरह हिज्रे-यारमें तारे गिननेको मजबूर है, न आहो-फ़ुग़ाँसे ही उसे कभी वास्ता पडता है। न कभी उसे विरह-ज्वर ही सताता है, न कभी उसे अपने हबीबकी यादमें एड़ियाँ रगड़नी पड़ती है। न कभी उसे हबीबकी जुदाईमें तिल-तिलकर घुलनेका अवसर मिलता है और न कभी उसको प्रेयसीकी झिड़कियाँ सहने, रूठने-मनानेके काबिले-रश्क (ईर्ष्या-योग्य) दिन ही देखने नसीब होते है। और न 'मीर' की तरह उसे यह कहना मयस्सर होता है--

इस आशिक़ीमें इज़्ज़ते-सादात भी गई

जो शऊर और तौर-तरीक़ा इश्क़े-मजाज़ीमें नसीब होता है, वह इश्के-हकीकीमें मयस्सर कहाँ ? वकौल मीर--

इश्क़ बिन यह अदब नहीं आता

इसीलिए बहुत-से आलोचक हकीकी रगको इश्किया शाइरी माननेको तैयार नही। वे इसे हकीकी, रुहानी, सूफियाना, तसव्वुफ और मारफतकी शाइरी कहते है, मगर इश्किया शाइरी माननेको हरगिज तैयार नही।

अब हम उस इश्किया शाइरीका जिक्र करते है, जो इश्क़े-मजाजीसे ताल्लुक रखती है, और जिसका हबीब कोई खुदा या ईश्वर नही, बल्कि इसी दुनियाका परीपैकर है। इस क़िस्मकी शाइरीके भी शाइर दो समूहोंमें विभक्त किये जा सकते है। एक वे जिन्होंने स्वानुभवको अपने कलाममें व्यक्त किया। दूसरे वे जिन्हे कभी किसीकी तिर्छी नज़रसे न तो घायल होना नसीब हुआ, न कभी पीरे-मुग़ाँकी चौखटपर सर टेकना मयस्सर हुआ। नक़ली आशिक़-ओ-मैख्वार बने हुए रवायती शाइरी करते रहे। उम्रभर किसीके

स्वानुभूत और काल्पनिक

ग़मे-हिज्रमें आँखसे एक आँसू तक न टपका, मगर शाइरीमें दरिया बहा दिया—

अश्कने मेरे मिलाये कितने ही दरियाके पाट।
दामने-सहरामें[1] वर्ना इस क़दर कब घेर था?

—दर्द

बरस ऐ अब्र[2]! जितना चाहे तू, अब तेरी बारी है।
कभी दिल था तो मैं रो-रोके एक दरिया बहाता था!

—ज़िया

चार-पाँच आदमियोंकी जितनी ख़ूराक खा जाये, दो-दो नौकर जिनके जूठे बर्तन उठा पायें, कवी-हैकल होनेकी वजहसे दुमकटे भैंसे कहलाये। फिर भी फिराक़े-यारमें यह कहनेमें बाज न आये—

इन्तहा-ए-लाग़रीसे[3] जब नज़र आया न मैं।
हँसके वोह कहने लगे "बिस्तरको झाड़ा चाहिए[4]"॥

—नासिख़

चाहे उम्रभर एक रोज़को भी बुख़ार न आया हो, पर शाइरीमें तपे-इश्क़में ऐसे जले कि मुर्दोंमें जान डाल देनेवाले ईसामसीहने नब्ज देखी तो उनकी भी नब्ज जल उठी—

नब्ज़ देखी तो हरारतसे जली नब्ज़े-मसीह।
तेरे बीमारे-मुहब्बतका मदावा[5] कैसा?

—अमीर मीनाई

---

[1]जगलोंमें; [2]बादल; [3]अत्यन्त निर्बलताके कारण; [4]यह शेर उन नासिखका है, जो ४-५ आदमियों जितना खाना भी खाते थे और दुमकटे भैंसे भी मशहूर थे; इलाज असम्भव है।

गमे-इश्कका सदमा कभी लमहे भरको न उठाया, न कभी किसीकी यादमें नींदे उचाट हुई, मगर कहते यही रहे--

रातको नींद है न दिनको चैन।
ऐसे जीनेसे ऐ खुदा गुज़रा[1]॥

--सोज़

उम्रभर इमामे-मस्जिद बने रहे, हरसाल हजको जाते रहे, मगर दूनकी यही हाँकते रहे कि कूचे-ए-बुतामें बिस्तर लगाये बैठे हैं--

मुझ बे-नवा-गदाको[2] पूछे 'अमीर' वोह क्या?
शाहोके उस गलीमें बिस्तर लगे हुए है॥

--अमीर मीनाई

कभी एक वक्तकी नमाज कजा नहीं की, बूँदभर शराब हलकके नीचे न उतारी, मगर वज़ू करते हुए भी मश्के-सुखन यही था--

धोना है दागे-जाम-ए-अहराम[3] सुबह-सुबह।
हुजरेसे शेख़ पानीकी छागल उठा तो ला॥

--रियाज़ ख़ैराबादी

---

[1]बाज आया; [2]खामोश फकीरको; [3]'जामये-अहराम' उस लिबासका नाम है, जिसे पहनकर काबेकी परिक्रमा की जाती है। जामये-अहराम पहननेके बाद भी शाइर शराब पी बैठा और वह पवित्र वस्त्र शराबसे खराब कर लिया। अब शाइरकी दूसरी शोखी देखिए कि वहीके धर्माचार्यसे उसे साफ करनेको पानी मँगवाता है। यह शेर उन्ही 'रियाज' साहबका है, जिन्होने न कभी शराब छुई न कभी नमाज क़ज़ा की।

यहाँ तक कि बहुत-से शाइरोंने तो ८-१० सालकी उम्रमें ही शेर कहना प्रारम्भ कर दिया। जब कि वे यह भी न जानते थे कि माशूक है किस मर्जकी दवा? और उनके शेर पढ़िए तो मालूम होता है कि कोई खुर्राट आशिक आप बीती दास्ताने-जहरे-इश्क बयान कर रहा है। अधिकाश गजले ऐसे ही अनुभव-हीन नकली आशिक-शाइरों-द्वारा कही हुई है। यही कारण है कि हृदयस्पर्शी अशआर बहुत कम देखनेको मिलते हैं और रवायती एव कल्पित शाइरीकी भरमार है। चूंकि गजल नाम ही इश्कका है, इसलिए इस स्कूलमें जो भी दाखिल होगा इश्किया शेर कहेगा। इस स्कूलका श्रीगणेश ही हुस्नो-इश्कसे होता है। हरजाई, अदू, कासिद, दरबान, जालिम, बेवफा कातिल, नाला-ओ-फुगाँ, वस्लो-हिज्र आदि इसकी वर्णमाला है। चन्द दिनके अभ्याससे ही विद्यार्थी महारती लेने लगता है। इस स्कूलका स्नातक चाहे मजनूँ हो, चाहे जाहिदे-खुश्क अथवा कमसिन छोकरा। थोड़े दिनके अभ्यासके बाद इश्किया शाइरीका प्रमाण पत्र दे दिया जाता है। चाहे उनकी योग्यता और अनुभवमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर हो।

अनुभवहीन एव फर्जी तथा स्वानुभवी आशिकोंकी शाइरीको भी दो हिस्सोंमें तकसीम करना होगा। एक पाक इश्किया शाइरी और दूसरी बाजारी इश्क़िया शाइरी।

पाक इश्किया शाइरी वह है कि एक बार जिसको दिल दे दिया, उम्रभर उसीके इश्कका दम भरते रहे। चाहे सफलता मिले या न मिले, उसीकी यादमें उम्र काट दी। यह वह पाक इश्क है, जिसके बारेमें

पाक इश्क़

इंजीलमें कहा गया है कि **खुदा मुहब्बत है और मुहब्बत खुदा है**। यही इश्क आदमीको इन्सान बनाता है और फिर खुदाके मर्तबेको पहुँचाता है। इस इश्कमें अपने हबीबके प्रति आशिककी वही आसक्ति और पवित्र भावना होती है, जो सीताके प्रति रामकी, राधाके प्रति कृष्णकी थी।

बाज़ारी इश्क़िया शाइरी कामलोलुप, विषयासक्तोंकी शाइरी है जिनकी प्रेयसियाँ—वेश्याएँ और पतिता नारियाँ है, और जो स्वयं भी इस गुलशने-हुस्नमें भौंरे बने मँडराते है।

हमे अफ़सोस है कि हम प्राचीन शाइरीसे पाक इश्क़िया शाइरीके उदाहरण अधिक नही दे सकते। क्योकि उर्दू-शाइरीका जन्म और विकास ही मुगलिया सल्तनतके ज़वालके वक़्तमे हुआ। अतः वे सब बुराइयाँ—विलासिता, तमाशबीनी, मैनोशी आदि सब इसमे प्रविष्ट कर गईं, जो तत्कालीन शासकोमे थी, और जिनके कारण उन्हे शासनसे हाथ धोना पड़ा। उर्दू-शाइरी अपने जन्मके थोड़े ही दिन बाद फारसी शाइरी-का अनुकरण करने लगी थी। धीरे-धीरे उसमें वे सब अवांछनीय तत्त्व आते गये, जिससे उर्दू-शाइरी पाकीज़ा होनेके बजाय उत्तरोत्तर बाजारी और अस्वाभाविक होती गई।

हाँ तो हम पाकइश्क़के उदाहरण देना चाह रहे थे। सम्भवतः उर्दू-शाइरीमे सबसे पहले इस क़िस्मका तसव्वुर 'मीर' के यहाँ मिलता है—

फूल, गुल, शम्सो-क़मर सारे ही थे।
पर हमें उनमें तुम्हीं भाये बहुत[1]॥

चाहें तो तुमको चाहें, देखें तो तुमको देखें।
ख़्वाहिश दिलोंकी तुम हो, आँखोंकी आरज़ू तुम[2]॥

इतने उन्नत विचारोंको व्यक्त करनेके बाद पवित्र-प्रेमकी व्याख्या और क्या शेष रह जाती है?

---

[1]दुनियामे गुलबदनी भी हैं, और चन्द्रमुखी भी। मगर हम अपने दिलको क्या करे? उसे तुम ही पसन्द आये; तुम्हारे सिवा सब हेच है।

[2]विश्व-सुन्दरियोंमे तुम्हीं एक हमारी प्रियतमा हो, तुम्ही हमारी अभिलाषा हो, तुम्ही हमारे जीवनका लक्ष्य हो।

'आतिश' ने अपनी प्रियतमाकी पवित्रता इन शब्दोंमें व्यक्त की है—

चश्मे-ना-महरमको बर्क़े-हुस्न कर देती थी बन्द।
दामने-इस्मत तेरा आलूदगीसे पाक[1] था॥

'जौक' ने भी कैसा अछूता और पाकीजा शेर कहा है—

मैं ऐसे साहिबे-इस्मत परी-पैकरपै आशिक़ हूँ।
नमाजें पढ़ती हैं हूरें, हमेशा जिसके दामनपर[2]॥

प्राचीन शाइरोंके हमने ऊपर चार शेर नमूनेके तौरपर दिये हैं, ताकि मालूम हो सके कि पाकीजा इश्क़से हमारी क्या मुराद है। वर्त्तमान युगीन शाइरोंके इस क़िस्मके हज़ारों शेर उनके कलाममें यत्र-तत्र दृष्टि-गोचर होंगे, और कुछ ऐसे अशआर प्रसंगानुसार हम आगे भी देंगे।

नापाक इश्क़ और बाजारी माशूक़

हम समझते हैं बाजारी इश्क़िया शाइरीके उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं। केवल कोकशास्त्रका नाम ले देने मात्रसे विज्ञ मनुष्य समझ जाते हैं कि उसके अन्दर क्या भरा हुआ है। गजलका माशूक़ प्रायः इन विशेषणोंसे सम्बोधित किया जाता है—

१—शोख	६—बदजबान
२—बे-अदब	७—संगदिल
३—बे-वफा	८—जालिम
४—बे-मुरव्वत	९—हरजाई
५—बे-रहम	१०—कातिल

---

[1]तेरा शील अत्यन्त पवित्र है, उसमें कोई बाल नहीं आ सकता। तेरा रूप इतना तेजवान है कि कामुक व्यक्ति तुझे देख नहीं सकते, उनके नेत्र बन्द हो जाते हैं।

[2]मैं ऐसी शीला सुन्दरीपर आसक्त हूँ कि जिसके आँचलपर हूरें नमाज पढ़नेको लालायित हैं।

११—जल्लाद १३—जालसाज
१२—दगाबाज १४—वायदा-फरामोश

ऐसे क्रूर, हत्यारे, दुराचारी, कपटी माशूकका तसव्वुर उर्दू-शाइरीमें कहाँसे और कैसे आया? हमारा दावा है कि किसी जल्लाद और कस्साबतककी ऐसी सन्तान चराग लेकर ढूँढनेपर भी नही मिलेगी, जिसपर उक्त सभी विशेषण मौजूं हो सके। फिर इस तरहके अशआर किस माशूकके तसव्वुरमे लिखे गये?

शोख़

अमीर—कहा जो मैंने कि यूसुफ़को यह हिजाब[1] न था।
तो हँसके बोले—"वोह मुंह क़ाबिले-नक़ाब न था"॥

दाग़— जब यह सुना कि दाग़का आज़ार[2] कम हुआ।
ज़ानूपं हाथ मारके बोले—"सितम हुआ"॥
अयादतको[3] मेरी आकर वोह यह ताकीद[4] करते है—
"तुझे हम मार डालेंगे, नहीं तो जल्द अच्छा हो॥"

दर्द— फिरते हो सज बनाये तो अपनी इधर-उधर।
लग जाय देखिए न किसीकी नज़र कहीं॥

अमीर मीनाई—
यह क़ज़ा[5] है कि अदा आपकी सुब्हान अल्लाह!
सफ़[6] उलटती है जो मस्जिदमे जनाब आते है!

बेअदब

इंशा— पूछा किसीने मुझको उनसे कि कौन है यह?
तो बोले हँसके—"यह भी है इक ग़ुलाम मेरा॥"

---

[1]शर्म, लाज, [2]दुख; [3]रोगीका हाल पूछनेको; [4]आदेश, हुक्म, चेतावनी देते है; [5]मृत्यु; [6]नमाज़ियोकी कतारे।

अफ़सोस— सूरत तुझे हक़ने दी परी-सी।
पर आदमीयत न दी ज़री-सी॥

बेवफ़ा

असर देहलवी—

बेवफ़ा तेरी कुछ नहीं तक़सीर[1]।
मुझको मेरी वफ़ा[2] ही रास नहीं॥

दर्द— नहीं शिकवा मुझे कुछ बेवफ़ाईका तेरी हरगिज़।
गिला तब हो अगर तूने किसीसे भी निबाही हो॥

दाग़— ख़ुमार-आलूदा[3] आँखे बल जबींपर[4] दर्द है सरमें।
रहे तुम रात-भर बेचैन किस कम्बख़्तके घरमें?

हज़ारों आते-जाते हैं किसीसे कुछ नहीं मतलब।
फ़क़त इक चौकसी करता है उनका पासबां[5], मेरी॥

बेमुरव्वत

क़ायम चाँदपुरी—

ज़ालिम-ख़बर तो ले कहीं 'क़ायम' ही यह न हो।
नालाँ-ओ-मुज़तरब[6] पसे-दीवार[7] है कोई॥

बेरहम

क़ायम चाँदपुरी—

समझके शीश-ए-दिलको पटकियो ऐ बुते-मस्त!
बजाय बादा[8] लहू है, इस आबगीनेमें[9]॥

---

[1]दोष; [2]नेकी; [3]नशीली; [4]माथेपर; [5]दरबान; [6]चीखता, तड़पता; [7]दीवारके पीछे; [8]शराबके बजाय; [9]प्यालेमे।

अमीर मीनाई—

वोह बैठे-बैठे जो दे बैठे क़त्ले-आमका हुक्म।
हँसी थी उनकी, किसीपर कोई अताब,[1] न था॥

बदज़बान

इंशा— ख़याल कीजिए क्या आज काम मैंने किया।
जब उसने दी मुझे गाली, सलाम मैंने किया॥

मोमिन— लगती है गालियाँ भी तेरे मुँहसे क्या भली।
क़ुरबान तेरे, फिर मुझे कह ले इसी तरह॥

दुश्नामे-यार[2] तब-ए-हज़ींपर[3] गराँ[4] नहीं।
ऐ हमनफ़स[5]! नज़ाकते-आवाज़ देखना॥

दाग़— मुझे कोसें, बलासे गालियाँ दे।
मगर वोह नाम ले हर बार मेरा॥

परदे-परदेमे गालियाँ देकर।
मुझसे वोह पूछते है "क्या समझे?"

संगदिल

असर देहलवी—अगर ऐसा ही अब सताइयेगा।
ख़ैर जीता मुझे न पाइयेगा॥

ताबाँ— सबब जो मेरी शहादतका[6] यारसे पूछा।
कहा कि—"अब तो उसे गाड़ दो, हुआ सो हुआ॥"

---

[1]क्रोध; [2]प्रेयसीकी गालियाँ; [3]क्लान्त हृदयपर; [4]बोझल; [5]साथी; [6]बलिदानका, कत्ल होनेका।

हसरत लखनवी—

कल किसीने जो कहा "मरता है आशिक़ तेरा"।
हँसके ग़ैरोंकी तरफ़ कहने लगा—"और सुना?"

मोमिन— ख़्वाहिशे-मर्ग[1] हो, इतना न सताना, वरना।
दिलमें फिर तेरे सिवा और भी अरमाँ[2] होगा॥

दाग़— हो गया ईद उनको मेरा रोग।
क़हक़हे उड़ रहे हैं मातममें॥

ज़ालिम

दर्द— ज़ालिम जफ़ा[3] जो चाहे सो कर मुझपै तू वले[4]—
पछतावे फिर तू आप ही ऐसा न कर कहीं॥

दाग़— कहते हैं वोह "जलायेंगे हम तुझको हश्रतक[5]।
दुश्मनकी क़ब्र तेरे बराबर बनायेंगे॥"

ग़ुबार-आलूदा[6] हैं पाये-हिनाई[7]।
मिटाकर आये हो मदफ़न[8] किसीका!

हरजाई

मोमिन— बेपरदा ग़ैरसे न हुआ होगा शब[9] कि सुबह।
आँखोंमे शर्म थी न नज़रमे हिजाब[10] था॥

ग़ैरके हमराह[11] वोह आता है मैं हैरान हूँ।
किसके इस्तक़बालको[12] जी मेरा तनसे जाय है?

---

[1]मृत्युकी अभिलाषा; [2]इच्छा; [3]अत्याचार; [4]लेकिन; [5]प्रलयतक; [6]धूलसे भरा हुआ; [7]मेहदीसे रचा हुआ पाँव; [8]कब्र; [9]रातको [10]लाज [11]साथ-साथ; [12]स्वागतको।

अफ़सोस— कुछ बात मुझसे कर नहीं सकते, हज़ार हैफ़[1]!
मुद्दतमें तुम मिले भी तो ग़ैरोंके घर मिले!!

जुरअत— इस ढबसे किया कीजे मुलाक़ात कहीं और।
दिनको तो मिलो हमसे, रहो रात कहीं और!

नासिख़— हुजूम रखते हैं जाँबाज यूँ तेरे आगे।
जुआरियोंका दिवालीपै जैसे जमघट हो॥
जलाओ ग़ैरोंको मुझसे जो गरमियाँ करके।
तुम्हारे कूचेमें तैयार एक मरघट हो॥

दाग़— अपने दीवानोंको देखा, तो कहा घबराकर—
"यह नई वजअ़की किस मुल्कसे ख़लक़त[2] आई?"

अनवर— न हम समझे न आप आये कहींसे।
पसीना पूछिए अपनी जबींसे[3]॥

अमीर मीनाई—

नामे[4] वोह बारी-बारी उश्शाक़के[5] पढ़ेंगे।
उजलतमें[6] कुछ न होगा, नम्बर लगे हुए हैं॥
है हुक्मे-यार कोई मेरी तरफ़ न देखे।
ये इश्तहार अब तो घर-घर लगे हुए हैं॥

दाग़— आज क्या है जो निकलवाये गये घरसे रक़ीब[7]?
और दरबानोंके फिकवा दिये बिस्तर बाहर?

क़ातिल

हसन— किया क़त्ल और जान बख़्शी भी की।
'हसन' उसने एहसाँ दुबारा किया॥

---

[1]अफ़सोस; [2]जनता; [3]मस्तकसे; [4]पत्र; [5]प्रेमियोंके; [6]शीघ्रतामें; [7]प्रतिद्वन्द्वी।

मुसहफ़ी— खींचकर तेग़ यार आया है।
इस घड़ी सर झुका दिये ही बने॥

नासिख़— दोस्तो! जल्दी ख़बर लेना, कहीं 'नासिख़' न हो।
क़त्ल आज उसकी गलीमें एक बेचारा हुआ॥

जौक़— कहे है ख़ंजरे-क़ातिलसे यह गुलू मेरा—
"कमी जो मुझसे करे तो पिये लहू मेरा॥"

अमीर मीनाई—

पछता रहे हैं ख़ून मेरा करके क्यों हुज़ूर!
अब इसपै ख़ाक डालिए, जो कुछ हुआ-हुआ॥

दाग़— ज़िबह[1] करते ही मुझे क़ातिलने धोये अपने हाथ।
और ख़ूँ-आलूदा[2] ख़ंजर ग़ैरके घर रख दिया॥

अपने बिस्मिलका सर है ज़ानूपर।
किस मुहब्बतसे जान लेते हैं!

मेरे मज़ारको तोदह[3] किया है तीरोंसे।
बहाना ये है कि रोज़न[4] किये हवाके लिए॥

मेरे क़त्लके रोज़ मेला लगेगा।
यह जल्सा वोह इक धूम-धामी करेंगे॥

चुटकीमें उनकी तीर निगाहोंमें उनके क़हर[5]।
क्या जाने कितनी देर हमारी क़ज़ामें है?

या इलाही ख़ैर हो, बैठे है वोह यूँ बज़्ममें[6]।
तेग़[7] रक्खी है बराबर और ख़ंजर सामने॥

---

[1]क़त्ल; [2]रक्त रंजित; [3]छलनी; [4]सूराख; [5]क्रोध; [6]महफ़िलमें; [7]तलवार।

जल्लाद

मोमिन— दावा-ए-तकलीफ़से[1] जल्लादने।
रोजे-जज़ा क़त्ल फिर अपना किया॥

दग़ाबाज़

दाग़— लड़ती जाती है ग़ैरसे भी आँख।
मुझसे भी बात करते जाते हैं॥

रियाज़ ख़ैराबादी—

नज़अमें[2] यारसे पैमाने-वफ़ा[3] करते हैं।
उस दग़ाबाजसे हम आज दग़ा करते हैं॥

जालसाज़

ज़ौक़— माल जब उसने बहुत रद्दो-बदलमें मारा।
हमने दिल अपना उठा अपनी बग़लमें मारा॥

वादा-फ़रामोश

ग़ालिब— ता फिर न इन्तज़ारमें नींद आये उम्रभर।
आनेका वादा कर गये आये जो ख़्वाबमें॥

दाग़— "वफ़ा करेंगे, निबाहेंगे, बात मानेंगे।"
तुम्हें भी याद है कुछ, यह कलाम किसका था?

हबीबका तसव्वुर

गज़लमें ऐसे शोख एव हरजाई हबीब (चचल और खण्डिता-नायिका) का तसव्वुर वेश्याकी वजहसे आया। क्योंकि उन दिनों तमाश-बीनी (वेश्या-आसक्ति) जीवनका एक अंग और समाजकी एक आवश्यक प्रथा बनी हुई थी। बादशाहों-नवाबों, राजा-महाराजाओंके दरबारोसे यह वाबस्ता

---

[1]कष्ट देनेके लिए; [2]जीवनकी अन्तिम घड़ीमें; [3]नेकी करनेका वायदा।

(सम्बन्धित) होती थी। परम्परासे चले आये इस रिवाजके कारण सद्‌गुणी, सुशील और आदर्श शासक भी इनका नृत्य देखते थे। यह एक ऐसी ही आवश्यक प्रथा थी, जैसी कि यूरोपमे मद्य-पान और बालडान्सकी प्रथा है।

इन शासकोका अन्धानुकरण प्रायः सभी रईस, जागीरदार, ज़मीदार करते थे। वेश्याओंपर जो जितना अधिक व्यय करता था, उसकी रईसाना शान उतनी ही अधिक बढती थी। नवाब जुल्फ़िकारअलीने अगर दो तवाइफ़े नौकर रखी हुई थी तो ठाकुर रामसिहका चार तवाइफ़ रखना लाजिमी था। न रखे तो फिर मूंछोंपर ताव इस शानसे कैसे दिया जा सकता था? जब मनोहर पण्डित अपने लडकेकी शादीमे चार-चार तवाइफ़े ले गये, तब लाला उल्फत आठसे कम क्या ले जाये? बिरादरी क्या कहेगी। सरे-बाजार नाक कटानी हो तो चाहे एक भी न ले जाये! महफ़िल गरम हुई तो मुक्खा परचूनिये और मुशी हलवाई-जैसोने तवाइफकी मुट्ठियाँ रुपयोसे भर दी। तब लाला मोहनलाल गिन्नियाँ न्योछावर न करे तो महफिलसे सुर्खरू होकर कैसे उठे? और जब लालाओंने गिन्नियाँ देनी शुरू कर दी तो नवाब हैदर और ठाकुर सुजानके लिए अब इसके सिवा और चारा भी क्या है कि तबलचीके तबलेको अशर्फियोसे भर दे।

यह तमाशबीनी यहाँतक प्रचलित थी कि बहुत-से रईस अपने लडकोंको तवाइफ़ोके यहाँ तहजीब सीखनेके लिए उसी तरह भेजते थे, जैसे कि वर्त्तमानमे यूरोप भेजना आवश्यक समझते है। उन दिनों यह आम धारणा थी कि बगैर इस तरहकी सुहबतमे रहे बज्मे-अदबमे बैठनेका सलीक़ा-ओ-शऊर नही आ सकता, और जो ऐसी सुहबतोंमे रहकर परवान चढ़ते थे, वे इस रगके कैसे माहिर होते होगे, आसानीसे अनुमान लगाया जा सकता है।

वह युग ही कुछ ऐसा था कि साधारण-से-साधारण व्यक्तिको भी

लड़केकी शादीमें तवाइफ़का बुलाना आवश्यक होता था। लडकीवालेकी पहली शर्त ही यह होती थी। न ले जानेपर खातिर-तवाजअमें तो अन्तर पड़ता ही था, गाँवके शोहदे पत्थर भी फेंकते थे। और जिस शादीमें तवाइफ जाती थी, दो-चार छोकरोंको तीरे-नजरसे घायल भी करती थी, और इस तरह यह तमाश-बीनीका रोग घर-घरमें फैला हुआ था। मैं स्वय कई ऐसे रईसोको जानता हूं, जो करोडपति होते हुए इस शौककी बदौलत दो-कौडीके हो गये। मैंने एक रईसको ऐसी स्थितिमें मरते देखा है कि दुश्मनपर भी ऐसी बला न आये। यही रईस आलमे-शबाबमें एक महफिलमें बैठे रक़्स देख रहे थे। पिता मर चुके थे। करोडो रुपयेकी दौलत हाथ लगी थी, तजुर्बा कुछ था नहीं, जवानीकी चौखटपर पाँव ही रखा था, कि तवाइफको छेड़ बैठे। तवाइफ़ भी रूप, सगीतके अलावा अपने हुनरमें यकताँ थी। वह पहलेसे ही इस वारके लिए तैयार थी, भरी महफ़िलमें उसने रईसजादेका माँजना झाड़ दिया। परिणामस्वरूप रईसजादेके मनमें भी बदला लेनेकी भावना उठ खडी हुई कि जैसे भी हो इसे नीचा दिखाना ही चाहिए। मीरासियोंसे एकान्तमें पूछा तो उन्होंने बताया "हुजूर, यह बड़ी पाकदामन और नमाज-रोजेकी पाबन्द है। नाच-गानेका पेशा तो हुनरकी ख़िदमत समझकर करती है। नवाबोंतकको कोठेपर नहीं चढ़ने दिया, आप तो हैं किस खेतकी मूली?" बस फिर क्या था? नये बछेडेको एक हण्टर और लगा। परिणाम इसका यह हुआ कि सारी सम्पत्ति उसके इश्कमें लुटा दी। वेश्यानृत्यकी यह प्रथा इतनी आम थी कि बडे-बड़े धार्मिक व्यक्तियोको भी खुशी आदिके अवसरो-पर अनिच्छा होते हुए भी वेश्या-नृत्य कराना पड़ता था। खानकाहो और दरगाहोंके उर्सोपर वर्त्तमानमें भी वेश्याएँ जाती हैं।

इन तवाइफोंमें बहुत-सी शाइराएँ भी होती थी। एक तो हुस्नकी मार ही क्या कम होती है, फिर साँपको भी वज्दमें ला देनेवाला संगीत; फिर शाइराना मज़ाक, उसपर भी तुर्रा यह कि तवाइफाना अन्दाज़,

चोचले, शोखियाँ, तेवर—यह सब घरेलू पत्नीमें कहाँ ? वह भोली-भाली अबलाएँ यह सब नाजो-अदाएँ कहाँसे लाये ? मगर दिलफेक, कामुक व्यक्तियोंको तो यह सब चाहिएँ। घरमें मयस्सर नहीं तो बाजारमें तो है ? उनकी बलासे शरीफ बीवी आठ-आठ आँसू रोती है तो वे अपनी उमगोंका खून कैसे कर दें ? घर तबाह हो रहा है, बच्चे भी उसी कूचेमें खेलना चाह रहे है, सामाजिक स्तर गिरता जा रहा है, तो वे क्या करें ? क्या इस चन्दरोजा जवानीको यूँ ही गुजार दें ? नहीं जी, इन हुस्नके परिस्तारोंसे यह हरगिज नहीं हो सकेगा।

दिल्लीमें ५-६-वर्ष मुझे एक ऐसे पडोसमें रहनेका इत्तफाक हुआ, जिनका जवान लडका कूचये-हुस्नका दिल-दादा था। घरमें सुशीला रूपवती देवी-जैसी पत्नी, मगर दिल एक तवाइफके जुल्फे-पेचोंमें फँसा हुआ था। बीबी पूजा-पाठकी पाबन्द, नेक और शरीफ। भला वह तकल्लुफ, अन्दाज, तर्जे-गुफ्तगू कहाँसे लाये, जो तवाइफने लोरियाँ सुनते-सुनते सीख लिये थे !

पर्देकी सख्त पाबन्दीने भी तमाशबीनीको हवा दी। इसकी वजहसे किसी शरीफ़जादीसे दीदावाजी नहीं चल सकती थी। अगर किसी मनचलेका दिल अकस्मात् किसीकी तीरे-नजरसे घायल हो भी गया तो, उसे बार-बार देखना, पत्र-व्यवहार करना, सन्देश भेजना, इश्क जारी रखना बहुत दुष्कर था। इसे हर कौममें मायूब समझा जाता था। लडकियोंकी तरफ़से तो यह पहल होती ही न थी। लड़को-द्वारा शाजो-नादिर हो जाती थी तो उसकी अवसर मरम्मत कर दी जाती थी। इसलिए ऐसे पुरखतर कूचये-इश्कमें कोई बिरला ही सरफिरा क़दम रखता था।

मर-मरके हमने काटी है अपनी जवानियाँ

'मीर' के समान इस तरह रो-रोकर जवानी काटनेको भला वे कामुक शाइर कैसे प्रस्तुत हो सकते थे, जिनके यहाँ इश्क़का तात्पर्य ही काम-वासना शान्त करना है।

बुलहविसी और दुआ-ए-सोज़े-इश्क़[1]।
दाग़ खानेको कलेजा चाहिए॥

—अमीर मीनाई

ऐसे शाइर जो न तो सामाजिक बन्धनोंको तोड़नेकी शक्ति रखते थे, न पारिवारिक-सघर्षका ख़तरा ले सकते थे और न अपनी काम-वासनाओंपर हावी हो सकते थे, साधारण स्तरके आदमी थे। उनकी पहुँच इन तवाइफ़ोके यहाँ वा-आसानी हो जाती थी, और इसी तमाशबीनीको यह लोग इश्क़ समझ लेते थे। यह बेचारे 'मीर'-जैसा दिल फूँकनेको कहाँसे लाते?

रोशन है इस तरह दिले-वीरामें एक दाग़।
उजड़े नगरमे जैसे जले है चराग़ एक[2]॥

मजबूरन तवाइफ़ोंके सगेदरपर सज्दा करना पड़ता था, इसलिए हबीबका तसव्वुर आम शाइरोका बाजारी औरत (वेश्या-तवाइफ़) हो गया। नामवर तवाइफोके चाहनेवाले ज्यादा होते थे। उन्हे हर तमाशबीन नवाब और रईस अपनी बनाना चाहता था। मगर वह किसकी होकर रहती थी? मोटे आसामीको चन्द दिन फाँसा-चूसा, और दुत्कार दिया। इन चाहनेवालोमे परस्पर प्रतियोगिता चलती थी। नाकामयाब

---

[1]विषयलोलुपसे पवित्र प्रेमकी आशा करना व्यर्थ है। पवित्र-प्रेमका साहस वही कर सकता है जो अपने हृदयको दग्ध करनेकी क्षमता रखता हो।

[2]पुराने जमानेमें जब किसी नगरको बादशाही अताबकी वजहसे मिसमार कर दिया जाता था, तब उस उजड़े नगरमे रातके वक़्त ऊँचे स्थानपर एक चिराग जला दिया जाता था, ताकि देखनेवाले उससे इबरत ले सकें।

उम्मीदवार अपनेको सच्चा आशिक और कामयाब तमाशबीनको अदू समझता था। जो ज़्यादा ज़र लुटाता, उसीकी मुहब्बतका तवाइफ दम भरती। उसके सामने दूसरे चाहनेवालेको उपेक्षासे देखना पड़ता या मसलहतन बज्मे-रक़्ससे उठवाना पड़ता तो इसे शाइर आशिके-सादिक़की बेइज्जती समझता! अपने स्वार्थके विपरीत तवाइफका जो भी बर्ताव होता, उसे वह जुल्मो-सितम, जोरो-जफा तसब्बुर करता था और अपने हर प्रयत्नको वफ़ादारी समझता था।

मुझे एक ऐसे ही तमाशबीन शाइरने आप-बीती घटना सुनाई थी कि एक तवाइफ़के यहाँ जब वे रातभर रहनेकी ग़रजसे सोये हुए थे, तब उसका एक पुराना चाहनेवाला आगया और उन्हे खिसकनेको मजबूर होना पड़ा। बेचारे तवाइफ़की बेवफाई और हरजाईपनका शिकवा बहुत ही दुखे हुए दिलसे कर रहे थे और मैं गालिबका यह शेर मन-ही-मनमें पढ रहा था—

हमको उनसे वफ़ाकी[1] है उम्मीद!
जो नहीं जानते वफ़ा क्या है!!

बाजारी इश्कके अलावा, बेवफ़ा माशूक़ आदिका तसब्बुर शाइरोंने बादशाही-नवाबी दरबारोंसे भी लिया। वे शाइर जो दरबारोंसे सम्बन्धित होते थे, बादशाहों-नवाबोंको हबीब, उनके मुँह लगे मुसाहबोंको अदू, उनकी उपेक्षाओंको तगाफ़ुल, उनकी ची-ब-जबीको जौरो-जफा, अपनेको मजलूम-ओ-नाचार आशिक़ तसब्बुर करते थे और उन वाकयातको गमे-जानाँ बनाकर ग़ज़लके लबोलहजेमें बयान करते थे।[2]

---

[1]नेकीकी; [2]गजलकी सबसे बड़ी विशेषता ही यह है कि बातको सीधे न कहकर हुस्नो-इश्क, गुलो-बुलबुल, सागरो-साक़ीके माध्यमसे बयान किया जाता है। बक़ौल ग़ालिब—

हर चन्द हो मुशाहद-ए-हक़की गुफ्तगू।
बनती नहीं है बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर॥

बाजारी इश्क और दरबारी घात-प्रतिघाती शाइरीकी वजहसे १९ वी शताब्दीतककी शाइरीमे पाक इश्कका जज्बा बहुत कम मिलता है, और जो आटेमे नमकके समान मिलता भी है तो वह इतना घुला-मिला हुआ है कि उसे अलहदा करना बहुत दुश्वार है। खुदा-ए-सुखन 'मीर' को ही लीजिए। कही तो उनके बुलन्द इश्क़का यह आलम है कि प्रेयसीके न आनेपर कोई शिकवा-ओ-शिकायत नही करते और अपने हृदयको यूं सान्त्वना दे लेते है—

जिगरचाकी, नाकामी, दुनिया है आख़िर[1]।
नहीं आये जो 'मीर' कुछ काम होगा॥

उसकी उपेक्षाको अपने ही इश्ककी खामी समझते है—

मुझीको मिलनेका ढब कुछ न आया।
नहीं तक़सीर[2] उस ना-आश्नाकी[3]॥

उन्ही 'मीर' के यहाँ अमरद-परस्तीके (छोकरोके प्रेम सम्बन्धी) अशआर भी पाये जाते है।

मिर्ज़ा 'गालिब'के यहाँ जहाँ ऐसे पवित्र-प्रेमका तसव्वुर है—

ऐ दिले ना-आक़बत-अन्देश! जब्ते-शौक़ कर।
कौन ला सकता है, ताबे-जलव-ए-दीदारे-दोस्त[4]॥

---

[1]हृदयको व्यथित करने और असफलतापर खेद करना व्यर्थ है। यह दुनिया है। प्रेयसीको भी दुनियाकी असुविधाओ-परेशानियोंने न आने दिया होगा।

'मीर'का पवित्र प्रेम देखिए कि वे प्रेयसीके न आनेपर अन्य शाइरोंकी तरह उसकी वादा-फरामोशीका गिला-शिकवा नही करते, अपितु अपने हृदयको उचित सान्त्वना देनेका प्रयास करते है।

[2]अपराध, खता; [3]अपरिचित प्रेयसीकी; [4]ऐ अदूरदर्शी, प्रेमी! अपनी चाहतको बसमे रख। उस सुशीला प्रियतमाके रूपको निहारनेकी सामर्थ्य किसमे है?

फ़रोग़े-शोलये-ख़स यक नफ़स है।
हविसको पासे-नामूसे-वफ़ा क्या[1] ?

वहाँ उनके यहाँ कहीं-कहीं ऐसे हकीर शेर भी नजर आते हैं—

क्या ख़ूब तुमने ग़ैरको बोसा नहीं दिया!
बस, चुप रहो, हमारे भी मुँहमें ज़बान है॥

सुहबतमे ग़ैरकी न पड़ी हो कहीं यह ख़ू[2]।
देने लगा है बोसा बग़ैर इल्तजा किये॥

गजलमें इस तरहके दुरंगे मजमून पाये जानेकी वजह यही है, कि हर शाइरकी विचार-धारा प्रारम्भसे अन्ततक यकसाँ नहीं रहती। बहुत कम ऐसे लोग होते हैं जो अपने भावोंको स्थायी रख सकें। कभी वे अपने चारों तरफके वातावरणसे प्रभावित होते हैं, और कभी अपने दिलकी मुख्तलिफ कैफियातसे मुतास्सिर होते हैं। जिसे अपना वतन छोड़ना पड़ा हो, उम्रभर पापड़ बेलने पड़े हों, वह 'मीर' यह न कहता तो और क्या कहता ?

आग थे इब्तदा-ए-इश्क़में[3] हम।
अब जो हैं ख़ाक इन्तहा[4] है यह॥

मेरे सलीक़ेसे मेरी निभी मुहब्बतमें।
तमाम उम्रमें नाकामियोंसे काम लिया॥

और यही 'मीर' जब लखनऊ पहुँच जाते हैं, वहाँ भरण-पोषणकी चिन्ताओंसे तनिक मुक्ति पाते हैं, और लखनऊकी रंगीन फिजा एवं चूमा-

---

[1]हविसकार (कामुक) को मुहब्बतकी इज्जतका पास नहीं हो सकता। फ़रोग़े-शोलए-ख़स (घासकी आगका भड़काव) यकनफ़स (एक पल) के लिए होता है। इसी तरह कामुकका प्रेम टिकाऊ नहीं होता।
[2]आदत; [3]बगैर माँगे; [4]प्रेमके प्रारम्भमें; [5]अन्त।

चाटीकी शाइरीके वातावरणमे साँस लेते है तो गो लाख तबीयतपर क़ाबू सही, मुँहका जायका बदलनेको अथवा होलीका भड़ुआ बननेको ऐसे शेर भी कह बैठते है—

मिलो इन दिनों हमसे एक रात जानी।
कहाँ हम कहाँ तुम कहाँ फिर जवानी॥

देहलवी-लखनवी शाइरी

देहलवी शाइरोंका जीवन अक्सर अभावों और दुश्चिन्ताओंमे व्यतीत हुआ। जब बादशाह एवं रईसोंकी हालत तबाह थी, तब उनसे सम्बन्धित शाइरोंका तो जिक्र ही क्या? बाल-बच्चोके भरण-पोषणकी चिन्ताओं और आकुलताओमे जिनका जीवन व्यतीत हो, उनके कलाममे दुःख, व्यथा, पीड़ा, तडप, निराशा, असफलता आदिका समावेश स्वाभाविक है।

देहलवी शाइरोमे मीर, सोज, दर्द, गालिब, मोमिन, जौक आदि जितने भी शाइर चमके, वे सब मुगलिया सल्तनतके जवालमे चमके। वे निराशाओ-की गोदमे पले, असफलताओंकी लोरियाँ सुनते-सुनते जवान हुए। मुसी-बते ही जिनका ओढना-बिछौना रही, उनके मुँहमे ऐसी करुणापूर्ण शाइरी न होती तो और किसमे होती?

देहलवी शाइरोकी यही करुणापूर्ण स्थिति उर्दू-शाइरीके लिए वरदान साबित हुई। दुःख-दर्द, व्यथा-पीड़ा ही शाइरीके मुख्य अग है। यह न हो तो शाइरी अपाहिज है। सुख शाइरके अन्तस्तलमे दबे हुए विकारोको उभारता है। दुःख शाइरके उच्च भावोको जागृत करता है। सुखान्त दृश्य मनको क्षणभरके लिए स्पर्श करता है। दुखान्त दृश्य हृदयको द्रवित करके रख देता है। सुख अस्थायी और दुःख स्थायी है। सुखकी घडियाँ लमहेभरको आती है और चली जाती है, दुःख जब आता है तो मरने-दमतक साथ नही छोड़ता। दुःख-व्यथामे वह पीडा और कसक होती है कि शाइर उनके व्यक्त करनेको मजबूर होता है। सुखमे यह सामर्थ्य कहाँ कि वह शाइरको कहनेके लिए लाचार कर सके।

मेरे रोनेका जिसमें क़िस्सा है।
उम्रका बहतरीन हिस्सा है॥
—जोश मलीहाबादी

हज़ार ऐशकी सुबहें निसार हैं जिसपर।
मेरी हयातमें ऐसी भी इक शबे-ग़म है॥
—मुहम्मदअलीख़ाँ असर

इससे बढ़कर दोस्त कोई दूसरा होता नहीं।
सब जुदा हो जायें, लेकिन ग़म जुदा होता नहीं॥
—जिगर मुरादाबादी

लखनवी शाइरोंने निराशाओं एवं असफलताओंका कभी मुँह नहीं देखा। जिन दिनों बादशाहत मिट रही थी, दिल्ली उजड रही थी, उन्हीं दिनों अवधकी नवाबी पूरे आबो-ताबके[1] साथ चमक रही थी। लखनऊके हर गली-कूचेमें लक्ष्मी थिरक रही थी। रक़्स-ओ-शराब,[2] साकी-ओ-मुतरिब[3] सर्वसाधारणके लिए सुलभ थे। भोग-विलास लखनवी जीवनका लक्ष्य था। दिनमें कहीं बटेरोंकी पालियाँ बदी जाती थीं, तो कहीं तीतरोंकी कुश्तियाँ होती थीं। कहीं मुर्गोंकी लडाइयाँ होती थीं तो कहीं कनकौओंके पेच होते थे। रातको कहीं कोकिलकंठी तवायफोंके नग्मे[4] गूजते थे, तो कहीं मुशाइरोंकी वाह-वासे कान पड़ी आवाज सुनाई न देती थी। कहीं रक्सका वह आलम होता था कि महफिल-की-महफिल झूमती होती थी। शराब पी ही नहीं जाती थी, बहाई भी जाती थी। लखनवियोंकी हर जरूरियात सुकेत मात्रमें पूर्ण होती थी। लखनऊका शाइर, ऐय्याश, शराबी और तमाशबीन था। छेड-छाड, चुहल, मस्ती, उसका रात-दिनका मशगला[5] था।

देहलवी शाइरोंने आपदाओंमें जवानियाँ गुजारी थीं। इसलिए उनकी शाइरीमें रंजो-अलमकी[6] टीस मिलती है। लखनवी शाइरोंने भोग-

---

[1]चमक-दमकके; [2]नृत्य-शराब; [3]गायिका; [4]संगीत; [5]कार्य्य, चर्य्या, शौक; [6]दुःख-व्यथाकी।

विलासमें आँखे खोली थी, इसलिए उनकी शाइरीमें रंगीनियाँ रक़्स[1] करती नजर आती है।

१७८० ई० पूर्व गजलमे हबीबका[2] तसव्वुर[3] स्पष्ट नही था। वह स्त्री है या पुरुष, यह निश्चय नही किया जा सकता था। क्योकि हबीब चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसके लिए, सज्ञा, विशेषण, क्रिया, सम्बोधन आदि सब स्त्री लिग न होकर पुल्लिग व्यवहृत होते थे। उदाहरणस्वरूप निम्न चार मिसरोको लीजिए—

प्रेम-पात्र पुरुष या स्त्री

है ख़बर गर्म उनके आनेकी।

जमा करते हो क्यों रक़ीबोंको?

तुझीको यहाँ जलवा-फ़रमा न देखा।

वोह मिला भी कभी तनहा तो मै तनहा न हुआ।

इन मिसरोसे स्पष्ट नही होता कि ये स्त्री या पुरुष किस हबीबको तसव्वुर करके लिखे गये है। हबीबका अर्थ 'प्यारा' है। यानी जिसे प्यार किया जाय, वह हबीब है। पुरुष किसी युवतीको प्यार करता है तो वह युवती उसकी हबीब हुई और यदि युवती पुरुषको प्यार करती है तो पुरुष युवतीका हबीब हुआ। यदि दोनो एक-दूसरेको चाहते—प्यार करते है तो दोनो एक-दूसरेके हबीब और आशिक हुए। हकीकी शाइरोंका खुदा हबीब होता है। अतः गजलके अशआर स्त्री-पुरुष दोनों ही समान रूपसे व्यवहारमे लाते थे, और शाइर स्त्री हो या पुरुष अपनेको आशिक और अपने प्यारेको हबीब समझते थे। दोनों ही अपने लिए तथा हबीबके

---

[1]थिरकती, नाचती; [2]माशूकका; [3]उल्लेख, चिन्तन।

लिए पुल्लिग शब्दोंका व्यवहार करते थे। नवाब आसफुद्दौला अपने हबीबके तसव्वुरमे इस तरह लिखते थे—

कोई बात तो हमारी भी मान, अब खुदासे डर।
कबतक दिया करेगा हमें तू जवाब तल्ख[1] ?

तो हिजाब बेगम भी यूँ हमकलाम होती थी—

रक़ीबोंकी[2] तो शबोरोज़[3] सुनते हो बातें।
हमारी भी तो कभी माहलक़ा[4] ! सुनो तो सही ॥
नहीं यह खूब कि सुनते नहीं किसीकी तुम।
यह देखो तो कि मैं कहता हूँ, क्या सुनो-तो सही ॥

शाइरीका यह ढग तो बहुत अच्छा था कि हबीबका स्पष्ट सकेत न हो और स्त्री-पुरुष दोनों ही समानरूपसे लुत्फ-अन्दोज़ हो सके। मगर अच्छी चीज़मे भी बुरे पहलू उसी तरह निकल आते हैं, जिस तरह गुलाबमे काँटे। इस शाइरीमे बाज़ मनचलोंने छोकरोंको भी हबीब तसव्वुर करना शुरू कर दिया और बाज़ने उनके नाम अंकित करके, सब्ज़-ए-ख़त (ठोड़ीके बाल) टोपी, दस्तार आदिका उल्लेख करके स्पष्टतः छोकरेको हबीबका रूप दे दिया !

ग़ज़लमे सबसे पहले 'हसरत' ने[5] नवाब आसफ़ुद्दौलाके शासन-काल (१७७२-१७९७ ई०) मे स्पष्टतः स्त्रीको हबीबका दर्जा दिया। तबसे लखनवी शाइरीमे स्त्रियोचित बातोंका समावेश होने लगा। लेकिन परम्पराके अनुसार क्रिया, विशेषण, सम्बोधन आदि पुल्लिग ही इस्तेमाल किये गये। यहाँ हम उदाहरण-स्वरूप प्रोफेसर अन्दलीब शादानी-द्वारा सकलित जून १९५१ के निगारमे-से ४१ अशआर सधन्यवाद दे रहे हैं—

---

[1]कड़वा; [2]प्रतिद्वद्वियोंकी (सौतोंकी); [3]दिन-रात; [4]चन्द्रमुखी; [5]आनन्दित; [6]हसरत देहलीके रहनेवाले थे, मगर लखनऊ जाकर रहने लगे थे और वहीं उन्होंने इस रगका आविष्कार किया था।

परदानशीं हबीब

क़रार— शायद कि कोई परदानशीं झाँक रहा है।
आज आई नज़र रोज़ने-दीवारकी[1] आँखें॥

आग़ा— नज़र पड़ी है तेरी जबसे पटकी आड़मे आँख।
लगी ही रहती है, ऐ बुत! मेरी किवाड़मे आँख॥

गरमाँ— हम आये तो चिलमनमें[2] लगाये गुले-नरगिस[3]।
दरपरदा दिखाता है वोह रश्के-चमन[4] आँखें॥

नज्द— लिल्लाह झरोकोंसे दिखा जाइए सूरत।
मुश्ताक़[5] है अब जलवए-दीदारकी[6] आँखें॥

कैफ़— निगाहे-आशिक़े-मुश्ताक़[7] पहुँच जाती है।
लाख घूँघटको करे यार हिसारे-आरिज़[8]॥

मुहसन— हमसे कन्धा जो बदल ले तेरी डोलीके कहार।
अर्शे-आलासे[9] भी ऊँचा हो हमारा शाना[10]॥

यह परदा, चिलमन और किवाडोकी ओटमे ताक-झाँक, यह रोज़ने-दीवारो-दर और झरोखोंमे नज़र-बाज़ियाँ और यह डोलीकी सवारी, परदादार हबीबका स्पष्ट सकेत करती है। इस तरहके हया परवर[11] हबीबके तसव्वुरके[12] बजाय लखनवी शाइरीमे बाजारी-हबीबका उल्लेख बहुत अधिक मिलता है।

बाज़ारी-हबीब

मुहबत— हो गया हमको जुनूँ[13] टुकड़े गरेबाँको किया।
रख लिया उसने वमे-रक़्स[14] जो दामा[15] सरपै॥

---

[1]दीवारके झरोखोंमे-से आँखे दिखाई दी; [2]तीलियोंके परदेमें; [3]नरगिसका फूल; [4]फूलोंकी ईर्ष्या योग्य; [5]उत्सुक; [6]चमत्कार देखनेवालेकी,; [7]उत्सुक प्रेमीकी दृष्टि; [8]कपोलको घूँघट रूपी क़िलेमे छिपाना; [9]आकाशसे; [10]काँधा; [11]लज्जाशील प्रेयसीके; [12]चिन्तनके; [13]उन्माद; [14]नाचते समय; [15]दुपट्टेका पल्ला।

हस्साम— बे-हिजाबीमें[1] भी परदा ही रहा आशिक़से।
रक़्समें[2] भी नज़र आये, तहे-दामाँ-आरिज़[3]॥

फ़रोग़— क्या ख़ुशनुमा बनाये हैं हक़ने तुम्हारे हाथ।
करते ब-वक़्ते-रक़्स हैं क्या-क्या इशारे हाथ॥

तासीर— हाथोंको नाचमें जो मुक़र्रर[4] उठाइए।
दरियाए-हुस्न[5] आपका बढ़ जाये चार हाथ॥

रक़ीब— वक़्ते-रक़्स[6] आगे बढ़ा, रखके वोह जब हाथ पै हाथ।
ग़श हुए, लोट गये, मारके सब हाथपै हाथ॥

शहीद— दस्ते-रंगी[7] जब कि दिखलाई दिया हंगामे-रक़्स।
शमए-महफ़िल जल गई, उस ख़ुश-अदाके[8] हाथसे॥

सैर— कंगन चमकते हैं जो दमे-रक़्स हाथोंके।
हैं अहले-बज़्मके[9] लिए बिजली कलाइयाँ॥

वज़ीर— चल रहे हैं पाँवके बिछवे अजब हंगामे-रक़्स।
करती हैं ख़ूंरेज़ियाँ[10] हर-हर क़दमपर उंगलियाँ॥

मुज़तर— वोह हाथ उठा-उठाके यह कहते हैं रक़्समें।
"मुजरा करे जो अब कोई हमसे बचाये दिल॥"

महर— नाचका हुस्न बढ़ गया दूना।
लचके सब ऐ हसीं कमर-कूले॥

---

[1]बेपर्दगीमें; [2]नाचनेमें; [3]घूँघटके अन्दर कपोल; [4]दुबारा, पुनः; [5]सौन्दर्यका दरिया; [6]नाचते समय; [7]मेहदी रचा हाथ; [8]मोहक अदा-वालीके; [9]महफ़िलवालोंके; [10]रक्तपात।

सरूर— करते हैं सहर[1] रक़्समें उस गुलबदनके पाँव।
क्या-क्या समाँ दिखाते हैं, ताऊस[2] बनके पाँव॥

सालक— इस अदासे बज़्ममें रक़्साँ हुआ वोह रश्के-माह[3]।
बन गया घुँघरू हर इक चश्मे-तमाशा पाँवमें॥

नासिख़— रक़्समें आती नहीं यह तेरे घुँघरूकी सदा[4]।
करते हैं आसूदगाने-ख़ाक[5] शेवन[6] ज़ेरे-पा[7]॥

सग़ीर— सियाही पुतलियोंकी यह भी इक परदा है ज़ाहिरका।
फिरा करती है तेरी सुरमई पिशवाज़[8] आँखोंमें॥

नासिख़— आवाज़ यह होती नहीं ज़िनहार[9] गलेमें।
समझो न रगें, साज़के हैं तार गलेमें॥

मोहसन— बेहाल कर दिया मुझे गानेने आपके।
लै है बलाकी, क़हरका खटका गलेमें है॥

लखनऊके इस दौरकी सीमायटीके बाज़ पहलुओंपर निम्नलिखित अशआरसे रोशनी पड़ती है—

बर्क़— नीचे हम बैठे हैं कोठेपै अलग सुहबत है।
अब तो होते हैं सितम ऐ गुले-ख़न्दाँ[10] सरपर॥

ख़ल्क़— फिर हाथमें है हाथ सरे-चौक ग़ैरका।
निकले हैं रफ़्ता-रफ़्ता फिर उस सीमतनके[11] पाँव।

---

[1]जादू; [2]मोर; [3]जिसके सौन्दर्यके आगे चन्द्रमा भी ईर्ष्या करे; [4]आवाज़; [5]मिट्टीमें मिले हुए मुर्दे; [6]नाले; [7]पाँवके नीचे; [8]नाचनेकी पोशाक; [9]हरगिज; [10]फूलोंकी तरह हँसनेवाले; [11]चान्दी-जैसी गोरीके।

अमानत— ग़ैरोंके नशे बज़्ममें[1] क्या-क्या हिरन हुए।
हाथ उसने जब रखा, मेरे मस्ताना दोशपर[2] ॥

नासिख़— लोगोंमे होंट चूम लिये हमने, क्या किया ?
गुस्सेसे क्यों न दाँत तले वोह दबाये होंट ?

मोहसन— माँगा जो मैंने बोसये-लब[3] बज़्मे-ग़ैरमें[4]।
त्यौरी चढ़ाई दाँतसे उसने दबाके होंट ॥

सहर— अपनी जगहपै देख सकेगे न ग़ैरको।
जाया करेंगे और ही रस्तेसे सैरको।

धीरे-धीरे यही स्त्रियो सम्बन्धी शाइरी जनानी शाइरी बनती गई, बजाय इसके कि शाइरीमे स्त्रियोचित उच्च भावनाओका समावेश करते, उनके वास्तविक पवित्र-प्रेमका उल्लेख करते। स्त्री जिसकी एक बार हो जाती है, वह चाहे जैसा भी गया-बीता हो, उसे उम्रभर निभाती है। अपाहिज, रोगी, निखट्टू, अनाचारी पतिको भी ईश्वर-तुल्य समझती है और उसीकी सेवा और यादमे समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत लखनवी शाइरोंने उसके कुत्सित रूपका वर्णन किया। उन्हे नारीके अन्दर माँ, बहन, पत्नी, प्रियतमाकी उज्ज्वल एवं महान् आत्माओंके दर्शन नही हुए। उन्होंने वेश्याके उस घिनौने रूपको देखा, जिसे उसने शृगारिक वस्तुओसे छिपा रक्खा था। अतः लखनवी शाइरोंके यहाँ—जुल्फ, काकुल, जूड़ा, चोटी, कघी, शीशा, सुर्मा, मिस्सी, ग़ाज़ा (पाउडर), मेहदी, फूल, सिन्दूर, पान, इत्र—आदि शृगारिक वस्तुओके अशआर बहुत अधिक सख्यामे मिलते है। यहाँ नमूनेके तौरपर हर चीज़का सिर्फ एक-एक शेर दिया जा रहा है।

---

[1]महफिलमे; [2]कन्धेपर; [3] होंटोंका चुम्बन; [4]दूसरोके जल्सेमे।

साज-सज्जा

मोहसन— हफ़्ते भरमे उन्हें फ़ुरसत नहीं इन सातोंसे—
पान, इत्र, आइना, मँहदी, मिस्सी, सुर्मा, शाना[1] ॥

सहर— हथेली सफ़ाईसे आईना है।
मलो मिस्सी देखो धरी हाथमें ॥

अली— कहकशाँ[2] दिखलाती है जलवा शबे-तारीकमें[3]।
ख़त नहीं सेंदूरका ऐ जानेजाँ! बाला-ए-सर ॥

बहर— ग़ाजेसे[4] लालाजारे-शफ़क़को[5] ख़िजल[6] किया।
अफ़्शाँ[7] चुनी तो चाँदनीका खेत कट गया ॥

ज़ेवरात

उन दिनोके प्रचलित सभी जेवरातपर लखनवी शाइरोने तबा आज़माई[8] की है। उन जेवरातोंकी सूची और अशआरको देखकर यह मालूम होता है कि हम शेर नही पढ रहे है, सर्राफा-बाजारमे बैठे हुए है। बतौर नमूना चन्द अशआर मुलाहिजा हों—

नासिख़— चम्पाके फूलमें है न गुलकी कलीमें है।
जैसी तेरे गलेकी है, चम्पाकलीमें बू ॥

करते है आलमको जिसके पाँवके बिछवे शहीद।
उस सितमगरकी बला लेती है ख़ंजर हाथमें ॥

अजी यह अर्शे-मुअ़ल्लाके[9] गोशबारेका[10]।
गुहर[11] कहाँसे तुम्हारे बुलाक़में आया?

---

[1]कघा; [2]बिजली; [3]अंधेरी रातमे; [4]पाउडरसे; [5]सन्ध्याकालीन लालिमाको; [6]शर्मिन्दा; [7]गोटे वगैरहके कटे हुए बारीक टुकडे जो दुलहनोंके मुँहपर चुनते है; [8]कोशिश; [9]आकाशमे रहनेवालोंके; [10]कानका; [11]मोती।

बहर— पहने जो मोतियोंके करनफूल यारने।
तारोंपै ओस पड़ गई, ख़ोशा[1] ठिठुर गया॥

लख़्ते-जिगरसे मेरे क़ीमतमें बढ़ चले थे।
झूठे पड़े नगीने सब उसके नौरतनमें॥

लिबास

रग-बिरगे दुपट्टे, ओढ़ने, पायजामे, नेफ़े, कुरती, अँगिया, आदिके चन्द नमूने—

सहर— मिसले-कमर लचकती है दोनों कलाइयाँ।
भारी है पाँयचे दमे-रफ़्तार[2] हाथमें॥

इश्क़ी— ग़ज़ब नैरंगे-अक्स[3] आरिज़े-रंगीने[4] दिखलाया।
सुनहरा था दुपट्टा, हो गया गुलनार काँधेपर॥

बहर— महरमके[5] सितारे टूटते हैं।
पिस्ताँके[6] अनार छूटते हैं॥

नासर— सुर्ख़ पाजामा है, गोटा हर कलीमें है लगा।
फूलकी छड़ियाँ हैं उस रश्के-चमनकी[7] पिण्डलियाँ॥

जरी— मूबाफ़े-ज़र[8] लपेट दिया मुँहके अक्सने।
गरदनपै आके बन गई गोटेका हार जुल्फ़॥

रूप

हबीबके जिस्मके हर हिस्से—सीना, छातियाँ, नाभि, पेट, कमर,

---

[1]अन्नकी बाली, गुच्छा; [2]चलते समय; [3]परछाईंकी रंगीनता; [4]रंगीन कपोलोंने; [5]चोलीके; [6]कुचोंके; [7]बगीचेके लिए भी ईर्ष्यायोग्य; [8]वह फ़ीता जो औरतें चोटीमें लपेटती हैं।

नितम्ब, रान, पिंडलीका उल्लेख लखनवी शाइरोंने बहुत ही अश्लील और कुरुचिपूर्ण ढगसे किया है। इनमे सिर्फ़ नौजवान शाइर ही नही, बल्कि उस्ताद और बुजुर्ग शाइर भी है। सभ्यता इजाजत नही देती कि उदाहरणस्वरूप इस तरहका एक शेर भी पेश किया जाय। इन अशआरको पढ़कर ऐसा मालूम होता है, जैसे कोई जंगली औरत जेवर आदिसे सजकर बाजारमे नगी खड़ी हो।

दाखिली-ख़ारिजी शाइरी

उक्त ज़नानी शाइरीके अतिरिक्त लखनऊमे ख़ारिजी शाइरीको बहुत फ़रोग़ मिला। इसके बानी-मु-बानी 'नासिख़' हुए है। हृदयगत भावोंकी शाइरीको दाखिली शाइरी कहते है। दाखिली शाइरी अकृत्रिम और स्वाभाविक होती है। इसे सुनकर हृदय-तत्रीके तार झकृत हो उठते है और उनसे 'आह' की ध्वनि निकलती है। दाखिली शाइरी देहलवी स्कूलकी देन है, इसलिए इसे देहलवी शाइरी भी कहते है। इसके नमूने यहाँ देनेकी आवश्यकता नही। मीर, दर्द गालिब, मोमिन आदि सैकड़ों देहलवी शाइरोंके कलाममे ऐसे नमूने देखे जा सकते है। इसके अतिरिक्त दूसरे भागके कई लखनवी शाइरोंके यहाँ इस तरहका कलाम काफ़ी मिलेगा। क्योंकि वर्त्तमान युगमे ख़ारिजी रगमे शाइरी करना प्रायः बन्द हो गया है, और वर्त्तमानमें प्रायः सभी लखनवी शाइर दाखिली रगमे कहते है।[1]

ख़ारिजी शाइरी मस्तिष्ककी शाइरी है, दिमाग़से सोच-सोचकर अस्वाभाविक और कृत्रिम कल्पनाओंको शब्दाडम्बरों-द्वारा सजाकर

---

[1] प्राचीन देहलवी शाइरोंका कलाम शेरो-सुखन प्रथम भागमे ३००-४०० पृष्ठोंमे बहुत अधिक सख्यामें दिया गया है। इसके अतिरिक्त तीसरा भाग केवल देहलवी स्कूलके शाइरोंका है, जिसमे हजारों शेर दाखिली रंगके हैं।

पेश करना ख़ारिजी शाइरी है। इसे सुनकर दिल तो वज्दमे (तन्मयतामें) नही आता, हाँ, इसकी जाहिरा शानो-शौकत, टीप-टाप, नफ़ासत और लिबासको देखकर मस्तिष्क अवश्य झूम उठता है। ख़ारिजी शाइरी लखनऊ स्कूलकी उपज है। इसलिए इसे लखनवी शाइरी भी कहते है।

दाख़िली रग, शाइरीका आत्मा है तो ख़ारिजी रग उसका कलेवर। हकीकतमें शाइरीके लिए दोनों ही जरूरी है। आत्मा कितना ही पवित्र और उन्नत हो, सड़े-गले कलेवरमे घिनावना ही मालूम देगा। इसी तरह बग़ैर प्राणका कलेवर कितना ही सजाया जाय दुर्गन्धित हो उठेगा।[1]

ख़ारिजी रंगके चन्द नमूने

नासिख़—

रूठे हुए थे **आप कई दिनसे**, मनगये।
बिगडे हुए **तमाम मेरे काम** बन गये॥

हँसते हो **सुनके मेरा हाल कहाँतक देखूँ**?
बे रुलाये **यह कहीं**, मर्सियाख्वाँ[2] **उठता है**?

मुझको बेगाना[3] **समझे है, ज़ालिम!**
राह चलतेको आश्ना[4] **जाने!!**

अब्वल तो न कासिदको[5] **रहे-कूए-सनम**[6] याद।
पहुँचे तो फरामोश[7] **हो** पैगाम[8] **हमारा॥**

तमाम उम्र यूं ही हो गई बसर अपनी।
शबे-फिराक[9] **गई,** रोजे-इन्तजार[10] **आया॥**

---

[1] ख़ारिजी-दाख़िली शाइरीका उल्लेख यहाँ हम जानबूझकर सक्षिप्तमें कर रहे है, क्योंकि प्रथम भागमे पृ० २४८-२७२में विस्तारसे दे चुके है। [2] मर्सिया कहनेवाला; [3] ग़ैर, पराया; [4] मित्र, परिचित; [5] पत्र-वाहकको; [6] प्रेयसीके स्थानका मार्ग; [7] भुलाया जाये; [8] सदेश; [9] विरह रात्रि; [10] प्रतीक्षा-दिवस।

भूलकर ओ चाँदके टुकड़े ! इधर आ जा कभी।
मेरे वीरानेमें भी हो जाये दमभर चाँदनी॥

न सज्द-ए-दरेजानाँमे[1] सर उठाऊँगा।
यह वोह नमाज़ है जिसका कभी सलाम नहीं॥

हश्रतक जीमें है, बेहोश रहूँ मै साकी !
काश मैं[2] भरदे मेरे उम्रके पैमानेमें[3]॥

'नासिख़' ! शराब पी, शबे-तारीक[4] हो तो हो।
रोशन है, सहने-बागमें हरसू[5] चरागे-गुल[6]॥

हर तरफ़ मसरूफ़[7] जाहिद[8] है, नमाज़े-सुबहमे।
गरदने-मीनाको भी लाज़िम है अब खम कीजिए॥

एक हफ़्तेसे बहम सातो मयस्सर है मुझे।
दश्त, बरिया, सब्ज़ा, साकी, शीशा, सागर, चाँदनी॥

आती-जाती है जा-बजा बदली।
साक़िया जल्द आ, हवा बदली॥

ख़लील—

सुन लीजिए ज़रा मेरे अश्कोका[9] माजरा[10]।
इन मोतियोको भी कभी कानोमे डालिए॥

सबा—

उनकी रफ्तारसे दिलका अजब अहवाल हुआ।
रुँध गया, पिस गया, मिट्टी हुआ पामाल हुआ॥

---

[1]प्रेयसीके द्वारपर झुका हुआ मस्तक; [2]शराब; [3]प्यालेमें; [4]अँधेरी-रात; [5]चारों तरफ; [6]फूल रूपी दीपक; [7]व्यस्त; [8]परहेज़गार; [9]आँसुओं-का; [10]हाल।

रिन्द—

बाक़ी है अभी असर जुनूंका[1]।
सौदा[2] तो गया है, झक[3] रही है॥
लैला मजनूंका रटती है नाम।
दीवानी हुई है, बक रही है॥

सबा—

बेतकल्लुफ उससे होकर क्यों न हों महजूज[4] हम।
तोड़कर परहेज होता है बहुत बीमार खुश॥

अमीर मीनाई—

सैयाद ! मैं तो तायरे-रफ्रतपसन्द[5] हूँ।
लटका मेरे क़फ़सको तू शाखे-हिलालसे[6]॥
ग़ैरोंको फाड़ खाय सगे-यार[7] तो कहूँ।
"ऐ शेर, वाह, तू ही तो शेरों-का-शेर है॥"

रंगीन—

पहुँचे हम जिस शहरमें पूछा यह अहले-शहरसे—
"खूबरुओंकी[8] यहाँ बिकती है, तसवीरें कहाँ?"
पढाई थी पट्टी उन्हें ग़ैरने।
मेरा ख़त वह क्यों नामाबर[9] देखते?
बर्छीका काम कर गई अर्जी रक़ीबकी[10]।
तेरी नजरसे मेरे जिगरसे गुजर गई॥

---

[1]उन्मादका; [2]पागलपन; [3]सनक, वहम; [4]खुश; [5]ऊँचा उड़नेवाला पक्षी; [6]दोजके चाँदसे; [7]प्रेयसीका कुत्ता; [8]सुन्दरियोंकी; [9]पत्र-वाहक; [10]शत्रुकी।

करता हूँ याद शामसे अबरु-ए-यारको[1]।
ख़जरसे काटता हूँ, शबे-इन्तजारको[2]॥

उठाते हो तो फिर सबको उठा दो।
यह चिलमन[3] किसलिए दरपर[4] पडी है?

दरपर पड़े हुओंपै ग़ज़बका अताब[5] है।
परदे भी आज बाँधके लटकाये जाते है॥

उछाला गेसुओंने[6] नाम कैसा पाके आरिजको[7]।
जमाने-हुस्नपर छाये हुए हो, आस्माँ होकर॥

तेरी पलकोंसे थीं वा-बस्ता उम्मीदें दिलकी।
आँख क्या तेरी फिरी, फिर गई झाड-दिलमें॥

ले उड़ी घूँघटके अन्दरसे निगाहे-मस्तहोश।
आज साकीने पिलाई है हमे छानी हुई॥

आँखमें डोरोंका आलम देखिए।
यह नया आहू[8] असीरे-दाम[9] है॥

नहीं कटती तो कहता है सितमगर—
"यह गरदन है कि फुरकतकी[10] घडी है॥"

जलाल—

क़हक़हा मारे अदू[11] इसकी नहीं ताब,[12] ऐ यार!
रोक लेते हम अगर तोपका गोला होता॥

देखे जो आईना भी शबाब[13] उस जमीलका[14]।
दिलमें चुभे उभार मुहासोकी कीलका॥

---

[1]प्रेयसीकी भवोंको; [2]रात्रिकी प्रतीक्षाको; [3]पर्दा, चिक; [4]द्वारपर; [5]क्रोध; [6]बालोंकी लटोंने; [7]कपोलोंको; [8]हिरन; [9]जालमे फँसा हुआ; [10]विरहकी; [11]शत्रु; [12]बरदाश्त; [13]यौवन; [14]सुन्दरीका।

ग़ैरसे सोना-बसीना **हुए, तुम।**
छातीपर साँप **यहाँ लोट गया॥**

सब उसके गेसुओंकी शिकनमें[1] असीर हैं[2]।
हम माँगकी लकीरके **ऐ दिल फ़कीर हैं॥**

ऐसे ख़ूँख़्वार हैं **उस तुर्कके**[3] मुए मिजगाँ[4]।
कि तसव्वुरसे[5] **यहाँ** रोएँ खड़े होते हैं॥

यारका बोसये-लबे-शीरीं[6]।
अब तो बाज़ारकी मिठाई है॥

समझे यह हम जो रातको तारे **चमक गये।**
बक्ते-सियहपर[7] **अपने** फलक[8] खन्दाजन[9] **हुआ॥**

दिलको लगाके कूचये-गेसूमें[10] **ले चला।**
आहू-ए-चश्मेयार[11] **तिलस्मी** हिरन **हुआ॥**

पीरीसे[12] **आरज़ूए**[13]-जवानी **जो हमने की।**
ऐसा दिया जवाब कि दन्दाँशिकन[14] **हुआ॥**

नासिख़—

मिल गया ख़ाक़मे पिस-पिसके **हसीनोंपर मैं।**
क़ब्रपर बोयें कोई चीज़ हिना[15] **पैदा हो॥**

---

[1]बल, सिकुड़न; [2]क़ैदी; [3]माशूकके; [4]पलकोंके बाल; [5]ख़याल आते ही; [6]मधुर ओठोंका चुम्बन; [7]दुर्भाग्यपर; [8]आसमान; [9]मुसकराया; [10]बालोंके कूचेमें; [11]प्रेयसीके हिरन रूपी नेत्र; [12]वृद्धावस्थासे; [13]इच्छा; [14]दाँत टूट गया; [15]मेहदी।

मुनीर—

नाक़ये-लैलाकी[1] **क्या सहराये-मजनूंमें**[2] **बिसात।**
अजदहे-वशहतके[3] **मुंहमें** ऊँट **जीरा हो गया॥**

शादी है दुख्ते-रिजमें[4] **किसी** दी-परस्तकी[5]।
तौबाके[6] **दरपै बजती है** घण्टी **शिकस्तकी**[7]॥

शरफ़—

रमाके धूनी **जो बैठा हूँ** माँगपर **उसकी।**
इसी लकीरका **मुझको** फकीर **होना था॥**

अमानत—

आँसू **रवाँ**[8] **है** जुल्फे-मियहके **ख़यालमें।**
मोती **पिरो रहा हूँ तेरे** बाल-बालमें॥

क़ल्क़—

ऐसे दीवाने **हों सर** सगसें[9] **फोड़े अपना।**
कभी बादाम **जो देखे तेरी प्यारी** आँखें॥

अमीर मीनाई—

वे करते हैं बातें अजब चिकनी-चिकनी।
यह मतलब कि चौपट **हो कोई** फिसलकर॥

हजारों खार[10] **लाखों** फूल **उस गुलशनमें हैं लेकिन—**
न तुम-सा नाज़नी[11] **कोई न हम-सा** नातवाँ[12] **कोई॥**

---

[1]लैलाकी ऊँटनीकी; [2]मजनूंके जंगलमें; [3]उन्मादरूपी अजगरके; [4]मदिरासे, अंगूरकी बेटीसे; [5]धर्मात्माकी; [6]न पीनेकी प्रतिज्ञा; [7]हारकी; [8]बहते हुए; [9]पत्थरसे; [10]काँटे; [11]कोमल; [12]कमज़ोर।

उक्त अशआरमे शब्दोके रख-रखाव और मुनासिबतके अतिरिक्त कोई ऐसे हृदयस्पर्शी भाव नही है, जिन्हे पढ-सुनकर कुछ क्षणके लिए मनुष्य अपनेको भूल जाय। इन्हे पढ़ते हुए स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक शब्दके मुक़ाबिलेमे दूसरा शब्द रखने और शाइराना करतब दिखानेके लिए ही इस बाग्जालकी रचना हुई है। रूठे हुएके लिए मन गये, बिगडे हुएके लिए बन गये, इसी तरह सफेद टाइपमे दिये गये अन्य शब्दोको एक दूसरेके मुकाबलेमे इस तरह बिठाया है, जैसे कठपुतलीके खेलमे पहलवान सजे बैठे हों।

रगीन, अश्लील और खारिजी शाइरीके अतिरिक्त लखनवी शाइरोने अतिशयोक्तिपूर्ण अस्वाभाविक कलाम बहुत कहा, और ये सब रग लखनऊ तक ही सीमित न रहकर समस्त उर्दू-ससारमे फैल गये। मुसहफ़ी-जैसा सजीदा देहलवी शाइर लखनऊ पहुंचनेपर इस तरहके रगीन-अश्लील शेर कहनेपर मजबूर हो गया—

आया लिये हुए जो वोह कल हाथमे छड़ी।
आते ही जड़ दी पहली मुलाक़ातमे छड़ी॥
पानी भरे है यारो वाँ करमजी[1] दुशाला।
लुंगीकी सज दिखाकर सकनीने[2] मार डाला॥

देहलवी शाइर सौदा, नसीर, जोक तो खारिजी रगमे कहते ही थे। मोमिन-ओ-गालिब-जैसे देहलवी शाइर भी शुरू-शुरूमे खारिजी रगसे प्रभावित हो गये थे। वह तो खैर गुजरी जो जल्दी संभल गये, वरना आज ग़जलका न जाने क्या रूप हुआ होता?

कहनेको दाग़ देहलवी शाइर थे, मगर उनका कलाम पूर्णरूपेण लखनवी रंगीन शाइरीमे सराबोर है। वे ग़ालिब-ओ-मोमिनवी शाइरीके बजाय इशा-ओ-जुरअतके अधिक नज़दीक हैं। यह बात दूसरी है कि देहलवी ज़बान, मुहावरे एव अपने मख़सूस (विशेष) अन्दाज़े-बयान, और

---

[1]एक प्रकारका रंग; [2]भिश्तीकी पत्नीने।

तर्ज़ेअदाकी बदौलत सर्वत्र छा गये और उनका अनुकरण करनेको तत्कालीन लखनवी उस्ताद भी मजबूर हो गये।

इसतरहकी रंगीन खारिजी और अश्लील शाइरीने लखनऊको बहुत बदनाम किया। उर्दू शाइरीके सौभाग्यसे १८५७ के विप्लवमे लखनऊकी नवाबी भी चौपट हो गई। जो लखनवी शाइर कौसरो-तसनीमके धारेमे बहे जा रहे थे, वे विप्लव रूपी मौजोके तमाचे खाकर हाथ-पाँव मारनेको मजबूर हो गये। किनारेपर आकर उन्होंने देखा कि वे सचमुच मजनूं मालूम होते हैं, उनका गरेबान वाकई तार-तार हो गया है और जल्द न सँभले तो उनका नातवाँ जिस्म दुनियाके थपेड़े खाकर बरक़रार नही रह सकेगा।

लखनऊकी पुरानी और नई शाइरी

सौभाग्यसे उन दिनो रामपुरके नवाब भी बहुत बड़े अदब-नवाज, और सुखन-फ़हम थे। शनैः-शनैः मुसीबतके मारे देहलवी-लखनवी शाइर वहाँ एकत्र हो गये। दिन-रातकी अदबी-सुहबतों और मुशाइरोंमे एक साथ सम्मिलित होनेसे परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानसे सबने यह महसूस किया कि अब जुरअत-ओ-इशाकी रंगीन, नासिखकी खारिजी और अतिशयोक्तिपूर्ण शाइरीका जमाना लद गया। अब तो दाखिली एव स्वाभाविक शाइरीका ही युग है। जो युगके विपरीत चलेगा खता खायेगा। चुनाचे देहलवी-लखनवी स्कूलोंकी दीवारे ढाकर एक ऐसा विश्वविद्यालय बना दिया गया, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रान्तके स्नातक एक ही प्रकारका कोर्स पढ सके।

लखनऊके पुराने उस्ताद शेरके बाह्य सौन्दर्यपर जान देते थे, वर्त्तमान शाइर शेरके अंतरगमे प्राण फूंकता है और उसका बाह्य रूप भी सुरुचिपूर्ण रखता है। पुराने शाइरोंमे जाहिरा शानो-शौकत, रोब-दाबका बहुत खयाल रखा जाता था। नया शाइर अपने समूचे व्यक्तित्वको इस तरह बनाता है कि उसका हर सकेत वा-असर होता है।

पहले-पहल ग़जलके प्रति विद्रोही झडे 'हाली' और 'आजाद' ने खड़े किये। हाली, 'गालिब' के और आजाद, 'जौक' के शिष्य थे। दोनोंके ही

ग़ज़लकी मुख़ालफ़त

उस्ताद ग़जलके माने हुए उस्ताद हुए है। होना तो यह चाहिए था कि 'हाली' और 'आजाद' गज़लको अत्यधिक मोहक और व्यापक बनाकर अपने उस्तादोके योग्य उत्तराधिकारी शिष्य प्रमाणित होते, किन्तु यह उनकी योग्यता और सामर्थ्यके बाहर था। जिस बज़्मे-गुलशनमे[1] मीर, आतिश, गालिब, मोमिन, जौक़-जैसे तूतिये-अदब[2] नग़मासरा[3] थे, उस बज़्ममे नग़मा छेड़नेके लिए कलेजा कहाँसे लाते? अत. उस वक़्त जो इनके समकालीन, फ़हाशी (अश्लील) और बेवक़्तकी रागिनी अलाप रहे थे, जिससे भले आदमियोंकी नीदे उचाट थी। हाली-ओ-आजादको उनका यह हू-हक पसन्द न आया और तत्कालीन गजलगोईसे खीझकर उन्होंने बहुत जोर-शोरके साथ गजलका विरोध किया। स्वयं गजले लिखनी कतई बन्द कर दी और लेखों-व्याख्यानों-द्वारा नज्म लिखनेका प्रचार ही नहीं किया, स्वय भी काफी नज्में लिखी।

१८५७ ई० के विप्लवके पश्चात् मुसलमानोंकी जो दयनीय स्थिति हुई, उसने भी इस प्रचारमे सहायता दी। बादशाहत समाप्त हो गई। नवाब और रईस बरबाद हो गये। हजारों घर उजड गये, अनगिनत प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा विद्वान् सरेबाजार फाँसी चढा दिये गये, दिल्लीकी फ़तहपुरी मस्जिदमे घोड़े बाँध दिये गये और मुसलमान कुचल दिये गये।

कुचले हुए साँपकी जो प्रतिहिसाकी भावना होती है, वही मुसलमानोंकी होनी चाहिए थी, जैसीकी हिन्दुओंकी हुई। यानी उनको मुसलमान विजेताओंने विजित किया तो, उन्हें कभी चैनसे नही रहने दिया। बराबर

---

[1]उद्यानरूपी साहित्य गोष्ठीमे; [2]साहित्यिक उद्यानके गानेवाले पक्षी; [3]सगीतमग्न।

संघर्ष करते रहे और अंग्रेजोंने कुचला तो उनके नाकमें दम बराबर रखा और आखिर स्वाधीन होकर रहे। लेकिन मुसलमानोंकी यह प्रतिहिंसा देशके दुर्भाग्यसे जी हुजूरीमें परिणित हो गई। क्योंकि उन दिनों मुसलमानोंके प्रभावशाली नेता सर सैयद अहमद अंग्रेजी हुकूमतके बहुत बड़े हिमायती और हितैषी थे। वे अलीगढ़ युनिवर्सिटीके जन्मदाता और प्राण थे। उन्होंने मुसलमानोंमें यह भावना भर दी कि "अंग्रेज सरकारके भक्त रहकर जितने भी अधिकार ले सको लेते रहो, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके उच्च-से-उच्च ओहदे प्राप्त करो, और इस तरह अपना राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक स्तर पड़ोसी जातियोंसे बुलन्द करो।" हाली और आजादने उनका हर तरहसे समर्थन किया और साथ भी दिया।

परिणाम इसका यह हुआ कि उर्दूका युवकवर्ग शनैः-शनैः नज्मकी ओर आकर्षित होने लगा। यहाँतक कि बहुत-से ग़जल-गो शाइर भी गजलको तिलाँजलि देकर नज्मके क्षेत्रमें उतर गये, और नई पीढ़ीने तो गजलकी तरफ नजर भरकर देखना भी उचित नहीं समझा।

इस विरोध और बहिष्कारमें गजलको प्रकट रूपमें तो बहुत बड़ा धक्का पहुँचा, किन्तु अंतरंगमें इससे लाभ ही हुआ। क्योंकि उस जीर्ण-शीर्ण गजलका कायाकल्प न हुआ होता तो वह आज इस तरह आबो-ताबके साथ चमकती हुई दिखाई न देती। नये-नये अंकुरोंके विकासके लिए मुर्झाये हुए फूल-पत्तोंको नष्ट करना और जमीनको गोड़ते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

जब दक्षिणमें उर्दू-शाइरीका प्रारम्भ हुआ तो शुरू-शुरूमें प्रेमपूर्ण भावनाओंको सीधे-सादे शब्दोंमें व्यक्त किया जाता था। मुसलमान शाइरोंने ईरानी गजलके ढंगपर शाइरी शुरू की। लेकिन उनके सामने भारतीय कविताका मोहक रूप था। अतः उन्होंने भी सजन, पिया, पपीहा आदि भारतीय पात्रों और भारतीय उपमाओं, उदाहरणोंका प्रयोग किया।

ग़ज़लमें स्वाभाविकता और विकार

चूँकि दक्षिणी मुसलमान शाइर भी प्रायः ईरान और फारससे आये थे और शाइरी भी दक्षिणमें सीमित न रहकर दिल्लीतक व्यापक हो गई थी, तत्कालीन शाइर प्रायः फारसीके विद्वान् थे, अतः बहुत शीघ्र गजलमें फ़ारसीका अनुकरण होने लगा।

नदीका उद्गम अत्यन्त सूक्ष्म और मन्दगतिसे होता है। उद्गम स्थानमें वह तेजी और भयावह स्थिति नहीं होती, जो उत्तरोत्तर आगे बढ़नेपर होती है। शाइरीका प्रारम्भ भी जब हुआ होगा तो स्वाभाविक और सरल ही हुआ होगा। मनकी भावनाओंको सीधे-सादे शब्दोंमें अकृत्रिम ढंगसे व्यक्त किया गया होगा। शनैः-शनैः उपमाओं-उदाहरणोंका प्रादुर्भाव हुआ होगा।

जिस हबीब (प्रियतम या प्रियतमा) को देखकर उसकी ओर मन आकर्षित हुआ होगा, उसे मनमोहन कहा गया होगा। फिर वही मन जब उसके लिए उचाट-सा या खिचा-खिचा-सा रहने लगा होगा, तब उस हबीबको चित-चोर भी कहा गया होगा, और कुछ इस तरहके भाव व्यक्त किये गये होंगे——

वही मैं हूँ 'असर' वही दिल है।
अब खुदा जाने क्या हुआ मुझको?

——असर देहलवी

ग़म है या इन्तज़ार है, क्या है?
दिल जो अब बेकरार है, क्या है?

——सोज

हम तेरे इश्कसे तो वाक़िफ़ नहीं, मगर हाँ।
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है॥

——मीर

आगे चलकर यह दिल मलनेवाला हबीब, चित-चोर कहलाने लगा—

दिल ले गया है मेरा, वोह मीमतन[1] चुराकर।
शरमाके जो चले है, सारा बदन चुराकर॥
—मुसहफ़ी

दिलकी हालत

इसी दिलको रफ्ता-रफ्ता मनचले शाइरोंने ऐसी चीज तसव्वुर कर लिया, जो वा-आसानी जिस्मसे जुदा किया जा सकता है। उसके चाहे जितने टुकड़े किये जा सकते हैं। वे टुकडे फिर जोडे भी जा सकते हैं। दिल नक़्द या उधार बेचा भी जा सकता है। चोरी भी किया जा सकता है, पाँवके तले कुचला भी जा सकता है।

अख़्तर— सौ टुकड़े हो गया न सुनी हमने पर सदा[2]।
क्योंकर न जीको भाये, अदाये-शिकस्ते-दिल ?

बातोंमें बना लेवे जो टूटे हुए दिलको।
यह सहर[3] है, एजाज[4] है या शीशागरी[5] है॥

नासिख़—जो दिलको देते हो 'नासिख़' ! तो कुछ समझकर दो।
कहीं ये मुफ़्तमे देखो न माल तलपट हो॥

आतश— किसीने मोल न पूछा दिले-शिकस्ताका[6]।
कोई ख़रीदके टूटा पियाला क्या करता ?

---

[1]गोरा, चिट्टा; [2]आवाज; [3]हृदय टूटनेका हाव-भाव; [4]जादू; [5]सम्मोहन शक्ति; [6]शीशेको जोड़नेकी कला; [7]टूटे दिलका।

बहर— मेरा दिल किसने लिया नाम बताऊँ किसका ?
मैं हूँ या आप हैं, घरमें कोई आया न गया ॥

रिन्द— फेंक दूँ दिलको अभी, चीरके पहलू अपना।
तुझपै काबू नहीं, दिलपर तो है क़ाबू अपना !

जौक़— हाथ आये किस तरहसे दिले-गुमशुदाका खोज ?
है चोर वोह कि जिसपै किसीका भरम नहीं ॥
वोह दिलको चुराकर लगे जो आँख चुराने।
यारोंका गया उनपै भरम और ज़ियादा ॥

अमानत— गुमां न क्योंकि करूँ तुझपै दिल चुरानेका ?
झुकाके आँख, सबब क्या है मुसकरानेका ?

तसलीम— तड़पते देखता हूँ जब कोई शय।
उठा लेता हूँ, अपना दिल समझकर ॥

अमीर मीनाई—
बराबर आईनेके भी न समझे क़द्र वोह दिलकी।
इसे ज़ेरे-क़दम[1] रक्खा, उसे पेशे-नज़र[2] रक्खा ॥

निज़ाम रामपुरी—
तू भी उस शोख़से वाक़िफ़ है, बता कुछ तो 'निज़ाम' !
मुझसे दिल मांगे तो इंकार करूँ या न करूँ ?

दाग़— मैंने जो मांगा कभी दूरसे दिल डर-डरकर।
उसने धमकाके कहा—"पास तो आ देते हैं ॥—"

मोमिन— बात करनेमें रक़ीबोंसे[3], अभी टूट गया।
दिल भी शायद उसी बदअहदका[4] पैमां[5] होगा ॥

---

[1]पांवके नीचे; [2]आँखके सामने; [3]शत्रुओंसे; [4]झूठे वादा करनेवाला; [5]वादा-भरोसा।

दर्द— किसीसे क्या बयाँ[1] कीजे उस अपने हाले-अबतरका ।
दिल उसके हाथ दे बैठे, जिसे जाना न पहचाना ॥

असर देहलवी—कुछ न पूछो निपट ही मुश्किल है ।
औरके हाथमे मेरा दिल है ॥

नहीं मालूम दिलपै क्या गुजरी ?
इन दिनों कुछ खबर नहीं आती ॥

यक़ीन— दिल छोड़गया हमको, दिलबरसे तवक्कोह[2] क्या ?
अपनेने किया यह कुछ, बेगानेको[3] क्या कहिए ?

बेदार— देता नहीं दिल लेके कोह मगरूर किसीका ।
सच है कि न ज़ालिमपै चले ज़ोर किसीका ॥

जिया— मैंने कल पूछा 'जिया' से दिल किधरको खो दिया ।
उसने कूचेको तेरे बतलाके टपसे रो दिया ॥

अहसन— दिलको खोय है कल जहाँ जाकर ।
जीवे है आज जा भी सो आऊँ ॥

बयान— माफ़ मुंहपर मैं नहीं कहता कि होगा उसके पास ।
वर्ना क्या वाकिफ नहीं मैं दिल है मेरा किसके पास ॥

मुसहफी—'मुसहफी' हम तो यह समझे थे कि होगा कोई ज़ख्म !
तेरे दिलमे तो बहुत काम रफूका निकला ॥

चित्रण

हबीबकी नजरोंमे दिलको बेकरार-ओ-बेचैन करनेकी शक्ति होनेके

---

[1]बयान; [2]शोचनीय अवस्थाका; आशा; [3]गैरको, परायेको; [4]घमण्डी ।

कारण, उसकी भवोंको धनुष, पलकोंके बालोंको तीर और तिर्छी-चितवनको कटारसे उपमा दी गई। चित्तको आकर्षित करने या दिलको घायल करनेवाली इस अदाके सम्बन्धमें गालिब किस सादगीसे फर्माते हैं—

इस सादगीपै कौन न मर जाये ए खुदा!
लड़ते हैं और हाथमें तलवार भी नहीं!

जोक किस भोलेपनसे दरियाफ्त करते हैं—

तुफ़ंगो-तीर[1] तो जाहिर न था कुछ पास क़ातिलके।
इलाही, फिर जो दिलपै ताककें मारा तो क्या मारा?

और इस वारका क्या हश्र हुआ, यह भी जोककी जबानी सुनिए—

निगहका वार था दिलपर, तड़पने जान लगी।
चली थी बर्छी किसीपर, किसीके आन लगी!

इसी भावको 'दर्द' किस खूबीसे व्यक्त करते हैं—

अन्दाज़ वोही समझे मेरे दिलकी आहका।
ज़ख्मी जो हो चुका हो किसीकी निगाहका॥

और वजीरका अन्दाजे-बयान मुलाहिजा हो—

तिर्छी नजरोंसे न देखो आशिक़े-दिलगीरको।
कैसे तीरन्दाज़ हो? सीधा तो कर लो तीरको॥

अदा (हाव-भाव)

इन्हीं आकर्षित करनेवाली अथवा दिलको घायल करनेवाली अदाओं-को लेकर शाइरोंने राईका पर्वत बना डाला। उसे कातिल, जल्लाद और कस्सावसे भी घिनौना रूप दे डाला।

---

[1] तमचा।

ज़ौक़— ज़िबह करनेको मेरे पूछते क्या हो तदबीर[1]।
तुम छुरी फेर भी दो, नाम ख़ुदाका लेकर॥
उतारा तूने तो सर तनसे इस शामतके मारेका।
अरे एहसान मानूँ सरसे मैं तिनका उतारेका॥

मोमिन— ख़बर नहीं है कि उसे क्या हुआ? पर इस दरपर[2]।
निशाने-पा[3] नज़र आता है नामाबरका-सा[4]॥
तू किसीका भी ख़रीदार नहीं पर, ज़ालिम!
सर-फ़रोशोंका[5] तेरे कूचेमे बाज़ार लगा॥

जवाबे-ख़ूने-नाहक़[6] मेरा ऐसा क्या दिया तूने?
कि ज़ालिम! रह गये मुँह लेके सब अहबाब[7] अपना-सा॥

दाग़— सर काटकर लगाते है, गरदनके साथ फिर।
कुछ रह गई है उनको हविस[8] इम्तहानकी॥

महफ़िले-यार क़स्साबकी दुकान मालूम होती है—

क़रीनेसे अजब आरास्ता[9] क़ातिलकी महफ़िल है।
जहाँ सर चाहिए सर है, जहाँ दिल चाहिए दिल है॥
तेरी तलवारके क़ुर्बान ऐ सफ़्फ़ाक़[10]! क्या कहना!!
इधर कुश्तेपै[11] कुश्ता है, उधर बिस्मिलपै बिस्मिल है[12]॥

रूप

प्रियतमाके रूपका बखान भी प्रारम्भमें स्वाभाविक हुआ होगा। फिर उसे गुलबदनी, हसगामिनी, मृगनयनी, चन्द्रमुखी आदि भी कहा जाने लगा होगा।

---

[1]उपाय; [2]दर्वाजेपर; [3]पाँवका निशान; [4]पत्रवाहकका; [5]सर बेचने-वालोंका; [6]व्यर्थ वध करनेका जवाब; [7]इष्ट-मित्र; [8]तृष्णा; [9]व्यवस्थित ढगसे; [10]सजी हुई; [11]निर्दयी, बेरहम; [12]आशिक़ोकी लाशोके ढेर; [13]तड़पते हुए।

ये जमालयाती शेर देखिए किस स्वाभाविक ढगसे बयान किये गये हैं —

मीर— नाज़ुकी उसके लबकी[1] क्या कहिए ?
पंखड़ी इक गुलाबकी-सी है ॥

माथेकी बिन्दीका तसव्वुर देखिए—

दर्द— फैला है कुफ्र याँ तक काफ़िर तेरे सबबसे।
शमए-हरम[2] भी दे है, माथेपै अपने टीका ॥

[अहले इस्लाममें बिन्दी या तिलक लगाना वर्जित है। फिर भी देखिए, उस प्रियतमाकी बिन्दीका इतना व्यापक अनुकरण हुआ है कि मस्जिदमें जलते हुए चरागसे जो लौ ऊपरको उठ रही है, उसे लौ न समझो, वह तो शमए-हरम अपने माथेपै बिन्दी लगा रही है।]

दर्द— बसा है कौन तेरे दिलमें गुलबदन ऐ 'दर्द' !
कि बू गुलाबकी आई तेरे पसीनेसे ॥

ताबाँ— जब पान खाके ज़ालिम गुलशनमें जा हँसा है।
बे अख्तियार कलियाँ, तब खिलखिलाइयाँ हैं ॥

ज़ौक़— गुंचे तेरी गुंचादहनीको[3] नहीं पाते।
हँसते तो हैं, पर तेरी हँसीको नहीं पाते ॥

क़ायम— क्यों न रोऊँ मैं देख ख़न्दये-गुल[4] ?
कि हँसे था वोह बेवफ़ा भी यूंही ॥

जलाल— रुखे-रोशनसे[5] किसने उलटी नक़ाब ?
जल उठे दाग़ इक बुझे दिलके ॥

---

[1]ओठोंकी; [2]मस्जिदका दीपक; [3]फूल जैसे मुँहको; [4]फूलोंकी मुसकानको; [5]प्रकाशमान चेहरेपरसे।

ममनून— तबस्सुमे-लबे-गुंचेको[1] देख रोता हूँ।
कि रंग है यह उसी खन्दये-निहानीका[2] ॥

दर्द— जूँ चाहिए उस तरह बयाँ[3] हमसे न होगा।
कर अपने दहनसे[4] ही तू वस्फ़[5] अपनी कमरका ॥

कपोलके तिलकी कितनी अच्छी कल्पना है।

अमीर मीनाई—किसीने लफ़्ज़े-रुख बेनुक़्ता कब आलममे देखा है?
न होता किस तरह नुक़्ता रुखे-महबूबपर[6] तिलका ॥

[उर्दूमे रुखके 'ख़' के ऊपर नुक्ता लगता है। अतः माशूकके रुख (कपोल) पर तिल रूपी नुक्ता होना लाजिमी था।]

प्रियतमाका शर्मीलापन देखिए—

असर देहलवी—पहले सौ बार इधर-उधर देखा।
जब मुझे डरके इक नजर देखा ॥

मीर— देख लेता है वह पहले चारसू[7] अच्छी तरह।
चुपके-से फिर पूछता है, "मीर तू अच्छी तरह?"

प्रियतमाके इस जमालपर शाइरोंने बड़ी रंगरेजी की कि उनके हस्त-कौशलके नीचे वास्तविक रूप तो दब गया और एक ऐसा रूप उभर आया, जिसे किसी भी हालतमे प्रियतमा या हकीकी महबूब नहीं कहा जा सकता।

दुनियाभरके हथियारोंसे सुसज्जित, आँखोंमे कातिलाना डोरे पड़े हुए, आस्तीन खूनमे सनी हुई, कयामतबरपा चाल, आशिकोंके दल-के-दल जिस प्रियतमाके साथ हों, उसे कौन समझदार प्रियतमा बनानेको प्रस्तुत होगा?

अज्ञात— चढ़ाई है दिले-गमनाकपर लश्कर-के-लश्करकी।
छुरीकी, तीरकी, तलवारकी, दश्नेकी, खंजरकी ॥

---

[1]फूलोंकी मुसकराहटको; [2]छुपी हुई मुसकानका; [3]कथन; [4]मुखार-विन्दसे; [5]सौन्दर्य-वर्णन; प्रियतमाके कपोलपर; [6]चारों तरफ़।

अमीर मीनाई—

करीब है यार रोजे-महशर[1] छुपेगा कुश्तोंका खून क्योंकर ?
जो चुप रहेगी जबाने-खंजर, लहू पुकारेगा आस्तींका ॥

यह सौन्दर्य-वर्णन दीर्घ जा समस्या कल्पनाओंके कारण उपहासास्पद बन गया है—

असीर— क्या नजाकत है, जो तोड़ा शाखे-गुलसे कोई फूल।
आतिशे-गुलसे पड़े छाले तुम्हारे हाथमें ॥

इंशा— नाजुकी उस गुले-रानाकी[2] देखिए 'इंशा'।
नसीमे-सुबह[3] जो छू जाये, रंग हो मैला ॥

जलाल— सनम, सुनते है, तेरे भी कमर है!
कहाँ है ? किस तरफ़का है ? किधर है?

अकजल हरचन्द जुस्तजूमें रहे साहबे-निगाह[4]।
देखा जो डूबीसे न जाई नजर कमर ॥

[भला जिस स्त्रीकी कमर ही दिखाई न दे, वह भुतनीके सिवा और क्या होगी ?]

मुनीर शिकोहाबादी—

कुछ जबानें है अभी, कुछ है लड़कपन उनका,
दो दगाबाजोंके कब्जेमें है जोबन उनका ॥

गालिब— शबको किसीके ख्वाबमें आया न हो कहीं!
दुखते है आज उस बुते-नाजुकबदनके[5] पाँव!!

प्रलयका दिन; [2]शशिकोके कत्लका; [3]फूलोंकी गरमीमे; फूलन्दे सुकुमारीकी; पात:कालीन मृदु पवन; [4]तलाशमे, [5]नेत्रवाले; [6]रात्रिको; [7]स्वप्नमे; [8]कोमलांगीके।

दाग़— वोह दबे पाँव चले हश्रके[1] डरसे, तौबा!
फ़िक्र है, चाल उड़ाले न क़यामत मेरी॥

अपनी तसवीरपे नाज़ाँ[2] हो तुम्हारा क्या है,
आँख नरगिसकी, दहन[3] गुंचेका,[4] हैरत मेरी॥

मोहम्मिन—नाज़ुकी कहते हैं इसको पाँव ज़ख्मी हो गये।
आ गई चलनेमें जब तसवीरे-नश्तर जेरे-पा॥

अज्ञात— सीखे हो किससे, सच कहो प्यारे, यह चाल-ढाल?
तुम इक तरफ़ चलो हो तो तलवार इक तरफ़?

दाग़— लड़े मरते हैं आपसमें तुम्हारे चाहनेवाले।
यह महफ़िल है तुम्हारी या कोई मुर्गोंकी पाली है?

प्रेम-रोग

तीरे-नजरके घायलको 'आशिक' और उसके ला-इलाज मर्जको 'इश्क' कहा जाता है। 'मीर' ने जिन्दगी भरके तजुर्बेको इस एक मिसरेमें उंडेल दिया है—

मरजे-इश्क़का इलाज नहीं

जब यह घाव, दिल पहले-पहल खाता है तो बकौल 'शेफ्ता' कुछ इस तरह महसूस होता है—

इक आग-सी है सीनेके अन्दर लगी हुई

कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो यह 'आग-सी' सीनेके अन्दर अपने आप लगाये? टी० बी० के कीटाणु भी क्या कोई सिरफिरा अपने सीनेमें अपने आप छोड़ता है? वे तो न जाने कैसे और कब आवारा मेहमानकी तरह तशरीफ ले आते हैं। यही हाल जख्म खाते वक्त दिलका होता है—

---

[1]प्रलयके; [2]अभिमानी; [3]मुख; [4]कलीका।

हाली— इश्क़ सुनते थे जिसे हम, वोह यही है शायद।
खुद-ब-खुद दिलमें है इक शख़्स समाया जाता॥

और जब यह रोग खुद-ब-खुद दिलमें समाकर अपना असर जाहिर करता है तो रोगी (आशिक) छटपटाता है और अपने स्वस्थ दिनोंकी याद करता है—

जलील मानिकपुरी— दर्दसे वाक़िफ़ न थे, ग़मसे शनासाई[1] न थी।
हाय क्या दिन थे, तबीयत जब कहीं आई न थी॥

यह सीनेके अन्दर लगी हुई आतशे-इश्क़ रुईकी आगकी तरह जिस्मको फूंकती रहती है और अन्तमें हैरतसे लोग पूछते है—

घुल गया आपी आप कुछ 'क़ायम'।
क्या बला इस जवानपर आई?

और जब लोगोंको वास्तविक स्थितिका ज्ञान होता है तो श्मशान घाटके वैराग्यपूर्ण स्वरमें लोग कह उठते हैं—

दर्द— क़हर[2] है, मौत है, क़ज़ा[3] है इश्क़।
सच तो यह है, बुरी बला है इश्क़॥

मरजे-इश्कमें तड़पना, आहें भरना, रोना-बिलखना, तारे गिन-गिनकर रात काटना लाजिमी है। इन्हीं मनो-व्यथाओंका कुछ आभास इन प्रेम-रोगियोंने देखिए किस बेतकल्लुफीसे दिया है—

आशिक़की मजबूरी

दर्द— अपने मिलनेसे मना मतकर।
इस बिन बेअख़्तियार है हम॥

---

[1]मेल-जोल, परिचय; [2]जुल्म; [3]मृत्यु।

आशिक़का मयख़ाना

बेदार— उसके मज़कूरके[1] सिवा 'बेदार'!
और कुछ बात ख़ुश नहीं आती॥

क़ायम— अब तो ने गुल न गुलसिताँ है याद।
उसी मुख़ड़ेकी हर जमाँ है याद॥

दर्द— हमें तो बाग़ तुझ बिन ख़ानये-मातम[2] नज़र आया।
इधर गुल फाड़ते थे जेब, रोती थी उधर शबनम॥

रोना-बिसूरना

मीर— सिरहाने 'मीर'के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है॥

फ़ानी बदायूंनी—'फ़ानी'को या जुनूँ[3] है या तेरी आरज़ू[4] है।
कल नाम लेके तेरा दीवानावार रोया॥

तारे गिनना

असर लखनवी— हमने रो-रोके रात काटी है।
आँसुओंपर यह रंग तब आया॥

साक़िब लखनवी—लूटनेवाले हमारी नींदके।
रात भर किस चैनसे सोते रहे!

जो प्रेम-रोगी अंगारोंपर लोटनेको, रोते-बिलखते जीते रहनेको और आँखोंमें नींद काटनेको मजबूर हो जाये, जिसे मौत माँगेसे भी न मिले, वह जिन्दा दरगोर है—

---

[1]जिक्रके; [2]शोक-घर; [3]ओस; [4]उन्माद; [5]इच्छा।

फ़ानी बदायूंनी—नहीं जरूर कि मर जाएँ जाँनिसार[1] तेरे।
यही है मौत कि जीना हराम हो जाये॥

ऐसी हालतमें प्रेयसीको पत्र लिखकर अपनी दयनीय स्थितिसे अवगत कराना आशिकका स्वाभाविक धर्म है। वह विरह-ज्वरमें घुला जा रहा है और प्रियतमाको आभासतक नहीं—

दीपकको भावै नहीं जल-जल मरै पतंग

कभी वह स्वयं भी मिलनेका प्रयास करता है, जो कि लाजिमी है, मगर हमारे शाइरोंने वह तिलकी नेलन बनाई है कि खुदाकी पनाह—

आतशे-इश्क़ (प्रेम-ज्वाला)

ज़फ़र— सोज़िशे-दाग़े-अलमसे[2] पहले भेजा जल गया।
बाद उसके दिल जला और फिर कलेजा जल गया॥

भेजा, दिल, कलेजा, जब सब जल गये तो बचा क्या? और शाइर फिर यह बात कहनेको जीवित कैसे रहा? आजकल तो सीनेमें एक-दो खरोंच आ जाती है, तो कम्बख्त टी० बी० डिक्लेयर कर दी जाती है और मरीजकी चन्द दिनोंमें ही राम-नाम सत बुल जाती है!

मजमूने-सोजे दिल क्या था फाम-फोरम था कि;—

ज़फर—उफ़! मेरे मजमूने-सोज़े-दिलमें[3] भी क्या आग है!
खत जो क़ासिद उसको मैंने लिखके भेजा, जल गया!!

अमीर मीनाई—यही सोजे-दिल है तो महशरमें जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर॥

वाइज़[4]! समझा है तू दोज़ख़ जिसे।
कुछ शरर[5] है आहे-आतशबारके[6]॥

---

[1]प्राण न्योछावर करनेवाले; [2]दुःखोंकी आगसे; [3]हृदयकी दग्धतामें; [4]व्याख्यान दाता; [5]चिनगारी; [6]आह रूपी आगके।

जलाल—दाग़पर मेरे पड़ी मुरग़ाने-गुलशनकी[1] जो आँख।
सबने मिनकारोंमें[2] ले-ले कर गुलेतर[3] रख दिया॥

कमज़ोरी

गमे-हिज्रमे नातवाँ (निर्बल) होना भी स्वाभाविक है। मगर इस लफ़्फ़ाजी नातवानीको क्या कहा जाय?

अमीर मीनाई— मेरे चेहरये-ज़र्दके[4] अक्ससे[5]।
हुई साक़िया! ज़ाफ़रानी[6] शराब॥

वल्लाह! चेहरेका रंग क्या रहा होगा? केसरके खेतमें भी शराब खींची जाय तो रंग पीला न हो और एक 'अमीरमीनाई' है कि अक्ससे ही शराब जर्द हो गई। सुब्हान अल्लाह! क्या दरोग बयानी है।

असर देहलवी—बयाँ क्या करूँ नातवानी[7] मैं अपनी।
मुझे बात करनेकी ताकत कहाँ है॥

मोमिन – वह नातवाँ हूँ कि हूँ और नज़र नहीं आता।
मेरा भी हाल हुआ तेरी ही कमरका-सा॥

जूँ निकहते-गुल[8] जुम्बिश[9] है जीका निकल जाना।
ऐ बादेसबा[10]! मेरी करवट तो बदल जाना॥

नातवाँ थ, पर न छेड़ा मिसले-ख़ार[11]"।
ख़ुद उलझकर रह गये दामनमें हम॥

अब तो मर जाना भी मुश्किल है तेरे बीमारको।
जोफ़के[12] बाइस[13] कहाँ दुनियासे उट्ठा जाय है॥

---

[1]उद्यानके परिन्दोंकी; [2]चोंचोंमें; [3]ताजाफूल; [4]पीले मुँहके; [5]प्रतिबिम्बसे; [6]केसरिया; [7]कमजोरी; [8]फूलकी गन्ध; [9]हिलना-डुलना; [10]पवन; [11]काँटेकी तरह; [12]कमजोरीके [13]कारण।

पाँव तुरबतपर[1] मेरी देख सँभलकर रखना।
चूर है शीशये-दिल[2] संगे-सितमसे[3] पिसकर॥

मनों मिट्टीके नीचे दाब दिये गये, और क़ब्र बनते समय जब कारीगरोंने ठप-ठप की होगी, तब शीशये-दिल चूर-चूर होकर भी क्या बचा रहा था?

ग़ालिब— गुंजाइशे-अदावते-अग़ियार[4] इक तरफ़।
याँ दिलमें ज़ोफ़से[5] हविसेयार[6] भी नहीं॥

अमीर मीनाई—वोह नातवाँ[7] हूँ जो लेटा कभी में बिस्तरपर।
गुमाँ हुआ कि शिकन पड़ गई है चादरपर॥

लाग़िर[8] हूँ इस क़दर मुझे पहचानती नहीं।
रह-रहके देखती है क़ज़ा[9] सरसे पाँवतक॥

काँटा हुआ हूँ सूखके लेकिन निहाल[10] हूँ।
खटकूँगा और अपने अदूकी निगाहमें॥

सूखकर काँटा होनेका गम नही, खुशी इसी बातकी है कि अदूकी आँखोंमे खटक होगी। कोई पूछे, अदूको तो इससे खुशी ही होगी कि रास्तेका काँटा दूर हुआ न कि रज।[11]

---

[1]कब्रपर; [2]हृदय-दर्पण; [3]अत्याचारकी चक्कीसे; [4]प्रतिद्वन्द्वीकी शत्रुताके लिए दिलमें स्थान कहाँ?; [5]कमजोरीसे; [6]प्रेयसीकी चाह; [7]निर्बल; [8]पतला-दुबला; [9]मृत्यु; [10]ताज़ा पौदा।

[11]ज़ौक़ भी सूखकर काँटा होते है, मगर देखिए कितना पवित्र भाव व्यक्त करते है—

दस्तमें[1] आ जायगा लैला तेरे नाक़ेके[2] काम।
अच्छा हुआ मजनूं तेरा जो सूखकर काँटा हुआ॥

मरते-मरते भी यही भावना है कि प्रेमीका उपयोग प्रेयसीके किसी काममे हो सके।

---

[1]रास्तेमे, सफरमे; [2]ऊँटनीके।

दाग़— क़ाहीदगीने[1] फेंक दिया दूर इस क़दर।
कोसों में आप अपनी नज़रसे निकल गया॥

नज़र आता हूँ न उस बज़्मसे उठ सकता हूँ।
नातवानीसे बड़े काम लिये जाते हैं॥

अब मेरे एवज़ उसे सँभालो।
मिलती नहीं नब्ज़ चारागरकी[2]॥

आशिककी नातवानी देखकर माशूकको रहम नहीं आता; बल्कि गुस्सा होकर कहता है कि इसने मेरी नजाकत उड़ा ली—

दाग़— नातवाँ देखकर अफ़सोस न आया मुझपर।
वोह ख़फ़ा हैं कि उड़ाई है नज़ाकत मेरी॥

गोया लखनवी— नातवाँ ऐसा हूँ गर साया[3] पड़ा दीवारका।
गिर पड़ी 'गोया' कि सक़फ़े-आस्माँ[4] बालाए-सर[5]॥

आबाद लखनवी— लाग़र[6] हूँ इस क़दर कि दिखाई न दूँगा मैं।
अपनी तरह करेगा मुझे बेनिशाँ[7] दहन[8]॥

नासिख़— लाग़र हैं हम ऐसे कि निगल जाय ज्यों चिउँटी।
अटके न हमारा यह तनेज़ार[9] गलेमें॥

हैं गराँ[10] मकतूब,[11] तो कातिब[12] सुबक[13] है क़ासिदा[14]!
फेंक ख़त, ले चल हमारा जिस्मे-लाग़र हाथमें॥

इश्क़ी—अलमदद[15] ऐ ज़ोफ़[16]! ऐसा कर तू क़ाहीदाबदन[17]।
वोह परी रखले समझकर मुझको तिनका कानका॥

---

[1]कमज़ोरीने, शरीरके हलकेपनने; [2]चिकित्सककी; [3]परछाईं; [4]आकाशकी छत; [5]सरपर; [6]कमजोर, दुबला-पतला; [7]निशान रहित; [8]मुख; [9]दुर्बल शरीर; [10]भारी; [11]पत्र; [12]पत्रलेखक; [13]हलका; [14]पत्र-वाहक; [15]सहायता कर; [16]दुर्बलता; [17]निर्बल।

वज़ीर— हाथमें लेजा तने-लाग़र मेरा नामेके[1] साथ।
डर न ऐ क़ासिद! कि छः होती हैं अक्सर उँगलियाँ॥

ग़ालिब—हो जाऊँ मैं पामाल,[2] यहाँतक तो हूँ लाग़र।
चिउँटी भी जो शफ़क़तसे[3] रखे दोशपर[4] अंगुश्त[5]॥

नादर— पाँव जिस्मे-ज़ारपर मेरे पड़ा, बोला वोह शोख़—
"डाल दी है फ़र्शपर किसने यह सोज़न ज़ेरे-पा[6]?"

मोहसन—मैं वोह लाग़र हूँ यही समझा कुएँमें गिर पड़ा।
आगया है चिउँटियोंका जब कभी घर ज़ेरे-पा[7]॥

रोना-बिलखना

हिदायत— शबे-हिजराँमें तेरे, सुबहके होते-होते।
इस्तखाँ[8] शमअ़सिफ़त[9] बह गये रोते-रोते॥

मुसहफी—रातदिन रोके निकाली थी मैं वाँ कुलफते-दिल[10]।
आजतक दामने-सहरा[11] है ग़ुबार-आलूदा[12]॥

मोमिन— जा-बजा नहरें हैं जारीं, मैंने अश्क[13]—
पूछे होंगे दामने-कोहसारसे[14]॥

ममनून—मेरे यह गर्म आँसू पूँछ मत दस्ते-हिनाईसे[15]।
कि इन आँखोंसे रहता है रवाँ[16] सैलाब[17] आतशका[18]॥

रश्क— अबकी जाड़े है और नाल-ओ-आह।
इस तरहका कोई अलाव[19] नहीं॥

दर्द— अश्कसे मेरे फ़क़त दामने-सेहरा नहीं तर।
कोह[20] भी सब हैं, खड़े ता-ब-कमर[21] पानीमें॥

---

[1]पत्रके साथ; [2]नष्ट; [3]कृपासे; [4]कन्धेपर; [5]उँगली; [6]सुई; [7]पाँवके नीचे; [8]हड्डियाँ; [9]मोमबत्तीकी तरह; [10]दिलकी भड़ास; [11]जंगलोंके क्षेत्र; [12]धूल-धूसरित; [13]आँसू; [14]पर्वतोंसे; [15]मेंहदी लगे हाथोंसे; [16]जारी; [17]बहाव; [18]आगका; [19]ईधन; [20]पहाड़; [21]कमरतक।

दर्द— बाज़ी बदी थी उसने मेरे चश्मे-तरके[1] साथ।
आख़िरको हार-हारके बरसात रह गई ॥

मोमिन—आग अश्के-गरमको[2] लगे, जी क्या हो जल गया!
आँसू जो उसने पूँछे शब[3] और हाथ जल गया॥

सरूर— ऐसा फ़िराक़े-यारमें[4] रोया मैं रातभर।
बिस्तरपै मेरे हो गया पानी कमर-कमर॥

अज्ञात— इक दिन फ़िराक़े-यारमें रोया मैं इस क़दर।
चौथे फ़लक़पै[5] पहुँचा था पानी कमर-कमर॥

अभी आपने तपिशे-हिज्र, नातवानी, रोने-बिसूरनेके लफ़्ज़ी करिश्मे देखे। भला बताइए इसतरहके गपोडे भरे शेरोंका किसीपर क्या असर होगा? शेर तो वास्तविक स्थितिके द्योतक, स्वच्छ हृदयसे लिखे जाये तभी उनका कुछ असर सम्भव हो सकता है। मगर ऐसे शेर जिनमे सत्य-का लेश नहीं, पड़े हुए असरको भी नष्ट कर देगे।

विरह-ज्वरमे इतना तप रहा हूँ कि नाड़ी छूनेसे चिकित्सकके हाथमे छाला पड़ गया है। ग़मे-यारमे इतना कमजोर हो गया हूँ कि बिस्तरपर मौत भी ढूंढ़े तो न मिलूँ। इश्क़े-महबूबमे इतना रोया हूँ कि नदी-नाले एक हो गये है। आहो-फ़ुग़ाँका यह आलम है कि पड़ोसियोंकी नीदे हराम हो गई है। संसारके सभी पर्वत मेरी आहोसे जलकर खाक हो गये है, और तुम्हारे कपोलपर जो काला तिल है, वह उन्ही पर्वतोंका धुआँ है।

इसतरहके सफ़ेद झूठभरे शेर जिसको भी लिखे जायेंगे, झुँझला उठेगा। लेखकको सिडी-सौदाई समझेगा, और उससे दूरका वास्ता भी न

---

[1]आँसुओंसे भीगे नेत्रोंके; [2]गरम-गरम आँसुओंको; [3]रात; [4]प्रेयसीकी जुदाईमे; [5]आस्मानपै।

रखेगा। उसकी परछाईसे भी भागेगा।[1] पत्र-वाहकको भी दुतकार देगा, ज्यादा हेरा-फेरी करेगा तो पिटवा भी दिया जायगा और कहीं पठान या राजपूत क़िस्मका हबीब हुआ तो उसे गर्दन उतारते भी क्या देर लगेगी ?[2]

इकतरफ़ा इश्क़

उर्दू-शाइरीमें इश्क़ प्रायः इकतरफ़ा पाया जाता है। महबूबको आशिक़से दूरका भी सरोकार नहीं होता। भला कल्पना कीजिए कि इन शाइरोंमें-से किसी एककी बहन-बेटीपर इनकी शाइरीमें वर्णित शोहदा, सिड़ी, आवारा-किस्मका कोई सरफिरा आशिक हो जाता और वह इनकी शाइरीके मुताबिक इनके कूचेमें आकर सीटियाँ बजाता, हर आदमीसे अपने इश्कका इज़हार करते हुए इनकी बहन-बेटीके हुस्नका बयान करता, धक्के देनेसे भी न टलता, बिस्तर लगाकर इनके कूचेमें धरना दे देता, अँधेरे-उजालेमें मकानमें कूद जाता[3], चौकसीको दरबान रखते तो उन्हें फुसलाता,

---

[1]**जब मेरी राहसे गुज़रते हैं।**
अपनी परछाईसे भी डरते हैं॥

डरे न तो क्या करे? जब कोई सिड़ी या शोहदा भूतकी तरह पीछा करने लगे तो माशूक़ अपनी परछाईसे भी डरे तो आश्चर्य भी क्या ?

[2]**ग़ालिब— क़ासिदको अपने हाथसे गरदन न मारिए।**
उसकी ख़ता नहीं है, यह मेरा क़ुसूर था॥

अमीर— जो लाश भेजी थी क़ासिदकी भेजते ख़त भी।
रसीद वोह तो मेरे ख़तकी थी, जवाब न था॥

[3]**मोमिन—कूदकर घरमें जो पहुँचा मैं तेरे, पर क्या करूँ?**
दम निकल जाता था खटकेसे बराबर रातको॥

चकमा देता, फ़कीरोंका वेश बनाकर धोका[1] देता, गालियाँ देने[2] और धक्के मारनेसे भी न टलता तो इनके दिलपर क्या गुजरती। इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा क्या रहती? इस तरहके अशआर लिखनेवालोंने यह भी न सोचा कि हमारी भी बहन-बेटियाँ हैं। हमारी शाइरीका लक्ष्य यदि कोई उन्हें बना लेगा तो क्या हश्र होगा?

---

[1]ग़ालिब— गदा[1] समझके वोह चुप था, मेरी जो शामत आई।
उठा और उठके क़दम मैंने पासबाँके[2] लिये॥

दाग़— दरबाँको मिलाकर जो पुकारा उन्हें मैंने।
ख़ुद कहने लगे—"कौन है? वोह घरमें नहीं है॥"

दरबानके झगड़ेने बड़ा काम निकाला।
घबराके वोह निकले इसी तदबीरसे बाहर॥
यह मेरे वास्ते ताकीद है दरबानोंपर।
कि "उसे मैं भी बुलाऊँ तो न आने पाये॥"

दरपै आके जल्द तुम सुन लो जो है मेरा सवाल।
गर लगाई देर तो जानों कि साइल[3] घरमें है॥

देखकर दूरसे दरबाँने मुझे ललकारा।
न कहा यह कि "ठहर जाओ ख़बर करते हैं॥"

[2]दाग़— हम एक कहके सुनते हैं मुँहसे तेरे हज़ार।
लपका पड़ा हुआ है यह गुफ़्तो-शुनीदका[4]॥

दाग़को देखकर वोह कहते हैं—
"यह मरेगा भी बेहया कि नहीं॥"

रोज़ जाता हूँ नये रूपसे उसके दरपर[5]।
रोज़ रखता हूँ नया नाम बदलकर अपना॥

शेष अगले पृष्ठ पर

---

[1]फ़कीर; [2]दरबानके; [3]भिक्षुक, मँगता; [4]वार्त्तालाप सुननेका; [5]दर्वाज़ेतक।

जहाँ इस तरहकी अस्वाभाविक, कपोलकल्पित शाइरीका दौर-दौरा हो, वहाँ अश्लील शाइरीका होना भी लाज़िमी था। जब चारों तरफ़ कुओंमें भंग पड़ी हो, तब उसे पीकर लोग बावले न हों तो और क्या हों? मोमिन, अमीर, निज़ाम, दाग़का तो ख़ैर ज़िक्र ही क्या, वह तो रंगीन शाइरीके लिए मानो पैदा ही हुए थे[1], गालिब-जैसा

जब कूचेमें-से धक्के देकर निकाल दिये गये तो झूठ-मूठको बार-बार बीमार पड़ते रहे, ताकि शायद रहम खाकर आजायें—

अमीर मीनाई—आया न एक बार अयादतको[1] वह मसीह[2]।
सौ बार मैं फ़रेबसे[3] बीमार हो चुका॥

और जब बीमारीमें भी न आया तो मरनेका स्वाँग रचा कि शायद मौतकी ख़बर पाकर दुनियाकी जाहिरदारीको तो आये—

यारो लपेट देना ज़िन्दा मुझे कफ़नमें

झूठ-मूठके मरनेपर तो क्या, वह सचमुच मर जानेपर भी नहीं आता—

ज़ौक़— मर गये पर भी तग़ाफ़ुल[4] ही रहा आनेमें।
बेवफ़ा पूछे है—"क्या देर है ले जानेमें?"

और जब यह फ़रेब भी नाकामयाब हुआ तो अर्थीमें लेटकर उसके कूचेसे जनाजा निकलवाया कि शायद जनाज़ा देखते ही बाहर निकल आये—

सोज़— जनाज़ेवालो! न चुपके क़दम बढ़ाये चलो।
उसीका कूचा है, टुक करते हाय-हाय चलो॥

[1]उक्त शाइरोंका इस तरहका कलाम यहाँ हम जानबूझकर देनेसे गुरेज़ कर रहे हैं। अध्ययनशील व्यक्ति शेरो-सुख़नके पहले भागमें ऐसे नमूने पा सकेंगे।

---

[1]बीमारीका हाल पूछने; [2]ईसाकी तरह मुर्दोंमें जान डालनेवाला माशूक़; [3]झूठ-मूठ; [4]उपेक्षा।

दार्शनिक और गम्भीर व्यक्ति भी कभी-कभी इसतरह बहकने लगता था—

हमसे खुल जाओ बवक़्ते मै-परस्ती[1] एक दिन।
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्रे-मस्ती एक दिन॥

ले तो लूं सोतेमें उसके पाँवका बोसा, मगर—
ऐसी बातोंसे वह काफ़िर बदगुमाँ हो जायगा॥

पीनसमें गुज़रते हैं जो कूचेसे वोह मेरे।
कन्धा भी कहारोंको बदलने नहीं देते॥

दरपै[2] पड़नेको कहा और कहके कैसा फिर गया।
जितने अर्सेमें मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला॥

ग़ैरको या रब! वोह क्योंकर मनअ़ गुस्ताख़ी करे।
गर हया भी उसको आती है, तो शरमा जाये है॥

धौल-धप्पा उस सरापा नाज़का शेवा[3] नहीं।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती[4] एक दिन॥

इसप्रकारकी असम्भव, कल्पित और अश्लील शाइरीने ग़ज़लकी आबरू धूलमें मिला दी। 'हाली' स्वयं ग़ज़लगो शाइर थे। मगर उन्हें ग़ज़लका यह पतन पसन्द न आया। १८५७ ई० के ग़दरके बाद मुसलमानोंकी जो शोचनीय स्थिति हुई, बादशाहत और नवाबी मिट जानेसे जो उनकी प्रतिष्ठाको धक्का पहुँचा, उसकी क्षति-पूर्ति असम्भव थी। उसपर भी तुर्रा यह कि वे इस तरहकी पतितोन्मुखी शाइरीमें उलझे हुए थे। 'हाली' को मुसलमानोंका यह मृत्यु-महोत्सव पसन्द न आया, उन्होंने मन-ही-मन ग़ज़लको ख़त्म करनेका फ़ैसला किया—

---

[1]शराब पीते समय; [2]दर्वाज़ेपर; [3]आदत, स्वभाव; [4]शुरुआत, प्रारम्भ।

सुखनपर हमें अपने रोना पड़ेगा।
यह दफ़्तर किसी दिन डुबोना पड़ेगा॥

अतः उन्होंने स्वयं गज़ले कहनी बन्द कर दी; नज्म लिखनेको प्रोत्साहन देने लगे और इश्किया कलाम लिखनेवालोंका सख्तीसे विरोध करते हुए बुलन्द स्वरमे फ़र्माया—

ऐ इश्क़ तूने अक्सर क़ौमोंको खाके छोड़ा

नज्म-आन्दोलन गजलके लिए बहुत मुबारक साबित हुआ। जाहिरामे तो इस आन्दोलनसे गज़लको बहुत बड़ा धक्का लगा, मगर हकीकतमे उसका कायाकल्प हो गया। अपनी पतितोन्मुखी स्थितिका आभास मिलते ही वह कल्पना-लोकसे उतरकर जीवनके वास्तविक आँगनमे आखडी हुई। खारिजी, रवायती, फ़हाशी, तकल्लुफ़ी, बनावटी बन्धनोको तोडकर स्वतत्र हो गई। वह अपना सकुचित दृष्टिकोण छोड़कर विशाल क्षेत्रकी ओर अग्रसर हुई। उसने युगकी रुचिको देखते हुए अपने मनको स्वस्थ, प्रफुल्ल एव उदार बनाया, और परिधानमे भी आश्चर्यजनक सुरुचिपूर्ण परिवर्तन किया।

गज़लका कायाकल्प

यद्यपि हाली और आज़ादसे क़रीब सवा सौ वर्ष पूर्व नज़ीर अकबराबादी इस किस्मकी शाइरीका श्रीगणेश कर गया था। मगर दुर्भाग्यसे तत्कालीन उर्दू-साहित्यकोने उसे शाइर ही तसलीम नही किया। वह केवल एक चुटकुलेबाज़से अधिक नही समझा गया। अतः उसके अनुकरणकी हिम्मत आगे कौन करता? 'नजीर' सिर्फ़ अपनी नजीर बनकर रह गया।[1]

'अनीस' और 'दबीर' आदिने मर्सियोंमे उन बहुत-सी बातोंको समोया, जो गज़लमे नही थी। मगर वह प्रयास सिर्फ इस्लाम

---

[1] 'नजीर' उर्दूका सर्वप्रथम विशुद्ध भारतीय कवि हुआ है। इसका परिचय एव कलाम 'शेरोशाइरी' मे पृ० १७५-१९०मे मिलेगा।

मज़हबतक सीमित होकर रह गया, ग़जलमे कोई परिवर्त्तन नहीं हो सका।

हाली-ओ-आजादके आन्दोलनको सर सैयद अहमदके कारण बहुत बल मिला। वे उन दिनों मुसलमानोंके बड़े और प्रभावशाली नेता थे, और सत्य बात तो यह थी कि वही इस आन्दोलनके मुख्य प्रवर्त्तक थे।

नज्म-आन्दोलनके बावजूद उस युगमे ग़जलके हिमायतियों, समर्थको और अनुयायियोंका बहुत बड़ा गिरोह था। उनमे अधिकाश लकीरके फ़कीर और पुराने ख़यालके थे, जो ग़जलमे किसी किस्मका भी परिवर्त्तन, परिवर्द्धन एव संशोधन करनेके घोर विरोधी थे। उनका विश्वास था कि गजल अपने चरमविकासको पहुँच चुकी है। पुराने उस्तादोंके बनाये हुए कानून-ओ-कायदेमे तरमीम करना गुनाह ही नही कुफ़्र भी है।

मगर उन्ही दिनों गजल-स्कूलके कुछ ऐसे स्नातक भी थे, जिन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त थी। जो कयामतकी चालका अन्दाज़ा रखते थे, लिफ़ाफ़ा देखकर खतके मजमूनको भाँप लेते थे। उन्होंने यह महसूस किया कि यदि अब गजलका कायाकल्प नही किया गया तो उसका विनाश अवश्य-म्भावी है। फिर उसे कोई नही बचा सकेगा।

नज्म उत्तरोत्तर तरक़्क़ी करती जा रही थी। दाग-जैसे रगीन गजल-गो उस्तादके—सर इकबाल, सीमाब अकबराबादी, जोश मलसियानी—जैसे तीनो शिष्य नज्मकी ओर आकर्षित हो चुके थे। लखनवी ग़जल-गो उस्ताद 'सफी' भी नज़्म लिखने लगे थे। दुर्गासहाय सरूर, ज्वालाप्रसाद बर्क, जगमोहनलाल रवाँ, ब्रजनारायण चकबस्त, इस्माइल मेरठी, नजर लखनवी आदि जोशो-ख़रोशके साथ नज्मके मैदानमें उतर आये थे।[1]

---

[1] नज्म आन्दोलनका विस्तृत इतिहास और नज्म-गो शाइरोंका परिचय एव कलाम हम 'शाइरीके नये दौर' नामक पुस्तकमे दे रहे है जो कि शीघ्र ही प्रेसमे दी जायगी। यूँ "शेरोशाइरी" मे पृ० २६१-५६८ तक सक्षिप्त इतिहास और १७ प्रसिद्ध नज्म-गो शाइरोंका परिचय हम दे चुके हैं।

नज्म-आन्दोलनके इतने प्रसारके बावजूद भी गजलके परिस्तारों, प्रशसकों और शाइरोंका बहुत बडा समूह था। जिस तरह कि आर्यसमाजका धआँधार प्रचार होनेपर भी सनातनियोका है। और परिस्तार भी किस गजलके? जिसकी बागडोर दागके हाथमे थी। उनके पूर्व हुए मोमिन, गालिबकी क्लिष्ट, गम्भीर, गहरी तथा नासिख-स्कूलकी पेचीदा और लफ़्फाजो शाइरीकी आम जनतातक रसाई नही थी।

अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित अथवा सर्वसाधारण उनकी शाइरीको समझने-की योग्यता ही नही रखते थे[1]। अधिकाश रगीन शाइरीके दिलदादा थे। ऐसी रुचिके लिए 'दाग'की और लखनऊकी शाइरी निहायत मौजूं थी। यही कारण है कि उन दिनों कोई ऐसी महफिल न थी, जिसमे 'दाग' की गजले न गूंजती हो। कोई ऐसी तवाइफ नही थी, जिसे 'दाग़' की ग़जले कंठस्थ न हों। हर जवाँ-बच्चेकी ज़बानपर दागकी गजले थिरकती थी। जिस मुशाइरेमे 'दाग' मौजूद हों, उस मुशाइरेमे किसी और शाइरका रग जमना नामुमकिन था। दागके अन्य समकालीनोका तो खैर ज़िक्र ही किया, स्वय हाली-जैसे पुख्ता और मँजे हुए शाइरका रग'दाग'के सामने न जम सका।

हम जिसपै मर रहे है, वोह है बात ही कुछ और।
आलममें तुझसे लाख सही, तू मगर कहाँ?

हालीका उक्त शेर जनताको 'दाग'के इस चुलबुले शेरके सामने पसन्द न आया—

---

[1]वर्त्तमानमे शिक्षाका इतना प्रसार और सुरुचि परिष्कृत होनेपर भी उच्च साहित्यके पाठक कितने है? सस्ते और घटिया किस्मके नाविलोंकी ही अधिक-से-अधिक खपत है।

मज़हबतक सीमित होकर रह गया, गजलमे कोई परिवर्त्तन नही हो सका।

हाली-ओ-आजादके आन्दोलनको सर सैयद अहमदके कारण बहुत बल मिला। वे उन दिनों मुसलमानोंके बड़े और प्रभावशाली नेता थे, और सत्य बात तो यह थी कि वही इस आन्दोलनके मुख्य प्रवर्त्तक थे।

नज़्म-आन्दोलनके बावजूद उस युगमे ग़जलके हिमायतियों, समर्थको और अनुयायियोंका बहुत बड़ा गिरोह था। उनमे अधिकांश लकीरके फ़कीर और पुराने ख़यालके थे, जो गजलमे किसी क़िस्मका भी परिवर्त्तन, परिवर्द्धन एवं संशोधन करनेके घोर विरोधी थे। उनका विश्वास था कि ग़ज़ल अपने चरमविकासको पहुँच चुकी है। पुराने उस्तादोंके बनाये हुए कानून-ओ-कायदेमे तरमीम करना गुनाह ही नही कुफ़्र भी है।

मगर उन्ही दिनों गजल-स्कूलके कुछ ऐसे स्नातक भी थे, जिन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त थी। जो कयामतकी चालका अन्दाज़ा रखते थे, लिफ़ाफ़ा देखकर खतके मजमूनको भाँप लेते थे। उन्होंने यह महसूस किया कि यदि अब गजलका कायाकल्प नही किया गया तो उसका विनाश अवश्य-म्भावी है। फिर उसे कोई नही बचा सकेगा।

नज्म उत्तरोत्तर तरक़्क़ी करती जा रही थी। दाग-जैसे रंगीन ग़ज़ल-गो उस्तादके—सर इक़बाल, सीमाब अकबरावादी, जोश मलसियानी—जैसे तीनो शिष्य नज्मकी ओर आकर्षित हो चुके थे। लखनवी गजल-गो उस्ताद 'सफ़ी' भी नज़्म लिखने लगे थे। दुर्गासहाय सरूर, ज्वालाप्रसाद बर्क़, जगमोहनलाल रवाँ, ब्रजनारायण चकबस्त, इस्माइल मेरठी, नजर लखनवी आदि जोशो-खरोशके साथ नज्मके मैदानमें उतर आये थे।[1]

---

[1] नज़्म आन्दोलनका विस्तृत इतिहास और नज़्म-गो शाइरोंका परिचय एवं कलाम हम 'शाइरीके नये दौर' नामक पुस्तकमे दे रहे है जो कि शीघ्र ही प्रेसमे दी जायगी। यूँ "शेरोशाइरी" मे पृ० २६१-५६८ तक सक्षिप्त इतिहास और १७ प्रसिद्ध नज्म-गो शाइरोका परिचय हम दे चुके है।

नज़्म-आन्दोलनके इतने प्रसारके बावजूद भी गज़लके परिस्तारों, प्रशंसकों और शाइरोंका बहुत बड़ा समूह था। जिस तरह कि आर्यसमाजका धुआँधार प्रचार होनेपर भी सनातनियोंका है। और परिस्तार भी किस गज़लके? जिसकी बागडोर दागके हाथमे थी। उनके पूर्व हुए मोमिन, गालिबकी क्लिष्ट, गम्भीर, गहरी तथा नासिख-स्कूलकी पेचीदा और लफ़्फाजी शाइरीकी आम जनतातक रसाई नहीं थी।

अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित अथवा सर्वसाधारण उनकी शाइरीको समझने-की योग्यता ही नहीं रखते थे[1]। अधिकांश रंगीन शाइरीके दिलदादा थे। ऐसी रुचिके लिए 'दाग़'की और लखनऊकी शाइरी निहायत मौजूं थी। यही कारण है कि उन दिनों कोई ऐसी महफ़िल न थी, जिसमें 'दाग़' की गज़लें न गूंजती हों। कोई ऐसी तवाइफ नहीं थी, जिसे 'दाग़' की ग़ज़लें कंठस्थ न हों। हर जबाँ-बच्चेकी ज़बानपर दागकी गज़लें थिरकती थीं। जिस मुशाइरेमें 'दाग' मौजूद हों, उस मुशाइरेमें किसी और शाइरका रंग जमना नामुमकिन था। दागके अन्य समकालीनोंका तो खैर ज़िक्र ही किया, स्वयं हाली-जैसे पुख्ता और मंजे हुए शाइरका रंग 'दाग'के सामने न जम सका।

हम जिसपै मर रहे हैं, वोह है बात ही कुछ और।
आलममें तुझसे लाख सही, तू मगर कहाँ?

हालीका उक्त शेर जनताको 'दाग'के इस चुलबुले शेरके सामने पसन्द न आया—

---

[1] वर्त्तमानमें शिक्षाका इतना प्रसार और सुरुचि परिष्कृत होनेपर भी उच्च साहित्यके पाठक कितने हैं? सस्ते और घटिया किस्मके नाविलोंकी ही अधिक-से-अधिक खपत है।

मै-ख़ानेके क़रीब थी, मस्जिद भलेको 'दाग़'।
हर-एक पूछता था कि "हज़रत इधर कहाँ ?"

और 'हाली' का यह शेर भी—

उसके जाते ही हुई क्या मेरे घरकी सूरत।
न वोह दीवारकी सूरत है न दरकी सूरत॥

'दाग' के इस शेरके सामने फीका पड़ गया—

बज़्मे-दुश्मनमें न खिलना, गुलेतरकी सूरत।
जाओ बिजलीकी तरह, आओ नज़रकी सूरत॥

केवल 'दाग'के ही दो हजारके करीब शिष्य उस समय मौज़ूद थे। 'अमीर मीनाई', 'जलाल' आदिके भी सैकड़ों शिष्य थे और ये सब समूचे भारतमें बिखरे हुए थे। सिर्फ दो-चारको छोड़कर सभी इस क़िस्मकी शाइरीके आदी थे।

उधर नज़्मकी तरफ नये और पुराने लोग झुकते जा रहे थे। इधर गज़ल-गो शाइरोंकी वही रफ़्तार बेढगी थी। ऐसी विषम परिस्थितिमें भी कुछ शाइरोंने साहससे काम लिया। गिरते हुए झंडेको मजबूत हाथोंमें थाम लिया और मरणोन्मुख ग़ज़लको वह जीवन-दान दिया कि आज वह पूरी आबो-ताबके साथ चमक रही है।

इन साहसी गजल-गो-शाइरोंमें—१ सफ़ी लखनवी, २ अजीज लखनवी, ३आरज़ू लखनवी, ४ साक़िब लखनवी, ५ शाद अजीमाबादी, ६ यगाना चंगेज़ी, ७ फ़ानी बदायूनी, ८ असगर गोण्डवी, ९ हसरत मोहानी, १० जिगर मुरादाबादी, ११ सीमाब अकबराबादी और १२ जोश मलसियानी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।[1]

---

[1]इन सबका परिचय एव कलाम शेरो-सुख़न भाग २-३-४ में दिया गया है।

हालीने दरअस्ल गज़लका विरोध नही किया। उनका आशय यही था कि तत्कालीन (१९ वी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे) गज़ल-गोईमे-

ग़ज़लकी आवश्यक विशेषतायें

अस्वाभाविकता, कृत्रिमता, अश्लीलता आदि जो दोष आगये थे, उन्हे दूर किया जाय। उनका कथन था कि—"ग़ज़लमे जो इश्क़िया मज़ामीन बाँधे जाये, वे ऐसे जामा अलफ़ाजमे अदा किये जाये जो दोस्ती और मुहब्बतके तमाम जिस्मानी और रूहानी ताल्लुकातपर हावी हों, और जहाँतक हो सके ऐसा कोई लफ़्ज न आने पाये, जिससे माशूक औरत या मर्द मालूम हो सके। माशूकको हमेशा मुजक्कर (पुल्लिग) बाँधना चाहिए, और अमरदपरस्तीके खयालात क़तई बन्द कर दिये जाये। हबीबके हुस्नो-जमालका इज़हार बन्द किया जाय। अगर हबीब पर्दादार है तो कौन ऐसा बेवक़ूफ है जो अपनी बीबीके रान, तिल, बाल, वग़ैरहका हुलिया दूसरेको बताये और अगर हबीब बाज़ारी है तो उसका ज़िक्र करना अपनी ही रुसवाईका ढिढोरा पीटना है।" हालीके मतानुसार गज़लमे यह तीन खूबियाँ अत्यन्त आवश्यक है—

१. **सादगी,**
२. **स्वाभाविकता,**
३. **प्रभाव।**

सादगी

जो शाइर प्रकृतिकी ओरसे कवि-हृदय लाया हो, उसे ही इस ओर अग्रसर होना चाहिए। जो व्यक्ति शाइराना दिलो-दिमाग लेकर नही जन्मा है, उसे शाइरी कदापि नही करनी चाहिए। उस्तादोंकी कृपासे शाइरीका व्याकरण तो आ सकता है, परन्तु शाइरी कदापि नही आ सकती। अगर उस्तादोंके सिखायेसे शाइरी आ सकती तो मीर, मोमिन, ग़ालिबके उस्ताद उनसे बड़े नामवर हुए होते। यह तो हृदयसे स्वयं

उबलनेवाला झरना है, जो सदैव स्वच्छ, निर्मल बहता है। बनाये हुए तालाबोंमें वह बात कहाँ? उनमे कूड़ा भर जाता है और दुर्गन्ध आने लगती है। जो स्वभावतः शाइर होगा, उसकी शाइरीमें सादगी एवं सरलता होगी, वह शब्दकी व्यूह रचना नही करेगा।

स्वाभाविकता

जो शाइर स्वाभाविकता एवं वास्तविकताके जितने समीप होगा, कृत्रिमता, तकल्लुफ, अतिशयोक्तियोंसे जितना बचकर चलेगा, उतना ही सफल शाइर होगा।

प्रभाव

शेरमें प्रभाव एव हृदयस्पर्शी क्षमता तभी आ सकती है, जब कि शाइरका हृदय भी शेरमें व्यक्त किये गये भावोंसे ओतप्रोत हो। 'मीर' जो ख़ुदा-ए-सुखन कहलाते हैं और उर्दूके सभी नामवर और बड़े शाइरोंने उन्हें 'मीर' (सरदार, बड़ा) माना है, उनकी कामयाबीका राज यही था कि वे स्वभावत. शाइराना दिलो-दिमाग लेकर जन्मे थे। वे शौकिया या रवायतन शेर नही कहते थे। अपितु जब वे कहनेपर मजबूर हो जाते थे, तभी वे शेर कहते थे। वे अपने पहलूमें एक ऐसा दर्दभरा दिल रखते थे, जिसकी टीस और चुभक उन्हें जीवनभर बेचैन किये रही। उन्होंने इश्किया शाइरी वक़्त काटनेकी गरजसे, हज-यात्राके मार्गमें तफरीहन नही की, और न वजू करते हुए उन्हें इमामे-मैखाना बननेका तसव्वुर हुआ। बल्कि उन्होंने सचमुच इश्क़ किया था। वही हक़ीक़ते-इश्क़ और दास्ताने-ग़म उनके कलाममें प्रस्फुटित हुई है—

किस-किस तरहसे उम्रको काटा है 'मीर' ने।
तब आख़िरी ज़मानेमें यह रेख़्ता[1] कहा॥

---

[1]प्रारम्भमें उर्दूका और उर्दू-शाइरीका नाम रेख़्ता था।

हमको शाइर न कहो, 'मीर' कि साहब हमने।
दर्दे-ग़म कितने किये जमा तो दीवान बना।।

'मीर' को अपनी ही क़ौमकी एक लड़कीसे इश्क़ हो गया था। उसको प्राप्त करनेके लिए उन्होने अनेक प्रयत्न किये और कष्ट उठाये। सामाजिक बन्धनोको तोड़नेका साहस भी किया और पारिवारिक टक्करे भी ली, परन्तु सफलता न मिली। तमाम उम्र उसीकी चाहतमे काट दी और उस चाहतमे जो उन्हे व्यथा, टीस, वेदना, मिली, उन्होने 'मीर' को वह क्षमता और वाणी प्रदान की, जिनपर सदियोसे शाइर सर धुनते आ रहे है। प्रायः सभी उतरवर्त्ती शाइरोने उनके अनुकरणका प्रयत्न किया, परन्तु वह बात पैदा न हुई जो 'मीर' मे है। 'मीर, मीर है,। जौकने जो ब-हसरत कहा था—

न हुआ, पर न हुआ, 'मीर'का अन्दाज़ नसीब।
'ज़ौक़' यारोंने बहुत ज़ोर ग़ज़लमें मारा।।

अगर जोर मारनेसे गजल प्रभावक एवं हृदयग्राही बन सकती तो फिर 'मीर' जैसे दुबले-पतले शाइरके बजाय 'नासिख'-जैसे पहलवान 'खुदा-ए-सुखन' कहलाते।

शाइरीमे सोजो-गुदाज (हृदयको द्रवित करनेकी क्षमता) वह चीज है जो शेरमे सम्मोहन शक्ति फूंकती है। यह वह विशेषता है जो बगैर दिल जलाये पैदा नही होती। बाज लखनवी-शाइरोका खयाल है कि— मैयत, लाश, लहद, नजअ, मौत, दर्द, गम, रज, सदमा आदि शब्दोके इस्तेमालसे शेरमे सोज़ो-गुदाज पैदा हो जाता है। मगर यह बहुत भ्रामक खयाल है। केवल इन शब्दोके प्रयोगमे लानेसे शेरमे सोजो-गुदाज पैदा हो सकता तो हर शाइर बा-आसानी 'मीर' बन बैठता। जेवर-लिबास और शृंगारिक सामान ही अगर हसीन बना सकता तो कोई रईस औरत बदसूरत न रहती।

कलाममें सादगी, स्वाभाविकता और प्रभाव लानेके लिए यह ज़रूरी है कि शेर किसीके दबावसे, फ़र्माइशसे, या लालचवश नहीं कहना चाहिए। "अरबके मशहूर शाइर 'क़ैसर'से किसीने पूछा कि तूने शेर कहना क्यों छोड़ दिया? जवाब मिला—'जवानी जिससे उमग पैदा होती थी गुजर गई। अब्दुल अजीज (पुत्र) जिससे सिलेकी तवक़्क़ोह थी, वह भी न रहा। अब कौन-सी चीज बाकी है जो शेर कहलाये?' गोया उसने इस बातका इशारा किया है कि जबतक दिलमें किसी क़िस्मका जोश और वलवला न हो, उस वक़्ततक शेर अंजाम नहीं हो सकता। एक शाइरका क़ौल है कि बाज़ औक़ात मेरा यह हाल होता है कि दाँतको मसूड़ोंसे उखाड़ना मुझको ज्यादा आसान मालूम होता है, ब-निस्वत शेर कहनेके। यानी बगैर तबियतके और दिली जोशके शेर सरजाम नहीं हो सकता।"[१]

उर्दू-शाइरीके लिए यह बहुत बड़ा अभिशाप रहा है कि अधिकाश-शाइरोंको बे-मनकी शाइरी करनी पड़ी है। कभी बादशाहों-नवाबों-रईसोंकी फर्माइशोंपर, कभी उनकी शादियों और खुशियोंके मौक़ोंपर लोभवश, कभी मुशाइरोंमें शिरकत करनेके लिए, अशआर कहने पड़े हैं। यही कारण है कि अधिकाश शाइरोंकी गजलें बेनमक और फीकी होती हैं। ग़ज़लमें एक-दो शेर ही ऐसा होता है जो मनपर असर करे, और बेमनकी शाइरी मनपर असर न करे तो इसमें आश्चर्यकी बात भी क्या है?

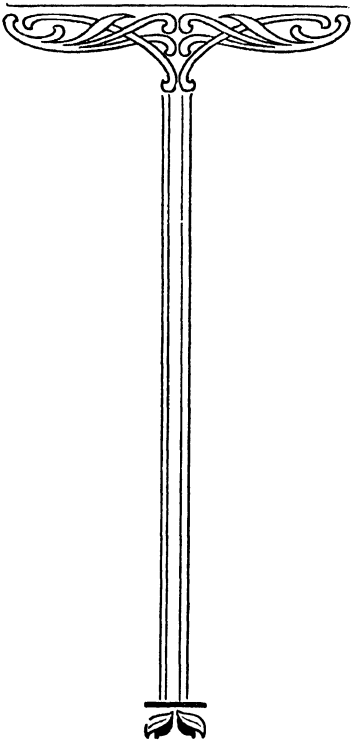
हर्ष है कि वर्त्तमान युगीन अधिकांश शाइर इस दोषसे बचनेका यथा-शक्ति प्रयत्न करते हैं और शेर जब अपनेको उनसे कहलवाता है तभी कहते हैं।

डालमियानगर
८ अगस्त १९५३ ई०

---

[१]हाली-मुकदमये-शेरोशाइरी उर्दू।

सिंहावलोकन



उत्तरार्द्ध

[१९०१ से १९५७ तक की ग़ज़लगोई

१. शाइरीमे परिवर्त्तनके कारण
२. नज़्म और ग़ज़ल
३. ग़ज़लकी उन्नतिके कारण
४. ग़ज़लपर एतराज़
५. ग़ज़लका मर्म
६. ग़ज़लके रूपक
गुल-ओ-बुलबुल
साक़ी-ओ-मैख़ाना
हुस्न-ओ-इश्क़
७. रंगे-तग़ज़्ज़ुल
नई ग़ज़लगोई
८. पाक इश्क
९. महबूबका मर्त्तबा
१०. महबूबका जमाल
११. रोना-बिसूरना
१२. आशिक़-ओ-माशूक़की तसवीर
१३. हिज्रे-यार
१४. यास-ओ-हिरमान
१५. रक़ाबत
१६. सामयिक घटनाएँ

उर्दू-शाइरीपर अँगरेज़ी-साहित्यका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अँगरेज़ीके प्रसारसे पूर्व उर्दू-शाइरीका एक मात्र माध्यम फ़ारसी-शाइरी था।

शाइरीमें परिवर्त्तनके कारण

उसका अनुकरण एवं पुराने विचारोंकी पुनरावृत्ति करते रहना ही तत्कालीन उर्दू-शाइरोंका एकमात्र लक्ष्य रह गया था। ग़ज़लका क्षेत्र सीमित था। इस सीमित क्षेत्रमें कोई कहाँतक उड़ान भरता? 'ग़ालिब'ने ग़ज़लमें पहले-पहल परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन किया और इसमें उन्हें बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रतिभासे अनेक मौलिक विचारोंका ग़ज़लमें इस कौशलसे समावेश किया कि ग़ज़ल नये आबो-ताबके साथ चमकने लगी और अब वह केवल मानसिक अभिरुचिको तृप्त करनेके बजाय जीवनोपयोगी भी होने लगी।

ग़ालिबकी इस सूझ-बूझसे शाइरोंको एक नवीन दिशाका ज्ञान हुआ और ग़ज़लका क्षेत्र भी पहलेकी अपेक्षा काफ़ी विस्तृत हुआ, किन्तु ग़ालिबकी प्रतिभाके लिए तो असीमित क्षेत्रकी आवश्यकता थी। स्वयं अकेले वे कहाँतक इस क्षेत्रको विस्तृत करते रहते? लाचार उन्हें कहना पड़ा—

कुछ और चाहिए वुसअ़त मेरे बयाँके लिए

यही वुसअ़त (विस्तीर्णता) उर्दू-शाइरीको अँगरेज़ी-साहित्यसे प्राप्त हुई। अँगरेज़ी-कविताएँ प्रेमके अतिरिक्त—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावहारिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, प्राकृतिक, राष्ट्रीय आदि अनेक जीवनोपयोगी एवं सामयिक विचारोंसे ओत-प्रोत होती थीं। विश्वकी मुख्य-मुख्य घटनाओंको बहुत सुरुचिपूर्ण ढंगसे अँगरेज़ी कविताओं-द्वारा व्यक्त किया जाता था।

अँगरेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय शाइरोंपर इन कविताओंका बहुत अधिक

प्रभाव पड़ा। वे भी उर्दू-शाइरीको परिपूर्ण बनानेके लिए प्रयत्नशील हो उठे।

अँगरेज़ी पढ़े-लिखे उर्दू-शाइर अँगरेज़ी कविताके विस्तारसे तो प्रभावित हुए, परन्तु सौभाग्यसे अँगरेजी-संस्कृतिसे कोई लगाव नहीं रखा। अँगरेजी-कविताका अन्ध-अनुकरण न करके, उन्होंने अपने समाज, देश, संस्कृति आदिको अपनी कविताका लक्ष्य बनाया। वे अपने देशके—वनों-पर्वतों, दरियाओं-वाटिकाओं, सुन्दर नगरों, भव्य इमारतोंकी ललित कलाओं एव मोहक दृश्योंको नज़्म करने लगे। अपने देशके पौराणिक-ऐतिहासिक महापुरुषोंके गुणोंका नज्मों-द्वारा बखान करने लगे। कला केवल कला न रहकर अब वह जीवनोपयोगी बनने लगी।

उन दिनों भारतका वातावरण भी ऐसी शाइरीके लिए बहुत अनुकूल एवं उपयुक्त था। १८५७ ई० के विप्लवके बाद भारतके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रोंमें एक उथल-पुथल-सी मची हुई थी। अँगरेजोंके भारतपर अधिकार जमा लेनेके कारण भारतीय सशंकित हो उठे कि कहीं राज्यके साथ-साथ धर्म-मजहब, संस्कृति एवं तमद्दुनसे भी हाथ न धोना पड़े। इन्हें सुरक्षित रखनेके लिए हिन्दू-मुसलमानोंमें होड़-सी लग गई। हिन्दुओंने विश्वविद्यालय और गुरुकुलकी नींव डाली तो मुसलमानोंने यूनिवर्सिटी, मकतब तामीर किये। हिन्दू-मुसलमानों-द्वारा सभाएँ और अजुमनें बनाई जाने लगीं। पत्र एव अखबार निकाले जाने लगे। समाजोत्थान और राष्ट्रीय-चेतनाको उभारनेके लिए नज़्में और कविताएँ लिखी जाने लगीं। 'हाली' ने मुसद्दस लिखकर मुसल-मानोंके कौमी जज़्बेको उभारा तो 'इक़बाल'ने देश-प्रेमका बीजारोपण किया। नौबतराय 'नज़र', दुर्गासहाय 'सरूर', ज्वालाप्रसाद 'बर्क' आदि शाइरोंने पौराणिक, ऐतिहासिक, महापुरुषोंके जीवन नज़्म किये तो इस्माइल मेरठीने बालकोपयोगी नज़्में लिखीं। अँगरेजी कविताओंको उर्दू-नज़्मका रूप दिया। कोई प्राकृतिक दृश्योंको नज़्म करने लगा तो कोई भव्य नगरों और इमारतोंकी कलाओंको उजागर करने लगा।

अभीतक उर्दू-शाइरीमें वतनीयत (देशभक्ति) का वह शदीद जज़्बा नहीं आया था, जिसकी वतनको अज़हद ज़रूरत थी। सौभाग्यसे उन दिनों बंगालमें बंग-भगके विरुद्ध आन्दोलन छिड गया। इस आन्दोलनको सफल बनानेमें समूचा बंगाल प्राणपणसे जुट गया। क्रान्तिकारी दल सगठित किये गये। आग्नेय गद्य-पद्य-द्वारा लार्ड कर्जनकी 'बंग-भंग' नीतिकी तीव्र भर्त्सना की गई, और इस आन्दोलनको इतना बल दिया गया कि इसकी लपटें समूचे भारतमें फैल गईं। बंगालियों-द्वारा लिखी गई बंग-प्रेमकी कविताएँ जब अन्य प्रान्तोंमें पहुँचीं तो अन्य भाषा-भाषी कवि उनसे काफ़ी प्रभावित हुए और वे प्रान्तीय क्षेत्रसे निकलकर समूचे भारतको अपना देश समझने लगे और देश-प्रेम-सम्बन्धी नित-नई कविताएँ लिखने लगे। उर्दू-शाइरीपर भी इस आन्दोलनका काफ़ी प्रभाव पड़ा और उसमें बहुत तेजीसे वतनीयतके जज़्बे उभरने लगे। इस क्षेत्रमें प० बृजनारायण चकबस्तने आगे बढ़कर धौंसेपर चोट जमाई और देश-प्रेमके वे राग अलापे कि लोग वज्दमें आगये।

प्रथम महायुद्ध, रौलट-ऐक्ट, जलियानवालाबाग़-गोलीकाण्ड और असहयोग आन्दोलनके कारण शाइरीने एक नया मोड़ लिया! इस इन्क़लाबी शाइरीके जन्मदाता हज़रत 'जोश' मलीहाबादी हैं। उन्होंने देश-प्रेम, हिन्दू-मुसलिम ऐक्यपर सैकड़ों नज़्में लिखीं। साम्प्रदायिक संघर्षोंकी बड़े तीव्र शब्दोंमें भर्त्सना की। भारतके स्वतत्रता सम्बन्धी प्रत्येक पहलूपर उन्होंने इतना लिखा कि भारतका कोई भी कवि उनकी हमसरी नहीं कर सका! 'सीमाब' अकबराबादी, साग़र निज़ामी आदिने भी इन विषयोंपर बहुत काफ़ी लिखा। किसान-मजदूर, पूँजीपति, मुफ़लिसकी ईद, ग़रीबकी दीवाली, आदिपर बहुत काफ़ी लिखा गया।[1]

द्वितीय महायुद्धके दिनोंमें—ब्लेकआउट, कण्ट्रोल, राशनिंग, परमिट,

---

[1]विशेष परिचय 'शाइरीके नये दौर' में मिलेगा।

चोर-बाज़ारी, क़हते-बंगाल, एटमबम, आजाद हिन्द फ़ौज, सुभाषचन्द्र बोस, लालक़िला, हिटलर, मुसोलिनी, लेनिन स्टालिन, अन्धी लड़ाई, १९४२ के स्वतन्त्रता-सग्राम आदिपर न जाने कितनी नज़्मे लिखी गई और १९४७ के बाद तो नज़्मोंका एक सैलाब-सा आ गया। भारत-विभाजन, साम्प्रदायिक-हत्याकाण्ड, हिजरत, शरणार्थी, करफ़्यू, दरिन्दे, जब इन्सान वहशी बन गया, जश्ने-आज़ादी, आजादीके बाद, सुबहे-आज़ादी, वतनमे आखिरी रात, आदि हजारों नज़्में कही गईं और कही जा रही है।[1]

नज़्म और ग़ज़ल

इन नज़्मगो शाइरोंमे पुरातनवादी, प्रगतिशील, क्रान्तिकारी, कांग्रेसी, साम्यवादी, समाजवादी, मुसलिमलीगी आदि सभी विचार-धाराओंके हैं और अपने-अपने ढंगसे अपनी भावनाओंको व्यक्त करते रहते हैं।

इस दौरमे नज़्मकी बाढ़ इतनी द्रुतगतिसे आई कि मालूम होता था, ग़ज़ल तिनकेके समान बह जायगी, लेकिन वह बहनेके बजाय उत्तरोत्तर विकसित एवं उन्नत होती गई।

एक-दो वर्ष पूर्वतक नज़्मोंने खूब ज़ोर पकड़ा, किन्तु अब वह आँधी थम गई है और गज़ल पूरे आबो-ताबके साथ चमक रही है। इसका कारण यही है कि छोटी-से-छोटी बातको नज़्ममे बहुत बढ़ा-चढाकर विस्तारसे व्यक्त किया जाता है। इसके विपरीत ग़ज़लमे बड़ी-से-बड़ी बातको एक-दो शेरोमे समो दिया जाता है। नज़्मगो शाइर कुएंको तालाब बनाते हैं; गज़लगो शाइर गागरमें सागर भरते है।

संक्षेपमे यूं समझिए कि गज़ल सूत्र है, नज़्म भाष्य है। ग़जल कहानी है, नज़्म उपन्यास है। ग़ज़ल संकेत है, नज़्म स्वीकृति है। ग़जल सूक्ति है, नज़्म काव्य है। ग़ज़ल हृदयकी अनुभूति है, नज़्म शाइरीका प्रदर्शन है।

नज़्मोंमे अधिकतर सामयिक घटनाओं, तत्कालीन रीति-रिवाजों

---

[1]इन सबका विस्तृत परिचय 'शाइरीके नये मोड़' में मिलेगा।

आदिका उल्लेख रहता है। इसलिए उसमें स्थायित्व नहीं आने पाता। अक्सर देखा जाता है कि जो नज़्म एक समयमें इस सिरेसे उस सिरेतक आम हो जाती है, वही चन्द दिनोंमें विस्मरण कर दी जाती है। इसके विपरीत गजलमें जो भी कहा जाता है, वह रंगे-तगज्जुलमें कहा जाता है; जिससे कि समय और रुचिके अनुसार लुत्फ़ उठाया जा सकता है। सामयिक घटनाओंका उल्लेख समयपर तो इंजेक्शनका काम करता है, परन्तु समयके साथ धीरे-धीरे उसका प्रभाव कम हो जाता है। बंग-भंग, रौलेट-ऐक्ट, जलियानवाला बाग़, असहयोग-आन्दोलन, बृटिश-शासन-विरोधी नज़्मोंको आज कौन पूछता है? पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक, सुधार आदि आन्दोलन सम्बन्धी और नेताओंकी प्रशस्तियोंमे लिखी गई नज़्मोंका युग समाप्त हो गया है। दूर क्यों जाये, द्वितीय महायुद्धके प्रारम्भसे १९५२ ई० तक—हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, राशनिंग, चोर बाज़ारी, भारत-विभाजन आदिपर न जाने कितनी नज़्में लिखी गई, परन्तु आज वे इतनी जल्दी आउट आफ डेट हो गई हैं कि उनके रचयिता भी उन्हें सुनानेमें संकोचका अनुभव करते हैं। हालाँ कि जब लिखी गई थीं, तब उन्हींका चर्चा चारों तरफ़ था।

किसी भी तरहके प्रचारके लिए नज़्म अत्यन्त उपयोगी साधन है, उसका प्रभाव तुरन्त होता है, लेकिन आवश्यकतापूर्ण होते ही उसका असर भी समाप्त हो जाता है। ग़ज़ल, आन्दोलन आदिके लिए विशेष उपयोगी नही। उसका महत्त्व सुख-शान्तिके दिनोंमें मालूम होता है।

ग़ज़लकी उन्नतिके कारण

नज़्मके इतने प्रबल वेगके समक्ष भी ग़जल पाँव जमाये खड़ी रही और पूरे जाहो-जलालके साथ जलवागर रही, इसका कारण यही है कि वर्त्तमान ग़ज़लकी बागडोर जिनके हाथोंमें आई, उनका व्यक्तित्व साहित्यिक समाजमे महत्त्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित था। वे उन पुराने उस्तादोंके जानशीन थे, जिनके झंडे बज्मे-अदबमें गड़े हुए थे। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व ऐसा था कि नज़्मगो शाइर भी उनका आदर एवं सम्मान

करते थे। उनमें-से बहुत-से नज़्मगो शाइर या तो उनके गुरु-भाई थे, या उनके शिष्य थे। परस्पर संघर्षका तो कोई प्रश्न ही नहीं था। नज़्म और ग़ज़ल दो महत्त्वपूर्ण कला थी। साहित्यकी श्रीवृद्धि करनेके लिए अपनी-अपनी रुचिके अनुसार किन्हींने नज़्मको और किन्हींने गजलको अपना लिया।

वे नज़्मगो शाइर, जिनकी शाइरीका प्रारम्भ गज़लगोईसे हुआ था और जो ग़ज़लगो उस्तादोंके शिष्य थे, नज़्मोंके साथ ग़ज़लें भी कहते रहे। इक़बाल, चकबस्त, सीमाब, जोश मलसियानी, सफ़ी लखनवी, नज़र लखनवी, दत्तात्रेय कैफ़ी, बर्क़ देहलवी, असर लखनवी, हफ़ीज जालन्धरी, साग़र निजामी, रविश सद्दीक़ी आदि नज़्म और ग़ज़ल दोनों ही कहते रहे। इसीतरह अधिकांश तरक़्क़ीपसन्द एवं प्रगतिशील नव-युवक शाइर भी ग़ज़ल कहते रहते हैं। हालांकि उनको ख्याति नज़्मगोईके कारण मिली।

वर्त्तमानयुगीन ज़िम्मेवार ग़ज़लगोशाइरोंने युगानुसार गज़लमें अनेक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन किये। वे धीरे-धीरे अपना लबो-लहजा बदलते गये, सुधार करते गये! दृष्टिकोणको व्यापक और उदार बनाते गये। समयानुसार नये-नये भाव समोते गये। परिणाम इसका यह हुआ कि ग़ज़ल आज पूरे आबो-ताबके साथ चमक रही है।

ग़ज़लपर एतराज़

ग़ज़लपर अक्सर यह आक्षेप किया जाता है कि उसमें हुस्नो-इश्क़, रिन्दो-मैख़ाना, और गुलो-बुलबुलकी दास्तानके अतिरिक्त न तो तत्कालीन घटनाओंका उल्लेख किया जाता है, न सामयिक विचारोंको महत्त्व दिया जाता है, और न अन्य लोकोपयोगी भावोंका समावेश होता है।

ग़ज़लगो शाइर भरी बहारमें बैठे हुए बहारको रोते रहते हैं। देशमें चाहे आग लग रही हो, चाहे क्रान्तियाँ प्रस्फुटित हो रही हों, चाहे विप्लवोंकी आँधियाँ आ रही हों, चाहे भुखमरी और महामारियाँ ताण्डव नृत्य कर

रही हों, ग़जलगो शाइर तब भी अपनी धुनमें मस्त भैखानेमें झूमते हुए, वीरानोंमें मजनूनावार घूमते हुए और गुलशनोमें भी रोते-बिसूरते हुए नज़र आयेंगे। ऐसे ही शाइरोंसे खीजकर मौ० मुहम्मदहुसेन आज़ाद यह कहनेपर मजबूर हुए थे—

हैफ़ आता है कि खोई उम्र मज़मूँ बाँध-बाँध।
ऐसी बन्दिशसे तो बेहतर था कि छप्पर बाँधते॥

उक्त आक्षेप किन्हीं ग़ज़लगो शाइरोंपर चस्पाँ हो सकते हैं, परन्तु सभीके लिए इसतरहकी धारणाएँ उचित नही, और अब तो ग़ज़लका क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण होता जा रहा है और उसमें नित नये परिवर्त्तन एव परविर्द्धन होते जा रहे हैं। ग़ज़लगो शाइरोंने प्रायः सभी आवश्यक विषयोंपर प्रकाश डाला है। जीवन-सम्बन्धी हर तथ्यपर उनकी दृष्टि रही है। बक़ौल शख़्से—

ग़ज़लका मर्म

यह और बात है दुनिया उन्हें न पहचाने

खेद है कि सर्वसाधारण उनके इन जौहरोसे अनभिज्ञ है। सर्वसाधारण तो ख़ैर सर्वसाधारण है, वे उन्हे परखनेको दिव्यदृष्टि कहाँसे लाते? आश्चर्य तो इसका है कि अच्छे-अच्छे सुख़न-फ़हम भी गजलका वास्तविक मूल्य न आँक सके। आजकी बात जाने दीजिए। पुराने ज़मानेमें खुदाए-सुख़न 'मीर'के समकालीनोंमें—सौदा, दर्द, सोज, और नौजवानोमें—क़ायम, यक़ीन, असर, ताबाँ, बेदार, जिया, हसन, बयान, अफ़सोस—जैसे ख्यातिप्राप्त शाइर मौजूद थे। दिन-रात मुशाइरोंकी धूम रहती थी। फिर भी 'मीर'को यह क़लक रहा कि उनके जोहरको परखनेवाले जौहरी न मिले। इस क़लक़को उन्होंने पचासों बार अनेक तरहसे व्यक्त किया है—

किस-किस अदासे रेख़्ते[1] मैंने कहे वलेक[2]—
समझा न कोई मेरी ज़बाँ इस दयारमें[3]॥

'मीर' का उक्त शिकवा बेजा नही है। ग़ज़लके शेरका वास्तविक आशय समझनेके लिए उसीके अनुकूल दिलो-दमाग़ और वातावरण होना चाहिए। शाइरने जिस वातावरणसे प्रभावित होकर या जिस लक्ष्यको लेकर शेर कहा है। यदि उसे पढ़ते समय पाठकके मन एवं मस्तिष्ककी स्थिति भी तदनुरूप होगी तो उस शेरके जौहर पूरे आबोताबके साथ जलवागर हो जायेगे, अन्यथा जैसे हजारों वस्तुएँ जीवनमे रोजाना नजरोंसे गुजरती रहती हैं, वैसे ही वह भी गुज़र जायगा और हम उसके वास्तविक तथ्यसे लाभान्वित न हो सकेंगे।

मेरी नजरोसे सैकड़ों शेर रोज गुज़रते हैं। मीर-ओ-ग़ालिब आदिके दीवान न जाने कितनी बार पढे है। जब भी पढ़े हैं, उनमें नई-नई ख़ूबियां नज़र आई है। पढ़ते समय जिस स्थितिमे मन एवं मस्तिष्क होता है, उसीतरहके शेर आँखोंमें चमकने लगते हैं। 'ग़ालिब'के इसी शेरको लीजिए—

गो हाथमें जुम्बिश नहीं, आँखोंमें तो दम है।
रहने दो अभी साग़रो-मीना मेरे आगे[4]॥

उक्त शेर व-जाहिर तो कतई रिन्दाना है, और शेरके बाह्य अर्थसे आम आदमियोंके मनोंमें सम्भवत: यही भाव उदित होंगे कि शाइर कितना

---

[1]उर्दू-शाइरीका पहला नाम; [2]लेकिन; [3]संसारमें;

[4]हाथमे सागर एवं मीना उठानेकी शक्ति नहीं रही तो न सही, अभी आंखोंमे तो देखनेकी सामर्थ्य शेष है। पी नही सकता, मगर उन्हें देखनेका तो आनन्द उठा सकता हूँ। इसलिए सागर एवं मीना सामने ही रखे रहने दिये जायें।

हविस परस्त एवं पियक्कड है कि पीनेकी सामर्थ्य न रखते हुए भी उसके मोहमें लिप्त हैं। इस शेरको 'शेरोशाइरी'में देते हुए भी मैं इसके अन्तरंगसे परिचित था; परन्तु आप बीती घटनाने जो शेरका लुत्फ़ दिया, वह बयानसे बाहर है।

१४ अक्तूबरसे १५ दिसम्बरतक खाँसीकी पीड़ाके कारण मुझे चार-पाईपर पड़ना पडा। मौत जब बार-बार आकर झाँकने लगी तो डाक्टरों और हितैषियोंने लिखने-पढनेकी सख्त पाबन्दी लगा दी। शेरोसुख़नके २, ३, ४ भाग इलाहाबाद ला जर्नल प्रेसमे कम्पोज़ हो चुके थे। उनके प्रूफकी मैं बहुत उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा था। अपने जीवनकालमें ही उनके छपवानेकी लालसा मुझे कुरेद-कुरेदकर खाये जा रही थी। रुग्ण-शैयापर पड़ा हुआ बहुत बे-सब्रीसे रोज़ाना प्रूफ़ आनेका इन्तज़ार करता रहता था। प्रतीक्षा करते हुए जब कई रोज हो गये, तब मैंने ज्ञान-पीठके मैनेजर श्री बाबूलालजी फागुल्लसे पूछा तो उन्होंने हिचकिचाते हुए कहा कि "प्रूफ़ तो कई रोजसे आये पड़े है, परन्तु डाक्टरके परामर्शानुसार आपको नही दिखाये गये है।" मैंने कहा—"कौन कम्बख्त उन्हें पढ़ना चाहता है, मगर भगवान्के वास्ते तुम उन्हें मेरे सामने मेजपर तो रख दो ताकि मैं उन्हें पड़ा-पडा निहार तो सकूं।" फागुल्लजीने प्रूफ़ लाकर रखे ही थे कि कई हितैषी बन्धु आ गये। उन्होंने जो प्रूफ मेरे पास देखे तो फागुल्लजी-को उठा लेजानेके लिए इशारा किया। मैंने रखे रहनेकी मिन्नत की, तो बोले—"जब प्रूफ़ पढनेकी इजाजत नही है तो सामने रखनेसे क्या लाभ?" हितैषियोंकी नासहाना नसीहत सुनकर मैं तड़प उठा और बेसाख्ता ग़ालिबका उक्त शेर मुँहसे निकल पड़ा। आँखे डबडबा आई और मन भारी हो गया। हितैषियोंने मेरे मनकी व्यथाको समझा और प्रूफ वहीं पड़े रहने देकर मुझे मानसिक शान्ति पहुँचाई। इतने दिनों बाद मैं उस रोज़ गालिबके उक्त शेरके अभिप्रायको महसूस कर सका, और यह भी यकीन नही कि अब भी ठीक-ठीक समझ पाया हूँ।

ग़ज़ल इतनी भावपूर्ण कोमल कला है कि उसके वास्तविक रहस्यको पारखी दृष्टि ही जान सकती है। उसकी अपनी निजी भाषा, भाव, उपमा, अलंकार और शैली है। अपने भाव व्यक्त करनेका अपना निजी लबो-लहज़ा और ढंग है।

ग़ज़लका बार पत्थरकी तरह सीधा न होकर दुशालेमे लिपटा हुआ होता है। ग़ज़लगो शाइर खुदाकी बात कहे या शैतानकी, आध्यात्मिकताकी गुत्थियाँ सुलझाये या आधिभौतिकताकी, तात्त्विक विवेचन करे या राजनीतिक घात-प्रतिघातका वर्णन, उसे सब ग़ज़लकी सीमाके अन्तर्गत कहना पड़ता है। सीमाके बाहर कहा हुआ शेर ग़ज़लका शेर नही कहला सकता। वह तगज्जुल (गज़लगोई) से गिरा हुआ शेर होगा। गजलमें सीधे भाव व्यक्त न करके पर्देमे कहे जाते है।

इक आफ़ते-जमां है यह 'मीर' इश्क़े-पेशा।
पर्देमें सारे मतलब, अपने अदा करे है॥

ग़ज़ल संकेतात्मक शाइरी है। चाहे उसमें कैसे ही भाव व्यक्त किये जायें; वे सब गुलो-बुलबुल, साक़ी-ओ-मैख़ाना एव हुस्नो-इश्क़ आदिके पर्देमें कहे जाते हैं। बक़ौल 'ग़ालिब'—

हरचन्द हो मुशाहद-ए-हक़्क़की गुफ़्तगू।
बनती नहीं है, बादा-ओ-साग़र कहे बग़ैर[1]॥

और इन बादा-ओ-साग़रकी आड़मे कहे हुए भावोंको समझना आसान नहीं—

---

[1]ईश्वरीय चर्चा (मुशाहद-ए-हक्की गुफ़्तगू) करनेके लिए भी शराब और सुराही जैसे शब्दोंका प्रयोग अनिवार्य है। गज़लमे उसकी निश्चित उपमाओंका प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है।

'मीर' साहबका हर सुख़न है रम्ज़[1]।
बे हक़ीक़त है शेख़ क्या जाने॥

जो बात कही जाय, वह रगे-तग़ज्जुलमें कही जाय, यही ग़ज़लगो शाइरका बहुत बड़ा कमाल है। यूँ तो अध्ययन एवं अभ्याससे और गुरुकी अनुकम्पासे जो चाहे, वही व्यक्ति ग़ज़ल कह सकता है; परन्तु तग़ज्जुल जिस भावपूर्ण एवं सकेतात्मक कलाका नाम है, उसमें सफलता प्राप्त करना हँसी-खेल नहीं। बक़ौल 'मीर'—

है नज़्मका सलीक़ा हरचन्द सबको लेकिन—
जब जाने कोई लावे यूँ मोतीसे पिरोकर॥

मोतीसे पिरोनेकी कलामें दक्षता प्राप्त करनेके लिए अपनेको डुबोना और खपाना पड़ता है। ग़ज़ल हुस्नो-इश्क एवं दर्दो-ग़मकी शाइरी है। ग़ज़लका शेर प्रभावोत्पादक तभी होगा, जब वह उसीके अनुरूप दिलो-दमाग़ रखनेवाले शाइरने कहा होगा।

मीर— 'मीर' तब गर्मे-सुख़न कहने लगा हूँ मैं कि इक उम्र।
जूँ शमअ़ सरे-शाम ता-सुबह जला[2] हूँ॥

क्या करूँ शरह खस्ता जानीकी?
मैंने मर-मरके ज़िन्दगानी[3] की॥

आबलेकी-सी तरह, ठेस लगी, फूट बहे।
दर्दमन्दीमें गई, सारी जवानी उसकी॥

---

[1]सकेत, भेद पेचीदा बात है।

[2]जीवनका बहुत अधिक अश मोमबत्तीकी तरह रात-दिन जलता-गलता रहा है, तब कहीं हृदयको स्पर्श करनेवाली कविता करने लगा हूँ।

[3]अपने व्यथापूर्ण जीवनको विस्तारसे क्या कहूँ। केवल इतना काफ़ी है कि मैंने मर-मरके जीवन व्यतीत किया है।

इश्क़में खोये जाओगे तो बातकी तह भी पाओगे।
क़द्र हमारी कुछ जानोगे, दिलको कहीं जो लगाओगे॥
आज़ार खींचनेके मज़े आशिक़ोंसे पूछ।
क्या जाने वोह कि जिसका कहीं दिल लगा न हो॥

हृदय प्रेमसे ओत-प्रोत हो, मन इतना संवेदनशील हो कि दीन-दुखियों-को देखकर द्रवित हो उठे। जीवनभर शमअ़की तरह गलता रहे, तब कहीं कलाम प्रभावोत्पादक बन पाता है। रंग और तूलिकाके सहारे चित्र तो बन जाता है, परन्तु मुँह बोलती तसवीर नहीं बन पाती। यह तभी बन पाती है जब चित्रकार अपनेको खो और डुबो देता है।

दिल नहीं दर्दमन्द अपना 'मीर'।
आहो-नाले असर करें क्योंकर॥

गुलो-बुलबुल, साक़ी-ओ-मैखाना, हुस्नो-इश्क आदि रूपकों-द्वारा ग़ज़लका निर्माण होता है। यही ग़ज़लके प्राण है। इनको बग़ैर समझे ग़ज़लका वास्तविक मर्म हृदयंगम नहीं हो सकता। इन रूपकोसे ही ग़जलके शेरमें रंगे-तग़ज्ज़ुल आता है। इन्हीं रूपकोसे सोज़ो-गुदाज पैदा होता है। यही हृदयतंत्रीको झंकृत कर देनेकी उसे शक्ति देते हैं। यही उसमें शेरियत लाते हैं।

ग़ज़लके रूपक

गुलो-बुलबुल

गुलो-बुलबुलकी आड़ लेकर गज़लगो शाइरोंने राजनीतिक दाव-घातों, शोषितों, पीड़ितों आदिके सम्बन्धमे इस खूबीसे कहा है कि सब कुछ कहनेपर भी वे गिरफ़्तमे नहीं आसकते। गुल, बुलबुल, गुलशन, बाग़बाँ, सैयाद, गुलची, क़फ़स, आशियाँ यह सब रूपक[1] है, जिन्हें ग़ज़लगो शाइर अपने मनोभाव व्यक्त करनेके लिए उपयोग करते हैं। जो शाइर इन

[1]इन सब रूपकोंपर शेरोशाइरी, पृ० ८०-९३ मे विस्तारसे प्रकाश डाला गया है।

रूपकोंके गूढ़ अर्थसे अपरिचित होते हुए भी शेर कहते हैं, वह स्वयं भी उपहासास्पद होते हैं और शाइरीको भी दूषित करते हैं। ऐसे ही शाइरोंकी बदौलत ग़ज़ल बदनाम हुई। एक पुराने लखनवी शाइरका शेर है—

बाग़में जाते तो हो पहने गुलाबी टोपी।
बुलबुले-बे-अदब आ बैठे न ऐ जां सरपर॥

यह बेचारा शाइर इतना ही जानता था कि बुलबुल गुलाबके फूलपर आशिक़ रहती है। अतः उसकी कल्पनाने जोर मारा तो वह केवल इतनी उड़ान भर सका कि बुलबुल फूलके धोकेमें गुलाबी टोपीवालेके सरपर भी बैठ सकती है।

वह ग़रीब जब ग़ज़लके अन्तरंगसे और उसके रूपकोंके वास्तविक भावोंसे परिचित ही न था, तब इसके सिवा वह कहता भी क्या? अब रंगे-तग़ज्जुलके चन्द अशआर दिये जाते हैं—

दुबले-पतले महात्मा गाँधी जब बन्दी किये गये तो देशमें एक मातम-सा छा गया था। उस भावनाको 'साक़िब' लखनवीके शब्दोंमें यूँ व्यक्त किया जा सकता है—

कहनेको मुश्ते-परकी[1] असीरी[2] तो थी, मगर—
ख़ामोश हो गया है चमन बोलता हुआ॥

बन्दी-गृहमें पड़े हुए भी यदि शत्रुका कोई भेद मालूम हो जाय तो जैसे भी बने उसे देशके कर्णधारोंतक पहुँचा देना चाहिए—

साक़िब— किसीका रंज देखूं यह नहीं होगा मेरे दिलसे।
नज़र सैयादकी झपके तो कुछ कह दूं अनादिलसे[3]॥

---

[1]मुट्ठीभर परोंकी; [2]गिरफ़्तारी; [3]बुलबुलोंसे।

सोनेके पिंजरेमे पराधीन जीवन बितानेकी अपेक्षा रूखी-सूखी खाकर झोंपड़ेमे रहना हजार दर्जे बेहतर—

आरजू— ऐ 'आरजू'! इस बाग़में फूलोंके क़फ़ससे[1]।
बहतर हमें वोह अपना नशेमन[2] कि है ख़सका[3]॥

शरीफ़ों एवं लुच्चोंको एक लाठी हाँकनेवाला शासक अन्धा नही है तो और क्या है।

आरजू— अदू[4] न थी, मगर अन्धी जरूर थी बिजली।
कि देखे फूल, न पत्ते, न आशियाँ, देखा॥

देशकी सुख-समृद्धिका उपयोग करनेवाले देशके दुर्दिनोंमें भी अपने देश-प्रेमका परिचय दे—

जिगर— काँटोंका भी हक़ है आख़िर।
कौन छुड़ाये अपना दामन॥

हमारी आँखोंके सामने हजारों देश-भक्त गोलीसे भून दिये गये, फाँसी चढा दिये गये और हम अशक्त बने सब कुछ देखते रहे। कैसी दयनीय स्थिति थी—

सफ़ी— जोर ही क्या था जफ़ा-ए-बाग़बाँ[5] देखा किये।
आशियाँ उजड़ा किया हम नातवाँ[6] देखा किये॥

चन्द शेर बगैर टीका-टिप्पणीके दिये जा रहे है। सुविधाके लिए उनके ऊपर शीर्षक लगा दिये है—

अकर्मण्यता

असर— यह सोचते ही रहे और बहार ख़त्म हुई।
कहाँ चमनमे नशेमन बने, कहाँ न बने ?

---

[1]पिंजरेसे; [2]घोंसला; [3]घास-फूसका; [4]शत्रु; [5]मालीका अत्याचार; [6]कमजोर।

सामर्थ्यके अनुसार

आनंदनारायण मुल्ला—अपनी क़ूवत[1] आज़माकर अपने बाज़ू[2] तोलकर।
आर्शि-ए-हस्तीमें[3] उड़ना है तो उड़, पर खोलकर॥

सहृदयता

महशर— तमाम उम्र इसी एहतयातमें[4] गुज़री।
कि आशियाँ किसी शाख़े-चमनपै बार[5] न हो॥

सुखमें दुःख छिपा है

ख़ुर्शीद— क़फ़स दूर ही से नज़र आ रहा है।
क़यामत है अपनी बुलन्द आशियानी[6]॥

क्षण-भंगुर वैभव

मीर— कहा मैंने "कितना है गुलका सबात"?
कलीने यह सुनकर तबस्सुम[7] किया॥
देर[8] रहनेको जा नहीं यह चमन।
बूए-गुल हो, सफ़ीरे-बुलबुल हो॥

यह कृपालुता?

अदीब सहारनपुरी—कौन इस तर्ज़े-जफ़ाये[9]-आसमाँकी दाद दे?
जाग सारा फूँक डाला, आशियाँ रहने दिया॥

---

[1]ताकत; [2]बाहुओंको; [3]जीवन-आकाशमें; [4]सावधानीमें; [5]बोझ; [6]ऊँचाईपर घोसला बनाना; [7]निवास, स्थायित्व; [8]मुसकान; [9]स्थायी, अधिक; [10]अत्याचारके ढगकी।

साक़ी-ओ-मैख़ाना

ग़ज़लमें वर्णित, शराब रिन्द, मैख़ाना, साकी आदिसे जनसाधारण वास्तविक मद्य-प्रसारका तात्पर्य समझते हैं। उन्हे क्या मालूम कि जिन ग़ज़लगो शाइरोने कभी शराब छूई तक नही, वे भी इस विषयपर जीवन-पर्यन्त लिखते रहे। क्योंकि यह सब भी गजलके अत्यन्त आवश्यक रूपक हैं। इनके बग़ैर काम ही नही चल सकता। यहाँ हम चन्द शेर बगैर किसी टिप्पणीके पेश कर रहे हैं। आशा है उनके शीर्षकोसे भावोके समझनेमे कोई कठिनाई न होगी।

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य

मुल्ला— कभी तेरी-क़लमसे भी मिटे है तिफ़रके[1] दिलके।
मिटाना है तो पहले रखके सागर दरमियाँ समझो॥

लालची

रियाज— मक़सूद[2] है कोई न पिये वोह हरीस[3] हूँ।
वाइज़[4] हुआ, मैं रिन्द क़दहख़्वार[5] क्या हुआ॥

दानीसे

अदम— शिकन न डाल जबींपर शराब देते हुए।
यह मुसकराती हुई चीज़ मुसकराके पिला॥

आलोचकोंसे

दिल— तेरी फ़र्दे-अमल[6] हो पाक[7] इस दुनियामे ऐ वाइज़[8]!
कोई पीता है पीने दे, कहीं ढलती है ढलने दे॥

---

[1]वैमनस्य; [2]उद्देश्य, तात्पर्य, इच्छा; [3]लालची, ईर्ष्यालु; [4]व्याख्यान-दाता; [5]मद्यप; [6]कर्मोकी तालिका; [7]पवित्र, उज्ज्वल; [8]नसीहत देनेवाले।

शासन-व्यवस्थापकोंसे

मुल्ला— निज़ामे-मैकदा[1] साक़ी! बदलनेकी ज़रूरत है।
हज़ारों हैं सफ़े[2] जिनमें, न मै आई, न जाम आया॥

वुसअ़ते-बज़्मे-जहाँमें[3] हम न मानेंगे कभी।
एक ही साक़ी रहे, और एक पैमाना रहे॥

ये छिद्रान्वेषी

ताविश सुलतानपुरी—जहाँवाले न देखें इसलिए छुप-छुपके पीता हूँ।
ख़ुदाका ख़ौफ़ कैसा? वोह तो इसयाँपोश[4] है साक़ी!

कलके ढोंगी, आज नेता

मीर— मस्जिदमें इमाम[5] आज हुआ, आके वहाँसे।
कलतक तो यही 'मीर' ख़राबात-नशीं[6] था॥

चेतावनी

मीर— ऐ वोह कोई जो आज पिये है शराबे-ऐश।
ख़ातिरमें रखियो कलके भी रंजो-ख़ुमारको॥

हुस्न-ओ-इश्क़

ग़ज़ल, हुस्नो-इश्क और सोजो-गुदाज (व्यथा-वेदना) की शाइरी है। जिन ग़ज़लगो शाइरोंको कभी किसीपर मरनेकी सआ़दत मयस्सर

---

[1]मधुशालाका प्रबन्ध; [2]पंक्तियाँ; [3]संसारके व्यापक क्षेत्रमें; [4]अपराधोंपर पर्दा डालनेवाला, पाप ढकनेवाला; [5]नमाज़ पढानेवाला; [6]मधुशाला-निवासी।

न हुई, उनको भी कूचये-हुस्नकी नग़मासराई करना लाजिमी होती है। क्योंकि गजलका निर्माण ही हुस्नो-इश्कके तन्तुओंसे हुआ है।

गजलके बाह्य रूपसे ऐसा मालूम होता है कि गजलगो शाइर कूच-ए-महबूब (प्रेयसीकी गली) में फटेहाल दीवानावार घूमते रहते हैं। माशूकके दरबानोंसे पिटते हैं, जलीलो-ख्वार होते हैं; मगर वहाँसे टलनेका नाम नहीं लेते। महबूब (प्रयसी) उनकी हरकतोंसे नालाँ है; मगर वे खतोंका ताँता बाँधे रखते हैं। खत ही नहीं भेजते, दरबानकी निगाह बचाकर स्वयं भी मकानमें कूद जाते हैं। माशूककी गालियाँ खाते हैं, दुतकारे जाते हैं, मार सहते हैं, घायल होते हैं, मगर अपनी हरकतोंसे बाज नहीं आते। गोया ज़लीलो-ख्वार बने रहनेके अतिरिक्त उन्हें कोई अन्य कार्य नहीं है। न उनके पत्नी है, न बच्चे हैं, न गुरुजन हैं और न उनके पास कोई लोकोपयोगी कार्य है।

लेकिन शेरका अतरंग देखिए तो कुछ और ही आलम नजर आता है। यह नहीं भूलना चाहिए कि गजलगो शाइर हर बात इशारेमें और पर्देमें बयान करता है। कभी वह विश्व-वेदनाको अपनी वेदना बनाकर गमे-जानाँके पर्देमें पेश करता है[1] और कभी अपनी वेदनाको विश्वभरकी वेदना समझकर गमे-दौराके रूपमें पेश करता है।[2] यानी जो वह ससारमें देखता और सुनता है, वह इश्क़ो-हुस्नके पर्देमें बयान करता है। बकौल 'मीर'—

---

[1]जो ग़म हुआ, उसे ग़मे-जानाँ बना लिया

यानी सासारिक आपदाएँ किसी भी कारणसे आयें, वे सब इश्ककी वजहसे आई। यही समझकर उसका उल्लेख गजलमें किया जाता है।

[2]हमपर अकेले ही यह आपदाओंका पहाड़ नहीं टूटा है, अपितु समस्त मानव-समाज इसके नीचे पड़ा कराह रहा है। उन सबका दुःख दूर होनेमें ही अपना कल्याण है। यही भावना गमे-दौराँ है।

कहिएगा उससे क़िस्स-ए-मजनूँ।
यानी पर्देमें ग़म सुनाइयेगा॥

अर्थात्—गजलगो सब बातें रूपकों-द्वारा पर्देमें कहता है। चन्द उदाहरण देखिए—

बादशाहत मिटनेपर मुगलिया सल्तनतका मिट जाना, इतनी बड़ी घटना है कि उसपर नज्मगो शाइर पोथा लिख सकता है, परन्तु गजलगो शाइरको तो एक ही शेरमें सब कुछ व्यक्त करना चाहिए और वह भी रंगे-तगज्जुलमें। मुग़लिया सल्तनतके मिटनेसे, शाहजादों और शाहजादियोंके इधर-उधर भटकनेसे और दिल्लीके उजड़नेसे प्रभावित होकर 'मीर'ने अपनी कई गजलोंमें इस दर्दको भाव व्यक्त किये हैं—

नाम आज कोई याँ नहीं लेता है उन्होंका।
जिन लोगोंके कल मुल्क यह सब ज़ेरे-नगीं था॥

था मुल्क जिनके ज़ेरे-नगीं साफ़ मिट गये।
तुम इस खयालमें हो कि नामो-निशाँ रहे॥

सब्जाने-ताजा-रौकी[1] जहाँ जलवागाह[2] थी।
अब देखिए तो वाँ नहीं साया[3] दरख्तका॥
दिल्लीमें आज भीक भी मिलती नहीं उन्हें।
था कल तलक दमाग़ जिन्हें ताजो-तख्तका॥

'मीर'के उक्त चारों शेर व्यथा-पूर्ण हैं और तत्कालीन इतिहासका एक झलकमें दिग्दर्शन करानेमें कमाल रखते हैं; किन्तु इन अशआरमें रंगे-तगज्जुल नहीं दिखलाई देता। गजलके प्राण हुस्नो-इश्कके रूपकका कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ।

---

[1]हरे-भरे पेड़ोंकी; [2]रौनक, [3]छाया।

उजड़ी हुई दिल्लीमे बैठकर मिर्जा 'गालिब' इसी घटनाको रंगे-तगज्जुलमे देखिए किस सलीकेसे व्यक्त करते है—

दिलमें जौक़े-वस्लो-यादे-यार तक बाक़ी नहीं।
आग इस घरमें लगी ऐसी कि जो था जल गया[1]॥

इतने बड़े विध्वसकी बात 'गालिब'ने किस खूबी और सादगीसे कही है कि कानूनकी जदमे भी न आये; सुखन-फहम लुत्फ अन्दोज भी हो सके और जन साधारण जोके-वस्लके चक्करमे ही पडे रहे।

पिछले पृष्ठोंमे 'तगज्जुल' शब्द कई बार प्रयुक्त हुआ है। तगज्जुलसे हमारा आशय गजलगोईसे है। कवितामे जब तक कवित्व न हो, कविता नही। मिठाईमे मिठास, मेहदीमे लाली, फूलमे सुगन्ध और आदमीमे आदमीयत होना आवश्यक है तो गजलमे तगज्जुलका होना भी जरूरी है। तगज्जुलके बिना गजल बेजान, बेमजा और फीकी है। गजलमे उसके रूपकोके मिश्रणसे रगे-तगज्जुल पैदा होता है।

रंगे-तग़ज़्ज़ुल

चन्द उदाहरण—

जौक़की गजलका एक मशहूर शेर है—

नाम मंजूर है तो फ़ैज़के[2] असबाब[3] बना।
पुल बना, चाह[4] बना, मस्जिदो-तालाब बना॥

शेरके वजनने शाइरको इजाजत नही दी, वरना मतब,[5] मकतब[6]

---

[1]अब हमारे हृदयमे जोके-वस्ल (प्रेयसीके मिलनकी अभिलाषा) और यारकी याद तक बाकी नहीं है। क्योकि हमारे हृदयरूपी घरमे ऐसी आग लगी है कि सर्वस्व भस्मीभूत हो गया।

[2]उदारताके, दानवीरताके; [3]कार्य; [4]कुआँ; [5]औषधालय; [6]स्कूल।

आदि और भी नेक कामोंकी फहरिस्त नज्म की जा सकती थी। शाइरने जिस भावनासे प्रेरित होकर शेर कहा है, उसमें वह सफल हुआ है। लेकिन इस शेरमें तगज्जुल तलाश करनेपर भी नहीं मिलता। ख़ालिस मौलवियाना रंगका शेर है। अगर मौलवियों-जैसी बेतुकी बातें शाइर भी कहने लगे तो फिर उनकी विशेषता क्या रही? 'अज़ीज' लखनवी नेक काम करनेकी प्रेरणा यूँ करते हैं—

पैदा वोह बात कर कि तुझे रोयें दूसरे।
रोना ख़ुद अपने हालपै यह ज़ार-ज़ार[1] क्या?

शेरमें नेक कामोंकी कोई सूची नहीं है, फिर भी उसके पढ़नेसे मनको प्रेरणा मिलती है। आशिक़ सदैव रोता-बिसूरता रहता है। ग़ज़लके इसी रूपकको देनेसे शेरमें तगज्जुल भी आ गया और चूँकि शाइरने स्वयंको सम्बोधित करके लिखा है; ज़ौक़की तरह दूसरोंको नसीहत नहीं की। इसलिए मौलवियतके इलज़ामसे भी बरी रहे। इसी भावके द्योतक दो शेर 'मीर'के भी मुलाहिज़ा फर्माएँ—

बारे[2] दुनियामें रहो ग़मज़दा[3] या शाद[4] रहो।
ऐसा कुछ करके चलो, याँ कि बहुत याद रहो॥

कहता है कौन तुझको याँ यह न कर तू वोह कर।
पर हो सके तो प्यारे टुक दिलमें भी जगह कर॥

आशय तो अज़ीज़का भी यही था कि हम ऐसे भले काम करें कि दूसरे हमें याद करें। मगर 'याद'के बजाय उन्होंने 'रोये दूसरे' नज़्म किया। दूसरों-के रोनेसे लानत-मलामतका भी आशय निकलता है कि लोग कहें "कम्बख़्त

---

[1]बिलख-बिलखकर; [2]चाहे; [3]शोक-सन्तप्त; [4]प्रसन्न।

आप तो मर गया और हमे मार गया।" सताये हुए लोग बुरोकी जानको उनके मरनेके बाद भी रोते रहते है। इस ऐबसे 'मीर'का उक्त पहला शेर बेदाग है—

ऐसा कुछ करके चलो याँ कि बहुत याद रहो

याद प्यारेकी ओर भले आदमियोंकी आती है बुरोंकी नही।

'मीर'का दूसरा शेर दूसरेको नसीहत देनेकी वजहसे मौलवियतके दायरेमे आजाता, किन्तु 'मीर'का कमाल देखिए कि दामन बचाकर साफ़ निकल गये। दूसरे मिसरेमे 'प्यारे' शब्द डालकर 'मीर'ने वोह रंगे-तग़ज़्ज़ुल पैदा कर दिया है कि दाद देनेको उपयुक्त शब्द नही मिल पा रहे है।

'हाली'का यह शेर बहुत मशहूर है—

खेतोंको दे लो पानी यह बह रही है गंगा।
कुछ कर लो नौजवानो! उठती जवानियाँ है॥

'हाली'की नज्मका उक्त शेर अपनी जगहपर बहुत खूब है और नव-युवकोंको स्फूर्ति एव प्रेरणा देता है। चूँकि उक्त शेर नज्मका है, इसलिए इसमे रंगे-तगज्जुल नही आ पाया है। रंगे-तगज्जुलमे इसी भावका द्योतक तस्लीमका शेर है—

इल्तफ़ाते-जोशे-वहशत[1] फिर कहाँ?
हो सके जबतक बयाबाँ देख लें॥

जवानी दीवानी नही हुई तो फिर जवानी क्या? और उस हालतमे कुछ हाथ-पाँव न मारे तो फिर दीवानगी क्या? इसलिए जो बन सके इस दीवानगीमे कर ले, फिर अवसर हाथ न आयेगा।

---

[1]दीवानगीकी यह कृपाएँ फिर कहाँ मयस्सर? इसी आलममे जितना जगल देखा जा सके देख लिया जाय।

बात तो 'तस्लीम'ने भी 'हाली' जैसी कही, परन्तु किस खूबसूरतीसे कही है। 'जोशे-वशहत', 'बयाबाँ'के नगीने जड़कर रगे-तगज्जुलमे चार चाँद लगा दिये और 'देख ले' शब्द डालकर रिन्दाना शेर बना दिया और नसीहत देनेकी जहमतसे भी साफ बच गये। इसी भावको 'शाद' अजीमाबादीने देखिए कितने सलीकेसे पेश किया है—

यह बज्मे-मै है, याँ कोताह दस्तीमे है महरूमी।
जो बढ़कर खुद उठाले हाथमें, मीना उसीका है॥

शेरका जाहिरा मतलब तो सिर्फ़ इतना है कि 'यह शराबखाना है, यहा पीछे रहनेमे नुकसान है। यहा तो आपा-धापी मची हुई है, जो आगे बढ़कर प्याला झपट सकता है, वही पी सकता है।' मगर रिन्दाना अन्दाजमे 'शाद'ने इन दो मिसरोमे वोह स्फूर्ति, प्रेरणा और आग भरी है कि जिसका जवाब नही।

'हाली'की गजलका एक शेर है—

ऐ इश्क! तूने अक्सर क़ौमोंको खाके छोड़ा।
जिस घरसे सर उठाया, उसको बिठाके छोड़ा॥

शेर पढ़ते-पढ़ते ऐसा मालूम होता है कि मौलाना 'हाली' तागेमे बैठ कर कॉलेजोके आगे चक्कर लगा रहे है; और माइक्रोफोनपर वह गजल, जिसका एक शेर ऊपर दिया गया है, चीख-चीखकर पढ रहे है और लडके है कि तालियाँ पीट रहे है।

इसी मजमूनको एक शाइर देखिए किस सुरुचिपूर्ण ढगसे पेश करते है—

ऐ इश्क़! देख हम भी है किस दिलके आदमी।
महमाँ बनाके ग़मको कलेजा खिला दिया॥

इश्क, दिल, गम आदि शब्दोंसे शेरमे सोजो-गुदाज पैदा कर दिया और नासहाना दाग भी नही लगने दिया। अब 'मीर' का भी एक शेर

बग़ैर किसी टीका-टिप्पणीके सुन लीजिए और मेरी तरह बैठे हुए सर धुनिए—

इश्क़ आदममें नहीं कुछ छोड़ता।
हौले-हौले कोई खा जाता है जी॥

मिर्जा दागका एक शेर है—

यहाँ भी तू, वहाँ भी तू, ज़मीं तेरी, फ़लक तेरा।
कहीं हमने पता पाया न हरगिज़ आजतक तेरा॥

स्पष्ट है कि शेर ख़ुदाके लिए कहा गया है। अब देखिए इसी भावको 'मीर' मजाजी इश्कमें किस विश्वासके साथ फ़र्माते हैं—

है इस चमनमें वोह गुल, सदरंग महव देखो।
देखो जहाँ वही है, कुछ उस सिवा न देखो॥

'दाग' यह जानते हुए भी कि ईश्वर सर्वत्र है, उसके जलवेसे वंचित रहते हैं। 'मीर' उसका जलवा सर्वत्र देखते हैं। दोनोके विश्वास और प्यारमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। इसके अतिरिक्त दागके शेरमें तग़ज़्ज़ुल नामको नहीं और 'मीर'का शेर चमन, गुल, सदरंग, महव आदि शब्दोसे तग़ज़्ज़ुलका बेमिसाल शेर हो गया है।

मौलाना जफ़रअलीका एक शेर है—

यह है पहचान ख़ासाने-ख़ुदाकी इस ज़मानेमें।
कि ख़ुश होकर ख़ुदा उनको गिरफ़्तारे-बला करदे॥

प्रकट रूपमें तो इस शेरमें उसी पुरानी धारणाको नज्म किया गया है कि ईश्वरभक्तों और भले मनुष्योंपर सदैव मुसीबतोंके पहाड़ टूटते रहे हैं, और यह सब इसलिए होता है, ताकि ईश्वर अपने असली-नकली भक्तों एवं अच्छे-बुरे मनुष्योंकी पहचान कर सके। वह महज़ आजमानेके लिए यह सितमजरीफ़ी करता है, क्या ख़ूब?

किसीको जान गई आपकी अदा ठहरी

यदि वह घट-घटका ज्ञाता है तो फिर उसे यह जहमत उठानेकी जरूरत भी क्या, किसीको बग़ैर सताये भी वह अपने दिव्यज्ञानसे सब कुछ जान सकता है। लेकिन नहीं, जिसपर वह बहुत खुश होता है, महरबानी फर्माकर उसे बलाओं-आफतोंमे घेर देता है।

खुदाकी इन्हीं सितमजरीफियोंसे तंग आकर सर 'इकबाल'ने उससे पूछा था—

इसी कोकबकी ताबानीसे है तेरा जहाँ रोशन।
जवाले-आदमे-खाकी जियाँ तेरा है या मेरा[1]॥

खुदाकी इन नाजिल की हुई मुसीबतोंसे घिरे हुए मिर्जा गालिब कितने वेदना भरे स्वरमें कराह उठते हैं—

जिन्दगी अपनी जब इस शक्लसे गुजरी या रब!
हम भी क्या याद रखेंगे कि खुदा रखते थे॥

'बहार' कोटिका यह उलाहना कितना व्यथापूर्ण है—

वहीं हजारों बहिश्ते भी हैं खुदाबन्दा!
सिसक-सिसकके कटी जिन्दगी जहाँ मेरी॥

लेकिन आशिकके मनमें यह भाव भी आना अधर्म है कि मुझ निरपराधको किन पापोंकी सजा मिल रही है। वकौल राज यजदानी—

---

[1]इसी नक्षत्रके प्रकाश (कोकबकी ताबानी) से तेरा संसार जग-मग हो रहा है। फिर भी तू इसीको मिटा रहा है। मैं पूछता हूँ, तेरी इस हरकतसे स्वयं तेरा नुकसान हो रहा है या मेरा? जब तू खुदा-खुदा कहनेवालोंको मिटा डालेगा, तब तुझे खुदा कौन कहेगा? इन्हींकी बदौलत तो तू खुदा बना हुआ है।

सज़ाको झेलनेवाले यह सोचना है गुनाह।
कोई क़सूर भी तुझसे कभी हुआ कि नहीं।।

हम भी कहाँकी बात कहाँ ले गये। हमे कहना सिर्फ इतना था कि मौ० जफरअलीका जाहिरा आशय केवल इतना है कि खुदा जिनपर मेहरबान होता है, खुश होकर उन्हे बलाओंमे फंसा देता है। यानी उन्होने खुदाकी आड़मे उस हकीकतको उजागर किया है, जो कि हमारे जीवनमे अक्सर घटित होती रहती है। यानी हमारे मेहरबान, शुभचिन्तक, प्यारे-मीठे ही हमे अक्सर मुसीबतोमे फँसाते रहते है। बकौल किसीके—

दोस्तों से हमने वोह सदमे उठाये जानपर।
दिलसे दुश्मनकी अदावतका गिला जाता रहा।।

जफ़रअली और उक्त शाइरने एक बातको दो तरीकोंसे बयान किया है, और उसमे वे बेहद कामयाब हुए है। मगर तगज्जुलकी चाश्नीके बगैर शेरमे शेरियत नही आ पाती। अब जरा 'मीर'का रगे-तगज्जुल भी मुलाहिजा फ़र्माएं—

जफ़ा उसपै करता है हदसे ज़ियादा।
जिसे यार अहले-वफ़ा जानता है।।

उक्त शेरका लुत्फ़ स्वानुभवी ही उठा सकते है। पत्नी या प्रेयसीके बिगड़ने-रूठने, ज़िद करने या तंग करनेपर उससे कहा गया हो कि "जब देखो तुम हमारे सरपर चढ़ी रहती हो, हमे इतना तग न किया करो।" तब उसका तेवर बदलकर कहना—"तुम्हारे सिवा मेरा और है ही कौन, जिसपर मैं झूँझल उतारती फिरूँ? अपनेपर ही तान टूटती है, दूसरा कौन सुनता है?"

'मीर'का शेर पढ़िए और प्रयत्न कीजिए कि आपका भी कोई ऐसा अपना हो, जो आपपर जफा करना अपना हक़ समझता हो। तब शायद

आप 'वामिक' भोपालीके इस शेरको पढ़नेके हकदार हो सके—

उस जुल्मपै क़ुर्बां लाख करम, उस लुत्फ़पै सदके लाख सितम।
उस दर्दके क़ाबिल हम ठहरे, जिस दर्दके क़ाबिल कोई नहीं॥

शब्दोंके रख-रखावकी यही वह कोमल कला है, जो ग़जलको कही-से-कही पहुचा देती है। मक्के-मुखनसे गजल तो हर कोई कह सकता है, मगर उसमे जान नही डाल सकता। जान डालनेके लिए अपनी जान खपानी पडती है। दर्दे-दिलसे परिचित हुए बिना दास्ताने-गम बयान नही हो सकती। बकौल 'मीर'—

लज्जतसे दर्दकी जो कोई आश्ना नहीं।
सौ लुत्फ़ क्यों न जमा हों, उनमें मजा नहीं॥

वर्त्तमान युगीन गजलमे कितना अभूतपूर्व सशोधन, परिवर्त्तन एव परिवर्द्धन हुआ है? उसका बाजारी इश्क, हरजाई माशूक, बुलहविस आशिक परिवर्त्तित होकर कितने बुलन्द हो गये है? गजलमे कैसे-कैसे अछूते मजमूनोका समावेश हुआ है, और गजलगो शाइरोने कैसे-कैसे बेदाग हीरे तराशे है? लगे हाथ एक नजर उनको भी देखते चलिए।

नई ग़जलगोई

उद्धरणमे इसी युगके शाइरोके शेर दिये जा रहे है, ताकि वर्त्तमान युगीन गजलगोईकी प्रगतिका सही-सही अन्दाजा लग सके। तुलनाके लिए पुरानी शाइरीका उल्लेख करते समय उसी युगके शेर उद्धृत किये जा रहे है, और जहाँ नवीन शाइरीमे पुरानी शाइरीकी झलक मालूम होती है, वहाँ तुलनाके लिए फुटनोटमे प्राचीन शाइरोमे सर्वश्रेष्ठ 'मीर'के अशआर दिये जा रहे है; ताकि पुरानी और नई शाइरीकी गति-विधिका ठीक-ठीक आभास मिल सके।

उर्दू-गजलमे हरजाई एव बाजारी माशूकका तसव्वुर दरबारी-वाता-

वरण, तत्कालीन वेश्यासक्तिकी आम प्रथा और फ़ारसी शाइरीके अन्ध अनुकरणके कारण आया। यदि तत्कालीन गजलगो शाइर हिन्दी-कविताका अनुसरण करना अपनी शानके खिलाफ समझते थे, अथवा हिन्दीसे अनभिज्ञ होनेके कारण उसके गुणोंसे परिचित नही थे, तो भी यदि वे फारसीके बजाय अरवी-शाइरीका अनुकरण करते तो उर्दू-शाइरी पाक इश्कसे मालामाल हुई होती।

पाक इश्क़

अरवी-शाइरीका इश्क भी इन्सानी इश्क है, किन्तु वह कामुकता एव वासनाके दोषसे मुक्त है। प्रेमी-प्रेमिका एकान्तमे बैठे हुए है, किसीकी दृष्टि पड़नेका भी उन्हें खटका नही है; परन्तु क्या मजाल कि दोनोंमें-से किसीके हृदयमे भी काम-वासना निहित हो। दोनों प्रेम-विभोर हुए बैठे है। यह बात प्रसिद्ध है कि एक बार ऐसे ही अवसरपर किसी प्रेमीने अपनी कामवासना व्यक्त की तो प्रेमिका क्रुद्ध होकर बोली—"क्या इसी लिए तुम मुझसे प्रेम करते थे?" प्रेमिकाके यह शब्द सुनकर प्रेमी गद्-गद हो गया। उसे अपने भाग्यपर अभिमान हुआ कि उसे इतनी पवित्र और सुशीला नारीसे प्रेम करनेका सौभाग्य प्राप्त हो सका। फिर उसने अपनी प्रेयसीपर वास्तविक बात प्रकट कर दी कि उसने परीक्षास्वरूप ऐसा प्रस्ताव किया था। यदि तनिक भी स्वीकृतिका सकेत मिला होता तो उसे महान् क्लेश पहुँचता और यह खजर उसने सीनेमे उतार लिया होता।[1]

प्रेयसीसे शादी करना या वासना तृप्त करना, प्रेम नही, प्रेमका शव पीटना है, कामुकताको प्रेम कहना शैतानको खुदा कहना है—

आरजू— हविसकार[2] आशिक़ भी ऐसा है जैसे—
वोह बन्दा कि रख ले खुदा नाम अपना॥

---

[1]मजामीर पृ० २६; [2]कामुक।

बिना किसी वासना या स्वार्थके प्रेममें आठों पहर भीगा रहे, वही प्रेम शुद्ध प्रेम है—

असर— इश्क़ है इक निशाते-बेपायाँ[1]।
शर्त यह है कि आरज़ू[2] न रहे॥

आसी— आशिक़ीमें है महवियत[3] दरकार।
राहते - वस्ल[4]-ओ - रंजे-फ़ुरकत[5] क्या॥

जिगर— वोह भी है इक मुक़ामे-इश्क़ जहाँ—
हर [illegible] तमन्ना[6] गुनाह[7] होती है॥

असर— मज़ाक़े-इश्क़ हो कामिल तो सूरते-शबनम[8]।
कनारे-गुलमें रहे और पाकबाज़[9] रहे॥

आरज़ू— दरयूज़ागरे-हिर्स[10] न बन राहे-तलबमें[11]।
दिल इश्क़से ख़ाली है तो कासा[12] है गदाका[13]॥

उम्मीद—अरे सूदो-ज़ियाँ[14] देखा नहीं जाता मुहब्बतमें।
यह सौदा और सौदा है यह दुनिया और दुनिया है*॥

---

[1]स्थायी सुख; [2]अभिलाषा, वासना; [3]तन्मयता; [4]मिलन-सुख; [5]विरह-दुःख; [6]इच्छा; [7]अपराध; [8]ओसकी तरह; [9]फूलपर रहती हुई भी अछूती—अलग—रहती है; [10]तृष्णाके कारण दर-दरका भिखारी; [11]अभिलाषाओंके मार्गमें; [12/13]भिक्षुकका पात्र; [14]लाभ-हानि।

*मीर—चाहतका इज़हार[1] किया सो अपना काम ख़राब किया।
इस पर्देके उठ जानेसे उसको हमसे हिजाब[2] हुआ॥

---

[1]इच्छा प्रकट की; [2]लाज, संकोच।

यह निःस्वार्थ और पवित्र प्रेम सरल नहीं, इसमें जीवनभर तपना पड़ता है—

जिगर— यह इश्क़ नहीं आसाँ, इतना ही समझ लीजे।
इक आगका दरिया है, और डूबके जाना है॥

आरज़ू— मुहब्बत नहीं आगसे खेलना है।
लगाना पड़ेगा बुझाना पड़ेगा॥*

जब इस प्रेमरूपी आगमें मनुष्य तप लेता है, तभी वह सचमुच इन्सान बन पाता है—

शाद— नहीं रहते रिया-ओ-क़बह फिर भूलेसे भी दिलमें।
मुहब्बत यारकी इन्साँ बना देती है इन्साँको॥†

---

*मीर— क्या जानिए कि छाती जले है कि दाग़े-दिल।
इक आग-सी लगी है कहीं, कुछ धुआँ-सा है॥
हम तेरे इश्क़से वाक़िफ़ नहीं हैं लेकिन—
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है॥
आतिशे-इश्क़[1] जिसके दिलको लगी।
शमअ-सा[2] आप ही को खाता है॥
इश्क़के दो गवाह ला, यानी—
ज़र्दि-ए-रंगो-चश्मेतर[3] है शर्त॥
चाहतमें[4] दख़ल मत दे जिनहार[5] आरज़ूको[6]।
करदे है दिलकी ख़्वाहिश[7] बीमार-रफ़्ता-रफ़्ता॥

†मीर— सज्दा उस आस्ताँका[8] न जिसको हुआ नसीब।
वोह अपने एतक़ादमें[9] इन्सान ही नहीं॥

---

[1]प्रेम-अग्नि; [2]मोमबत्तीकी तरह स्वयंको जलाता रहता है; [3]चेहरा पीतवर्ण और नेत्र अश्रुपूर्ण; [4]प्यारमें, इश्कमें; [5]कदापि; [6]अभिलाषाको; [7]इच्छा; [8]प्यारेकी चौखटको प्रणाम करना; [9]हमारी सम्मतिमें।

यही शुद्ध प्रेम 'तू', 'मैं' और अपने-परायेका भेद भी मिटा देता है। सर्वत्र अपने प्यारेका जलवा नजर आता है—

इस्लामो-कुफ़्र कुछ नहीं आता ख़यालमें।
मुद्दतसे मुब्तला हूँ मैं आप अपने हालमें॥*

प्रेममें कहीं-न-कहीं कसर होती है, तभी उपेक्षाका आभास होता है—

राज रामपुरी—नियाजे-इश्क़मे ख़ामी कोई मालूम होती है।
तुम्हारी बरहमी क्यों बरहमी मालूम होती है॥

अगर इश्क़में कहीं खामी नहीं है, तो फिर बरहमी (उपेक्षा) महसूस होनेके क्या मानी? इश्क तो इन्सानको उस बुलन्दीपर पहुँचा देता है कि—

नाजिश परतापगढ़ी—शिकवा न शिकायत, न तसव्वुर, न ख़यालात।
अल्लाहरे यह मेरी मुहब्बतके मुक़ामात॥†

---

*मीर— **दिल साफ़ हो तो जलवागहे-यार क्यों न हो।**
आईना हो तो क़ाबिले-दीदार क्यों न हो[1]॥
दिया दिखाई मुझे तो उसीका जलवा 'मीर'।
पड़ी जहानमें जाकर जहाँ नजर मेरी॥
जिस्मे-ख़ाकीका जहाँ पर्दा उठा।
हम हुए वोह 'मीर' सब, वोह हम हुआ॥

†मीर— **हमें इश्क़में 'मीर' चुप लग गई है।**
न शुक्रो-शिकायत, न हर्फ़ो-हिकायत॥

---

[1]यदि मन-मन्दिर स्वच्छ है तो उसमें प्यारेका निवास क्यों न होगा? मन-दर्पण होगा तो वह दर्शन-योग्य होगा ही।

वह युग समाप्त हुआ, जब इश्क़को बवाले-जान समझकर उससे बचनेकी ताक़ीद की जाती थी--

वसीयत 'मीर' ने मुझको यही की--
"कि सब कुछ होना तू आशिक़ न होना" ॥

अब तो बग़ैर इश्क इन्सान, इन्सान नहीं बन पाता--

असर-- **इन्सानको बे इश्क़ सलीक़ा नहीं आता।**
जीना तो बड़ी चीज है, मरना नहीं आता ॥

राघेनाथ क़ौल-- **इश्क़ जन्नत है आदमीके लिए।**
इश्क़ नेमत है आदमीके लिए ॥[1]

प्रेम-विभोर प्रेमीको प्रेमका मार्ग बतानेके लिए पथ-प्रदर्शककी आवश्यकता नहीं--

दिल-- **रहनुमाकी[1] क्या जरूरत इश्क़ कामिल[2] चाहिए।**
दिल जहाँ तड़पे समझ लेना वहीं है कूए-दोस्त[3] ॥

सच्चा प्रेमी घुट-घुटके मर जायगा, किन्तु कोई भी इच्छा ऐसी व्यक्त नहीं करेगा, जो उसकी प्रेयसीको अरुचिकर हो--

---

[1]पथ-प्रदर्शककी; [2]पूर्ण; [3]प्रेयसीका स्थान।

***मीर--** **क्या हक़ीक़त कहूँ कि क्या है इश्क़।**
हक़-शनासोंका[1] हाँ ख़ुदा है इश्क़ ॥
इश्क़से जा[2] नहीं कोई ख़ाली।
दिलसे ले अर्शतक[3] भरा है इश्क़ ॥

---

[1]इन्साफ-पसन्दोंका, सत्यवादियोंका; [2]स्थान; [3]आकाशतक।

आरज़ू— ऐसी हसरत[1] हीं से बाज़ आना हूँ ख़ूब।
जो मुझे मरग़ूब[2] उनको नापसन्द॥

जिगर—शौक़का मर्सिया न पढ़, इश्क़की बेबसी न देख।
उसकी ख़ुशी, ख़ुशी समझ, अपनी ख़ुशी, ख़ुशी न देख॥

अर्शी— जब उन्हें अर्ज़े-अलमपर[3] मुज़्तरिब[4] पाता हूँ मैं।
जो न पीनेके हैं आँसू वोह भी पी जाता हूँ मैं॥

लुत्फ़ी रिज़वाई—नज़र किसीकी नदामतसे[5] क्या झुकी 'लुत्फ़ी'!
कि याद मुझको ख़ुद अपने हीं सब क़ुसूर आये॥

यदि प्रेमीके किसी वर्तावसे प्रेयसीके हृदयको ठेस पहुँचे या उनकी आँखोंसे आँसू आ जाये तो यह उसका अपराध क्षमा योग्य नहीं—

जिगर— हश्रके दिन वोह गुनहगार न बख़्शा जाये।
जिसने देखा तेरी आँखोंका पशेमाँ[6] होना॥

प्रेमी मन ही मनमें घुटता रहता है, परन्तु मनकी बात मुहपर इस भयसे नहीं लाता कि कहीं उसकी प्रेयसीकी प्रतिष्ठामें बाल न आ जाये—

ख़ुर्शीद फ़रीदाबादी—आ जाये न उनकी निगहे-मस्तपे इल्ज़ाम।
ऐ दोस्त! न कर तज़करि-ए-गर्दिशे-ऐयाम'॥*

---

[1]इच्छासे; [2]रुचिकर; [3]अपनी व्यथाओंके प्रकट करनेपर; [4]बेचैन, [5]शर्मिन्दगीसे; [6]शर्मिन्दा; [7]मुसीबतोंका वर्णन।

* मीर— गिला लबतक न आया 'मीर' हरगिज़।
खपा जी हीं में ग़म सारा हमारा॥
तुरबतसे आशिक़ोंकी न उठ्ठा कभी ग़ुबार।
जीसे गये वले[1] न गई राज़दारियाँ[2]॥

---

[1]लेकिन; [2]भेदकी बातें किसीको न बताई।

सच्चा प्रेमी 'मोमिन' की तरह अपनी प्रेयसीको बदनाम करनेकी धमकी नही देता है—

मुझसे मिल वरना, रक़ीबोंसे मैं सब कह दूँगा।
दुश्मनी अबकी तेरी और वह पहला इख़लास॥

बल्कि बदनामीको स्वय ओढकर प्रेयसीकी मान-प्रतिष्ठाको अक्षुण्ण बनाये रखता है—

अर्शी— **ज़माना कहता है बरबादे-आरज़ू मुझको।**
ख़ुदा करे कोई इलज़ाम उनपै आ न सके॥
इस्मते-कोनीन[1] उस बरबादे-उलफ़तपर[2] निसार[3]।
उनके दामनको बचाकर ख़ुद जो रुसवा[4] हो गया॥

और यदि प्रेमी अपनेमे इतनी सामर्थ्य नही पाता है, तो उसे जीवित रहनेका अधिकार नही—

हसरत—उस शोख़का शिकवा किया, 'हसरत' यह तूने क्या किया?
इससे तो ऐ मर्दे-ख़ुदा! बेहतर था मर जाना तेरा॥

शिकवे-शिकायतकी पाकइश्कमे गुजाइश ही नही। वहाँ तो सच्चे आशिककी हालत यह होती है—

फ़ानी— **अब लबपै वोह हंगामि-ए-फ़रियाद नहीं है।**
अल्लाहरे तेरी याद कि कुछ याद नहीं है॥

अर्शी— **आपके अहदे-करमका भी तसव्वुर है गराँ[5]।**
उन मुक़ामातपै अब आपका सौदाई[6] है॥

---

[1]ससारकी प्रतिष्ठा; [2]प्रेममे बरबाद हुएपर; [3]न्योछावर; [4]बदनाम; [5]आपकी कृपात्रोके क्षण भी ध्यानमे नही रहे है; [6]आपका यह दीवाना आशिक इतनी बुलन्दीपर पहुँच गया है।

बाक़ी सद्दीक़ी—यह कैसी बेख़ुदी है लिख गया हूँ।
मैं अपने नामके बदले तेरा नाम॥

मसरूफ़ अलम—उनके तसव्वुरातका[1] अल्लाहरे करम।
तनहा[2] न एक लमहेको रहने दिया मुझे॥

असग़र— होश किसीका भी न रख, जलवागहे-नियाज़में[3]।
बल्कि ख़ुदाको भूल जा सज्द-ए-बेनियाज़में[4]॥*

ग़ज़लका इश्क जब इतना पाक और बेलौस होता जा रहा है, तब उसके माशूक (महबूब, प्यारे) का मर्तबा कितना बुलन्द, महान् एव गौरवास्पद होना चाहिए? यह जिज्ञासा सहज-मे ही बलवती हो उठती है। आलमे-इश्कमे महबूब ही सब कुछ है। आशिकके लिए महबूबकी चौखट काबा और उनको बार-बार निहारना ही नमाज है—

महबूबका मर्त्तबा

शाद— तेरी गलीके क़अ्दह-क़यामकी[5] क्या बात?
इसीको दिलकी ज़बाँमें नमाज़ कहते है॥

---

[1]ध्यानका; [2]अकेला; [3]प्रेम-मन्दिरमे; [4]प्रेमकी तल्लीनतामे; [5]बैठने, रहनेकी।

*मीर— महव कर आपको यूँ हस्तीमे उसकी, जैसे—
बून्द पानीकी नज़र आती नहीं पानीमें॥
सदा हम तो खोये-गये-से रहे।
कभू आपमें तुमने पाया हमें?
जौक़े-ख़बरमें हम तो बेहोश हो गये थे।
क्या जाने कब वोह आया, हमको नहीं खबर कुछ॥
कुछ होश न था मिम्बरो-महराबका हमको।
सद शुक्र कि मस्जिदमे हुए मस्तीमे वारिद॥

जलील— दैरो-काबेकी ज़ियारत[1] तो फ़क़त हीला[2] है।
जुस्तजू[3] तेरी लिए फिरती है घर-घर मुझको॥

यगाना— मंज़िलकी फ़िक्र क्यों हो, जब तू हो और मैं हूँ।
पीछे न फिरके देखूँ, काबा भी हो तो क्या है॥

माहिर— हम भी ज़रूर काबेको चलते पर अब तो शेख़!
क़िस्मतसे बुतकदेमें ही दीदार हो गया॥

असग़र— हम एक बार जलवये-जानाँना[4] देखते।
फिर काबा देखते न, सनमख़ाना देखते॥*

'असग़र' तो अपने हबीबकी तलाशमें इतने लीन हैं कि उसे खोजनेकी धुनमें वे मन्दिरों-मस्जिदोंकी ओर भी नहीं देखते। उन्हें अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमें बाधा समझते हैं—

दैरो-हरम[5] भी कूचये-जानाँमें[6] आये थे।
पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचाके हम॥

जिन्हें कूचये-महबूब नसीब हो गया है, उनकी किस्मतका क्या कहना? कूचये-जानाँके सामने फिरदौस (जन्नत, स्वर्ग) की भी क्या हक़ीक़त?

---

[1]यात्रा, दर्शन करना; [2]बहाना; [3]तलाश, खोज, [4]प्रेयसीका रूप; [5]मन्दिर-मस्जिद; [6]प्रेयसीके स्थानतक पहुँचनेके मार्गमें।

*मीर— हज़ार मर्त्तबा बेहतर है बादशाहीसे।
अगर नसीब तेरे कूचेकी गदाई हो॥
रहनेको अपनी जा तो, न दैर है न काबा।
उठिए जो उसके दरसे तो हूजिए किधरके?
देखा करूँ तुझीको, मंज़ूर है तो यह है।
आँखें न खोलूँ तुझ बिन मक़दूर है तो यह है॥

हसरत मोहानी— वल्लाह तुझे छोड़के ऐ कूचये-जानाँ!
'हसरत'से तो फ़िरदौसमें[1] जाया नहीं जाता॥*

बेनज़ीरशाह— वोह तेरी गलीकी क़यामतें कि लहदसे[2] मुर्दे निकल गये।
वोह मेरी जबीने-नियाज़[3] थी कि वहीं धरी-की-धरी रही॥

महबूबका मर्त्तबा खुदासे कम नही, वकील किसीके—

दावरके[4] सामने बुते-क़ाफ़िरको क्या कहूँ?
दोनोंकी शक्ल एक है, किसको ख़ुदा कहूँ॥

और 'बहजाद' लखनवी तो महबूबको ही खुदा समझते है—

---

[1]जन्नतमें, [2]कब्रसे; [3]नतमस्तक; [4]खुदाके।

*मीर— फ़िरदौसको[1] भी आँख उठा देखते नहीं।
किस दरजा सैरे-चश्म[2] है कूए-बुताँसे हम?
जन्नतकी मिन्नत उनके दमागोंसे कब उठे?
ख़ाके-रह[3] उसकी, जिसके कफनका अबीर हो॥
फ़रो[4] न आये सर उसका तवाफ़े-काबासे[5]।
नसीब जिसको तेरे दरकी जिबहसाई[6] हो॥
किसको कहते हैं, नहीं मैं जानता इस्लामो-कुफ़।
दैर हो या काबा, मतलब मुझको तेरे दरसे है॥

बैठने दे है कौन फिर उसको?
जो तेरे आस्ताँसे उठता है॥
यूँ उठे उस गलीसे हम—
जैसे कोई जहाँसे उठता है॥

---

[1]जन्नतको; [2]तृप्त; [3]मार्ग-रज; [4]नीचे; [5]काबेकी प्रदक्षिणासे; [6]मस्तक रगड़ना।

आ मेरी कायनाते-दिल[1]! मेरी बहारे-जिन्दगी!
आ कि मैं यह न कह सकूँ "मुझको ख़ुदा न मिल सका"॥

अपने प्यारेके ध्यानमे दिन-रात लीन रहना ही प्रेम-धर्म है—

हसरत मोहानी—शब वही शब[2] है, दिन वही दिन है।
जो तेरी यादमे गुज़र जाये॥

आसी— जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब[3] ऐसी सुहबत क्या?*

अपने प्यारेके चिन्तन और स्मरणके अतिरिक्त प्रेमीको अन्य कुछ भी नही सुहाता—

हसरत— हम क्या करें अगर न तेरी आरज़ू करें!
दुनियामें और कोई भी तेरे सिवा है क्या?

---

[1]दिलकी दुनिया; [2]रात; [3]इष्ट-मित्र।

***मीर—गई तसबीह[1] उसकी नज़अमें[2] कब 'मीर'के दिलसे?**
उसीके नामकी सुमरन थी, जब मनका ढलकता था॥
हर सुबह उठके तुझसे माँगूँ हूँ मैं तुझीको।
तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्दआ नहीं है॥
रहते हो तुम आँखोंमें, फिरते हो तुम्हीं दिलमे।
मुद्दतसे अगर्चे याँ, आते हो न जाते हो॥
हमनशीं[3]! क्या कहूँ, उस रश्के-महे-ताबाँ[4] बिन।
सुबहे-ईद अपनी है बदतर, शबे-मातमसे[5] भी॥

---

[1]माला, सुमरन; [2]प्राणान्त समयमे; [3]पडौसी; [4]जिसके सौन्दर्यपर चन्द्रमाको भी ईर्ष्या हो; [5]शोक-रात्रिसे।

जलील— मुझे तमाम ज़मानेकी आरज़ू क्यों हो ?
बहुत है मेरे लिए एक आरज़ू तेरी ॥

फ़ानी— एक आलमको देखता हूँ मैं।
यह तेरा ध्यान है मुजस्सिम[1] क्या ॥

जिगर मुरादाबादी—
यूँ ज़िन्दगी गुज़ार रहा हूँ तेरे बग़ैर।
जैसे कोई गुनाह किये जा रहा हूँ मैं ॥

जिगर बरेलवी—तुम नहीं पास कोई पास नहीं।
अब मुझे ज़िन्दगीकी आस नहीं ॥

दिल— नज़रका इक इशारा चाहिए अहले-मुहब्बतको।
जबीने-शौक़ झुक जाये जिधर कहिए, जहाँ कहिए ॥

महबूबका जमाल

प्रेयसीके रूप, हाव-भाव (जमाल) का वर्णन करना बहुत ही नाज़ुक एव कोमल कला है। तनिक-सी असावधानीसे अश्लीलताके धब्बे उभर आते है। ऐसा कौन विवेक-हीन कलाकार होगा, जो अपनी प्रियतमाके गुप्तागोका चित्रण करे। लेकिन गज़लगो शाइर ऐसा करते रहे है। पिछले वक़्तोके बाज-बाज़ शाइरोने तो अपनी कामुक मनोवृत्तिका बहुत ही कुरुचिपूर्ण परिचय दिया है। कई स्थलोपर तो ऐसा मालूम होता है कि उन्होने अपनी प्रियतमाको नग्न करके चौराहेपर खडा कर दिया है—

निज़ाम रामपुरी— वोह ज़ानुओंमे सीना छुपाना सिमटके हाय !
और फिर सम्भालना वोह दुपट्टा, छुड़ाके हाय ॥

---

[1]पूर्णरूपेण।

दाग़— हर अदा मस्ताना सरसे पाँवतक छाई हुई।
उफ़ तेरी काफ़िर जवानी, जोशपर आई हुई॥

अब जमाना बदल गया है। वर्त्तमान युगमे प्रियतमाको जो उच्चासन प्राप्त है, उसीके अनुरूप उसके सौन्दर्यका उल्लेख हुआ है।

रियाज़— ले वोह दामनमे क्या गुलाबके फूल।
बारे-दामन[1] जिन्हें गुलाबका रंग॥

रंगका उसके पूछना क्या है।
जिसका साया भी दे गुलाबका रंग॥

नाज़ुक कलाइयोंमे हिनाबस्ता मुट्ठियाँ[2]।
शाखोंपे जैसे मुँह बँधी कलियाँ गुलाबकी॥

असर— अब मैं समझा मुराद जन्नतसे।
आप जिस राहसे गुज़र जायें॥
फूल डूबा हुआ गुलाबमे था।
उफ़! वोह चेहरा हिजाबआलूदा[3]॥
दमे-ख़्वाब[4] है दस्ते-नाज़ुक[5] जबींपर[6]।
किरन चाँदकी गोदमें सो रही है॥

जिगर मुरादाबादी—तूँ जहाँ नाज़से क़दम रख दे।
वोह ज़मीं आसमान है प्यारे॥

जलील— निगाह बर्क़[7] नहीं, चेहरा आफ़ताब[8] नहीं।
वोह आदमी है मगर, देखनेकी ताब नहीं॥

---

[1]दामनका बोझ; [2]मेहदी लगी हुई मुट्ठियाँ; [3]शर्मसे भीगा हुआ; सोते हुए; [5]कोमल हाथ; [6]मस्तकपर; [7]बिजली; [8]सूर्य।

दिल— सरे-तूर एक बर्क़े-हुस्न लहराती नज़र आई।
ज़रा शोख़ीसे झटका था, किसीने अपने दामाँको॥

ऐ हुस्न! जो सज़ाये-तमन्ना हो, वह क़बूल।
लेकिन तेरी नज़रको फिर इक बार देखकर॥

ईमानकी बात तो यह है कि उसके रूपका वर्णन हो ही नहीं सकता। बक़ौल 'असगर' गोण्डवी—

अगर ख़मोश रहूँ मैं तो तू ही सब कुछ है।
जो कुछ कहा तो तेरा हुस्न हो गया महदूद[1]॥

अब चन्द जमालयाती शेर ख़ुदा-ए-सुख़न 'मीर'के तबर्रुकन (प्रसाद-स्वरूप) सुनिए—

नज़र उठती नहीं कि जब ख़ूबाँ[2]।
सोतेसे उठके आँख मलते हैं॥

यूँ अर्क़[3] जलवागर[4] है उस रुख़पर[5]।
जिस तरह ओस फूलपर देखो॥

नाज़ुकी उसके लबकी क्या कहिए।
पखुड़ी इक गुलाबकी-सी है॥

'मीर' उन नीमबाज़[6] आँखोंमें।
सारी मस्ती शराबकी-सी है॥

पहुँचे हैं कोई उस तने-नाज़ुकके लुत्फ़को।
गो गुल चमनमें जामेसे अपने निकल पड़ा॥

---

[1]सीमित; [2]हसीन; [3]पसीना; [4]उजागर; [5]कपोलपर; [6]अधखुली।

शब[1] नहाता था जो वोह रश्क़े-क़मर[2] पानीमे।
गुथी महताबसे[3] उठती थी लहर पानीमें॥
साथ उस हुस्नके देता था दिखाई वोह बदन।
जैसे झमके है पड़ा गोहरे-तर[4] पानीमें॥

यह चाँदके-से टुकड़े छुपते नहीं छुपाये।
हरचन्द अपने मुँहको बुर्क़ेमे तुम छुपाओ॥

यूसुफ़से कोई क्योंकर उस माहको[5] मिला दे?
है फ़र्क़ रात-दिनका अज़दीदा-ता-शुनीदा[6]॥

आँखोंमे ही रहे हो, दिलसे नहीं गये हो।
हैरान हूँ यह शोख़ी आई तुम्हें कहाँसे?

शम्सो-क़मरके[7] देखे जी उसमें जा रहे हैं।
उस दिल-फ़रोज़के भी रुख़सार ऐसे ही थे॥

गुल भी है महबूब लेकिन कब है उस महबूब-सा।
आगे उस क़दके है सरो-बाग़ बेउसूल बसा॥

रश्क़े-ख़ूबीका[8] उसीके, जिगरे-महमें[9] है दाग़।
वोह जो एक ख़ाल[10] पड़ा है तेरे रुख़सारके[11] बीच॥

देख उसे हो, मलिकसे[12] भी लग़ाज़िश।
हम तो दिलको सम्भाल लेते हैं॥

---

[1]रातको; [2]सौन्दर्य्यमे जिससे चन्द्रमा भी ईर्ष्या करे; [3]चन्द्रमासे; [4]मोती; [5]चन्द्रमुखीको; [6]देखने और सुननेमे; [7]सूर्य-चन्द्रमाके; [8]सौन्दर्यकी ईर्ष्याके कारण; [9]चन्द्रमामे कालिमाका; [10]तिल; [11]कपोलके; [12]देवतासे।

लुत्फ़ कहाँ, वोह बात कहेपर, फूलसे झड़ने लग जावें।
सुर्ख़ कली भी गुलकी अगर्चे यारके लाले-लब-सी हैं॥

जी ही मला जाता है अपना 'मीर' समाँ यह देखेसे।
आँखे मलते उठते हैं, बिस्तरसे दिलबर जब सोकर॥

देखी थी एक रोज तेरी मस्त अँखड़ियाँ।
अँगड़ाइयाँ ही लेते है अब तक ख़ुमारमें॥

खिलना कम-कम कलीने सीखा है।
उसकी आँखोंकी नीमख़्वाबीसे[1]॥

पिछले ज़मानेमें जब इश्क़ जी का रोग समझा जाता था, तब इश्कका रोगी शबे-हिज्रमें रोता-बिसूरता था, आहो-नाले करता था और अपने रजोगमकी दास्तान बड़-बड़ाता रहता था। बकौल मीर—

रोना-बिसूरना

कभू 'मीर' उस तरफ़ आकर जो छाती कूट जाता है।
ख़ुदा शाहिद[2] है, अपना तो कलेजा टूट जाता है॥

रोते फिरते है सारी-सारी रात।
अब यही रोज़गार है अपना॥

वर्त्तमानमें इश्क इन्सानके लिए जरूरी चीज बन गया है। रोने-धोनेसे दामने-इश्कमें धब्बा लगता है—

जिगर मुरादाबादी—इश्क़की अज़मत[3] न हरगिज जीते जी कम कीजिए।
जान दे दीजे मगर आँखें न पुरनम[4] कीजिए॥

---

[1]अधखुली; [2]साक्षी; [3]प्रतिष्ठा, महानता; [4]अश्रुपूर्ण।

दिल— मुहब्बत बेअसर उसकी, मुहब्बत रायगाँ[1] उसकी।
कि जिसने उम्रभर पूँछे हैं आँसू अपने दामाँसे॥

रंजो-गममें रोने-धोनेके क्या मानी? मर्द वह है जो इनका हँसते हुए स्वागत करता है। चन्द नमूने मुलाहिज़ा फ़र्मायें—

साक़िब— जवाब ज़ख़्मे-जिगर दे रहा है हँस-हँसकर।
"वही तो दिल है कि जो ख़ुश रहे मुसीबतमें"॥

रियाज़— असर बढ़ जाय या रब! इस क़दर सोज़े-मुहब्बतमें।
जहन्नुममें हर अंगारेको समझूँ फूल जन्नतका॥

असर— ग़म नहीं तो लज़्ज़ते-शादी नहीं।
बे असीरी[2] लुत्फ़े-आज़ादी नहीं॥

फ़ानी— ज़िन्दगी यादे-दोस्त है, यानी—
ज़िन्दगी है तो ग़ममें गुज़रेगी॥

मौजोंकी सयासतसे[3] मायूस[4] न हो 'फ़ानी'।
गिरदाबकी[5] हर तहमें साहिल[6] नज़र आता है॥

रस्मे-बेदाद-दोस्त[7] आम हुई।
तल्ख़िये-ज़ीस्त[8] भी हराम हुई॥

यगाना चंगेज़ी— ज़ीस्तके हैं यही मज़े वल्लाह।
चार दिन-शाद[9] चार दिन नाशाद॥

---

[1]व्यर्थ; [2]बन्धनके दु.ख देखे बिना; [3]लहरोंके बढ़नेसे, वेगसे; [4]निराश; [5]भँवरकी; [6]तट, किनारा; [7]प्रियतमाके अत्याचार करनेकी प्रथा; [8]ज़िन्दगीकी कड़वाहट; [9]ख़ुश।

शाद— अपनी हस्तीको ग़मो-दर्द मुसीबत समझो।
मौतकी क़ैद लगा दी है ग़नीमत समझो॥

पुकारकर वहशियोंसे कह दो, "खिज़ाँका भी दौर है ग़नीमत।
क़बाके दामनको टाँक तो लें अगर न मौक़ा मिले रफ़ूका"॥

आज़ाद अन्सारी—ग़ैर फ़ानी ख़ुशी[1] अता करदी।
ऐ ग़मे-दोस्त[2] ! तेरी उम्र दराज़[3]॥

फ़ानी— तूने करम[4] किया तो ब-उनवाने-रंजे-जीस्त[5] !
ग़म भी मुझे दिया तो ग़मे-जाविदाँ[6] न था॥
ग़म भी गुज़श्तनी[7] है, ख़ुशी भी गुज़श्तनी।
कर ग़मको अख़्तियार कि गुज़रे तो ग़म न हो॥
मेरी हविसको[8] ऐशे-दो आलम[9] भी था क़बूल।
तेरा करम कि तूने दिया दिल दुःखा हुआ॥

आरज़ू— एक दिलमें ग़म ज़माने भरका क्योंकर भर दिया ?
ख़ू-ए-हमदर्दीने[10] कूज़ेमें समन्दर[11] भर दिया॥

दिल— ए दिले-नाकाम रफ़-ए-ग़मकी[12] सूरत है यही।
वाक़ियाते-ज़िन्दगीको[13] भूल जाना चाहिए॥

अर्शी— जब कभी दर्दे-मुहब्बतमें कमी पाई है।
अपनी हालतपै मुझे आप हँसी आई है॥

मुहम्मद 'असर'—हज़ार ऐशकी सुबहें निसार हैं जिसपर।
मेरी हयातमें[14] ऐसी भी इक शबे-ग़म[15] है॥

---

[1]अमिट प्रसन्नता; [2]प्रियतमाके दुःख; [3]लम्बी; [4]कृपा; [5]जीवनके दुःखों रूपी शीर्षक; [6]स्थायी दुःख; [7]नष्ट होनेवाला; [8]तृष्णा, लालसाको; [9]दोनों जहानके भोग-विलास; [10]विश्व-समवेदनाकी आदतने; [11]गागरमें सागर; [12]ग़म नष्ट करनेका उपाय; [13]जीवन-घटनाको; [14]जीवनमें; [15]दुःखकी रात।

खिज़ाँ प्रेमी— ग़म एक इम्तहान था इन्सानके लिए।
जो लोग अहले-ज़ौक़[1] थे, वोह मुसकरा दिए॥

दर्द सईदी—

यह क्यों फ़िज़ापर[2] है यासतारी,[3] यह हर तरफ़ क्यों उदासियाँ है?
अभी तो अपनी तबाहियोंपर मैं आप भी मुसकरा रहा हूँ॥

नाज़िश परतापगढ़ी—

वोह तो ख़ैरियत गुज़री जो ग़मने गोद फैला दी।
वर्ना हज़रते-'नाज़िश' कौन आपका होता?
यह लुटा-लुटा-सा आलम, यह उड़ी-उड़ी-सी रंगत।
कहीं छिन न जाय मुझसे मेरे ग़मकी ताज़गी भी॥
मेरे दर्दमें निहाँ[4] है, वोह निशाते-जाँविदानी[5]।
कि निचोड़ दूँ जो आहें तो टपक पड़ें तबस्सुम[6]॥

राज रामपुरी—

इन आँसुओंकी हक़ीक़तको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, ज़िन्दगीका मातम है॥

हुरमतुल इकराम—

मुझसे हर बार मसर्रतने[7] छुड़ाया दामन।
मुझको सौ बार दिया ग़मने सहारा ऐ दोस्त!

अज्ञात—

किसको होती है अता[8] इस शानकी बरबादियाँ।
आशियाँ हम क्या बनाते, बिजलियाँ देखा किये॥

---

[1]पारखी; [2]वायुमण्डलमें; [3]निराशा छाई है; [4]छुपी हुई; [5]स्थायी सुख; [6]मुसकान; [7]खुशीने; [8]प्रदान।

पिछले जमानेके अक्सर शाइरोंने जहाँ माशूकको कातिल एव बेवफ़ा[1] चित्रण किया है; वहाँ आशिकको भी बहुत ज्यादा ज़लीलो-ख़्वार किया है।[2] यहाँतक कि आशिक़ो-माशूक़ शब्द इतने घृणित और उपहासास्पद हो गये है कि यह भनक पड़ते ही कि अमुक युवक-युवतीका परस्पर इश्क़ है तो भद्र समाजमे उनपर उँगलियाँ उठने लगती है, चेमेगोइयाँ होने लगती है; और उन्हे आवारा, उच्छृंखल एव चरित्रहीन समझ लिया जाता है। यहाँतक कि कुटुम्बी जन उनके अस्तित्वको अभिशाप समझने लगते है।

आशिक़-ओ-माशूक़की तसवीर

अब जब कि हुस्नो-इश्क़का मर्त्तबा बहुत बुलन्द तसव्वुर किया जाने लगा है, तो आशिको-माशूककी तसवीरे भी उसी मेयारपर बनाई जा रही है। पिछले जमानेके माशूक विरह-व्यथासे पीड़ित अपने आशिककी

---

[1]दाग़— अपने बिस्मिलका सर है जानूपर।
किस मुहब्बतसे जान लेते है॥

मोमिन— दरबाँको आने देनेपै मेरे न कीजे क़त्ल।
वर्ना कहेंगे सब कि यह कूचा हरम न था॥

[2]ग़ालिब— दे वोह जिस क़दर ज़िल्लत हम हँसीमें टालेंगे।
बारे-आश्ना निकला उनका पासबाँ अपना॥

वाँ जो पहुँचा भी तो उनकी गालियोंका क्या जवाब।
याद थीं जितनी दुआएँ सर्फ़े दरबाँ हो गईं॥

दाग़— देखते ही मुझे महफ़िलमें उन्हें ताब कहाँ?
ख़ुद खड़े हो गये कहते हुए "बाहर-बाहर"॥

अज्ञात— कल जो उठते थे बिठानेके लिए।
आज बैठे है उठानेके लिए॥

परिचर्य्या करना तो दरकिनार उनकी मिज़ाज पुर्सीको आना भी शायाने-शान नही समझते थे।

तसलीम— **गर उन्हें है ख़ौफ़ अर्ज़े-आरज़ू।**
दूरसे आकर तमाशा देख लें॥

लेकिन इश्क अगर सादिक है तो नामुमकिन है कि माशूकको उस चाहतका पता न लगे और आशिकके रजो-गममें उसकी आँख न डबडबा आयें—

साक़िब— **नज़अ[1] इक ईद है, वोह रोते हुए आये हैं।**
ऐ दिले-ज़ार! यही वक़्त है मर जानेका॥

अर्शी— **अब देखिए पहुँचती है बरबादियाँ कहाँ?**
उनकी हसीन आँखोंमें अश्क आ गये है आज॥

अज्ञात— **तेरी आँखोंसे यह आँसूका ढलकना तौबा!**
मैंने गिरती हुई कोनैनकी[2] क़िस्मत देखी॥

वर्त्तमान युगीन शाइर जहाँ सुशीला, सहृदया और नेक प्रेयसीका चित्रण कर रहे है; वहाँ प्रेमीके बेलौस प्रेम और स्वाभिमानी व्यक्तित्वका भी नक़्शा उभार रहे है। यह माना कि प्रियतमा ही काबा-ओ-काशी है। उसकी यादमे लीन रहना ही नमाजो-उपासना है। मगर प्रेमी भी तो आखिर मनुष्य है। वह प्रियतमाकी चाहतमे मर मिटेगा, जीवनभर सुलगता रहेगा; किन्तु जानबूझकर की गई उपेक्षा या तौहीनको वह नही सह सकेगा। वह मनुष्य है और मनुष्यताका अपमान सहन करना मनुष्यता नही, पशुता है। इस हीन स्थितिमे वह किसी भी क़ीमतमे रहनेको प्रस्तुत नही।

---

[1]मृत्यु-पल; [2]संसारकी।

आनन्दनारायण मुल्ला—

तूने फेरी लाख नरमीसे नज़र।
दिलके आईनेमें बाल आ ही गया॥*
किसीके पाँवका रौंदा हुआ नहीं 'मुल्ला'।
वोह है तो गर्द, मगर राहे-कारवाँमें नहीं॥

शाद अज़ीमाबादी—

दिले-मुज़तरिब! तुझे क्या कहूँ, अबस उनके पाँवपै सर रखा।
जो ख़फ़ा भी हो गये थे तो क्या, कि वोह आदमी थे, ख़ुदा न थे॥†

जिगर— हमसे नज़र फेर ली उस शोख़ने।
हम भी हैं इन्सान ख़फ़ा हो गये॥‡

फ़ानी— रस्मे-ख़ुद्दारीसे गो वाक़िफ़ न थी दुनियाए-इश्क़।
फिर भी अपना ज़ख़्मे-दिल शरमिन्द-ए-मरहम न था॥

आरज़ू— उनकी बेजा भी सुनूँ आप बजा भी न कहूँ।
आख़िर इन्सान हूँ मैं भी, कोई दीवार नहीं॥

---

*मीर— याँ अपने जिस्मे-ज़ारपै तलवार-सी लगी।
उसने जो बेदमाग़ीसे अबरूको ख़म किया॥

†मीर— ख़ाक ऐसी आशिक़ीपर ठुकराये भी गये कल।
पाँवों मलने-से उसके पर 'मीरजी' न सरके॥

‡मीर— बाहम सलूक़ था तो उठाते थे नर्म-गर्म।
काहेको 'मीर' कोई दबे जब बिगड़ गई॥
खाना ख़राब 'मीर' भी कितना ग़यूर था?
मरते मुआ पर उसके कभू घर न जा फिरा॥

यगाना— बन्दगीका सबूत दूं क्योंकर?
इससे बेहतर है कीजिए इनकार॥

जब स्वाभिमानका यह आलम है कि बन्दगीका सबूत चाहे जानेपर बन्दगीसे भी इनकार कर दिया जाता है। तब उसका स्वाभिमानी व्यक्तित्व किसीका भी एहसान कैसे उठाये और क्यों किसीसे याचना करे?

साक़िब— पेशे-अरबाबे-करम[1] हाथ वोह क्या फैलाता?
जिसको तिनकेका भी एहसान गवारा न हुआ॥*

नियाज़— हमें ख़ुदाके सिवा कुछ नज़र नहीं आता।
निकल गये हैं बहुत दूर जुस्तजूसे हम॥

असर— रहमपर ग़ैरके जीना कैसा?
ज़िन्दगीका यह क़रीना कैसा?

आरज़ू— दरे-दिल[2] 'आरज़ू'! दरवाज़-ए-काबेसे बेहतर था।
यह ओ ग़फ़लतके मारे! तूने पेशानी कहाँ रख दी?
धूप सह लेना अच्छा, बारे-एहसाँ[3] कौन उठाय।
छाँव इक गिरती हुई दीवार है मेरे लिए॥
माँग जो खोके आन-बान न माँग।
क़त्ल हो जा मगर अमान[4] न माँग॥
आलूदगी-ए-गर्दे-तमासे[5] ख़ुदा बचाय।
जाते हैं झाड़ते हुए दामन चमनसे हम॥

---

*मीर— आगे किसीके क्या करें दस्ते-तमअ[6] दराज़।
यह हाथ सो गया है सिराहने धरे-धरे॥

[1]इष्ट-मित्रोंके सामने; [2]हृदय-द्वार; [3]एहसानका बोझ; [4]जीवन-रक्षा; [5]अभिलाषा-रूपी धूलकी लिप्सासे।

---

[6]अभिलाषाका हाथ।

यगाना— आँखे नीची हुई अरे यह क्या?
क्यों ग़रज़ दरमियानमें आई?
बन्दा वोह जो दम न मारे।
प्यासा खड़ा हो दरिया किनारे॥

अदीब मालीगाँवी—

अपना अदाशनास बन, अपना जमाल भी तो देख।
तुझमें कमी है कौन-सी, तुझमे कमी कोई नहीं॥

कौसर क़ुर्रेसी—मुझे आता है 'कौसर' हश्रगाहोंमे गुजर जाना।
मै इन्सॉ हूँ, मेरी तौहीन है, घुट-घुटके मर जाना॥

अपने प्यारेका विरह नारकीय यन्त्रणासे भी अधिक दु.खद होता है। हर प्रेमीकी अभिलाषा रहती है कि वह अपने प्यारेके पास निरन्तर बैठा रहे, एक क्षणको भी पृथक् न रहे; परन्तु विधिका विधान ही कुछ ऐसा है कि वियोग ही जीवनभर सहना पड़ता है, मिलन यदि होता भी है तो क्षणिक होता है। पिछले शाइरोंम बहुतोंने विरहपर बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण कहा है जिसे सुनकर सहानुभूति उदित होनेके बजाय खीज-सी होती है। कोई विरह-व्यथा सहते-सहते इतने दुर्बल हो गये है कि बकौल किसीके—

हिज्रे-यार

बिस्तरपै ढूँडती फिरी शबभर क़ज़ा मुझे

कोई विरह-ज्वालामे इतने तप रहे है कि बक़ौल 'अमीर' मीनाई—

फूल गर मुरझाये तो मुझसे न करना कुछ गिला।
ले सबा चलनेको मै, चलता हूँ गुलशनकी तरफ़॥

कोई विरह-व्यथामे ऐसे खोये गये है कि जड़-मूर्त्ति समझकर परिन्दोंने उनके सरपर घोंसले बना लिये है। बकौल आरिफ—

जानकर मजनूँ मुझे एक लैलि-ए-गुलफ़ामका।
आके बुलबुलने बनाया आशियाँ बालाए-सर॥

अब आधुनिक युगके चन्द स्वाभाविक शेर विरहपर दिये जा रहे हैं—

अर्शी—बेताबिये-दिलके उन नाज़ुक लमहोंका तसव्वुर तो कीजे।
जब अहदे-मुहब्बत होते ही फ़ुरक़तका ज़माना आ जाये॥

असर— फिर न आये जो वादा करके गये।
आजका दिन है और वोह दिन है॥
याद करले भूलनेवाले मेरे।
अब तो बिछुड़े एक मुद्दत हो गई॥

जलील— तुम जो याद आये तो सारी कायनात[1]।
एक भूली-सी कहानी हो गई॥
क़ासिद! पयामे-शौक़को देना न बहुत तूल।
कहना फ़क़त यह उनसे कि "आँखे तरस गईं"॥

'शाद' अज़ीमाबादी—

शबे-हिज्राँकी सख़्ती हो तो हो, लेकिन यह क्या कम है।
कि लबपै रातभर रह-रहके तेरा नाम आयेगा॥

हसरत— कहीं वोह आके मिटा दें न इन्तज़ारका लुत्फ़।
कहीं क़ुबूल न हो जाय इल्तजा[2] मेरी॥

नसरीं— वाह क्या कैफ़े-तसव्वुर[3] है कि अक्सर हिज्रमें।
यूँ हुआ महसूस गोया वोह अचानक आ गये॥

---

[1]दुनिया; [2]इच्छा, प्रार्थना; [3]ध्यानावस्था।

अज्ञात— रुख़सतके वाक़ियातका इतना तो होश है।
देखा किये हम उनको जहाँतक नज़र गई॥
दातक तो आ चुके थे, मगर आके फिर गये।
ऐजब्ते-दिल! असरमें कहाँपर कमी रही॥

अदीब मालीगाँवी—
उस जने-बहाराँने[1] जबसे मुँह फेर लिया है गुलशनसे।
शाखोंने लचकना छोड़ दिया, ग़ुंचे भी चटखना भूल गये॥

एक ख़ातून— बे तुम्हारे मैं जी गई अबतक।
तुमको क्या ख़ुद मुझे यक़ीन नहीं॥*

अर्शी— तेरे नीची नज़रकी यादका आलम अरे तौबा!
चुभकर दिलमें जैसे तोड़ डाले कोई पैकाँको[2]॥
आग़ाजे-आशिक़ीका[3] अल्लाहरे ज़माना।
हरबात बहकी-बहकी हरगाम वालहाना॥

पुरानी ग़ालोमे निराशा एव असफलता (यास-ओ-हिरमान) की बहुत अधिक भमार है। वे शाइर भी जो जीवन पर्यन्त ऐश करते रहे; ता-उम्र निराशाके गीत गाते रहे है। अक्सर पुराने शाइरोंने जीवनके बजाय मृत्यु चाही†। प्राः सभीने पुरुषार्थके बदले अकर्मण्यताको अहमियत

यास-ओ-हिमान

---

[1]बहारकी प्रियतमाने; [2]तीरको; [3]प्रेमासक्तिका प्रारम्भ।

*मीर— इश्क़में वस्लो-जुदाईसे नहीं कुछ गुफ़्तगू।
बोो-बाद[1] उस जा बराबर है, मुहब्बत चाहिए॥

†ग़ालिब— मरते हैं आरज़ूमे मरनेकी।
मौत आती है, पर नहीं आती॥

---

[1]नज़दीकी-दूरी।

दी†। लेकिन अब करो या मरोका युग है। अकर्मण्योंको सावधान करते हुए 'यगाना' चंगेज़ी फ़र्माते हैं—

ख़ुदा ऐसे बन्दोंसे क्यों फिर न जाये।
जो बैठा हुआ माँगना जानता है॥

जो हाथ-पाँव नहीं हिलाता, उसके मुँहमें ग्रास देने ईश्वर भी नहीं आता। जो पुरुषार्थ करते हैं, उन्हें सहायक मिल ही जाते हैं। इसी भावको 'यगाना' चंगेज़ी यूँ व्यक्त करते हैं—

जो रो सकते तो आँसू पूछनेवाले भी मिल जाते।
शरीके-रंजो-ग़म, दामनसे पहिले आस्तीं होती॥

जो व्यक्ति असफलताओंसे निराश हो बैठते हैं, उनके लिए यह अशआर देखिए कितने प्रेरणादायक हैं—

शाद अज़ीमाबादी—

यह मुमकिन है कि लिक्खी हो क़लमने फ़तह आख़िरमें।
जो है अहबाबे-हिम्मत ग़म नहीं करते शिकस्तोंमें॥

दत्तात्रिय कैफ़ी—हाँ-हाँ मगर ऐ दोस्त! तू तदबीर किये जा।
यह भी तेरी तक़दीरके दफ़्तरमें लिखा है॥

जो स्वयं नहीं उठता, उसे कोई भी सहारा नहीं देता। इसी भावको 'शाद' अज़ीमाबादी देखिए किस ख़ूबीसे रिन्दाना अन्दाज़में पेश करते हैं—

समझता है इस दौरमें कौन किसको?
करें रिन्द ख़ुद एहतराम[1] अपना-अपना॥

---

†आतश— क़िस्मतमें जो लिखा है, वोह आयेगा आपसे।
फैलाइए न हाथ न दामन पसारिए॥

[1]आदर-सत्कार।

जो क़ौमें स्वय अपनी प्रतिष्ठाएँ बढ़ानेका प्रयत्न नही करती, उनकी आजतक किसी दूसरी क़ौमने इज्जत नही की। 'शाद' अज़ीमाबादीने कितना तथ्यपूर्ण भेद बतलाया है—

यह बज्मे-मै[1] है यां कोताहदस्तीमें है महरूमी[2]।
जो बढ़कर खुद उठा ले हाथमें मीना उसीका है॥

समय रहते जो कर लिया सो ही थोड़ा—

क्या ग़लत जोम है, बाद अपने किसे ग़म अपना।
हाथ क़ाबूमें है कर ले अभी मातम अपना॥

यह हमारी कम हिम्मती अथवा अकर्मण्यता है जो हम इस शोचनीय स्थितिमे है। अन्यथा बक़ौल 'शाद' अजीमाबादी—

हिम्मते-कोताहसे[3] दिल, तंगे-जिन्दां[4] बन गया।
वर्ना था घरसे सिवा, इस घरका हर गोशा[5] वसीअ[6]॥

सफ़ी लखनवी—इन्सान मुसीबतमें हिम्मत न अगर हारे।
आसाँसे वोह आसाँ है, मुश्किलसे जो मुश्किल है॥
दुनियाकी तरक़्क़ी है इस राजसे[7] वाबस्ता[8]।
इन्सानके क़ब्ज़ेमें सब कुछ है अगर दिल है॥

असर लखनवी—कौन कहता है कि मौत अंजाम[9] होना चाहिए।
जिन्दगीका जिन्दगी पैग़ाम होना चाहिए॥

नज़ीर बनारसी—खा-खाके शिकस्त फ़तह पाना सीखो।
गिरदाबमें[10] क़ह-क़हा लगाना सीखो॥

---

[1]मधुशाला; [2]पीछे हाथ रखनेसे वचित रह जाओगे; [3]कम-हिम्मतीकी वजहसे दिल; [4]सकीर्ण बन्दीगृह; [5]कोना; [6]विस्तृत; [7]भेदसे; [8]सम्बन्धित; [9]परिणाम; [10]भँवरमें।

शाद अजीमाबादी— नजर आये न आये कोई आँसू पूछनेवाला।
मेरे रोनेकी दाद ऐ बेकसी ! दीवारो-दर देगे॥

आनन्दनारायण मुल्ला—कबतक किसीसे माँगकर हम अस्तियार लें ?
अब जीमें है कि शेरसे लड़कर कछार लें॥

पुरानी शाइरीमे रकीबो[1] (अदूओ) की बहुत भरमार रही है। अक्सर यही माशूककी नजरे-इनायतके हकदार होते थे। माशूक इन्हें महफिलोमे अपने नजदीक बिठाते थे। सबके सामने प्यार-ओ-मुहब्बतका इजहार करते थे और अपने हकीक़ी चाहनेवाले आशिक़की तरफ़ रुख भी नही करते थे। उन्हे महफ़िलमे बुलाना तो दरकिनार अपने कूचेमे भी नही फटकने देते थे। और मसलहतन कभी महफिलमे बैठने भी दिया तो उनके सामने ही रक़ीबसे इजहारे-उल्फ़त करते थे और बेचारे आशिक उनकी इन हरकतोको देख-देखकर कुढते थे। इसी कुढन, गैरत, जलन, ईर्ष्या, स्पर्द्धा आदिको 'रकाबत' कहते है।

रक़ाबत

वर्त्तमान युगमे रकाबतकी वह लानत खत्म होती जा रही है। क्योकि जब माशूका पाकदामाँ और बावफा होती जा रही है, तब रकीबो-अदूका खयालो-ख्वाब भी नही आ सकता।

पृ० १२६ मे यह उल्लेख हुआ है कि उर्दू-शाइरीमे बाजारी माशूकका तसव्वुर फारसी शाइरीके अन्ध-अनुकरणकी वजहसे भी आया। यदि उर्दू-शाइरोने फ़ारसीके बजाय अरबीका अनुसरण किया होता तो बुलहविस आशिक़ों एव हरजाई माशूक़ोसे उर्दू-शाइरीका दामन बेदाग रहा होता।

मिर्जा गालिब फारसीका अनुसरण करते हुए फ़र्माते है—

---

[1] माशूक़का दूसरा चाहनेवाला, जिसे माशूक भी प्यार करे, उसे रकीब, अदू, गैर, मुद्दई, दुश्मन आदि कहा जाता है।

क़यामत है कि होवे मुद्दईका हमसफ़र, 'ग़ालिब' !
वोह क़ाफ़िर जो खुदाको भी न सौंपा जाय है मुझसे[1] ॥

इस शेरमें साफ-साफ हरजाई माशूकका जिक्र हुआ है। 'मीर' अरबी-नस्ल था। अब देखिए उसके यहां यही मजमून कितने पाकीजा सलीकेसे नज्म हुआ है—

इश्क़ उनको है, जो यारको अपने दमे-रफ़्तन।
करते नहीं ग़ैरतसे खुदाके भी हवाले[2] ॥

'मीर'की प्रेयसी पवित्र एवं सती है, किन्तु वह इतनी अनुपम, लावण्यवती और यकताँ है कि किसीपर भी विश्वास नही किया जा सकता। उसे देखकर सभव है खुदाकी नीयत भी ऐन-मौन हो जाय।

'मीर'का कमाल यह है कि वह अपनी प्रेयसीको शकित दृष्टिसे नही देखते। मगर उनकी हिन्दुस्तानी गैरत इजाजत नही देती कि उनके सिवा कोई दूसरा उसे मुहब्बतकी नजरसे देखे। चाहे वह खुदा ही क्यो न हो। उन्हे अपने माशूककी पाकदामनीपर पूरा एतमाद है। मगर दूसरोकी नीयतपर यकीन नही। वे उस पाश्चात्य सभ्यताके क़ायल नही, जो अपनी पत्नियोको दूसरोके साथ नाचते-हँसते-खेलते देखकर खुश होते है। अपनी प्रेयसीपर 'मीर' किसीकी भी कुदृष्टि नही पड़ने देना चाहते। उनके सिवा कोई और भी उनकी प्रेयसीको चाहतकी दृष्टिसे देखने लगे, यह बेगैरती वे बरदाश्त करनेको तैयार नही।

---

[1] ऐ ग़ालिब ! मेरे लिए तो आज प्रलयका दिन है। मेरे जैसा शकित हृदय अपनी जिस प्रेयसीको खुदाके हवाले करते हुए भी झिझकता, वही मेरे प्रतिद्वन्द्वीके साथ भ्रमणको निकली है।

[2] पवित्र और स्थायी प्रेम उन्हीका है जो स्वाभिमानवश अपनी प्रेयसीको खुदाके सरक्षणमे भी रखनेको प्रस्तुत नही होते। रकीबका तो जिक्र ही क्या ?

हम देखें तो देखे उसे, फिर पर्दा बेहतर है यानी—
और करे नज्जारा उसका, हमको यह मंजूर नही॥

यहाँतक कि 'मीर' अपनी प्रेयसीको पत्र भी नही लिखते। क्योंकि वे जानते है कि पत्र-वाहककी नीयत भी फिसल सकती है—

ख़त लिखके उसको सादा न कोई मलूल हो।
हम तो हों बदगुमान जो क़ासिद रसूल हो॥

रकाबतपर 'मोमिन'का यह शेर मशहूर है—

उस नक़्शे-पाके सज्देने क्या-क्या किया जलील।
मैं कूच-ए-रक़ीबमे भी सरके बल गया[1]॥

'मोमिन'के यह बहुत बहतरीन शेरोंमें-से एक है। इसी मजमूनको 'गालिब'ने यूँ जाहिर किया है—

जाना पड़ा रक़ीबके दरपर हजार बार।
ऐ काश जानता न तेरी रहगुजरको मैं॥

'ग़ालिब' कूचये-रक़ीबमे अपने माशूक़के नक़्शे-पाका सज्दा करते हुए नही जाते है। वे तो महज बदगुमानी और रक़ाबतकी वजहसे कूचये-

---

[1]प्रेयसी प्रतिद्वन्द्वीके घर थी। अतः उसके चरणचिह्नोंको सज्दा करते हुए मुझे प्रतिद्वन्द्वीके घरतक जाना पड़ा। प्रेयसीके चरण-चिह्नोंको सज्दा देना प्रेम-धर्म है। इससे तो मुझे प्रसन्नता हुई, परन्तु मलाल तो इस बातका है कि मुझे सज्दा करते हुए शत्रुके दर्वाजेतक जाना पड़ा, जो मेरी गैरतको गवारा नही था। जिल्लतका सबब यह हुआ कि रकीबके कूचेमे सरके बल जानेसे लोग समझे कि रक़ीबसे रहमका ख़्वाहिशमन्द है और उसके कूचेमे नाक रगडता है।

रकीबमें जाते है। ताकि वहाँ माशूक़को रँगे-हाथ देखकर उसे ज़लीलो-ख्वार कर सके।

मगर किसी भी भले और शरीफ आशिक़की गैरत यह कब गवारा करेगी कि वह अपने माशूक़को किसी गैरके पहलूमें खुद अपनी आँखोंसे देखे। वह मर जाना पसन्द करेगा, मगर ऐसे जलील मजरको देखना पसन्द नही करेगा। अब 'मीर'की खुद्दारी देखिए—

इतना रक़ीबे-ख़ानाबर अन्दाज़से सलूक?
जब आ निकलते है, यह सुनते है कि घर नहीं॥

बदगुमानी और रश्कका यह हाल है कि 'मीर' नही चाहते कि माशूक़ा कही जाय। वह किसी भी कामसे ख्वाह अपनी रिश्तेदारीमें ही जाती है। 'मीर'को रक़ीबके यहाँ जानेका शक होता है। क्योंकि आशिक शक्की मिजाज होता है। मगर खुद्दार एव स्वाभिमानी इतने है कि उसकी टोह लेनेके लिए कही नही जाते।

'मीर'का एक शेर और दिया जा रहा है। मगर इस शेरसे लुत्फ़ अन्दोज़ वही हो सकेंगे, जिन्होंने ३०-३५ वर्ष पूर्वका ज़माना देखा है। जब कि शादीसे पूर्व पत्नीका मुख देख सकना असभव था। कई-कई बच्चे हो जानेपर भी पत्नीके मायकेमें उसके दीदार नसीब नही होते थे। पत्नीकी एक झलक दिखा देनेके लिए सालियों-सलेहजोंकी खुशामदे की जा रही है। सरदर्दका बहाना करके पडे हुए है। मगर क्या मजाल जो पत्नीकी झलक किसी दीवारो-दरके सूराखसे भी नजर आ जाय। दिल उसे देखनेको तड़प रहा है, मगर अन्तरग यही चाहता है कि मेरी पत्नी इतनी लज्जाशील और बा-हया हो कि वह मुझे दिखाई न दे। अन्यथा उसके पीहरवाले उसे बेहया कहेगे, और उसकी ग़ैरत और मर्दानगीको यह गवारा नही कि उसकी पत्नीपर कोई नुक्ताचीनी करे। अतः ऊपरसे मिलनेका प्रयत्न करते हुए भी वह नही चाहता कि उसकी पत्नी सामने आये।

इसीतरह पत्नी भी नही चाहती कि उसके पतिपर कोई उगली उठाये। वह भी अपने पतिकी आँखोमे लाजका पानी चाहती है। उसके पतिने अपने बड़ोके सामने असावधानीवश बच्चा गोदमे ले लिया तो एकान्तमे व्यग्य करते हुए चेतावनी दी कि तुमने यहाँ तो बच्चेको गोदमे ले लिया, कही मेरे पीहरमे ऐसी भूल न कर बैठना, वर्ना माँ-भावज मुझे चूँट-चूँट खायेगी।"

अब 'मीर'का शेर मुलाहिजा फ़र्माएँ—

दाग़ हूँ रश्के-मुहब्बतसे कि इतना बेताब।
किसकी तसकींके लिए घरसे तू बाहर निकला ?

अपने प्यारेका आगमन सुनकर उसे देखनेकी आतुरतामे बदहवासीसे प्रियतमा बाहर निकल आई है। उसकी यह हरकत प्रेमीकी धारणाके विपरीत हुई। क्योंकि वह तो अपनी प्रियतमाको असूर्यम्पश्या समझता था। हजार प्रयत्न करनेपर भी झलक दिखेगी या नही। यही शकित हृदय लेकर वह आया था। मगर यहाँ आकर उसे कुछ दूसरा ही आलम नजर आया। आशिक आखिर—आशिक है, शक्की उसका स्वभाव है। वह यह तो कल्पना भी नही कर सकता कि उसकी प्रेयसी इतनी निर्लज्ज है कि उसे देखनेको भी बाहर आ सकती है। शक्की स्वभावके कारण वह सशकित हो उठता है और माशूकसे बेतावीमे पूछ बैठता है—

किसकी तसकींके लिए घरसे तू बाहर निकला[1] ?

गजलपर एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि उसमे सामयिक घटनाओंका उल्लेख नही मिलता। यह आक्षेप किसी हदतक ठीक है।

सामयिक घटनाएँ

क्योंकि गजलका निर्माण जिन तन्तुओंसे हुआ है, उनका मेल इस तरहकी शाइरीसे नही बैठता। गजलका अस्तित्व चिरकालतक होना चाहिए, इसलिए उसमे

---

[1]ध्यान रहे उर्दू-शाइरीकी प्रथाके अनुसार माशूकके लिए प्रयुक्त क्रिया आदि पुल्लिग लिखे जाते हैं।

उन घटनाओंको नज्म करनेसे परहेज किया जाता है, जो आँधीके समान बढ़ती-घटती है।

फ़ारसीके मशहूर शाइर हाफ़िजके जीवनकालमें उसका देश ५ बार विजित हुआ। कभी किसी विजेताने उसे वीरान कर दिया। कभी किसीने उसे चमन बना दिया। विजेता आँधी-तूफानकी तरह आये और विलीन हो गये। हाफ़िजने यह सब इन्क़लाब अपनी आँखोंसे देखे। मगर एक भी घटनाका उल्लेख उन्होंने अपनी शाइरीमें नहीं किया। फिर भी क्यों उनकी शाइरी इतनी बुलन्द और प्रभावशाली है कि सदियाँ गुजर जानेपर भी उसी तरह तरो-ताजा बनी हुई है? बार-बार पढनेपर भी मन लालायित बना रहता है।

इसका कारण यही है कि उन्होंने जो इन्कलाब अपने जीवनमें देखे, उन्हें देखकर वे बिलखे नहीं। चुपचाप सहते गये और स्वय साकार व्यथा बन गये। परिणाम इसका यह हुआ कि जो भी बोल व्यथित हृदयतन्त्रीसे निकला अमर हो गया।

समुद्र-मन्थनसे निकले हुए विषको देखकर बाबा भोलेनाथ चीख उठते तो उन्हें महादेव कौन कहता? महादेव तो वे तभी समझे गये, जब संसारका जहर वे स्वय पीकर बैठ गये।

नज़्म-गो और गजल-गो-शाइरोंमें यही अन्तर है। नज्म-गो शाइर आपदाओंको देखकर उससे प्रभावित होता है, और जो देखता है, उसे बढा-चढ़ाकर दूसरोंपर जाहिर करता है। गजल-गो शाइर आपदाओंको अपनेमें जज्ब कर लेता है, फिर जो जज्बात उसके मुँहसे प्रस्फुटित होते हैं। वही गजल कहलाते हैं।

उर्दूके अमर शाइर मीर, गालिब ऐसे ही शाइर हुए हैं। उनके जीवनकालमें बादशाहतें मिटी, दिल्ली लुटी, और न जाने कितने इन्क़लाब आये। सब उतार-चढाव अपनी आँखोंसे देखे। निरुपाय बने घुटते रहे, मिटते रहे।

उन इन्कलाबातने जो हश्र बरपा किया, उनके बारेमे 'मीर' इतना कहकर चुप हो गये—

दीदनी है शिकस्तगी दिलकी[1]।
क्या इमारत ग़मोंने ढाई है॥

और गालिब इससे ज्यादा क्या कहते?—

चिराग़े-मुर्दा हूँ मैं बे-ज़बाँ गोरे-ग़रीबाँका[2]

उनके जीवनमे जितनी मुसीबते आ सकती थी, आई। वे मृत्युकी प्रतीक्षा करते रहे—

हो चुकीं ग़ालिब! बलाएँ सब तमाम।
एक मर्गे-नागहानी और है॥

लेकिन ऐसा भी नही है कि ग़ज़लगो शाइरोंने सामयिक घटनाओंपर कुछ भी नही कहा हो! कहा है, परन्तु बहुत सक्षेपमे और नपे-तुले शब्दोंमे। 'मीर'के जीवनकालमे कादिर रहीलाने शाहआलम बादशाहकी आँखोमे नीलकी सलाइयाँ फेरकर उन्हें ज्योतिहीन कर दिया था। इस दर्दनाक घटनाको 'मीर'ने अपनी गज़लके एक शेरमे यूं व्यक्त किया है—

शहाँ कि कुहले-जवाहर थी ख़ाके-पा जिनकी।
उन्हींकी आँखोंमें फिरती सलाइयाँ देखी[3]॥

इस घटनाको 'मीर'ने इतने सक्षेपमे बयान किया है, कि कुछ कहनेको शेष नहीं रहा। इसी घटनाको इकबालने नज़ममे प्रस्तुत किया है, जिसमे काफ़ी अशआर है।

---

[1]दिलकी बर्बादी देखने योग्य है; [2]खामोश क़ब्रका बुझा हुआ दीपक; [3]जिन बादशाहोकी पाँवकी खाक जवाहरका सुर्मा समझी जाती थी, उन्हीं बादशाहोंकी आँखोंमे सलाइयाँ फिरती देखी गईं।

वर्त्तमान युगीन ग़ज़लगो शाइरोंमे यह भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है कि ग़ज़लमे भी सामयिक घटनाओं, लोकोपयोगी कार्यों और अन्य आवश्यक विषयोंका समावेश किया जाय, ताकि गज़ल अधिक-से-अधिक उपयोगी और समृद्धिशाली बन सके और वह मानसिक भूख मिटानेके अतिरिक्त भी हर तरहसे जीवनोपयोगी बने। इसतरहके हज़ार-हा शेर 'शेरो-सुखन'के चारो भागोंमे मिलेगे। विषयको स्पष्ट करनेके लिए चन्द शेर शीर्षकके साथ यहाँ दिये जा रहे है; ताकि उस तरहके अशआर पुस्तकमे सुगमतापूर्वक खोजे जा सके। साथ ही गज़लका शेर अपने अन्दर कितने भाव रखता है, यह भी दृष्टि प्राप्त हो सके।

नैतिक

असर लखनवी—ईमाँ ग़लत उसूल ग़लत, इद्दआ[1] ग़लत।
इन्सांकी दिल दही[2] अगर इन्सां न कर सके॥

वोह काम कर बुलन्द हो, जिससे मजाक़े-ज़ीस्त[3]।
दिन ज़िन्दगीके गिनते नहीं माहो-सालसे॥

क्या-क्या दुआएँ माँगते हैं सब मगर 'असर'।
अपनी यही दुआ है, कोई मुद्दआ[4] न हो॥

नज़्म तबातबाई— क़ाबूसे नफ़्से-बदको[5] निकलने कभी न दो।
फिर शेर है जो यह सगे-दीवाना[6] छुट गया॥

एहसान ले न हिम्मते-मर्दाना छोड़कर।
रस्ता भी चल तो सब्ज़-ए-बेगाना[7] छोड़कर॥

---

[1]दावा; [2]दिल रखना; [3]जीवनका लक्ष्य; [4]इच्छा; [5]बुरी आदतको; [6]पागल कुत्ता; [7]हरीभरी घासको।

आरज़ू लखनवी—

फैल गई बालोंमें सुफ़ेदी, चौंक ज़रा करवट तो बदल।
शामसे ग़ाफ़िल सोनेवाले! देख तो कितनी रात हुई॥

इज़्ज़त कुछ और शै है, नुमाइश कुछ और चीज़।
यूँ तो यहाँ ख़ुरोसके[1] सरपर भी ताज है॥

शबनमके[2] आँसुओंपर क्या हँस रहे हैं ग़ुंचे[3]।
उनसे तो कोई पूछे कबतक हँसा करेंगे?

मिले भी कुछ तो है बहतर तलबसे इस्तग़ना[4]।
बनो तो शाह बनो, 'आरज़ू' गदा[5] न बनो॥

हुस्ने-सीरतपर[6] नज़र कर, हुस्ने-सूरतको[7] न देख।
आदमी है नामका गर ख़ू[8] नहीं इन्सानकी॥

ग़ुबार उठता है यह कहता हुआ गोरे-ग़रीबाँसे[9]।
"जहाँमें एक दिन सबका यही अंजाम होना है॥"

ग़म दिया है कि मसर्रत दी है, सबमें इक तरहकी लज़्ज़त दी है।
हँस न इतना कि ख़ुशी ग़म हो जाये, शै हरइक हस्ब ज़रूरत दी है॥

शाद अज़ीमाबादी—

गुलोंने ख़ारोंके छेड़नेपर सिवा ख़ामोशीके दम न मारा।
शरीफ़ उलझें अगर किसीसे तो फिर शराफ़त कहाँ रहेगी॥

हवाये-बहर[10] बिगाड़े हज़ार फूलोंको।
न हो वोह रंग शराफ़तकी कुछ तो बू होगी॥

---

[1]मुर्ग़ेके; [2]ओसके; [3]कलियाँ; [4]सन्तोष; [5]भिक्षुक; [6]सुन्दर स्वभाव-पर; [7]सुन्दर मुखको; [8]स्वभाव; [9]क़ब्रिस्तानसे; [10]दुनियाकी हवा।

किसीके हम न काम आये, न कोई अपने काम आया।
तआज्जुब है कि तो भी ज़ुमर-ए-इन्साँमें[1] नाम आया॥

बशरके दिलमें न पड़ता जो आरज़ूका दाग़।
ख़ुदा गवाह कि अनमोल यह नगीं होता॥

भलाई इसलिए चाही कि हों भले मशहूर।
ग़रज़ कि अपने ही मतलबके आश्ना थे हम॥

गुलोंपर क्या है, काँटों तकका मैं दिलसे दुआ गो हूँ।
ख़ुदा बन्दा! न टूटे दिल किसी दुश्मन-से-दुश्मनका॥

यह दुनिया है ऐ 'शाद'! नाहक़ न उलझो।
हर इक कुछ तो अपनी-सी आख़िर कहेगा॥

मुर्दोंकी क़नाअतोंपै[2] है रश्क़[3]।
पहने रहे इक कफ़न हमेशा॥

अनवर साबरी—अम्ने-आलम[4] तो मुश्किल नहीं है।
आदमी, आदमी हो तो जाये॥

अब्र अहसनी— ग़मो-दर्दपै बढ़के क़ब्ज़ा जमाले।
कि इसपर नहीं मुनइमोंका[5] इजारा[6]॥

अगर अब भी ज़िल्लतमें गुज़रे तो क़िस्मत।
ख़ुदी भी हमारी ख़ुदा भी हमारा॥

अशअ़र मलीहाबादी— चमनमें बहे लाख शबनमके[7] आँसू।
कली सीखती ही रही मुसकराना॥

---

[1]मनुष्योंकी श्रेणीमें; [2]सन्तोषपर; [3]ईर्ष्या; [4]विश्वशान्ति; [5]धनिकोंका; [6]दावा; [7]ओसके।

असद भोपाली—'असद' चलो कि बदल दें हयातकी[1] तक़दीर।
हमारे साथ ज़मानेका फ़ैसला होगा॥

ख़लिश दर्दी— खेलते हैं जो मज़लूमोंकी[2] जानोंसे।
हैवान अच्छे हैं ऐसे इन्सानोंसे॥

दर्द सईदी टोंकी—अभी आदमी-आदमीका है दुश्मन।
अभी ख़ुदको समझा नहीं आदमीने॥

जहाँ सैकड़ों बुतकदे[3] ढा दिये हैं।
ख़ुदा भी तराशे है कुछ बन्दगीने॥

आनन्दनारायण मुल्ला—

ख़ूने-जिगरके क़तरे, और अश्क बनके टपकें?
किस कामके लिए थे, किस काम आ रहे हैं?

ख़ुदापर व्यंग्य

नक़्श सहराई— सफ़ीनेका[4] नहीं, मुझको यह ग़म है।
जो शह दे[5] नाख़ुदाको,[6] वोह ख़ुदा क्या॥

यगाना चंगेज़ी—आई को टाल दे जभी जानें।
वम-ब-ख़ुद हैं तो फिर ख़ुदा क्या है॥

बिस्मिल सईदी—

इलाही दुनियामें और कुछ दिन अभी क़यामत न आने पाये।
तेरे बनाये हुए बशरको[7] अभी मैं इन्साँ बना रहा हूँ॥

---

[1]ज़िन्दगीकी; [2]सताये हुओंकी; [3]मन्दिर; [4]नावका; [5]संकेत, इशारा; [6]मल्लाहको; [7]आदमीको।

उपासनाएँ

बिस्मिल सईदी—

नहीं अपने किसी मक़सदसे[1] ख़ाली कोई भी सज्दा[2]।
ख़ुदाके नामसे करता है इन्साँ बन्दगी अपनी॥

आरज़ू लखनवी—ज़ाते ख़ुदामें यूँ हो महव।
नामे-ख़ुदाको भूल जा॥

यगाना चंगेज़ी—बन्दे न होंगे जितने ख़ुदा हैं ख़ुदाईमें।
किस-किस ख़ुदाके सामने सज्दा करे कोई॥

धन-कुबेरोंसे

मुख़्तार अदीबी—

तुम्हें मुबारक हो क़सरो-ईवाँ,[3] यह ऐशो-मस्तीके साज़ो-सामाँ।
हैं झोपड़ोंसे मुझे मुहब्बत, मैं ग़मके मारोंका साथ दूँगा॥

साक़िब लखनवी—

मकाँ मुनअ़मका[4] सोनेसे, यह ख़ूने-दिलसे बनता है।
ख़सो-ख़ाशाकका[5] घर भी बड़ी मुश्किलसे बनता है॥

आरज़ू लखनवी—

मुझे रहनेको वोह मिला है घर कि जो आफ़तोंकी है रहगुज़र[6]।
तुम्हें ख़ाकसारोंकी[7] क्या ख़बर, कभी नीचे उतरे हो बामसे[8]?

---

[1]मतलबसे; [2]नमाज-उपासना; [3]महल; [4]धनिकका महल; [5]घास-फूँसका; [6]मार्ग; [7]दीन-दुखियोंकी; [8]कमरेसे।

निर्धनता

रियाज़ ख़ैराबादी—मुफ़लिसोंकी ज़िन्दगीका ज़िक्र क्या ?
मुफ़लिसीकी मौत भी अच्छी नहीं ॥

यगाना चंगेज़ी— ख़्वाह पियाला हो, या निवाला हो।
बन पड़े तो झपट ले, भीक न माँग ॥

पराई आग

वत्तात्रिय कैफ़ी—ग़म रहा उनका जो दोज़ख़में पड़े जलते हैं।
मेरे ख़ुश होनेका जन्नतमें भी सामाँ न हुआ ॥

रियाज़ ख़ैराबादी—मेरे सिवा नज़र आये न कोई दोज़ख़में।
किसीका जुर्म हो, मालिक मुझे सज़ा देना ॥

मनुष्यकी मजबूरियाँ

राज यज़दानी—अजब करम है, कि बे-अख़्तियारियाँ देकर।
अता किया है दो आलमपें अख़्तियार मुझे ॥

शेरी भोपाली—न जीनेपर ही क़ाबू है, न मरनेका ही इमकाँ है।
हक़ीक़तमें इन्हीं मजबूरियोंका नाम इन्साँ है ॥

अपनी भाषा

यगाना—
समझमें कुछ नहीं आता,
पढ़े जाऊँ तो क्या हासिल ?
नमाज़ोंका है कुछ मतलब तो
परदेशी ज़बाँ क्यों हो ?

ये नसीहतकार

अयूब—जो हुस्नो-इश्क़की रूदादसे[1] है बेगाने[2]।
वोह क्या समझके चले आये मुझको समझाने॥

नागरिकता

तसव्वुर किरतपुरी—

कुछ मेरे बाद और भी आयेंगे क़ाफ़िले[3]।
काँटे यह रास्तेसे हटा लूँ तो चैन लूँ॥

साम्यवाद

आनन्दनारायण मुल्ला—

महर[4] वोह है ख़ाकके ज़र्रे जो करदे ज़रनिगार[5]।
ऊँची-ऊँची चोटियोंपर, नूर[6] बरसानेसे क्या॥

न जाने कितनी शमएँ गुल हुईं, कितने बुझे तारे।
तब इक ख़ुरशीद[7] इतराता हुआ बाला-ए-बाम[8] आया॥

भक्त-वत्सलता

असर— उसकी रहमतको[9] नाज़[10] हो जिसपर।
तुझसे ऐसी 'असर' ख़ता न हुई॥

आरज़ू— करमपै[11] तेरे नज़र की तो ढैगया सब ग़रूर।
बढ़ा था नाज़ कि हदका गुनहगार हूँ मैं॥

---

[1]कहानीसे; [2]अनभिज्ञ; [3]यात्रीदल; [4]सूर्य्य; [5]प्रकाशमान; [6]प्रकाश; [7]सूर्य; [8]कमरेके ऊपर; [9]दयालुताको; [10]अभिमान; [11]कृपापर।

मज़हबसे बेज़ारी

यगाना— दुनियाके साथ दीनकी बेगार अलअमाँ।
इन्सान आदमी न हुआ, जानवर हुआ॥

बस एक नुक़्त-ए-फ़र्ज़ीका नाम है काबा।
किसीको मरकज़े-तहक़ीक़का पता न चला॥

मज़हबसे दग़ा न कर, दग़ासे बाज़ आ।
किस कामका हज ! मकरो-रियासे बाज़ आ॥
ईमान तो कहता है कि इन्साँ बन जा।
बन्देकी मददको आ, ख़ुदासे बाज़ आ॥

फ़िरक़ा-परस्ती

यगाना— पढ़के दो कलमे अगर कोई मुसलमाँ हो जाय।
फिर तो हैवान भी दो रोज़में इन्साँ हो जाय॥

सब तेरे सिवा काफ़िर, आख़िर इसका मतलब क्या ?
सिर फिरा दे इन्साँका ऐसा ख़ब्ते-मज़हब क्या ?

महराबोंमें सज्दा वाजिब, हुस्नके आगे सज्दा हराम।
ऐसे गुनहगारोंपै ख़ुदाकी मार नहीं तो कुछ भी नहीं॥

आनन्दनारायण मुल्ला—

मैं फ़क़त इन्सान हूँ, हिन्दू-मुसलमाँ कुछ नहीं।
मेरे दिलके दर्दमें तफ़रीके-ईमाँ कुछ नहीं॥

असर लखनवी—मसजिदेबाज़से इक रिन्द यह कहते उट्ठा—
"काफ़िर अच्छे हैं दिलाज़ार मुसलमानोंसे"॥

निशात सईदी—है दिल वबाये फ़िरक़ा परस्तीका है शिकार।
इन्सानियतकी मौत नुमायाँ अभीसे है॥

सर्व-धर्म-समभाव

अज़ीज़ लखनवी—

मंज़रे-जज़्बात[1] है, ख़िलवत सरा-ए-दैर[2] भी।
काबेवालो फ़र्ज़ है तुमपर वहाँकी सैर भी॥

यगाना— खड़े हैं दुराहेपै दैरो-हरमके[3]।
तेरी जुस्तजूमें सफ़र करनेवाले॥

अज़ीज़ लखनवी—

जहनमें आया न फ़र्क़े-इम्तयाज़ी[4] आजतक।
मुद्दतों देखा है हमने काबा-ओ-दैर भी॥

अहिंसा

आनन्दनारायण मुल्ला—

तशद्दुदको[5] तशद्दुदसे दबालें यह तो मुमकिन है।
मगर शोलेको[6] शोलेसे बुझाया जा नहीं सकता॥

दिखा सकेगी न हरगिज़ जहाँको अम्नकी[7] राह।
सितमगरीकी वोह मशअ़ल[8] जो दूदसे[9] हो सियाह॥

इन्साँकी जहालतका अभी है वही मेयार[10]।
है सबसे सिवा पुख़्ता दलील आज भी तलवार॥

[1,2]मन्दिरकी एकान्त शान्ति देखने योग्य है; [3]मन्दिर-मस्जिदके; [4]भेद, अन्तर; [5]हिंसाको; [6]आगको; [7]शान्तिकी; [8]मशाल; [9]धुएँसे; [10]आदर्श, रिवाज।

प्रसंगके अनुसार जो अशआ़र ज़हनमें आये, वे इस परिच्छेदमें दिये गये हैं। ऐसे हज़ारों शेर शेरो-सुख़नके समस्त भागोंमें यत्र-तत्र मिलेंगे। यह तो एक झलक मात्र है। बक़ौल दिल शाहजहाँपुरी—

मेरा हाल था जहाँतक, वोह अदा हुआ ज़बाँसे।
जो कहेंगे अश्के-रंगी, वोह अलग है दास्ताँसे॥

१६ अप्रैल १९५४ ई०]
[संशोधित संस्करण सितम्बर १९५७ ई०]



मुशाअ़रा



महफ़िल-मुशाअ़रा

१. मुशाअ़रोंका प्रारम्भिक रूप
२. मुशाअ़रोंका विकसित रूप
३. मुराख़्ते
४. मुनाज़मे
५. तहरीरी मुशाअ़रे
६. मौजूदा मुशाअ़रे

मुशाअ़रोंका प्रचलन कब और कैसे हुआ और इनकी दाग़बेल डालने-वाला कौन था, यह बता सकनेमें इतिहासके पृष्ठ असमर्थ हैं, किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सुख़नगोईका रिवाज अरबमें इस्लाम धर्मके पूर्व भी था। मुशाअ़रोंका विकसित, व्यवस्थित और निखरा हुआ रूप जो आज है, भले ही वह तब न हो, परन्तु एक अस्पष्ट-सा मानचित्र अवश्य था, जिसपर वर्त्तमान मुशाअ़रोंका निर्माण हो सका।

मुशाअ़रोंका प्रारम्भिक रूप

इस्लामधर्मके पूर्व अरबके क़बाइली, अशिक्षित, एवं जनसाधारण, हाटों, मेलों, त्योहारों, उत्सवों आदिपर जब एकत्र होते तो उनमें शाइरीका शौक़ रखनेवाले परस्पर शेर कहते-सुनते थे। कभी यह शेरगोई सीमित व्यक्तियोंमें होती थी, कभी जनसमूहमें होती थी। परस्पर प्रतिद्वन्द्विता चलती थी। एक-दूसरेपर शाइरीमें चोट करते थे। एक प्रकारसे यह ग्रामीण तुकबन्दी वाद-विवादका रूप ले लेती थी।

बहुत दिन नहीं गुज़रे इसीतरहकी अखाड़े बाज़ी हिन्दी-कविताकी मैंने अपने बचपनमें (१९१०-१९२०) में मथुरा ज़िलेके क़सबों-गाँवोंमें देखी है। वहाँ झूलना, लावनी, सवैया, आदि कहनेवालोंके बाक़ायदे दल होते थे, जो कि उस दलके उस्तादोंके नामपर अखाड़े कहलाते थे। बा-क़ायदा उस्तादी-शागिर्दी चलती थी। यह अखाड़ेबाज़ी कोई आजी-विकाका साधन नहीं थी, अपितु शौक़िया थी। क़सबेमें बारात आई नहीं कि छेड़-छाड़ करनेको बड़े-बूढ़े, युवा-बालक, सभीके जी मचलने लगे। उन दिनों मज़ाक़ करनेका एक आम रिवाज था। बड़े-से-बड़े बारातीको अदना-से-अदना व्यक्ति छेड़ सकता था, परन्तु क्या मजाल कि कोई बुरा मान जाय। यही छेड़-छाड़ कभी-कभी कवित्तगोईका रूप ले लेती थी।

जहाँ किसी एकने परिहासमें कवित्त कह दिया कि सामनेके पक्षको उसका जवाब कवित्तमें देना लाज़िमी हो जाता था, और कवित्तमें एक-दूसरेपर फ़ब्तियाँ कसता था। एक-दूसरेकी बोलती बन्द करनेके लिए कवित्तमें अटपटे, पेचीदा प्रश्नोत्तरोंकी झड़ी लगा देते थे। गरज हर गिरोह नहले-पर दहला मारनेकी ताकमें रहता था, और इस तरहकी मुकाबिलेबाज़ी करनेके लिए अवकाशके समय ख़ूब अभ्यास किया जाता था।

लावनी कहनेवालोंके उत्तर प्रदेश तथा देहलीकी तरफ़ कलगीवाले और तुर्रेवाले दो दल बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें परस्पर ख़ूब प्रतिद्वंद्विता चलती है। कभी-कभी बड़े मार्केके मोर्चे जमते हैं। इनमें बहुत-से पेशे-वर भी होते हैं। जो बाजारों, मेलों, तमाशोंमें चंगपर गाते हुए फिरते हैं और सुननेवालोंसे पैसा एकत्र करते हैं।

अरब या भारतके इन मजमोंको मुशाअ़रा या कवि-सम्मेलन भले ही न कहा जाय, परन्तु नीवकी ईंट तो कहना ही पड़ेगा, क्योंकि इन्हींपर इनका निर्माण हुआ है। जब लिखने-पढ़नेके साधन नहीं थे, तब यही मजमे साहित्यिक अभिरुचिको तृप्त करते थे।

तरही मुशाअ़रोंका प्रचलन सम्भवतः सबसे पहिले ईरानमें ईसाकी दसवीं शताब्दीमें हुआ।

अरबके उन मजमोंमें देहाती जीवनकी झलक होती थी, जन-साधारणके मनोभावोंका प्रतिबिम्ब होता था, और ईरानके इन मुशाअ़रोंमें दरबारी शानो-शौकत होती थी। दरबारसे सम्बन्धित शाइर बादशाहोंके कृपा-पात्र बननेके लिए और अधिक-से-अधिक अर्थ झटकनेके लिए बादशाहोंकी खुशामदमें प्रशसात्मक अतिशयोक्तियोंसे भरे क़सीदे कहते थे। अपने-अपने कसीदे कहकर ही सन्तोष नहीं करते थे, अपितु एक-दूसरेके क़सीदेको निम्नस्तरका साबित करनेकी धुनमें उन क़सीदोंपर फ़िलबदी क़सीदे भी कहते थे। इसीतरह ग़ज़लोंपर ग़ज़लें कहते थे। इसतरहके मुशाअ़रे दरबारोंतक ही सीमित थे। जन-साधारणका इनसे कोई सरोकार नहीं था।

भारतमे फारसी मुशाअ़रोंका प्रचलन सोलहवी शताब्दीमे हुआ। मुग़लिया सल्तनतके पाँव जमनेपर यहाँ ईरानी शाइर बहुत बड़ी सख्यामे आने लगे, और उन्हें दिल्ली, बीजापुर, गोलकुण्डा आदि सल्तनतोमे सम्मानपूर्वक आश्रय मिलने लगा। तत्कालीन शासकोंका आतिथ्य-सत्कार, उदारता, दानशीलता और साहित्यिक अभिरुचि ही उनके यहाँ आते रहनेके मुख्य आकर्षण थे। ईरानी शाइरोके आनेपर यहाँ भी फ़ारसीके दरबारी मुशाअ़रे होने लगे।

मुशाअ़रोंका विकसित रूप

मुहम्मद शाही दौर (१८वी शताब्दी) मे जब कि मुगलिया सल्तनत पतनोन्मुखी थी, मुशाअ़रे अपने चरम विकासपर थे। इस युगमे रेख़्ता (उर्दूका पूर्व नाम) काफी उन्नति कर चुकी थी, और मीर, दर्द, सौदा, सोज---जैसे उच्चकोटिके शाइर आस्माने-शाइरीपर चमक रहे थे। फारसी अब केवल रस्मी रह गई थी। जन-साधारणकी भाषा रेख़्ता हो गई थी। अतः फ़ारसी मुशाअ़रोंके अलावा अब रेख़्तेके मुशाअ़रे भी होने लगे, जो कि फ़ारसी मुशाअ़रोंसे पृथकता एव भिन्नता दिखानेकी ग़रजसे मुराख़्ते कहलाते थे। इन मुराख़्तोंकी शानो-शौकत और सजावटका क्या कहना? महीनों पहलेसे तैयारियाँ होती थी। ऐसे ही एक मुराख़्तेकी कलमी तसवीर मिर्जा फ़रहत उल्लाबेगने इस प्रकार खीची है—

मुराख़्ते

"चूनेमे अबरक मिलाकर मकानमे क़लई की गई थी। जिसकी वजहसे दरो-दीवार बडे जगमग-जगमग कर रहे थे। तख्तोंपर चाँदनीका फ़र्श, उसपर क़ालीनोंका हाशिया, पीछे गावतकियोंकी कतार, झाड़ों, फानूसों, हाँड़ियों, दीवालगीरियों, क़ुमकुमों, चीनी-कन्दीलों और गिलासोंकी वोह बहुतायत थी कि तमाम मकान बकिया नूर बन गया था। जो चीज़ थी खूबसूरत और जो शै थी क़रीनेसे। सामनेकी सफ़के बीचों-बीच छोटा-सा

सब्ज मख़मलका कारचोबी शामियाना, गगा-जमुनी चोबोंपर सब्ज़ई रेशमी तनावोंसे अस्ताहद[1] था। उसके नीचे सब्ज़ मख़मलकी कारचौबी मसनद, पीछे सब्ज कारचौबी गावतकिया, चारों चोबोंपर छोटे-छोटे आठ चान्दीके फ़ानूस कसे हुए, फ़ानूसोंके कँवल भी सब्ज[2]। चोबोंके सुनेहरी कलसोसे लगाकर नीचेतक मोटे-मोटे मोतियाके गजरे सेहरेकी तरह लटके हुए, बीचकी लड़ियोंको समेटकर कलाबत्तूनी डोरियोंसे (जिनके सिरोंपर मुक़्क़ैशके[3] गुच्छे थे) इस तरह चोबोंपर कस दिया गया था कि शामियानेके चारों तरफ फूलोके दरवाजे बन गये थे। दीवारोंपर जहाँ खूँटियाँ थी, वहाँ खूँटियोंपर और जहाँ खूँटियाँ नही थी, वहाँ कीले गाड़कर फूलोंके हार लटकाये थे। इस सिरेसे उस सिरेतक सफ़ेद छतगिरी, जिसके हाशिये सब्ज़ थे, खीची हुई थीं। छतगीरीके बीचोबीचमे मोतियोंके हार लटकाकर लड़ियोंको चारों तरफ़ इस तरह खीच दिया था कि फूलोंकी छतरी बन गई थी। एक सहनचीमे पानीका इन्तज़ाम था। कोरे-कोरे घड़े रखे थे और शोरेमे जस्तकी सुराहियाँ लगी हुई थी। दूसरी सहनचीमें पान बन रहे थे। बावर्चीखानेमें[4] हुक़्क़ोंका तमाम सामान सलीक़ेसे जमा हुआ था। जा-बजा नौकर साफ़ सुथरा लिबास पहिने दस्तबस्ता मुअदब[5] खड़े थे। तमाम मकान मुश्को-अम्बर[6] और अगरकी[7] खुशबूसे पड़ा महक रहा था। क़ालीनोंके सामने थोड़े-थोड़े फ़ासलेपर हुक़्क़ोंकी क़तार थी। हुक़्क़े ऐसे साफ़ सुथरे थे कि मालूम होता था अभी दुकानपरसे उठ आये हैं। हुक़्कोंके बीचमे जो जगह छूट गई थी, वहाँ छोटी तिपाइयाँ रखकर उनपर खासदान[8] रख दिये थे। खासदानोंमें लालक़न्दकी[9] साफ़ियोंमें लिपटे हुए पान। गिलोरियोंको साफीमें इसतरह जमाया था कि बीचमें एक-एक तह फूलोंकी आ गई थी। खासदानोंके बराबर छोटी-छोटी

---

[1]सुसज्जित; [2]क्योकि शाही निशान सब्ज़ था; [3]चान्दी या सोनेके तारोंके; [4]रसोई घरमें; [5]नम्रता-पूर्वक; [6]कस्तूरी; [7]चन्दनकी बत्तीकी; [8]पानदान; [9]लाल कपड़ेकी।

किश्तियाँ, उनमे इलायचियाँ, चिकनी डलियाँ। मसनदके सामने चान्दीके दो शमादान, अन्दर काफूरी बत्तियाँ, ऊपर हलके सब्ज़रगके छोटे कँवल, शमादानके नीचे चान्दीके छोटे लगन (थाली), लगनोमे केवडा। गरज क्या कहूँ एक अजीब तमाशा था"।[1]

शुरू-शुरूमे यह मुशाअरे भी दरबारतक ही सीमित रहे; परन्तु शनैः शनैः सार्वजनिक रूप लेते गये। फ़ारसीके मुशाअरे माँद पडते गये और मुशाअरे अब मुशाअरे कहे जाने लगे।

दिल्ली उजड़नेके बाद वहाँके शाइर लखनऊ, रामपुर, हैदराबाद, अजीमाबाद (पटना), टॉडा, टोक आदि जिन रियासतोंमे पहुँचे, मुशाइरोंकी दागबेल डाल दी और इस तरह उर्दू-मुशाइरे सर्वत्र होने लगे।

यह मुशाअरे साहित्यिक जीवनका एक अग बन गये। इनको व्यवस्थिति और सुरुचिपूर्ण रूप देनेके लिए क़ायदे-कानून भी बनाये गये। उनका उल्लघन या पूर्णरूपेण पालन न करना असभ्यता एव बदतमीज़ी समझी जाती थी।

'मीर-मुशाअरे' का इन्तखाब (अध्यक्षका चुनाव), गजल कहनेका सलीका, दाद देनेका तरीक़ा, दाद मिलनेपर शाइरके आभार प्रदर्शित करनेका शऊर, श्रोता और शाइरोके बैठनेके स्थान, पहले और बादमे पढनेके नियम निश्चित किये गये।

दरबारी मुशाअरोमे मीर मुशाअरा स्वय शासक होता था। पहले वह स्वयं गज़ल पढ़ता था, बादमे अन्य शाइर। मीर मुशाअरेके सकेतपर चोबदार जिस शाइरके सामने शमअ रख देता था, वही शाइर गजल पढता था। जब मुशाअरे दरबारकी परिधिसे निकलकर आम हो गये, तब भी किसी शासकको ही मीर मुशाअरा बनानेका प्रयत्न किया जाता था। क्योंकि इससे ख्यातिप्राप्त शाइरों एव प्रतिष्ठित नागरिकोको सुगमता-

[1] आखिरी शमअ, पृ० ३१-३३।

पूर्वक मुशाअ़रेके लिए आकर्षित किया जा सकता था। जैसे कि वर्त्तमानमें प्रायः समारोहोंका अध्यक्ष एवं उद्घाटन-कर्त्ता किसी मिनिस्टरको ही बनाया जाता है, चाहे उसे उस समारोहके उद्देश्यसे दूरका भी वास्ता न हो, और सचमुच मिनिस्टरोंके कारण समारोह सफल भी होते हैं। इच्छित विद्वानों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों, अफ़सरोंका सहयोग तो मिलता ही है, अर्थ-संचय भी सुगमतासे हो जाता है। जब प्रजातन्त्रकालमें यह स्थिति है, तब वह तो सामन्ती युग था। प्रायः सभी अच्छे शाइर दरबारसे सम्बन्धित होते थे, प्रतिष्ठित नागरिकोंका भी कुछ-न-कुछ दरबारसे वास्ता होता था और स्वयं शासक शाइर, अथवा शाइर नवाज़ होते थे। अतः उनको मीर-मुशाअ़रा बनानेका प्रयत्न स्वाभाविक था। श्रोताओं और शाइरोंके यथा स्थान बैठ जानेके बाद मीर-मुशाअ़रा तशरीफ़ लाते थे। एक देहलवी मुशाअ़रेके मीर मुशाअ़रा मिर्जा फ़तहउलमुल्क़ उर्फ़ मिर्जा फखरू युवराज थे। उनकी तशरीफ़ आवरीका चित्र मिर्जा फ़रहत उल्लाबेगने इस प्रकार खीचा है--

"हवादारसे उनका नीचे क़दम रखना था कि सब सरोक़द खड़े हो गये। चार चोबदार सब्ज खिड़कीदार पगड़ियाँ बान्धे, नीची-नीची सब्ज़ बानातकी अचकने पहने, सुर्खशाली रूमाल कमरसे लपेटे, हाथोंमें गगा-जमुनी असा और मोरछल लिये हुए हवादारके पीछे थे। उधर मिर्ज़ा फ़खरूने फ़र्शपर क़दम रखा। उधर असावरदार तो उनके सामने आगये और मोरछलबरदार पीछे हो लिये। इस सिलसिलेमें यह जुलूस आहिस्ता-आहिस्ता शामियानेतक आया। मिर्जा फ़खरूने शामियानेके क़रीब खड़े होकर सबका सलाम लिया। फिर चारों तरफ नजर डालकर कहा "इजाज़त है।" सबने कहा--"बिस्मिल्लाह-बिस्मिल्लाह" इजाज़त पाकर यह शामियानेमें गये और सबको सलाम करके बैठ गये। दूसरे सब लोग बैठनेकी इजाज़तके इन्तज़ारमें खड़े थे। उन सबकी तरफ़ नज़र डालकर कहा--"तशरीफ़ रखिए, तशरीफ़ रखिए।" सब लोग सलाम करके

अपनी-अपनी जगह बैठ गये।.....मोरछलबरदार शामियानेके पीछे और असाबरदार सामनेकी सफकी पुश्तपर जा खड़े हुए।..... "मीर मुशाअरेका इशारा पाते ही दोनों चोबदारोंने बा-आवाज बुलन्द कहा—"हजरात मुशाअरा शुरू होता है।"[1]

मुशाअरेके अध्यक्ष यदि स्वयं बादशाह या नव्वाब होते तो पहले वह स्वय गजल पढ़ते फिर क्रमशः शाइर पढ़ते। यदि किसी सार्वजनिक मुशाअरेमें बादशाह शिरकत न फ़रमाते और प्रबन्धकोंके आग्रहपर ग़ज़ल भेजना मजूर कर लेते तो मुशाअरेके प्रारम्भमें किसी खुश गुलूसे बादशाहकी गजल पढ़वाई जाती, फिर मीर मुशाअरा अपनी ग़ज़ल पढ़ते, फिर बारी-बारीसे जिस शाइरके आगे शमअ रखी जाती, वह पढ़ता था। शाइरोंके पढनेका ढंग और अन्दाजे-बयान अपना-अपना होता था। मगर कुछ शाइर ऐसे भी होते थे, जो पढनेके साथ हाव-भाव भी व्यक्त करते थे। एक बानगी देखिए—

"शमअ सरक कर लाला बालमुकुन्द 'हुजूर' के सामने आई। यह जातके खत्री और ख्वाजा मीर 'दर्द' के शागिर्द हैं। कोई ७०-८० बरसका सिन है। सफ़ेद नूरानी चेहरा, उसपर सफ़ेद लिबास, बगलमें अँगोछा, कंधोंपर सफ़ेद काश्मीरी रूमाल। बस जी चाहता था कि उनको देखे ही जाइए। शमअ सामने आई तो उन्होंने उज्र किया कि—"मैं अब सुनानेके क़ाबिल नहीं रहा। सुननेके क़ाबिल रह गया हूँ।" जब सभोंने इसरार किया तो उन्होंने यह क़िता पढ़ा—

न पाँवोंमें जुम्बिश, न हाथोंमें ताक़त।
जो उठ खींचें दामन हम उस दिलरुबाका॥
सरे-राह बैठे हैं और यह सदा है।
कि अल्लाहवाली है बे दस्तो-पाका॥

---

[1] आखिरी शमअ, पृ० ४२-४३।

किता इस तरह पढ़ा कि खुद तसवीर हो गये। 'न पाँवोमे ताक़त' कहते हुए उठे, मगर पाँवने यारी न की, लड़खड़ाकर बैठ गये। 'न हाथोंमे ताकत' कहकर हाथ उठाये, मगर जोफ़से वह भी कुछ यूँ ही उठकर रह गये। दूसरा मिसरा जरा तेज पढ़ा। तीमरा मिसरा पढते वक्त इसतरह बैठ गये, जैसे कोई बे-दस्तो-पा सरे-राह बैठकर सदा लगाता है और एक दफ़ा ही दोनों आँखोंको आसमानकी तरफ उठाकर जो चौथा मिसरा पढा तो यह मालूम होता था, गोया सारी मजलिसपर जादू कर दिया। हरेकके मुँहसे तारीफ़के बजाय बे-साख्ता यही निकल गया कि "अल्लाह वाली है बे दस्तो-पाका।"[1]

अच्छा शेर पढ़े जानेपर आम तौरपर श्रोताओमे-से 'वाह-वा, सुब्हान अल्लाह, मरहबा' आदिका शोर बुलन्द होता ही था। मगर शाइर भी अपने ढंगसे दाद देते थे। इस तरहके दाद देनेके ढगकी एक खयाली तसवीर बाबा-ए-उर्दू अल्लामा प० दत्तात्रिय 'कैफी'ने यूँ खीची है—

"शमअ इन्शाके सामने रखी जाती है। इन्शा ग़ज़ल पढ़ते हैं—"

कमर बान्धे हुए चलनेको याँ सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं॥

सौदा—क्या मतला कहा है ?
मीर—लफ़्ज़ है कि तीरो-नश्तर।
दर्द—सैयद इन्शा ! इसकी दाद है छाती कूटना।
मुसहफ़ी—वाह क्या हमागीर तबीयत पाई है। क्या दर्दभरा मतला कहा है।
नसीम—बे पनाह मतला हुआ है।
नासिख—वल्लाह दिल भरा आता है।
ज़ौक़—दो मिसरे है कि दुधारा तेग़ा, दिलमे खुबा जाता है।
ग़ालिब—लुत्फ़ यह कि हुस्ने-अदा कितनी नुदरत लिये हुए है।

---

[1]आखिरी शमअ, पृ० ७१।

इन्शा— न छेड़ ऐ निकहते-बादे-बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं॥

मीर—"शेर है कि दुगाड़ा। अब ऐसा शेर और न पढ़ना, वरना एक-आध जनाजा आज मुशाअरेसे उठेगा।"[1]

इन मुशाअरोंका प्रारम्भ भी दरबारोंसे हुआ था। अतः इनमें भी वे सब दोष आगये जो फ़ारसी मुशाअरोंमें थे। प्रतिद्वद्वीको नीचा दिखाने-के लिए उस्ताद अपने शिष्योंके दलके साथ आते। ये शिष्य प्रतिद्वन्द्वीके पढनेपर फ़ब्तियाँ कसते, नुक्ताचीनी करते, व्याकरणकी भूल निकालते, शेरमें कहे हुए भावोंके लिए प्रमाण माँगते और अपने पक्षके शाइरके गज़ल पढनेपर खूब-खूब दाद देते। कौन कहाँ बैठे और कौन पहिले या बादमें पढे, इसपर भी ऐतराज उठते। परिणामस्वरूप यह मुशाअरे साहित्यिक गोष्ठी न रहकर पहलवानी अखाडे बन गये।

'सौदा' जिससे नाराज़ हो जाते, भरी महफ़िलमें उसकी हिजो कह डालते। 'आतिश'-ओ-'नासिख', 'मुसहफ़ी'-ओ-'इन्शा', 'जुरअत-ओ-'करेला' भाण्डके वाद-विवादोंने जो घिनावना रूप ले लिया था, उसीसे खीझकर 'मुसहफ़ी' ने तत्कालीन मुशाअरोंके बारेमें कहा था—

बज्मे-शुअरा है या यह मुर्ग़ियोंकी पाली है

इन झगड़ोंके कारण बहुत-से लोगोंकी तो मुशाअरे करानेकी हिम्मत ही न होती थी, और जो साहब अपने यहाँ नियमित[2] मुशाअरे कराते थे, उनमें-से भी अक्सर स्थगित करनेको बाध्य हो जाते थे। भले आदमी इन मुशाअरोंमें जानेसे घबराते थे। एक साहब हकीम 'मोमिन' को मुशाअरेका निमत्रण देने गये तो 'मोमिन' बोले—"बस साहब मुझे तो मुआफ़ ही कीजिए। अब देहलीके मुशाअरे शरीफ़ोंके जानेके काबिल नहीं रहे। एक साहब हैं,

---

[1]तमसीली मुशाअरा, पृ० ४६-४७।

[2]कोई साप्ताहिक, कोई मासिक, कोई छमाही मुशाअरे कराते थे।

वह अपनी उम्मत (अनुयायियो, शिष्यो) को लेकर चढ आते है। शेर समझनेकी तो किसीको तमीज नही, मुफ्तमे वाह, वाह, सुब्हान अल्लाहका गुल मचाकर तबीयतको मुन्नगिज (अप्रसन्न) कर देते है। दूसरे साहब है, वोह हुदहुद (शिष्यका उपनाम) को साथ लिये फिरते है, और ख्वाम-ख्वाह उस्तादोंपर हमले कराते है। खुद तो मैदानमे आते नही और अपने ना अहल (मूर्ख) पट्ठोंको मुकाबिलेमे लाते है।.....भई मैने तो इसी वजहसे मुशाअरोमे जाना ही तर्क कर दिया है।"[1] बाज-बाज शाइर तो अपने साथ बटेरे भी लाते थे। मिर्जा फ़रहतउल्लाबेग एक मुशाअरेके बारेमे लिखते हुए फर्माते है—

"एक चीज जो मुझे अजीब मालूम हुई, वोह यह थी कि क़िलेवाले (शाहजादे वगैरह) जितने आये थे, सबके हाथोमे बटेरे दबी हुई थी। यह बटेरबाजी और मुर्गबाजीका मर्ज किलेमे बहुत है। रोजाना तीतरो, बटेरो और मुर्गोकी पालियाँ होती है। एक शाहज़ादे साहबने तो कमाल किया है। एक बड़े छकडेपर ठाठर लगाकर छोटा-सा घर बना लिया है और ऊपर छतपर मिट्टी डालकर कँगनी बो दी है। ठाठरमे खुदा झूठ न बुलाये तो लाखों ही पिदडियाँ है। जहाँ चाहा छकडा ले गये और पिद-डियाँ उडा दी। ऐसी सधी हुई है कि झल्लटमे एक भी फटकर नही जाती। उन्होंने झण्डो हिलाई और वोह उड़ी, उन्होंने आवाज दी और वह छतपर आकर बैठ गई।"[2]

मुशाअरा प्रारम्भ होनेपर यह बटेरे थैलियोंमे बन्द कर दी जाती थी।

कुछ मुशाअरे बहुत व्यवस्थित और अनुशासनपूर्ण होते थे। बड़े-से-बडा आदमी नियम भग करनेका साहस नही कर सकता था। देहलीके प्रसिद्ध सूफी शाइर ख्वाजा 'दर्द' के यहाँ पाक्षिक मुशाअरे हुआ करते थे।

---

[1] आखिरी शमअ, पृ० २६।

[2] आखिरी शमअ, पृ० ४२।

शाहआलम भी उसमें शरीक होनेकी अभिलाषा रखते थे। मगर आप टालते ही रहे। बड़े आदमियोंके स्वागत-सत्कारमें जो कष्ट और जिल्लतें उठानी पड़ती हैं, शायद इसीका ख़्याल करके ख़्वाजा दर्दने अपनी आध्यात्मिक शान्तिमें विघ्न न डालनेकी गरजसे उन्हें न बुलाना चाहा होगा। फिर भी एक रोज सूचित किये बिना ही बादशाह मुशाअरेमें तशरीफ़ ले आये। तशरीफ़ जब ले ही आये तो जहाँ उचित स्थान मिला, बैठ गये। सयोगकी बात पाँवमें दर्द होनेके कारण बादशाहने पाँव फैला दिये। ख़्वाजा साहबको यह अच्छा न लगा। बोले—"महफ़िलमें पाँव पसारकर बैठना तहज़ीबके ख़िलाफ़ है।" बादशाहने अपने दर्दकी कैफियत बताकर मआज़रत चाही तो ख़्वाजा साहबने ज़वाब दिया कि अगर पाँवमें दर्द था तो यहाँ आनेकी आपने तकलीफ ही क्यों की।"[1]

इन मुशाअरोंसे उर्दूका खूब प्रसार हुआ। वह कोने-कोनेमें पहुँच गई। जबान निखरती गई, मुहावरे खराद्पर चढ़कर चमकते गये। भावों और उदाहरणोंसे उर्दूका कोश भरता गया।

लाभके साथ हानि भी हुई। उस हानिके निम्न कारण थे—

१—कोई भी शाइर उर्दूका पूर्णरूपेण ज्ञान प्राप्त किये बगैर और उस्तादको दिखाये बगैर मुशाअरेमें गजल नही पढ सकता था। इससे उर्दूका क्षेत्र सीमित होने लगा।

२—विरोधियोंकी कटु आलोचनाओंके भयसे अक्सर शाइर नवीन भावों-उदाहरणोको शेरमें समोते हुए झिझकते थे और वही पुराने सुने-सुनाये विचारोंकी पुनरावृत्ति करते रहते थे।

३—शब्दोंके बाह्य सौन्दर्य और उसके जाहिरा रख-रखावपर दाद अधिक मिलती थी।

४—शाइराना करतब दिखानेके लिए बड़े ऊट-पटाँग, अजीबो-

---

[1] आबे-हयातके लतीफ़े, पृ० २२।

ग़रीब बेमायने मिसरे-तरह दिये जाते थे। जिनपर कई-कई गज़ले लिखी जाती थी। भला बताइए इस तरहकी मश्क़े-सुख़नसे उर्दू-शाइरीका क्या महत्त्व बढ सकता था—

बुलबुल चमनसे रूठके बैठी है ठुंठ पर

न उड़ा सकता है मुंहकी न बग़लकी मक्खी

अयाँ हो नैरंगिये-दिगरसे फ़लकपै बिजली, जमीपै बारां

हुआ रंगी चमन सारा अहा-हा-हा, अहा, हा-हा

जमी ठंडी, हवा ठंडी, मकाँ ठंडा, चमन ठंडा

१८५७ ई० के विप्लवके बाद गजलके साथ-साथ मुशाअरोंकी भी मुखालफत प्रारम्भ हुई। एक ही मिसरे तरहपर सैकडों शाइरोंकी प्रायः एक-से भावों-विचारोंकी गज़ले सुनते-सुनते लोग ऊब-से गये थे। अतः लाहौरमे १५ अगस्त १८६७ ई० को 'अंजुमने-उर्दू'की स्थापना की गई। जिसमे नज्मो, भाषणों, और निबधोके पढ़नेका रिवाज डाला गया। नज्मोकी महफ़िलोंको मुनाज़मा कहा जाता था। इन मुनाजमोंके लिए पहिले-से शीर्षक निश्चित कर दिये जाते थे, जिनपर शाइर नज्म लिखकर लाते और मुनाजमोंमे पढ़ते थे। इसप्रकार शाइरीको जीवनके समीप-से-समीप लानेका प्रयत्न किया जाता था। लेकिन यह क्रम अधिक दिन नही चल सका और यहाँ भी नज्म शीर्षकके साथ गजलोंके लिए मिसरा तरह दिया जाने लगा और यह भी आम मुशाअरे-जैसी चीज बनकर रह गई।

मुनाज़मे

मुद्रणका प्रसार होनेपर मुशाअ़रे तहरीरी भी होने लगे। पत्र-सम्पादक कोई मिसरा तरह देकर उसपर गजल भेजनेको अच्छे-अच्छे शाइरोंको आमत्रण करता था और गजले आनेपर पत्रमे प्रकाशित करता था। इन लिखित मुशाअ़रोंसे उर्दूको बहुत लाभ पहुँच।। न तो इन लिखित मुशाअ़रोंमे महफिली मुशाअ़रोंकी व्यवस्थाकी परेशानी रही और न पारस्परिक कलहका भय। एक ही जगह भिन्न-भिन्न शाइरोंका कलाम सुलभ होनेसे जनताकी रुचि परिष्कृत हुई। अच्छे-बुरे समझनेका शऊर आया। जो अच्छे शाइर अच्छा न पढ सकनेके कारण बाज घटिया शाइरोंके आगे उनकी गलेबाज़ीकी वजहसे माँद पड जाते थे, अब पूरे आवो-ताबके साथ चमके। जनतामे शाइरीकी तरफ सही, वास्तविक रुचि उत्पन्न हुई। इस प्रकारके मुशाअ़रे बाज उर्दू-पत्र अब भी कराते रहते है। 'शाइर'का १९५०का मुशाअ़रा नम्बर हमारे सामने है।

तहरीरी मुशाअ़रे

इन्हीं अँधेरोंसे बज्मे-गेतीको एक दिन रोशनी मिलेगी

मिसरा तरहपर ४ शाइरोंकी नज्मे और १०६ शाइरोकी गजले १५२ पृष्ठोंमें मुद्रित हैं। यहाँ हम बतौर नमूना कुछ ख्यातिप्राप्त शाइरोंकी नज्मे और ग़जलोके अपनी पसन्दके चन्द अशआ़र हर रगके बहुत-बहुत शुक्रियेके साथ 'शाइर' से उद्धृत कर रहे है।[1]

मुशाअ़रोके इन चुने हुए अशआ़रसे पाठकोंको विदित हो सकेगा कि एक ही मिसरा तरहपर शाइर अपने भाव किस तरह व्यक्त करते हैं। साथ ही पुरानी शाइरी और आजकी शाइरीमे कितना महान् अन्तर आ गया है, यह भी जान सकेंगे। पुरानी और नई शाइरीपर तुलनात्मक अध्ययन हम विस्तारसे सिंहावलोकनमे दे रहे है।

---

[1]अल्लामा सीमाब अकबराबादी-द्वारा स्थापित और हजरत एजाज सद्दीक़ी-द्वारा सम्पादित। पहले आगरेसे प्रकाशित होता था, अब बम्बईसे प्रकाशित होता है।

नज़्मोंके चन्द अशआर

ऐ असरे-नौके शाइर !
ख़बर भी है असरे-नौके शाइर[1] कि जीस्त[2] है एक जुर्मे-संगी[3]।
यह जुर्मकी शमअ[4] जब बुझेगी तो दौलते-रोशनी[5] मिलेगी॥
रुबाब[6] जब बे-सदा[7] बनेगा तो राग गूँजेगे ज़ेरे-गरदूँ[8]।
कलीम[9] जब ज़ेरे-ख़ाक होगा, कलामको बरतरी[10] मिलेगी॥
किसीको इसमें नहीं है घाटा, अदबका[11] है 'जोश' नक़्द सौदा।
गड़ा तो पैग़म्बरी मिलेगी, सड़ा तो फिर दावरी[12] मिलेगी॥

—जोश मलीहाबादी

एक महाजरीन[13] दोस्तसे

तेरी गरीबीका क्या मदावा[14] कि तू है अहसासका[15] सताया।
रहा अगर तेरा ज़हन[16] मुफ़लिस तो हर जगह मुफ़लिसी मिलेगी॥
ख़ला-ए-ज़हनीको[17] अपने पुर कर[18], नहीं तो जीना भी होगा दूभर।
यह ज़ेबे-फ़ितरत[19] रही जो ख़ाली तो सारी दुनिया तही[20] मिलेगी॥
वतनको तू छोड़ दे मगर, क्या, ग़मे-वतन तुझको छोड़ देगा?
वोह साज़की[21] हो, कि मतरुबाकी[22] हरइक सदा दुखभरी मिलेगी॥
वहाँ जो अहलेवतन मिलेगे तो वोह भी तसवीरे-ग़म मिलेंगे।
अदा-अदा ग़मज़दा मिलेगी, नज़र-नज़र शबनमी[23] मिलेगी॥

---

[1]नवयुगके कवि; [2]जिन्दगी; [3]महान् अपराध; [4]दीपक; [5]प्रकाश-धन; [6]सरोद; [7]बेआवाज; [8]आकाशके नीचे; [9]शाइर, लेखक; [10]श्रेष्ठता; [11]साहित्यका; [12]जन्नतकी न्यायाधीशी; [13]देश छोड़नेवाले (पुरुषार्थी); [14]उपाय इलाज; [15]घटिया मनोवृत्तिका; [16]मनोभाव; [17]मानसिक गड्ढेको; [18]भर; [19]मनकी जेब; [20]खाली; [21]वाद्यकी; [22]सगीतज्ञकी; [23]भीगी हुई।

यहाँका जब तजकरा छिड़ेगा, तो उन फ़िज़ाओंमें[1] दम घुटेगा।
बुझी-बुझी होगी शमअ दिलकी, धुआँ-धुआँ ज़िन्दगी मिलेगी॥
न कर मुझे मौतके हवाले, वतनसे ऐ दूर जानेवाले!
यहाँ तड़पती है आज लाशे, यहीं पै कल ज़िन्दगी मिलेगी॥
यह ज़र्द पत्ते सिमट-सिमटकर समेट ही लेंगे अपने बिस्तर।
चमन सलामत, बहार इक दिन तवाफ़[2] करती हुई मिलेगी॥
नया ज़माना, नया सबेरा, नई-नई रोशनी मिलेगी।
यह रात जब ले चुकेगी हिचकी हयात[3] इक दूसरी मिलेगी॥

—नज़ीर बनारसी

मंज़िलतक

अभी तो गेतीकी[4] ज़ुल्फे-पेचाँको और भी बरहमी[5] मिलेगी।
अभी तो इन्सानियतका हमदम! कुछ और शरमिन्दगी मिलेगी॥
अभी तो दामनपै आदमीयतके और धब्बे है पड़नेवाले।
अभी हयाते-बशरके[6] होंटोंको और भी तिशनगी[7] मिलेगी॥
ख़लूस[8] सोयेगा और कुछ दिन अभी तो मुँह ढाँपकर कफ़नसे।
अभी तो महरो-वफ़ाके[9] जज़्बेको[10] हर घड़ी मौत ही मिलेगी॥
अभी तो चेहरोंपै और उभरेगी ग़मकी पुरहौल झाइयाँ-सी।
अभी जबीनोंपै[11] अहले-गुलशनके और भी बेबसी मिलेगी॥
कुछ और ख़ूने-जिगरसे गुलकारियाँ-सी होंगी हर आस्तींपर।
अभी कुछ और आँख हर बशरकी इसी तरह शबनमी[12] मिलेगी॥

---

[1]वातावरणमे; [2]प्रदक्षिणा; [3]जिन्दगी; [4]संसाररूपी प्रेयसीकी; [5]परेशानी; [6]मनुष्यजीवनके; [7]पिपासा; [8]स्नेह, मित्रता; [9]नेकी-भलाईकी; [10]भावनाओंको; [11]मस्तकोंपै; [12]भीगी हुई।

इन्हीं मसाइबकी[1] गोदमें पल रही है 'नाज़िश' मसर्रतें[2] भी।
इसी जहन्नुमकदेसे[3] इक रोज राह फ़रदौसकी[4] मिलेगी॥

—नाज़िश परतापगढ़ी

ग़ज़लोंके चन्द अशआर

फ़सुर्दगीकी[5] तहोंमें बाक़ी हरारते-ज़िन्दगी मिलेगी।
निगाहने दूरतक कुरेदा तो आग दिलमे दबी मिलेगी॥
हयाते-ताजापै[6] मरनेवाले! हयाते-ताज़ा है मौत ही से।
यह ज़िन्दगी पहले ख़त्म करले, तो फिर नई ज़िन्दगी मिलेगी॥
न भूल ऐ तारके-मुहब्बत[7]! कि तर्के-उल्फ़त भी इक ख़लिश[8] है।
जो फाँस तूने निकाल दी है, वोह फाँस दिलमें लगी मिलेगी॥
ज़रा-सी ख़ातिर शिकस्तगीकी[9] नहीं है बरदाश्त आदमीको।
कलीको वक़्ते-शिकस्त देखो तो मुसकराती हुई मिलेगी॥

—सीमाब अकबराबादी

वोह आप आयेंगे वक़्ते-आख़िर इजाज़ते-दीद[10] भी मिलेगी।
किसे ख़बर थी कि मौत ही में हलावते-ज़िन्दगी[11] मिलेगी॥
तलाशकी हद तो ख़त्म कर दे, हुसूले-मक़सदकी फ़िक्र क्या है?
जहाँ क़दम लड़खड़ाये थककर वहीं यह दौलत पड़ी मिलेगी॥
कमरको कसले तो मुन्तज़िर बन,[12] कि जिसदम होगी तलब[13] अचानक।
न वक़्फ़ा[14] इक साँसका रहेगा, न फ़ुरसत इक बातकी मिलेगी॥

---

[1]मुसीबतोंकी; [2]खुशियाँ; [3]नरकमे; [4]स्वर्गमार्गकी; [5]मुर्झाहटकी; [6]नवजीवनपै; [7]प्रेम-त्यागी; [8]चुभन; [9]पराजयताकी; [10]दर्शनोंकी आज्ञा; [11]जीवन-मिठास; [12]प्रतीक्षा करनेवाला; [13]बुलाहट; [14]अन्तर।

सम्भलके रह, है जो रिन्दे-मशरब,[1] हवास खोये तो खो दिया सब।
न होगा लुत्फ़े-ख़ुदी[2] ही हासिल, न लज्जते-बेख़ुदी[3] मिलेगी॥
कठिन मुहब्बतकी मंजिलें हैं और आगे बढ़ना है बे सहारे।
जब 'आरज़ू' आप मिट चुकेंगे तो आरज़ू-ए-दिली[4] मिलेगी॥

—आरज़ू लखनवी

अजीज़[5] जब होगा बाग़बाँको चमनका हर गुल हर आशियाना।
उरूस[6] जैसे हो एक शबकी[7] बहार ऐसी सजी मिलेगी॥
ज़मीरे-शबसे[8] तुलूअ़[9] होगा इक आफ़ताबे-निज़ामे-ताज़ा[10]।
नई नवेली सहरकी[11] किरनोंसे खेलती ज़िन्दगी मिलेगी॥
बजाए हुब्बेवतन है बाहम चलन बग़ावत कि दुश्मनीका।
यही जो पायाने-हुर्रियत[12] है, तो ख़ाक आसूदगी[13] मिलेगी॥
बुने हैं नफ़रतने जाल क्या-क्या, फ़रेबो-मकरो-दग़ा-ओ-शरके।
यह जिनके गुन हैं, यह उनके दावे कि जल्द ही शान्ति मिलेगी॥
जो नेकियाँ हैं शिकस्तख़ुरदा[14] तो सरनगूं रास्तीका परचम[15]।
यही जो नक़्शा है, आदमीयत कफ़नमें लिपटी हुई मिलेगी॥
यही जो है दुन्द ख़्वाहिशोंका यही जो है गन्दगीकी पूजा।
मुहज्ज़ब[16] इन्साँकी वहशियोंसे कड़ी-कड़ीसे जुड़ी मिलेगी॥

—असर लखनवी

निशाने-सोज़े-दरूँ[17] हमारा, मिटा नहीं है न मिट सकेगा।
अगर्चे दिल जलके रह गया है, कुछ आग फिर भी दबी मिलेगी॥

—वहशत कलकतवी

---

[1]सच्चा मद्यप; [2]अहम-आनन्द; [3]आत्मलीनताका सुख; [4]हृदया-भिलाषा; [5]प्रिय; [6]दुल्हन; [7]रातकी; [8]अन्तःकरण रूपी रात्रिसे; [9]उदय; [10]नव-व्यवस्था-सूर्य; [11]प्रातःकालकी; [12]स्वतन्त्रताकी सीमा; [13]सुख-शान्ति; [14]पराजित; [15]भलाईकी ध्वजा झुकी हुई; [16]भद्र पुरुषोंकी; [17]अन्तरग आग।

नक़ाब रुख़से उठायेंगे वोह, ज़रूर महशरमें आयेंगे वोह।
मगर इसे पहले सोच लूँ मैं, इजाज़ते-दीद[1] भी मिलेगी॥

—नूह नारवी

अगर मैं नाकामे-दीद मर जाऊँ अपने कूचेमे ढूँढ़ लेना।
वहीं कहीं ख़ाको-ख़ूँमें ग़लताँ[2] मेरी तमन्ना पड़ी मिलेगी॥
ब-होश-ह-वास ऐ मुसाफ़िरे-राहे-ज़िन्दगी ! यह वोह रास्ता है।
जहाँ तुझे रहबरीकी[3] सूरतमें जा-बजा रहज़नी[4] मिलेगी॥

—मानी जायसी

ख़ुदाकी रहमतको पारसा अब, अज़ाबे-दोज़ख़ समझ रहे हैं।
उन्हें गुमाँतक न था कि जन्नत गुनाहगारोंको भी मिलेगी॥

—जोश मलसियानी

चराग़े-सज़्दा जलाके देखो, है बुतकदा दफ़्न जेरे-काबा[5]।
हदूदे-इस्लाम ही के अन्दर यह सरहदे-काफ़िरी मिलेगी॥
हदूदे-दैरो-हरमसे हटकर झुका जबींने-नियाज़ अपनी।
ग़रज़से जब बेनियाज़ होगा, तो उजरते-बन्दगी मिलेगी॥
है जौरे-सैयादका ही सदक़ा चमनकी हंगामा आफ़रीनी।
तबाहियाँ जिस जगहपै होंगी वहीं कहीं ज़िन्दगी मिलेगी॥

—सिराज लखनवी

न ख़ौफ़े-तूफ़ाँ न शौक़े-साहिल ख़ुशामदें नाख़ुदा करें क्यों।
जो इन थपेड़ोंको सह गये हम तो ख़ुद नई ज़िन्दगी मिलेगी॥

—महवी लखनवी

---

[1]देखनेकी आज्ञा; [2]सनी हुई; [3]पथ-प्रदर्शकी; [4]डाकेज़नी; [5]जहाँ पहले मूर्तियाँ थी, उन्हीको तोड़कर वहाँ काबा बना था, उसी ओर सकेत है।

जो राज़ आज़ादिए-वतनमें निहाँ था कौन उसको जानता था।
कि इक तरफ़ ख़्वाजगी[1] मिलेगी तो इक तरफ़ बन्दगी[2] मिलेगी॥
यही है जमहूरियतके[3] मानी तो फिर ग़ुलामीका क्या गिला है।
किसीको ग़म होगा और किसीको मसर्रते-दायमी[4] मिलेगी॥
जो मुल्कमें इनक़लाब आया, तो क़त्लो-ग़ारतके साथ आया।
समझ रहे थे समझनेवाले, कि इक नई ज़िन्दगी मिलेगी॥

—सरीर काबरी मीनाई गयावी

किसे गुमाँ[5] था के जुअ़मे-ख़ालिक़ की बावजूद[6] आदमे-हज़ींको।[7]
न इशरते-ख़्वाजगी[8] मिलेगी, न लज़्ज़ते-बन्दगी मिलेगी॥
अभी कहाँ आदमीकी मंज़िल, अभी तो ख़ुद आदमी ही गुम है।
यह अहदे-हाज़िर तबाह हो ले, तो मंज़िले-आदमी मिलेगी॥
ख़िरदको[9] अपनी जुनूँ बनाकर जो ज़िन्दगीको ख़िराज[10] देगा।
यहाँ उसी साहबे-ख़िरदको जुनूँकी पैग़म्बरी मिलेगी॥
यह ना उम्मीदी यह बे यक़ीनी, यक़ीनो-उम्मीदकी झलक है।
इन्हीं अँधेरोंको पार करके यक़ीनकी रोशनी मिलेगी॥
हज़ार हो राख क़ल्बे-'साग़र' मगर इसी राखमें है जौहर।
तलाश जब अहले-दिल करेंगे, शररको[11] दुनिया दबी मिलेगी॥

—साग़र निज़ामी

सुना है दीवानगाने-उलफ़तको[12] दादे-आशुफ़्तगी[13] मिलेगी।
अगर यह सच है तो ज़ुल्फ़ेंगेतीको[14] और कुछ बरहमी[15] मिलेगी॥

---

[1]पूज्यता (नेतागिरी); [2]गुलामी (सर झुकानेकी मजबूरी); [3]प्रजातन्त्रताके; [4]स्थायी सुख; [5]विश्वास, ख़याल; [6]ईश्वरके भरोसेके होनेपर भी; [7]गमगीन आदमीको; [8]आदरका सुख, मालिकाना आनन्द; [9]अक़्लको [10]कर, टैक्स; [11]चिनगारियोंकी; [12]प्रेमोन्मत्तोंको; [13]परेशानियोंकी दाद, प्रशसा; [14]संसाररूपी प्रेयसीकी जुल्फ़ोंको; [15]परेशानी।

ग़रूबे-ख़ुरशीदपर[1] रहेगा फ़रोगे-शबका[2] मदार[3] कबतक ?
यह सोचता हूँ कि इन सितारोंको कब नई ज़िन्दगी मिलेगी ॥
वोह सुबहे-जन्नत कि जिसने ज़ाहिदको दीनो-दुनियासे खो दिया है।
कहीं मिलेगी तो मैकदेका तवाफ़[4] करती हुई मिलेगी ॥
यही नशेमन तिरी निगाहोंको जिसने महदूद कर दिया है।
इसी नशेमनके आईनेमे क़फ़सकी तसवीर भी मिलेगी ॥
कहाँ-कहाँ हमसफ़र रहे हम, वही है बेगानगीका आलम।
किसे ख़बर थी कि हर तमन्ना, ब-सूरते-अजनबी मिलेगी ॥
ग़रज़-परस्तोंकी दोस्तीके फ़रेब सब खुल चुके हैं लेकिन।
'रविश' यह दुनिया क़दम-क़दमपर ख़ुलूसकी[5] मुद्दई मिलेगी ॥

—रविश सद्दीक़ी

इस अंजुमनमें शरीक होनेसे पहले ही मैं यह जानता था।
नवाज़िशें दूसरोंकी क़िस्मत, मुझे फ़क़त बरहमी मिलेगी ॥
अज़लके दिन जब बिनाए-हस्ती रखी थी, ऐलान कर दिया था।
सरोंको सौदा[6] नसीब होगा दिलोंको आशुफ़्तगी[7] मिलेगी ॥
हुए थे जिस दिन असीर[8] हम सब चमनके आसार कह रहे थे।
तुम आओगे जब क़फ़ससे छुटकर बहार जाती हुई मिलेगी ॥

—माहिरउलक़ादिरी

क़दम बढ़ाओ ख़िज़ाँ नसीबो ! वोह मंज़िलें मुन्तज़िर है अपनी।
जहाँ पहुँचकर निगाहो-दिलको, बहारकी ताज़गी मिलेगी ॥
उस आदमे-नौकी आमद-आमद, है जिसके इदराककी[9] दमकसे।
समाजको बाँकापन मिलेगा, हयातको[10] दिलकशी मिलेगी ॥

—नरेशकुमार शाद

---

[1]सूर्यास्तपर; [2]रात्रिके आनेका; [3]आसरा, भरोसा; [4]परिक्रमा; [5]निष्क-पटताकी हामी; [6]दीवानगी; [7]परेशानी; [8]बन्दी; [9]अक़्लकी; [10]जीवनको।

नई लहर लाई थी सन्देशा, कि अब नई ज़िन्दगी मिलेगी।
किसे ख़बर थी हयाते-ताज़ा लहूमें लिथड़ी हुई मिलेगी॥
उदास चेहरे, हज़ी-निगाहें, फ़सुर्दा दिल और सिसकती रूहें।
नये ज़मानेमें ऐ मुसाफ़िर! तुझे हर इक शै नई मिलेगी॥
नये-नये रहनुमा[1] फ़रेबे-ख़ुद ऐतमादीमें[2] घिर गये हैं।
निगाहे-मंज़िल-शनास कहिए, जिसे वोह भटकी हुई मिलेगी॥
न उठा सका बार नस्ले-आदमसे ज़िन्दगीकी नज़ाकतोंका।
किसी नये क़ब्र-आश्नाये-हयातको ज़िन्दगी मिलेगी॥
गुज़र सका तू अगर तुलू-ओ-ग़रूबे-हस्तीकी मंज़िलोंसे[3]।
तो फिर यही ज़िन्दगी तेरी ठोकरोंमें इक दिन पड़ी मिलेगी॥

—मंज़र सद्दीक़ी

थकी हुई सूरतोंसे जिस वक़्त मलगजी चादरें हटेंगी।
तो दश्ते—ग़ुरबतके क़ाफ़िलोंमें भी रातभर चाँदनी मिलेगी॥
ख़बीस रूहें[4] अँधेरे जंगलमें, गर्म शोलोंसे खेलती हैं।
चला है बहका हुआ मुसाफ़िर कि उस तरफ़ रोशनी मिलेगी॥

—शफ़ीक़ जौनपुरी

रहे-वफ़ामें[5] फ़ना जो होगा, उसे नई ज़िन्दगी मिलेगी।
गुज़र मक़ामे-ख़ुदीसे,[6] पहले हक़ीक़ते-बेख़ुदी[7] मिलेगी॥
यह चन्द लमहे जो मुग़तनम[8] हैं तलाशे-साहिलमें[9] खो न इनको।
डुबोदे तूफ़ाने-ग़ममें कश्ती, यहीं कुछ आसूदगी[10] मिलेगी॥
मुझे डराता है बाग़बाँ क्यों तू बर्क़े-ख़ातिफ़की यूरिशोंसे[11]।
जलेगा जलने दे आशियाँको, चमनको तो रोशनी मिलेगी॥

—अलम मुज़फ़्फ़रनगरी

---

[1]नेता; [2]अहमन्यताके जालमें; [3]जीवनके उतार-चढ़ावकी मंज़िलोंसे; [4]अपवित्र आत्माएँ; [5]नेक मार्गमें; [6]अहम्भावसे; [7]आत्मलीनता; [8]ग़नीमत समझ; [9]किनारेकी खोजमें; [10]शान्ति-चैन; [11]बिजलीके भयानक हमलोंसे।

नहीं हूँ मायूस[1] ज़िन्दगीसे, मुझे यक़ीं है कि इक-न-इक दिन।
अलमके[2] तीरह उफ़क़पे[3] मुझको, शुआए-उम्मीद[4] भी मिलेगी॥

—ज़िया फ़तेहाबादी

यह बज़्मे-अहबाब[5] है यहाँ ऐ दिले-परीशाँ! ख़ुलूस कैसा?
यहाँ तो हर परदये-वफ़ामें छुपी हुई दुश्मनी मिलेगी॥
हो जिसकी अंजामपर[6] नज़र और उसपे भी मुसकरा रही हो।
रियाज़े-आलममें[7] तुझको ऐ दिल; कहीं न ऐसी कली मिलेगी॥

—जगन्नाथ आज़ाद

ग़मे जहाँ-ओ-ग़मेमुहब्बत, बहर प्याला जुदा है लेकिन।
मज़ाक़े-रिन्दीमें पुख़्तगी हो, तो कैफ़ियत एक-सी मिलेगी॥
'शमीम' आसाँ नहीं ख़ुशीको, ग़मे-ज़मानासे छीन लेना।
हज़ार दिल आँसुओंमें डूबेंगे तब कहीं इक हँसी मिलेगी॥

—शमीम करहानी

अगर न हो दिलमें सोज़[8] पिन्हाँ[9] नज़रको क्या रोशनी मिलेगी?
ज़मीन उगलेगी चाँद-सूरज मगर वही तीरगी[10] मिलेगी॥
ख़ुशी कहाँ है जहाने-ग़ममें? मिली तो इतनी ख़ुशी मिलेगी।
लबोंपे खेलेगी मुसकराहट नज़रमें अफ़सुर्दगी[11] मिलेगी॥
जो क़ैदो-बन्देचमनसे[12] घबराके आशियानेको छोड़ देगा।
करेगा जिस शाख़पर बसेरा वही लचकती हुई मिलेगी॥

—निसार इटावी

---

[1]निराश; [2]दुःखके; [3]अँधेरे आकाशपर; [4]आशा-किरण; [5]इष्ट-मित्रोंकी गोष्ठी; [6]परिणामपर; [7]संसारमे; [8]दर्द; [9]छुपा हुआ; [10]अँधेरी; [11]मुर्झायापन; [12]चमनकी बन्दिशरूपी क़ैदसे।

हमारी आंखोंमें हुस्न भरकर, वोह ख़ुद ही हमसे झिझक रहे हैं।
किसीकी रंगी अदाके सदक़े, किसीमें यह सादगी मिलेगी?

—वफ़ा बराही

क़फ़ससे छुटनेपै शाद थे हम कि लज़्ज़ते-ज़िन्दगी मिलेगी।
यह क्या ख़बर थी बहारे-गुलशन लहूमे डूबी हुई मिलेगी॥
वही जहालतकी बादशाही, वही ज़लालतकी कजकलाही[1]।
जो बा-नाज़ दोस्ती मिलेगी, तो बेसबब दुश्मनी मिलेगी॥
नई सहर[2] के हसीन सूरज, तुझे ग़रीबोंसे वास्ता क्या?
जहाँ उजाला है सीमो-ज़रका[3] वहीं तेरी रोशनी मिलेगी॥
वोह दिन भी थे जब अँधेरी रातोंमें भी क़दम राहे-रास्तपर थे।
और आज जब रोशनी मिली है तो ज़ीस्त भटकी हुई मिलेगी॥
जिन अहले-हिम्मतके रास्तोंमें बिछाये जाते हैं, आज काँटे।
उन्हींके ख़ूने-जिगरसे रंगीं चमनकी हर इक कली मिलेगी॥
वोह हम नहीं हैं कि सिर्फ़ अपने ही घरमे शमएँ जलाके बैठे।
वहाँ-वहाँ रोशनी करेंगे, जहाँ-जहाँ तीरगी[4] मिलेगी॥

—अब्बुल मजाहिद ज़ाहिद

वोह हुस्न हो या शबाब तेरा, वोह नाज़[5] हो या नियाज़[6] मेरा।
सिवाय उल्फ़तके इस जहाँमें हरेक शै आरज़ी[7] मिलेगी॥

—शफ़ीक़ कोटी

सितमतराज़ी-ए-दस्ते-गुलचीं,[8] तग़ाफ़ुले-बाग़बाँ[9] सरासर।
यही रविश है तो क्या चमनमें, शगुफ़्ता कोई कली मिलेगी॥

—तमन्ना बिजनौरी

---

[1]बाँकी तिर्छी टोपी; [2]सुबहके; [3]चाँदी, धनका; [4]अँधेरी; [5]अभिमान; [6]नम्रता; [7]अस्थायी; [8]फूल तोड़नेवालेका जुल्म; [9]मालीकी उपेक्षा।

मक़ामे-जब्रो-करमसे[1] आगे, इक और मंज़िल भी है कि जिसमे।
न काहिशे-ग़मपै[2] बस चलेगा, न लज़्ज़ते-सरख़ुशी[3] मिलेगी॥
—महज़ूं नियाज़ी

बंधी हुई लौसे इस दियेकी जलेगे कितने चराग़ देखो।
मेरे नशेमनकी आग ही से चमनको अब रोशनी मिलेगी॥
—बिस्मिल सिद्दीकी लखनवी

अजीब है गरदिशे-ज़माना, हक़ीक़तें बन गईं फ़साना।
जिन्हें था दावाए-रहनुमाई, उन्हींमें अब गुमरही मिलेगी॥
'नसीम' इस दौरके सियासतज़दह ख़ुदाओंसे बचके रहना।
कि दिलपै इक हाथ बहरे-तसकीं[4] तो दूसरेमें छुरी मिलेगी॥
—नसीम रायपुरी

शामे-मुहब्बतका ज़िक्र ही क्या, ख़ुशीके लमहे न रास आये।
यह सब फ़रेबे-ख़याल ही था, कि तुमसे मिलकर ख़ुशी मिलेगी॥
—सैफ़ भुसावली

उठा सके आदमी तो पहले नज़रसे अपनी नक़ाब उठाये।
ज़माने भरकी तजल्लियोंमे नक़ाब उलटी हुई मिलेगी॥
—नवाब झाँसवी

दयारे-ग़ुरबतके यह नशेबोफ़राज़ हिम्मत-शिकन है लेकिन।
यही वोह पगडंडियाँ है जिनसे कभी तो राहे-ख़ुशी मिलेगी॥
—रौनक़ दक्कनी

यह किसको मालूम था कि कल थी जो ज़िन्दगी-ज़िन्दगीकी ज़ामिन।
वोह ज़िन्दगी आज ज़िन्दगीका लहू बहाती हुई मिलेगी॥
—कोकब उलक़ादिरी

---

[1]कृपा-अत्याचारसे; [2]ग़मकी कमीपै; [3]शराबका आनन्द; [4]धैर्य बँधानेके लिए।

ख़ुदा-फ़रोशीकी[1] है दुकानें, यह मदरसे और ख़ानक़ाहें[2]।
यक़ीनो-ईमाँकी क़ीमतोंपर यहाँ मताये-ख़ुदी[3] मिलेगी॥
ग़रजके बन्दों, ज़रूरतोंके पुजारियोंका है यह ज़माना।
क़दम-क़दमपर यहाँ नज़रको ख़ुलूसे-दिलकी[4] कमी मिलेगी॥
—अनवर साबरी

जमील[5] जौक़े-फ़ना[6] अगर है तो जाँ-फ़िज़ाँ मौत भी मिलेगी।
तुझे मुबारक हो मरनेवाले कि इक नई ज़िन्दगी मिलेगी॥
है मुनहसिर[7] शौक़े-जुस्तजूपर सुबकरवीं हो कि तेज़गामी।
हरेक मुसाफ़िरको अपनी मंज़िल क़रीब भी दूर भी मिलेगी॥
है शर्त सज्दे से बेनियाज़ी[8] वगर्ना मालूम सरफ़राज़ी।
जबींसे धोले जो हाथ उसको इजाज़ते-बन्दगी मिलेगी॥
हिसाब उसका है कुछ अनोखा शुमार उसका है कुछ निराला।
वहीं जफ़ा कामयाब होगी, जहाँ वफ़ाकी कमी मिलेगी॥
—विश्वेश्वरप्रसाद मुनव्वर लखनवी

मज़ाक़े-उलफ़त लतीफ़ होगा तो दिलकशा होगी शामेग़म भी।
अँधेरे उगलेंगे चाँद-तारे, हरइक तरफ़ चाँदनी मिलेगी॥
अदब-नवाज़ाने-दहर[10] 'तुर्फ़ा' करे अदीबोंपर भी नवाज़िश[11]।
अदीब ज़िन्दा अगर रहेंगे, अदबको भी ज़िन्दगी मिलेगी॥
—तुर्फ़ा क़ुरैशी

तुम्हींने ग़मसे मुझे नवाज़ा, तुम्हींसे मुझको ख़ुशी मिलेगी।
जबींको जिस दरने दाग़ बख़्शा उसीसे ताबिन्दगी[12] मिलेगी॥

---

[1]ईश्वर-बिक्रीकी; [2]मस्जिद, दरगाहें; [3]अहमन्यताकी दौलत; [4]निष्कपट हृदयकी; [5]हसीन; [6]मृत्युका चाव; [7]दार-मदार; [8]मन्द चाल; [9]निष्काम उपासना; [10]साहित्य-प्रेमी श्रीमत; [11]साहित्यिकोंका सम्मान करे; [12]रोशनी।

इसी भरोसेपै कट रही है बुरी-भली ज़िन्दगी अभी तक।
जहाँसे बेदाद हो रही है, वहींसे फिर दाद भी मिलेगी॥

—नज़र सहवारवी

अँधेरी रातोंमें रोनेवालोंसे कह रही है शफ़क़की सुर्खी[1]।
न अब बहाओ कोई भी आँसू तुम्हें नई रोशनी मिलेगी॥
कोई मज़ाहिद[2] तो होगा पैदा, जो ख़ूंसे सींचेगा अपना गुलशन।
उसीके ख़ूंसे ख़िज़ाँ रसीदा चमनको फिर ज़िन्दगी मिलेगी॥

—जमनादास अख़्तर

उजड़के आये हैं जो वतनसे उन्हें ज़रा इक नज़र तो देखो।
अभीतक उन अहले-ग़मकी आँखोंमें आँसुओंकी नमी मिलेगी॥

—रामकृष्ण मुज़तर

अमल हरइक नेको-बद तुम्हारा, सदा-ए-गुम्बद है याद रक्खो।
करोगे नेकी मिलेगी नेकी, बदी करोगे बदी मिलेगी॥
इसी भरोसेपै गामज़न[3] हूँ, तेरी मुहब्बतके रास्तेपर।
कहीं तो तेरा निशाँ मिलेगा, कभी तो तेरी गली मिलेगी॥
हज़ार नाकामियाँ हों 'नश्तर' हज़ार गुमराहियाँ हों लेकिन।
तलाशे-मंज़िल अगर है दिलसे तो एक दिन लाज़िमी मिलेगी॥

—हरगोविन्दसिंह नश्तर हतगामी

यही दरिन्दे उठेंगे इक रोज़ सारे आलमकी रहबरीको?
"इन्हीं अँधेरोंसे बज़्मेगेतीको एक दिन रोशनी मिलेगी"॥

मशहूद मुफ़्ती

इन आस्तानोंपै मत झुको तुम, यह शाही ईवाँ[4] है शाने-नख़वत[5]।
ख़ुलूसो-उल्फ़तके[6] बदले तुमको, यहाँ फ़क़त बरहमी[7] मिलेगी॥

—साज़ बिलगरामी

---

[1]सन्ध्याकालीन सूर्यलालिमा; [2]धर्मपर मरनेवाला; [3]चल रहा हूँ; [4]शाही महल; [5]घृणाकी शान लिए हुये; [6]स्नेह-प्यारके; [7]परेशानी-तिरस्कार।

जबींने-इफ़लास[1] ख़म[2] न होगी, अब अहले दौलतके आस्ताँपर[3]।
नया मज़ाक़े-सजूद[4] होगा, नई रहे-बन्दगी मिलेगी॥

—ज़फ़र आज़मी

जिसे न काबेसे वास्ता हो, न जिसको मतलब हो बुतकदेसे।
मेरी जबीने-नियाज़में[5] ऐसी रफ़अ़ते-बन्दगी[6] मिलेगी॥
न देखो नक़्शो-निगारे-हस्ती[7] कि आदमीयत यहाँ है सस्ती।
उरूजे-इन्सानियत कहाँ अब तो पस्ती-ए-आदमी मिलेगी॥

—प्रेम देहलवी

वोह आग जिसको बुझा दिया था, तुम्हारी बेइल्तफ़ातियोंने[8]।
वोह आग अबतक बुझी नहीं है, वोह आग दिलमें दबी मिलेगी॥
ग़मे-जहाँसे फ़राग़[9] मिलता, तो हम ख़ुदासे यह पूछ लेते।
जहाँके मालिक तेरे जहाँमें कभी हमें भी ख़ुशी मिलेगी॥

—नैयर सीमाबी

---

[1]दरिद्रताका मस्तक; [2]नही झुकेगी; [3]धनवानोके दरपर; [4]उपास्य नया होगा; [5]नम्र मस्तकमे; [6]उपासनाकी शक्ति; [7]जीवनसुखके चिह्न; [8]अकृपाओंने; [9]अवकाश, फ़ुरसत।

मौजूदा मुशाअ़रे

पुराने वक़्तोंमें जब कि बिजली नहीं थी, मुशाअ़रोंमें शुअ़रा ऊँची मसनदपर श्रोताओंकी तरफ़ मुँह करके अर्द्ध चन्द्राकार अपने-अपने मर्त्तबेके हिसाबसे बैठते थे और शमअ़ सामने रखी जानेपर अपनी ग़ज़ल पढ़ते थे।[1]

वर्तमान युगमें ढंग बदल गया है। अब मुशाअ़रोंकी व्यवस्था आधुनिक व्याख्यान-सभाओं-जैसी होती हैं। श्रोता मंचके सामने और शाइर मंचपर बैठते हैं; और मीर मुशाअ़रेके आदेशपर माइकपर जाकर अपना-अपना कलाम सुनाते हैं।

कभी यह मुशाअ़रे तरही (समस्यापूर्ति) कभी ग़ैर तरही, कभी सिर्फ़ ग़ज़लोंके, कभी सिर्फ़ नज़्मोंके और अक्सर मिले-जुले होते हैं। ग़ैर तरही मुशाअ़रोंकी नींव इसलिए डाली गई थी कि शाइरका बेहतर-से-बेहतर कलाम सुना जा सके। तरही मुशाअ़रोंमें एक ख़ामी तो यह थी कि बाज़ दफ़ा फ़ुरसत न मिलनेकी वजहसे अच्छे शाइर मिसरा तरहपर ग़ज़ल नहीं कह सकनेकी वजहसे मुशाअ़रोंमें शिरकत नहीं फ़र्माते थे; और उनकी ग़ैर मौजूदगी बहुत अखरती थी। दूसरी ख़ामी यह थी कि शाइर मिसरेपर गिरह लगानेमें पूरी शक्ति लगा देते थे और प्रायः मिलती-जुलती एक-सी ग़ज़लोंको सुनते-सुनते लोग ऊब जाते थे।

ग़ैर तरही मुशाअ़रोंके रिवाजसे जहाँ यह लाभ हुआ कि हर शाइरसे जुदा-जुदा रंगका कलाम सुननेको मिलता है, वहाँ यह नुक़सान भी पहुँचा कि अक्सर शाइर पचासों दफ़ाका मुशाइरोंमें सुनाया हुआ, और कई-कई पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित कलाम पढ़ते रहते हैं।

---

[1]इस तरहके कई मुशाअ़रे १९२१-२२ ई० में दिल्लीके हिन्दुरावके बाड़ेमें देखनेका मुझे भी इत्तफ़ाक़ हुआ है।

भारत और पाकिस्तानके भिन्न-भिन्न रेडियो-स्टेशनोंसे भी मुशाअरे मासिक-पाक्षिक ध्वनित होते रहते हैं। कभी यह अपनी ओरसे मुशाअरोंका आयोजन करते हैं और कभी पब्लिक मुशाअरोंको प्रसारित करते रहते हैं।

इन मुशाअरोंसे यह फ़ायदा पहुँचा कि घटे-डेढ़-घटेके अर्समें ही अच्छे-अच्छे शाइरोंका कलाम घर बैठे हुए आरामसे सुननेको मिल जाता है और परिवारके सभी सदस्य लुत्फ़अन्दोज हो सकते हैं।

हजरत 'सरवर' तोंसवी साहबने एक नया कमाल और ईजाद किया है कि वे बड़े-बडे मुशाअरोंकी रनिंग कमेंट्री अपने 'शाने-हिन्द' अखबारमें प्रकाशित करते रहते हैं। समूचे मुशाअरेका हू-ब-हू ऐसा खाका पेश करते हैं कि वह चलचित्रके समान नज़रोंके सामने नाचने लगता है और पढते हुए ऐसा मालूम होता है कि हम स्वय मुशाअरेमें अच्छी-से-अच्छी जगह बैठे हुए यह सब देख रहे हैं।

यूँ तो आप स्वतन्त्रता, गालिब, हाली, इकबाल, चकबस्त, बर्क आदि दिवंगोपर हुए बृहत् मुशाअरो और भारत-पाकिस्तानके मिले-जुले मुशाअरोंकी न जाने कितनी कमेण्ट्री प्रकाशित कर चुके हैं। हम सिर्फ यहाँ एक मुशाअरेका तनिक-सा अश बतौर बानगी दे रहे हैं। यह मुशाअरा पटनेमें बिहार-रियासती-उर्दू-कान्फ्रेंसके तत्त्वावधानमें १४ मई १९५१ को हुआ था। जिसे पटनेके रेडियो स्टेशनने भी रात्रिके ९॥ बजेसे ११ बजेतक प्रसारित किया था। हमने भी यह मुशाअरा रेडियोपर सुना था। उसी मुशाअरेकी हजरत 'सरवर' तोंसवी द्वारा की गई कमेण्ट्रीकी एक झाँकी देखिए—

"अब ऐलान हो रहा है कि जनाब जगन्नाथ 'आजाद' अपना कलाम पेश करेंगे। लीजिए 'आज़ाद' साहब अपना पेटेण्ट लिबास पहिने माइक पर तशरीफ़ ले आये हैं, और दो-तीन क़ताआत सुनानेके बाद आपने मज-

मूअ्ये कलाम 'सितारोंसे ज़र्रोंतक' में-से मतबूआ ग़ज़ल पढ़नी शुरू की है। मतला फ़र्माते हैं—

मुहब्बतमें उन्हें अहले-नज़र[1] कामिल समझते हैं।
जो इस तूफ़ानकी हर मौजको साहिल समझते हैं॥

आज़ाद साहब बहुत अच्छा पढ़ते हैं, इसलिए दाद लेनेमें उन्हें बहुत आसानी रहती है। शेर फ़र्मा रहे हैं—

कभी वोह दिन थे अपने दिलको हम अपना न कहते थे।
मगर अब हर बशरके[2] दिलको अपना दिल समझते हैं॥
वोह फ़न[3] जो ताब ला सकता न हो दर्दे-ज़मानेकी[4]।
हम ऐसे फ़नको इक अफ़सानये-बातिल[5] समझते हैं॥
वही इन्सान साहिलपर[6], जिन्हें तूफ़ाँका धोका हो।
अगर अड़ जायें तूफ़ानोंको भी साहिल समझते हैं॥

इस शेरपर 'आजाद' साहबको अच्छी दाद दी गई है और आप फ़र्मा रहे हैं—

हमींने ऐ मुहब्बत क़द्र पहचानी है कुछ तेरी।
तुझे तूफ़ाँ, तुझे किश्ती, तुझे साहिल समझते हैं॥

'आजाद' साहब काफ़ी दाद पानेके बाद अपनी जगह पर तशरीफ़ ले आये हैं। अब हज़रत रविश सद्दीकी अपने ख़ास अन्दाजसे मुसकराते हुए माइकके सामने तशरीफ ले आये हैं, और फर्मा रहे हैं 'नज्मका उनुवान (शीर्षक) है 'यादश बखैर', इरशाद हुआ है—

शामे-ग़ुरबत[7] ही में सुबहे-वतन[8] भूल गये।
हम तो हर ख़्वाबको[9] ऐ चर्खे-कुहन[10] भूल गये॥

---

[1]पारखी; [2]मनुष्यके; [3]कला, ज्ञान; [4]दुनियाके दुःखकी; [5]कहानी मात्र; [6]किनारेपर; [7]यात्राकी सन्ध्या होते ही; [8]अपने देशका सुहावना प्रातःकाल; [9]स्वप्नको; [10]आस्मान।

नख़वते-शेख़ो-बिरहमन[1] तो बजा[2] है लेकिन—
क्या हुआ, क्यों हमें, इसनामे-वतन[3] भूल गये॥

दादका एक रेला है कि थमनेमें नही आ रहा है। चुनांचे 'रविश' साहबसे यह शेर तीन-चार मर्त्तबा पढवाया गया है। इसके बाद इरशाद होता है—

ज़िन्दगी दश्त-नशीनीमें[4] गुज़ारी जिसने।
उसी वहशीको[5] ग़ज़ालाने-ख़तन[6] भूल गये॥
मशरबे-इश्क़के[7] आदाब[8] सिखाये जिसने।
उसी मैख़्वारको[9] रिन्दाने-कुहन[10] भूल गये॥

रविश साहबको बहुत ज़्यादा दाद दी जा रही है और रविश साहब निहायत अच्छे अन्दाज़मे फर्मा रहे है—

ख़ारको[11] जिसने दिया शोल-ए-बरहमका[12] जलाल।
ख़ुद फ़रामोश[13] वोह एजाजे-सुख़न[14] भूल गये॥
नामुकम्मिल ही रही बरबादे-वतनकी रूदाद[15]।
आज सब तज़कर-ए-दारो-रसन[16] भूल गये॥

रविश साहबको निहायत अच्छी दाद दी जा रही है और हक़ भी यह है कि उनकी नज्म काबिले-तारीफ़ है। फ़र्माते है—

दर्द था क़िस्सये-शब हाये-ग़ुलामी[17] जिनको।
वही ख़ुरशीदकी[18] पहली किरन ही भूल गये॥
क्या यह सब रंजो-मुहन[19] परदये-ग़फ़लत[20] है 'रविश'!
हम तो इस सोचमे सब रंजो-मुहन भूल गये॥

---

[1]शेख-ब्राह्मणका द्वेष; [2]उचित; [3]वतनके प्रेमी; [4]घुमक्कड़पनमे; [5]दीवानेको; [6]जगली हिरन; [7]प्रेमके; [8]ढग; [9]मद्यपको; [10]पुराने शराबी; [11]काँटेको; [12]भड़क उठनेवाली चिनगारीका आबा; [13]भूले हुए; [14]वाणीके जादूगरको; [15]कहानी; [16]सूली, फाँसीके वर्णन; [17]पराधीनता रूपी अँधियारीका दुःख; [18]सूर्य्यकी; [19]दुःख, ग़म; [20]भूल, उपेक्षाके पर्दे।

जनाब 'रविश' साहब निहायत अच्छी दाद पानेके बाद अपनी जगहपर तशरीफ ले आये हैं और अब हजरत बालमुकुन्द 'अर्श' मलसियानी माइक पर तशरीफ़ ले आये हैं। मतला फ़र्माया है—

यह दौरे-ख़िरद[1] है, दौरे-जुनूँ,[2] इस दौरमें जीना मुश्किल है।
अंगूरकी मै के[3] धोकेमे ज़हर-आबका[4] पीना मुश्किल है॥

अर्श साहबको मतलेसे ही दाद मिलना शुरू हो गई है और आप फ़र्मा रहे हैं—

जब नाख़ुने-वशहत[5] चलते थे, रोकेसे किसीके रुक न सके।
अब चाके-दिले-इन्सानीयत,[6] सीते हैं तो सीना मुश्किल है॥

वस कुछ न पूछिए दादका एक रेला है कि थमनेमे नही आ रहा है। दादका शोर कुछ कम हुआ तो 'अर्श' साहबने यह शेर दुबारा पढनेके बाद इरशाद फर्माया—

जो धरमपै बीती देख चुके, ईमाँपै जो गुज़री देख चुके।
इस रामो-रहीमकी दुनियामे इन्सानका जीना मुश्किल है॥

दाद उसी अन्दाज़से दी जा रही है और जनाब अर्श फर्मा रहे हैं—

इक सब्रके घूंटसे मिट जाती सब तिश्नालबोंकी[7] तिश्नालबी[8]।
कम-ज़र्फ़ी-ए-दुनियाके[9] सदक़े[10] यह घूंट भी पीना मुश्किल है॥

वह शोला[11] नहीं, जो बुझ जाये, आँधीके एक ही झोंकेसे।
बुझनेका सलीक़ा आसाँ है, जलनेका तरीक़ा मुश्किल है॥

'अर्श' साहब मुशाअ्रेपर छा गये है और दाद है कि झोलियाँ भर-भर कर दी जा रही है। सुनिए अर्श साहब क्या फ़र्मा रहे है—

---

[1]अक़्लका जमाना; [2]ऐ उन्मादके युग; [3]अगूरी शराबके; [4]ज़हरीला पानी [5]दीवानगीके नख; [6]मानव-हृदयकी विदीर्णता; [7]प्यासोंकी; [8]प्यास; [9]नीच दुनियावालोंकी; [10]क़ुर्बान; [11]चिनगारी।

करनेको रफ़ू कर ही लेंगे, दुनियावाले सब जख़्म अपने।
जो जख़्म-दिले-इन्सां पै लगा, उस जख़्मका सीना मुश्किल है॥

इस शेरपर बहुत ज्यादा दाद दी गई है, और सुनिए अर्श साहब किस कदर बेहतरीन शेर फर्मा रहे हैं—

वोह मर्द नहीं जो डर जाये, माहोलके[1] ख़ूनी मंज़रसे[2]।
उस हालमें जीना लाज़िम है, जिस हालमे जीना मुश्किल है॥

इस शेरने तो एक कयामत बरपा कर दी है, और दाद है कि अपनी इन्तहाको पहुँच गई है। कई बार यह शेर 'अर्श' साहबसे पढवाया जा रहा है, और हरबार दादमे इजाफा हो रहा है। काफी देरके बाद जब दादका रेला कुछ थमा तो अर्श साहब मक्ता फ़र्मा रहे हैं—

मिलनेको मिलेगा बिलआख़िर[3] ऐ 'अर्श' सकूने-साहिल[4] भी।
तूफ़ाने-हवादससे[5] लेकिन बच जाये सफ़ीना[6] मुश्किल है॥

'अर्श साहबकी यह गजल बिला ख़ौफोतरदीद हासिले-मुशाअरा रही और जिस क़दर दाद 'अर्श' साहबको मिली, इस मुशाअरेमें किसीको नसीब न हुई।

लीजिए 'अनवर' साहब झूमते हुए माइककी तरफ़ जा रहे हैं। सुनिए मतला फ़र्मा रहे हैं—

अब भी यह तआल्लुक़[7] बाक़ी है, अब भी यह करम[8] फ़र्माते हैं।
जब कोई ख़बर सुन लेते हैं, पुरसिशके[9] लिए आ जाते हैं॥

अनवर साबरी और दाद तो अब लाजिम-ओ-मलज़ूम होकर रह गये हैं। लिहाजा खूब दाद मिल रही है—

---

[1]वातावरणके; [2]दृश्यसे; [3]अवश्य; [4]दरिया किनारेकी शान्ति; [5]तूफ़ानोंसे; [6]नाव; [7]सम्बन्ध; [8]कृपा; [9]हाल पूछने।

वोह आख़िरे-शब चुपके-चुपके, जब याद मुझे फ़र्माते हैं।
शबनमकी[1] धड़कती है छाती, तारोंको पसीने आते हैं॥
जब उनको ज़रूरत होती है, कुछ बात मुझे समझानेकी।
बेरब्त-से[2] मुबहम[3] अफ़साने[4], औरोंको सुनाये जाते हैं॥

अनवर साबरी साहबको दाद मिल रही है और 'अख़्तर' और 'नेवी' (संचालक मुशाअ़रा) उनका पाँव दबा रहे हैं, जिसका मतलब यह है कि अनवर साहब और न पढ़े, क्योंकि ११ बजनेमें वक़्त बहुत कम रह गया है और 'अख़्तर' साहबके प्रोग्रामके मुताबिक़ अभी कुछ और शुअ़राको पढ़ना है। 'अनवर' साहबने अपना भारी भरकम पाँव 'अख़्तर' साहबके पाँवपर रख दिया है। जिसका मतलब है कि घबराइए नहीं, अभी ख़त्म किये देता हूँ। चुनांचे 'अनवर' साहब आख़िरी शेर पढ़ रहे हैं—

मजबूर तमाशा होते हैं, जब ज़ेरे-नक़ाब उनके जलवे।
दुनियाकी नज़रसे बचनेको वोह मेरी नज़र बन जाते हैं॥

'सरवर' साहबकी की हुई कमेण्ट्रीकी हमने तनिक-सी झलक दिखाई है। वरना ख़ास-ख़ास आदमी कहाँ बैठे हैं, किस लिबासमें आये हैं, चुपके-चुपके क्या बातें होती हैं, कौन किसपर फ़ब्तियाँ कस रहा है? मुशाअ़रोंके सयोजकोंपर क्या हाशियाराई हो रही है, वग़ैरह-वग़ैरह सभी कुछ जो आँखोंसे देखते और कानोंसे सुनते हैं, बहुत ख़ूबीसे बयान करते हैं।

१७ फ़रवरी १९५४ ई०]

---

[1]ओसकी; [2]असम्बन्धित; [3]व्यर्थ; [4]क़िस्से।

अनुक्रमणिका

शेरो-शाइरी और शेरो-सुख़न पाँचों भागोंमें उल्लिखित
शाइरोंकी वर्णानुक्रम-सूची

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ
[अ]			
अकबर	२६४		
अकबर हैदरी		चौथा	२१५
अख्तर		पहला	२८०
अख्तर वाजिद अलीशाह		पहला	३७०
अख्तर शीरानी	५०३		
अज़ीज़ लखनवी		दूसरा	२८७
अनवर		पहला	६६६
अफ़सोस		पहला	१७६
अब्दुल्ला क़ुतुबशाह		पहला	५४
अब्दुलहसन तानाशाह		पहला	५४
अमजद अलीशाह		पहला	३६६
अमजद हैदराबादी		तीसरा	२६५
अमानत		पहला	५५६
अमीर मीनाई	२४२	पहला	५६७
अलम मुज़फ्फ़रनगरी		चौथा	१६६
अर्श मलसियानी	५१२		

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ
असग़र गोण्डवी	५९६	तीसरा	१२४
असर देहलवी		पहला	१४६
असर लखनवी		दूसरा	६०
		चौथा	२५३
असीर		पहला	५५७
अहसन		पहला	८०
अहसन मारहरवी		चौथा	१५५
अहसान बिन दानिश	४१७		
[आ]			
आग़ा शाइर क़िज़िलबाश		चौथा	११८
आज़ाद	२७०	पहला	६३२
आज़ाद अंसारी		तीसरा	२४०
आज़ुर्दा		पहला	५५६
आज़ूँ देहलवी		पहला	७१
आज़ूँ लखनवी		दूसरा	२४७
आतिश		पहला	३११
आबाद		पहला	३२९
आलम महल		पहला	३७६
आसफ़, आसफ़ुद्दौला नवाब		पहला	३६०
आसी ग़ाज़ीपुरी		तीसरा	२१६
आसी उदनी		चौथा	१८९
[इ]			
इक़बाल	३०७		
इब्राहिम आदिलशाह		पहला	५३

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ
इंशा		पहला	२०४
इशरत महल		पहला	३७७
[उ]			
उमराव महल		पहला	३७३
उम्मीद उमेठवी		दूसरा	२७२
[क]			
क़ायम चान्दपुरी		पहला	१३६
क़ल्क़		पहला	५६०
कैफ़ी दत्तात्रय		तीसरा	२३०
[ख]			
ख़लील		पहला	३५८
[ग]			
गाज़ीउद्दीन हैदर		पहला	३६६
ग़ालिब	२०६	पहला	४६६
[च]			
चकबस्त	३४७		
[ज]			
ज़की महदीअलीख़ाँ		पहला	५६१
ज़की मुहम्मद ज़करियाख़ाँ		पहला	७४४
ज़ौक़	१६३	पहला	३८८
जज़्बी	५५१		
ज़फ़र		पहला	६१६
ज़हीर		पहला	६६७
जलील मानकपुरी		दूसरा	२११
जलाल लखनवी		पहला	५६३

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ
जिगर मुरादाबादी	६०२	तीसरा	१५१
ज़िया		पहला	१६६
जुरअत		पहला	२११
जावेद रामपुरी		पहला	६१६
जोश मलीहाबादी	३७६		
जोश मलसियानी		चौथा	६५
[त]			
तसकीन		पहला	७०८
तसलीम		पहला	५६३
ताजवर नजीबाबादी		चौथा	२२०
ताबाँ		पहला	१५५
[द]			
दर्द	१६७	पहला	१२५
दरख़शाँ		पहला	५६२
दाऊद		पहला	५६
दाग़	२५३	पहला	६३५
		चौथा	११
दिल शाहजहाँपुरी		दूसरा	१४६
दीदम बेगम		पहला	३७८
[न]			
नज़र लखनवी		दूसरा	३०१
नज्म तबातबाई		दूसरा	३१७
नज़ीर	१७७		
नसीम दयाशंकर		पहला	३३६
नसीम असग़रअलीख़ाँ		पहला	७०६

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ
नसीम भरतपुरी		चौथा	१६०
नसीर		पहला	३८२
नसीरुद्दीन हैदर		पहला	३६८
नाज़ी		पहला	७६
नातिक़ लखनवी		दूसरा	३१०
नातिक़ गुलावठी		चौथा	१०५
नासिख		पहला	२६१
निज़ाम रामपुरी		पहला	६०६
नूह नारवी		चौथा	१४६
[फ]			
फ़ाइज		पहला	६६
फ़ातिमा बेगम		पहला	३०७
फ़ानी बदायूनी	५६०	तीसरा	१०१
फ़िराक़		पहला	१८२
फ़िराक़ गोरखपुरी	६०७		
फ़ुग़ाँ		पहला	८१
फ़ैज़	५३२		
[ब]			
बर्क़ लखनवी		पहला	३२६
बर्क़ देहलवी	४३२		
बदर आलम		पहला	३७४
बयान		पहला	१७५
बहर		पहला	३२८
बेख़ुद देहलवी		चौथा	१२७

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ
बेख़ुद बदायूनी		चौथा	१४६
बेदार		पहला	११६
[म]			
मज़हर		पहला	७२
मज़मून		पहला	७६
मजरूह		पहला	७४३
मजाज़	५४०		
ममनून		पहला	५५४
महबूब महल		पहला	३७८
महर		पहला	३३२
महरूम तिलोकचन्द		चौथा	२२४
मीर	१५३	पहला	१०७
मुनीर		पहला	३३३
मुसहफ़ी		पहला	१८४
मुहम्मद अलीशाह		पहला	३६६
मुहम्मदअली कुतुबशाह		पहला	५३
मुहम्मद कुतुबशाह		पहला	५४
मोमिन	२३३	पहला	४२४
[य]			
यकरंग		पहला	८०
यक़ीन		पहला	१६३
यगाना चंगेज़ी		तीसरा	१८८
[र]			
रख्शाँ		पहला	७४५
रश्क		पहला	३३१

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ
रश्क महल		पहला	३७४
रंगीन		पहला	२३५
रासिख		पहला	२२०
रिन्द		पहला	३३५
रियाज़ ख़ैराबादी		दूसरा	१०४
[ल]			
लुत्फ़		पहला	१७७
[व]			
वज़ीर		पहला	३३०
वज़ीर अलीखाँ		पहला	३६४
वली		पहला	५६
वहशत कलकतवी		तीसरा	२५०
[श]			
शरफ़		पहला	३५६
शहीद		पहला	२२४
शाद अज़ीमाबादी		तीसरा	१७
शेफ्ता		पहला	७००
शैदा बेगम		पहला	३७५
शौक़ रैना		दूसरा	२४१
[स]			
सआदत अलीखाँ		पहला	३६५
सदर महल		पहला	३७६
सफ़ी लखनवी		दूसरा	२७६
सबा		पहला	३५६
सरशार लखनवी		दूसरा	२३७

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ
साइल देहलवी		चौथा	१०६
साक़िब लखनवी	५७६	दूसरा	१६
साग़र निज़ामी	४७६		
सालिक-कुरबानअली		पहला	७११
साहिर लुधियानवी	५५७		
साहिर अमरनाथ		तीसरा	२२५
सिराज़		पहला	६०
सीमाब अकबराबादी	४०५	चौथा	३३
सोज़		पहला	१२०
सौदा		पहला	१०२
[ह]			
हफ़ीज़ जालन्धरी	४५६		
हफ़ीज़ जौनपुरी		दूसरा	२२६
हविस		पहला	२२३
हसन देहलवी		पहला	१७०
हसन बरेलवी		चौथा	१६५
हसरत		पहला	१७८
हसरत मोहानी	५८४	तीसरा	६४
हातिम		पहला	७४
हाली	२७४	पहला	७१२
हिजाब बेगम		पहला	३७६
हिदायत		पहला	१८१
हूर बेगम		पहला	३७५
हैदरी बेगम		पहला	३७७

विषयानुक्रमणिका

शेरो-शाइरी और शेरो-सुख़नके पाँचो भागोंमें जिन महत्त्वपूर्ण-आवश्यक विषयोंपर विवेचन हुआ है, उनकी संक्षिप्त सूची यहाँ दी जा रही है। इस सूचीके अतिरिक्त बहुत-से उपयोगी अंगोंपर शाइरोंके परिचय एवं कलाममें जो व्याख्याएँ की गई हैं, उनकी सूची विस्तार भयसे यहाँ नहीं दी जा रही है। वह पुस्तकके प्रारम्भमें विषय-सूचीमें देखी जा सकती है।

शेरो-शाइरी

	पृष्ठ
१. उर्दू-शाइरीका परिचय	४६— ६७
२. भ्रामक शब्द	६८— ७४
३. उर्दू-शाइरीका मर्म	७५—१४६
४. उर्दू-शाइरीका विकास	१४७—१५२
५. उर्दू-शाइरीमें अभूतपूर्व परिवर्तन	२६१—२६७
६. राजनीतिक चेतना	२७१—३७५
७. उर्दू-शाइरीमें नया मोड़	४५१—४५५
८. प्रगतिशील युग	५१७—५३१
९. ग़ज़लके समर्थ शाइर	५६६—५७५

शेरो-सुख़न

भाग पहला

	पृ० सं०
१. उर्दू-शाइरीपर एक नज़र	१६— ५०
२. प्रारम्भिक युगीन और वर्त्तमान युगीन उर्दू	६४— ६५
३. मध्यवर्त्ती युगपर सिंहावलोकन	८५—१०१
४. अर्वाचीन युगपर सिंहावलोकन	२३५—२७६
५ ग़ज़ल	२३५—२४२
६. शाइरीपर वातावरण और व्यक्तित्वका प्रभाव	२४२—२४८
७. देहलवी-लखनवी शाइरीमें अन्तर	२४८—२७४
८. नासिख और आतिश	२७४—२७६
६. बादशाह और नवाब शाइर	७४६—७५४

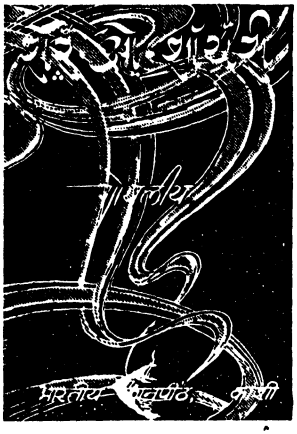
भाग पाँचवाँ

१०. ग़ज़लका लक्ष, अर्थ, आदि	१६— २६
११. पाक़-नापाक इश्क़	२६— ४६
१२. देहलवी-लखनवी शाइरी	४६— ५६
१३. दाखिली-ख़ारज़ी शाइरी	५६— ६४
१४. ग़ज़लकी मुख़ालफ़त	६५— ८६
१५. ग़ज़लका कायाकल्प	८६— ६६
१६. शाइरीमें परिवर्त्तनके कारण	६६—१०२
१७. नज़्म और ग़ज़ल	१०२—१०४
१८. ग़ज़लका मर्म और रूपक	१०५
१६. गुलो-बुलबुल	१०५—११५
२०. हुस्नो-इश्क़	११५—११८
२१. रंगे-तग़ज़्ज़ुल	११८—१२५
२२. नई ग़ज़लगोई	१२५—१२६
२३. पाक इश्क़	१२६—१५८
२४. सामयिक घटनाएँ	१५८—१७०
२५. मुशाअ़रा	१७१—२०६

लेखककी अन्य रचनाएँ

उर्दू-शाइरी और उसका इतिहास

उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत



महापण्डित राहुल सांकृत्यायन—

"यह एक कवि-हृदय, साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। गोयलीयजी-जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू-छन्द और कविताका चतुर्मुखीन परिचय कराया। संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गंभीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

द्वितीय संस्करण

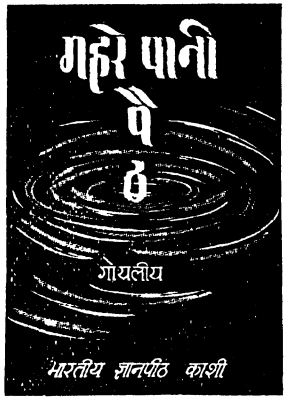
पृष्ठ सं० ६४० ● मूल्य आठ रु०

डॉ० अमरनाथ झा—

"गोयलीयजीने बड़े परिश्रमसे इस पुस्तकको लिखा है। इसमें सभी प्रमुख कवियोंका उल्लेख है, उनके जीवनकी मुख्य बातें लिख दी गयी हैं; जिस वातावरणमें उन्होंने कविता लिखी, उसका वर्णन है। उनके काव्य-गुरु और शिष्योंके नाम बताये गये हैं। उनकी रचनाओंके गुण-दोष उदाहरणोंके साथ वर्णन किये गये हैं। इसके पढ़नेसे उर्दू कविताका पूरा परिचय मिलता है।" ● प्रथम भाग

पृ० सं० ७८४ ● मूल्य आठ रु०





आज दैनिक–

"ये कहानियाँ चरित्रनिर्माण तथा अतीतके अनुभवोंसे हमें लाभान्वित करती हैं। 'गहरे पानी पैठ' में श्री गोयलीयने जिन रत्नोंको हिन्दी-संसारमें सुलभ किया है, निश्चय ही उनसे हमारा जीवन सुखी और सम्पन्न हो सकता है। लेखनशैलीमें प्रभावोत्पादकता और मार्मिकता है। पुस्तक मननीय और संग्रह योग्य है।"

द्वितीय संस्करण

पृष्ठ सं० २२४ ● मूल्य ढाई रुपये

विशालभारत–

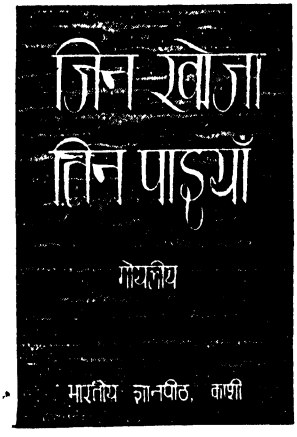
"प्रस्तुत पुस्तकमें जीवन-निर्माण एवं उत्साह, प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान करनेवाली १०२ लघु कथाएँ हैं। इनका स्वरूप लघु है, पर ज्ञानगुम्फनकी दृष्टिसे सागर जैसी प्रौढ़ता, विशालता तथा विस्तार है।"

नवभारतटाइम्स दिल्ली–

'जिन खोजा तिन पाइयाँ' को यदि हिन्दीका हितोपदेश कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वही अनुभव, वही ज्ञान, वही विवेक।

द्वितीय संस्करण

पृ० सं० २१८ ● मूल्य ढाई रुपये



उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत



युगचेतना–

गोयलीयजीकी लघु-कथाओंकी विशेषता यही है कि वे अपने आपमें तीखी मार्मिकता लिये हुए हैं। उनसे जहाँ एक ओर पाठकका ज्ञान वर्धन होता है, वहाँ दूसरी ओर वे शिक्षाप्रद और मनोरंजक भी होती है। उनकी भाषाशैली बहुत सरल और रोचक है। मौलिकता इनकी सबसे बड़ी विशेषता है मुहावरेदार भाषा और रोचक शैलीने मिलकर इन्हें बहुत महत्वपूर्ण बना दिया है। ये सभी कहानियाँ रोमांचित कर देनेवाली है।

सचित्र

पृष्ठ सं० १४८ ● मूल्य ढाई रुपये

१९०१ से १९५२ तकके २६ दिवंगत और आठ वयोवृद्ध प्रमुख दि० जैन कार्यकर्ताओंके संस्मरण एवं सचित्र परिचय।

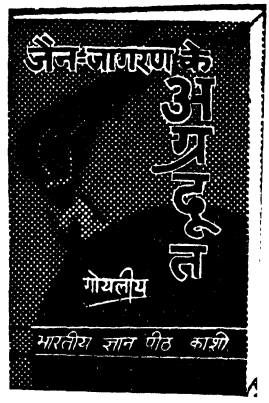
जैन-सन्देश मथुरा–

"प्रत्येक परिचय कहानीसे कम रोचक नहीं है।"

राष्ट्रभारती–

"प्रकाशन बहुत ही सुन्दर है। गेट-अप बहुत आकर्षक है।"

पृष्ठ सं० ६२० ● मूल्य पाँच रुपये



सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

कालिदासका भारत [भाग १]	४)	रजत-रश्मि	२॥)
कालिदासका भारत [भाग २]	४)	भारतीय ज्योतिष	६)
चौलुक्य कुमारपाल	४)	वैदिक साहित्य	६)
खण्डहरोंका वैभव	६)	धूपके धान	३)
खोजकी पगडण्डियाँ	४)	ध्वनि और संगीत	४)
शेरो-शाइरी	८)	माटी हो गई सोना	२)
शेर-ओ-सुख़न [भाग १]	८)	बाजे पायलियाके घुँघरू	४)
संस्मरण	३)	संस्कारोंकी राह	२॥)
हमारे आराध्य	२)	पचपनका फेर	३)
रेखाचित्र	४)	क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ	२॥)
वर्द्धमान [महाकाव्य]	६)	संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	३)
मिलन-यामिनी	४)	और खाई बढ़ती गई	२॥)
संघर्षके बाद	३)	शरत्के नारी-पात्र	४॥)
पहला कहानीकार	२॥)	संस्कृतका भाषा शास्त्रीय अध्ययन	५)
द्विवेदी-पत्रावली	२॥)	कुछ मोती कुछ सीप	२॥)

१९५७–१९५८ के नवीनतम प्रकाशन

नये बादल	२॥)	शाइरीके नये मोड़ [भाग १]	३)
तीसरा नेत्र	२॥)	लेखनी वेला	३)
रक्तराग	३)	मेरे कथा गुरुका कहना है	२॥)
कालके पंख	३)	वाणी	४)
शरत्की सूक्तियाँ	२)	चेखवके तीन नाटक	४)
जय-दोल	३)	ग़रीब और अमीर पुस्तकें	१)
नये चित्र	३)	हरियाणा लोकमञ्चकी कहानियाँ	२॥)
तरकशके तीर	३)	बना रहे बनारस	२॥)
सौवर्ण	२॥)	बारह एकाङ्की	३॥)
शाइरीके नये दौर [भाग १]	३)	प्राचीन भारतके प्रसाधन	३)
शाइरीके नये दौर [भाग २]	३)		

१९५७ से पूर्वके प्रकाशन

हिन्दी जैन-साहित्य परिशीलन	५)	रेडियो-नाट्य-शिल्प	२॥)
जिन खोजा तिन पाइयाँ	२॥)	मुक्ति-दूत [उपन्यास]	५)
शेर-ओ-सुखन [२–५ भाग]	१२)	जैन जागरणके अग्रदूत	५)
खेल-खिलौने	२)	भारतीय विचारधारा	२)
अतीतके कंपन	३)	मेरे बापू	२॥)
अध्यात्म-पदावली	४॥)	पंच-प्रदीप	२)
ज़िन्दगी मुसकराई	४)	ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	६)
हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान	१)	गहरे पानी पैठ	२॥)
एशियाकी राजनीति	५)	आकाशके तारे : धरतीके फूल	२)

ज्ञानपीठके सांस्कृतिक प्रकाशन

सिद्धान्तशास्त्र

महाबन्ध [भाग १–७]	७८)
तत्त्वार्थवृत्ति	१६)
तत्त्वार्थराजवार्तिक [१–२]	२४)
समयसार [अँग्रेजी]	८)
सर्वार्थसिद्धि	१२)

चरित

पद्मपुराण [भाग १]	१०)
पद्मपुराण [भाग २]	१०)
पद्मपुराण [भाग ३]	१०)
आदिपुराण [भाग १]	१०)
आदिपुराण [भाग २]	१०)
उत्तरपुराण	१०)
पुराणसारसंग्रह [भाग १]	२)
पुराणसारसंग्रह [भाग २]	२)
धर्मशर्माभ्युदय [धर्मनाथ चरित]	३)
जातकट्ठकथा [पाली भाषा]	६)

स्तोत्र, आचार

पउमचरिउ [पद्मचरित] [भाग १]	३)
पउमचरिउ ,, [भाग २]	३)
पउमचरिउ ,, [भाग ३]	३)
वसुनन्दिश्रावकाचार	५)
जिनसहस्रनाम [स्तोत्र]	४)

काव्य, न्याय

न्यायविनिश्चयविवरण [भाग १]	१५)
न्यायविनिश्चयविवरण [,, २]	१५)
जीवन्धरचम्पू	८)
मदनपराजय [काव्य]	८)

कोष, छन्दशास्त्र, व्याकरण

नाममाला सभाष्य	३॥)
सभाष्य रत्नमंजूषा [छन्दशास्त्र]	२)
जैनेन्द्रमहावृत्ति	१५)

विविध

व्रततिथिनिर्णय	३)
मंगलमंत्र णमोकार : एक अनुचिन्तन	२)
कन्नडप्रान्तीय ग्रन्थ सूची	१३)
करलक्खण	॥।)
केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि	४)
जैन शासन	३)
आधुनिक जैन कवि	३॥।)
हिन्दी जैन-साहित्यका संक्षिप्त इतिहास	२॥।=)
थिरुकुरल [तामिललिपि]	५)
ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि	४)
कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न	२)